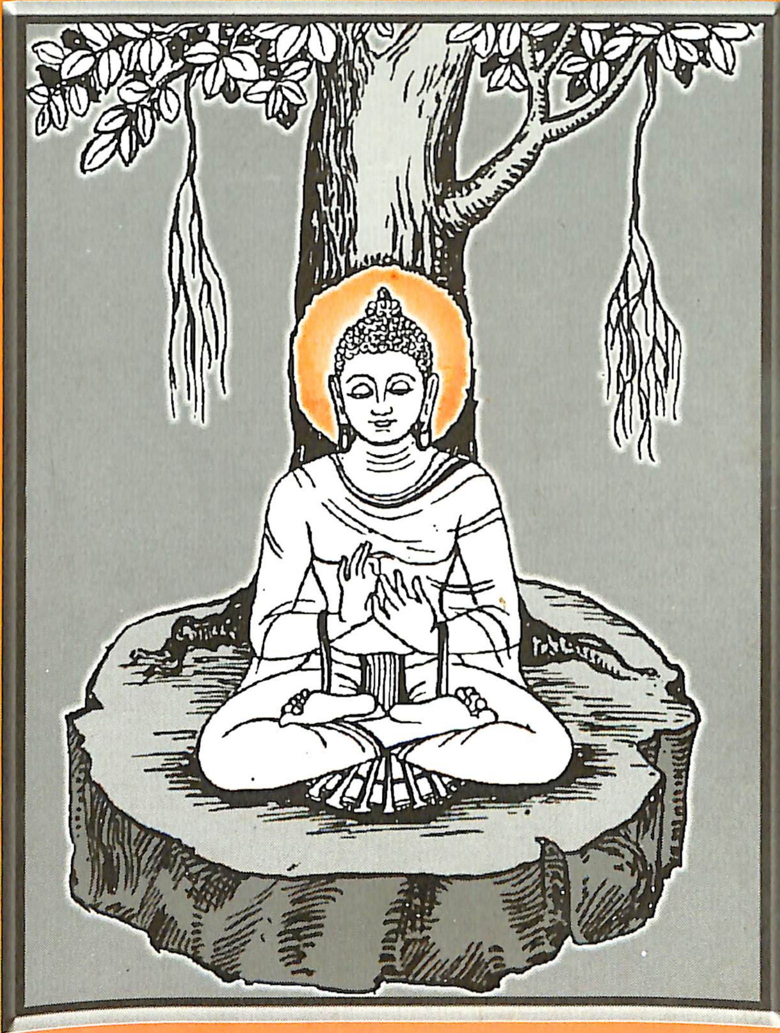
बौद्धभारतीग्रन्थमाला-46

सुत्तपिटके

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दी-अनुवादसहिता]

(चतुक्क-पञ्चकनिपाता)



प्रधान सम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला—४६
Baudha Bharati Series—46

सुत्तपिटक

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दी अनुवाद सहित]

(चतुक्क-पञ्चकनिपात)

[द्वितीय भाग]



प्रधानसम्पादक
स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-४६
Baudha Bharati Series-46

सुत्तपिटके

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहिता]

(चतुक्क-पञ्चकनिपाता)



प्रधानसम्पादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री

Bauddha Bharati Series-46

The

ANGUTTARANIKĀYAPĀLI

(Catukka-Pañcaka Nipāta)

with

HINDI TRANSLATION

Vol. - 2

Edited & Translated By

Swāmī Dwārikādās Śāstrī

BAUDDHA BHARATI

Varanasi

B. 2545] 2002 [V. 2058

बौद्धभारतीग्रन्थमाला-४६

सुत्तपिटक

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दी अनुवादसहित]

(चतुक्क-पञ्चकनिपात)

द्वितीय भाग

सम्पादक एवं अनुवादक

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री



वाराणसी

बु० २५४५] सन् २००२ ई० [वि० २०५८

प्रकाशक :
बौद्धभारती
पोस्ट बाक्स नं. : १०४९,
वाराणसी-२२१ ००१. (भारत)

Publisher by :
Bauddha Bharati
Post Box No. : 1049,
Varanasi-221 001 (India)

E-mali : bauddhabhrti@satyam.net.in

सहसम्पादक :
धर्मकीर्तिशास्त्री
चन्द्रकीर्तिशास्त्री

प्रथम संस्करण : २००२ ई.

First Edition : 2002 E.

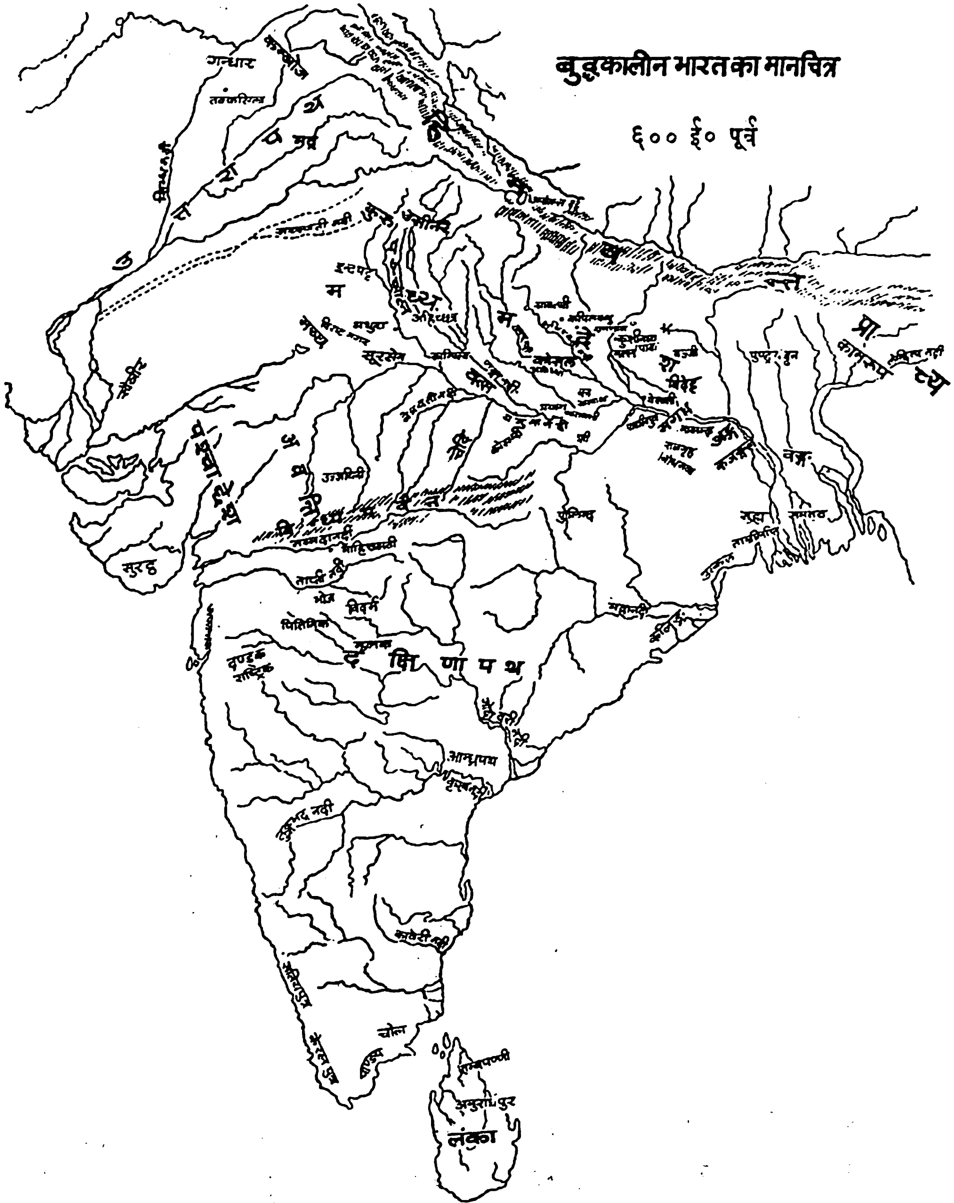
Price Rs. 2250/- (In 4 Vol's set)

मुद्रक :
साधना प्रेस
वाराणसी-२२१ ००२
फोन : (०५४२) २१००९४

Printed By :
Sadhana Press
Varanasi- 221 002
Ph. : (0542) 210094



"एसोहं, भन्ते, भगवन्तं सरणं गच्छामि, धम्मं च, भिक्खुसङ्घं च।
उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु, अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणङ्गतं" ति॥


बुद्धकालीन भारत का मानचित्र
६०० ई० पूर्व
गन्धार
तक्षशिला
कम्बोज
उत्तरापथ
सोवीर
सुरट्ठ
मत्स्य
सूरसेन
मथुरा
इन्द्रप्रस्थ
अहिच्छत्र
उज्जयिनी
अवन्ती
चेदि
वत्स
कोसल
मगध
राजगृह
वज्जी
विदेह
वैशाली
अंग
वङ्ग
पुण्ड्र
कामरूप
प्राच्य
कलिङ्ग
माहिष्मती
भोज
विदर्भ
दक्षिणापथ
आन्ध्रपथ
चोल
लंका
अनुराधपुर
कावेरी नदी

प्रकाशकीय वक्तव्य

"अनुजानामि, भिक्खवे, सकाय निरुत्तिया परियापुणितुं" ति

—विनयपिटके, भगवा बुद्धो।

सन् १९५८-१९६१ ई० में पालित्रिपिटकप्रकाशनसमिति, नालन्दा द्वारा सम्पूर्ण त्रिपिटक प्रकाशन में कार्य करते समय से ही हमारा यह सङ्कल्प था कि समस्त त्रिपिटक (बुद्धवचन) का हिन्दी-रूपान्तर (अनुवाद) के साथ भी प्रकाशन होना चाहिये, जिससे वह अन्य भाषाओं के विद्वानों के लिये भी उपयोगी हो सके।

एतदर्थ, हमने विगत पन्द्रह वर्षों में अत्यधिक प्रयास किया; भारत के अनेक साधनसम्पन्न प्रकाशकों तथा धनपतियों एवं बुद्धिजीवियों से इस कार्य के लिये आर्थिक साधन संगृहीत कराने हेतु निवेदन किया; परन्तु किसी ने भी, इस कार्यहेतु, हमारा उत्साहवर्धन नहीं किया।

अन्त में, हमने विवश होकर, अपने अल्प साधनों के बल पर ही इस कार्य को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। तदनुसार, सर्वप्रथम सुत्तपिटक का **मज्झिमनिकाय** (सम्पूर्ण) हिन्दी अनुवाद के साथ पाँच भागों में प्रकाशित किया, जो कि पाँच वर्ष में पूर्ण हुआ।

तदनन्तर, हमने सुत्तपिटक का **दीघनिकाय** (सम्पूर्ण) (हिन्दी अनुवाद के साथ) तीन भागों में प्रकाशित किया।

इसी क्रम में हमने समस्त **संयुत्तनिकायपालि** का हिन्दी अनुवाद के साथ चार भागों में दो वर्ष के कठिन परिश्रम एवं प्रयास के बाद, (चार भागों में सम्पूर्ण) आप के सम्मुख प्रस्तुत किया। यह ग्रन्थ २२५० पृष्ठों में पूर्ण हो पाया, अतः ग्रन्थ का कलेवर कुछ विशाल हो गया। परन्तु हमें इस बात की प्रसन्नता है कि यह ग्रन्थ पालि एवं हिन्दी-दोनों भाषाओं में एक साथ सुलभ हो गया है।

अब, इसी क्रम में सुत्तपिटक का यह चतुर्थ विशालकाय **अङ्गुत्तरनिकायपालि** ग्रन्थ (चार भागों में) प्रस्तुत किया जा रहा है। इस के, इस **द्वितीयभाग** में केवल प्रथम **चतुष्क** एवं **पञ्चक निपात** दिये जा रहे हैं। पूर्व ग्रन्थों के समान ही इसमें भी हमने पालि-पाठ के लिये बर्मा में हुए छट्ठ सङ्गायन पर आधृत, और श्रीलंका, स्याम (थाईलैण्ड) तथा पालि टैक्स्ट सोसाइटी, लन्दन के संस्करणों का सहयोग लेकर १९६० में 'पालि त्रिपिटक प्रकाशन बोर्ड' नालन्दा से प्रकाशित एवं आदरणीय भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी-संस्करण को आदर्श रूप में रखा है। इसमें हमने कहीं कहीं मुद्रणाशुद्धियों के संशोधन के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं किया है।

साथ ही हमने उक्त बर्मा, नालन्दा एवं रोमन संस्करणों की पृष्ठ-संख्या भी रोमन अक्षरों में क्रमशः यथास्थान दे दी है। अनुसन्धाता इससे भी लाभान्वित होंगे।

इसमें हमने, आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथा को प्रमाण मान कर, अपना स्वतन्त्र **हिन्दी अनुवाद** सम्पन्न करते हुए, उसे पालि-पाठ के साथ नीचे दिया है।

यहाँ हमें एक निवेदन अवश्य करना है कि विषय-वैशद्य (बात को समझाने) के लिये त्रिपिटक में विषय का अनुकूल-प्रतिकूल, या आरोह-अवरोह दोनों क्रमों से विस्तृत (अक्षरशः) वर्णन किया जाता है। इस शैली में भाषाच्छटा तो अवश्य आ जाती है, परन्तु इस शब्द-समूह में फँस कर पाठक से मूल विषय दूर दूर सा होने लगता है। इसके लिये पालि-संग्रहकारों ने ऐसे विशेष स्थानों (जहाँ पाठ पुनः पुनः आवृत्त हो) के लिये '...पे०...' की परम्परा रखी है। इसे हमने भी अपने हिन्दी-अनुवाद में स्वीकार किया है। परन्तु '...पे०...' का अनुवाद हमने '...पूर्ववत्...' करके दिया है, या प्रायः '...' इस चिह्न का प्रयोग किया है, जिससे पाठक प्रसङ्ग के प्रधान विषय से दूर न हो जाय।

ग्रन्थ में वर्णित सूत्रों का संक्षेप हिन्दी, अंग्रेजी दोनों भाषाओं में ग्रन्थ के प्रारम्भ में दे दिया है, जिससे पाठकों को सूत्रों का वर्ण्य विषय एक ही दृष्टि में हृदयङ्गम हो जाय।

यों हमने एक अभिनव पद्धति में बुद्ध-वचन (त्रिपिटक) का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। यदि विद्वानों को यह पद्धति रुचिकर व अनुकूल प्रतीत हुई तो हम आगामी काल में त्रिपिटक के अवशिष्ट ग्रन्थों का प्रकाशन भी इसी पद्धति से करेंगे।

अन्ते च, इस पवित्र ग्रन्थ का यह अनुवाद हमने स्वकीय ज्ञानवृद्धिहेतु लिखा था, लिखने के बाद यह ध्यान में आया कि यह हमारे समानधर्मा अन्य जिज्ञासुओं का भी प्रयोजन सिद्ध कर सकता है। इसी उद्देश्य से यह प्रकाशित किया जा रहा है।

इतने विस्तृत अनुवाद में, हो सकता है हम से कहीं परम्परा का निर्वाह न हो पाया हो, एतदर्थ हमारा विज्ञ जनों से विनम्र निवेदन है कि इस प्रमाद को क्षमा करते हुए हमें सूचित करने का कष्ट करें; जिससे आगामी संस्करण में उस का परिहार किया जा सके।

वसन्तपञ्चमी, २०५८ वि०
वाराणसी.

विद्वद्वशंवद

स्वामी द्वारिकादासशास्त्री
अध्यक्ष, बौद्धभारती

अङ्गुत्तरनिकायपालि

(चतुक्क-पञ्चकनिपाता)

सुत्तसूची



THE PĀLI ALPHABET IN DEVNĀGARĪ AND ROMAN CHARACTERS

VOWELS

अ = a   आ = ā   इ = i   ई = ī   उ = u   ऊ = ū   ए = e   ओ = o

CONSONANTS WITH VOWEL "A"

क ka	ख kha	ग ga	घ gha	ङ ṅa
च ca	छ cha	ज ja	झ jha	ञ ña
ट ṭa	ठ ṭha	ड ḍa	ढ ḍha	ण ṇa
त ta	थ tha	द da	ध dha	न na
प pa	फ pha	ब ba	भ bha	म ma
य ya	र ra	ल la	व va	स sa
	ह ha	ळ ḷa	अं aṁ	

VOWELS IN COMBINATION

क ka	का kā	कि ki	की kī	कु ku	कू kū	के ke	को ko
ख kha	खा khā	खि khi	खी khi	खु khu	खू khū	खे khe	खो kho

CONJUNCT-CONSONANTS

क्क kka	ञ्च ñca	द्व dva	म्ब mba
क्ख kkha	ञ्छ ñcha	ध्य dhya	म्भ mbha
क्य kya	ञ्ज ṅja	ध्व dhva	म्म mma
क्र kra	ञ्झ ṅjha	न्त nta	म्य mya
क्ल kla	ट्ट ṭṭa	न्त्व ntva	म्ह mha
क्व kva	ट्ठ ṭṭha	न्थ ntha	य्य yya
ख्य khya	ड्ड ḍḍa	न्द nda	य्ह yha
ख्व khva	ड्ढ ḍḍha	न्द्र ndra	ल्ल lla
ग्ग gga	ण्ट ṇta	न्ध ndha	ल्य lya
ग्घ ggha	ण्ठ ṇṭha	न्न nna	ल्ह lha
ग्य gya	ण्ड ṅḍa	न्य nya	व्ह vha
ग्र gra	ण्ण ṇṇa	न्ह nha	स्त sta
ङ्क ṅka	ण्ह ṇha	प्प ppa	स्त्र stra
ङ्ख ṅkha	त्त tta	प्फ ppha	स्न sna
ङ्ग ṅga	त्थ ttha	प्य pya	स्य sya
ङ्घ ṅgha	त्व tva	प्ल pla	स्स ssa
च्च cca	त्य tya	ब्ब bba	स्म sma
च्छ ccha	त्र tra	ब्भ bbha	स्व sva
ज्ज jja	द्द dda	ब्य bya	ह्म hma
ज्झ jjha	द्ध ddha	ब्र bra	ह्व hva
ञ्ञ ñña	द्य dya	म्प mpa	ळ्ह ḷha
ञ्ह ñha	द्र dra	म्फ mpha	

ा = ā   ि = i   ी = ī   ु = u   ू = ū   े = e   ो = o

1	2	3	4	5	6	7	8	9	0
१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

सुत्तपिटक

अङ्गुत्तरनिकायपालि

[हिन्दीअनुवादसहित]

(चतुक्क-पञ्चकनिपात)

❁ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ❁

अङ्गुत्तरनिकायपालि

४. चतुक्कनिपातो

१. भण्डगामवग्गो

पठमो पण्णासको

१. अनुबुद्धसुत्तं : १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा [N. II, 3, B. I, 307, R.II, 1] वज्जीसु विहरति भण्डगामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. ''चतुन्नं, भिक्खवे, धम्मानं अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। कतमेसं चतुन्नं? अरियस्स, भिक्खवे, **सीलस्स** अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। अरियस्स, भिक्खवे, **समाधिस्स** अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। अरियाय, भिक्खवे, **पञ्ञाय** अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। अरियाय, भिक्खवे, **विमुत्तिया** अननुबोधा अप्पटिवेधा एवमिदं दीघमद्धानं सन्धावितं संसरितं ममं चेव तुम्हाकं च। तयिदं, भिक्खवे, अरियं सीलं अनुबुद्धं पटिविद्धं, अरियो समाधि अनुबुद्धो, अरिया पञ्ञा अनुबुद्धा पटिविद्धा, अरिया विमुत्ति अनुबुद्धा पटिविद्धा, उच्छिन्ना भवतण्हा, खीणा भवनेत्ति, नत्थि दानि पुनब्भवो'' ति।

❁ उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम ❁

अङ्गोत्तरनिकायपालि

४. चतुष्क निपात

१. भण्डग्रामवर्ग

प्रथम पञ्चाशत्क

१. अनुबुद्धसूत्र : : चार धर्मों का अनुबोध आवश्यक

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) वज्जिप्रदेश के भण्डग्राम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय भगवान् ने भिक्षुओं को 'भिक्षुओ!' सम्बोधन से अपने सम्मुख बुलाया। भिक्षुओं ने ''जी, भन्ते!'' कहकर भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् ने उनको यह उपदेश किया—

२. ''भिक्षुओ! इन चार धर्मों के ज्ञान के विना, इनका अन्त:समीक्षण किये विना इतने दीर्घकाल तक तुम और हम इस संसार में दौड़ते रहे, निरर्थक ही घूमते रहे। किन चार धर्मों के?

[B.308] ३. इदमवोच भगवा। इदं वत्वानं सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

[R.2] "सीलं समाधि पञ्ञा च, विमुत्ति च अनुत्तरा।
अनुबुद्धा इमे धम्मा, गोतमेन यसस्सिना॥

[N.4] "इति बुद्धो अभिञ्ञाय, धम्ममक्खासि भिक्खुनं।
दुक्खस्सन्तकरो सत्था, चक्खुमा परिनिब्बुतो" ति॥ ●

२. **पपतितसुत्तं** : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि असमन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया पपतितो' ति वुच्चति। कतमेहि चतूहि? अरियेन, भिक्खवे, **सीलेन** असमन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया पपतितो' ति वुच्चति। अरियेन, भिक्खवे, **समाधिना** असमन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया पपतितो' ति वुच्चति। अरियाय, भिक्खवे, **पञ्ञाय** असमन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया पपतितो' ति वुच्चति। अरियाय, भिक्खवे, **विमुत्तिया** असमन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया पपतितो' ति वुच्चति। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि असमन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया पपतितो' ति वुच्चति।

२. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया अप्पपतितो' ति वुच्चति। कतमेहि चतूहि? अरियेन, भिक्खवे, सीलेन समन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया अप्पपतितो' ति वुच्चति। अरियेन, भिक्खवे, समाधिना समन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया

---

(१) भिक्षुओ! **आर्यशील** (सदाचार) के ज्ञान के विना... (२) **आर्य समाधि** के ज्ञान के विना... (३) **आर्यप्रज्ञा** के ज्ञान के विना... तथा **आर्यविमुक्ति** के ज्ञान के विना, इसका अन्तः समीक्षण किये विना इतने दीर्घकाल तक तुम और हम इस संसार में दौड़ते रहे। परन्तु जब, भिक्षुओ! हम लोगों ने इस आर्य शील को... आर्य समाधि को... आर्य प्रज्ञा को... आर्य विमुक्ति को जान लिया, आन्तरिक गम्भीरता को समझ लिया, तब हमारी सांसारिक तृष्णा समाप्त हो गयी, संसार से बन्धी डोर (नेत्री=रज्जु) टूट गयी, अब हमारा इस संसार में आना (पुनर्जन्म) असम्भव है।"

३. भगवान् ने यह कहा। यह कहकर भगवान् फिर यह बोले—

"शील, समाधि, प्रज्ञा एवं विमुक्ति—ये अनुत्तर धर्म यशस्वी गौतम ने भली भाँति जान लिये हैं, समझ लिये हैं॥

"उन ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध ने इस धर्म को जानकर, साक्षात् कर, भिक्षुओं को इसका उपदेश किया। तब, ऐसे वे भिक्षुओं के दुःखों का अन्त करनेवाले, सर्वज्ञ शास्ता परिनिर्वृत्त हुए॥" ●

२. प्रपतितसूत्र : : चार धर्मों से रहित का नरकपात

१. "भिक्षुओ! चार धर्मों से रहित पुरुष 'इस धर्मविनय से पतित' (च्युत) कहलाता है। किन चार धर्मों से? (१) भिक्षुओ! आर्य शील से..., (२) आर्य समाधि से..., (३) आर्य प्रज्ञा से तथा (४) आर्य विमुक्ति से रहित पुरुष 'इस धर्म से पतित' कहलाता है। भिक्षुओ! इन चार धर्मों से रहित भिक्षु 'इस धर्म से पतित' कहलाता है।

२. (परन्तु) चार धर्मों से युक्त पुरुष 'इस धर्म से अप्रपतित' (स्थित) कहलाता है। किन चार धर्मों से? (१) आर्य शील से, (२) आर्य समाधि से, (३) आर्य प्रज्ञा से तथा (४) आर्य

अप्पपतितो' ति वुच्चति। अरियाय, भिक्खवे, पञ्ञाय समन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया अप्पपतितो' वुच्चति। अरियाय, भिक्खवे, विमुत्तिया समन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया अप्पपतितो' वुच्चति। इमेहि खो, भिक्खवे चतूहि धम्मेहि समन्नागतो 'इमस्मा धम्मविनया अप्पपतितो' ति वुच्चति ति।

''चुता पन्ति पपतिता, गिद्धा च पुनरागता।
कतं किच्चं रतं रम्मं, सुखेनान्वागतं सुखं'' ति॥ ●

३. पठमखतसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, [B.309] बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि चतूहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा [R.3] अवण्णारहस्स वण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं [N.5] भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति।

२. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। कतमेहि चतूहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति... अनुविच्च

विमुक्ति से युक्त भिक्षु 'इस आर्यधर्म में स्थित' कहलाता है। भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त भिक्षु 'इस आर्यधर्म में स्थित' कहलाता है॥

''इन धर्मों से च्युत भिक्षु 'धर्मपतित' हो जाते हैं। तथा ये धर्मपतित पुरुष संसार में आसक्त (रागवान्) पुन: इस भवपरम्परा में आ फँसते हैं। और वे यहाँ मनचाहे, अपने मन को प्रिय लगने वाले कृत्य करते हैं तथा वे उन कृत्रिम सुखों को ही सुख मान कर उन ही में लिपटे रहते है॥''●

३. प्रथम क्षतसूत्र : : चार धर्मों से युक्त ही सुखी होता है

''भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त मूर्ख, नासमझ असत् पुरुष अपने आपको क्षत (कटा-पिटा) एवं उपहत (व्रणित=घायल) समझता है। तथा वह इन धर्मों का सेवन करते हुए अपने लिये बहुत अधिक अपुण्य (पाप) सञ्चित कर लेता है। कौन से चार धर्म? (१) विना सोचे, विना समझे किसी निन्दनीय पुरुष की प्रशंसा करता है, या (२) विना सोचे समझे किसी प्रशंसनीय पुरुष की निन्दा करता है, तथा (३) विना सोचे, विना समझे किसी अश्रद्धेय स्थान में अपनी श्रद्धा प्रकट करता है, या (४) किसी श्रद्धेय स्थान के प्रति अपनी अश्रद्धा प्रकट करता है। भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त मूर्ख, नासमझ असत् पुरुष अपने आपको क्षत एवं उपहत अनुभव करता है। वह सदोष जीवन बिताता है, तथा विज्ञजन उसकी समालोचना ही करते हैं।

२. भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त बुद्धिमान् एवं चतुर (पुरुष) अपने आपको स्वस्थ एवं अनुपहत (अव्रणित) अनुभव करता है, अपने को निर्दोष मानता है तथा विद्वज्जन भी इसकी प्रशंसा

परियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती ति।

"यो निन्दियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंससियो।
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति॥
"अप्पमत्तो अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो।
सब्बस्सा पि सहा पि अत्तना, अयमेव महन्ततरो कलि।
यो सुगतेसु मनं पदोसये॥
[B.310] "सतं सहस्सानं निरब्बुदानं, छत्तिंसती पञ्च च अब्बुदानि।
[R.4] यमरियगरही निरयं उपेति, वाचं मनं च पणिधाय पापकं" ति।

(सु० नि०, को० सु०, २५७-२५९ गा०) ●

४. दुतियखतसुत्तं : १. "चतूसु, भिक्खवे, मिच्छापटिपज्जमानो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं, पसवति। कतमेसु चतूसु? **मातरि,** भिक्खवे, मिच्छापटिपज्जमानो बालो अब्यत्तो

ही करते हैं। तथा इन चार धर्मों के सेवन से वह अपने लिये अतिशय पुण्यराशि एकत्र कर लेता है। किन चार धर्मों से? (१) सोच-समझकर प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है, (२) निन्दनीय की निन्दा करता है। तथा (३) किसी अश्रद्धेय में श्रद्धा एवं (४) श्रद्धेय में अश्रद्धा प्रकट करता है। भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष अपने आपको स्वस्थ... पुण्यराशि एकत्र कर लेता है।

"जो निन्द्य पुरुष की प्रशंसा करता है, तथा प्रशस्त पुरुष की निन्दा करता है, वह ऐसा करता हुआ, अपने मुख के माध्यम से अपने लिये पाप ही एकत्र करता है। अत: उस पाप के कारण वह सुखमय जीवन नहीं बिता सकता[१]॥

"लोक में यदि कोई जुआड़ी अपने साथ अपने सर्वस्व सहित स्वकीय समस्त धन हार जाय, तब भी यह पाप उससे अल्प ही माना जायगा कि कोई अन्य दुष्ट पुरुष तथागत के प्रति अपना मन मैला करता है, उनसे ईर्ष्या, द्वेष करता है। यही सबसे महान् पाप है॥

जो आर्यजन के प्रति अपना मन या वाणी दूषित करता है (अपशब्द बोलता है) उसका यदि लाखों वर्षों तक भी नरकपात हो तो भी अल्प ही है॥ [सु० नि० को० सु०, २५७-५९ गा०] ●

४. द्वितीय क्षतसूत्र **चार धर्मों के अपालन से नरक पालन स्वर्ग**

१. "भिक्षुओ! इन चार धर्मों में मिथ्या (अनुचित) व्यवहार कर्ता असत्, मूर्ख, नासमझ पुरुष स्वयं को व्रणित एवं टूटे हुए के समान अनुभव करता है। वह दोषभाक् होता है तथा विद्वानों द्वारा गर्हणीय भी। तथा ऐसा करता हुआ वह अपने लिये अतिशय पापराशि एकत्र कर लेता है। किन चार में? (१) भिक्षुओ! माता के प्रति..., (२) पिता के प्रति..., (३) तथागत के प्रति..., एवं (४)

---

१. इन तीनों गाथाओं का विस्तार जानने के लिये **सुत्तनिपात** का कोकालिकसुत्त (पृ० ३७१, नालन्दा सं०) देखें। —सं०

असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं [N.6] च अपुञ्ञं पसवति। **पितरि,** भिक्खवे, मिच्छापटिपज्जमानो ...पे०...। **तथागते,** भिक्खवे, मिच्छापटिपज्जमानो ...पे... **तथागतसावके** मिच्छापटिपज्जमानो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। इमेसु खो, भिक्खवे, चतूसु मिच्छापटिपज्जमानो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति।

२. ''चतुसू, भिक्खवे, सम्मापटिपज्जमानो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। कतमेसु चतूसु? **मातरि,** भिक्खवे, सम्मापटिपज्जमानो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। **पितरि,** भिक्खवे, सम्मापटिपज्जमानो ...पे०...। **तथागते,** भिक्खवे सम्मा-पटिपज्जमानो ...पे०...। **तथागतसावके,** भिक्खवे, सम्मापटिपज्जमानो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति। इमेसु खो, भिक्खवे, चतूसु सम्मापटिपज्जमानो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो च विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती ति।

''मातरि पितरि चा पि, यो मिच्छा पटिपज्जति। [B.311]
तथागते वा सम्बुद्धे, अथ वा तस्स सावके।

तथागत शिष्य के प्रति अपमानजनक व्यवहारकर्ता मूर्ख, नासमझ, असत्पुरुष स्वयं को व्रणित एवं टूटा हुआ सा अनुभव करता है। वह दोषभाक् (अपराधी) होता है तथा विद्वानों द्वारा गर्हणीय भी। तथा ऐसा करता हुआ वह स्वयं के लिये भी अतिशय अपुण्यराशि का सञ्चय करता है।

२. (इसके विपरीत) भिक्षुओ! इन चार धर्मों में उचित (सम्मानजनक) व्यवहारकर्ता पण्डित, चतुर, सज्जन स्वयं को नीरोग (स्वस्थ) एवं नव (तरुण) तुल्य अनुभव करता है। वह स्वयं को निर्दोष मानता है, तथा विद्वान् भी उसकी प्रशंसा करते हैं। कौन से चार? (१) अपनी माता के प्रति..., (२) पिता के प्रति..., (३) तथागत के प्रति... तथा (४) तथागत शिष्य के प्रति उचित व्यवहारकर्ता पण्डित, चतुर, सत्पुरुष स्वयं को नीरोग एवं तरुणवत् अनुभव करता है। स्वयं को निर्दोष (निरपराध) मानता है एवं विद्वान् भी उसकी प्रशंसा ही करते हैं। ऐसा करता हुआ वह अपने लिये भी अतिशय पुण्य का सञ्चय कर लेता है। इन चार धर्मों में उचित... अतिशय पुण्य का सञ्चय करता है।

''माता, पिता के प्रति, बुद्ध तथा बुद्धशिष्य के प्रति अनुचित व्यवहर्ता पुरुष स्वयं के लिये अतिशय अपुण्य (पाप) का सञ्चय करता है॥

[R.5] बहुं च सो पसवति, अपुञ्ञं तादिसो नरो॥
"तायं नं अधम्मचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।
इधेव नं गरहन्ति, पेच्चापायं च गच्छति॥
"मातरि पितरि चा पि, यो सम्मा पटिपज्जति।
तथागतं वा सम्बुद्धे, अथ वा तस्स सावके।
बहुं च सो पसवति, पुञ्ञं एतादिसो नरो॥
[N.7] "ताय नं धम्मचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती" ति॥

५. अनुसोतसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? अनुसोतगामी पुग्गलो, पटिसोतगामी पुग्गलो, ठितत्तो पुग्गलो, तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो। कतमो च, भिक्खवे, अनुसोतगामी पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो कामे च पटिसेवति, पापं च कम्मं करोति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अनुसोतगामी पुग्गलो।

२. "कतमो च, भिक्खवे, पटिसोतगामी पुग्गलो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो कामे च नप्पटिसेवति, पापं च कम्मं न करोति, सहा पि दुक्खेन सहा पि दोमनस्सेन अस्सुमुखो पि रुदमानो परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पटिसोतगामी पुग्गलो।

"माता-पिता आदि के प्रति ऐसी अधर्मचर्या करनेवाला पण्डितों द्वारा निन्दनीय माना जाता है। तथा मरणानन्तर उसका निश्चय ही नरक में पात होता है॥

"तथा, माता पिता, बुद्ध एवं बुद्धशिष्य के प्रति सम्यग्व्यवहर्ता बुद्धिमान् चतुर सत्पुरुष स्वयं के लिये अतिशय पुण्यसञ्चय करता है॥

माता पिता आदि के प्रति उसकी इस धर्मचर्या से विद्वज्जन उसकी इस लोक में प्रशंसा करते हैं, तथा मरणानन्तर वह स्वर्ग में दिव्य सुखानुभव करता है॥"

५. अनुस्रोतसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

"भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं। कौन से चतुर्विध? (१) अनुस्रोतोगामी पुद्गल, (२) प्रतिस्रोतोगामी पुद्गल, (३) स्थितात्मा पुद्गल, एवं (४) तीर्ण, पारङ्गत एवं तटस्थ ब्राह्मण।

"भिक्षुओ! इनमें 'अनुस्रोतोगामी पुद्गल' कौन होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल कामभोगों का यथेच्छ सेवन करता है तथा सतत पापकर्म करता है—ऐसा पुरुष भिक्षुओ! **अनुस्रोतोगामी पुद्गल** कहलाता है। (१)

"भिक्षुओ! इनमें 'प्रतिस्रोतोगामी पुद्गल' कौन होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल कामभोगों का भी सेवन नहीं करता तथा पापकर्म भी नहीं करता; परन्तु वह रोता कलपता हुआ,

३. ''कतमो च, भिक्खवे, ठितत्तो पुग्गलो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति, तत्थ परिनिब्बायी, अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं वुच्चति, भिक्खवे, ठितत्तो पुग्गलो।

४. ''कतमो च, भिक्खवे, पुग्गलो तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो ? [B.312] इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं [R.6] दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पुग्गलो तिण्णो पारङ्गतो थले तिट्ठति ब्राह्मणो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

''ये केचि कामेसु असञ्ञता जना, अवीतरागा इध कामभोगिनो।
पुनप्पुनं जातिजरूपगामि ते, तण्हाधिपन्ना अनुसोतगामिनो॥
''तस्मा हि धीरो इधुपट्ठितस्सती, कामे च पापे च असेवमानो।
सहा पि दुक्खेन जहेय्य कामे, पटिसोतगामी ति तमाहु पुग्गलं॥
''यो वे किलेसानि पहाय पञ्च, परिपुण्णसेखो अपरिहानधम्मो।
चेतोवसिप्पत्तो समाहितिन्द्रियो, स वे ठितत्तो ति नरो पवुच्चति॥
''परोपरा यस्स समेच्च धम्मा, विधूपिता अत्थगता न सन्ति।

दु:ख दौर्मनस्य के साथ, आँसू बहाता हुआ, रोता हुआ परिपूर्ण एवं परिशुद्ध धर्मचर्या में तत्पर रहता है। भिक्षुओ! ऐसा **पुद्गल प्रतिस्रोतोगामी** कहलाता है। (२)

''भिक्षुओ! 'स्थितात्मा पुद्गल' कौन कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल पाँच अवरभागीय संयोजनों के परिक्षय से अयोनिज (औपपातिक) देवता होता है। वह उसी देवलोक में परिनिर्वृत हो जाता है, इस लोक में पुन: जन्म नहीं लेता। यह **स्थितात्मा पुद्गल** कहलाता है।

''भिक्षुओ! 'तीर्ण, पारङ्गत, तटस्थ ब्राह्मण' कौन कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल आश्रवों का क्षय होने से अनाश्रव चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! यह पुद्गल **'तीर्ण, पारङ्गत, तटस्थ ब्राह्मण'** कहलाता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चार पुद्गल कहलाते हैं। (४)

''भिक्षुओ! जो संसारी जन कामभोगों का, अनियन्त्रित होकर, उनमें आसक्ति रखकर, उपभोग करते हैं वे बारम्बार तृष्णावश इस लोक में आकर जाति, जरा एवं व्याधि के बन्धन में बँधते हैं। ऐसे लोग 'अनुस्रोतोगामी' कहलाते हैं॥

''कोई धैर्यवान् साधक यहाँ उपस्थितस्मृति होकर कामभोग एवं अकुशल पापमय धर्मों का सेवन न करते हुए दु:ख एवं दौर्मनस्य के साथ इस धर्मसाधना में निरन्तर लगा रहता है उस पुद्गल को 'प्रतिस्रोतोगामी' कहते हैं॥

''तथा जो पाँच क्लेशों (आश्रवों) का क्षय कर, धर्मसाधना में शिथिलता न कर शैक्ष्य की भूमिका तक में पूर्णता पा लेता है, जिसने अपने चित्त एवं इन्द्रियों पर निग्रह कर लिया है, ऐसा पुद्गल 'स्थितात्मा' कहलाता है॥

स वे मुनि वुसितब्रह्मचरियो, लोकन्तगू पारगतो ति वुच्चती'' ति॥ ●

६. अप्पस्सुतसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो?

अप्पस्सुतो सुतेन अनुपपन्नो, अप्पस्सुतो सुतेन उपपन्नो, बहुस्सुतो सुतेन अनुपपन्नो, बहुस्सुतो सुतेन उपपन्नो।

कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पस्सुतो होति सुतेन अनुपपन्नो? इध, भिक्खवे, [B.313, R.7] एकच्चस्स पुग्गलस्स अप्पकं सुतं होति—सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथा उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो तस्स अप्पकस्स सुतस्स न अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पस्सुतो होति सुतेन अनुपपन्नो।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पस्सुतो होति सुतेन उपपन्नो? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स अप्पकं सुतं होति—सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथा उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो तस्स अप्पकस्स सुतस्स न अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पस्सुतो होति सुतेन अनुपपन्नो।

''जिस साधक के अधोभागीय एवं उपरिभागीय—दोनों ही प्रकार के संयोजन क्षीण हो चुके हैं, अस्त हो चुके हैं, सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसा धर्मसाधना किया हुआ मुनि (साधक) लोक के अन्त (नाश) का ज्ञाता 'पारगामी' कहलाता है॥'' ●

६. अल्पश्रुतसूत्र　　: :　　चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं। कौन से चार?

(१) अल्पश्रुत, परन्तु जितना सुना उसको भी मन में धारण न किये हो,

(२) अल्पश्रुत, परन्तु जितना सुना उसको मन में धारण किये हो,

(३) बहुश्रुत, परन्तु जो सुना उसको अपने मन में कुछ भी धारण न किया हो, तथा

(४) बहुश्रुत, परन्तु जो कुछ सुना उसको मन में पूर्णत: धारण किया हो।

''कैसे, भिक्षुओ! कोई अल्पश्रुत, परन्तु जितना सुना हो उतना भी मन में न धारण करने वाला कहता है? यहाँ भिक्षुओ! किसी पुद्गल ने इन विषयों को बहुत कम सुना हो; जैसे—सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इत्युवुक्तक, जातक, अद्भुतधर्म एवं वेदल्ल। वह इस अल्पश्रुत में से भी धर्म के अनुसार, अर्थ के अनुसार जानकर धर्ममार्ग पर आरूढ़ नहीं हो पाता; इसे कहते हैं, भिक्षुओ! **अल्पश्रुत, परन्तु इस सुने हुए को भी मन में न धारण करने वाला पुद्गल।** (१)

२. ''और, भिक्षुओ! कैसे कोई अल्पश्रुत होते हुए भी सुने हुए हो मन में धारण करने वाला होता है? यहाँ, भिक्षुओ! इन पूर्वोक्त सूत्र, गेय आदि विषयों में गुरुमुख से अल्पश्रुत ही होता है; परन्तु उस अल्पश्रुत को ही वह धर्म एवं अर्थ के अनुरूप जानकर धर्मसाधना में तत्पर होता है; यह

३. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो बहुस्सुतो होति सुतेन अनुपपन्नो? इध, [N.9] भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स बहुकं सुतं होति—सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथा उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो तस्स बहुकस्स सुतस्स न अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो बहुस्सुतो होति सुतेन अनुपपन्नो।

४. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो बहुस्सुतो होति सुतेन उपपन्नो? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स बहुकं सुतं होति—सुत्तं गेय्यं वेय्याकरणं गाथा उदानं इतिवुत्तकं जातकं अब्भुतधम्मं वेदल्लं। सो तस्स बहुकस्स सुतस्स अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो बहुस्सुतो होति सुतेन उपपन्नो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

"अप्पस्सुतो पि चे होति, सीलेसु असमाहितो।
उभयेन नं गरहन्ति, सीलतो च सुतेन च॥
"अप्पस्सुतो पि चे होति, सीलेसु सुसमाहितो।
सीलतो नं पसंसन्ति, नास्स सम्पज्जते सुतं॥
"बहुस्सुतो पि चे होति, सीलेसु असमाहितो। [B.314]

कहलाता है, भिक्षुओ! **अल्पश्रुत, परन्तु उस श्रुत को मन में भली भाँति धारण करने वाला पुद्गल।** (२)

३. "और, भिक्षुओ! कैसे कोई पुद्गल बहुश्रुत होते हुए भी श्रुत को मन में न धारण करने वाला होता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल का इन पूर्वोक्त सूत्र, गेय आदि विषयों में बहुत कुछ सुना होने पर भी उस श्रुत को अर्थ एवं धर्म के अनुरूप न जानकर वह धर्मसाधना में तत्पर नहीं हो पाता; इसे कहते हैं, भिक्षुओ! **बहुश्रुत, परन्तु उस श्रुत को मन में भली भाँति धारण न करने वाला पुद्गल।** (३)

४. "और, भिक्षुओ! कैसे कोई पुद्गल बहुश्रुत होकर उस श्रुत को मन में धारण करने वाला होता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल का इन पूर्वोक्त सूत्र, गेय आदि विषयों में बहुत कुछ सुना होने पर भी उस श्रुत को अर्थ एवं धर्म के अनुसार जानकर, समझकर वह धर्मसाधना में तत्पर होता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! वह पुद्गल **बहुश्रुत होकर उस श्रुत को मन में धारण करने वाला** होता है। (४)

इस तरह, भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में होते हैं।

"यदि कोई पुद्गल अल्पश्रुत है, परन्तु वह शील से समन्वित नहीं है, विद्वान् लोग उसकी श्रुत एवं शील—दोनों की दृष्टियों से निन्दा करते हैं॥ (१)

"यदि कोई पुद्गल अल्पश्रुत होते हुए भी शील से समाहित (समन्वित) है तो विद्वज्जन, उसकी शील की दृष्टि से, प्रशंसा ही करते हैं, भले ही अल्पश्रुत होने के कारण उस को तुच्छ ही समझते हों॥ (२)

(दूसरी ओर) "यदि कोई पुद्गल बहुश्रुत है, परन्तु शील में समाहित नहीं है, विद्वज्जन ऐसे

सीलतो नं गरहन्ति, तस्स सम्पज्जते सुतं॥
[R.8] "बहुस्सुतो पि चे होति, सीलेसु सुसमाहितो।
उभयेन नं पसंसन्ति, सीलतो च सुतेन च॥
"बहुस्सुतं धम्मधरं, सप्पञ्ञं बुद्धसावकं।
नेक्खं जम्बोनदस्सेव, को तं निन्दितुमरहति।
देवा पि नं पसंसन्ति, ब्रह्मुना पि पसंसितो" ति॥ ●

७. **सोभनसुत्तं** : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सङ्घं सोभेन्ति। कतमे चत्तारो? भिक्खु, भिक्खवे, वियत्तो विनीतो विसारदो बहुस्सुतो धम्मधरो धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सङ्घं सोभेति। भिक्खुनी, भिक्खवे, वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सङ्घं सोभेति। उपासको, भिक्खवे, वियत्तो विनीतो विसारदो बहुस्सुतो धम्मधरो धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो सङ्घं सोभेति। उपासिका, भिक्खवे, वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सङ्घं सोभेति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो वियत्ता विनीता विसारदा बहुस्सुता धम्मधरा धम्मानुधम्मप्पटिपन्ना सङ्घं सोभेन्ती ति।

"यो होति वियत्तो च विसारदो च, बहुस्सुतो धम्मधरो च होति।
धम्मस्स होति अनुधम्मचारी, स तादिसो वुच्चति सङ्घसोभनो॥

पुद्गल की, शील की दृष्टि से, निन्दा ही करते हैं, भले ही श्रुत की दृष्टि से उसकी वहाँ प्रशंसा होती रहे॥ (३)

(परन्तु, हाँ!) "यदि कोई पुद्गल बहुश्रुत भी है, एवं शीलसम्पन्न भी है तो विद्वज्जन उसकी, शील एवं श्रुत—दोनों ही दृष्टियों से प्रशंसा करते हैं॥ (४)

"यदि कोई बुद्धश्रावक (भिक्षु) बहुश्रुत भी है, धर्माराधक भी है तथा प्रज्ञावान् भी है तो, कसौटी पर कसे गये सुवर्ण की तरह, उसकी सब विद्वान् प्रशंसा ही करेंगे। उसकी निन्दा करने का कौन साहस कर सकता है! उसकी देवता और ब्रह्मा की प्रशंसा करते हैं, मनुष्यों की तो बात ही क्या!"॥ ●

७. शोभनसूत्र : : चतुर्विध पण्डित भिक्षु

१. "भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल—यदि वे पण्डित हैं, शीलवान् हैं, धर्माराधक हैं, विशारद (दक्ष) हैं, बहुश्रुत हैं तथा धर्मानुसार मार्गारूढ़ हैं—सङ्घ की शोभा ही बढ़ाते हैं। कौन से चार? (१) जो **भिक्षु** पण्डित ...पूर्ववत्... मार्गारूढ़ है। (२) जो **भिक्षुणी** पण्डित ...पूर्ववत्... मार्गारूढ़ है। (३) जो **उपासक** पण्डित... पूर्ववत्... मार्गारूढ़ है। (४) तथा जो **उपासिका** पण्डित ...पूर्ववत्... मार्गारूढ़ है। भिक्षुओ! ये चार पुद्गल—यदि वे पण्डित हैं, शीलवान् हैं, धर्माराधक हैं, विशारद हैं, बहुश्रुत हैं तथा धर्मानुसार मार्गारूढ़ हैं—सङ्घ की शोभा ही बढ़ाते हैं॥

"जो व्यक्त (बुद्धिमान्=पण्डित) एवं विशारद (दक्ष) है, बहुश्रुत एवं धर्मधर (शास्त्रज्ञ) है, धर्म की धर्मानुसार आराधना करता है, ऐसा पुद्गल इस सङ्घ की शोभा बढ़ानेवाला ही कहलाता है॥

"भिक्खु च सीलसम्पन्नो, भिक्खुनी च बहुस्सुता।
उपासको च यो सद्धो, या च सद्धा उपासिका।
एते खो सङ्घं सोभेन्ति, एते हि सङ्घसोभना" ति॥ ●

८. **वेसारज्जसुत्तं** : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, तथागतस्स वेसारज्जानि, येहि वेसारज्जेहि समन्नागतो तथागतो आसभं ठानं पटिजानाति, परिसासु सीहनादं नदति, [B.315] ब्रह्मचक्कं पवत्तेति। कतमानि चत्तारि? 'सम्मासम्बुद्धस्स ते पटिजानतो इमे धम्मा [R.9] अनभिसम्बुद्धा' ति तत्र वत मं समणो वा ब्राह्मणो वा देवो मा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं सहधम्मेन पटिचोदेस्सती ति निमित्तमेतं, भिक्खवे, न समनुपस्सामि। एतमहं, भिक्खवे, निमित्तं असमनुपस्सन्तो खेमप्पत्तो अभयप्पत्तो वेसारज्जप्पत्तो विहरामि।

२. "'खीणासवस्स ते पटिजानतो इमे आसवा अपरिक्खीणा' ति तत्र वत मं समणो वा ब्राह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं सहधम्मेन पटिचोदेस्सती ति निमित्तमेतं, भिक्खवे, न समनुपस्सामि। एतमहं, भिक्खवे, निमित्तं असमनुपस्सन्तो खेमप्पत्तो अभयप्पत्तो वेसारज्जप्पत्तो विहरामि।

३. "'ये खो पन ते अन्तरायिका धम्मा वुत्ता ते पटिसेवतो नालं [N.11] अन्तरायाया' ति तत्र वत मं समणो वा ब्राह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं सहधम्मेन पटिचोदेस्सती ति निमित्तमेतं, भिक्खवे, न समनुपस्सामि। एतमहं, भिक्खवे, निमित्तं असमनुपस्सन्तो खेमप्पत्तो अभयप्पत्तो वेसारज्जप्पत्तो विहरामि।

४. "'यस्स खो पन ते अत्थाय धम्मो देसितो सो न निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाया' ति तत्र वत मं समणो वा ब्राह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि

"जो भिक्षु शीलसम्पन्न है, भिक्षुणी बहुश्रुत है, उपासक धर्म में श्रद्धालु है, तथा उपासिका भी धर्म में श्रद्धालु है—ये चारों ही सङ्घ की शोभा बढ़ाते हैं॥" ●

८. वैशारद्यसूत्र : : तथागत के चार वैशारद्य

"भिक्षुओ! तथागत के ये चार वैशारद्य (दक्षता=चतुरता) हैं। इन चारों वैशारद्यों से युक्त होकर ही तथागत परिषदों में आर्षभ (वृषभसमान=श्रेष्ठ) स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंहनाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र (आध्यात्मिक धर्मोपदेश) प्रवर्तित करते हैं। कौन से चार?

१. "'आप सम्यक्सम्बुद्ध हैं—आपकी ऐसी प्रतिज्ञा होते हुए भी आपके द्वारा ये धर्म अनभिसम्बुद्ध (अज्ञात एवं असाक्षात्कृत) हैं'—कोई श्रमण, ब्राह्मण, देवता, मार, ब्रह्मा या लोक में कोई अन्य ऐसी बात मुझे कह सकेगा—इसमें, भिक्षुओ! मैं कोई कारण नहीं देखता। ऐसा कारण न देखता हुआ मैं निर्भयतापूर्वक, एवं दक्षता शान्ति के साथ अपनी धर्मसाधना में लगा रहता हूँ।

२. "'आप क्षीणाश्रव हैं—आपकी ऐसी प्रतिज्ञा होते हुए भी आपके ये आश्रव अभी तक क्षीण नहीं हुए हैं'—कोई श्रमण, ब्राह्मण, देवता... पूर्ववत्... अपनी धर्मसाधना में लगा रहता हूँ।

३. "'आपने जो विघ्नकारक धर्म धर्मसाधना में अन्तराय (विघ्न) बताये हैं, इनका उपयोग

वा लोकस्मिं सहधम्मेन पटिचोदेस्सती ति निमित्तमेतं, भिक्खवे, न समनुपस्सामि। एतमहं, भिक्खवे, निमित्तं असमनुपस्सन्तो खेमप्पत्तो अभयप्पत्तो वेसारज्जप्पत्तो विहरामि। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि तथागतस्स वेसारज्जानि, येहि वेसारज्जेहि समन्नागतो तथागतो आसभं ठानं पटिजानाति, परिसासु सीहनादं नदति, ब्रह्मचक्कं पवत्तेती ति।

[B.316] ''ये केचिमे वादपथा पुथुस्सिता, यंनिस्सिता समणब्राह्मणा च।
तथागतं पत्वा न ते भवन्ति, विसारदं वादपथातिवत्तं॥
''यो धम्मचक्कं अभिभुय्य केवली, पवत्तयी सब्बभूतानुकम्पी।
तं तादिसं देवमनुस्ससेट्ठं, सत्ता नमस्सन्ति भवस्स पारगुं'' ति॥ ●

९. तण्हुप्पादसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, तण्हुप्पादा यत्थ भिक्खुनो तण्हा [R.10] उप्पज्जमाना उप्पज्जति। कतमे चत्तारो? चीवरहेतु वा, भिक्खवे, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति; पिण्डपातहेतु वा, भिक्खवे, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति; सेनासनहेतु वा, भिक्खवे, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति; इतिभवाभवहेतु वा, भिक्खवे, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो तण्हुप्पादा यत्थ भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जती ति।

करते हुए भी धर्मसाधना में कोई विघ्न नहीं होता'—कोई श्रमण, ब्राह्मण, देवता ...पूर्ववत्... अपनी धर्मसाधना में लगा रहता हूँ।

४. '''आपने जिस प्रयोजन के लिये धर्मोपदेश किया है, उसकी सम्यक् आराधना से दुःखों का अन्त नहीं हो पाया'—कोई श्रमण ब्राह्मण, देवता ...पूर्ववत्... ऐसा कोई कारण न देखता हुआ ही मैं निर्भय होकर शान्ति एवं दक्षतापूर्वक अपनी साधना में लगा रहता हूँ।

''भिक्षुओ! तथागत के ये चार वैशारद्य हैं। इन चारों वैशारद्यों से युक्त होकर ही तथागत परिषदों में आर्षभ स्थान प्राप्त करते हैं, सभाओं में सिंहनाद करते हैं तथा ब्रह्मचक्र (आध्यात्मिक धर्मोपदेश) प्रवर्तित करते हैं।

''श्रमण ब्राह्मणों ने लोक में जो छोटे बड़े वाद उठा रखे हैं, जिनके सहारे से वे सभाओं में अध्यात्मचर्चा करते हैं, तथागत पर वे वाद किसी भी दक्षता से चरितार्थ नहीं किये जा सकते। क्योंकि तथागत का धर्मोपदेश दक्षतापूर्ण है तथा उसको किसी भी वाद से अतिक्रान्त नहीं किया जा सकता॥

''जिनने अपने चित्तविकारों का दमन कर, ज्ञानी बनकर, समस्त प्राणियों पर अनुकम्पा हेतु अतिविशिष्ट धर्मचक्र का प्रवर्तन किया, ऐसे इस संसारसागर को पार करने वाले तथा देवमनुष्यों में श्रेष्ठ तथागत का सभी प्राणी अभिवादन करेंगे॥'' ●

९. तृष्णोत्पादसूत्र : : चार तृष्मोत्पाद के हेतु

१. ''भिक्षुओ! ये चार तृष्णोत्पाद के हेतु हैं, जिनके लिये तृष्णा उत्पन्न होती है। कौन से चार? (१) चीवर के लिये, भिक्षुओ! तृष्णा उत्पन्न होती है। (२) पिण्डपात के लिये, भिक्षुओ! तृष्णा उत्पन्न होती है। (३) शयनासन प्राप्ति के लिये तृष्णा उत्पन्न होती है। एवं (४) लोक में यहाँ

"तण्हादुतियो पुरिसो, दीघमद्धान संसरं। [N.12]
इत्थभावञ्ञथाभावं, संसारं नातिवत्तति॥
"एवमादीनवं ञत्वा, तण्हं दुक्खस्स सम्भवं।
वीततण्हो अनादानो, सतो भिक्खु परिब्बजे" ति॥ ●

१०. योगसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, योगा। कतमे चत्तारो? कामयोगो, भवयोगो, दिट्ठियागो, अविज्जायोगो। कतमो च, भिक्खवे, **कामयोगो**? इध, भिक्खवे, एकच्चो कामानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च [B.317] यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स कामानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं अप्पजानतो यो कामेसु कामरागो कामनन्दी कामस्नेहो काममुच्छा कामपिपासा कामपरिळाहो कामज्झोसानं कामतण्हा सानुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कामयोगो। इति कामयोगो।

२. "**भवयोगो** च कथं होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो भवानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स भवानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं अप्पजानतो यो भवेसु भवरागो भवनन्दी भवस्नेही भवमुच्छा भवपिपासा भवपरिळाहो भवज्झोसानं भवतण्हा सानुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भवयोगो। इति कामयोगो भवयोगो।

या वहाँ उत्पन्न होने के लिये तृष्णा उत्पन्न होती है। भिक्षुओ! ये चार तृष्णोत्पाद के कारण हैं जहाँ तृष्णा उत्पन्न होती है।

"यह प्राणी इतने दीर्घकाल तक संसार में अपने साथ किसी न किसी तृष्णा को लेकर घूमता है। इस संसार में यहाँ वहाँ, ऐसा वैसा जन्म लेने की तृष्णा के कारण ही यह इस संसार के पार नहीं जा सकता।

अत: साधक भिक्षु इस दु:खोत्पादक तृष्णा में यह दोष देखकर तृष्णा का त्याग करता हुआ, अपरिग्रहपूर्वक इस संसार का त्याग कर इससे संन्यास ग्रहण कर ले॥" ●

१०. योगसूत्र : : चतुर्विध योग

१. "भिक्षुओ! ये चार योग होते हैं। कौन से चार? (१) कामयोग, (२) भवयोग, (३) दृष्टियोग, एवं (४) अविद्यायोग।

"भिक्षुओ! इनमें **कामयोग** क्या है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुरुष कामभोगों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद एवं आदीनव तथा निस्सरण को यथार्थत: नहीं जानता। इनको यथार्थत: न जाने वाले की कामों मेंराग, मानसिक, आकर्षण, स्नेह, मूर्छा, पिपासा, परिदाह, अध्यवसान (आसक्ति) तृष्णा बढ़ती रहती है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—कामयोग॥ (१)

यह हुआ कामयोग का व्याख्यान॥

२. **भवयोग** कैसे होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुरुष भावों (संसार) के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं नि:सरण को यथार्थत: नहीं जानता। इनको यथार्थत: न जानने वाले की

३. "**दिट्ठियोगो** च कथं होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो दिट्ठीनं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स दिट्ठीनं [R.11] समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं अप्पजानतो यो दिट्ठीसु दिट्ठिरागो दिट्ठिनन्दी दिट्ठिस्नेहो दिट्ठिमुच्छा दिट्ठिपिपासा दिट्ठिपरिळाहो दिट्ठिज्झोसानं दिट्ठितण्हा सानुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठियोगो। इति कामयोगो भवयोगो दिट्ठियोगो।

४. "**अविज्जायोगो** च कथं होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो छन्नं फस्सायतनानं [N.13] समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं नप्पजानाति। तस्स छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं अप्पजानतो या छसु फस्सायतनेसु अविज्जा अञ्ञाणं सानुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अविज्जायोगो। इति कामयोगो भवयोगो दिट्ठियोगो अविज्जायोगो, संयुत्तो पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि सङ्किलेसिकेहि पोनोब्भविकेहि सदरेहि दुक्खविपाकेहि आयतिं जातिजरामरणिकेहि। तस्मा अयोगक्खेमी' ति वुच्चति। इमे खो, भिक्खवे, **चत्तारो योगा**।

[B.318] ५. "चत्तारोमे, भिक्खवे, विसंयोगा। कतमे चत्तारो? कामयोगविसंयोगो, भवयोगविसंयोगो, दिट्ठियोगविसंयोगो, अविज्जायोगविसंयोगो। कतमो च, भिक्खवे **कामयोगविसंयोगो**? इध, भिक्खवे, एकच्चो कामानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं

भवों में राग, मानसिक आकर्षण... पूर्ववत्... तृष्णा बढ़ती रहती है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं— भवयोग। (२) **यह हुआ कामयोग, भवयोग का विवरण॥**

३. **दृष्टियोग** कैसे होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुरुष दृष्टियों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः नहीं जानता। इनको यथार्थतः न जाननेवाले की दृष्टियों के प्रति राग, मानसिक, आकर्षण... पूर्ववत्... तृष्णा बढ़ती रहती है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं— दृष्टियोग। (३) **यह हुआ कामयोग, भवयोग एवं दृष्टियोग॥**

४. **अविद्यायोग** कैसे होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष छह स्पर्शायतनों के उत्पाद, विनाश, आस्वाद, आदीनव एवं निःसरण को यथार्थतः नहीं जानता। इनको यथार्थतः न जाननेवाले का इन छह स्पर्शायतनों में अविद्या एवं अज्ञान बढ़ता रहता है। यह कहलाता है, भिक्षुओ! अविद्यायोग। **यह हुआ कामयोग, भवयोग, दृष्टियोग एवं अविद्यायोग॥**

"इनसे सम्पृक्त होकर वह पुरुष पापमय अकुशल धर्मों से भी संयुक्त हो जाता है; जो कि सर्वथा क्लेशदायक, पुनर्जन्म के हेतु, भय देनेवाले, परिणाम में दुःखदायी होते हैं। ये भविष्य में भी जन्म, जरा, व्याधि एवं मरण के ही उत्पादक हैं। अतः ऐसा पुरुष 'अयोगक्षेमी' (आसक्ति से मुक्ति न पानेवाला) कहा जाता है। ये हुए, भिक्षुओ! **चार योग॥**

(अब इन **विसंयोगों** का वर्णन करते हैं—)

५. "भिक्षुओ! ये चार विसंयोग (पृथक्ता) होते हैं। कौन से चार? (१) कामयोग-विसंयोग, (२) भवयोगविसंयोग, (३) दृष्टियोगविसंयोग, एवं (४) अविद्यायोगविसंयोग।

च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। तस्स कामानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानतो यो कामेसु कामरागो कामनन्दी कामस्नेहो काममुच्छा कामपिपासा कामपरिळाहो कामज्झोसानं कामतण्हा सा नानुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कामयोगविसंयोगो। इति कामयोगविसंयोगो।

६. "**भवयोगविसंयोगो** च कथं होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो भवानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। तस्स भवानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानतो यो भवेसु भवरागो भवनन्दी भवस्नेहो भवमुच्छा भवपिपासा भवपरिळाहो भवज्झोसानं भवतण्हा सा नानुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भवयोगविसंयोगो। इति कामयोगविसंयोगो भवयोगविसंयोगो।

७. "**दिट्ठियोगविसंयोगो** च कथं होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो दिट्ठीनं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। तस्स [R.12] दिट्ठीनं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानतो यो दिट्ठीसु दिट्ठिरागो दिट्ठिनन्दी दिट्ठिस्नेहो दिट्ठिमुच्छा दिट्ठिपिपासा दिट्ठिपरिळाहो दिट्ठिज्झोसानं दिट्ठितण्हा सा नानुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, दिट्ठियोगविसंयोगो। इति कामयोगविसंयोगो भवयोगविसंयोगो दिट्ठियोगविसंयोगो।

८. "**अविज्जायोगविसंयोगो** च कथं होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो [N.14] छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च निस्सरणं च यथाभूतं पजानाति। तस्स छन्नं फस्सायतनानं समुदयं च अत्थङ्गमं च अस्सादं च आदीनवं च

"इनमें **कामयोगविसंयोग** कौन सा कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष कामों के उत्पाद, विनाश... निःसरण को यथार्थतः जानता है। यथार्थतः ऐसा जानने वाले का कामों में राग, मानसिक आकर्षण... तृष्णा की ओर झुकाव (आसक्ति) नहीं हो पाता। भिक्षुओ! यह कहलाता है—कामयोगविसंयोग। (१) **यह हुआ कामयोगविसंयोग॥**

६. **भवयोगविसंयोग** कौन कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष भवों के उत्पाद ...निःसरण को यथार्थतः जानता है। ऐसा यथार्थतः जानने वाले का भवों में राग... पूर्ववत्... तृष्णा की ओर झुकाव (प्रकृति) नहीं हो पाता। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—भवयोगविसंयोग। (२)

यह हुआ कामयोगविसंयोग एवं भवयोगविसंयोग॥

७. **दृष्टियोगविसंयोग** कौन कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष दृष्टियों के उत्पाद... निःसरण को यथार्थतः जानता है। ऐसा यथार्थतः जानने वाले का दृष्टियों में राग ...तृष्णा की ओर झुकाव (प्रवृत्ति) नहीं हो पाता। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—दृष्टियोगविसंयोग। (३)

यह हुआ कामयोगविसंयोग, भवयोगविसंयोग एवं दृष्टियोगविसंयोग॥

८. **अविद्यायोगविसंयोग** कैसे होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुरुष छह स्पर्शायतनों के

निस्सरणं च यथाभूतं पजानतो या छसु फस्सायतनेसु अविज्जा अञ्ञाणं सा नानुसेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, अविज्जायोगविसंयोगो। इति कामयोगविसंयोगो [B.319] भवयोगविसंयोगो दिट्ठियोगविसंयोगो अविज्जायोगविसंयोगो, विसंयुत्तो पापकेहि अकुसलेहि धम्मेहि सङ्किलेसिकेहि पोनोब्भविकेहि सदरेहि दुक्खविपाकेहि आयतिं जातिजरामरणिकेहि। तस्मा योगक्खेमी ति वुच्चति। इमे खो, भिक्खवे, **चत्तारो विसंयोगा** ति।

"कामयोगेन संयुत्ता, भवयोगेन चूभयं।
दिट्ठियोगेन संयुत्ता, अविज्जाय पुरक्खता॥
"सत्ता गच्छन्ति संसारं, जातिमरणगामिनो।
ये च कामे परिञ्ञाय, भवयोगं च सब्बसो॥
"दिट्ठियोगं समूहच्च, अविज्जं च विराजयं।
सब्बयोगविसंयुत्ता, ते वे योगातिगा मुनी" ति॥ ●

भण्डगामवग्गो पठमो।

तस्सुद्दानं

अनुबुद्धं पपतितं द्वे, खता अनुसोतपञ्चमं।
[R.13] अप्पस्सुतो च सोभनं, वेसारज्जं तण्हायोगेन ते दसा ति॥ ●

उत्पाद ...पूर्ववत्... निःसरण को यथार्थतः जानता है। उस ऐसा जानने वाले की उन स्पर्शायतनों में अविद्या (अज्ञान) नहीं बढती। यह कहलाता है, भिक्षुओ—अविद्यायोगविसंयोग। (४)

यह हुआ कामयोगविसंयोग, भवयोगविसंयोग एवं दृष्टियोगविसंयोग अविद्यायोगविसंयोग॥

इनसे विसंयुक्त (पृथक् हुआ) वह पुरुष पापमय अकुशल धर्मों से भी विसंयुक्त हो जाता है; जो कि सर्वथा क्लेशदायक, पुनर्जन्म के हेतु, भयप्रद, परिणाम में दुःखदायी एवं भविष्य में जन्म, जरा, व्याधि एवं मरण के उत्पादक हैं। अतः ऐसा पुरुष 'योगक्षेमी' (आसक्ति से मुक्त) कहलाता है। ये हुए, भिक्षुओ! **चार विसंयोग**।

"कामयोग एवं भवयोग से संयुक्त तथा इन दोनों से संयुक्त; दृष्टियोग से एवं अविद्यायोग से संयुक्त तथा इन दोनों से संयुक्त प्राणी जातिमरण धर्मा होकर संसार में आते जाते रहते हैं॥

"तथा जो कामयोग एवं भवयोग का सर्वशः परिज्ञान कर, तथा दृष्टियोग को विनष्ट कर, अविद्यायोग का परित्याग कर सभी प्रकार के योगों से पृथक् होकर साधना करते हैं वे मुनिजन 'योगातिग' (योग को अतिक्रान्त करनेवाले) कहलाते हैं॥ ●

भण्डग्रामवर्ग प्रथम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. अनुबद्ध सूत्र, २. प्रपतित सूत्र, ३. प्रथम क्षत सूत्र, ४. द्वितीय क्षत सूत्र, ५. अनुस्रोत सूत्र, ६. अल्पश्रुत सूत्र, ७. शोभनसूत्र, ८. वैशारद्य सूत्र, ९. तृष्णोत्पाद सूत्र एवं १०. योगसूत्र॥ ●

२. चरवग्गो

१. चरसुत्तं : १. ''चरतो चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो उप्पज्जति कामवितक्को वा ब्यापादवितक्को वा विहिंसावितक्को वा। तं चे भिक्खु अधिवासेति, नप्पजहति न विनोदेति न ब्यन्तीकरोति न अनभावं गमेति, चरं पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो [N.15] 'अनातापी अनोत्तापी सततं समितं कुसीतो हीनविरियो' ति वुच्चति।

२. ''ठितस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो उप्पज्जति कामवितक्को वा ब्यापादवितक्को वा विहिंसावितक्को वा। तं चे भिक्खु अधिवासेति, नप्पजहति न विनोदेति न ब्यन्तीकरोति न अनभावं गमेति, ठितो पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो 'अनातापी अनोत्तापी सततं समितं कुसीतो हीनविरियो' ति वुच्चति।

३. ''निसिन्नस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो उप्पज्जति कामवितक्को वा ब्यापादवितक्को वा विहिंसावितक्को वा। तं चे भिक्खु अधिवासेति, नप्पजहति न विनोदेति न ब्यन्तीकरोति न अनभावं गमेति, निसिन्नो पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो 'अनातापी अनोत्तापी सततं समितं कुसीतो हीनविरियो' ति वुच्चति।

४. ''सयानस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो जागरस्स उप्पज्जति कामवितक्को वा ब्यापादवितक्को वा विहिंसावितक्को वा। तं चे भिक्खु अधिवासेति, नप्पजहति न विनोदेति न ब्यन्तीकरोति न अनभावं गमेति, सयानो पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो 'अनातापी अनोत्तापी सततं समितं कुसीतो हीनविरियो' ति वुच्चति।

---

२. चरवर्ग

१. चरसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! एक स्थान पर स्थायी रूप से न रहकर चारिका करनेवाले भिक्षु को भी कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क उत्पन्न हो जाते हैं। यदि वह भिक्षु उनको स्वीकार कर लेता है, उनका त्याग नहीं करता, उनको दूर नहीं करता, उनका अन्त नहीं करता तो, भिक्षुओ! ऐसा चारिका करने वाला भिक्षु 'साधना में अप्रयत्नशील, पाप करने में निर्भय या निर्लज्ज, सर्वथा आलस्ययुक्त एवं (साधना में) अशक्त' कहलाता है।

२. ''भिक्षुओ! एक स्थान पर स्थित वाले भिक्षु को भी कामवितर्क ...पूर्ववत्... ऐसा भिक्षु... अशक्त कहलाता है।

३. ''भिक्षुओ! एक स्थान पर बैठे रहनेवाले भिक्षु को भी कामवितर्क ...पूर्ववत्... ऐसा भिक्षु... अशक्त कहलाता है।

४. ''भिक्षुओ! सोकर जागे हुए भिक्षु को भी कामवितर्क ...पूर्ववत्...। उनको यदि वह स्वीकार कर लेता है तो उसके ये सभी वितर्क उससे न छूटते हैं... न नष्ट ही होते हैं। ऐसा भिक्षु 'साधना में अप्रयत्नशील, पाप करने में निर्भय एवं निर्लज्ज, सर्वथा आलस्ययुक्त एवं साधना में अशक्त' कहलाता है। (क)

५. "चरतो चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो उप्पज्जति कामवितक्को वा ब्यापादवितक्को वा विहिंसावितक्को वा। तं चे भिक्खु नाधिवासेति, नप्पजहति न विनोदेति न ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति, चरं पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो 'आतापी ओत्तापी सततं समितं आरद्धविरियो पहितत्तो' ति वुच्चति।

६. "ठितस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो ...पे०...।

७. "निसिन्नस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो उप्पज्जति कामवितक्को वा ब्यापादवितक्को वा विहिंसावितक्को वा। तं चे भिक्खु नाधिवासेति, पजहति विनोदेति [N.16] ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति, निसिन्नो पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो 'आतापी ओत्तापी सततं समितं आरद्धविरियो पहितत्तो' ति वुच्चति।

[B.321] ८. "सयानस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो जागरस्स उप्पज्जति कामवितक्को वा ब्यापादवितक्को वा विहिंसावितक्को वा। तं चे भिक्खु नाधिवासेति, पजहति [R.14] विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति, सयानो पि, भिक्खवे, भिक्खु जागरो एवंभूतो 'आतापी ओत्तापी सततं समितं आरद्धविरियो पहितत्तो' ति वुच्चति ति।

"चरं वा यदि वा तिट्ठं, निसिन्नो उद वा सयं।
यो वितक्कं वितक्केति, पापकं गेहनिस्सितं॥
"कुम्मग्गप्पटिपन्नो सो, मोहनेय्येसु मुच्छितो।
अभब्बो तादिसो भिक्खु, फुट्ठुं सम्बोधिमुत्तमं॥
"यो च चरं वा तिट्ठं वा, निसिन्नो उद वा सयं।
वितक्कं समयित्वान, वितक्कूपसमेरतो।
भब्बो सो तादिसो भिक्खु, फुट्ठुं सम्बोधिमुत्तमं" ति॥ ●

---

५. "चलते हुए भिक्षु को कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क उत्पन्न होते हैं। उनको यदि वह नहीं स्वीकार करता है, छोड़ देता है, नष्ट कर देता है; ऐसा भिक्षु, भिक्षुओ! 'प्रयत्नशील, पाप करने में लज्जालु एवं भय मानने वाला, उद्योगी एवं साधना में समर्थ' होता है।

६. "एक स्थान पर स्थित (खड़े) भिक्षु को भी कामवितर्क ...पूर्ववत्... समर्थ कहलाता है।

७. "एक स्थान पर बैठे हुए भिक्षु को भी कामवितर्क ...पूर्ववत्... समर्थ कहलाता है।

८. "सोकर जगे हुए भिक्षु को भी कामवितर्क ...पूर्ववत्... समर्थ कहलाता है। (ख)

"चलता हुआ, एक स्थान पर स्थित, एक स्थान बैठा हुआ भिक्षु पापमुक्त लोभनिःसृत वितर्क करता है॥

"वह कुमार्ग पर चलता हुआ मुग्ध होने योग्य विषयों में मूर्च्छित होता रहता है, ऐसा भिक्षु उत्तम सम्बोधि प्राप्त करने में असमर्थ होता है॥

"परन्तु, जो भिक्षु चलता, ठहरता, बैठता तथा सोकर जागता हुआ भिक्षु उत्पन्न वितर्कों को शान्त करता हुआ इन वितर्कों को शान्त करने में सफल हो जाता हैं; ऐसा भिक्षु ही उस उत्तम सम्बोधि को प्राप्त करने में समर्थ होता है॥" ●

२. सीलसुत्तं : १. ''सम्पन्नसीला, भिक्खवे, विहरथ सम्पन्नपातिमोक्खा, पातिमोक्खसंवरसंवुता विहरथ आचारगोचरसम्पन्ना अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्साविनो। समादाय सिक्खथ सिक्खापदेसु। सम्पन्नसीलानं वो, भिक्खवे, विहरतं सम्पन्नपातिमोक्खानं पातिमोक्खसंवरसंवुतानं विहरतं आचारगोचरसम्पन्नानं अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावीनं समादाय सिक्खतं सिक्खापदेसु किमस्स उत्तरि करणीयं!

२. ''चरतो चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो अभिज्झा... ब्यापादो विगतो होति, थीनमिद्धं... उद्धच्चकुक्कुच्चं... विचिकिच्छा पहीना होति, आरद्धं होति विरियं असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो आरद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं, चरं पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो 'आतापी ओत्तापी सततं समितं आरद्धविरियो पहितत्तो' ति वुच्चति।

३. ''ठितस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो अभिज्झा... ब्यापादो विगतो [N.17] होति, थीनमिद्धं... उद्धच्चकुक्कुच्चं... विचिकिच्छा पहीना होति, आरद्धं होति विरियं असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं, ठितो पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो 'आतापी ओत्तापी सततं समितं आरद्ध- [B.322] विरियो पहितत्तो' ति वुच्चति।

४. ''निसिन्नस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो अभिज्झा... ब्यापादो विगतो होति, थीनमिद्धं... उद्धच्चकुक्कुच्चं... विचिकिच्छा पहीना होति, आरद्धं होति विरियं असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं, निसिन्नो पि, भिक्खवे, भिक्खु एवंभूतो 'आतापी ओत्तापी सततं समितं आरद्धविरियो पहितत्तो' [R.15] ति वुच्चति।

---

२. शीलसूत्र : : चतुर्विध भिक्षु

१. ''भिक्षुओ! शील (सदाचार) का पालन करो। प्रातिमोक्ष (भिक्षु नियमों) का पालन करो। इस प्रातिमोक्ष कवच से आवृत होकर आचार-गोचरयुक्त रहते हुए, छोटे से छोटे प्रमाद से भी भय मानते हुए साधनारत रहो। गुरुमुख से शिक्षा ग्रहण कर उसका अभ्यास करो। भिक्षुओ! तुम यदि शीलसम्पन्न एवं प्रातिमोक्षयुक्त रहते हुए, प्रातिमोक्ष-कवच से आवृत होकर आचार गोचर सम्पन्न रहते हुए तथा छोटे से छोटे प्रमाद से भी भय मानते हुए साधना करते रहोगे तो, भिक्षुओ! इससे आगे तुम्हारा कोई क्या कर्तव्य शेष रह जायगा!

२. ''भिक्षुओ! जिस किसी चारिका करते हुए भिक्षु का लोभ एवं द्वेष विनष्ट हो जाता है, स्त्यानमृद्ध... औद्धत्य कौकृत्य... विचिकित्सा प्रहीण हो जाती है, आरब्धवीर्य एवं स्मृतिमान् भिक्षु निश्चित लक्ष्य तक पहुँचे विना नहीं रुकता, ऐसा भिक्षु 'प्रयासरत, पाप करने में भय एवं लज्जा मानने वाला, सर्वथा उद्योगरत एवं साधनारत' कहलाता है।

३. ''भिक्षुओ! जिस किसी एक जगह ठहरे हुए भिक्षु का लोभ एवं द्वेष... पूर्ववत्... सर्वथा उद्योगरत एवं साधनारत (प्रहितात्मा) कहलाता है।

५. "सयानस्स चे पि, भिक्खवे, भिक्खुनो जागरस्स अभिज्झा... ब्यापादो विगतो होति, थीनमिद्धं... उद्धच्चकुक्कुच्चं... विचिकिच्छा पहीना होति, आरद्धं होति विरियं असल्लीनं, उपट्ठिता सति असम्मुट्ठा, पस्सद्धो कायो असारद्धो, समाहितं चित्तं एकग्गं, सयानो पि, भिक्खवे, भिक्खु जागरो एवंभूतो 'आतापी ओत्तापी सततं समितं आरद्धविरियो पहितत्तो' ति वुच्चती ति।

"यतं चरे यतं तिट्ठे, यतं अच्छे यतं सये।
यतं सम्मिञ्जये भिक्खु, यतमेनं पसारये॥
"उद्धं तिरियं अपाचीनं, यावता जगतो गति।
समवेक्खिता च धम्मानं, खन्धानं उदयब्बयं॥
"चेतोसमथसामीचिं, सिक्खमानं सदा सतं।
सततं पहितत्तो ति, आहु भिक्खुं तथाविधं" ति॥ ●

३. पधानसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, सम्मप्पधानानि। कतमानि चत्तारि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं [N.18] पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; अनुप्पन्नानं [B.323] कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति

---

४. "भिक्षुओ! जिस किसी बैठे हुए भिक्षु का लोभ एवं व्यापाद... पूर्ववत्... सर्वथा उद्योगरत एवं प्रहितात्मा कहलाता है।

५. "भिक्षुओ! जिस किसी सोकर जागे हुए भिक्षु का लोभ एवं द्वेष ...पूर्ववत्... सर्वथा उद्योगरत एवं प्रहितात्मा कहलाता है॥

"भिक्षु को चलते हुए भी, खड़े रहते हुए भी, बैठे रहते हुए भी, सोकर जगने पर भी अपनी साधना का विस्तार ही करना चाहिये॥

"ऊपर, नीचे, टेढ़े—आदि संसार की जितनी भी गतियाँ हैं उन सबके रहते हुए साधक भिक्षु को धर्मों का उत्पाद एवं विनाश के रूप में समीक्षण करते रहना चाहिये॥

"जो साधक निरन्तर अपने चित्त की शान्ति (स्थिरता=एकाग्रता) को भली भाँति सज्जनों से सीखता रहता है वह ऐसा साधक 'सतत प्रहितात्मा' (निरन्तर साधनाभ्यासरत) कहलाता है॥" ●

३. प्रधानसूत्र : : चार सम्यक्प्रधान

१. "भिक्षुओ! ये चार सम्यक्प्रधान (साधना-पूर्ति का भली भाँति प्रयत्न) कहलाते हैं। कौन से चार?

(१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों को न उत्पन्न होने देने के लिये दृढ़ सङ्कल्प करता है, तदर्थ प्रयास करता है, तदर्थ चित्त को एकाग्र करता है, प्रयत्न करता है। (२) उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के प्रहाण (नाश) हेतु दृढ़ सङ्कल्प करता है ...पूर्ववत्... प्रयत्न करता है। (३) अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद हेतु दृढ सङ्कल्प करता है

पदहति; उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि सम्मप्पधानानी ति।

"सम्मप्पधाना मारधेय्याभिभूता,
ते असिता जातिमरणभयस्स पारगू।
ते तुसिता जेत्वा मारं सवाहिनिं ते अनेजा,
सब्बं नमुचिबलं उपातिवत्ता ते सुखिता" ति॥ ●

४. संवरसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, पधानानि। कतमानि चत्तारि? [R.16] संवरप्पधानं, पहानप्पधानं, भावनाप्पधानं, अनुरक्खणाप्पधानं। कतमं च, भिक्खवे, संवरप्पधानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति चक्खुन्द्रियं, चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा... घानेन गन्धं घायित्वा... जिव्हाय रसं सायित्वा... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही, यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विरहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति, रक्खति मनिन्द्रियं, मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, संवरप्पधानं।

...पूर्ववत्... प्रयत्न करता है। (४) तथा उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिरता तथा विनष्ट न होने देने के लिये, उनकी वृद्धि एवं विपुलता के लिये की जानेवाली साधना का मन बनाता है, तदर्थ प्रयास करता है... पूर्ववत्... प्रयत्न करता है।

"भिक्षुओ! ये कहलाते हैं—चार सम्यक्प्रधान।

"जिन साधकों ने मृत्युञ्जयी (कालजयी) सम्यक्प्रधानों का पूर्ण अभ्यास कर लिया है वे साधक जाति एवं मरण के भय का अन्त जानने वाले हो जाते हैं। ऐसे साधक सेनासहित मार को जीतकर तथा तृष्णारहित होकर मरणानन्तर तुषित (देव) लोक में वास करते हैं। वे समस्त सेनासहित मार को अतिक्रान्त कर सुखी हो जाते हैं॥" ●

४. संवरसूत्र : : चार प्रधान (अभ्यास)

१. "भिक्षुओ! ये चार **प्रधान** (योगाभ्यास हेतु प्रयत्न) होते हैं। कौन से चार? (१) संवरप्रधान, (२) प्रहाणप्रधान, (३) भावनाप्रधान, एवं (४) अनुरक्षणाप्रधान।

यहाँ, भिक्षुओ! **संवरप्रधान** कौन सा होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पादहेतु प्रयत्न करता है, श्रम करता है, चित्त को वश में करता है, उसे निगृहीत किये रखता है। भिक्षुओ! वह भिक्षु चक्षुरिन्द्रिय से किसी रूप को देखकर भी न उसके कारण से आकृष्ट होता है, न उसके आकार से ही कि कहीं यह मेरी अनिगृहीत चक्षुरिन्द्रिय के कारण इन पापमय अकुशल धर्मों का आवास न बन जाय, अत: वह अभिध्या एवं दौर्मनस्य आदि

२. ''कतमं च, भिक्खवे पहानप्पधानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नं कामवितक्कं नाधिवासेति पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति; उप्पन्नं ब्यापादवितक्कं ...पे०... उप्पन्नं विहिंसावितक्कं ...पे०... उप्पन्नुप्पन्ने पापके अकुसले धम्मे [N.19] नाधिवासेति पजहति विनोदेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, पहानप्पधानं।

३. ''कतमं च, भिक्खवे भावनाप्पधानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु सति-सम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सतं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गं भावेति... विरियसम्बोज्झङ्गं भावेति... पीतिसम्बोज्झङ्गं भावेति... उपेक्खासम्बोज्झङ्गं भावेति विवेकनिस्सितं विरागनिस्सितं निरोधनिस्सितं वोस्सग्गपरिणामिं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, भावनाप्पधानं।

[R.17] ४. ''कतमं च, भिक्खवे, अनुरक्खणाप्पधानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नं भद्दकं समाधिनिमित्तं अनुरक्खति अट्ठिकसञ्ञं पुळुवकसञ्ञं विनीलकसञ्ञं विच्छिद्दक-सञ्ञं उद्धुमातकसञ्ञं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, अनुरक्खणाप्पधानं। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि पधानानी ति।

पापधर्मों से अपनी चक्षुरिन्द्रिय को बचाता है, उस पर निग्रह करता है। वह श्रोत्र से शब्द सुनकर भी... घ्राण से गन्ध सूँघकर भी... जिह्वा से रस को चखकर भी... काया से स्प्रष्टव्य (स्पर्शयोग्य) विषयों को स्पर्श करके भी... मन से मनोधर्मों को जानकर भी उनके कारणों की ओर आकृष्ट नहीं होता, न उनके आकारों से ही आकृष्ट होता है कि कहीं यह मेरी अनिगृहीत मन इन्द्रिय के कारण इन पापमय अकुशल धर्मों का आवास न बन जाय, अतः वह उस (मन) इन्द्रिय को ऐसे पापमय धर्मों से बचाता है, उसपर निग्रह करता है। भिक्षुओ! यह 'संवरप्रधान' कहलाता है। (१)

२. और, भिक्षुओ! यह **प्रहाणप्रधान** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु उत्पन्न कामवितर्क... उत्पन्न व्यापादवितर्क... एवं उत्पन्न विहिंसावितर्क आदि सभी पापमय अकुशल धर्मों को छोड़ देता है, दूर हटा देता है, पृथक् कर देता है, या उनको पूर्णतः विनष्ट कर देता है। भिक्षुओ! यह 'प्रहाणप्रधान' कहलाता है। (२)

३. और, भिक्षुओ! **भावनाप्रधान** क्या कहलाता है? यहाँ कोई भिक्षु स्मृतिसम्बोध्यङ्ग की भावना करता है जो कि विवेकनिःसृत, वैराग्यनिःसृत एवं उत्सर्ग परिणाम वाला है। वह धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग की... वीर्यसम्बोध्यङ्ग की... प्रीतिसम्बोध्यङ्ग की... प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग की... समाधिसम्बोध्यङ्ग की... उपेक्षासम्बोध्यङ्ग की भावना करता है, जो कि विवेकनिःसृत एवं वैराग्यनिःसृत तथा उत्सर्ग परिणाम वाला है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—भावनाप्रधान। (३)

४. और, भिक्षुओ! **अनुरक्षणाप्रधान** कौन कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु समाधि के श्मशानयोग से उत्पन्न हुए कुशल कारणों की रक्षा करता है; जैसे—मृत शरीर के खुले अस्थिपञ्जर, मृत शरीर के सड़ जाने, नीला पड़ जाने, सड़-गल जाने, कीड़े पड़ जाने, फूल जाने आदि अशुभ कारणों को देखना। भिक्षुओ! यह कहा जाता है—अनुरक्षणाप्रधान। (४)

"संवरो च पहानं च, भावना अनुरक्खणा।
एते पहाना चत्तारो, देसितादिच्चबन्धुना।
येहि भिक्खु इधातापी, खयं दुक्खस्स पापुणे" ति॥

५. पञ्ञतिसुत्तं : १. "चतस्सो इमा, भिक्खवे, अग्गपञ्ञत्तियो। कतमा चतस्सो? एतदग्गं, भिक्खवे, अत्तभावीनं यदिदं—राहु असुरिन्दो। एतदग्गं, भिक्खवे कामभोगीनं यदिदं—राजा मन्धाता। एतदग्गं, भिक्खवे, आधिपतेय्यानं यदिदं—मारो पापिमा। सदेवके, भिक्खवे, लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय तथागतो अग्गमक्खायति अरहं सम्मासम्बुद्धो। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो अग्गपञ्ञत्तियो ति।

"राहुग्गं अत्तभावीनं, मन्धाता कामभोगिनं।
मारो आधिपतेय्यानं, इद्धिया यससा जलं॥
"उद्धं तिरियं अपाचीनं, यावता जगतो गति। [N.20]
सदेवकस्स लोकस्स, बुद्धो अग्गो पवुच्चती" ति॥

६. सोखुम्मसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, सोखुम्मानि। कतमानि चत्तारि? इध, भिक्खवे, भिक्खु रूपसोखुम्मेन समन्नागतो होति परमेन; तेन च रूपसोखुम्मेन अञ्ञं रूपसोखुम्मं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न समनुपस्सति; तेन च रूपसोखुम्मेन [B.325]

"भिक्षुओ! इस प्रकार, ये चार 'प्रधान' होते हैं।

"संवर, प्रहाण, भावना एवं अनुरक्षणा—इन चार प्रधानों का आदित्यबन्धु भगवान् तथागत ने उपदेश किया है। जिनके माध्यम से साधना करता हुआ साधक अपने सभी दु:खों का नाश करने में समर्थ हो सकता है॥"

५. प्रज्ञप्तिसूत्र : : चार अग्र प्रज्ञप्ति

१. "भिक्षुओ! ये चार **अग्र प्रज्ञप्तियाँ** (प्रमुखताएँ) हैं। कौन सी चार? आत्मभावी (शरीरी) प्राणियों में राहु सर्वप्रथम है। कामभोगियों में मान्धाता का नाम सर्वप्रथम है। आधिपत्य (स्वामित्व) में पापी मार का नाम सर्वप्रथम है। और, भिक्षुओ! मार, ब्रह्मा तथा श्रमणब्राह्मणों सहित समस्त प्रजा (जनसमूह) एवं देवमनुष्यों सहित सभी प्राणियों में तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध सर्वश्रेष्ठ हैं। इस तरह, भिक्षुओ! ये चार अग्र प्रज्ञप्ति कहलाती हैं।

"आत्मभावियों में राहु, कामभोगियों मान्धाता एवं आधिपत्य में मार का नाम प्रथम गणनीय है॥

"ऊपर, नीचे, आगे, पीछे जहाँ तक इस जगत् की गति है वहाँ तक इस समस्त संसार को अपने ऋद्धिभाव एवं यश से देदीप्यमान करते हुए इन समस्त देवताओं एवं मनुष्यों में तथागत बुद्ध ही सर्वश्रेष्ठ कहे जाते हैं॥"

६. रूपसौक्ष्म्यसूत्र : : चतुर्विध सौक्ष्म्य

१. "भिक्षुओ! ये चार सौक्ष्म्य (सूक्ष्मता=बारीकी) कहलाते हैं। कौन से चार?

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु उत्तम **रूपसौक्ष्म्य** से युक्त होता है। उसे अपने इस रूपसौक्ष्म्य

[R.18] अञ्ञं रूपसोखुम्मं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। वेदनासोखुम्मेन समन्नागतो होति परमेन; तेन च वेदनासोखुम्मेन अञ्ञं वेदनासोखुम्मं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न समनुपस्सति; तेन च वेदनासोखुम्मेन अञ्ञं वेदनासोखुम्मं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। सञ्ञासोखुम्मेन समन्नागतो होति परमेन; तेन च सञ्ञासोखुम्मेन अञ्ञं सञ्ञासोखुम्मं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न समनुपस्सति; तेन च सञ्ञासोखुम्मेन अञ्ञं सञ्ञासोखुम्मं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। सङ्खारसोखुम्मेन समन्नागतो होति परमेन; तेन च सङ्खारसोखुम्मेन अञ्ञं सङ्खारसोखुम्मं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न समनुपस्सति; तेन च सङ्खारसोखुम्मेन अञ्ञं सङ्खारसोखुम्मं उत्तरितरं वा पणीततरं वा न पत्थेति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि सोखुम्मानी ति।

''रूपसोखुम्मतं ञत्वा, वेदनानं च सम्भवं।
सञ्ञा यतो समुदेति, अत्थं गच्छति यत्थ च।
सङ्खारे परतो ञत्वा, दुक्खतो नो च अत्ततो॥
''स वे सम्मद्दसो भिक्खु, सन्तो सन्तिपदे रतो।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनिं'' ति॥

[B.326] ७. **पठमअगतिसुत्तं** : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, अगतिगमनानि। कतमानि चत्तारि? छन्दागतिं गच्छति, दोसागतिं गच्छति, मोहागतिं गच्छति, भयागतिं गच्छति— इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अगतिगमनानी ति।

से उत्तम किसी अन्य का रूपसौक्ष्म्य न दीखता है, न उससे अतिरिक्त किसी उत्तम रूपसौक्ष्म्य की वह कामना ही करता है। (१)

''कोई उत्तम **वेदनासौक्ष्म्य** से युक्त होता है। उसे अपने इस वेदनासौक्ष्म्य से उत्तम किसी अन्य का वेदनासौक्ष्म्य न दीखता है, न उससे अतिरिक्त किसी उत्तम वेदनासौक्ष्म्य की वह कामना ही करता है। (२)

''और कोई भिक्षु **संज्ञासौक्ष्म्य** से युक्त होता है। ...पूर्ववत्... कामना ही करता है। (३)

''तथा कोई भिक्षु **संस्कारसौक्ष्म्य** से युक्त होता है। ...पूर्ववत्... कामना ही करता है। भिक्षुओ! ये चार सौक्ष्म्य माने गये हैं। (४)

रूपों की सूक्ष्मता को जानकर, तथा वेदनाओं को उत्पत्ति जानकर, इसी प्रकार संज्ञाएँ जहाँ से उत्पन्न होती हैं तथा जहाँ विनष्ट होती हैं, तथा संस्कारों का परभाव, दुःखभाव एवं अनात्मभाव जानकर सम्यग्द्रष्टा भिक्षु सेनासहित पापी मार को पराजित कर शान्ति (निर्वाण) पद की साधना में लगा रहता है॥''

७. प्रथम अगतिसूत्र : : चार अगतिगमन

''भिक्षुओ! ये चार अगतिगमन (कुपथ पर चलना) कहे गये हैं। कौन से चार? (१) छन्द (अनुराग) वश कुपथगामी होना, (२) द्वेषवश कुपथगामी होना, (३) मोहवश कुपथगामी होना, तथा (४) भयवश कुपथगामी होना। भिक्षुओ! ये चार **अगतिगमन** हैं।

"छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं अतिवत्तति।
निहीयति तस्स यसो, काळपक्खेव चन्दिमा" ति॥ ●

८. दुतियअगतिसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, नागतिगमनानि। कतमानि चत्तारि? न छन्दागतिं गच्छति, न दोसागतिं गच्छति, न मोहागतिं गच्छति, न भयागतिं गच्छति—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि नागतिगमनानी ति।

"छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति। [N.21]
आपूरति तस्स यसो, सुक्कपक्खेव चन्दिमा" ति॥ ●

९. ततियअगतिसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, अगतिगमनानि। कतमानि चत्तारि? छन्दागतिं गच्छति, दोसागतिं गच्छति, मोहागतिं गच्छति, भयागतिं गच्छति—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अगतिगमनानि। [R.19]

२. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, नागतिगमनानि। कतमानि चत्तारि? न छन्दागतिं गच्छति, न दोसागतिं गच्छति, न मोहागतिं गच्छति, न भयागतिं गच्छति—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि नागतिगमनानी ति।

"छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं अतिवत्तति।
निहीयति तस्स यसो, काळपक्खेव चन्दिमा ति॥

"जो पुरुष अनुराग, द्वेष, मोह या भय के वश में होकर धर्म का अतिक्रमण करता है उसका यश उसी तरह क्षीण हो जाता है; जैसे कृष्णपक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ क्षीण होती जाती हैं॥" ●

८. द्वितीय अगतिसूत्र : : चार न अगतिगमन

"भिक्षुओ! ये चार न अगतिगमन (सत्पथगमन) होते हैं। कौन से चार? (१) जो न अनुरागवश, (२) न द्वेषवश, (३) न मोहवश, (४) और न भयवश कुपथगामी होते हैं; अपितु सत्पथ पर चलने के लिये ही दृढ़ सङ्कल्प रखते हैं। भिक्षुओ! ये चार **न अगतिगमन** होते हैं।

"जो पुरुष अनुराग, द्वेष, मोह या भयवश होकर भी धर्म का अतिक्रमण नहीं करता, कुपथगामी नहीं होता, अपितु सत्पथ पर ही चलता रहता है; ऐसे पुरुष का यश उसी प्रकार वृद्धिङ्गत होता रहता है, जैसे शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कलाएँ क्रमशः बढ़ती रहती हैं॥" ●

९. तृतीय अगतिसूत्र : : चार कुपथगमन

"भिक्षुओ! ये चार अगतिगमन होते हैं। कौन से चार? (१) जो अनुरागवश कुपथगमन करता है, (२) द्वेषवश..., (३) मोहवश..., (४) भयवश कुपथगमन करता है—भिक्षुओ! ये चार अगतिगमन होते हैं।

"तथा, भिक्षुओ! ये चार न अगतिगमन होते हैं। कौन से चार? (१) जो किसी अनुरागवश भी कुपथगामी नहीं होता, सत्पथ पर ही चलता रहता है; (२) द्वेषवश भी..., (३) मोहवश भी..., (४) भयवश भी कुपथगामी न होकर सत्पथ पर ही चलता रहता है—भिक्षुओ! ये चार न अगतिगमन होते हैं।

"जो पुरुष अनुरागवश ...पूर्ववत्... कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की कलाएँ क्षीण होती जाती हैं॥

"छन्दा दोसा भया मोहा, यो धम्मं नातिवत्तति।
आपूरति तस्स यसो, सुक्कपक्खेव चन्दिमा" ति॥ ●

१०. भत्तुद्देसकसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? छन्दागतिं गच्छति, दोसागतिं गच्छति, मोहागतिं गच्छति, भयागतिं गच्छति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

[N.22] २. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको यथाभतं निक्खित्तो एवं [B.327] सग्गे। कतमेहि चतूहि? न छन्दागतिं गच्छति, न दोसागतिं गच्छति, न मोहागतिं गच्छति, न भयागतिं गच्छति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे ति।

"ये केचि कामेसु असञ्ञता जना, अधम्मिका होन्ति अधम्मगारवा।
छन्दा दोसा मोहा च भया गामिनो, परिसाकसटो च पनेस वुच्चति॥
"एवं हि वुत्तं समणेन जानता, तस्मा हि ते सप्पुरिसा पसंसिया।
धम्मे ठिता ये न करोन्ति पापकं, न छन्दा न मोहा न भया च गामिनो।
"परिसाय मण्डो च पनेस वुच्चति, एवं हि वुत्तं समणेन जानता" ति॥

चरवग्गो दुतियो॥

"जो पुरुष अनुरागवश ...पूर्ववत्... शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ती जाती हैं॥" ●

१०. भक्तोद्देश्यकसूत्र : : पेट भरने के लिये जीनेवाले के चार धर्म

१. "भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष, जो केवल पेट भरने के लिये इस संसार में आया है, जैसे आया वैसे ही पुनः नरक में जा गिरेगा। किन चार धर्मों से? जो अनुरागवश... द्वेषवश... मोहवश... या भयवश कुपथगामी होता है, ऐसा भक्तोद्देश्यक (संसार में भात खाकर पेट भरने के उद्देश्य वाला) पुरुष, भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त होकर जैसा आया वैसा ही पुनः नरक में जा गिरता है।

२. "परन्तु, भिक्षुओ! जो पुरुष इस संसार में भात खाने के उद्देश्य से आया हुआ भी यदि इन चार धर्मों से युक्त नहीं होता तो वह सीधा स्वर्ग में ही जाता है। कौन से चार? वह न अनुरागवश... न द्वेषवश... न मोहवश... न भयवश कुपथगामी होता है (अपितु सत्पथ पर ही चलता रहता है)। वह इन चार धर्मों से युक्त होकर सीधा स्वर्ग में ही जाता है।

"जो कोई पुरुष कामभोगों में ही लिपटे रहते हैं, अधर्म में ही रुचि रखते हैं, धार्मिक कृत्यों में कोई श्रद्धा या गौरव नहीं रखते; अनुराग, द्वेष, मोह या भयवश कुपथ पर ही चलते रहते हैं, ऐसे पुरुष परिषत् (समाज) का कूड़ा करकट ही कहलाते हैं॥

"ऐसा ज्ञानी पुरुष (भगवान् बुद्ध) ने कहा है। अतः वे (उपर्युक्त में द्वितीय कोटि के) सत्पुरुष प्रशंसनीय ही होते हैं जो धर्मानुरूप आचरण करते हुए, पापकर्मों से दूर रहते हैं तथा

तस्सुद्दानं

चरं सीलं पधानानि, संवरं पञ्ञत्तिपञ्ञमं।
सोखुम्मं तयो अगती, भत्तुद्देसेन ते दसा ति॥ ●

३. उरुवेलवग्गो

१. पठमउरुवेलसुत्तं : १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं [R.20] विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. "एकमिदाहं, भिक्खवे, समयं उरुवेलायं विहरामि नज्जा [N.23, B.328] नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधे पठमाभिसम्बुद्धो। तस्स मय्हं, भिक्खवे, रहोगतस्स पटिसल्लीनस्स एवं चेतसो परिवितक्को उदपादि—'दुक्खं खो अगारवो विहरति अप्पतिस्सो। किं नु खो अहं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं' ति?

३. "तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'अपरिपूरस्स खो अहं सीलक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेव–

अनुराग, द्वेष, मोह या भय के वश होकर कुपथगामी नहीं होते; ऐसे पुरुष परिषद् के गौरव (अलङ्करण= निष्कृष्ट तत्त्व) ज्ञानी श्रमण (भगवान् बुद्ध) द्वारा कहे गये हैं॥" ●

चरवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. चर सूत्र, २. शील सूत्र, ३. प्रधान सूत्र, ४. संवर सूत्र, ५. प्रज्ञप्ति सूत्र, ६. रूपसौक्ष्म्य सूत्र, ७. प्रथम अगतिसूत्र, ८. द्वितीय अगतिसूत्र, ९. तृतीय अगतिसूत्र, १०. भक्तोद्देश्यक सूत्र॥ ●

३. ऊरुवेलवर्ग

१. प्रथम ऊरुवेलसूत्र : : चार उपासनीय धर्म

१. ऐसा मैंने सुना है (कि) एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ!" कहकर अपने सम्मुख बुलाया। भिक्षुओं ने "जी, भन्ते!" कहकर भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् ने उनको यह उपदेश किया—

२. एक समय, भिक्षुओ! मैं ऊरुवेला में नेरञ्जरा नदी के तट पर स्थित अजपाल वट वृक्ष के नीचे समाधिमग्न बैठा था, उस समय मुझको प्रथम अभिसम्बोधि प्राप्त ही हुई थी। भिक्षुओ! उस समय एकान्त में ध्यानस्थ मुझको यह विचार हुआ—"मेरी यह साधना दुःखमय है, अतः निन्दनीय

मनुस्साय अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा अत्तना सीलसम्पन्नतरं यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

'अपरिपूरस्स खो अहं समाधिक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा अत्तना समाधिसम्पन्नतरं, यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

'अपरिपूरस्स खो अहं पञ्ञाक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा अत्तना पञ्ञासम्पन्नतरं, यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं।

'अपरिपूरस्स खो अहं विमुत्तिक्खन्धस्स पारिपूरिया अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं। न खो पनाहं पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अञ्ञं समणं वा ब्राह्मणं वा अत्तना विमुत्तिसम्पन्नतरं, यमहं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं' ति।

[B.229] ४. ''तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'यन्नूनाहं य्वायं धम्मो मया अभिसम्बुद्धो तमेव धम्मं सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरेय्यं' ति।

५. ''अथ खो, भिक्खवे, ब्रह्मा सहम्पति मम चेतसा चेतोपरिवितक्कमञ्ञाय—[N.24] सेय्यथापि नाम बलवा पुरिसो सम्मिञ्जितं वा बाहं पसारेय्य, पसारितं वा बाहं सम्मिञ्जेय्य, एवमेव—ब्रह्मलोके अन्तरहितो मम पुरतो पातुरहोसि। अथ खो, भिक्खवे,

---

है, यह परिणाम में मेरे प्रतिकूल भी हो सकती है, अत: अब मैं किस श्रमण या ब्राह्मण का सत्कार एवं गौरव कर उसके आश्रय से (उसको गुरु मान कर) साधना करूँ?

३. ''तब, भिक्षुओ! मुझको यह विचार हुआ—''क्यों न मैं अपने अपूर्ण **शीलस्कन्ध** की पूर्ति के लिये किसी श्रमण या ब्राह्मण को गुरु मानकर उसका सत्कार कर साधना करूँ! परन्तु मैं देवताओं सहित इस लोक में किसी भी अन्य श्रमण या ब्राह्मण को स्वयं से बढ़कर शीलसम्पन्न नहीं मानता कि जिसे मैं गुरु मानकर, उसका सत्कार कर, उसके आश्रम से साधना करूँ? (क)

...अपूर्ण **समाधिस्कन्ध** की पूर्ति के लिये ...पूर्ववत्... साधना करूँ? (ख)

...अपूर्ण **प्रज्ञास्कन्ध** की पूर्ति के लिये ...पूर्ववत्... साधना करूँ? (ग)

...अपूर्ण **विमुक्तिस्कन्ध** की पूर्ति के लिये ...पूर्ववत्... साधना करूँ? (घ)

४. ''तब, भिक्षुओ! मुझको यह बात ध्यान में आयी—'तो क्यों न मैं मेरे द्वारा सम्बुद्ध धर्म का ही सत्कार करते हुए उसी को गुरु मानकर उसके ही सहारे से साधना करूँ।'

५. ''तब सहम्पति ब्रह्मा, अपने चित्त से मेरे इस चित्तविचार को जानकर, जैसे कोई बलवान् पुरुष अपनी सङ्कुचित बाहु को फैला देता है या फैली हुई बाहु को सङ्कुचित कर लेता है, उसी

ब्रह्मा सहम्पति एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणं जाणुमण्डलं पथवियं निहन्त्वा येनाहं तेनञ्जलिं पणामेत्वा मं एतदवोच—'एवमेतं भगवा, एवमेतं सुगत! ये पि ते, भन्ते, अहेसु अतीतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते पि भगवन्तो धम्मंयेव सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरिंसु; ये पि ते, भन्ते, भविस्सन्ति अनागतमद्धानं अरहन्तो सम्मासम्बुद्धा ते पि भगवन्तो धम्मंयेव सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरिस्सन्ति; भगवा पि, भन्ते, एतरहि अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मंयेव सक्कत्वा गरुं कत्वा उपनिस्साय विहरतू' ति। इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति। इदं वत्वा अथापरं एतदवोच—

'ये च अतीता सम्बुद्धा, ये च बुद्धा अनागता।
यो चेतरहि सम्बुद्धो, बहूनं सोकनासनो॥
'सब्बे सद्धम्मगरुनो, विहंसु विहरन्ति च।
अथो पि विहरिस्सन्ति, एसा बुद्धान धम्मता॥
'तस्मा हि अत्तकामेन, महत्तमभिकङ्खता।
सद्धम्मो गरुकातब्बो, सरं बुद्धान सासनं' ति॥

६. ''इदमवोच, भिक्खवे, ब्रह्मा सहम्पति। इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि। अथ ख्वाहं, भिक्खवे, ब्रह्मुनो च अज्झेसनं विदित्वा अत्तनो च पतिरूपं य्वायं धम्मो मया अभिसम्बुद्धो तमेव धम्मं सक्कत्वा गरुं कत्वा [B.330] उपनिस्साय विहासिं। यतो च खो, भिक्खवे, सङ्घो पि महत्तेन समन्नागतो, अथ मे सङ्घे पि गारवो'' ति॥ ●

प्रकार वह ब्रह्मलोक में अन्तर्हित (अदृश्य) होकर मेरे सम्मुख आकर उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर, अपना दक्षिण जानुमण्डल पृथ्वी पर टिका कर, मुझको प्रणाम कर यों बोला—'सुगत! भगवन्! आप जैसा चिन्तन कर रहे हैं, यही उचित है; क्योंकि आपसे पूर्व अतीत काल में जो बुद्ध हुए हैं उनने भी धर्म का सत्कार कर, उसका ही गुरुकार कर, उसके ही आश्रय से साधना की थी। आगे भविष्य में भी जो बुद्ध होंगे वे भी इसी प्रकार धर्म का सत्कार एवं गौरव कर उसके ही आश्रय से साधना करेंगे। भन्ते! अब आप ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध भी धर्म का सत्कार गुरुकार करते हुए उसके आश्रय से ही साधना करें।' वह ब्रह्मा सहम्पति मुझसे यों बोला। यह कहकर वह पुनः यों कहने लगा—

'' 'जो अतीत में बुद्ध हुए हैं, या जो भविष्य में बुद्ध होंगे, या वर्तमान में बहुदुःखभञ्जन आप भी—सभी इस सद्धर्म का सत्कार करते हुए, इसी को गुरु मानकर इसके आश्रय से साधना में तत्पर रहे, रहेंगे तथा आप भी रहें; क्योंकि सभी बुद्धों की यही धर्मता (प्रकृतिगत स्वभाव) है।'

'' 'अतः बुद्धों के आदेश को स्मरण करते हुए, अपना महत्त्व समझने वाले स्वाभिमानी (आत्मप्रेमी) पुरुषों को सद्धर्म का सत्कार एवं गौरव करना ही चाहिये॥'

६. ''भिक्षुओ! ब्रह्मा सहम्पति ने यह कहा। यह कहकर वह मुझको प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गया। तब भिक्षुओ! मैं ब्रह्मा के इन विचारों को अपने अनुकूल समझते हुए जो

[R.22] **२. दुतियउरुवेलसुत्तं** : १. "एकमिदाहं, भिक्खवे, समयं उरुवेलायं विहरामि नज्जा नेरञ्जराय तीरे अजपालनिग्रोधे पठमाधिसम्बुद्धो। अथ खो, भिक्खवे, सम्बहुला ब्राह्मणा जिण्णा वुद्धा महल्लका अद्धगता वयोअनुप्पत्ता येनाहं तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा मया सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं [N.25] निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो, भिक्खवे, ते ब्राह्मणा मं एतदवोचुं—'सुतं मेतं, भो गोतम—न समणो गोतमो ब्राह्मणे जिण्णे वुद्धे महल्लके अद्धगते वयोअनुप्पत्ते अभिवादेति वा पच्चुट्ठेति वा आसनेन वा निमन्तेती ति। तयिदं, भो गोतम, तथेव। न हि भवं गोतमो ब्राह्मणे जिण्णे वुद्धे महल्लके अद्धगते वयोअनुप्पत्ते अभिवादेति वा पच्चुट्ठेति वा आसनेन वा निमन्तेति। तयिदं, भो गोतम, न सम्पन्नमेवा' ति।

२. "तस्स मय्हं, भिक्खवे, एतदहोसि—'नयिमे आयस्मन्तो जानन्ति थेरं वा थेरकरणे वा धम्मे' ति। वुद्धो चे पि, भिक्खवे, होति आसीतिको वा नावुतिको वा वस्ससतिको वा जातिया। सो च होति अकालवादी अभूतवादी अनत्थवादी अधम्मवादी अविनयवादी, अनिधानवतिं वाचं भासिता अकालेन अनपदेसं अपरियन्तवतिं अनत्थसंहितं। अथ खो सो 'बालो थेरो' त्वेव सङ्ख्यं गच्छति।

३. "दहरो चे पि, भिक्खवे, होति युवा सुसुकाळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा। सो च होति कालवादी भूतवादी अत्थवादी धम्मवादी विनयवादी

धर्म मैंने अभिसम्बुद्ध किया था उसी धर्म का सत्कार एवं गुरुकार करते हुए उसके आधार पर मैने साधना की। अब क्योंकि सङ्घ को भी महत्त्व प्राप्त हो गया है अतः मैं सङ्घ का भी गौरव मानता हूँ॥" ●

२. द्वितीय ऊरुवेलसूत्र : : चार स्थविरकरण धर्म

१. "एक समय मैं, भिक्षुओ! ऊरुवेला की नेरञ्जरा नदी के किनारे अजपालन्यग्रोध के नीचे प्रथम सम्बोधि हेतु बैठा था। तब, भिक्षुओ! बहुत से बड़े बूढ़े जराजीर्ण ब्राह्मण मेरे पास आये। तथा वे कुशल मङ्गल प्रश्न कर एक ओर बैठ गये। भिक्षुओ! एक ओर बैठे उन लोगों ने मुझसे यह पूछा—'भो गौतम! हमने सुना है कि श्रमण गौतम बड़े बूढ़े जराजीर्ण पुराने ब्राह्मणों को अभिवादन प्रत्युत्थान आदि नहीं करते, न उनको आने पर बैठने को आसन ही देते हैं। क्या भो गौतम! हमारा यह सुना हुआ सत्य है! क्या आप श्रमण गौतम जराजीर्ण बड़े बूढ़े पुराने ब्राह्मणों को अभिवादन आदि नहीं करते? भो गौतम यह आपके लिये उचित है क्या?"

२. "भिक्षुओ! ब्राह्मणों की बात सुनकर मेरे मन में यह हुआ—'ये ब्राह्मण स्थविरों एवं स्थविरकरण धर्मों के विषय में कुछ नहीं जानते'; क्योंकि, भिक्षुओ! यदि कोई अस्सी, नब्बै या सौ वर्ष का वृद्ध हो, परन्तु वह अकालवादी, अभूतवादी, अनर्थवादी, अधर्मवादी, अविनयवादी हो तथा ऐसी वाणी बोलता हो जो असत्य अनर्थकारी एवं विना सिर पैर की हो, तो वह 'मूर्ख स्थविर' ही कहलाता है।

३. "भिक्षुओ! उधर कोई युवा, सुरूप, काले बालों वाला, पूर्ण युवावस्थासम्पन्न, नयी

निधानवतिं वाचं भासिता कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं। अथ खो सो 'पण्डितो थेरो' त्वेव सङ्खं गच्छति।

४."चत्तारोमे, भिक्खवे, थेरकरणा धम्मा। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु [B.331] वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु, बहुस्सुतो होति सुतधरो [R.23] सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा, चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो थेरकरणा धम्मा ति।"

"यो उद्धतेन चित्तेन, सम्फं च बहु भासति। [N.26]
असमाहितसङ्कप्पो, असद्धम्मरतो मगो।
आरा सो थावरेय्यम्हा, पापदिट्ठि अनादरो॥
"यो च सीलेन सम्पन्नो, सुतवा पटिभानवा।
सञ्ञतो धीरो धम्मेसु, पञ्ञायत्थं विपस्सति॥
"पारगू सब्बधम्मानं, अखिलो पटिभानवा।

अवस्था वाला हो, परन्तु यदि वह कालवादी, भूतवादी, अर्थवादी, धर्मवादी एवं विनयवादी है और साथ ही ऐसी वाणी भी बोलता है जो सत्य, अर्थकारी एवं उद्देश्यपरक हो तो भी वह 'पण्डित स्थविर' ही कहलाता है।

४. "भिक्षुओ! ये चार स्थविरकरण धर्म कहलाते हैं। कौन से चार? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलवान् होता है, प्रातिमोक्ष कवच से आवृत होकर आचार गोचर से सम्पन्न रहता हुआ छोटे से छोटे प्रमाद से भी भय मानता है। गुरुमुख से शिक्षाग्रहण कर उसका अभ्यास करता है। (२) बहुश्रुत होता है, श्रुत को धारण करने वाला तथा श्रुत को संग्रह करने वाला होता है। जो धर्म आदि मध्य तथा अन्त में कल्याण धर्म वाले हैं तथा सार्थक एवं परिशुद्ध धर्मसाधना के उपदेशक हैं, ऐसे धर्म उसके बाहुल्येन श्रुत होते हैं, मन से धारण किये होते हैं, तथा दृष्टि से भली भाँति प्रविष्ट हैं। (३) सुखसाधना वाले आभिचैतसिक चार ध्यानों का सहज तथा अत्यन्त लाभी होता है। (४) आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में जानकर साक्षात् कर साधना करता है। भिक्षुओ! ये चारों धर्म '**स्थविरकरण**' कहलाते हैं।

"जो उद्धत चित्त से बहुत प्रलाप करता रहता है, जो चञ्चल सङ्कल्प रखता है, असद्धर्म के लगा हुआ वह पशु (मृग) के समान हैं। वह पापदृष्टि एवं समाज में अनादृत है तथा स्थविरत्व से बहुत दूर है॥

"परन्तु जो शील से सम्पन्न है, श्रुतवान् है, प्रत्युत्पन्नमति है, इन्द्रियों से संयत है, धर्मों को

पहीनजातिमरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली॥
''तमहं वदामि थेरो ति, यस्स नो सन्ति आसवा।
आसवानं खया भिक्खु, सो थेरो ति पवुच्चती'' ति॥

३. लोकसुत्तं : १. ''लोको, भिक्खवे, तथागतेन अभिसम्बुद्धो। लोकस्मा तथागतो विसंयुत्तो। लोकसमुदयो, भिक्खवे, तथागतेन अभिसम्बुद्धो। लोकसमुदयो तथागतस्स पहीनो। लोकनिरोधो, भिक्खवे, तथागतेन अभिसम्बुद्धो। लोकनिरोधो [B.332] तथागतस्स सच्छिकतो। लोकनिरोधगामिनी पटिपदा, भिक्खवे, तथागतेन अभिसम्बुद्धा। लोकनिरोधगामिनी पटिपदा तथागतस्स भाविता।

२. ''यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समारकस्स सब्रह्मकस्स सस्समण-[R.24] ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा, सब्बं तं तथागतेन अभिसम्बुद्धं। तस्मा 'तथागतो' ति वुच्चति।

३. ''यं च, भिक्खवे, रत्तिं तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति यं च रत्तिं अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बायति, यं एतस्मिं अन्तरे भासति लपति निद्दिसति सब्बं तं तथेव होति, नो अञ्ञथा। तस्मा 'तथागतो' ति वुच्चति।

यथाविधि धारण किये हुए हैं, तथा प्रज्ञा के लिये विपश्यना (अन्तर्दृष्टि) प्राप्ति के लिये साधना करता है॥

''जो सभी धर्मों के अन्त तक पहुँचा हुआ है, सर्वथा प्रत्युत्पन्नमति है, जिसकी जन्म-मरण परम्परा क्षीण हो चुकी है तथा जो धर्मसाधना करता हुआ ज्ञानी बन चुका है॥

''ऐसे साधक को मैं 'स्थविर' कहता हूँ, जिसके चित्तविकार सर्वथा नष्ट हो चुके हैं। अत: आश्रवों के क्षय से ऐसा भिक्षु 'स्थविर' कहलाता है॥''

३. लोकसूत्र : : 'लोक' एवं 'तथागत' का निरूपण

१. ''भिक्षुओ! तथागत ने **लोक** को यथार्थत: जान लिया है, अतएव वे लोक से सभी सम्बन्ध तोड़ चुके हैं। **लोकसमुदय** को भी तथागत ने यथार्थत: जान लिया है, अत: तथागत का लोकसमुदय भी प्रहीण हो चुका है। **लोकनिरोध** को भी तथागत ने यथार्थत: जान लिया है, अत: तथागत ने लोकनिरोध को साक्षात् कर लिया है। इसी प्रकार, तथागत ने **लोकनिरोधगामी मार्ग** भी जान लिया है, अत: तथागत इस मार्ग की भी साधना पूर्ण कर चुके हैं।

२. ''भिक्षुओ! देवलोक सहित इस लोक के मार, ब्रह्मा तथा श्रमण ब्राह्मणों सहित देवता एवं मनुष्यों ने जो कुछ देखा, सुना, स्मरण किया, जाना, पाया, खोजा या मन विचारा; तथागत वह सब जान चुके हैं, अत: वे 'तथागत' कहलाते हैं।

३. ''भिक्षुओ! तथागत ने जिस रात्रि में अनुपम (अद्वितीय) सम्यक्सम्बोधि प्राप्त की, तथा जिस रात्रि में उनने अनुपादिशेष निर्वाणधातु से परिनिर्वाण प्राप्त किया—इन दोनों रात्रियों के बीच के समय में जो कुछ भी कहा, संवाद किया, निर्देश किया, वह सब कुछ वैसे ही (यथार्थ) हुआ, अन्यथा नहीं। अत: वे 'तथागत' कहलाते हैं।

४. ''यथावादी, भिक्खवे, तथागतो तथाकारी, यथाकारी तथावादी। इति यथावादी तथाकारी, यथाकारी तथावादी। तस्मा 'तथागतो' ति वुच्चति।

५. ''सदेवके, भिक्खवे, लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय तथागतो अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती। तस्मा [N.27] 'तथागतो' ति वुच्चति।

''सब्बं लोकं अभिञ्ञाय, सब्बं लोके यथातथं।
सब्बं लोकं विसंयुत्तो, सब्बलोके अनूपयो॥
''स वे सब्बाभिभू धीरो, सब्बगन्थप्पमोचनो।
फुट्ठस्स परमा सन्ति, निब्बानं अकुतोभयं॥
''एस खीणासवो बुद्धो, अनीघो छिन्नसंसयो।
सब्बकम्मक्खयं पत्तो, विमुत्तो उपधिसङ्खये॥
''एस सो भगवा बुद्धो, एस सीहो अनुत्तरो।
सदेवकस्स लोकस्स, ब्रह्मचक्कं पवत्तयी॥
''इति देवा मनुस्सा च, ये बुद्धं सरणं गता।
सङ्गम्म तं नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं॥
''दन्तो दमयतं सेट्ठो, सन्तो समयतं इसि। [B.333]

---

४. ''भिक्षुओ! तथागत जैसा बोलते हैं वैसा करते हैं या जैसा करते हैं वैसा ही कहते हैं। क्योंकि वे जैसा बोलते हैं वैसा ही करते हैं, या जैसा करते हैं वैसा ही बोलते हैं अत: वे 'तथागत' कहलाते हैं।

५. ''भिक्षुओ! तथागत लोक में मार, ब्रह्मा सहित एवं श्रमण ब्राह्मणों सहित देवता और मनुष्यों में सर्वजेता हैं, किसी से भी पराजित होनेवाले नहीं हैं, यथार्थवक्ता एवं स्वतन्त्र हैं अत: वे 'तथागत' कहलाते हैं।

''वे सब लोकों को जानकर, सभी लोकों की वास्तविकता (यथातथ=जैसा है वैसा) समझकर सभी लोकों से पृथक् (विसंयुक्त) हो चुके हैं तथा सभी लोकों में निरासक्त रहते हैं॥

''वे सबको जीतने वाले हैं। सभी ग्रन्थियों (बन्धनों) को खोलने वाले हैं। वे निर्वाण का साक्षात्कार कर अनुपम शान्ति प्राप्त कर चुके हैं। उनको अब कहीं किसी से भय नहीं है॥

''ये क्षीणाश्रव बुद्ध (ज्ञानी) हो चुके हैं, सर्वथा दु:खमुक्त हैं, ये सभी संशयों से मुक्ति पा चुके हैं, इनके सभी कर्मों का क्षय हो चुका है, आसक्ति-नाश के कारण विमुक्त हो चुके हैं।

''ये बुद्ध भगवान् (छह ऐश्वर्यों से सम्पन्न) हैं। यह लोक में सिंह के समान बलशाली हैं। इनने देवताओं सहित इस समस्त लोक पर अनुकम्पा कर अद्वितीय धर्मचक्र का प्रवर्तन किया है॥

''इस कारण, सभी देवता एवं मनुष्य, जो बुद्ध की शरण में जा चुके हैं, उन महान् निर्भय सन्त को, सम्मुख आकर, प्रणाम करते हैं॥

''वे दमन करने वालों में श्रेष्ठ हैं अत: 'दन्त' (संयत) कहलाते हैं। तथा शान्ति की उपासना

मुत्तो मोचयतं अग्गो, तिण्णो तारयतं वरो॥
"इति हेतं नमस्सन्ति, महन्तं वीतसारदं।
सदेवकस्मिं लोकस्मिं, नत्थि मे पटिपुग्गलो" ति॥

४. काळकारामसुत्तं : १. एकं समयं भगवा साकेते विहरति काळकारामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

[R.25] २. "यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समारकस्स सब्रह्मकस्स सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा, तमहं जानामि।

३. "यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समारकस्स सब्रह्मकस्स सस्समण-ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा, तमहं अब्भञ्ञासिं। तं तथागतस्स विदितं, तं तथागतो न उपट्ठासि।

४. "यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समारकस्स सब्रह्मकस्स सस्समण-ब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय दिट्ठं सुतं मुतं विञ्ञातं पत्तं परियेसितं अनुविचरितं मनसा, तमहं न जानामी ति वदेय्यं, तं ममस्स मुसा।"

५. "यं, भिक्खवे, ...पे०... तमहं जानामि च न च जानामी ति वदेय्यं, तम्पस्स तादिसमेव।

में ऋषिभूत हैं, अत: 'सन्त' कहलाते हैं। वे मुक्ति देनेवालों में प्रमुख हैं अत: 'मुक्त' कहलाते हैं। वे संसार सागर से पार कराने वालों में श्रेष्ठ हैं, अत: 'तीर्ण' कहलाते हैं॥

इसलिये भी समस्त देवता एवं मनुष्य मुझ महान् निर्भय को प्रणाम करेंगे कि इस संसार में मेरा कोई प्रतिद्वन्द्वी (समानता करनेवाला) नहीं है॥"

४. काळकारामसूत्र : : तथागत साक्षात्कृत चार धर्मों के वक्ता

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) साकेत प्रदेश के काळकाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने "भिक्षुओ" सम्बोधन से सभी भिक्षुओं को अपने सम्मुख बुलाया। समस्त भिक्षु, भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर, भगवान् के सम्मुख आये। भगवान् ने यह उपदेश आरम्भ किया—

२. "भिक्षुओ! देवलोकसहित इस लोक में स्थित मार, ब्रह्मासहित श्रमण एवं ब्राह्मण प्रजाजन द्वारा स्वकीय चित्त से जो कुछ भी दृष्ट, श्रुत, स्मृत एवं विज्ञात, प्राप्त, परीष्ट, या विचारित विषय हैं; मैं उन सबको अपने चित्त से जानता हूँ।

३. "भिक्षुओ! देवलोकसहित ...पूर्ववत्... उनको मैं अपने चित्त से पहले ही जान चुका था। (परन्तु) उनको तथागत (मैं)ने कोई महत्त्व नहीं दिया।

४. "भिक्षुओ! देवलोक सहित ...पूर्ववत्... 'मैं नहीं जानता'—यदि मैं ऐसा कहूँ तो यह मेरा असत्यभाषण होगा।

६. ''यं, भिक्खवे ...पे०... तमहं नेव जानामि न न जानामी ति वदेय्यं, तं ममस्स कलि।

७. ''इति खो, भिक्खवे, तथागतो दट्ठा दट्ठब्बं, दिट्ठं न मञ्ञति, अदिट्ठं न मञ्ञति, दट्ठब्बं न मञ्ञति, दट्ठारं न मञ्ञति; सुत्वा सोतब्बं, सुतं न मञ्ञति, असुतं न [B.334] मञ्ञति, सोतब्बं न मञ्ञति, सोतारं न मञ्ञति; मुत्वा मोतब्बं मुतं न मञ्ञति, अमुतं न मञ्ञति, मोतब्बं न मञ्ञति, मोतारं न मञ्ञति; विञ्ञत्वा विञ्ञातब्बं, विञ्ञातं न मञ्ञति, अविञ्ञातं न मञ्ञति, विञ्ञातब्बं न मञ्ञति, विञ्ञातारं न मञ्ञति। इति खो, भिक्खवे, तथागतो दिट्ठसुतमुतविञ्ञातब्बेसु धम्मेसु तादीयेव तादी। तम्हा च पन तादिम्हा अञ्ञो तादी उत्तरितरो वा नत्थी ति वदामी ति।

''यं किञ्चि दिट्ठं व सुतं मुतं वा, अज्झोसितं सच्चमुतं परेसं॥
न तेसु तादी सयसंवुतेसु, सच्चं मुसा वा पि परं दहेय्य॥
''एतं च सल्लं पटिकच्च दिस्वा, अज्झोसिता यत्थ पजा विसत्ता॥
''जानामि पस्सामि तथेव एतं, अज्झोसितं नत्थि तथागतानं'' ति॥ [R.26]●

५. **ब्रह्मचरियसुत्तं** : १. ''नयिदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं वुस्सति जनकुहनत्थं, न

---

५. ''भिक्षुओ! देवलोकसहित ...पूर्ववत्... यदि मैं ऐसा कहूँ—'मैं जानता हूँ या नहीं जानता' तो यह भी वैसा (असत्यभाषण) ही होगा।

६. ''भिक्षुओ! देवलोकसहित ...पूर्ववत्... 'उसको मैं नहीं जानता या उसे नहीं नहीं जानता' यह कहना भी मेरे द्वारा किया गया 'पाप' (कलि) ही कहलायगा।

७. ''भिक्षुओ! तथागत (क) 'देखकर', 'देखना चाहिये' या 'देखा गया'—इन तीनों ही बातों को नहीं मानते; इसी प्रकार, अदृष्ट, अद्रष्टव्य एवं द्रष्टा—तीनों को भी नहीं मानते। (ख) 'सुनकर', 'सुनना चाहिये', या 'सुना गया'—इन तीनों बातों को भी नहीं मानते; न अश्रुत, अश्रोतव्य एवं श्रोता को ही मानते हैं। (ग) 'स्मरण कर', 'स्मरण करना चाहिये' या 'स्मरण किया गया' इन बातों को भी नहीं मानते हैं, और न अस्मृत, अस्मर्तव्य या अस्मर्ता को ही मानते हैं। (घ) जानकर 'जानना चाहिये' या 'जाना गया'—इनको नहीं मानते, और न अविज्ञात, विज्ञातव्य या विज्ञाता को ही मानते हैं। इस प्रकार भिक्षुओ! तथागत दृष्ट, श्रुत, स्मृत एवं विज्ञात—इन चारों धर्मों के विषय में ये जैसे हैं उनको वैसा ही कहने वाले हैं। इस 'वैसा ही कहनेवाला' के कारण लोक में तथागत को छोड़कर उनसे बढ़कर अन्य कोई उत्तम 'वैसा कहने वाला' नहीं है—ऐसा मैं कहता हूँ।

''लोक में दूसरों के द्वारा जो भी दृष्ट, श्रुत, स्मृत या विज्ञात धर्म हैं, ऐसे इन स्वयं संयत धर्मों में तथागत दूसरों को सत्य या मृषा (असत्य) कहकर भ्रम में नहीं डालते॥

''मैं इस दोष (शल्य) की वास्तविकता को पहले ही समझकर, जिसमें प्रजा (जनता) आसक्त होकर उलझी हुई है, जैसा है वैसा ही जानता हूँ, देखता हूँ; क्योंकि मुझ को किसी विषय में कोई भ्रम (कल्पना) नहीं होता॥'' ●

जनलपनत्थं, [N.29] न लाभसक्कारसिलोकानिसंसत्थं, न इतिवादप्पमोक्खानिसंसत्थं, न 'इति मं जनो जानातू' ति। अथ खो इदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं वुस्सति संवरत्थं पहानत्थं विरागत्थं निरोधत्थं ति।

''संवरत्थं पहानत्थं, ब्रह्मचरियं अनीतिहं।
अदेसयि सो भगवा, निब्बानोगधगामिनं।
एस मग्गो महन्तेहि, अनुयातो महेसिभि॥
''ये च तं पटिपज्जन्ति, यथा बुद्धेन देसितं।
दुक्खस्सन्तं करिस्सन्ति, सत्थुसासनकारिनो'' ति॥

६. कुहसुत्तं : १. ''ये ते, भिक्खवे, भिक्खू कुहा थद्धा लपा सिङ्गी उन्नळा [B.335] असमाहिता, न मे ते, भिक्खवे, भिक्खू मामका। अपगता च ते, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मा धम्मविनया, न च ते इमस्मिं धम्मविनये बुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जन्ति। ये च खो ते, भिक्खवे, भिक्खू निक्कुहा निल्लपा धीरा अत्थद्धा सुसमाहिता, ते खो मे, भिक्खवे, भिक्खू मामका। अनपगता च ते, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मा धम्मविनया। ते च इमस्मिं धम्मविनये बुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जन्ती ति।

''कुहा थद्धा लपा सिङ्गी, उन्नळा असमाहिता।
न ते धम्मे विरूहन्ति, सम्मासम्बुद्धदेसिते॥

---

५. ब्रह्मचर्यसूत्र : : चार बातों के लिये धर्मसाधना का निषेध

१. ''भिक्षुओ! यह धर्मसाधना (१) न जनता को अपना ढोंग (पाषण्ड) दिखाने के लिये, (२) न जनता की मिथ्यास्तुति (खुशामद=लपन) के लिये, (३) न अपने किसी लाभ सत्कार या यश के लिये, (४) न जनता में अपनी विद्या आदि की प्रशस्ति के लिये कि 'जनता मुझको ऐसा जाने'—के लिये है। अपितु, भिक्षुओ! यह धर्मसाधना १. अपने पापमय अकुशल धर्मों पर संयम के लिये, २. नाश के लिये, ३. संसार से वैराग्य के लिये एवं ४. पापधर्मों के निरोध के लिये है।

''भगवान् तथागत ने स्वयं साक्षात्कृत यह धर्मदेशना पापमय धर्मों के संवर एवं प्रहाण के लिये की है, जो कि गम्भीर निर्वाण की ओर साधक को ले जाती है। तथागत द्वारा उपदिष्ट इस मार्ग का बड़े बड़े ऋषि-मुनियों ने भी अनुसरण किया है॥

जो साधक इस बुद्धोपदिष्ट मार्ग से साधना करेंगे, वे तथागत के अनुशासन में रहते हुए, निश्चय ही, एक दिन अपने दुःखों का अन्त कर लेंगे॥''

६. कुहसूत्र : : ढोंगी भिक्षु 'भिक्षु' कहलाने के अयोग्य

१. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु कुह (ढोंगी), स्तब्ध (किंकर्तव्यविमूढ़), लपक (खुशामदी), शृङ्गी (सुवर्ण रजतादि के परिग्रही), अभिमानी (उद्धत) एवं चञ्चलचित्त हैं, वे, भिक्षुओ! भिक्षु मेरे (तथागत के) कहलाने योग्य नहीं हैं। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु इस सङ्घ से निकाल देने योग्य हैं; क्योंकि वे इस सङ्घ (धर्मविनय) कोई वृद्धि या उन्नति नहीं कर सकते।

''और, भिक्षुओ! जो भिक्षु कुह (ढोंगी) ...चञ्चल चित्त वाले नहीं हैं, वे, भिक्षुओ! भिक्षु मेरे

"निक्कुहा निल्लपा धीरा, अत्थद्धा सुसमाहिता।
ते वे धम्मे विरूहन्ति, सम्मासम्बुद्धदेसिते" ति॥

७. सन्तुट्ठिसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, अप्पानि च सुलभानि च, तानि च अनवज्जानि। कतमानि चत्तारि? पंसुकूलं, भिक्खवे, चीवरानं अप्पं च सुलभं च, तं च अनवज्जं। पिण्डियालोपो, भिक्खवे, भोजनानं अप्पं च सुलभं च, तं च [R.27] अनवज्जं। रुक्खमूलं, भिक्खवे, सेनासनानं अप्पं च सुलभं च, तं च अनवज्जं। [N.30] पूतिमुत्तं, भिक्खवे, भेसज्जानं अप्पं च सुलभं च, तं च अनवज्जं। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अप्पानि च सुलभानि च, तानि च अनवज्जानि। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु अप्पेन च तुट्ठो होति सुलभेन च, इदमस्साहं अञ्ञतरं सामञ्ञङ्गं ति वदामी ति।

"अनवज्जेन तुट्ठस्स, अप्पेन सुलभेन च।
न सेनासनमारब्भ, चीवरं पानभोजनं।
विघातो होति चित्तस्स, दिसा नप्पटिहञ्ञति॥
"ये चस्स धम्मा अक्खाता, सामञ्ञस्सानुलोमिका।
अधिग्गहिता तुट्ठस्स, अप्पमत्तस्स सिक्खतो" ति॥

(तथागत के) हैं। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु इस सङ्घ में रखने योग्य हैं; क्योंकि वे इस धर्मविनय (सङ्घ) की वृद्धि एवं उन्नति ही करेंगे।

"ऐसे भिक्षु इस तथागतोपदिष्ट धर्मविनय में कथमपि रखने योग्य नहीं हैं जो ढोंगी, किङ्कर्तव्यविमूढ, लपक, सुवर्ण रजतादि के परिग्रही, उद्धत एवं चञ्चलचित्त हैं॥

"परन्तु जो भिक्षु उपर्युक्त दोषों से रहित हैं, प्रयोजन (निर्वाणप्राप्ति) के प्रति सावधान हैं, संयतचित्त हैं, वे इस तथागतोपदिष्ट धर्म की वृद्धि एवं उन्नति में सहायक ही होंगे॥"

७. सन्तुष्टिसूत्र : : ये चार निर्दोष धर्म सुलभ होते हैं

"भिक्षुओ! ये चार धर्म अल्प होते हुए भी सुलभ हैं, तथा ये निर्दोष (विद्वज्जन प्रशंसनीय) हैं। कौन से चार? (१) पांशुकूल (गलियों में पड़े हुए फटे पुराने वस्त्र) भिक्षुओ! अल्प व्ययसाध्य भी हैं, सुलभ भी हैं तथा निर्दोष भी। (२) प्रत्येक घर से माँगी हुई भिक्षा (का भोजन) अल्प (साधनसाध्य) भी है, सुलभ भी है तथा निर्दोष भी। (३) वृक्षों के नीचे सोना अल्प (साधनसाध्य) भी है, सुलभ भी है तथा निर्दोष भी। (४) हर्रे आदि ओषधियों से भावित गोमूत्र भी अल्पव्ययसाध्य एवं सुलभ भी है तथा निर्दोष भी है। भिक्षुओ! ये चारों वस्तुएँ अल्प मात्रा में भी भिक्षु का कार्य सम्पन्न कर देती हैं, सुलभ भी होती हैं तथा विद्वानों द्वारा प्रशंसाप्राप्त भी हैं। क्योंकि, भिक्षुओ! इन वस्तुओं के अल्पमात्रा में होने पर भी कार्य सम्पन्न हो जाता है, वे सर्वत्र सुलभ भी हैं अत: मैं इनमें से प्रत्येक को श्रमणसाधना में उपयोगी कहता हूँ॥

"वृक्षों के नीचे शयन, पांशुकूल चीवर, गोमूत्र का पान एवं भिक्षा का भोजन—इन चारों की निर्दोषता, मात्रा-अल्पता, तथा सर्वत्र सुलभता के कारण सन्तुष्ट भिक्षु के चित्त की एकाग्रता नष्ट नहीं होती। वह भिक्षु इनके सहारे से सतत धर्ममार्गारूढ रहता है, इधर उधर भटकता नहीं॥

[B.336] **८. अरियवंससुत्तं** : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अरियवंसा अग्गञ्ञा रत्तञ्ञा वंसञ्ञा पोराणा असङ्किण्णा असङ्किण्णपुब्बा, न सङ्कीयन्ति न सङ्कीयिस्सन्ति, अप्पटिकुट्ठा समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खु सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन चीवरेन, इतरीतरचीवरे चीवरेसन्तुट्ठिया च वण्णवादी, न च पिण्डपातहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति, अलद्धा च चीवरं न परितस्सति, लद्धा च चीवरं अगधितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति; ताय च पन इतरीतरचीवरसन्तुट्ठिया नेवत्तानुक्कंसेति, नो परं वम्भेति। यो हि तत्थ दक्खो अनलसो सम्पजानो पटिस्सतो, अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु पोराणे अग्गञ्ञे अरियवंसे ठितो।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु, सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन पिण्डपातेन, इतरीतरपिण्डपातसन्तुट्ठिया च वण्णवादी, न च पिण्डपातहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति, अलद्धा च पिण्डपातं न परितस्सति, लद्धा च पिण्डपातं अगधितो अमुच्छितो [R.28] अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति; ताय च पन

''ऐसे सन्तुष्ट अतएव अप्रमत्त साधक भिक्षु की साधना में निरन्तर अनुकूलता रखने के लिये ही मैंने इन चारों धर्मों का उनको उपदेश किया है॥'' ●

८. आर्यवंशसूत्र : : आर्यवंश में अग्रगण्य चार धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये चार आर्यवंश (आर्य परम्परा से प्राप्त धर्म) अग्रगण्य हैं, दीर्घकालीन हैं, वंशपरम्परा से प्राप्त हैं, पुराने (प्राचीनतम) हैं, आज भी शुद्ध हैं, इनमें कोई कृत्रिमता=मिलावट नहीं है), पहले भी शुद्ध थे। इनके विषय में किसी को न आज शङ्का है, न पहले कभी थी, तथा ये सभी श्रमण ब्राह्मण एवं विद्वानों द्वारा प्रशंसा प्राप्त हैं। कौन से चार?

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु जिस किसी तरह के **चीवर** की प्राप्ति से सन्तुष्ट रहता है, साथ ही वह ऐसी सन्तुष्टि की प्रशंसा करता है। वह ऐसे वैसे चीवर से असन्तोष या अनिच्छा या प्रतिकूलता प्रकट नहीं करता। अनुकूल चीवर न मिले तो उसे कोई परितर्षणा (हैरानी) नहीं होती, तथा मनोनुकूल चीवर मिलने पर न उसमें कोई व्यामोह होता है न कोई आसक्ति ही होती है। अपितु उसके प्रति अनासक्त भाव रखता हुआ, उसमें साधनाविघ्नकारक दोष देखता हुआ, उससे छुटकारा पाने की इच्छा से ही उसका उपभोग करता है। ऐसा करता हुआ भी न उससे अपने में महत्त्व दिखाता है, न उसके कारण दूसरे का तिरस्कार ही करता है। जो साधक भिक्षु उस चीवर के प्रति ऐसे समीक्षण में दक्ष है, सावधान है, उत्साही है, वास्तविक समझ रखता है, अपनी अकिञ्चन स्थिति का सदा स्मरण रखता है; भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु ही इस प्राचीन आर्यवंश में प्रतिष्ठित माना जाता है। (१)

२. ''फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु जिस किसी तरह के **भिक्षादान** (पिण्डपात) से सन्तुष्ट रहता है, साथ ही यह ऐसी सन्तुष्टि से प्रशंसा भी करता है। यह ऐसे-वैसे भिक्षादान के असन्तोष या अनिच्छा या प्रतिकूलता प्रकट नहीं करता। अनुकूल भिक्षा न मिले तो उसे कोई परितर्षणा (हैरानी) नहीं होती। तथा मनोनुकूल भिक्षा मिलने पर न उसे कोई व्यामोह होता है और न कोई आसक्ति ही।

इतरीतरपिण्डपातसन्तुट्ठिया नेवत्तानुक्कंसेति, नो परं वम्भेति। यो हि तत्थ दक्खो अनलसो सम्पजानो पटिस्सतो, अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु पोराणे अग्गञ्ञे अरियवंसे [N.31] ठितो।

३. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु, सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन सेनासनेन, इतरीतर-सेनासनसन्तुट्ठिया च वण्णवादी, न च सेनासनहेतु अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जति, अलद्धा च सेनासनं न परितस्सति, लद्धा च सेनासनं अगधितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनव-दस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति; ताय च पन इतरीतरसेनासनसन्तुट्ठिया नेवत्ता-नुक्कंसेति, नो परं वम्भेति। यो हि तत्थ दक्खो अनलसो सम्पजानो पटिस्सतो, अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु पोराणे अग्गञ्ञे अरियवंसे ठितो।

४. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु भावनारामो होति भावनारतो, पहानारामो होति पहानरतो; ताय च पन भावनारामताय भावनारतिया पहानारामताय पहानरतिया नेवत्तानुक्कंसेति, नो परं वम्भेति। यो हि तत्थ दक्खो अनलसो सम्पजानो [B.337] पटिस्सतो, अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु पोराणे अग्गञ्ञे अरियवंसे ठितो। इमे खो,

---

अपितु, उसके प्रति अनासक्त भाव रखता हुआ, उसमें साधनाविघ्नकारक दोष देखता हुआ उससे मुक्ति पाने की इच्छा से उसका उपयोग करता है। ऐसा करता हुआ भी, वह न उससे दूसरों के सम्मुख अपना महत्त्व दिखाता है, न उसके कारण, दूसरों का तिरस्कार ही करता है। जो साधक भिक्षु उस भिक्षादान के ऐसे समीक्षण में दक्ष है, सावधान है, उत्साही है, वास्तविक समझ रखता है, अपनी अकिञ्चन स्थिति का सदा स्मरण रखता है, भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु ही उस प्राचीन आर्यवंश में प्रतिष्ठित माना जाता है। (२)

३. "फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु जिस किसी तरह के **शय्यासन** (मञ्च, ओढ़ना, बिछौना) से सन्तुष्ट रहता है, साथ ही वह ऐसी सन्तुष्टि की प्रशंसा भी करता है। यह ऐसे-वैसे शय्यासन से असन्तोष, अनिच्छा या प्रतिकूलता प्रकट नहीं करता। अनुकूल शय्यासन न मिले तो उसे कोई परितर्षणा (हैरानी) भी नहीं होती, तथा मनोनुकूल शय्यासन मिलने पर उसके प्रति न कोई व्यामोह होता है, न कोई आसक्ति ही। अपितु, उसके प्रति अनासक्त भाव रखता हुआ, उसमें साधना-विघ्नकारक दोष देखता हुआ उससे मुक्ति पाने की इच्छा से ही उसका उपयोग करता है। ऐसा करता हुआ भी, वह न उसके सहारे से दूसरों के सम्मुख अपना महत्त्व दिखाता है और न उसके कारण दूसरों का तिरस्कार ही करता है। जो साधक भिक्षु उस शय्यासन के ऐसे समीक्षण में दक्ष है, सावधान है, उत्साही है, वास्तविक समझदारी रखता है, अपनी अकिञ्चन स्थिति का स्मरण रखता है; भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु ही उस प्राचीन आर्यवंश में प्रतिष्ठित माना जाता है। (३)

४. "और फिर, भिक्षुओ! कोई भावना में ही सुख मानता है अत: भावना में ही लगा रहता है; और अन्य कोई साधनारत भिक्षु प्रहाण (त्याग) में ही सुख मानता है, अत: प्रहाण में रत (लगा) रहता है। परन्तु ये दोनों प्रकार के भिक्षु अपनी भावनारति एवं प्रहाणरति के कारण न तो स्वयं को अन्य भिक्षुओं से उच्च मानते हैं, न दूसरे भिक्षुओं को इन गुणों के अभाव के कारण अपने से हीन

भिक्खवे, चत्तारो अरियवंसा अग्गञ्ञा रत्तञ्ञा वंसञ्ञा पोराणा असङ्किण्णा असङ्किण्णपुब्बा, न सङ्कीयन्ति न सङ्कीयिस्सन्ति, अप्पटिकुट्ठा समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि।

५. "इमेहि च पन, भिक्खवे, चतूहि अरियवंसेहि समन्नागतो भिक्खू पुरत्थिमाय चे पि दिसाय विहरति स्वेव अरतिं सहति, न तं अरति सहति; पच्छिमाय चे पि दिसाय विहरति स्वेव अरतिं सहति, न तं अरति सहति; उत्तराय चे पि दिसाय विहरति स्वेव अरतिं सहति, न तं अरति सहति; दक्खिणाय चे पि दिसाय विहरति स्वेव अरतिं सहति, न तं अरति सहति। तं किस्स हेतु? अरतिरतिसहो हि, भिक्खवे, धीरो ति।

"नारति सहति धीरं, नारति धीरं सहति।
धीरो च अरतिं सहति, धीरो हि अरतिस्सहो॥

[R.29] "सब्बकम्मविहायीनं, पनुण्णं को निवारये।
नेक्खं जम्बोनदस्सेव, को तं निन्दितुमरहति।
देवा पि नं पसंसन्ति, ब्रह्मुना पि पसंसितो" ति॥

[N.32] **९. धम्मपदसुत्तं :** १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, धम्मपदानि अग्गञ्ञानि रत्तञ्ञानि वंसञ्ञानि पोराणानि असङ्किण्णानि असङ्किण्णापुब्बानि, न सङ्कीयन्ति न सङ्कीयिस्सन्ति,

---

समझते हैं। अपितु, वह अपनी धर्मसाधना में निरन्तर दक्ष, उत्साही, सम्प्रज्ञता (समझदार) एवं अकिञ्चन स्थिति का सतत स्मरण रखता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु ही उस प्राचीन आर्यपरम्परा के ज्ञान में प्रतिष्ठित माना जाता है। (४)

"इस तरह, भिक्षुओ! ये चार आर्यवंश अग्रगण्य हैं, दीर्घकाल से चले आ रहे हैं, वंश (कुल) परम्परा से प्राप्त हैं, पुराने (प्राचीनतम) हैं तथा आज भी शुद्ध हैं (इनमें कोई कृत्रिमता (मिलावट) नहीं है); पहले भी शुद्ध थे। इनके विषय में न किसी को आज शङ्का है, न पहले कभी थी। ये सभी श्रमण ब्राह्मण एवं विद्वानों द्वारा प्रशंसित हैं।

५. "फिर, भिक्षुओ! इन चार आर्यवंशों से समन्वित भिक्षु भले ही पूर्वदिशा से, भले ही पश्चिम दिशा से, भले ही उत्तर दिशा से या फिर दक्षिण दिशा से साधना करे वहाँ न उसको कोई अरुचि होती है, न किसी प्रकार की अरुचि ही उसके पास पहुँच पाती है। वह किस कारण? वह इसलिये भिक्षुओ! कि वह साधना करते करते इतना धैर्यवान् हो जाता है कि वह इस अरुचि को सहन करने की स्थिति में आ जाता है।

"वह अरुचि उस धैर्यवान् साधक भिक्षु की कोई हानि नहीं कर पाती, न उसको कोई अरुचि ही होती है; क्योंकि ऐसा साधक शनैः शनैः उस अरुचि को सहन करने का अपना स्वभाव बना लेता है।

"ऐसे उस सर्वकर्मत्यागी को, स्वयं सब कुछ से भली भाँति दूर हटे हुए को कौन पीछे हटाने का साहस कर सकता है! कसौटी चढ़े सुवर्ण के समान वह भी सबका प्रशंसापात्र ही होता है, उसकी निन्दा कौन कर सकता है! देवता भी उसकी प्रशंसा ही करते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मा भी उसके सर्वदा प्रशंसक ही बने रहते हैं॥"

अप्पटिकुट्ठानि समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। कतमानि चत्तारि? अनभिज्झा, भिक्खवे, धम्मपदं अग्गञ्ञं रत्तञ्ञं वंसञ्ञं पोराणं असङ्किण्णं असङ्किण्णपुब्बं, न सङ्कीयति न सङ्कीयिस्सति, अप्पटिकुट्ठं समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि।

२. "अब्यापादो, भिक्खवे, धम्मपदं अग्गञ्ञं रत्तञ्ञं वंसञ्ञं पोराणं असङ्किण्णं असङ्किण्णपुब्बं, न सङ्कीयति न सङ्कीयिस्सति, अप्पटिकुट्ठं समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि।

[B.338] ३. "सम्मासति, भिक्खवे, धम्मपदं अग्गञ्ञं रत्तञ्ञं वंसञ्ञं पोराणं असङ्किण्णं असङ्किण्णपुब्बं, न सङ्कीयति न सङ्कीयिस्सति, अप्पटिकुट्ठं समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि।

४. "सम्मासमाधि, भिक्खवे, धम्मपदं अग्गञ्ञं रत्तञ्ञं वंसञ्ञं पोराणं असङ्किण्णं असङ्किण्णपुब्बं, न सङ्कीयति न सङ्कीयिस्सति, अप्पटिकुट्ठं समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि धम्मपदानि अग्गञ्ञानि रत्तञ्ञानि वंसञ्ञानि पोराणानि असङ्किण्णानि असङ्किण्णपुब्बानि, न सङ्कीयन्ति न सङ्कीयिस्सन्ति, अप्पटिकुट्ठानि समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूही ति।

"अनभिज्झालु विहरेय्य, अब्यापन्नेन चेतसा।
सतो एकग्गचित्तस्स, अज्झत्तं सुसमाहितो" ति॥ ●

१०. परिब्बाजकसुत्तं : १. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता परिब्बाजका सिप्पिनिकातीरे

---

९. धर्मपदसूत्र : : चार धर्मप्राप्ति के साधन

१. "भिक्षुओ! ये चार धर्मपद (धर्मप्राप्ति के साधन) अग्रगण्य, दीर्घकाल से चले आ रहे, वंश (कुल) परम्परा से प्राप्त है, पुराने (प्राचीनतम) हैं। तथा आज भी शुद्ध (अकृत्रिम) हैं, पहले भी शुद्ध ही थे। इनके विषय में न आज किसी को शङ्का (सन्देह) है, न पहले कभी थी। ये सभी गुण श्रमण-ब्राह्मणों द्वारा प्रशंसनीय हैं। कौन चार?

"अनभिध्या (अलोभ) धर्मपद अग्रगण्य ...पूर्ववत्... ब्राह्मणों द्वारा प्रशस्त है। (१)

२. अव्यापाद (अवैर=अद्वेष) धर्मपद अग्रगण्य... ब्राह्मणों द्वारा प्रशस्त है। (२)

३. सम्यक्स्मृति (जागरूकता) धर्मपद अग्रगण्य ...ब्राह्मणों द्वारा प्रशस्त है। (३)

४. सम्यक्समाधि (एकाग्रता) धर्मपद अग्रगण्य... ब्राह्मणों द्वारा प्रशस्त है। (४)

"भिक्षुओ! ये (उपर्युक्त) चार धर्मपद अग्रगण्य, दीर्घ काल से चले आ रहे, वंशपरम्परा से प्राप्त, प्राचीनतम एवं सदा शुद्ध रहे हैं। इनके विषय में न आज कोई शङ्का है, न पहले कभी थी। तथा ये श्रमण ब्राह्मण द्वारा सदैव प्रशंसित रहे हैं।

"यदि कोई निर्लोभ साधक द्वेषरहित चित्त से साधना में तत्पर हो जाय तो ऐसे स्मृतिमान् एवं एकाग्रचित्त वाले साधक का अध्यात्म (मन) सांसारिक विषयों से निरन्तर दूर ही होता जाता है॥"

१०. परिव्राजकसूत्र : : धर्मप्राप्ति के चार साधन

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह स्थित गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय बहुत से प्रसिद्ध एवं लोकविख्यात परिव्राजक सिप्पिनिका नदी के तट पर बने

परिब्बाजकारामे पटिवसन्ति, सेय्यथीदं अन्नभारो वरधरो सकुलुदायी च परिब्बाजको अञ्ञे च अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता परिब्बाजका। अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन सिप्पिनिकातीरं परिब्बाजकारामो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने [N.33] निसीदि। निसज्ज खो भगवा ते परिब्बाजके एतदवोच—

२. "चत्तारिमानि, परिब्बाजका, धम्मपदानि अग्गञ्ञानि रत्तञ्ञानि वंसञ्ञानि [R.30] पोराणानि असङ्किण्णानि असङ्किण्णपुब्बानि, न सङ्कीयन्ति न सङ्कीयिस्सन्ति, अप्पटिकुट्ठानि समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। कतमानि चत्तारि? अनभिज्झा, परिब्बाजका, धम्मपदं अग्गञ्ञं रत्तञ्ञं वंसञ्ञं पोराणं असङ्किण्णं असङ्किण्णपुब्बं, न सङ्कीयति न सङ्कीयिस्सति, अप्पटिकुट्ठं समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। अब्यापादो, परिब्बाजका, धम्मपदं ...पे०... सम्मासति, परिब्बाजका, धम्मपदं ...पे०... सम्मासमाधि, परिब्बाजका, धम्मपदं [B.339] अग्गञ्ञं रत्तञ्ञं वंसञ्ञं पोराणं असङ्किण्णं असङ्किण्णपुब्बं, न सङ्कीयति न सङ्कीयिस्सति, अप्पटिकुट्ठं समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि। इमानि खो, परिब्बाजका, चत्तारि धम्मपदानि अग्गञ्ञानि रत्तञ्ञानि वंसञ्ञानि पोराणानि असङ्किण्णानि असङ्किण्णपुब्बानि, न सङ्कीयन्ति न सङ्कीयिस्सन्ति, अप्पटिकुट्ठानि समणेहि ब्राह्मणेहि विञ्ञूहि।

३. "यो खो, परिब्बाजका, एवं वदेय्य—'अहमेतं अनभिज्झं धम्मपदं पच्चक्खाय अभिज्झालुं कामेसु तिब्बसारागं समणं वा ब्राह्मणं वा पञ्ञापेस्सामी' ति, तमहं तत्थ एवं वदेय्यं—'एतु वदतु ब्याहरतु पस्सामिस्सानुभावं' ति। सो वत, परिब्बाजका, अनभिज्झं धम्मपदं पच्चक्खाय अभिज्झालुं कामेसु तिब्बसारागं समणं वा ब्राह्मणं वा पञ्ञापेस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

४. "यो खो, परिब्बाजका, एवं वदेय्य—'अहमेतं अब्यापादं धम्मपदं पच्चक्खाय ब्यापन्नचित्तं पदुट्ठमनसङ्कप्पं समणं वा ब्राह्मणं वा पञ्ञापेस्सामी' ति, तमहं तत्थ एवं

परिव्राजकाराम में साधनाहेतु वास कर रहे थे। जैसे—अन्नभार परिव्राजक, वरधर परिव्राजक एवं सकुलुदायी परिव्राजक या ऐसे ही अन्य विख्यात परिव्राजक। तब भगवान् सायङ्काल एकान्त साधना से उठकर सिप्पिनिका तीर स्थित परिव्राजकाराम में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए और उन परिव्राजकों से यों बोले—

२. "परिव्राजको! यहाँ जो कोई यह कहे—'मैं इस 'अनभिध्या' धर्मपद का प्रत्याख्यान कर किसी भी लोभी श्रमण या ब्राह्मण को, जिसकी कामभोगों में तीव्र आसक्ति हो, नये धर्मपद का उपदेश कर सकता हूँ;' उसको मैं यह कहूँगा—'आओ, बोलो, कहो; हम भी तुम्हारा चमत्कार देखें!'। परिव्राजको! तब वह इस अनभिध्या धर्मपद का प्रत्याख्यान कर कोई अन्य धर्मपद बता सके—यह सम्भव नहीं है।

४. "परिव्राजको! यहाँ जो कोई यह कहे—'मैं इस 'अव्यापाद' धर्मपद का प्रत्याख्यान कर ...पूर्ववत्... अन्य धर्मपद बता सके—यह सम्भव नहीं है।

वदेय्यं—'एतु वदतु ब्याहरतु पस्सामिस्सानुभावं' ति। सो वत, परिब्बाजका, अब्यापादं धम्मपदं पच्चक्खाय ब्यापन्नचित्तं पदुट्ठमनसङ्कप्पं समणं वा ब्राह्मणं वा पञ्ञापेस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

५. "यो खो, परिब्बाजका, एवं वदेय्य—'अहमेतं सम्मासतिं धम्मपदं पच्चक्खाय मुट्ठस्सतिं असम्पजानं समणं वा ब्राह्मणं वा पञ्ञापेस्सामी' ति, तमहं तत्थ एवं [N.34] वदेय्यं—'एतु वदतु ब्याहरतु पस्सामिस्सानुभावं' ति। सो वत, परिब्बाजका, सम्मासतिं धम्मपदं पच्चक्खाय मुट्ठस्सतिं असम्पजानं समणं वा ब्राह्मणं वा पञ्ञापेस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

६. "यो खो, परिब्बाजका, एवं वदेय्य—'अहमेतं सम्मासमाधिं धम्मपदं पच्चक्खाय असमाहितं बिब्भन्तचित्तं समणं वा ब्राह्मणं वा पञ्ञापेस्सामी' ति, तमहं तत्थ एवं वदेय्यं—'एतु वदतु ब्याहरतु पस्सामिस्सानुभावं' ति। सो वत, परिब्बाजका, [R.31] सम्मासमाधिं धम्मपदं पच्चक्खाय असमाहितं बिब्भन्तचित्तं समणं वा ब्राह्मणं वा पञ्ञापेस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

७. "यो खो, परिब्बाजका, इमानि चत्तारि धम्मपदानि गरहितब्बं पटिक्कोसितब्बं मञ्ञेय्य, तस्स दिट्ठेव धम्मे चत्तारो सहधम्मिका वादानुपाता गारय्हा ठाना [B.340] आगच्छन्ति। कतमे चत्तारो? अनभिज्झं चे भवं धम्मपदं गरहति पटिक्कोसति, ये च हि अभिज्झालू कामेसु तिब्बसारागा समणब्राह्मणा ते भोतो पुज्जा ते भोतो पासंसा। अब्यापादं चे भवं धम्मपदं गरहति पटिक्कोसति, ये च हि ब्यापन्नचित्ता पदुट्ठमनसङ्कप्पा समणब्राह्मणा ते भोतो पुज्जा ते भोतो पासंसा। सम्मासतिं च भवं धम्मपदं गरहति पटिक्कोसति, ये

---

५. "परिव्राजको! यहाँ जो कोई यह कहे—'मैं इस 'सम्यक्स्मृति' धर्मपद का ...पूर्ववत्... अन्य धर्मपद बता सके—यह सम्भव नहीं है।

६. "परिव्राजको! यहाँ जो कोई यह कहे—'मैं 'सम्यक्समाधि' धर्मपद का प्रत्याख्यान कर ...पूर्ववत्... अन्य धर्मपद बता सके—यह सम्भव नहीं है।

७. "परिव्राजको! जो इन चार धर्मपदों को प्रत्याख्यान योग्य मानेगा उसके सम्मुख उसी समय ये चार विरोधी प्रश्न उपस्थित हो जायँगे। कौन से चार?

(१) 'अनभिध्या' धर्मपद का यदि वह प्रत्याख्यान या विरोध करता है तो मानना पड़ेगा कि उसको ऐसे लोभी श्रमण ब्राह्मण ही पूज्य एवं प्रशंसनीय लगते हैं जिनकी कामभोगों में तीव्र आसक्ति या राग है।

(२) 'अव्यापाद' धर्मपद का यदि वह प्रत्याख्यान करेगा ...पूर्ववत्... प्रशंसनीय लगते हैं जो प्रदुष्ट मन सङ्कल्प वाले हैं।

(३) 'सम्यक्स्मृति' धर्मपद का वह प्रत्याख्यान या विरोध करेगा ...पूर्ववत्... जो नष्ट स्मृति वाले एवं नासमझ हैं।

च हि मुट्ठस्सती असम्पजाना समणब्राह्मणा ते भोतो पुज्जा ते भोतो पासंसा। सम्मासमाधिं चे भवं धम्मपदं गरहति पटिक्कोसति, ये च हि असमाहिता बिब्भन्तचित्ता समणब्राह्मणा ते भोतो पुज्जा ते भोतो पासंसा।

८. "यो खो, परिब्बाजका, इमानि चत्तारि धम्मपदानि गरहितब्बं पटिक्कोसितब्बं मञ्ञेय्य, तस्स दिट्ठेव धम्मे चत्तारो सहधम्मिका वादानुपाता गारय्हा ठाना आगच्छन्ति। ये पि ते परिब्बाजका अहेसुं उक्कला वस्सभञ्ञा अहेतुकवादा अकिरियवादा नत्थिकवादा, ते पि इमानि चत्तारि धम्मपदानि च गरहितब्बं न पटिक्कोसितब्बं अमञ्ञिसु। तं किस्स हेतु? निन्दाब्यारोसनउपारम्भभया ति।

"अब्यापन्नो सदा सतो, अज्झत्तं सुसमाहितो।
अभिज्झा विनये सिक्खं, अप्पमत्तो ति वुच्चती" ति॥

उरुवेलवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

[N.35] द्वे उरुवेला लोको काळको, ब्रह्मचरियेन पञ्चमं।
कुहं सन्तुट्ठि वंसो च, धम्मपदं परिब्बाजकेन चा ति॥ ●

---

(४) सम्यक्समाधि धर्मपद का जो प्रत्याख्यान या विरोध करता है तो मानना पड़ेगा कि उसको ऐसे श्रमण ब्राह्मण ही पूज्य एवं प्रशंसनीय लगते हैं जिनका मन समाहित नहीं है अर्थात् जो विभ्रान्तचित्त हैं।

८. "अत: परिव्राजको! जो इन चार धर्मपदों को प्रत्याख्येय या विरोध करने योग्य समझता है उसके सम्मुख तत्काल ये चार विरोधी प्रश्न उपस्थित हो जायँगे। और इनकी निन्दा के कारण वह स्वयं समाज में निन्दास्पद होगा। (सचाई तो यह है कि) प्राचीन समय में जो उत्कल (चञ्चल चित्त होने के कारण विकलेन्द्रिय), विनष्ट अभिज्ञावाले, अहेतुवादी, अक्रियावादी एवं नास्तिकवादी हुए हैं, वे भी इन चार धर्मों को गर्हणीय या विरोध करने योग्य (निन्दनीय) नहीं घोषित कर पाये। वह किसलिये? वह इसलिये कि लोक में उनकी ही निन्दा न होने लगे, उसके प्रति ही समाज में रोष न फैल जाय या लोग उनको ही उपालम्भ न देने लगें—इस भय से।

"अद्वेषभाव से सदा स्मृतिमान् रहकर आध्यात्मिक साधना करने वाला साधक अभिध्या (लोभ) के विरोध की ओर अपना मन लगावे। ऐसा साधक ही 'अप्रमत्त' (सावधान) कहलाता है"॥ ●

ऊरुवेलवर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम ऊरुवेल सूत्र, २. द्वितीय ऊरुवेल सूत्र, ३. लोक सूत्र, ४. काळकाराम सूत्र, ५. ब्रह्मचरिय सूत्र, ६. कुह सूत्र, ७. सन्तुष्टि सूत्र, ८. आर्यवंश सूत्र, ९. धर्मपद सूत्र, १०. परिव्राजक सूत्र॥ ●

४. चक्कवग्गो

१. चक्कसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, चक्कानि, येहि [B.341, R.32] समन्नागतानं देवमनुस्सानं चतुचक्कं वत्तति, येहि समन्नागता देवमनुस्सा नचिरस्सेव महन्तत्तं वेपुल्लत्तं पापुणन्ति भोगेसु। कतमानि चत्तारि? पतिरूपदेसवासो, सप्पुरिसावस्सयो, अत्तसम्मापणिधि, पुब्बे च कतपुञ्ञता—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि चक्कानि, येहि समन्नागतानं देवमनुस्सानं चतुचक्कं वत्तति, येहि समन्नागता देवमनुस्सा नचिरस्सेव महन्तत्तं वेपुल्लत्तं पापुणन्ति भोगेसू ति।

''पतिरूपे वसं देसे, अरियमित्तकरो सिया।
सम्मापणिधिसम्पन्नो, पुब्बे पुञ्ञकतो नरो।
धञ्ञं धनं यसो कित्ति, सुखञ्चेतंधिवत्तती'' ति॥ ●

२. सङ्गहसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, सङ्गहवत्थूनि। कतमानि चत्तारि? दानं, पेय्यवज्जं, अत्थचरिया, समानत्तता—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि सङ्गहवत्थूनी ति।

''दानं च पेय्यवज्जं च, अत्थचरिया च या इध।
समानत्तता च धम्मेसु, तत्थ तत्थ यथारहं।
एते खो सङ्गहा लोके, रथस्साणीव यायतो॥

---

४. चक्रवर्ग

१. चक्रसूत्र : : चारचक्र

''भिक्षुओ! ये चार चक्र होते हैं, जिनसे सम्पृक्त देवताओं एवं मनुष्यों का चक्रचतुष्टय बनता है। जिनसे युक्त होकर मनुष्य या देवता बहुत शीघ्र ही कामभोगों की वृद्धि एवं अतिशयता (विपुलत्व) प्राप्त कर लेते हैं। कौन चार? (१) अनुकूल देश में रहना, (२) सज्जनों का आश्रय (सहारा), (३) अपना दृढ़ निश्चय, तथा (४) पूर्वजन्म में किया पुण्य—भिक्षुओ! ये चार चक्र होते हैं जिनसे मिलकर देवताओं एवं मनुष्यों में चक्रचतुष्टय बनता है तथा जिनसे युक्त होकर मनुष्य या देवता शीघ्र ही अपने कामभोगों में वृद्धि एवं विपुलता प्राप्त कर लेते हैं।

''जिसको अनुकूल देश का वास एवं आर्य मित्रों की सङ्गति हो। साथ ही जो स्वयं दृढ़ निश्चय वाला हो और जिसे पूर्वजन्म में किये पुण्यों का साथ मिले—ऐसा पुरुष धन, धान्य, यश एवं कीर्ति तथा सुख—इन चारों धर्मों को अतिमात्रा में प्राप्त कर लेता है॥'' ●

२. संग्रहसूत्र : : चार संग्रह

''भिक्षुओ! ये चार संग्रह-वस्तुएँ होती हैं। कौन से चार? (१) दान, (२) प्रिय वाणी, (३) परोपकार, एवं (४) शान्तचित्तता (या किसी के साथ समानचित्तता=विचारसाम्य)—भिक्षुओ! ये चार संग्रहवस्तु होती है।

''लोक में दान, प्रिय वाणी, परोपकार एवं वहाँ वहाँ यथायोग्य समचित्तता—इन चार बातों का संग्रह, रथ में धुरे की तरह, अत्यावश्यक होता है॥

पुरुष को ये उक्त संग्रह माता या पुत्र के कारण नहीं मिला करते (इनमें तो अपना पूर्वकृत कर्म

"एते च सङ्गहा नास्सु, न माता पुत्तकारणा।
लभेथ मानं पूजं वा, पिता वा पुत्तकारणा॥

[N.36] "यस्मा च सङ्गहे एते, समवेक्खन्ति पण्डिता।
तस्मा महत्तं पप्पोन्ति, पासंसा च भवन्ति ते" ति॥ ●

[B.342,R.33] **३. सीहनादसुत्तं** : १. "सीहो, भिक्खवे, मिगराजा सायन्हसमयं आसया निक्खमति। आसया निक्खमित्वा विजम्भति। विजम्भित्वा समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेति। समन्ता चतुद्दिसा अनुविलोकेत्वा तिक्खत्तुं सीहनादं नदति। तिक्खत्तुं सीहनादं नदित्वा गोचराय पक्कमति। ये खो पन ते, भिक्खवे, तिरच्छानगता पाणा सीहस्स मिगरञ्ञो नदतो सद्दं सुणन्ति, ते येभुय्येन भयं संवेगं सन्तासं आपज्जन्ति। बिलं बिलासया पविसन्ति, उदकं उदकासया पविसन्ति, वनं वनासया पविसन्ति, आकासं पक्खिनो भजन्ति। ये पि ते, भिक्खवे, रञ्ञो नागा गामनिगमराजधानीसु दळ्हेहि वरत्तेहि बन्धनेहि बद्धा, ते पि तानि बन्धनानि सञ्छिन्दित्वा सम्पदालेत्वा भीता मुत्तकरीसं चजमाना येन वा तेन वा पलायन्ति। एवं महिद्धिको खो, भिक्खवे, सीहो मिगराजा तिरच्छानगतानं पाणानं, एवं महेसक्खो एवं महानुभावो।

२. "एवमेव खो, भिक्खवे, यदा तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा, सो धम्मं देसेति—'इति सक्कायो, इति सक्कायसमुदयो, इति सक्कायनिरोधो, इति

ही साथ देता है)। इसी तरह, लोक में सम्मान एवं पूजा (सत्कार) पिता या पुत्र के कारण नहीं मिला करते। इनकी प्राप्ति में भी अपना पुण्यकर्म ही साथ दिया करता है॥

"क्योंकि बुद्धिमान् पुरुष इन उपर्युक्त संग्रहों की उत्सुकतापूर्वक समीक्षा करते रहते हैं; इसीलिये वे लोक में महत्त्व एवं प्रशंसा प्राप्त करते हैं॥" ●

३. सिंहनादसूत्र : : सिंह एवं तथागत के चार विशिष्ट कर्म

१. भिक्षुओ! मृगराज सिंह सायंकाल में अपने आश्रयस्थान (गुफा) से निकलता है। (१) गुफा से निकलकर वह सर्वप्रथम जम्हाई लेता है। (२) जम्हाई लेकर सब तरफ चारों ओर देखता है। (३) चारों ओर देखकर सिंहनाद करता है। (४) सिंहनाद कर शिकार की खोज में निकलता है। भिक्षुओ! उस समय सभी पशु-पक्षी वह सिंहनाद सुनते हैं, उसे सुनकर वे डरते हैं, घबराते हैं। इस तरह डरकर, घबराकर, बिलों में रहने वाले बिल में चले जाते हैं तथा जल में रहने वाले जल में और वन में रहने वाले वन में छिप जाते हैं एवं आकाश में उड़ने वाले पक्षी आकाश में उड़ जाते हैं। भिक्षुओ! उस समय राजाओं के हाथी जो ग्राम निगम राजधानियों में दृढ़ शृंखलाओं या रस्सियों से बन्धे होते हैं, वे भी उन बन्धनों को तोड़कर, खूँटे उखाड़ कर भयभीत हुए मलमूत्र त्यागते हुए जहाँ तहाँ भाग जाते हैं। भिक्षुओ! वह सिंह मृगराज इतना तेजस्वी प्रतापवान् एवं बलशाली होता है।

२. इसी प्रकार, भिक्षुओ! जब तथागत लोक में अवतरित होते हैं, जो कि अर्हत्

सक्कायनिरोधगामिनी पटिपदा' ति। ये पि ते, भिक्खवे, देवा दीघायुका वण्णवन्तो सुखबहुला उच्चेसु विमानेसु चिरट्ठितिका, ते पि तथागतस्स धम्मदेसनं सुत्वा येभुय्येन भयं संवेगं सन्तासं आपज्जन्ति—'अनिच्चा वत किर, भो, मयं समाना निच्चम्हा ति अमञ्ञिम्ह; अद्धुवा वत किर, भो, मयं समाना धुवम्हा ति अमञ्ञिम्ह; असस्सता वत किर, भो, मयं समाना सस्सतम्हा ति अमञ्ञिम्ह। मयं किर, भो, अनिच्चा अद्धुवा असस्सता सक्कायपरियापन्ना' ति। एवं महिद्धिको खो, भिक्खवे, तथागतो सदेवकस्स लोकस्स, एवं महेसक्खो एवं महानुभावो ति।

''यदा बुद्धो अभिञ्ञाय, धम्मचक्कं पवत्तयी। [N.37,R.34]
सदेवकस्स लोकस्स, सत्था अप्पटिपुग्गलो॥
''सक्कायं च निरोधं च, सक्कायस्स च सम्भवं। [B.343]
अरियञ्चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥
''ये पि दीघायुका देवा, वण्णवन्तो यसस्सिनो।
भीता सन्तासमापादुं, सीहस्सेवितरे मिगा॥
''अवीतिवत्ता सक्कायं, अनिच्चा किर भो मयं।
सुत्वा अरहतो वाक्यं, विप्पमुत्तस्स तादिनो'' ति॥ ●

४. पसादसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अग्गप्पसादा। कतमे चत्तारो? यावता, भिक्खवे, सत्ता अपदा वा द्विपदा वा चतुप्पदा वा बहुप्पदा वा रूपिनो वा अरूपिनो वा

सम्यक्सम्बुद्ध ...पूर्ववत्... बुद्ध भगवान् हैं; वे ऐसा धर्मोपदेश करते हैं—'यह शरीर है', 'यह शरीर की उत्पत्ति है', 'यह शरीर का निरोध है', 'यह शरीरनिरोधगामी मार्ग है'। उस समय, भिक्षुओ! जो दीर्घायु रूपसम्पन्न सुखी देवता अपने बड़े ऊँचे देवविमानों में बैठे हुए हों वे भी तथागत का वह धर्मोपदेश सुनकर अत्यधिक भयभीत एवं सन्त्रस्त होने लगते हैं—'अरे! हम अनित्य होते हुए भी अपने को अब तक नित्य समझ रहे थे, विनाशी होते हुए भी अपने को अविनाशी समझ रहे थे, अध्रुव (मरणशील) होते हुए भी अपने को ध्रुव (मरणशील) समझ रहे थे, अस्थायी होते हुए भी अपने को स्थायी समझ रहे थे। हम तो वस्तुतः अनित्य, अध्रुव अशाश्वत एवं मरणधर्मा शरीर धारण किये हुए हैं।' भिक्षुओ! लोक में तथागत ऐसे ऋद्धि, प्रभाव एवं आनुभाव से सम्पन्न हैं।

''जब बुद्ध ज्ञान प्राप्त कर लोक में यह धर्मोपदेश करते हैं, जो कि देवताओं सहित समस्त लोक के एकमात्र शास्ता हैं— ॥

'' 'सत्काय, सत्कायसमुदय, सत्कायनिरोध एवं सत्कायनिरोधगामी दुःखनाशक आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग'॥

''तब जो इस लोक में दीर्घायु, रूपसम्पन्न, यशस्वी देवता भी भयभीत होकर, घबराकर, जैसे दूसरे पशु-पक्षी सिंह से डरते हैं, घबराते हैं तथा उस ज्ञानी तथागत का उपदेश सुनकर यों विचार करने लगते हैं— ॥

''अरे! हम तो इस शरीर द्वारा ठगे गये। हम तो वस्तुतः अनित्य हैं॥'' ●

सञ्ञिनो वा असञ्ञिनो वा नेवसञ्ञिनासञ्ञिनो वा, तथागतो तेसं अग्गमक्खायति अरहं सम्मासम्बुद्धो। ये, भिक्खवे, बुद्धे पसन्ना, अग्गे ते पसन्ना। अग्गे खो पन पसन्नानं अग्गो विपाको होति।

२. ''यावता, भिक्खवे, धम्मा सङ्खता, अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो तेसं अग्ग-मक्खायति। ये, भिक्खवे, अरिये अट्ठङ्गिके मग्गे पसन्ना, अग्गे ते पसन्ना। अग्गे खो पन पसन्नानं अग्गो विपाको होति।

३. ''यावता, भिक्खवे, धम्मा सङ्खता वा असङ्खता वा, विरागो तेसं धम्मानं अग्गमक्खायति, यदिदं मदनिम्मदनो पिपासविनयो आलयसमुग्घातो वट्टुपच्छेदो तण्हा-क्खयो विरागो निरोधो निब्बानं। ये, भिक्खवे, विरागे धम्मे पसन्ना, अग्गे ते पसन्ना। अग्गे खो पन पसन्नानं अग्गो विपाको होति।

४. ''यावता, भिक्खवे, सङ्घा वा गणा वा, तथागतसावकसङ्घो तेसं अग्गमक्खायति, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। ये, [B.344,R.35] भिक्खवे, सङ्घे पसन्ना, अग्गे ते पसन्ना। अग्गे खो पन पसन्नानं अग्गो विपाको होति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अग्गप्पसादा ति।

---

४. प्रसादसूत्र : : चार अग्र प्रसाद

१. ''भिक्षुओ! ये चार **अग्रप्रसाद** (श्रद्धा) हैं। कौन से चार? भिक्षुओ! लोक में जितने भी विना पैरों वाले, दो पैरों वाले, चार पैरों वाले, बहुत पैरों वाले; रूपवाले एवं रूपरहित संज्ञी या असंज्ञी या नैवसंज्ञी असंज्ञी प्राणी हैं उन सबमें तथागत ज्ञानी सम्यक्मस्बुद्ध ही अग्र (प्रमुख) हैं। भिक्षुओ! जो बुद्ध में श्रद्धा रखते हैं वे अग्र में ही श्रद्धा रखते हैं—ऐसा समझो! इस अग्र में श्रद्धा का फल भी अग्र ही होता है। (१)

२. ''भिक्षुओ! लोक में जितने भी संस्कृत धर्म हैं उनमें आर्यअष्टाङ्गिक मार्ग ही श्रेष्ठ है। भिक्षुओ! जो इस मार्ग में श्रद्धालु हैं वे अग्र में ही श्रद्धालु हैं। तथा अग्र में श्रद्धा का फल भी अग्र ही होता है। (२)

३. भिक्षुओ! लोक में जितने भी संस्कृत या असंस्कृत धर्म हैं वैराग्य उनमें अग्र है। जो कि लौकिक मद (अभिमान) का नाशक है, तृष्णा (पिपासा) का नाशक है, आलय (आसक्ति) का घातक है, भवपरम्परा का छेदक है, तृष्णाक्षय कारक है। इसी को विराग, निरोध एवं निर्वाण भी कहते हैं। (३)

४. भिक्षुओ! लोक में जितने भी श्रमणों के सङ्घ या गण हैं उनमें तथागत का श्रावकसङ्घ ही अग्र (प्रमुख) कहलाता है। इसमें चार पुरुषयुगल या आठ पुरुष पुद्गलों की गणना है। भगवान् का यह श्रावकसङ्घ ही गृहस्थों द्वारा अपने घरों में दान हेतु बुलाने योग्य है, दान योग्य है, प्रणम्य है, लोक में अद्वितीय पुण्यभूमि है। भिक्षुओ! जो सङ्घ में श्रद्धालु हैं वे अग्र में ही श्रद्धालु हैं—ऐसा समझो! अग्र में श्रद्धालुओं का फल भी अग्र ही होता है। (४)

"अग्गतो वे पसन्नानं, अग्गं धम्मं विजानतं। [N.38]
अग्गे बुद्धे पसन्नानं, दक्खिणेय्ये अनुत्तरे॥
"अग्गे धम्मे पसन्नानं, विरागूपसमे सुखे।
अग्गे सङ्घे पसन्नानं, पुञ्ञक्खेत्ते अनुत्तरे॥
"अग्गस्मिं दानं ददतं, अग्गं पुञ्ञं पवड्ढति।
अग्गं आयु च वण्णो च, यसो कित्ति सुखं बलं॥
"अग्गस्स दाता मेधावी, अग्गधम्मसमाहितो।
देवभूतो मनुस्सो वा, अग्गप्पत्तो पमोदती" ति॥ ●

५. वस्सकारसुत्तं : १. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवन्तं एतदवोच—

२. "चतूहि खो मयं, भो गोतम, धम्मेहि समन्नागतं महापञ्ञं महापरिसं पञ्ञापेम। कतमेहि चतूहि? इध, भो गोतम, बहुस्सुतो होति तस्स तस्सेव सुतजातस्स तस्स तस्सेव खो पन भासितस्स अत्थं जानाति—'अयं इमस्स भासितस्स अत्थो, अयं इमस्स भासितस्स अत्थो' ति। सतिमा खो पन होति चिरकतं पि चिरभासितं पि सरिता अनुस्सरिता यानि खो पन तानि गहट्ठकानि किङ्करणीयानि, तत्थ दक्खो होति अनलसो,

---

"भिक्षुओ! ये चार अग्र प्रसाद (श्रद्धास्थान) हैं॥

"अग्र में श्रद्धालुओं का, अग्र धर्म के ज्ञाताओं का, अद्वितीय दक्षिणायोग्य अग्र बुद्ध में श्रद्धालुओं का, वैराग्य एवं शान्ति सुखदायक अग्रधर्म में श्रद्धालुओं का, अद्वितीय पुण्यभूमिरूप सङ्घ को दानदाता श्रद्धालुओं का पुण्य भी आगे ही आगे बढ़ता जाता है। उनके आयु, वर्ण, बल, यश, कीर्ति एवं सुख बढ़ते ही जाते हैं॥

"जो बुद्धिमान् अग्र (सङ्घ) को दान देता है, तथा अग्र धर्म में समाहित है वह फिर भले ही देवता हो या मनुष्य वह अपने समाज में अग्र स्थान प्राप्त कर सुखमय जीवन बिताता है॥" ●

५. वर्षकारसूत्र : : चार धर्मों से युक्त ही महाप्राज्ञ

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह में वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय मगध महामात्य वर्षकार नामक ब्राह्मण भगवान् के पास आये तथा उनसे कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे महामात्य ब्राह्मण ने भगवान् से यों निवेदन किया—

२. "भो, गौतम! चार धर्मों से युक्त पुरुष को ही विद्वज्जन 'महापुरुष' या 'महाप्राज्ञ' कहते हैं। कौन से चार? (१) यहाँ, भो गौतम! कोई बहुश्रुत हो, वह उस उस सुने हुए का, उस उस (बुद्ध-) भाषित का अर्थ यों जानता है—'इस भाषित का यह अर्थ है', 'इस भाषित का यह अर्थ है।' (२) अपने चिरकृत एवं चिरभाषित का स्मृतिमान्, स्मरण करने वाला, अनुस्मरण करने वाला

तत्रुपायाय वीमंसाय समन्नागतो अलं कातुं अलं संविधातुं। इमेहि खो मयं, भो गोतम, [B.345] चतूहि धम्मेहि समन्नागतं महापञ्ञं महापुरिसं पञ्ञापेम। सचे मे, भो गोतम, अनुमोदितब्बं अनुमोदतु मे भवं गोतमो; सचे पन मे, भो गोतम, पटिक्कोसितब्बं पटिक्कोसतु मे भवं गोतमो'' ति।

[R.36] ३. ''नेव खो त्याहं, ब्राह्मण, अनुमोदामि न पटिक्कोसामि। चतूहि खो अहं, ब्राह्मण, धम्मेहि समन्नागतं महापञ्ञं महापुरिसं पञ्ञापेमि। कतमेहि चतूहि? इध, ब्राह्मण, बहुजनहिताय पटिपन्नो होति बहुजनसुखाय; बहुस्स जनता अरिये ञाये पतिट्ठापिता, यदिदं [N.39] कल्याणधम्मता कुसलधम्मता। सो यं वितक्कं आकङ्खति वितक्केतुं तं वितक्कं वितक्केति, यं वितक्कं नाकङ्खति वितक्केतुं न तं वितक्कं वितक्केति; यं सङ्कप्पं आकङ्खति सङ्कप्पेतुं तं सङ्कप्पं सङ्कप्पेति, यं सङ्कप्पं नाकङ्खति सङ्कप्पेतुं न तं सङ्कप्पं सङ्कप्पेति। इति चेतोवसिप्पत्तो होति वितक्कपथेसु। चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। नेव खो त्याहं, ब्राह्मण, अनुमोदमि न पटिक्कोसामि। इमेहि खो अहं, ब्राह्मण, चतूहि धम्मेहि समन्नागतं महापञ्ञं महापुरिसं पञ्ञापेमी'' ति।

४. ''अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! याव सुभासितं चिदं भोता गोतमेन इमेहि च मयं, भो गोतम, चतूहि धम्मेहि समन्नागतं भवन्तं गोतमं धारेम; भवं हि गोतमो

होता है। (३) अपने गृहस्थ धर्म के कर्तव्यों में दक्ष (चतुर), आलस्य रहित होता है। (४) तथा उनकी प्राप्ति एवं पूर्णता में समर्थ होता है। भो गौतम! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष ही 'महापुरुष' एवं 'महाप्राज्ञ' कहलाता है। भो गौतम! मेरी यह बात अनुमोदन करने योग्य हो तो इसका अनुमोदन कीजिये। या फिर प्रत्याख्यान करने योग्य हो तो इसका प्रत्याख्यान कीजिये।''

३. ''ब्राह्मण! मैं तुम्हारे इस कथन का न अनुमोदन करता हूँ, न प्रत्याख्यान। हाँ मैं इन चार धर्मों से युक्त पुरुष को 'महापुरुष' या 'महाप्राज्ञ' कहता हूँ। किन चार धर्मों से? (१) ब्राह्मण! यहाँ कोई बहुजन के हित एवं सुख में लगा रहता है, बहुत से जनों को उस ज्ञेय आर्यधर्म में प्रतिष्ठित करता रहता है जो कल्याण धर्म एवं कुशल धर्म का बोधक हो। (२) वह जिस वितर्क की वितर्कणा करना चाहता है उसकी वितर्कणा करता है तथा जिसको नहीं चाहता उसकी वितर्कणा नहीं करता। जिस सङ्कल्प को मन में करना चाहता है उसे मन में करता है, तथा जिसको नहीं चाहता उसको नहीं करता। इस प्रकार वह अपने चित्त को, वितर्क एवं सङ्कल्पों के विषय में निगृहीत रखता है। (३) वह चार आभिचैतसिक (चित्तसम्बद्ध) ध्यानों को, किसी कठिनाई के विना, सहजता से, सरलता से प्राप्त कर लेता है। (४) तथा आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जान कर साक्षात् कर प्राप्त कर साधना करता है। अत: ब्राह्मण! मैं तुम्हारे कथन का न अनुमोदन करता हूँ, न निषेध; ...पूर्ववत्...।''

४. ''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! आप गौतम ने बहुत ही अच्छा कहा। हम

बहुजनहिताय पटिपन्नो बहुजनसुखाय; बहु ते जनता अरिये ञाये पतिट्ठापिता, यदिदं कल्याणधम्मता कुसलधम्मता। भवं हि गोतमो यं वितक्कं आकङ्खति वितक्केतुं तं वितक्कं वितक्केति, यं वितक्कं नाकङ्खति वितक्केतुं न तं वितक्कं वितक्केति, यं सङ्कप्पं... न तं सङ्कप्पं सङ्कप्पेति। भवं हि गोतमो चेतोवसिप्पत्तो वितक्कपथेसु। भवं हि गोतमो चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिर-लाभी। भवं हि गोतमो आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती'' ति।

५. ''अद्धा खो त्याहं, ब्राह्मण, आसज्ज उपनीय वाचा भासिता। अपि च, त्याहं ब्याकरिस्सामि—'अहं हि, ब्राह्मण, बहुजनहिताय पटिपन्नो बहुजनसुखाय; [B.346, R.37] बहु मे जनता अरिये ञाये पतिट्ठापिता, यदिदं कल्याणधम्मता कुसलधम्मता। अहं हि, ब्राह्मण, यं वितक्कं आकङ्खामि वितक्केतुं तं वितक्कं वितक्केमि, यं वितक्कं नाकङ्खामि वितक्केतुं न तं वितक्कं वितक्केमि, यं सङ्कप्पं आकङ्खामि सङ्कप्पेतुं तं सङ्कप्पं सङ्कप्पेमि, यं सङ्कप्पं नाकङ्खामि सङ्कप्पेतुं न तं सङ्कप्पं सङ्कप्पेमि। अहं हि, ब्राह्मण, चेतोवसिप्पत्तो वितक्कपथेसु। अहं हि, ब्राह्मण, चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं [N.40] निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। अहं हि ब्राह्मण, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामी' ति।

''यो वेदि सब्बसत्तानं, मच्चुपासप्पमोचनं।

लोग इन चार धर्मों से युक्त आप गौतम को ही मानते हैं। क्योंकि, भो गौतम! आप ही बहुजन के हित एवं सुख में लगे हुए हैं। आपने बहुत से भाग्यशाली लोगों को उस आर्यधर्म में प्रतिष्ठित किया है जो कल्याणमय है, कुशलमय है। आप ही, भो गौतम! जिस वितर्क की वितर्कणा करना चाहते हैं, उसे करते हैं; जिसे नहीं चाहते, उसे नहीं करते। जिस सङ्कल्प को मन में लाना चाहते हैं, लाते हैं; नहीं लाना चाहते हैं नहीं लाते। इस तरह, आप गौतम ने अपने चित्त को वितर्क एवं सङ्कल्पों के विषय में नियन्त्रित कर रखा है। आपने, भो गौतम! इसी जन्म में तत्काल सुखदायी आभिचैतसिक चार ध्यानों को किसी कठिनता के विना, सहजता से, सरलता से प्राप्त कर लिया है। आप ही, भो गौतम! आश्रवों के क्षय से अनाश्रव हुई चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधना कर रहे हैं।''

५. ''यद्यपि, ब्राह्मण! तुमने सामयिक (प्रसङ्गानुसार) ही बात कही है, तो भी मैं इस बात को यों कहना चाहूँगा—(१) मैं, ब्राह्मण! बहुजन के हित एवं सुख के लिये प्रयासरत हूँ। मैंने बहुत जनों को उस आर्यधर्म में प्रतिष्ठित कर दिया है जो कल्याणमय एवं सुखमय है। (२) मैं, ब्राह्मण! जिस वितर्क को... सङ्कल्प को... नहीं करता। इस तरह, ब्राह्मण! मैंने इन वितर्क एवं सङ्कल्पों को वश में कर लिया है। (३) मैं, ब्राह्मण! आभिचैतसिक चारों ध्यानों को... प्राप्त कर चुका हूँ। (४) मैं ही, ब्राह्मण! आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति... प्राप्त कर साधना करता हूँ।

हितं देवमनुस्सानं, ञायं धम्मं पकासयि।
यं वे दिस्वा च सुत्वा च, पसीदन्ति बहू जना॥
"मग्गामग्गस्स कुसलो, कतकिच्चो अनासवो।
बुद्धो अन्तिमसारीरो, महापञ्ञो महापुरिसो ति वुच्चती" ति॥ ●

६. दोणसुत्तं : १. एकं समयं भगवा अन्तरा च उक्कट्ठं अन्तरा च सेतब्यं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति। दोणो पि सुदं ब्राह्मणो अन्तरा च उक्कट्ठं अन्तरा च सेतब्यं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति। अद्दसा खो दोणो ब्राह्मणो भगवतो पादेसु चक्कानि सहस्सारानि सनेमिकानि सनाभिकानि सब्बाकारपरिपूरानि; दिस्वानस्स एतदहोसि— "अच्छरियं वत, भो, अब्भुतं वत, भो! न वतिमानि मनुस्सभूतस्स पदानि भविस्सन्ती" [B.347,R.38] ति!! अथ खो भगवा मग्गा ओक्कम्म अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। अथ खो दोणो ब्राह्मणो भगवतो पदानि अनुगच्छन्तो अद्दस भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसिन्नं पासादिकं पसादनीयं सन्तिन्द्रियं सन्तमानसं उत्तमदमथसमथमनुप्पत्तं दन्तं गुत्तं संयतिन्द्रियं नागं। दिस्वान येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच—

२. "देवो नो भवं भविस्सती" ति?

"न खो अहं, ब्राह्मण, देवो भविस्सामी" ति।

"जिसने सभी प्राणियों के मृत्युपाश-बन्धन से मुक्ति का उपाय जान लिया है। देवता एवं मनुष्यों के हित में जिसने उचित धर्म को देशना की। जिसे सुनकर साक्षात् कर बहुत से लोग उनके प्रति श्रद्धालु हैं॥

"जो मार्ग एवं कुमार्ग का कुशल ज्ञाता है, जो स्वयं कृतकृत्य एवं निर्विकार हो चुका है, वह बुद्ध अब अन्तिम शरीरधारी है। यही 'महापुरुष' एवं 'महाप्राज्ञ' कहलाने के योग्य है॥" ●

६. द्रोणसूत्र : : चार धर्मों में अनुपलिप्त

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) उक्कट्ठा और सेतव्य नगर के बीच चारिका करते हुए मार्ग में चल रहे थे। द्रोण ब्राह्मण भी उस समय इसी मार्ग पर (भगवान् के पीछे पीछे) आ रहा था। तब द्रोण ब्राह्मण ने भगवान् के श्रीचरणों में सहस्त्रों अर, नेमि एवं नाभि वाले सभी तरह के छोटे बड़े चक्रचिह्न देखे। देखकर उसको यह विचार हुआ—"बहुत आश्चर्य है, बहुत अद्भुत है! ये किसी मनुष्य के पैर नहीं हो सकते!" तब भगवान् उस समय मार्ग से हटकर किसी वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर, शरीर को सीधा एवं सहज कर, स्मृति रखते हुए (सावधान होकर) बैठ गये। तब द्रोण ब्राह्मण भी भगवान् के पदचिह्नों का अनुगमन करता हुआ वहाँ आ पहुँचा, जहाँ भगवान् किसी वृक्ष के नीचे शान्तेन्द्रिय होकर प्रसन्न मुखमुद्रा में शान्तचित्त होकर उत्तम शान्तिप्राप्त, दान्त, सुरक्षित एवं स्थिर (अचञ्चल) रूप में विराजमान थे। ब्राह्मण उनको देखकर वहाँ आया और आकर भगवान् से अपनी जिज्ञासा यों प्रकट करने लगा—

२. "क्या आप कोई देवता हैं?"

''गन्धब्बो नो भवं भविस्सती'' ति?

''न खो अहं, ब्राह्मण, गन्धब्बो भविस्सामी'' ति।

''यक्खो नो भवं भविस्सती'' ति? [N.41]

''न खो अहं, ब्राह्मण, यक्खो भविस्सामी'' ति।

''मनुस्सो नो भवं भविस्सती'' ति?

''न खो अहं, ब्राह्मण, मनुस्सो भविस्सामी'' ति।

३. '''देवो नो भवं भविस्सती' ति, इति पुट्ठो समानो—'न खो अहं, ब्राह्मण, देवो भविस्सामी' ति वदेसि। 'गन्धब्बो नो भवं भविस्सती' ति, इति पुट्ठो समानो—'न खो अहं, बाह्मण, गन्धब्बो भविस्सामी' ति वदेसि। 'यक्खो नो भवं भविस्सती' ति, इति पुट्ठो समानो... 'मनुस्सो नो भवं भविस्सती' ति, इति पुट्ठो समानो—'न खो अहं, ब्राह्मण, मनुस्सो भविस्सामी' ति वदेसि। अथ खो चरहि भवं भविस्सती'' ति?

४. ''येसं खो अहं, ब्राह्मण, आसवानं अप्पहीनत्ता देवो भवेय्यं, ते मे आसवा पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। येसं खो अहं, ब्राह्मण, आसवानं अप्पहीनत्ता गन्धब्बो भवेय्यं...यक्खो भवेय्यं...मनुस्सो भवेय्यं, ते मे आसवा पहीना उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। सेय्यथापि, ब्राह्मण, उप्पलं वा पदुमं वा पुण्डरीकं वा उदके जातं उदके संवड्ढं उदका अच्चुग्गम्म तिट्ठति अनुपलित्तं उदकेन; एवमेव खो अहं, ब्राह्मण, लोके जातो लोके [R.39] संवड्ढो लोकं अभिभुय्य विहरामि अनुपलित्तो लोकेन। बुद्धो ति मं, ब्राह्मण, धारेही ति।

''नहीं, ब्राह्मण! मैं कोई देवता नहीं हूँ।''

''तो क्या आप कोई गन्धर्व हैं?''

''नहीं, ब्राह्मण! मैं कोई गन्धर्व भी नहीं हूँ।''

''तो आप कोई यक्ष होंगे?''

''नहीं, ब्राह्मण! मैं यक्ष भी नहीं हूँ।''

''तो आप कोई मनुष्य हैं?''

''नहीं, ब्राह्मण! मैं मनुष्य नहीं हूँ।''

३. ''आप अपने विषय में देवता... गन्धर्व... यक्ष... मनुष्य होने का प्रश्न किये जाने पर सबका निषेध करते गये, तो आप वस्तुतः कौन हैं?''

४. ''ब्राह्मण! जिन आश्रवों (चित्तविकारों) के होने पर मैं 'देवता' कहलाता, वे मेरे चित्तविकार मूलतः प्रहीण हो चुके हैं, अभाव प्राप्त हो चुके हैं तथा वे इस स्थिति में आ गये हैं कि वे आगे भविष्य में भी उत्पन्न नहीं होंगे। इसी प्रकार ब्राह्मण! मैं जिन आश्रवों के प्रहीण न होने पर गन्धर्व... यक्ष... मनुष्य होता मेरे वे आश्रव भी मूलतः प्रहीण हो चुके हैं... भविष्य में भी कभी उत्पन्न न होंगे। जैसे, ब्राह्मण! कोई पद्म, पुण्डरीक या उत्पल जल में उत्पन्न होकर जल में वृद्धि प्राप्त करके भी जल से बाहर तथा जल से अनुपलिप्त होकर रहता है। वैसे ही, ब्राह्मण! मैं भी लोक में

[B.348] ''येन देवूपपत्यस्स, गन्धब्बो वा विहङ्गमो।
यक्खत्तं येन गच्छेय्यं, मनुस्सत्तं च अब्बजे।
ते मय्हं, आसवा खीणा, विद्धस्ता विनळीकता॥
''पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोयेन नुपलिप्पति।
नुपलिप्पामि लोकेन, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मणा'' ति॥

७. अपरिहानियसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अभब्बो परिहानाय निब्बानस्सेव सन्तिके। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलसम्पन्नो [N.42] होति, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति, भोजने मत्तञ्ञू होति, जागरियं अनुयुत्तो होति।

२. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं

उत्पन्न होकर भी, यहाँ वृद्धि प्राप्त करके भी लोक को उपेक्षित (पराजित) कर लोक से पृथक् (अनुपलिप्त) रहता हुआ अध्यात्म साधनारत हूँ। ब्राह्मण! तुम मुझे 'बुद्ध' समझो।''

''जिन आश्रवों के कारण देवताओं में या आकाशचारी गन्धर्व एवं यक्षों में तथा मनुष्यों में उत्पत्ति होती है॥

''मेरे वे सभी आश्रव क्षीण हो गये हैं, विध्वस्त हो गये हैं, मूलतः नष्ट हो गये हैं॥''

''जैसे मनोरम पुण्डरीक जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नहीं होता, वैसे ही लोक से उत्पन्न होकर भी मैं लोक में लिप्त (आसक्त=मुग्ध) नहीं हूँ। अतः, ब्राह्मण! मैं बुद्ध हूँ—ऐसा समझो॥''

७. अपरिहानीयसूत्र : : चार अपरिहानीय धर्म

१. ''भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त कोई भिक्षु साधना से च्युत हो जाय—यह सम्भव नहीं है। वह तो निर्वाण के पास ही पहुँच गया है—ऐसा समझो। किन चार से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु (१) शीलसम्पन्न होता है, (२) इन्द्रियों पर संयम रखता है, (३) भोजन की मात्रा का पूर्ण ज्ञान रखता है तथा (४) जागरण (सावधानी) से युक्त है।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलसम्पन्न होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शील का पालन करता है। प्रातिमोक्ष (भिक्षुनियमों) का पालन करता है। इस प्रातिमोक्ष कवच से आवृत होकर आचार गोचर सम्पन्न रहते हुए छोटे से छोटे प्रमाद से भी भय मानता हुआ साधना में ही लगा रहता है। गुरुमुख से शिक्षा ग्रहण कर उसका अभ्यास करता है। इस तरह का भिक्षु 'शीलसम्पन्न' कहलाता है। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु इन्द्रियों पर संयम रखता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **रूप**

असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति चक्खुन्द्रियं; चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा...घानेन गन्धं घायित्वा...जिव्हाय रसं सायित्वा...कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय [R.40] पटिपज्जति; रक्खति मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु भोजने मत्तञ्ञू होति? इध, भिक्खवे, [B.349] भिक्खु पटिसङ्खा योनिसो आहारं आहारेति—'नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय; यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय। इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि, यात्रा च मे भविस्सति, अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु भोजने मत्तञ्ञू होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु जागरियं अनुयुत्तो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु दिवसं चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति; रत्तिया पठमं यामं

(विषय) को चक्षु से देखकर भी न उसके कारण से आकृष्ट होता है, न उसके आकार से कि कहीं यह मेरी अनिगृहीत चक्षुरिन्द्रिय के कारण अकुशल पाप-धर्मों का आवास न बन जाय; अत: वह ऐसे पापमय धर्मों से अपनी चक्षुरिन्द्रिय को बचाता है। उस पर निग्रह करता है। श्रोत्र से शब्द सुनकर भी... घ्राण से गन्ध सूँघकर, जिह्वा से रस को चखकर भी... काया से स्प्रष्टव्य विषय का स्पर्श करके भी... मन से मनोधर्मों को जानकर भी उनके कारणों की ओर आकृष्ट नहीं होता, न उनके आकारों से ही आकृष्ट होता है कि कहीं ये मेरी अनिगृहीत मन इन्द्रिय के कारण अकुशल पापमय धर्मों का आवास न बन जाय। अत: वह ऐसे पापमय धर्मों से अपनी मन इन्द्रिय को बचाता है। उस पर निग्रह करता है। भिक्षुओ! इस तरह वह भिक्षु अपनी इन्द्रियों पर संयम करता है। (२)

४. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अपने भोजन की मात्रा का पूर्ण ज्ञान रखता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सूक्ष्मता से सोच समझकर ही आहार का ग्रहण करता है। वह न क्रीड़ा (मौज-मस्ती) के लिये, न मद (अहङ्कार) के वश होकर, न मण्डन (शरीर को मोटा ताजा बनाने) के लिये (कि वह दूसरों को सुन्दर लगे), न अलङ्करण के लिये इसे ग्रहण करता है; अपितु वह केवल अपने शरीर की स्थिति के लिये, जीवनयापन के लिये, शरीर को नाश से बचाने के लिये तथा धर्मसाधना में सुविधा के लिये ही भोजन का ग्रहण करता है। वह सोचता है—'इस प्रकार के मात्रा-ज्ञान से मैं अपनी पुरानी वेदनाओं को नष्ट कर सकूँगा, तथा नयी वेदनाओं को उत्पन्न न होने दूँगा, इस तरह मेरी जीवनयात्रा भी चलती रहेगी, तथा साधना में भी सरलता रहेगी।' इस प्रकार, भिक्षुओ! वह भिक्षु भोजन की मात्रा का ज्ञाता कहलाता है। (३)

५. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु जागरणसम्पन्न कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु दिन में चंक्रमण या निषद्या (बैठक) के सहारे से आवरणीय धर्मों से अपने चित्त की रक्षा करता है, तथा

चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति; रत्तिया मज्झिमं यामं दक्खिणेन [N.43] पस्सेन सीहसेय्यं कप्पेति, पादे पादं अच्चाधाय, सतो सम्पजानो उट्ठानसञ्ञं मनसि करित्वा; रत्तिया पच्छिमं यामं पच्चुट्ठाय चङ्कमेन निसज्जाय आवरणीयेहि धम्मेहि चित्तं परिसोधेति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु जागरियं अनुयुत्तो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अभब्बो परिहानाय, निब्बानस्सेव सन्तिके ति।

"सीले पतिट्ठितो भिक्खु, इन्द्रियेसु च संवुतो।
भोजनम्हि च मत्तञ्ञू, जागरियं अनुयुञ्जति॥
"एवं विहारी आतापी, अहोरत्तमतन्दितो।
भावयं कुसलं धम्मं, योगक्खेमस्स पत्तिया॥
"अप्पमादरतो भिक्खु, पमादे भयदस्सि वा।
अभब्बो परिहानाय, निब्बानस्सेव सन्तिके" ति॥

[R.41] **८. पतिलीनसुत्तं** : १. "पनुण्णपच्चेकसच्चो, भिक्खवे, भिक्खु 'समवयसट्ठेसनो पस्सद्धकायसङ्खारो पतिलीनो' ति वुच्चति। कथं च, भिक्खवे, भिक्खु पनुण्णपच्चेकसच्चो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो यानि तानि पुथुसमणब्राह्मणानं पुथुपच्चेकसच्चानि, सेय्यथीदं—सस्सतो लोको ति वा, असस्सतो लोको ति वा, अन्तवा लोको ति वा,

---

रात्रि के प्रथम प्रहर चंक्रमण या निषद्या के द्वारा आवरणीय धर्मों से चित्त को बचाये रखता है; रात्रि के द्वितीय प्रहर में दक्षिण पार्श्व से सिंहशय्या से पैर पर पैर रखकर, स्मृति एवं सम्प्रजन्य के साथ उत्थानसंज्ञा को साधना द्वारा मन में रखता है तथा रात्रि के अन्तिम (पश्चिम) प्रहर में उठकर चंक्रमण एवं निषद्या के द्वारा आवरणीय धर्मों से स्वचत्ति की रक्षा करता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! वह भिक्षु जागरणसम्पन्न होता है। इस तरह, भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त भिक्षु कभी साधना से च्युत हो जाय—यह सम्भव नहीं है। वह तो निर्वाण तक पहुँच ही गया—ऐसा समझो॥"

"शीलसम्पन्न एवं इन्द्रियसंयत तथा भोजन की मात्रा जानने वाला एवं जागरणसम्पन्न भिक्षु साधनारत रहता है।

"इस प्रकार साधना करने वाला, उदयोगी, दिन रात सावधान रहकर कुशल धर्मों की भावना करता हुआ योगक्षेम (आसक्ति से मुक्ति) की प्राप्ति हेतु॥

"अप्रमादपूर्वक लगा हुआ भिक्षु यदि छोटे से छोटे प्रमाद से भी भय मानता है तो उसे साधनाच्युति में कोई भय नहीं मानना चाहिये; क्योंकि वह तो निर्वाण की समीपतम भूमिका में पहुँच चुका है॥"

८. प्रतिलीनसूत्र : : चार धर्म

"भिक्षुओ! जिस भिक्षु ने व्यभिचरित मतवादों (प्रत्येक सत्यों) को अपनी चिन्तनधारा से दूर हटा दिया हो, वह समवसृष्टैषण, प्रश्रब्धकायसंस्कार वाला एवं प्रतिलीन कहलाता है।

१. कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **प्रनुन्नप्रत्येकसत्य** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु ने अन्य मतवादी श्रमण ब्राह्मणों के ये व्यभिचरित मतवाद सुन रखे हों; जैसे—(१) यह लोक

अनन्तवा लोको ति वा, तं जीवं तं सरीरं ति वा, अञ्ञं जीवं अञ्ञं सरीरं ति वा, [B.350] होति तथागतो परं मरणा ति वा, न होति तथागतो परं मरणा ति वा, होति च न च होति तथागतो परं मरणा ति वा, नेव होति न न होति तथागतो परं मरणा ति वा; सब्बानि तानि नुण्णानि होन्ति पनुण्णानि चत्तानि वन्तानि मुत्तानि पहीनानि पटिनिस्सट्ठानि। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु पनुण्णपच्चेकसच्चो होति।

२. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु समवयसट्ठेसनो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो कामेसना पहीना होति, भवेसना पहीना होति, ब्रह्मचरियेसना पटिप्पस्सद्धा। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु समवयसट्ठेसनो होति।

३. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु पस्सद्धकायसङ्खारो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा [N.44] अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु पस्सद्धकायसङ्खारो होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु पतिलीनो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो अस्मिमानो पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पाद-धम्मो। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु पतिलीनो होति। पनुण्णपच्चेकसच्चो, भिक्खवे, भिक्खु 'समवयसट्ठेसनो पस्सद्धकायसङ्खारो पतिलीनो' ति वुच्चती ति।

शाश्वत है, (२) यह लोक शाश्वत नहीं है, (३) यह लोक अन्तवान् है, (४) यह लोक अन्तवान् नहीं है, (५) वही जीव, वही शरीर है, (६) जीव अन्य है, शरीर अन्य है, (७) तथागत मरणानन्तर होते हैं (तथागत का पुनर्जन्म होता है), (८) तथागत मरणानन्तर नहीं होते, (९) तथागत मरणानन्तर होते भी हैं, नहीं भी होते, (१०) तथागत मरणानन्तर नहीं भी होते या न नहीं भी होते—ये सब मतवाद उस भिक्षु ने अपनी चिन्तन धारा से दूर कर दिये हैं, छोड़ दिये हैं, मन से निकाल (वमन कर) दिये हैं, मुक्त कर दिये हैं, प्रहीण (नष्ट) कर दिये हैं, पूर्णत: त्याग दिये हैं। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु **प्रनुन्नप्रत्येकसत्य** कहलाता है। (१)

२. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **समवसृष्टैषण** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! जिस भिक्षु की कामैषणा भवैषणा एवं ब्रह्मचर्यैषणा नष्ट हो गयी हो, शान्त हो गयी हो; ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु 'समवसृष्टैषण' कहलाता है। (२)

३. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **प्रश्रब्धकायसंस्कार** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सुख एवं दु:ख के प्रहाण से पूर्व ही सौमनस्य (राग) एवं दौर्मनस्य (द्वेष) के अस्त (नष्ट) हो जाने से अदु:ख-असुखमय उपेक्षा स्मृति परिशुद्धिरूप चतुर्थध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'प्रश्रब्धकायसंस्कार' कहलाता है। (३)

(४) "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **प्रतिलीन** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु का अस्मिमान ('मैं हूँ'—यह अहङ्कार) मूलत: नष्ट हो जाता है, अभाव (लोप) ग्रस्त हो जाता है, तथा भविष्य में कभी उत्पन्न होने की स्थिति में नहीं रहता। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु 'प्रतिलीन' कहलाता

[R.42] "कामेसना भवेसना, ब्रह्मचरियेसना सह।
इति सच्चपरामासो, दिट्ठिट्ठाना समुस्सया॥
"सब्बरागविरत्तस्स, तण्हाक्खयविमुत्तिनो।
एसना पटिनिस्सट्ठा, दिट्ठिट्ठाना समूहता॥
"स वे सन्तो सतो भिक्खु पस्सद्धो अपराजितो।
मानाभिसमया बुद्धो, पतिलीनो ति वुच्चती" ति॥

[B.351] **९. उज्जयसुत्तं :** १. अथ खो उज्जयो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उज्जयो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—"भवं पि नो गोतमो यञ्ञं वण्णेती" ति?

२. "न खो अहं, ब्राह्मण, सब्बं यञ्ञं वण्णेमि; न पनाहं, ब्राह्मण, सब्बं यञ्ञं न वण्णेमि। यथारूपे खो, ब्राह्मण, यञ्ञे गावो हञ्ञन्ति, अजेळका हञ्ञन्ति, कुक्कुटसूकरा हञ्ञन्ति, विविधा पाणा सङ्घातं आपज्जन्ति; एवरूप खो अहं, ब्राह्मण, सारम्भं यञ्ञं न वण्णेमि। तं किस्स हेतु? एवरूपं हि, ब्राह्मण, सारम्भं यञ्ञं न उपसङ्कमन्ति अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ता।

३. "यथारूपे च खो, ब्राह्मण, यञ्ञे नेव गावो हञ्ञन्ति, न अजेळका हञ्ञन्ति,

---

है। भिक्षुओ! यह भिक्षु जिसने व्यभिचरित मतवादों को अपनी चिन्तनधारा से दूर हटा दिया हो; ऐसा भिक्षु समवसृष्टैषण, प्रश्रब्धकायसंस्कार एवं प्रतिलीन कहलाता है। (४)

"कामैषणा, भवैषणा एवं ब्रह्मचर्यैषणा के साथ यह उपर्युक्त व्यभिचरित सत्य दृष्टि के कारण एक स्थान पर संगृहीत हो जाता है॥

"जो सर्वविध राग से विरक्त हो चुका है, तृष्णाक्षय के कारण जो विमुक्ति प्राप्त कर चुका है उसके ये दृष्टिकारण (दृष्टिस्थान) विनष्ट हो चुके हैं॥

"ऐसा साधक भिक्षु शान्त, स्मृतिमान्, प्रश्रब्ध (गम्भीर) एवं मानाभिसमय के कारण बुद्ध (ज्ञानी) एवं प्रतिलीन कहलाता है॥"

९. उज्जयसूत्र : : हिंसात्मक यज्ञों का निषेध

१. तब उज्जय नामक ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर कुशल मङ्गल प्रश्नानन्तर एक ओर बैठने के बाद उसने भगवान् से पूछा—"क्या भो गौतम! आप भी हमारे द्वारा विहित यज्ञों के प्रशंसक हैं ना?"

२. नहीं, ब्राह्मण! मैं तुम लोगों द्वारा विहित सभी यज्ञों का प्रशंसक नहीं हूँ, न यही कहता हूँ कि सभी यज्ञ नहीं करने चाहिये। ब्राह्मण! जिन यज्ञों में गौओं का वध किया जाता है, भेड़ बकरियाँ काटी जाती हैं, शूकर एवं मुर्गे मारे जाते हैं तथा अन्य विविध प्राणियों का, उन यज्ञों के निमित्त, संहार किया जाता है, ब्राह्मण! ऐसे हिंसात्मक यज्ञों की मैं प्रशंसा नहीं करता। वह क्यों? वह इसलिये कि अर्हत् या अर्हन्मार्गारूढ कोई भिक्षु ऐसे हिंसात्मक यज्ञों में सम्मिलित नहीं हुआ करते।

न कुक्कुटसूकरा हञ्ञन्ति, न विविधा पाणा सङ्घातं आपज्जन्ति; एवरूपं खो अहं, [N.45] ब्राह्मण, निरारम्भं यञ्ञं वण्णेमि, यदिदं निच्चदानं अनुकुलयञ्ञं। तं किस्स हेतु? एवरूपं हि, ब्राह्मण, निरारम्भं यञ्ञं उपसङ्कमन्ति अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना ति।

"अस्समेधं पुरिसमेधं, सम्मापासं वाजपेय्यं निरग्गळं। [R.43]
महायञ्ञा महारम्भा, न ते होन्ति महप्फला॥
"अजेळका च गावो च, विविधा यत्थ हञ्ञरे।
न तं सम्मग्गता यञ्ञं, उपयन्ति महेसिनो॥
"ये च यञ्ञा निरारम्भा, यजन्ति अनुकुलं सदा।
अजेळका च गावो च, विविधा नेत्थ हञ्ञरे।
तं च सम्मग्गता यञ्ञं, उपयन्ति महेसिनो॥
"एतं यजेथ मेधावी, एसो यञ्ञो महप्फलो। [B.352]
एतं हि यजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो।
यञ्ञो च विपुलो होति, पसीदन्ति च देवता" ति॥ ●

१०. उदायीसुत्तं : १. अथ खो उदायी ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता ...पे०... एकमन्तं निसिन्नो खो उदायी ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच– "भवं पि नो गोतमो यञ्ञं वण्णेती" ति?

---

३. "और, ब्राह्मण! जिन यज्ञों में गौओं का वध नहीं किया जाता, भेड़-बकरियाँ नहीं काटी जाती, न शूकर या मुर्गे ही काटे जाते हैं तथा उन यज्ञों के निमित्त अन्य प्राणियों का भी संहार नहीं किया जाता; ऐसे हिंसारहित यज्ञों की मैं प्रशंसा करता हूँ। और, ब्राह्मण! ऐसा हिंसारहित यज्ञ, मेरी दृष्टि में, कुलपरम्परागत नित्य दान ही है। वह क्यों? वह इसलिये कि ऐसे हिंसारहित यज्ञों में ही अर्हत् या अर्हन्मार्गारूढ भिक्षु सम्मिलित हुआ करते हैं।

"अश्वमेध, पुरुषमेध, सम्यक्पाश एवं मर्यादाविहीन वाजपेय आदि हिंसात्मक महायज्ञ अधिक फलदायी नहीं होते॥

"जहाँ कि असङ्ख्य गौ, भेड़, बकरी काटी जाती हों ऐसे यज्ञों में ज्ञानी महर्षि सम्मिलित नहीं हुआ करते॥

(इसके विपरीत) "जो कुलपरम्परागत अहिंसात्मक महायज्ञ हैं जहाँ गौ, भेड़, बकरी आदि नहीं काटी जातीं, उनमें वे ज्ञानी महर्षि अवश्य सम्मिलित होते हैं॥

"बुद्धिमान् पुरुषों को ऐसे ही यज्ञ करने चाहिये; क्योंकि ऐसे ही यज्ञ महाफलदायी होते हैं। यजमान द्वारा किये गये ऐसे यज्ञ शुभ फल देनेवाले ही होते हैं, इनमें पाप का लेश भी नहीं होता। ऐसा यज्ञ भी विपुलता से निर्विघ्न समाप्त होता है तथा इसके परिणामस्वरूप देवता भी प्रसन्न होते हैं॥" ●

१०. उदायिसूत्र : : हिंसात्मक यज्ञों का निषेध

(2-6) १. तब उदायी ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ आया।... पूर्वसूत्रवत्...।

२. ''न खो अहं, ब्राह्मण, सब्बं यञ्ञं वण्णेमि; न पनाहं, ब्राह्मण, सब्बं यञ्ञं न वण्णेमि। यथारूपे खो, ब्राह्मण, यञ्ञे गावो हञ्ञन्ति, अजेळका हञ्ञन्ति, कुक्कुट-सूकरा हञ्ञन्ति, विविधा पाणा सङ्घातं आपज्जन्ति; एवरूपं खो अहं, ब्राह्मण, सारम्भं यञ्ञं न वण्णेमि। तं किस्स हेतु? एवरूपं हि, ब्राह्मण, सारम्भं यञ्ञं न उपसङ्कमन्ति अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना।

३. ''यथारूपे च खो, ब्राह्मण, यञ्ञे नेव गावो हञ्ञन्ति, न अजेळका हञ्ञन्ति, [N.46] न कुक्कुटसूकरा हञ्ञन्ति, न विविधा पाणा सङ्घातं आपज्जन्ति; एवरूपं खो अहं, ब्राह्मण, निरारम्भं यञ्ञं वण्णेमि, यदिदं निच्चदानं अनुकुलयञ्ञं। तं किस्स हेतु? एवरूपं हि, ब्राह्मण, निरारम्भं यञ्ञं उपसङ्कमन्ति अरहन्तो वा अरहत्तमग्गं वा समापन्ना ति।

''अभिसङ्खतं निरारम्भं, यञ्ञं कालेन कप्पियं।
[R.44] तादिसं उपसंयन्ति, सञ्ञता ब्रह्मचारयो॥
''विवट्टच्छदा ये लोके, वीतिवत्ता कुलं गतिं।
यञ्ञमेतं पसंसन्ति, बुद्धा यञ्ञस्स कोविदा॥
''यञ्ञे वा यदि वा सद्धे, हब्यं कत्वा यथारहं।
पसन्नचितो यजति, सुखेत्ते ब्रह्मचारिसु॥
[B.353] ''सुहुतं सुयिट्ठं सुप्पत्तं, दक्खिणेय्येसु यं कतं।
यञ्ञो च विपुलो होति, पसीदन्ति च देवता॥
''एतं यजित्वा मेधावी, सद्धो मुत्तेन चेतसा।
अब्याबज्झं सुखं लोकं, पण्डितो उपपज्जती'' ति॥

चक्कवग्गो चतुत्थो॥

---

२. ...पूर्वसूत्रवत्...।

३. ...पूर्वसूत्रवत्...। *[द्रोणसूत्र के समान यहाँ भी वह अविकल पाठ दुहरा लें।]*

''समय पर किया गया अहिंसात्मक यज्ञ ही फलप्रद होता है। ऐसे यज्ञों में ही संयत धर्मसाधक सम्मिलित हुआ करते हैं॥''

''लोक में धर्मोपदेश द्वारा भवपरम्परा को क्षीण करनेवाले, कुल एवं परम्परा को अतिक्रान्त करने वाले, यज्ञविद् बुद्ध ऐसे (अहिंसात्मक) यज्ञों की ही प्रशंसा किया करते हैं॥

''यज्ञ या किसी श्राद्ध में यथायोग्य आहुति (भोज्य अन्न) तय्यार कर, यजमान द्वारा प्रसन्न चित्त से सत्क्षेत्र में (भिक्षुओं में) दान कर देना चाहिये॥

''ऐसा भली प्रकार तय्यार किया हुआ तथा दानपात्रों को दिया अन्नदान रूप यज्ञ अतिशय फलदायी होता है। इससे देवता भी प्रसन्न होते हैं॥

''बुद्धिमान, श्रद्धालु यजमान पवित्र मन से ऐसा यज्ञ कर इस देहपात के बाद बाधारहित सुखमय देवलोक में उत्पन्न होता है॥

चक्रवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

चक्को सङ्गहो सीहो पसादो, वस्सकारेन पञ्चमं।
दोणो अपरिहानियो पतिलीनो, उज्जयो उदायिना ते दसा ति॥ •

५. रोहितस्सवग्गो

१. समाधिभावनासुत्तं : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, समाधिभावना। कतमा चतस्सो? अत्थि, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता दिट्ठधम्मसुखविहाराय संवत्तति; अत्थि, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता ञाणदस्सनप्पटिलाभाय संवत्तति; अत्थि, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता सतिसम्पजञ्ञाय संवत्तति; अत्थि, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता आसवानं खयाय संवत्तति।

२. ''कतमा च, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता [N.47, R.45] दिट्ठधम्मसुखविहाराय संवत्तति? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता दिट्ठधम्मसुखविहाराय संवत्तति।

३. ''कतमा च, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता [B.354] ञाणदस्सनप्पटिलाभाय संवत्तति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आलोकसञ्ञं मनसि करोति,

---

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. चक्रसूत्र, २. संग्रहसूत्र, ३. सिंहनादसूत्र, ४. प्रसादसूत्र, ५. वर्षकारसूत्र, ६. द्रोणसूत्र, ७. अपरिहानीयसूत्र, ८. प्रतिलीन सूत्र, ९. उज्जयसूत्र एवं १०. उदायिसूत्र॥ •

५. रोहिताश्ववर्ग

१. समाधिभावनासूत्र : : चार समाधि भावनाएँ

१. ''भिक्षुओ! ये चार समाधिभावनाएँ होती हैं। कौन चार? (१) भिक्षुओ! एक समाधिभावना इसी जन्म में सत्य के साक्षात्कारहेतु पूर्ण की जाती है। (२) भिक्षुओ! एक समाधिभावना ज्ञानदर्शन-प्रतिलाभ के लिये पूर्ण की जाती है। (३) भिक्षुओ! एक समाधिभावना स्मृतिसम्प्रजन्य की पूर्णता के लिये की जाती है। (४) तथा, भिक्षुओ! एक समाधिभावना आश्रवों के क्षयहेतु पूर्ण की जाती है।

२. ''भिक्षुओ! कौन सी समाधिभावना पूर्ण किये जाने पर **इसी जन्म में सत्य का साक्षात्कार** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु कामभोगों एवं पापमय अकुशल धर्मों से पृथक् होकर ...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान तक पहुँचकर साधना करता है। भिक्षुओ! यह साधना इसी जन्म में सत्य के साक्षात्कार हेतु पूर्ण की जाती है। (१)

३. ''भिक्षुओ! कौन सी समाधिभावना **ज्ञानदर्शन-प्रतिलाभ** हेतु की जाती है? यहाँ,

दिवासञ्ञं अधिट्ठाति—यथा दिवा तथा रत्ति, यथा रत्ति तथा दिवा। इति विवटेन चेतसा अपरियोनद्धेन सप्पभासं चित्तं भावेति। अयं, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता ञाणदस्सनप्पटिलाभाय संवत्तति।

४. "कतमा च, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता सतिसम्पजञ्ञाय संवत्तति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो विदिता वेदना उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति; विदिता सञ्ञा ...पे०... विदिता वितक्का उप्पज्जन्ति, विदिता उपट्ठहन्ति, विदिता अब्भत्थं गच्छन्ति। अयं, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता सतिसम्पजञ्ञाय संवत्तति।

५. "कतमा च, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता बहुलीकता आसवानं खयाय संवत्तति? इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सी विहरति—'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति वेदना, इति वेदनाय समुदयो, इति वेदनाय अत्थङ्गमो; इति सञ्ञा, इति सञ्ञाय समुदयो, इति सञ्ञाय अत्थङ्गमो; इति सङ्खारा, इति सङ्खारानं समुदयो, इति सङ्खारानं अत्थङ्गमो; इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो ति। अयं, भिक्खवे, समाधिभावना भाविता

भिक्षुओ! कोई भिक्षु आलोकसंज्ञा को मन में धारण करने हेतु दिवासंज्ञा की भावना करता है कि जैसा दिन है वैसी ही रात्रि भी है, या जैसी रात्रि है वैसा ही दिन भी है। इस प्रकार विवृत एवं मुक्त चित्त से आलोक(प्रकाश)मय चित्त की भावना करनी चाहिये। भिक्षुओ! यह साधना किये जाने पर ज्ञानदर्शन का लाभ हो जाता है। (२)

४. "भिक्षुओ! कौन सी साधना किये जाने पर साधक भिक्षु को **स्मृतिसम्प्रजन्य में पूर्णता** प्राप्त हो जाती है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को विदित (ज्ञात) वेदनाएँ... ज्ञात संज्ञाएँ... ज्ञात वितर्क उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने की प्रतीक्षा करते हैं, कुछ उत्पन्न होकर विनष्ट हो जाते हैं। भिक्षुओ! इस प्रकार यह समाधिभावना, साधना किये जाने पर, भिक्षु के स्मृतिसम्प्रजन्य में पूर्णता ला देती हैं। (३)

५. "फिर, भिक्षुओ! भिक्षु की कौन सी साधना उसके **आश्रवों के क्षय में पूर्णता** ला देती हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु पाँच उपादानस्कन्धों के उत्पाद एवं विनाश पर ध्यान देता हुआ इस प्रकार साधना करता है—'यह रूप है', 'यह रूप की उत्पत्ति है', 'यह रूप का निरोध है', 'यह वेदना है'... 'यह संज्ञा है'... 'यह संस्कार है'... 'यह विज्ञान है', 'यह विज्ञान की उत्पत्ति है', 'यह विज्ञान का निरोध है'। भिक्षुओ! उस भिक्षु द्वारा की गयी यह साधना उसको आश्रवक्षय की पूर्णता तक पहुँचा देती है। (४)

"भिक्षुओ! ये चार समाधिभावनाएँ होती हैं। इसी को लक्ष्य कर मैंने **सुत्तनिपात** (ग्रन्थ) के **पारायणवर्ग के पूर्णक माणव प्रश्न** में यह कहा है—

"लोक में ऊँच नीच का विचार करने पर, यहाँ जिस साधक के मन में कोई इञ्जित (हलचल) नहीं हो पाती; ऐसा साधक ही लोक में शान्त, वीतराग, दुःखरहित (अनीघ) एवं

बहुलीकता आसवानं खयाय संवत्तति। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो समाधिभावना। इदं च पन मेतं, भिक्खवे, सन्धाय भासितं **पारायने पुण्णकपञ्हे** (सु.नि., पु.मा.पु., ७३ गा.)—

सङ्खाय लोकस्मि परोपरानि, यस्सिञ्जितं नत्थि कुहिञ्चि लोके। [N.48]
सन्तो विधूमो अनिघो निरासो, अतारि सो जातिजरं ति ब्रूमी'' ति॥ [R.46]●

२. पञ्हब्याकरणसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, पञ्हब्याकरणानि। [B.355] कतमानि चत्तारि? अत्थि, भिक्खवे, पञ्हो एकंसब्याकरणीयो; अत्थि, भिक्खवे, पञ्हो विभज्जब्याकरणीयो; अत्थि, भिक्खवे, पञ्हो पटिपुच्छाब्याकरणीयो; अत्थि, भिक्खवे, पञ्हो ठपनीयो। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि पञ्हब्याकरणानी ति।

''एकंसवचनं एकं, विभज्जवचनापरं।
ततियं पटिपुच्छेय्य, चतुत्थं पन ठापये॥
''यो च तेसं तत्थ तत्थ, जानाति अनुधम्मतं।
चतुपञ्हस्स कुसलो, आहु भिक्खुं तथाविधं॥
''दुरासदो दुप्पसहो, गम्भीरो दुप्पधंसियो।
अथो अत्थे अनत्थे च, उभयस्स होति कोविदो॥
''अनत्थं परिवज्जेति, अत्थं गण्हाति पण्डितो।
अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितो ति पवुच्चती'' ति॥ ●

३. पठमकोधगरुसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना

विगततृष्ण कहलाता है। तथा 'इसने जन्म मरण परम्परा एवं जरा (बुढ़ापा) को पार कर लिया है'—ऐसा मैं कहता हूँ॥''' (सु० नि०, पा० व०, पु० प०, ७३ गा०) ●

२. प्रश्नव्याकरणसूत्र : : चतुर्विध प्रश्न

१. भिक्षुओ! ये चार **प्रश्नव्याकरण** कहलाते हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! एक प्रश्न होता है जिसका निश्चित रूप से उत्तर दिया जाता है; (२) एक प्रश्न होता है जिसका विभाजन कर उत्तर दिया जाता है; (३) एक प्रश्न होता है जिसका प्रश्नोत्तर के माध्यम से उत्तर दिया जाता है; (४) और, एक प्रश्न होता है जो स्थापनीय (रोकने योग्य) कहलाता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चार प्रश्नव्याकरण होते हैं।

''इनमें प्रथम, निश्चित रूप से उत्तर देने योग्य; द्वितीय, विभाजन कर उत्तर देने योग्य; तृतीय, प्रश्नोत्तर के रूप में उत्तर देने योग्य; तथा चतुर्थ स्थापनीय (न उत्तर देने योग्य) होता है॥

''जो उन (प्रश्नों) की वहाँ वहाँ धर्मानुकूलता जानता है ऐसे भिक्षु को हम चारों प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने में कुशल मानते हैं॥

''जो पास पहुँचने एवं सहन करने में कठिन, गम्भीर, कठिनता से परास्त किया जा सकने योग्य, अर्थ एवं अनर्थ—दोनों को जानने में कुशल हो॥

''वहाँ जो अनर्थ को त्याग देता है, अर्थ को ग्रहण कर लेता है—इस प्रकार अर्थ के विषय में स्पष्ट ज्ञान रखने वाला 'पण्डित' कहलाता है॥'' ●

लोकस्मिं। कत्तमे चत्तारो? कोधगरु न सद्धम्मगरु, मक्खगरु न सद्धम्मगरु, लाभगरु न सद्धम्मगरु, सक्कारगरु न सद्धम्मगरु। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

२. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? सद्धम्मगरु न कोधगरु, सद्धम्मगरु न मक्खगरु, सद्धम्मगरु न लाभगरु, सद्धम्मगरु न सक्कारगरु।

[N.49,R.47] ३. इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

''कोधमक्खगरू भिक्खू, लाभसक्कारगारवा।
न ते धम्मे विरूहन्ति, सम्मासम्बुद्धदेसिते॥
[B.356] ''ये च सद्धम्मगरुनो, विहंसु विहरन्ति च।
ते वे धम्मे विरूहन्ति, सम्मासम्बुद्धदेसिते'' ति॥

४. दुतियकोधगरुसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, असद्धम्मा। कतमे चत्तारो? कोधगरुता न सद्धम्मगरुता, मक्खगरुता न सद्धम्मगरुता, लाभगरुता न सद्धम्मगरुता, सक्कारगरुता न सद्धम्मगरुता। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो असद्धम्मा।

२. 'चत्तारोमे, भिक्खवे, सद्धम्मा। कतमे चत्तारो? सद्धम्मगरुता न कोधगरुता,

---

३. प्रथम क्रोधगुरुसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं। कौन से चार? (१) जो क्रोधगुरु हो, परन्तु सद्धर्मगुरु न हो; (२) म्रक्ष (दूसरे का तिरस्कार) में गुरु, परन्तु सद्धर्म में गुरु न हो; (३) स्वकीय लाभ में गुरु, परन्तु सद्धर्म में गुरु न हो; एवं स्वकीय सत्कार प्राप्ति में गुरु हो, परन्तु सद्धर्म में गुरु न हो। भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल लोक में होते हैं।

२. ''भिक्षुओ! लोक में ये चार प्रकार के पुद्गल भी होते हैं। कौन से चार? (१) जो सद्धर्म गुरु हो, परन्तु क्रोधगुरु न हो; (२) सद्धर्मगुरु हो, परन्तु म्रक्षगुरु न हो; (३) जो सद्धर्मगुरु हो, परन्तु लाभगुरु न हो; (४) एवं जो सद्धर्मगुरु हो, परन्तु सत्कारगुरु न हो।

३. ''भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में होते हैं।

''इनमें जो अपने क्रोध, म्रक्ष, लाभ एवं सत्कार की ओर ही अधिक ध्यान देते हों, परन्तु सद्धर्म की ओर ध्यान न देते हों, उन से बुद्धोपदिष्ट सद्धर्म वृद्धि नहीं प्राप्त कर सकता है॥

''परन्तु जिन साधकों ने बुद्धोपदिष्ट सद्धर्म के प्रति अधिक से अधिक ध्यान देकर साधना की है, या कर रहे हैं वे ही सद्धर्म में वृद्धि कर सकते हैं॥

४. द्वितीय क्रोधगुरुसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! ये चार **असद्धर्म** होते हैं। कौन से चार? (१) क्रोध के प्रति ही गौरव हो, सद्धर्म के प्रति न हो; (२) म्रक्ष के प्रति ही गौरव हो, सद्धर्म के प्रति न हो, (२) अपने लाभ के प्रति ही गौरव हो, सद्धर्म के प्रति न हो; (४) एवं अपने सत्कार के प्रति ही गौरव हो, सद्धर्म के प्रति न हो। भिक्षुओ! ये कहलाते हैं चार असद्धर्म।

सद्धम्मगरुता न मक्खगरुता, सद्धम्मगरुता न लाभगरुता, सद्धम्मगरुता न सक्कारगरुता। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो सद्धम्मा ति।

"कोधमक्खगरु भिक्खु, लाभसक्कारगारवो।
सुखेत्ते पूतिबीजं व, सद्धम्मे न विरूहति॥
"ये च सद्धम्मगरुनो, विहंसु विहरन्ति च।
ते वे धम्मे विरूहन्ति, स्नेहान्वयमिवोसधा" ति॥

५. रोहितस्ससुत्तं : १. "एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो रोहितस्सो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो रोहितस्सो देवपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—

२. "यत्थ नु खो, भन्ते, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न [N.50,R.48] उपपज्जति, सक्का नु खो सो, भन्ते, गमनेन लोकस्स अन्तो ञातुं वा दट्ठुं वा पापुणितुं वा" ति?

---

२. "भिक्षुओ! ये चार **सद्धर्म** कहलाते हैं। कौन चार? सद्धर्म के प्रति ही गौरव हो, क्रोध के प्रति गौरव नहीं; (२) सद्धर्म के प्रति ही गौरव हो, म्रक्ष के प्रति नहीं; (३) सद्धर्म के प्रति ही गौरव हो, अपने लाभ के प्रति नहीं; एवं (४) सद्धर्म के प्रति ही गौरव हो, अपने सत्कार के प्रति नहीं। भिक्षुओ! ये होते हैं चार सद्धर्म॥

"बहुत से भिक्षु अपने क्रोध, म्रक्ष, लाभ एवं सत्कार के प्रति गौरव रखते हैं, सद्धर्म के प्रति नहीं। ऐसे भिक्षुओं से सद्धर्म की वैसे ही वृद्धि नहीं होती जैसे अच्छे खेत में भी सड़ा हुआ बीज उन्नति नहीं करता॥

(परन्तु) "बहुत से भिक्षु (अपने क्रोध, म्रक्ष, लाभ एवं सत्कार की अपेक्षा न करते हुए) सद्धर्म के गौरव का ही ध्यान रखते हैं, ऐसे भिक्षु सद्धर्म की उसी प्रकार उन्नति करते हैं जैसे कोई ओषधि का गुल्म जल पाकर बढ़ता जाता है॥"

५. रोहिताश्वसूत्र : : लोक का अन्त

"एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कोई रोहिताश्व नामक सुन्दर देवपुत्र चाँदनी रात में समस्त जेतवन को जगमगाता हुआ भगवान् के सम्मुख आया। आकर, प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़ा हुआ वह देवपुत्र भगवान् से यह जिज्ञासा करने लगा—

२. भन्ते! जहाँ न कोई जन्मता है, न जीर्ण (बुड्ढा) होता है, न मरता है, न कोई (दूसरी योनि में) च्युत होता है, न वहाँ उत्पन्न होता है, क्या, भन्ते! यह शक्य है कि वह पैदल चलकर लोक का वह अन्त जान ले, देख ले या प्राप्त कर ले?"

"नहीं, आयुष्मन्! जहाँ न कोई जन्मता है...पूर्ववत्... प्राप्त कर सके। मैं ऐसा कहता हूँ।"

''यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी'' ति।

३. ''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावसुभाषितं चिदं, भन्ते, भगवता—'यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जायति न मीयति च चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी' ति।

४. ''भूतपुब्बाहं, भन्ते रोहितस्सो नाम इसि अहोसिं भोजपुत्तो, इद्धिमा वेहासङ्गमो। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपो जवो अहोसि, सेय्यथापि नाम दळ्हधम्मा धनुग्गहो सिक्खितो कतहत्थो कतूपासनो लहुकेन असनेन अप्पकसिरेन तिरियं तालच्छायं अतिपातेय्य। एवरूपो पदवीतिहारो अहोसि, सेय्यथापि नाम पुरत्थिमा समुद्दा पच्छिमो समुद्दो। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपेन जवेन समन्नागतस्स एवरूपेन च पदवीतिहारेन एवरूपं इच्छागतं उप्पज्जि—'अहं गमनेन लोकस्स अन्तं पापुणिस्सामी' ति। सो खो अहं, भन्ते, अञ्ञत्रेव असितपीतखायितसायिता अञ्ञत्र उच्चारपस्सावकम्मा अञ्ञत्र निद्दाकिलमथ-पटिविनोदना वस्ससतायुको वस्ससतजीवी वस्ससतं गन्त्वा अप्पत्वा व लोकस्स अन्तं अन्तरायेव कालङ्कतो।

५. ''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! याव सुभासितं चिदं, भन्ते, भगवता—'यत्थं खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी''' ति।

६. '''यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति,

---

३. ''आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! आपने बहुत अच्छा कहा—'जहाँ न कोई जन्मता है ...पूर्ववत्... प्राप्त कर सके—मैं ऐसा कहता हूँ।'

४. ''भन्ते! पहले मैं ऋषि रोहिताश्व नाम से भोज का पुत्र हुआ था। उस समय मैं ऋद्धि-सम्पन्न एवं आकाशचारी भी था। उस समय मुझमें इतना जव (सामर्थ्य) था कि जैसे कोई दृढाभ्यासी, शिक्षित, हस्तलाघव एवं अभ्यास से सम्पन्न धनुर्धारी छोटे से साधारण वाण से गहरी छायावाले तिरछे ताड़वृक्ष को काटकर गिरा दे। मेरे पैरों में चलने की इतनी शक्ति थी, मैं एक छलांग में ही पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक पहुँच सकता था। ऐसी सामर्थ्य वाले मुझको यह विचार (सङ्कल्प) मन में हुआ—'क्यों न मैं गमन के द्वारा (पैरों से चलकर) लोक का अन्त देखूँ।' वह मैं, भन्ते! कहीं खाना पीना करता, आगे चलकर कहीं मैं शौचादि से निवृत्त होता, कहीं शयन तथा विश्राम कर अपने शरीर का आलस्य मिटाता। इस प्रकार सौ वर्ष की आयुवाला मैं सौ वर्ष तक जीवित रहकर सौ वर्ष तक निरन्तर चलता रहा; परन्तु लोक का अन्त प्राप्त नहीं कर सका और मैं इस यात्रा के मध्य में ही कालकवलित हो गया।

५. आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! आपने बहुत ही उचित कहा है—'जहाँ न कोई जन्मता है ...पूर्ववत्... प्राप्त कर सके—मैं ऐसा कहता हूँ'।''

६. '' 'आयुष्मन्! जहाँ न कोई जन्मता है ...पूर्ववत्... प्राप्त कर सके'—ऐसा मैं कहता हूँ।

नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं' ति वदामि। न चाहं, आवुसो, [N.51] अप्पत्वा व लोकस्स अन्तं दुक्खस्स अन्तकिरियं वदामि। अपि चाहं, आवुसो, इमस्मिंयेव ब्याममत्ते कळेवरे ससञ्ञिम्हि समनके लोकं च पञ्ञापेमि लोकसमुदयं च लोकनिरोधं च लोकनिरोधगामिनिं च पटिपदं ति।

"गमनेन न पत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं। [R.49]
न च अप्पत्वा लोकन्तं, दुक्खा अत्थि पमोचनं॥

"तस्मा ह वे लोकविदू सुमेधो, लोकन्तगू वुसितब्रह्मचरियो। [B.358]
लोकस्स अन्तं समितावि ञत्वा, नासीसती लोकमिमं परं चा" ति॥ ●

६. **दुतियरोहितस्ससुत्तं** : १. अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन भिक्खू आमन्तेसि—"इमं, भिक्खवे, रत्तिं रोहितस्सो देवपुत्तो अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो, भिक्खवे, रोहितस्सो देवपुत्तो मं एतदवोच—'यत्थ नु खो, भन्ते, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, सक्का नु खो सो, भन्ते, गमनेन लोकस्स अन्तो ञातुं वा दट्ठुं वा पापुणितुं वा' ति ? एवं वुत्ते अहं, भिक्खवे, रोहितस्सं देवपुत्तं एतदवोचं—'यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी' ति। एवं वुत्ते, भिक्खवे, रोहितस्सो देवपुत्तो मं एतदवोच—'अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! याव सुभासितं चिदं, भन्ते, भगवता—यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामि।

अथ च, आयुष्मन्! मैं यह भी कहता हूँ कि लोक का अन्त जाने विना भी पुरुष अपने दुःखों का अन्त कर सकता है। अब तुम ही देखो न, आयुष्मन्! मैं इस छोटे से व्याम (लम्बाई चौड़ाई का एक माप) मात्र शरीर में स्थित संज्ञायुक्त मन से लोक को, लोक की उत्पत्ति को, लोक के निरोध को, तथा लोकनिरोधगामी मार्ग को जान चुका हूँ।

"पदयात्रा के द्वारा लोक का अन्त कभी जाना सुना या देखा नहीं जा सकता। न यही बात हैं कि इस लोक का अन्त जाने विना दुःखों से मुक्त न हुआ जा सके।

"अतः मेधावी (बुद्धिमान्), लोकज्ञ साधक धर्मसाधना के द्वारा भी लोक का अन्त जान सकता है, देख सकता है। ऐसा शान्त (समितावि) पुरुष लोक का अन्त जानकर भी दुःखों के अन्त के लिये इस लोक या परलोक से कोई आशा (अपेक्षा) नहीं रखता॥" ●

६. द्वितीय रोहिताश्वसूत्र : : पदयात्रा से लोक का अन्त जानना असम्भव

१. तब भगवान् ने उस रात्रि के बीतने पर, भिक्षुओं को यों उपदेश किया—"भिक्षुओ! इस विगत रात्रि में रोहिताश्व नामक देवपुत्र...पूर्वसूत्रवत्...॥

[N.52] २. 'भूतपुब्बाहं, भन्ते, रोहितस्सो नाम इसि अहोसिं भोजपुत्तो इद्धिमा वेहासङ्गमो। तस्स मय्हं, भन्ते, एवरूपो जवो अहोसि, सेय्यथापि नाम दळ्हधम्मा धनुग्गहो सिक्खितो [B.359] कतहत्थो कतूपासनो लहुकेन असनेन अप्पकसिरेन तिरियं तालच्छायं अतिपातेय्य। एवरूपो पदवीतिहारो अहोसि, सेय्यथापि नाम पुरत्थिमा समुद्दा पच्छिमो समुद्दो। तस्स मय्हं, [R.50] भन्ते, एवरूपेन जवेन समन्नागतस्स एवरूपेन च पदवीतिहारेन एवरूपं इच्छागतं उप्पज्जि—अहं गमनेन लोकस्स अन्तं पापुणिस्सामी ति। सो खो अहं, भन्ते, अञ्ञत्रेव असितपीतखायितसायिता अञ्ञत्र उच्चारपस्सावकम्मा अञ्ञत्र निद्दाकिलमथपटिविनोदना वस्ससतायुको वस्ससतजीवी वस्ससतं गन्त्वा अप्पत्वा व लोकस्स अन्तं अन्तरायेव कालङ्कतो।'

३. 'अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! याव सुभासितं चिदं, भन्ते, भगवता—यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी' ति। एवं वुत्ते अहं, भिक्खवे, रोहितं देवपुत्तं एतदवोचं—'यत्थ खो, आवुसो, न जायति न जीयति न मीयति न चवति न उपपज्जति, नाहं, तं गमनेन लोकस्स अन्तं ञातेय्यं दट्ठेय्यं पत्तेय्यं ति वदामी ति। न चाहं, आवुसो, अप्पत्वा व लोकस्स अन्तं दुक्खस्सन्तकिरियं वदामि। अपि चाहं, आवुसो, इमस्मिंयेव ब्याममत्ते कळेवरे ससञ्ञिम्हि समनके लोकं च पञ्ञापेमि लोकसमुदयं च लोकनिरोधं च लोकनिरोधगामिनिं च पटिपदं ति।

'गमनेन न पत्तब्बो, लोकस्सन्तो कुदाचनं।
न च अप्पत्वा लोकन्तं, दुक्खा अत्थि पमोचनं॥
'तस्मा हवे लोकविदू सुमेधो, लोकन्तगू वुसितब्रह्मचरियो।
लोकस्स अन्तं समितावि ञत्वा, नासीसती लोकमिमं परं चा''' ति॥ ●

[N.58] ७. **सुविदूरसुत्तं** : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, सुविदूरविदूरानि। कतमानि चत्तारि? नभं च, भिक्खवे, पथवी च; इदं पठमं सुविदूरविदूरे। ओरिमं च, भिक्खवे, तीरं समुद्दस्स पारिमं च; इदं दुतियं सुविदूरविदूरे। यतो च, भिक्खवे, वेरोचनो अब्भुदेति यत्थ च अत्थमेति; इदं ततियं सुविदूरविदूरे। सतं च, भिक्खवे, धम्मो असतं च धम्मो; इदं चतुत्थं [B.360] सुविदूरविदूरे। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि सुविदूरविदूरानी ति।

[इस सूत्र का अविकल पाठ अनुपद में पठित **प्रथमरोहिताश्वसूत्र** के समान ही है। अतः वहाँ ही देखें।] ●

७. सुविदूरसूत्र : : **चार सुविदूरविदूर**

१. ''भिक्षुओ! ये चार अतिशय दूरी पर स्थित हैं। कौन चार? (१) पृथ्वी और आकाश, भिक्षुओ! परस्पर बहुत दूर हैं—यह प्रथम सुविदूरविदूर है। भिक्षुओ! समुद्र का यह इधर का किनारा तथा वह उधर का किनारा—दोनों परस्पर अत्यधिक दूर हैं—यह द्वितीय सुविदूरविदूर हैं। (३) सूर्य

"नभं च दूरे पथवी च दूरे, पारं समुद्दस्स तदाहु दूरे। [R.51]
यतो च वेरोचनो अब्भुदेति, पभङ्करो यत्थ च अत्थमेति।
ततो हवे दूरतरं वदन्ति, सतं च धम्मं असतं च धम्मं॥
"अब्यायिको होति सतं समागमो, यावा पि तिट्ठेय्य तथेव होति।
खिप्पं हि वेति असतं समागमो, तस्मासतं धम्मो असब्भि आरका" ति॥

८. **विसाखसुत्तं** : १. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन आयस्मा विसाखो पञ्चालपुत्तो उपट्ठानसालायं भिक्खू धम्मिया कथाय सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति, पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया परियापन्नाय अनिस्सिताय। अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन उपट्ठानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—

२. "को नु खो, भिक्खवे, उपट्ठानसालायं भिक्खू धम्मिया कथाय [N.54] सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय [B.361] अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया परियापन्नाय अनिस्सिताया" ति?

"आयस्मा, भन्ते, विसाखो पञ्चालपुत्तो उपट्ठानसालायं भिक्खू धम्मिया कथाय

जहाँ उदय होता है तथा जहाँ अस्त होता है—ये दोनों स्थान अत्यधिक दूर हैं—यह तृतीय सुविदूरविदूर है। तथा (४) सज्जनों का धर्म एवं असज्जनों का धर्म—परस्पर बहुत दूर है—यह चतुर्थ सुविदूरविदूर है। भिक्षुओ! ये चार सुविदूरविदूर कहलाते हैं।

"आकाश और पृथ्वी परस्पर दूर हैं। समुद्र का यह किनारा और वह किनारा परस्पर बहुत दूर हैं। सूर्य जहाँ से उदय होता है तथा जहाँ अस्त होता है, ये दोनों स्थान परस्पर बहुत दूर है। इसी प्रकार, सज्जनों तथा असज्जनों के धर्म भी परस्पर बहुत दूरी रखते हैं॥

"इनमें सत्सङ्ग (सज्जनों का सङ्ग) अव्यय (अविनाशी) होता है। जैसा प्रथम दिन था, वैसा ही अन्तिम समय तक रहता है, इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। परन्तु असत्सङ्ग (असज्जनों का सङ्ग) विनाशी अत एव क्षण क्षण परिवर्तित होता रहता है, अतः यह असत्सङ्ग दूर से ही त्यागने योग्य है॥" ●

८. विशाखसूत्र : : सद्धर्म ऋषिपताका के समान

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् विशाख पाञ्चालपुत्र उपट्ठानशाला (सभाभवन) भिक्षुओं को धार्मिक कथा सुना रहे थे, धर्म के प्रति उत्साहित कर रहे थे, समुत्तेजित कर रहे थे, सन्तुष्ट कर रहे थे। उनकी वाणी सभ्य, स्पष्ट एवं सुसंस्कृत, अर्थबोधक भाव प्रकट करने में समर्थ एवं धर्म पर आधृत थी। तब भगवान् सायङ्काल दैनिक धर्मसाधना से निवृत्त होकर उपस्थानशाला में आये, आकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। वहाँ विराजकर भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—

२. "भिक्षुओ! उपस्थानशाला में कौन धार्मिक कथा ...पूर्ववत्... धर्म पर आधृत थी?"

सन्दस्सेति समादपेति समुत्तेजेति सम्पहंसेति पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया परियापन्नाय अनिस्सिताया'' ति।

३. अथ खो भगवा आयस्मन्तं विसाखं पञ्चालपुत्तं एतदवोच—''साधु साधु, विसाख! साधु खो त्वं, विसाख, भिक्खू धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि पोरिया वाचाय विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया परियापन्नाय अनिस्सिताया ति।

''नाभासमानं जानन्ति, मिस्सं बालेहि पण्डितं।
भासमानं च जानन्ति, देसेन्तं अमतं पदं॥
''भासये जोतये धम्मं, पग्गण्हे इसिनं धजं।
सुभासितधजा इसयो, धम्मो हि इसिनं धजो'' ति॥

[R.52] **९. विपल्लाससुत्तं :** १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, सञ्ञाविपल्लासा चित्तविपल्लासा दिट्ठिविपल्लासा। कतमे चत्तारो? अनिच्चे, भिक्खवे, निच्चं ति सञ्ञा-विपल्लासो चित्तविपल्लासो दिट्ठिविपल्लासो; दुक्खे, भिक्खवे, सुखं ति सञ्ञाविपल्लासो चित्तविपल्लासो दिट्ठिविपल्लासो; अनत्तनि, भिक्खवे, अत्ता ति सञ्ञाविपल्लासो चित्त-विपल्लासो दिट्ठिविपल्लासो; असुभे, भिक्खवे, सुभं ति सञ्ञाविपल्लासो चित्तविपल्लासो चित्तविपल्लासो दिट्ठिविपल्लासो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो सञ्ञाविपल्लासा चित्त-विपल्लासा दिट्ठिविपल्लासा।

२. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, नसञ्ञाविपल्लासा नचित्तविपल्लासा नदिट्ठिविपल्लासा।

''भन्ते! आयुष्मान् विशाख उपस्थानशाला में ...पूर्ववत्... धर्म पर आधृत थी।''

३. तब भगवान् ने आयुष्मान् विशाख को यों कहा—''साधु, साधु, विशाख! तुमने बहुत अच्छा किया कि तुम ने धार्मिक कथा का व्याख्यान कर भिक्षुओं को उत्साहित, समुत्तेजित एवं सन्तुष्ट किया। तुम्हारी वाणी भी सभ्य... पूर्ववत्... धर्म पर आधृत थी।

''मूर्खों के साथ बैठे हुए किसी पण्डित को भाषण के विना कोई नहीं जान पाता। वह जब निर्वाणविषयक अमृतपद व्याख्यान करने लगता है तभी लोग उसकी वास्तविकता (पाण्डित्य) जान पाते हैं।

''अत: धार्मिक व्याख्यान द्वारा इस सद्धर्म को (जनता में) प्रकाशित करना चाहिये। इस प्रकार इस ऋषियों के ध्वज को दृढ़ता से पकड़े रखना चाहिये। यह धर्मभाषण ही ऋषियों की ध्वजा है। इसी कारण ये ऋषि धर्मध्वज कहलाते हैं॥''

९. विपर्यासंसूत्र : : चार विपर्यास (विपरीतता)

''भिक्षुओ! ये चार विपर्यास (विपरीतताएँ) हैं; जैसे—१. संज्ञाविपर्यास, २. चित्त-विपर्यास एवं ३. दृष्टिविपर्यास। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! **अनित्य में नित्य**—ऐसा संज्ञाविपर्यास, चित्तविपर्यास एवं दृष्टिविपर्यास। (२) भिक्षुओ! **दुःख में सुख**—ऐसा संज्ञा... चित्त... एवं दृष्टिविपर्यास। (३) भिक्षुओ! **अनात्मपदार्थ को सात्मपदार्थ मानना**—ऐसा संज्ञा ...चित्त... एवं

कतमे चत्तारो? अनिच्चे, भिक्खवे, अनिच्चं ति नसञ्ञाविपल्लासो नचित्तविपल्लासो नदिट्ठिविपल्लासो; दुक्खे, भिक्खवे, दुक्खं ति नसञ्ञाविपल्लासो नचित्तविपल्लासो न [N.55] दिट्ठिविपल्लासो; अनत्तनि, भिक्खवे, अनत्ता ति नसञ्ञाविपल्लासो, नचित्ताविपल्लासो, नदिट्ठिविपल्लासो; असुभे, भिक्खवे, असुभं ति नसञ्ञाविपल्लासो नचित्तविपल्लासो नदिट्ठिविपल्लासो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो नसञ्ञाविपल्लासा नचित्तविपल्लासा [B.362] नदिट्ठिविपल्लासा ति।

''अनिच्चे निच्चसञ्ञिनो, दुक्खे च सुखसञ्ञिनो।
अनत्तनि च अत्ता ति, असुभे सुभञ्ञिनो।
मिच्छादिट्ठिहता सत्ता, खित्तचित्ता विसञ्ञिनो॥
''ते योगयुत्ता मारस्स, अयोगक्खेमिनो जना।
सत्ता गच्छन्ति संसारं, जातिमरणगामिनो॥
''यदा च बुद्धा लोकस्मिं, उप्पज्जन्ति पभङ्करा।
ते इमं धम्मं पकासेन्ति, दुक्खूपसमगामिनं॥
''तेसं सुत्वान सप्पञ्ञा, सचित्तं पच्चलद्धा ते।
अनिच्चं अनिच्चतो दुक्खं, दुक्खमद्दक्खु दुक्खतो॥
''अनत्तनि अनत्ता ति, असुभं असुभतद्दसुं।

दृष्टिविपर्यास। एवं (४) भिक्षुओ! **अशुभ में शुभ**—ऐसा संज्ञा ...चित्त... एवं दृष्टिविपर्यास। भिक्षुओ! ये चार संज्ञाविपर्यास, चित्तविपर्यास एवं दृष्टिविपर्यास होते हैं।

२. ''भिक्षुओ! फिर ये चार—न संज्ञाविपर्यास, न चित्तविपर्यास एवं न दृष्टिविपर्यास होते हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! **अनित्य में अनित्य**—यह न संज्ञाविपर्यास, न चित्तविपर्यास एवं न दृष्टिविपर्यास; (२) भिक्षुओ! **दुःख में दुःख**—यह न संज्ञाविगर्यास, न चित्तविपर्यास एवं न दृष्टिविपर्यास; (३) भिक्षुओ! **अनात्म में अनात्म**—यह न संज्ञाविपर्यास, न चित्तविपर्यास एवं न दृष्टिविपर्यास; (४) एवं, भिक्षुओ! **अशुभ में अशुभ**—यह न संज्ञाविपर्यास, न चित्तविपर्यास एवं न दृष्टिविपर्यास। भिक्षुओ! ये चार न संज्ञाविपर्यास, न चित्तविपर्यास एवं न दृष्टिविपर्यास होते हैं।

''अनित्य में नित्य संज्ञा एवं दुःख में सुख संज्ञा मानने वाले, अनात्म पदार्थ में आत्मसंज्ञावाले एवं अशुभ में शुभ संज्ञा मानने वाले प्राणी मिथ्यादृष्टि से आहत हो चुके हैं, वे क्षिप्तचित्त (चञ्चल चित्त) हैं तथा विसंज्ञी (संज्ञारहित) हैं॥

''वे मार से सम्बद्ध हो चुके हैं, वे अयोगक्षेमी (आसक्ति से मुक्त नहीं हुए) हैं। ऐसे लोग संसार में बार बार जन्म लेते हैं और जाति, जरा, मरण से सम्पृक्त रहते हैं॥

''जब इस संसार में दिव्य प्रभावान् बुद्ध अवतरित होते हैं तब वे (बुद्ध) दुःख की निवृत्ति हेतु (धर्म-) मार्ग का उपदेश करते हैं।

''तब बुद्धिमान् लोग इस धर्मोपदेश के आश्रयण से स्वचित्त को निगृहीत कर, अनित्य पदार्थ को अनित्य रूप में देखते हैं तथा दुःखमय पदार्थ को भी दुःखरूप में ही देखते हैं॥

सम्मादिट्ठिसमादाना, सब्बं दुक्खं उपच्चगुं'' ति॥ ●

१०. उपक्किलेससुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, चन्दिमसुरियानं उपक्किलेसा, [R.53] येहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठा चन्दिमसुरिया न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति। कतमे चत्तारो? अब्भा, भिक्खवे, चन्दिमसुरियानं उपक्किलेसा, येन उपक्किलेसेन उपक्किलिट्ठा चन्दिमसुरिया न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति।

२. ''महिका, भिक्खवे, चन्दिमसुरियानं उपक्किलेसा, येन उपक्किलेसेन उपक्किलिट्ठा चन्दिमसुरिया न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति।

[N.56] ३. ''धूमो रजो, भिक्खवे, चन्दिमसुरियानं उपक्किलेसो, येन उपक्किलेसेन उपक्किलिट्ठा चन्दिमसुरिया न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति।

४. ''राहु, भिक्खवे, असुरिन्दो चन्दिमसुरियानं उपक्किलेसो, येन उपक्किलेसेन [B.363] उपक्किलिट्ठा चन्दिमसुरिया न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो चन्दिमसुरियानं उपक्किलेसा, येहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठा चन्दिमसुरिया न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति।

५. ''एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारोमे समणब्राह्मणानं उपक्किलेसा, येहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठा एके समणब्राह्मणा न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति। कतमे चत्तारो? सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा सुरं पिवन्ति मेरयं, सुरामेरयपाना अप्पटिविरता। अयं, भिक्खवे, पठमो समणब्राह्मणानं उपक्किलेसो, येन उपक्किवलेसेन उपक्किलिट्ठा एके समणब्राह्मणा न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति।

''अनात्मपदार्थ को अनात्मपदार्थ के रूप में तथा अशुभ को अशुभ के रूप में ही देखते हैं। इस प्रकार वे सम्यग्दृष्टि होकर सभी दुःखों को पार करने में समर्थ हो जाते हैं॥'' ●

१०. उपक्लेशसूत्र : : चन्द्रमा एवं सूर्य के चार उपक्लेश

१. भिक्षुओ! चन्द्रमा एवं सूर्य के ये चार उपक्लेश (मल) होते हैं, जिनसे उपक्लिष्ट होकर वे दोनों न तपते हैं, न प्रकाश फैलाते हैं, न सुन्दर ही लगते हैं। कौन से चार? भिक्षुओ! **मेघ** (अभ्र) चन्द्र एवं सूर्य के प्रथम उपक्लेश हैं, जिनके कारण वे दोनों न तपते हैं, न प्रकाश फैलाते हैं न सुन्दर ही लगते हैं। (१)

२. भिक्षुओ! **महिका** (धुन्ध=कोहरा) ...द्वितीय उपक्लेश...। (२)

३. भिक्षुओ! **धूम** (धूआँ) ...तृतीय उपक्लेश...। (३)

४. भिक्षुओ! **राहु** असुरेन्द्र ...चतुर्थ उपक्लेश...। भिक्षुओ! इस प्रकार ये चार चन्द्रमा एवं सूर्य के उपक्लेश हैं... न सुन्दर ही लगते हैं।

५. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! ये चार श्रमण एवं ब्राह्मणों के उपक्लेश (मल) हैं, जिनसे उपक्लिष्ट हुए कुछ श्रमण ब्राह्मण न साधना कर पाते हैं, न प्रकाशमान होते हैं, न सुन्दर लगते हैं। कौन से चार? उनमें कुछ श्रमण ब्राह्मण मद्यपान करते रहते हैं, उसी में आसक्त रहते हैं, उससे दूर नहीं हो पाते। भिक्षुओ! उन श्रमण ब्राह्मणों का यह प्रथम उपक्लेश है...। (१)

६. ''सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा मेथुनं धम्मं पटिसेवन्ति, मेथुनस्मा धम्मा अप्पटिविरता। अयं, भिक्खवे, दुतियो समणब्राह्मणानं उपक्किलेसो, येन उपक्किलेसेन उपक्किलिट्ठा एके समणब्राह्मणा न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति।

७. ''सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा जातरूपरजतं सादियन्ति, जातरूप-रजतपटिग्गहणा अप्पटिविरता। अयं, भिक्खवे, ततियो समणब्राह्मणानं उपक्किलेसो, येन उपक्किलेसेन उपक्किलिट्ठा एके समणब्राह्मणा न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति।

८. ''सन्ति, भिक्खवे, एके समणब्राह्मणा मिच्छाजीवेन जीवन्ति, मिच्छाजीवा अप्पटिविरता। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो समणब्राह्मणानं उपक्किलेसो, येन उपक्किलेसेन उपक्किलिट्ठा एके समणब्राह्मणा न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो समणब्राह्मणानं उपक्किलेसा, येहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठा एके समण- [R.54] ब्राह्मणा न तपन्ति न भासन्ति न विरोचन्ती ति।

''रागदोसपरिक्किट्ठा, एके समणब्राह्मणा। [N.57]
अविज्जानिवुता पोसा, पियरूपाभिनन्दिनो॥
''सुरं पिवन्ति मेरयं, पटिसेवन्ति मेथुनं।
रजतं जातरूपं च, सादियन्ति अविद्दसू।
मिच्छाजीवेन जीवन्ति, एके समणब्राह्मणा॥
''एते उपक्किलेसा वुत्ता, बुद्धेनादिच्चबन्धुना। [B.364]
येहि उपक्किलेसेहि, एके समणब्राह्मणा।
न तपन्ति न भासन्ति, असुद्धा सरजा मगा॥

---

६. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! कुछ श्रमण ब्राह्मण परायी स्त्रियों के साथ व्यभिचार में रत रहते हैं, उसी में लगे रहते हैं, उससे दूर नहीं हो पाते। भिक्षुओ! उन श्रमण ब्राह्मणों का यह दूसरा उपक्लेश है...। (२)

७. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! कुछ श्रमण ब्राह्मण सोने चाँदी का संग्रह करते रहते हैं, उससे दूर नहीं होते। भिक्षुओ! यह उन श्रमण ब्राह्मणों का तृतीय उपक्लेश है...। (३)

८. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! कुछ श्रमण ब्राह्मण मिथ्या आजीविका से अपना जीवन-यापन करते रहते हैं, उससे दूर नहीं रहते। भिक्षुओ! यह कुछ श्रमण ब्राह्मणों का चतुर्थ उप-क्लेश है...। (४)

''भिक्षुओ! ये चार उन श्रमण ब्राह्मणों के उपक्लेश हैं, जिनसे उपक्लिष्ट होकर वे श्रमण ब्राह्मण न तपते हैं, न प्रकाशित होते हैं, न सुन्दर ही लगते हैं।

''कुछ श्रमण ब्राह्मण राग द्वेष से परिक्लिष्ट होकर अविद्या से घिरे हुए, प्रिय रूप का ही अभिनन्दन करने वाले होते हैं॥

''उनमें कुछ सुरापान करते हैं, कुछ परायी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते हैं, कुछ सोना चाँदी का परिग्रह करते रहते हैं, कुछ मिथ्या आजीविका से अपना जीवन यापन करते हैं॥

"अन्धकारेन ओनद्धा, तण्हादासा सनेत्तिका।
वड्ढन्ति कटसिं घोरं, आदियन्ति पुनब्भवं" ति॥ रोहितस्सवग्गो पञ्चमो॥

तस्सुद्दानं

समाधिपञ्हा द्वे कोधा, रोहितस्सापरे दुवे।
सुविदूरविसाखविपल्लासा, उपकिकलेसेन ते दसा ति॥

पठमो पण्णासको समत्तो॥

६. पुञ्ञाभिसन्दवग्गो

दुतियो पण्णासको

१. पठमपुञ्ञाभिसन्दसुत्तं : १. सावत्थिनिदानं। चत्तारोमे, भिक्खवे, पुञ्ञा-
[B.365] भिसन्दा कुसलाभिसन्दा सुखस्साहारा सोवग्गिका सुखविपाका सग्गसंवत्तनिका इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति। कतमे चत्तारो? यस्स, भिक्खवे, भिक्खु

"आदित्यबन्धु भगवान् बुद्ध ने उन श्रमण ब्राह्मणों के ये उपक्लेश बताये हैं, जिनसे उपक्लिष्ट होकर ये श्रमण ब्राह्मण न तपते हैं... न सुन्दर लगते हैं; जैसे किसी मलिन जलाशय के कर्दम (कीचड़) से लिप्त कोई मलिन पशु॥

"वे अविद्यान्धकार से घिरे हुए, तृष्णा के वशीभूत, आसक्ति की डोर से बँधे हुए, अन्त में (मरणभाव को प्राप्त होकर) श्मशान की ही शोभा बढ़ाते हैं और फिर शूकर कूकर की योनि में पुनर्जन्म लेते हैं॥"

रोहिताश्ववर्ग पञ्चम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. समाधिभावनासूत्र, २. प्रश्नव्याकरणसूत्र, ३. प्रथम क्रोधगुरुसूत्र, ४. द्वितीय क्रोधगुरुसूत्र, ५. प्रथम रोहिताश्वसूत्र, ६. द्वितीय रोहिताश्वसूत्र, ७. सुविदूरसूत्र, ८. विशाखसूत्र, ९. विपर्याससूत्र एवं १०. उपक्लेशसूत्र॥

प्रथम पञ्चाशत्क सम्पन्न॥

६. पुण्याभिष्यन्दवर्ग

द्वितीय पञ्चाशत्क

१. प्रथमपुण्याभिष्यन्दसूत्र : : चार पुण्य के परिणाम

१. यह सूत्र भी **श्रावस्ती में ही उपदिष्ट** है॥ भिक्षुओ! ये चार पुण्याभिष्यन्द (पुण्य के परिणाम) कुशलाभिष्यन्द, सुख के आहारभूत, स्वर्गसम्बद्ध सुख का फल देने वाले तथा स्वर्ग-सुखभोग के प्रदाता, इष्ट, कान्त, मनाप, हित एवं सुख के प्रेरक हैं।

चीवरं परिभुञ्जमानो अप्पमाणं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति, अप्पमाणो तस्स पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति।

२. ''यस्स, भिक्खवे, भिक्खु पिण्डपातं परिभुञ्जमानो अप्पमाणं चेतो-[N.58] समाधिं उपसम्पज्ज विहरति, अप्पमाणो तस्स पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति।

३. ''यस्स, भिक्खवे, भिक्खु सेनासनं परिभुञ्जमानो अप्पमाणं चेतो-[R.55] समाधिं उपसम्पज्ज विहरति, अप्पमाणो तस्स पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति।

४. ''यस्स, भिक्खवे, भिक्खु गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं परिभुञ्जमानो अप्पमाणं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति, अप्पमाणो तस्स पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति। इमे खो , भिक्खवे, चत्तारो पुञ्ञाभिसन्दा कुसलाभिसन्दा सुखस्साहारा सोवग्गिका सुखविपाका सग्गसंवत्तनिका इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति।

५. ''इमेहि च पन, भिक्खवे, चतूहि पुञ्ञाभिसन्देहि कुसलाभिसन्देहि समन्नागतस्स अरियसावकस्स न सुकरं पुञ्ञस्स पमाणं गहेतुं—'एत्तको पुञ्ञाभिसन्दो [B.366] कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय

''यहाँ, भिक्षुओ! जो भिक्षु जिस किसी (गृहस्थ) के दिये हुए **चीवर** का उपभोग करता हुआ अपरिमित चेत:समाधि में निरत रहता है वह उस (गृहस्थ) के लिये अपरिमित पुण्य एवं कुशल का परिणाम, सुख का आहार... पूर्ववत्... हित सुख का प्रेरक है। (१)

२. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु जिस (गृहस्थ) का **अन्न** (पिण्डपात) खाता हुआ अप्रमाण चेत:समाधि में निरत रहता है, उस (गृहस्थ) के लिये अपरिमित पुण्य एवं कुशल का परिणाम, सुख का आहार... पूर्ववत्... हित सुख का प्रेरक है। (२)

३. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु जिस (गृहस्थ) के दिये हुए **शयनासन** का उपभोग करता अप्रमाण चेत:समाधि में निरन्तर रहता है, उसका पुण्य एवं कुशल का अपरिमित परिणाम सुख का आहार... पूर्ववत्... हित सुख का प्रेरक है। (३)

४. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु जिस (गृहस्थ) के दिये हुए भैषज्यपरिष्कार आदि का उपयोग स्वरोगनिवृत्त्यर्थ करता हुआ अप्रमाण चेत:समाधि में निरत रहता है, उस (गृहस्थ) का वह पुण्य एवं कुशल का परिणाम सुख का आहार...पूर्ववत्... हित सुख का प्रेरक है। (४)

भिक्षुओ! ये चार (दान) पुण्य एवं कुशल के परिणाम, सुखाहाररूप, स्वर्गसुखदायी फल, स्वर्गगति के प्रेरक, तथा इष्ट, कान्त, मनाप, हित एवं सुख के भी प्रेरक होते हैं।

५. ''भिक्षुओ! इन चार पुण्य एवं कुशल के परिणाम, सुखाहाररूप... पूर्ववत्... सुखप्रेरक कर्मों से युक्त आर्यश्रावक के पुण्य का प्रमाण सरलता से ग्रहण नहीं किया जा सकता कि यह पुण्य

कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तती' ति। अथ खो असङ्ख्येय्यो अप्पमेय्यो महापुञ्ञक्खन्धो त्वेव सङ्ख्यं गच्छति।

६. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, महासमुद्दे न सुकरं उदकस्स पमाणं गहेतुं—'एत्तकानि उदकाळ्हकानी ति वा, एत्तकानी उदकाळ्हकसतानी ति वा, एत्तकानि उदकाळ्हक-सहस्सानी ति वा, एत्तकानि उदकाळ्हकसतसहस्सानी ति वा', अथ खो असङ्ख्येय्यो अप्पमेय्यो महाउदकक्खन्धो त्वेव सङ्ख्यं गच्छति; एवमेव खो, भिक्खवे, इमेहि चतूहि पुञ्ञाभिसन्देहि कुसलाभिसन्देहि समन्नागतस्स अरियसावकस्स न सुकरं पुञ्ञस्स पमाणं गहेतुं—'एत्तको पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तती' ति, अथ खो असङ्ख्येय्यो
[N.59] अप्पमेय्यो महापुञ्ञक्खन्धो त्वेव सङ्ख्यं गच्छती ति।

''महोदधिं अपरिमितं महासरं, बहुभेरवं रतनवरानमालयं।
[R.56] नज्जो यथा नरगणसङ्घसेविता, पुथू सवन्ती उपयन्ति सागरं॥
''एवं नरं अन्नदपानवत्थदं, सेय्यानिसज्जत्थरणस्स दायकं।
पुञ्ञस्स धारा उपयन्ति पण्डितं, नज्जो यथा वारिवहा व सागरं'' ति॥ ●

२. **दुतियपुञ्ञाभिसन्दसुत्तं** : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुञ्ञाभिसन्दा कुसलाभिसन्दा सुखस्साहारा सोवग्गिका सुखविपाका सग्गसंवत्तनिका इट्ठाय कन्ताय

एवं कुशल का परिणाम... हित सुख का प्रेरक इतने प्रमाण वाला है। इसको तो 'असङ्ख्य एवं अप्रमेय महापुण्यस्कन्ध' कहा जाना ही उचित है।

६. ''भिक्षुओ! जैसे महासमुद्र के जल का प्रमाण नहीं मापा जा सकता—'यह जल इतने आढक है, इतने सौ आढक है, इतने हजार आढक है या इतने लाख आढक है'; अपितु उसको 'असङ्ख्य अप्रमेय उदकराशि' ही कहा जाता है। वैसे ही, भिक्षुओ! इन चार पुण्य एवं कुशल स्कन्धों से युक्त आर्यश्रावक के पुण्य का प्रमाण नहीं मापा जा सकता कि यह इतने पुण्य एवं कुशल का परिणाम या इतने सुख का आहार... पूर्ववत्... यह इतने हित एवं सुख का प्रेरक है! यह तो 'असङ्ख्य' या 'अप्रमेय' महापुण्यस्कन्ध ही कहा जा सकता है।

''जैसे अपरिमित महान् जलसमूह वाले, भयङ्कर परन्तु श्रेष्ठ रत्नराशि का आगारभूत महासमुद्र हो। अपरिमित जल से भरी हुई गङ्गा आदि महानदियाँ भी सरलता से बहती हुई अन्त में उस ही में जा मिलती हैं।

''लोक में अन्न-जल, वस्त्र, शय्या आदि का दान करनेवाले पुरुष के पास उस दान से प्राप्त होने वाला वह पुण्य फल उसी तरह पहुँच जाता है जैसे जलपूर्ण महानदियाँ महासागर में जा मिलती हैं॥'' ●

२. द्वितीय पुण्याभिष्यन्दसूत्र : : चार पुण्य परिणाम वाले धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये चार पुण्य एवं कुशल परिणाम देनेवाले सुखाहार रूप, स्वर्ग-सुखफलदायक, स्वर्ग तक पहुँचाने वाले, इष्ट, कान्त, मनाप, हित एवं सुख के लिये हैं। कौन से

मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, अरियसावको बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो [B.367] विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। अयं, भिक्खवे, पठमो पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। अयं, भिक्खवे, दुतियो पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो [N.60] होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, ञायप्पटि-पन्नो भगवतो सावकसङ्घो, सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिस-युगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला, एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। अयं, भिक्खवे, ततियो पुञ्ञाभि-सन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, अरियसावको अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागतो होति अखण्डेहि अच्छिद्देहि असबलेहि अकम्मासेहि भुजिस्सेहि विञ्ञुप्पसत्थेहि [R.57] अपरामट्ठेहि समाधिसंवत्तनिकेहि। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखास्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय

चार? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक बुद्ध में इस प्रकार श्रद्धालु होता है—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हैं... पूर्ववत्... बुद्ध भगवान् हैं।' **बुद्ध** के प्रति ऐसी श्रद्धा होना प्रथम पुण्य एवं कुशल परिणाम देनेवाली... हित एवं सुख के लिये है। (१)

२. ''और फिर, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक **धर्म** के प्रति यह कहता हुआ श्रद्धालु होता है—'भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म स्वाख्यात है... पूर्ववत्... विज्ञजनों द्वारा ज्ञातव्य है।' धर्म के प्रति ऐसी श्रद्धा द्वितीय पुण्य एवं कुशल परिणाम देनेवाली... हित एवं सुख के लिये हैं। (२)

३. ''फिर, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक **सङ्घ** के प्रति यह कहता हुआ श्रद्धालु होता है—'भगवान् का यह श्रावकसङ्घ सम्यक् प्रकार से धर्ममार्गारूढ़ है... पूर्ववत्... लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि है'। सङ्घ के प्रति ऐसी श्रद्धा तृतीय पुण्य एवं कुशल परिणाम देने वाली... हित एवं सुख के लिये हैं। (३)

४. ''फिर, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक अखण्ड, छिद्ररहित... समाधि तक पहुँचाने वाले

सुखाय संवत्तति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुञ्ञाभिसन्दा कुसलाभिसन्दा सुखस्साहारा सोवग्गिका सुखविपाका सग्गसंवत्तनिका इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ती ति।

[B.368] "यस्स सद्धा तथागते, अचला सुप्पतिट्ठिता।
सीलं च यस्स कल्याणं, अरियकन्तं पसंसितं॥
"सङ्घे पसादो यस्सत्थि, उजुभूतं च दस्सनं।
अदलिद्दो ति तं आहु, अमोघं तस्स जीवितं॥
"तस्मा सद्धं च सीलं च, पसादं धम्मदस्सनं।
अनुयुञ्जेथ मेधावी, सरं बुद्धान सासनं" ति॥ ●

३. पठमसंवाससुत्तं : १. एकं समयं भगवा अन्तरा च मधुरं अन्तरा च वेरञ्जं अद्धानमग्गप्पटिपन्नो होति। सम्बहुला पि खो गहपती च गहपतानियो च अन्तरा च मधुरं [N.61] अन्तरा च वेरञ्जं अद्धानमग्गप्पटिपन्ना होन्ति। अथ खो भगवा मग्गा ओक्कम्म अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसीदि। अद्दसंसु खो गहपती च गहपतानियो च भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसिन्नं। दिस्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो ते गहपती च गहपतानियो च भगवा एतदवोच—

शील गुणों से युक्त होता है। भिक्षुओ! यह उस आर्यश्रावक का चतुर्थ पुण्य एवं कुशल परिणाम दाता... हित एवं सुख के लिये है। (४)

"भिक्षुओ! ये चार पुण्य और कुशल फल देने वाले... हित एवं सुख के लिये होते हैं।

"जिस (आर्यश्रावक की बुद्ध में अचल एवं सुप्रतिष्ठित श्रद्धा है, जिसका शील कल्याणमय, आर्यों को प्रिय एवं आर्यों द्वारा प्रशंसित है॥

"सङ्घ में जिसकी श्रद्धा है, जिसका धर्ममार्ग, साधना करते करते सरल हो गया है, उसको लोक में 'अदरिद्र' (सर्वथा सम्पन्न) एवं 'सफलजीवन' कहते हैं॥

"अत: किसी भी बुद्धिमान् आर्यश्रावक को बुद्धों का अनुशासन स्मरण रखते हुए शील तथा धर्म के प्रति श्रद्धालु होकर साधनारत रहना चाहिये॥" ●

३. प्रथम संवाससूत्र : : चतुर्विध संवास

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) मधुरा एवं वेरञ्जा के बीच चारिका करते हुए मार्ग में चल रहे थे। उस समय बहुत से दम्पति भी मधुरा एवं वेरञ्जा के बीच मार्ग में चल रहे थे। तब भगवान् (कुछ समय बाद) मार्ग से हटकर एक वृक्ष के नीचे विराजमान हुए। उस समय उन यात्री दम्पतियों ने भगवान् को किसी वृक्ष के नीचे विराजमान देखा। देखकर वे सब भगवान् के सम्मुख आये तथा उनको अभिवादन-प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन यात्री दम्पतियों को भगवान् ने यह उपदेश किया—

२. ''चत्तारोमे, गहपतयो, संवासा। कतमे चत्तारो? छवो छवाय सद्धिं संवसति, छवो देविया सद्धिं संवसति, देवो छवाय सद्धिं संवसति, देवो देविया सद्धिं संवसति।

३. ''कथं च गहपतयो, छवो छवाय सद्धिं संवसति? इध, गहपतयो, सामिको होति पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी सुरामेरयमज्ज-[R.58] पमादट्ठायी दुस्सीलो पापधम्मो मच्छेरमलपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति अक्कोसकपरिभासको समणब्राह्मणानं; भरिया पिस्स होति पाणातिपातिनी अदिन्नादायिनी कामेसुमिच्छाचारिनी मुसावादिनी सुरामेरयज्जपमादट्ठायिनी दुस्सीला पापधम्मा मच्छेर-मलपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति अक्कोसिकपरिभासिका समणब्राह्मणानं। एवं, खो, गहपतयो, छवो छवाय सद्धिं संवसति।

४. ''कथं च, गहपतयो, छवो देविया सद्धिं संवसति? इध, गहपतयो, [B.369] सामिको होति पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छारी मुसावादी सुरामेरयमज्ज-पमादट्ठायी दुस्सीलो पापधम्मो मच्छेरमलपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति अक्कोसकपरिभासको समणब्राह्मणानं; भरिया ख्वस्स होति पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता सुरामेरयमज्ज-पमादट्ठाना पटिविरता सीलवती कल्याणधम्मा विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति अनक्कोसिकपरिभासिका समणब्राह्मणानं। एवं खो, गहपतयो, छवो देविया सद्धिं संवसति।

५. ''कथं च, गहपतयो, देवो छवाय सद्धिं संवसति? इध, गहपतयो, सामिको

---

२. ''गृहपतियो! लोक में चार प्रकार का संवास (पति-पत्नी का साथ रहना) होता है। कौन से चार? (१) शव शव के साथ संवास करता है; (२) शव देवी के साथ संवास करता है; (३) देव शव के साथ संवास करता है; एवं (४) देव देवी के साथ संवास करता है।

३. ''कैसे, गृहपतियो! शव शव के साथ संवास करता है? यहाँ गृहपतियो! उन दोनों में पति यदि प्राणातिपाती (हिंसक), चौर, व्यभिचारी, असत्यभाषी, मद्यप, दुःशील, पापकर्मनिरत, मात्सर्य मल से लिप्त चित्त से घर में रहता है, और आये गये श्रमण-ब्राह्मणों को निन्दात्मक अपशब्द बोलता रहता है; उसकी भार्या भी इन ही उपर्युक्त दुर्गुणों से युक्त हो। गृहपतियो! ऐसे शव शव के साथ संवास करता है। (१)

४. ''कैसे, गृहपतियो! शव देवी के साथ रहता है? उन दोनों में पति प्राणातिपाती ...पूर्ववत्... श्रमण ब्राह्मणों को निन्दात्मक अपशब्द बोलता रहता है; परन्तु उसकी भार्या प्राणातिपात से विरत, दिये को ही लेनेवाली, सत्यभाषिणी, पतिव्रता, मद्यपान से विरत, शीलवती, कुशल धर्म करने वाली, मात्सर्यरहित चित्त से घर में रहनेवाली तथा श्रमण-ब्राह्मणों से सम्मानपूर्वक मधुरभाषिणी होती है; गृहपतियो! इस प्रकार, शव देवी के साथ संवास करता है। (२)

५. कैसे, गृहपतियो! देव शव के साथ संवास कहता है? यहाँ गृहपतियो! कोई स्वामी

होति पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो मुसावादा पटिविरतो सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो सीलवा कल्याणधम्मो विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति अनक्कोसकपरिभासको समणब्राह्मणानं; [N.62] भरिया ख्वस्स होति पाणातिपातिनी ...पे०... सुरामेरयमज्जपमादट्ठायिनी दुस्सीला पापधम्मा मच्छेरमलपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति अक्कोसिकपरिभासिका समणब्राह्मणानं। एवं खो, गहपतयो, देवो छवाय सद्धिं संवसति।

६. "कथं च, गहपतयो, देवो देविया सद्धिं संवसति? इध, गहपतयो, सामिको होति पाणातिपाता पटिविरतो ...पे०... सीलवा कल्याणधम्मो विगत-मलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति अनक्कोसकपरिभासको समणब्राह्मणानं; भरिया पिस्स होति पाणातिपाता पटिविरता ...पे०... सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरता सीलवती कल्याण-धम्मा विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति अनक्कोसिकपरिभासिका समण-[R.59] ब्राह्मणानं। एवं खो, गहपतयो, देवो देविया सद्धिं संवसति। इमे खो गहपतयो चत्तारो संवासा ति।

"उभो च होन्ति दुस्सीला, कदरिया परिभासका।
ते होन्ति जानिपतयो, छवा संवासमागता॥
[B.370] "सामिको होति दुस्सीलो, कदरियो परिभासको।
भरिया सीलवती होति, वदञ्ञू वीतमच्छरा।
सा पि देवी संवसति, छवेन पतिना सह॥
"सामिको सीलवा होति, वदञ्ञू वीतमच्छरो।
भरिया होति दुस्सीला, कदरिया परिभासिका।

(पति) प्राणातिपात से विरत ...पूर्ववत्... श्रमण ब्राह्मणों को अपशब्द न बोलता हो; परन्तु उसकी भार्या प्राणातिपातिनी ...पूर्ववत्... श्रमण, ब्राह्मणों से तिरस्कारात्मक अपशब्द बोलती हो; गृहपतियो! इस प्रकार देव शव के साथ रहता है। (३)

६. कैसे, गृहपतियो! देव देवी के साथ संवास करता है? यहाँ, गृहपतियो! पति भी प्राणातिपातविरत हो... पूर्ववत्...; भार्या भी प्राणातिपातविरत... पूर्ववत्... द्वार पर आये गये श्रमण ब्राह्मणों से सम्मानपूर्वक बोलती है; गृहपतियो! ऐसे देव देवी के साथ रहता है। (४) । इस प्रकार, गृहपतियो! ये चार संवास कहलाते हैं।

"जहाँ पति पत्नी दोनों दुःशील एवं कटुभाषी हों, ऐसे पति-पत्नी 'शव शव के साथ रहता है'—कहलाते हैं॥

"जहाँ पति दुःशील हो, परन्तु पत्नी सुशील एवं मधुरभाषिणी, निरभिमान हो, ऐसे पतिपत्नी 'देवी शव के साथ रहती है'—कहलाते हैं॥

"जहाँ पति सुशील एवं मधुरभाषी हो, परन्तु भार्या दुःशील एवं कटुभाषिणी हो, ऐसे पतिपत्नी 'देव शव के साथ रहता है'—कहलाते हैं॥

सा पि छवा संवसति, देवेन पतिना सह॥
"उभो सद्धा वदञ्ञू च, सञ्ञता धम्मजीविनो।
ते होन्ति जानिपतयो, अञ्ञमञ्ञं पियंवदा॥
"अत्थासं पचुरा होन्ति, फासुकं उपजायति।
अमित्ता दुम्मना होन्ति, उभिन्नं समसीलिनं॥
"इध धम्मं चरित्वान, समसीलब्बता उभो।
नन्दिनो देवलोकस्मिं, मोदन्ति कामकामिनो" ति॥

४. दुतियसंवाससुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, संवासा। कतमे चत्तारो? [N.63] छवो छवाय सद्धिं संवसति, छवो देविया सद्धिं संवसति, देवो छवाय सद्धिं संवसति, देवो देविया सद्धिं संवसति।

२. "कथं च, भिक्खवे, छवो छवाय सद्धिं संवसति। इध, भिक्खवे, सामिको होति पाणातिपाती अदिन्नादायी कामेसुमिच्छाचारी मुसावादी पिसुणवाचो फरुसवाचो सम्फप्पलापी अभिज्झालु ब्यापन्नचित्तो मिच्छादिट्ठिको दुस्सीलो पापधम्मो मच्छेरमल-परियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति अक्कोसकपरिभासको समणब्राह्मणानं; भरियापिस्स होति पाणातिपातिनी अदिन्नादायिनी कामेसुमिच्छाचारिनी मुसावादिनी पिसुणवाचा फरुसवाचा सम्फप्पलापिनी अभिज्झालुनी ब्यापन्नचित्ता मिच्छादिट्ठिका दुस्सीला पापधम्मा मच्छेरमलपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति अक्कोसिकपरिभासिका समण- [R.60] ब्राह्मणानं। एवं खो, भिक्खवे, छवो छवाय सद्धिं संवसति।

३. "कथं च, भिक्खवे, छवो देविया सद्धिं संवसति? इध, भिक्खवे, सामिको होति पाणातिपाती ...पे०... मिच्छादिट्ठिको दुस्सीलो पापधम्मो मच्छेरमल- [B.371] परियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति अक्कोसकपरिभासको समणब्राह्मणानं; भरियाख्वस्स होति पाणातिपाता पटिविरता अदिन्नादाना पटिविरता कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता मुसावादा पटिविरता पिसुणाय वाचाय पटिविरता फरुसाय वाचाय पटिविरता सम्फप्पलापा

"परन्तु जहाँ दोनों (पतिपत्नी) (धर्म के प्रति) श्रद्धालु हों, चरित्र से संयत हों, धर्मानुसार जीवनयापन करते हों, परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार हो, उनके सांसारिक कृत्य सरलता से सम्पन्न होते रहते हैं। परन्तु ऐसे समान शील वाले लोगों के लोगों के विरोधी (शत्रु) निरन्तर इसी चिन्ता में डूबे रहते हैं कि कैसे इनमें विरोध कराया जाय॥

"यहाँ ऐसे पतिपत्नी जिनका धर्मानुसार आचरण हो, जिनके शीलव्रत समान हों वे इस लोक में यथेच्छ सुखपूर्वक जीवनयापन करते हुए मरणानन्तर स्वर्गलोक में पहुँचकर भी सुखी ही रहते हैं॥"

४. द्वितीय संवाससूत्र : : **चतुर्विध संवास**

१. भिक्षुओ! ये चार प्रकार के 'संवास' कहलाते हैं। कौन से चार? (१) शव शव के साथ

पटिविरता अनभिज्झालुनी अब्यापन्नचित्ता सम्मादिट्ठिका सीलवती कल्याणधम्मा विगत-मलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति अनक्कोसिकपरिभासिका समणब्राह्मणानं। एवं खो, भिक्खवे, छवो देविया सद्धिं संवसति।

४. "कथं च, भिक्खवे, देवो छवाय सद्धिं संवसति? इध, भिक्खवे, सामिको होति पाणातिपाता पटिविरतो अदिन्नादाना पटिविरतो कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो मुसावादा पटिविरतो पिसुणाय वाचाय पटिविरतो फरुसाय वाचाय पटिविरतो सम्फप्पलापा पटिविरतो अनभिज्झालु अब्यापन्नचित्तो सम्मादिट्ठिको सीलवा कल्याणधम्मो विगतमलमच्छेरेन [N.64] चेतसा अगारं अज्झावसति अनक्कोसकपरिभासको समणब्राह्मणानं; भरिया ख्वस्स होति पाणातिपातिनी ...पे०... मिच्छादिट्ठिका दुस्सीला पापधम्मा मच्छेरमलपरियुट्ठितेन चेतसा अगारं अज्झावसति अक्कोसिकपरिभासिका समणब्राह्मणानं। एवं खो, भिक्खवे, देवो छवाय सद्धिं संवसति।

५. "कथं च, भिक्खवे, देवो देविया सद्धिं संवसति? इध, भिक्खवे, सामिको होति पाणातिपाता पटिविरतो ...पे०... सम्मादिट्ठिको सीलवा कल्याणधम्मो विगत-मलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति अनक्कोसकपरिभासको समणब्राह्मणानं; भरिया पिस्स होति पाणातिपाता पटिविरता ...पे०... सम्मादिट्ठिका सीलवती कल्याणधम्मा विगतमलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति अनक्कोसिकपरिभासिका समणब्राह्मणानं। एवं खो, भिक्खवे, देवो देविया सद्धिं संवसति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो संवासा ति।

"उभो च होन्ति दुस्सीला, कदरिया परिभासका।
ते होन्ति जानिपतयो, छवा संवासमागता॥
"सामिको होति दुस्सीलो, कदरियो परिभासको।
भरिया सीलवती होति, वदञ्ञू वीतमच्छरा।
सा पि देवी संवसति, छवेन पतिना सह॥
"सामिको सीलवा होति, वदञ्ञू वीतमच्छरो।
भरिया होति दुस्सीला, कदरिया परिभासिका।
सा पि छवा संवसति, देवेन पतिना सह॥
"उभो सद्धा वदञ्ञू च, सञ्ञता धम्मजीविनो।
ते होन्ति जानिपतयो, अञ्ञमञ्ञं पियंवदा॥
"अत्थासं पचुरा होन्ति फासुकं उपजायति।

संवास करता है, (२) शव देवी के साथ...; (३) देव शव के साथ... एवं (४) देव देवी के साथ संवास करता है ...पूर्ववत्...।

[यह समग्र सूत्र पूर्व 'प्रथम संवाससूत्र' के समान अविकल रूप से पठित है। अत: 'गृहपतियो' के स्थान पर 'भिक्षुओ' लगाकर उसी सूत्र का अनुवाद देखें।]

अमित्ता दुम्मना होन्ति, उभिन्नं समसीलिनं॥
"इध धम्मं चरित्वान, सम्मसीलब्बता उभो।
नन्दिनो देवलोकस्मिं मोदन्ति कामकामिनो" ति॥

५. **पठमसमजीवीसुत्तं** : १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा भग्गेसु [N.65] विहरति सुंसुमारगिरे भेसळावने मिगदाये। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन नकुलपितुनो गहपतिस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो नकुलपिता च गहपति नकुलमाता च गहपतानी येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो नकुलपिता गहपति भगवन्तं एतदवोच—

२. "यतो मे, भन्ते, नकुलमाता गहपतानी दहरस्सेव दहरा आनीता, नाभिजानामि नकुलमातरं गहपतानिं मनसा पि अतिचरिता, कुतो पन कायेन! इच्छेय्याम मयं, भन्ते, दिट्ठे चेव धम्मे अञ्ञमञ्ञं पस्सितुं अभिसम्परायं च अञ्ञमञ्ञं पस्सितुं" ति। नकुलमाता पि खो गहपतानी भगवन्तं एतदवोच—"यतोहं, भन्ते, नकुलपितुनो गहपतिस्स दहरस्सेव दहरा आनीता, नाभिजानामि नकुलपितरं गहपतिं मनसा पि अतिचरिता, कुतो पन कायेन! इच्छेय्याम मयं, भन्ते, दिट्ठे चेव धम्मे अञ्ञमञ्ञं पस्सितुं अभिसम्परायं च [B.373] अञ्ञमञ्ञं पस्सितुं" ति।

३. "आकङ्खेय्युं चे, गहपतयो, उभो जानिपतयो दिट्ठे चेव धम्मे अञ्ञमञ्ञं [R.62]

---

५. **प्रथम समजीविसूत्र** : : **चार समान धर्म**

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) भर्ग प्रदेश स्थित सुसुमार गिरि की उपत्यका के भेसकड़ावन में साधनाहेतु विराजमान थे। तब भगवान् (किसी दिन) प्रात:काल शरीर के वस्त्र ठीक कर, पात्र चीवर लेकर गृहपति नकुलपिता के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। तब नकुलपिता गृहपति एवं उनकी पत्नी—दोनों ही भगवान् के सम्मुख आये। आकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए नकुलपिता गृहपति ने भगवान् से यों निवेदन किया—

२. "भन्ते! मेरी पत्नी इस नकुलमाता का मेरे साथ बहुत छोटी आयु में विवाह हो गया था. तब से अब तक मैं नहीं जानता कि मेरी यह पत्नी कभी मन से भी मेरे विरुद्ध गयी हो, शरीर की बात तो बहुत दूर है! भन्ते! हम दोनों की अब यही इच्छा है कि हम इस जन्म में परस्पर एक दूसरे को देखते रहें; तथा मरणानन्तर, परलोक में भी हम लोगों का साथ इसी तरह बना रहे।" नकुलमाता गृहपत्नी ने भी भगवान् से यही निवेदन किया—"भन्ते! मैं इनके साथ बहुत छोटी आयु में आ गयी थी। तब से अब तक, मैं नहीं जानती, कि कभी मन से भी इनके विरुद्ध गयी हूँ, शरीर की बात तो बहुत दूर की है! भन्ते! हम दोनों की अब यही इच्छा है... पूर्ववत्... हम लोगों का साथ इसी तरह बना रहे।"

(भगवान् बोले-) "गृहपतियो! यदि तुम दोनों पतिपत्नी इस जन्म में परस्पर एक दूसरे को

पस्सितुं अभिसम्परायं च अञ्ञमञ्ञं पस्सितुं उभो व अस्सु समसद्धा समसीला समचागा समपञ्ञा, ते दिट्ठे चेव धम्मे अञ्ञमञ्ञं पस्सन्ति अभिसम्परायं च अञ्ञमञ्ञं पस्सन्ती ति।

"उभो सद्धा वदञ्ञू च, सञ्ञता धम्मजीविनो।
ते होन्ति जानिपतयो, अञ्ञमञ्ञं पियंवदा॥
"अत्थासं पचुरा होन्ति, फासुकं उपजायति।
अमित्ता दुम्मना होन्ति, उभिन्नं समसीलिनं॥
"इध धम्मं चरित्वान, समसीलब्बता उभो।
नन्दिनो देवलोकस्मिं, मोदन्ति कामकामिनो" ति॥ ●

[N 66] ६. **दुतियसमजीवीसुत्तं** : १. "आकङ्खेय्युं चे, भिक्खवे, उभो जानिपतयो दिट्ठे चेव धम्मे अञ्ञमञ्ञं पस्सितुं अभिसम्परायं च अञ्ञमञ्ञं पस्सितुं उभो व अस्सु समसद्धा समसीला समचागा समपञ्ञा, ते दिट्ठे चेव धम्मे अञ्ञमञ्ञं पस्सन्ति अभिसम्परायं च अञ्ञमञ्ञं पस्सन्ती ति।

"उभो सद्धा वदञ्ञू च, सञ्ञता धम्मजीविनो।
ते होन्ति जानिपतयो, अञ्ञमञ्ञं पियंवदा॥
"अत्थासं पचुरा होन्ति, फासुकं उपजायति।
अमित्ता दुम्मना होन्ति, उभिन्नं समसीलिनं॥
"इध धम्मं चरित्वान, समसीलब्बता उभो।
नन्दिनो देवलोकस्मिं, मोदन्ति कामकामिनो" ति॥ ●

७. **सुप्पवासासुत्तं** : १. एकं समयं भगवा कोळियेसु विहरति पज्जनिकं नाम

देखते रहना चाहते हो, तथा परलोक में भी एक दूसरे के साथ इसी तरह रहना चाहते हो तो तुम दोनों ऐसे समानशील, समानत्याग एवं समानप्रज्ञ बनो जो इस जन्म में परस्पर देखते रहते हैं तथा परलोक में भी एक दूसरे को देखते रहेंगे॥"

"दोनों एक दूसरे के प्रति श्रद्धालु, उदार, संयत एवं धर्मानुसार आचरण करने वाले ही गृहपतियो! परस्पर प्रियभाषी होते हैं॥

"इनके प्रयोजन सर्वथा सिद्ध होते रहते हैं। इनका जीवन सुखमय एवं सरल होता है। ऐसे समशील लोगों के विरोधी निरन्तर चिन्ता ही करते रह जाते हैं कि कैसे इन लोगों में विरोध कराया जाय!

"यहाँ धर्मानुसार आचरण करते हुए दोनों समान शीलव्रत वाले रहते हैं तो यहाँ यथेच्छ सुख भोग कर, परलोक में भी सुखमय जीवन ही बिताते हैं॥" ●

६. द्वितीय समजीविसूत्र : : चार समान धर्म

१. "भिक्षुओ! यदि कोई गृहस्थ पतिपत्नी इस जन्म में परस्पर एक दूसरे को देखते रहना चाहते हैं ...पूर्वसूत्रवत्... वे परलोक में भी सुखमय जीवन ही बिताते हैं॥" ●

कोळियानं निगमो। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन [B.374] सुप्पवासाय कोळियधीतुया निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो सुप्पवासा कोळियधीता भगवन्तं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था [R.63] सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो सुप्पवासा कोळियधीता भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो सुप्पवासं कोळियधीतरं भगवा एतदवोच—

२. "भोजनं, सुप्पवासे, देन्ती अरियसाविका पटिग्गाहकानं चत्तारि ठानानि देति। कतमानि चत्तारि? आयुं देति, वण्णं देति, सुखं देति, बलं देति। आयुं खो पन दत्वा आयुस्स भागिनी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। वण्णं दत्वा वण्णस्स भागिनी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। सुखं दत्वा सुखस्स भागिनी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। बलं दत्वा बलस्स भागिनी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। भोजनं, सुप्पवासे, देन्ती [N.67] अरियसाविका पटिग्गाहकानं इमानि चत्तारि ठानानि देती ति।

"सुसङ्खतं भोजनं या ददाति, सुचिं पणीतं रससा उपेतं।
सा दक्खिणा उज्जुगतेसु दिन्ना, चरणूपपन्नेसु महग्गतेसु।
पुञ्ञेन पुञ्ञं संसन्दमाना, महप्फला लोकविदून वण्णिता॥
"अतादिसं यञ्ञमनुस्सरन्ता, ये वेदजाता विचरन्ति लोके।

---

७. सुप्रवासासूत्र : : भोजन दान के चार लाभ

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) कोलिय प्रदेश के पज्जनिक नामक किसी कोलिय ग्राम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब (कभी) भगवान् प्रातःकाल वस्त्रों को ठीक कर पात्र चीवर लेकर कोलियपुत्री सुप्रवासा के घर (भिक्षाहेतु) गये। जाकर वहाँ प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। तब उस कोलियपुत्री सुप्रवासा ने भगवान् को उत्तम एवं रुचिकर भोजन अपने हाथों से श्रद्धापूर्वक परोसकर सन्तुष्ट किया। तब सुप्रवासा ने भगवान् को भोजन कर्म से निवृत्त हुआ जाना, तब वह एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी हुई सुप्रवासा को भगवान् ने यों उपदेश किया—

"सुप्रवासे! कोई भी आर्यश्राविका भोजन चाहनेवालों को भोजन देती हुई उनको चार बातें और देती है। कौन सी चार? वह (१) आयु, (२) वर्ण, (३) सुख, एवं (४) बल देती है। (१) वह उसको **आयु** देती हुई इहलोक तथा परलोक में अपने लिये दीर्घ आयु प्राप्त कर लेती है। (२) वह उसको **वर्ण** देती हुई इहलोक एवं परलोक में स्वयं सुन्दर एवं दिव्य वर्ण (रूप) की भागिनी हो जाती है। (३) वह उसको **सुख** देती हुई इहलोक तथा परलोक में स्वयं दिव्य सुख की भागिनी हो जाती है। (४) तथा वह उसको **बल** देती हुई इहलोक एवं परलोक में स्वयं मनुष्यसुख, दिव्यसुख की भागिनी होती है। इस प्रकार, सुप्रवासे! कोई भी आर्यश्राविका भोजन चाहने वालों को भोजन देती हुई ये चार चीजें भी साथ में देती है।

"जो "सुसंस्कृत (भली भाँति पकाया हुआ), शुद्ध, उत्तम एवं स्वादिष्ट भोजन देता है। सहज साधक महात्माओं के सम्मुख रखा गया यह भोजन रूप दान लोकज्ञ विद्वानों ने पुण्य से पुण्य का उत्पादक एवं महाफलदायी बताया है।

विनेय्य मच्छेरमलं समूलं, अनिन्दिता सग्गमुपेन्ति ठानं'' ति॥

८. सुदत्तसुत्तं : १. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—

२. ''भोजनं, गहपति, ददमानो अरियसावको पटिग्गाहकानं चत्तारि ठानानि देति। [B.375] कतमानि चत्तारि? आयुं देति, वण्णं देति, सुखं देति, बलं देति। आयुं खो पन दत्वा [R.64] आयुस्स भागी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। वण्णं दत्वा... सुखं दत्वा... बलं दत्वा बलस्स भागी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। भोजनं, गहपति, ददमानो अरियसावको पटिग्गाहकानं इमानि चत्तारि ठानानि देती ति।

''यो सञ्ञतानं परदत्तभोजिनं, कालेन सक्कच्च ददाति भोजनं।
चत्तारि ठानानि अनुप्पवेच्छति, आयुं च वण्णं च सुखं बलं च॥
''सो आयुदायी वण्णदायी, सुखं बलं ददो नरो।
दीघायु यसवा होति, यत्थ यत्थूपपज्जती'' ति॥

[N.68] **९. भोजनसुत्तं :** १. ''भोजनं, भिक्खवे, ददमानो दायको पटिग्गहकानं चत्तारि ठानानि देति। कतमानि चत्तारि? आयुं देति, वण्णं देति, सुखं देति, बलं देति। आयुं खो पन दत्वा आयुस्स भागी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। वण्णं दत्वा... सुखं दत्वा... बलं दत्वा

''ऐसे दानयज्ञ का अनुस्मरण करते हुए जो शास्त्रज्ञ विद्वान् लोक में विचरण करते हैं वे अपने मात्सर्यमल का निरसन करते हुए सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करते हैं तथा इस देहपात के बाद स्वर्ग में स्थान पाते हैं॥''

८. सुदत्तसूत्र : : भोजनदान के चार लाभ

कभी अनाथपिण्डिक गृहपति, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गये। जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान् ने यह उपदेश किया—

''गृहपति, याचकों को भोजनदान करता हुआ कोई भी आर्यश्रावक अन्य चार चीजें भी देता है। कौन चार? आयु देता है, वर्ण देता है, सुख देता है, बल देता है। **आयु** देता हुआ वह स्वयं दिव्य या मानुष आयु का भागी होता है। **वर्ण** देता हुआ वह स्वयं दिव्य या मानुष वर्ण (सौन्दर्य) का लाभी होता है। **सुख** देता हुआ वह स्वयं दिव्य या मानुष सुख का लाभी होता है। **बल** देता हुआ वह स्वयं दिव्य या मानुष बल का लाभी होता है। गृहपति, याचकों को ...पूर्ववत्... देता है।

''जो इन्द्रियसंयमी तथा दूसरों का दिया भोजन करने वालों को (भिक्षुओं) को समय से सत्कार पूर्वक भोजन देता है, वह स्वयं चार स्थान प्राप्त करने का अधिकारी है—आयु, वर्ण, सुख एवं बल।

''जो पुरुष आयु, वर्ण, सुख एवं बल को देने वाले भोजन का दाता है वह स्वयं जहाँ भी उत्पन्न होता है वहाँ दीर्घायु एवं यशस्वी होता है''॥

बलस्स भागी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। भोजनं, भिक्खवे, ददमानो दायको पटिग्गाहकानं इमानि चत्तारि ठानानि देती ति।

''यो सञ्ञतानं परदत्तभोजिनं, कालेन सक्कच्च ददाति भोजनं।
चत्तारि ठानानि अनुप्पवेच्छति। आयुं च वण्णं च सुखं बलं च॥
''सो आयुदायी वण्णदायी, सुखं बलं ददो नरो।
दीघायु यसवा होति, यत्थ यत्थूपपज्जती'' ति॥ ●

१०. गिहिसामीचिसुत्तं : १. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन [B.376,R.65] भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—

२. ''चतूहि खो, गहपति, धम्मेहि समन्नागतो अरियसावको गिहिसामीचिपटिपदं पटिपन्नो होति यसोपटिलाभिनिं सग्गसंवत्तनिकं। कतमेहि चतूहि? इध, गहपति, अरियसावको भिक्खुसङ्घं पच्चुपट्ठितो होति चीवरेन, भिक्खुसङ्घं पच्चुपट्ठितो होति पिण्डपातेन, भिक्खुसङ्घं पच्चुपट्ठितो होति सेनासनेन, भिक्खुसङ्घं पच्चुपट्ठितो होति गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन। इमेहि खो, गहपति, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो अरियसावको गिहिसामीचिपटिपदं पटिपन्नो होति यसोपटिलाभिनिं सग्गसंवत्तनिकं ति।

''गिहिसामीचिपटिपदं, पटिपज्जन्ति पण्डिता।
सम्मग्गते सीलवन्ते, चीवरेन उपट्ठिता॥
पिण्डपातसयनेन, गिलानप्पच्चयेन च। [N.69]
तेसं दिवा च रत्तो च, सदा पुञ्ञं पवड्ढति।

---

९. भोजनसूत्र : : भोजनदान के चार लाभ

[अनुपद में वर्णित सुदत्तसूत्र के समान ही (सम्बोधन-परिवर्तन के साथ) इस सूत्र का अनुवाद है] ●

१०. गृहीसामीचीसूत्र : : चार का दाता गृहस्थ यशस्वी

१. तब अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान् के सम्मुख आये। आकर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे गृहपति को भगवान् ने यह उपदेश किया—

''गृहपति! इन चार धर्मों से समन्वित आर्यश्रावक यश एवं स्वर्ग सुखप्रद गृहस्थोचित मार्ग पर आरूढ़ माना जाता है। किन चार धर्मों से? (१) गृहपति! जो आर्यश्रावक **चीवरदान** से भिक्षुसङ्घ की सेवा करता है, **पिण्डपात** से... **शयनासन** से एवं रुग्णावस्था में उपयोगी **औषधियों** से भिक्षुसङ्घ की सेवा करता है। इन चार धर्मों से युक्त, गृहपति! गृहस्थोचित यश एवं स्वर्गसुखप्रद मार्ग पर आरूढ माना जाता है।

''ऐसे बुद्धिमान् गृहस्थोचित मार्ग पर आरूढ़ माने जाते हैं जो सम्यक् मार्गारूढ शीलवान् भिक्षुओं की चीवरदान से सेवा करते हैं॥

सग्गं च कमतिट्ठानं, कम्मं कत्वान भद्दकं'' ति॥

पुञ्ञाभिसन्दवग्गो छट्ठो॥

तस्सुद्दानं

द्वे पुञ्ञाभिसन्दा, द्वे च संवासा समजीविनो।
सुप्पवासा सुदत्तो च, भोजनं गिहिसामिची ति॥

७. पत्तकम्मवग्गो

१. पत्तकम्मसुत्तं : १. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—

२. ''चत्तारो मे, गहपति, धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा दुल्लभा लोकस्मिं। कतमे [B.377,R.66] चत्तारो? भोगा मे उप्पज्जन्तु सहधम्मेना ति, अयं पठमो धम्मो इट्ठो कन्तो मनापो दुल्लभो लोकस्मिं।

३. ''भोगे लद्धा सहधम्मेन यसो मे आगच्छतु सह ञातीहि सह उपज्झायेही ति, अयं दुतियो धम्मो इट्ठो कन्तो मनापो दुल्लभो लोकस्मिं।

''जो गृहस्थ भोजनदान एवं शयनासन तथा रोगोपयोगी ओषधियों के दान से भिक्षुसङ्घ की सेवा करता है, ऐसे गृहस्थों का पुण्य दिन रात बढ़ता ही रहता है। तथा ऐसा वह गृहस्थ ये शुभ कर्म करता हुआ स्वर्ग तक अपना मार्ग सुखद (निष्कण्टक) बना लेता है॥''

पुण्याभिष्यन्दवर्ग षष्ठ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम पुण्याभिष्यन्द सूत्र, २. द्वितीय पुण्याभिष्यन्द सूत्र, ३. प्रथम संवाससूत्र, ४. द्वितीय संवाससूत्र, ५. प्रथम समजीविसूत्र, ६. द्वितीय समजीविसूत्र, ७. सुप्रवासा कोलियधीतासूत्र, ८. सुदत्तसूत्र, ९. भोजनसूत्र एवं १०. गृहसामीचिसूत्र॥

७. प्राप्तकर्मवर्ग

१. प्राप्त कर्मसूत्र　: :　लोक में चार धर्म दुर्लभ

१. तब अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान् के सम्मुख गये। जाकर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे गृहपति को भगवान् ने यह उपदेश किया—

२. ''गृहपति! लोक में इष्ट कान्त एवं मनाप चार धर्म दुर्लभ हैं। कौन से चार? 'प्रसङ्गोपात्त **कामभोग** मुझको उपलब्ध होते रहें'—यह प्रथम इष्ट, कान्त, मनाप धर्म लोक में दुर्लभ है। (१)

३.'' 'कामभोग प्राप्त कर प्रसङ्गोपात्त **यश** भी मुझे मिलता रहे'—यह द्वितीय इष्ट, कान्त एवं मनाप धर्मलोक में दुर्लभ है। (२)

४. ''भोगे लद्धा सहधम्मेन यसं लद्धा सह ञातीहि सह उपज्झायेहि चिरं जीवामि दीघमायुं पालेमी ति, अयं ततियो धम्मो इट्ठो कन्तो मनापो दुल्लभो लोकस्मिं।

५. ''भोगं लद्धा सहधम्मेन यसं लद्धा सह ञातीहि सह उपज्झायेहि चिरं जीवित्वा दीघमायुं पालेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जामी ति, अयं चतुत्थो धम्मो इट्ठो कन्तो मनापो दुल्लभो लोकस्मिं। इमे खो, गहपति, चत्तारो धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा दुल्लभा लोकस्मिं।

६. ''इमेसं खो, गहपति, चतुन्नं धम्मानं इट्ठानं कन्तानं मनापानं दुल्लभानं [N.70] लोकस्मिं चत्तारो धम्मा पटिलाभाय संवत्तन्ति। कतमे चत्तारो? सद्धासम्पदा, सीलसम्पदा, चागसम्पदा, पञ्ञासम्पदा।

७. ''कतमा च, गहपति, **सद्धासम्पदा**? इध, गहपति, अरियसावको सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं— 'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा ति। अयं वुच्चति, गहपति, सद्धासम्पदा।

८. ''कतमा च गहपति **सीलसम्पदा**? इध, गहपति, अरियसावको पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। अयं वुच्चति, गहपति, सीलसम्पदा।

९. ''कतमा च, गहपति, **चागसम्पदा**? इध, गहपति, अरियसावको विगत-

---

४. '' 'कामभोग प्राप्त कर, यश प्राप्त कर अपने नाती रिश्तेदारों तथा उपाध्यायों के साथ दीर्घकाल तक अपनी लम्बी **आयु** प्राप्त करूँ'—यह तृतीय इष्ट कान्त एवं मनाप धर्म लोक में दुर्लभ है। (३)

५. '' 'भोगों को प्राप्त कर, साथ ही यश प्राप्त कर, साथ ही अपने नाते रिश्तेदारों एवं उपाध्यायों के साथ चिरकाल तक जीवित रहकर, दीर्घ आयु प्राप्त कर, मरणानन्तर **स्वर्ग** में उत्पन्न होऊँ'—यह इष्ट कान्त मनाप चतुर्थ धर्म लोक में दुर्लभ है। (४)

६. ''गृहपति! लोक में इन चारों इष्ट, कान्त, मनाप दुर्लभ धर्मों की प्राप्तिहेतु ये चार धर्म होते हैं। कौन से चार? (१) श्रद्धासम्पदा, (२) शीलसम्पदा, (३) त्यागसम्पदा, एवं (४) प्रज्ञासम्पदा।

७. ''गृहपति! इनमें **श्रद्धासम्पदा** कौन होती है? गृहपति यहाँ कोई आर्यश्रावक तथागत के प्रति श्रद्धा रखता हुआ तथागत की सम्बोधि के लिये यों श्रद्धा प्रकट करता है—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हैं ...पूर्ववत्... बुद्ध भगवान् हैं'। गृहपति! यह है—श्रद्धासम्पदा। (१)

८. ''गृहपति! **शीलसम्पदा** क्या होती है? गृहपति! यहाँ कोई आर्यश्रावक प्राणातिपात से विरत... मद्यपान से विरत होता है। गृहपति! यह कहलाती है—शीलसम्पदा। (२)

९. ''गृहपति! **त्यागसम्पदा** क्या कहलाती है? यहाँ गृहपति! कोई आर्यश्रावक मात्सर्य मल

मलमच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दानसंविभागरतो। अयं वुच्चति, गहपति, चागसम्पदा।

[B.378, R.67] १०. ''कतमा च, गहपति, **पञ्ञासम्पदा**? अभिज्झाविसमलोभाभिभूतेन, गहपति, चेतसा विहरन्तो अकिच्चं करोति, किच्चं अपराधेति। अकिच्चं करोन्तो किच्चं अपराधेन्तो यसा च सुखा च धंसति। ब्यापादाभिभूतेन, गहपति, चेतसा विहरन्तो अकिच्चं करोति, किच्चं अपराधेति। अकिच्चं करोन्तो किच्चं अपराधेन्तो यसा च सुखा च धंसति। थीनमिद्धाभिभूतेन, गहपति, चेतसा विहरन्तो अकिच्चं करोति किच्चं अपराधेति। अकिच्चं करोन्तो किच्चं अपराधेन्तो यसा च सुखा च धंसति। उद्धच्चकुक्कुच्चाभिभूतेन, गहपति, चेतसा विहरन्तो अकिच्चं करोति, किच्चं अपराधेति। अकिच्चं करोन्तो किच्चं अपराधेन्तो यसा च सुखा च धंसति। विचिकिच्छाभिभूतेन, गहपति, चेतसा विहरन्तो अकिच्चं करोति, किच्चं अपराधेति। अकिच्चं करोन्तो किच्चं अपराधेन्तो यसा च सुखा च धंसति।

११. ''स खो सो, गहपति, अरियसावको 'अभिज्झाविसमलोभो चित्तस्स उपक्किलेसो' ति, इति विदित्वा अभिज्झाविसमलोभं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहति। [N.71] 'ब्यापादो चित्तस्स उपक्किलेसो' ति, इति विदित्वा ब्यापादं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहति। थीनमिद्धं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहति। 'उद्धच्चकुक्कुच्चं चित्तस्स उपक्किलेसो' ति, इति विदित्वा उद्धच्चकुक्कुच्चं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहति। 'विचिकिच्छा चित्तस्स उपक्किलेसो' ति, इति विदित्वा विचिकिच्छं चित्तस्स उपक्किलेसं पजहति।

१२. ''यतो च खो, गहपति, अरियसावकस्स अभिज्झाविसमलोभो चित्तस्स

से रहित होकर गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ, खुले हाथों से त्यागवृत्ति से मुक्त दान करता है, गृहपति! यह कहलाती है त्यागसम्पदा। (३)

१०. ''गृहपति! **प्रज्ञासम्पदा** किसे कहते हैं। कोई पुरुष विषम लोभाभिभूत चित्त से अकृत्य करता है, सुकृत्य से घृणा करता है। ऐसे अकृत्य करते हुए तथा सुकृत्य न करते हुए वह यश एवं सुख—दोनों से वञ्चित होता है। स्त्यानमृद्धयुक्त चित्त से... औद्धत्य-कौकृत्याभिभूत चित्त से... विचिकित्साभिभूत चित्त से, गृहपति! कोई अकृत्य में उत्साहित रहता है, सुकृत्य से घृणा करता है, इस प्रकार अकृत्य करता हुआ एवं सुकृत्य न करता हुआ वह अपने यश एवं सुख—दोनों से वञ्चित हो जाता है।

११. ''गृहपति! वह आर्यश्रावक 'यह अभिध्या (विषम लोभ) चित्त का उपक्लेश है'—ऐसा जानकर उस अभिध्या उपक्लेश को त्याग देता है। 'व्यापाद चित्त का उपक्लेश है'—ऐसा जानकर उस व्यापाद उपक्लेश को त्याग देता है। 'स्त्यानमृद्ध..., औद्धत्य कौकृत्य..., 'विचिकित्सा चित्त का उपक्लेश है'—ऐसा जानकर उस विचिकित्सा उपक्लेश को त्याग देता है।

१२. ''क्योंकि, गृहपति! उस आर्यश्रावक के 'अभिध्या विषम लोभ चित्त का उपक्लेश

उपक्किलेसो ति, इति विदित्वा अभिज्झाविसमलोभो चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो होति। ब्यापादो चित्तस्स उपक्किलेसो ति, इति विदित्वा ब्यापादो चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो होति। थीनमिद्धं चित्तस्स उपक्किलेसो ति, इति विदित्वा थीनमिद्धं चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो होति। उद्धच्चकुक्कुच्चं चित्तस्स उपक्किलेसो ति, इति विदित्वा उद्धच्चकुक्कच्चं चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो होति। विचिकिच्छा चित्तस्स उपक्किलेसो ति, इति विदित्वा विचिकिच्छा चित्तस्स उपक्किलेसो पहीनो होति। अयं वुच्चति, गहपति, अरियसावको महापञ्ञो पुथुपञ्ञो आपातदसो पञ्ञासम्पन्नो। अयं वुच्चति, गहपति, पञ्ञासम्पदा। इमेसं खो, गहपति, चतुन्नं धम्मानं इट्ठानं कन्तानं मनापानं दुल्लभानं लोकस्मिं इमे चत्तारो [B.379] धम्मा पटिलाभाय संवत्तन्ति।

१३. ''स खो सो, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि चत्तारि पत्तकम्मानि कत्ता होति। कतमानि चत्तारि? इध गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि अत्तानं सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति। मातापितरो सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति। पुत्तदारदास-कम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति। मित्तामच्चे सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति। इदमस्स **पठमं** ठानगतं होति पत्तगतं आयतनसो परिभुत्तं।

१४. ''पुन च परं, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि [N.72,R.68] भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि या ता होन्ति आपदा

है'—ऐसा जान लेने से वह अभिध्या चित्त का उपक्लेश क्षीण हो जाता है; व्यापाद... स्त्यानमृद्ध... औद्धत्य कौकृत्य... 'विचिकित्सा चित्त का उपक्लेश है'—ऐसा जान लेने से उसका वह विचिकित्सा चित्त का उपक्लेश क्षीण हो जाता है। ऐसा वह आर्यश्रावक महाप्राज्ञ, सूक्ष्मदर्शी, सीधा मार्ग देखने वाला, प्रज्ञा सम्पन्न कहलाता है। गृहपति! यह कहलाती है—प्रज्ञासम्पदा। (४)

''गृहपति! इस प्रकार उन चार लोक में दुर्लभ इष्ट कान्त मनाप धर्मों की प्राप्ति के लिये इन चार धर्मों की प्राप्ति अत्यावश्यक है।

१३. इस प्रकार, गृहपति! वह आर्यश्रावक वीर्य से सम्पन्न (अधिगत) होनेवाले, बाहुबल से प्राप्त होने वाले, पसीना बहाने से (अत्यधिक परिश्रम करने पर) धार्मिक एवं धर्म से प्राप्त होने वाले चार कर्मों को उपलब्ध कर पाता है। कौन से चार? (१) वह वीर्य से, बाहुबल से, कठोर परिश्रम द्वारा पसीना बहाने से अधिगत होने वाले कामभोगों से स्वयं को सुखी करता है, माता पिता को सुखी रखता है, अपने मित्र एवं साथियों को, पुत्र पत्नी एवं नौकर चाकरों को सुखी रखता है। यह उसका प्रथम स्थानगत प्राप्तकर्म है उसके करनेके बाद ही वह कामभोग उसके द्वारा, उसकी इन्द्रियों द्वारा यथाप्रसङ्ग भोगा जाता है। (१)

१४. फिर वह, गृहपति उन वीर्य से, बाहुबल एवं पसीना बहाने से अधिगत हुए कामभोगों की इन सम्भाव्य आपदाओं से रक्षा करता है; जैसे—अग्नि से, जल की बाढ़ से, राजाओं से, चौरों

अग्गितो वा उदकतो वा राजतो वा चोरतो वा अप्पियतो वा दायादतो वा, तथारूपासु आपदासु परियोधाय संवत्तति। सोत्थिं अत्तानं करोति। इदमस्स **दुतियं** ठानगतं होति पत्तगतं आयतनसो परिभुत्तं।

१५. "पुन च परं, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि पञ्चबलिं कत्ता होति— ञातिबलिं, अतिथिबलिं, पुब्बपेतबलिं, राजबलिं, देवताबलिं। इदमस्स **ततियं** ठानगतं होति पत्तगतं आयतनसो परिभुत्तं।

१६. "पुन च परं, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि ये ते समणब्राह्मणा मदप्पमादा पटिविरता खन्तिसोरच्चे निविट्ठा एकमत्तानं दमेन्ति, एकमत्तानं समेन्ति, एकमत्तानं परिनिब्बापेन्ति, तथारूपेसु समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं [B.380] सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। इदमस्स **चतुत्थं** ठानगतं होति पत्तगतं आयतनसो परिभुत्तं।

१७. "स खो सो, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि इमानि चत्तारि पत्तकम्मानि कत्ता होति। यस्स कस्सचि, गहपति, अञ्ञत्र इमेहि चतूहि पत्तकम्मेहि भोगा परिक्खयं गच्छन्ति, इमे वुच्चन्ति, गहपति, भोगा अट्ठानगता अपत्तगता अनायतनसो परिभुत्ता। यस्स कस्सचि, गहपति, इमेहि चतूहि पत्तकम्मेहि भोगा परिक्खयं गच्छन्ति, इमे वुच्चन्ति, गहपति, भोगा ठानगता पत्तगता आयतनसो परिभुत्ता ति।

से, शत्रुओं से, सम्बन्धियों से। ऐसी आपत्तियों से उन कामभोगों की रक्षा करता रहता है। यह उसका द्वितीय स्थानगत प्राप्तकर्म है इसके करने के बाद ही इन कामभोगों को उसके द्वारा, उसकी इन्द्रियों द्वारा यथाप्रसङ्ग भोगा जाता है। (२)

१५. "फिर वह, गृहपति! इन वीर्याधिगत... पूर्ववत्... धार्मिक धर्मलब्ध कामभोगों से पहले इन पाँच बलियों (कर=टैक्स) को पूर्ण करता है; जैसे—ज्ञातिबलि, अतिथिबलि, पूर्वप्रेतबलि, राजबलि एवं देवताबलि। यह इस आर्यश्रावक का तृतीय स्थानगत प्राप्त कर्म है, जिसे पूर्ण करने के बाद ही (उसके द्वारा) उसकी इन्द्रियों द्वारा इन कामभोगों का परिभोग हो पाता है। (३)

१६. "फिर, गृहपति! वह आर्यश्रावक उन स्वबलवीर्यबाहूपार्जित... धार्मिक धर्मलब्ध कामभोगों से मदप्रमाद रहित, सन्तोष वृत्ति वाले, स्वचत्ति का निग्रह रखने वाले श्रमण ब्राह्मणों को स्वर्ग सुख देने वाले उत्तम दान दक्षिणा करता है। यह इस आर्यश्रावक का चतुर्थ स्थानगत आवश्यक प्राप्त कर्म है। इसे पूर्ण करने के बाद ही वह इन कामभोगों का परिभोग कर पाता है। (४)

१७. "इस प्रकार, गृहपति! वह आर्यश्रावक उन स्वबलवीर्यबाहूपार्जित... धार्मिक धर्मलब्ध कामभोगों से इन चार प्राप्तकर्मों को पूर्ण करने के बाद ही वह इन कामभोगों का यथोचित उपभोग कर पाता है। गृहपति! किसी किसी के ये कामभोग इन चारों प्राप्तकर्मों के अतिरिक्त अन्यत्र अनुचित

"भुत्ता भोगा भता भच्चा, वितिण्णा आपदासु मे।
उद्धग्गा दक्खिणा दिन्ना, अथो पञ्चबली कता।
उपट्ठिता सीलवन्तो, सञ्ञता ब्रह्मचारयो॥
"यदत्थं भोगं इच्छेय्य, पण्डितो घरमावसं। [N.73]
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, कतं अननुतापियं॥ [R.69]
"एतं अनुस्सरं मच्चो, अरियधम्मे ठितो नरो।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती" ति॥ •

२. आनण्यसुत्तं : १. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—

२. "चत्तारिमानि, गहपति, सुखानि अधिगमनीयानि गिहिना कामभोगिना कालेन कालं समयेन समयं उपादाय। कतमानि चत्तारि? अत्थिसुखं, भोगसुखं, आनण्यसुखं, अनवज्जसुखं।

३. "कतमं च, गहपति, अत्थिसुखं? इध, गहपति, कुलपुत्तस्स भोगा होन्ति उट्ठानविरियाधिगता बाहाबलपरिचिता सेदावक्खित्ता धम्मिका धम्मलद्धा। सो 'भोगा मे

स्थानों पर भी व्यय हो जाते हैं; गृहपति! ऐसे कामभोग 'अपात्र एवं अस्थान में व्यय किये गये' कहलाते हैं। परन्तु आर्यश्रावकों के कामभोगों का व्यय इन उपर्युक्त चार प्राप्त कर्मों में ही होता है, अत: उसके ये कामभोग सत्पात्र एवं शुभस्थान में व्यय होने के बाद ही अवशिष्ट इसकी इन्द्रियों द्वारा भोगे गये—ऐसा कहा जाता है।

"किसी आर्यश्रावक को स्वबलवीर्यबाहूपार्जित... धार्मिक धर्मलब्ध कामभोगों द्वारा स्वाश्रित माता पिता आदि का भरण पोषण, अग्नि जल आदि आपदाओं से रक्षा, पञ्चबलि आदि की पूर्ति, सदाचारी धर्माचारी श्रमण ब्राह्मणों को अन्नादि का दान करना चाहिये॥

"एतदर्थ उसे यही चिन्तन करना चाहिये—'जिनके लिये मैंने घर बसाकर ये कामभोग अर्जित किये थे, मेरा वह प्रयोजन पूर्ण हो गया। मैं अब निश्चिन्त हो गया'॥

"जो मनुष्य इस प्रकार चिन्तन करता हुआ आर्यधर्म का पालन करता रहता है, उसकी इस लोक में भी प्रशंसा होती है तथा मरणानन्तर वह स्वर्गलोक में दिव्य सुख भोगता है॥" •

२. आनृण्यसूत्र : : चार सुख

१. तब कभी अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान् के समीप आये। आकर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे अनाथपिण्डिक गृहपति को भगवान् ने यह उपदेश किया—

२. "गृहपति! कामभोगी गृहस्थ को समय समय पर यथोचित काल में इन चार सुखों की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिये। कौन से चार? (१) अस्तिसुख, (२) भोगसुख, (३) आनृण्यसुख एवं (४) अनवद्यसुख।

३. "गृहपति! यह **अस्तिसुख** क्या होता है? गृहपति! यहाँ किसी कुलपुत्र के पास

[B.381] अत्थि उट्ठानविरियाधिगता बाहाबलपरिचिता सेदावक्खित्ता धम्मिका धम्मलद्धा' ति अधिगच्छति सुखं, अधिगच्छति सोमनस्सं। इदं वुच्चति, गहपति, **अत्थिसुखं**।

४. "कतमं च, गहपति, भोगसुखं? इध, गहपति, कुलपुत्तो उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि परिभुञ्जति पुञ्ञानि च करोति। सो उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि परिभुञ्जामि पुञ्ञानि च करोमी ति अधिगच्छति सुखं, अधिगच्छति सोमनस्सं। इदं वुच्चति, गहपति, **भोगसुखं**।

५. "कतमं च, गहपति, आनण्यसुखं? इध, गहपति, कुलपुत्तो न कस्सचि किञ्चि धारेति अप्पं वा बहुं वा। सो 'न कस्सचि किञ्चि धारेमि अप्पं वा बहुं वा' ति अधिगच्छति सुखं, अधिगच्छति सोमनस्सं। इदं वुच्चति, गहपति, **आनण्यसुखं**।

[N.74] ६. "कतमं, च, गहपति, अनवज्जसुखं? इध, गहपति, अरियसावको अनवज्जेन कायकम्मेन समन्नागतो होति, अनवज्जेन वचीकम्मेन समन्नागतो होति, अनवज्जेन [R.70] मनोकम्मेन समन्नागतो होति। सो अनवज्जेनम्हि कायकम्मेन समन्नागतो, अनवज्जेन वचीकम्मेन समन्नागतो, अनवज्जेन मनोकम्मेन समन्नागतो ति अधिगच्छति सुखं, अधिगच्छति सोमनस्सं। इदं वुच्चति, गहपति, **अनवज्जसुखं**।

"इमानि खो, गहपति, चत्तारि सुखानि अधिगमनीयानि गिहिना कामभोगिना कालेन कालं समयेन समयं उपादाया ति।

स्वबाहुबलवीर्य से पसीना बहाकर अर्जित किये गये धार्मिक धर्म से प्राप्त कामभोग हों। वह 'मेरे पास स्वबाहु... धर्मलब्ध कायसुख हैं'—ऐसी यह सुखों की अस्तिता-ज्ञान का सुख एवं सौमनस्य ही 'अस्तिसुख' कहलाता है। (१)

४. "और, गृहपति! यह **भोगसुख** क्या है? जब कोई कुलपुत्र स्वबाहुबलवीर्यार्जित, पसीना बहाकर प्राप्त किये धार्मिक धर्मलब्ध अपने कामभोगों का उपभोग करता है। उस समय उत्पन्न हुआ सुख ही 'भोगसुख' कहलाता है। (२)

५. "और, गृहपति! **आनृण्यसुख** क्या कहलाता है? यहाँ, गृहपति! कोई कुलपुत्र व किसी से कुछ भी थोड़ा या बहुत धन उधार (ऋण रूप में) नहीं लेता। उस समय उसको हुआ यह सौमनस्य ही—'मैंने किसी से कुछ भी थोड़ा या बहुत धन ऋणरूप में नहीं लिया'—ऐसा चिन्तन सुख ही 'आनृण्यसुख' कहलाता है। (३)

६. "और, गृहपति! यह **अनवद्य** (निर्दोष) **सुख** क्या कहलाता है? यहाँ, गृहपति! कोई आर्यश्रावक अनवद्य कायकर्म से... अनवद्य वाक्कर्म से... अनवद्य मन:कर्म से समन्वित होता है। वह 'मैं अनवद्य कार्यकर्म, अनवद्य वाक्कर्म... अनवद्य मन:कर्म से समन्वित हूँ'—ऐसा सुख अनुभव करता है, सौमनस्य अधिगत करता है। यह कहलाता है, गृहपति! 'अनवद्यसुख'। (४)

"यों, गृहपति! गृही कामभोगी को समय समय पर, यथावसर ये चार सुख प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिये।

''आनण्यसुखं ञत्वान, अथो अत्थिसुखं परं।
भुञ्जं भोगसुखं मच्चो, ततो पञ्ञा विपस्सति।
''विपस्समानो जानाति, उभो भोगे सुमेधसो।
अनवज्जसुखस्सेतं, कलं नाग्घति सोळसिं'' ति॥ ●

३. ब्रह्मसुत्तं : १. ''सब्रह्मकानि, भिक्खवे, तानि कुलानि, येसं पुत्तानं मातापितरो अज्झागारे पूजिता होन्ति। सपुब्बाचरियकानि, भिक्खवे, तानि कुलानि, येसं पुत्तानं मातापितरो अज्झोगारे पूजिता होन्ति। सपुब्बदेवतानि, भिक्खवे, तानि कुलानि, येसं [B.382] पुत्तानं मातापितरो अज्झागारे पूजिता होन्ति। साहुनेय्यकानि, भिक्खवे, तानि कुलानि, येसं पुत्तानं मातापितरो अज्झागारे पूजिता होन्ति।

२. ''ब्रह्मा ति, भिक्खवे, मातापितूनं एतं अधिवचनं। पुब्बाचरिया ति, भिक्खवे, मातापितूनं एतं अधिवचनं। पुब्बदेवता ति, भिक्खवे, मातापितूनं एतं अधिवचनं। आहुनेय्या ति, भिक्खवे, मातापितूनं एतं अधिवचनं। तं किस्स हेतु? बहुकारा, भिक्खवे, मातापितरो, पुत्तानं आपादका पोसका इमस्स लोकस्स दस्सेतारो ति।

''ब्रह्मा ति मातापितरो, पुब्बाचरिया ति वुच्चरे।
आहुनेय्या च पुत्तानं, पजाय अनुकम्पका॥
''तस्मा हि ने नमस्सेय्य, सक्करेय्य च पण्डितो। [N.75]
अन्नेन अथ पानेन, वत्थेन सयनेन च।
उच्छादनेन न्हापनेन, पादानं धोवनेन च॥

''कोई पुरुष आनृण्यसुख को जानकर, फिर अस्तिसुख की, तथा भोगसुख की प्रज्ञा से समीक्षा करता है॥

''यह समीक्षा करते हुए वह समझ लेता है कि बुद्धिमान् पुरुष के लिये अनवद्य सुख की अपेक्षा ये तीनों ही सुख उसकी सोलहवीं कला (अंश) की भी समानता नहीं करते॥'' ●

३. ब्रह्मसूत्र : : चतुर्विध कुल

१. ''भिक्षुओ! उन कुलों में ब्रह्मा का वास ही समझो, जिन कुलों के पुत्रों के द्वारा माता-पिता पूजित होते हैं। भिक्षुओ! वे कुल पूर्वाचार्यों से युक्त हैं, जिन कुलों के पुत्रों द्वारा माता-पिता पूजित होते हैं। भिक्षुओ! वे कुल पूर्व देवताओं से भी युक्त हैं जिन कुलों के पुत्रों द्वारा उनके माता पिता पूजित होते हैं। भिक्षुओ! वे कुल आह्वानीयों (अतिथियों) से युक्त भी समझे जायँ, जिनके पुत्र अपने माता पिता की पूजा करते हैं।

२. ''यहाँ प्रयुक्त 'ब्रह्मा' शब्द माता पिता का पर्याय है। 'पूर्वाचार्य' शब्द भी माता पिता का ही बोधक है। 'पूर्व देवता' शब्द भी माता पिता का ही द्योतक है। 'आह्वानीय' शब्द भी माता पिता का ही बोधक है।

''यहाँ 'ब्रह्मा', 'पूर्वाचार्य', ('पूर्व देवता') एवं 'आह्वानीय' ये शब्द 'माता पिता' के ही बोधक हैं। ये पुत्रों की सन्ततियों पर अनुकम्पा करनेवाले हैं॥

"ताय नं पारिचरियाय, मातापितूसु पण्डिता।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती" ति॥ ●

४. निरयसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं [R.71] निरये। कतमेहि चतूहि? पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये ति।

"पाणातिपातो अदिन्नादानं, मुसावादी च वुच्चति।
परदारगमनं चा पि, नप्पसंसन्ति पण्डिता" ति॥ ●

५. रूपसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? रूपप्पमाणो रूपप्पसन्नो, घोसप्पमाणो घोसप्पसन्नो, लूखप्पमाणो [B.383] लूखप्पसन्नो, धम्मप्पमाणो धम्मप्पसन्नो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

"ये च रूपं पमाणिंसु, ये च घोसेन अन्वगू।
छन्दरागवसूपेता, नाभिजानन्ति ते जना॥
"अज्झत्तं च न जानाति, बहिद्धा च न पस्सति।

"अत: पण्डितों द्वारा इनको प्रणाम करना चाहिये, इनका अन्न, पान, वस्त्र, शयनासन, उत्सादन (अभ्यङ्ग) स्नान तथा चरणप्रक्षालन द्वारा सत्कार सम्मान करना चाहिये।

"बुद्धिमान् पुरुष माता पिता की ऐसी परिचर्या द्वारा यहाँ तो सुख भोगते ही हैं, उनकी यहाँ प्रशंसा भी होती ही है तथा इस देहपात के बाद स्वर्ग में जाकर दिव्य सुख भी भोगते हुए प्रमुदित रहते हैं॥" ●

४. निरयसूत्र : : चार नरकगामी

१. "भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त कर्महीन पुरुष जैसे आया था वैसे ही पुन: नरक में जा गिरता है। किन चार धर्मों से? (१) जो प्राणातिपाती होता है, (२) जो चौर होता है, (३) जो व्यभिचारी होता है, (४) तथा जो असत्यभाषी होता है।

"पण्डितजन इन चार असत्कर्मों की कभी प्रशंसा नहीं करते—१. प्राणातिपात, २. अदत्तादान (चौरी), ३. मृषावाद एव ४. परदारगमन॥" ●

५. रूपसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. "भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं। कौन चार? (१) रूप को प्रमाण मानने वाले, रूप में ही श्रद्धालु; (२) घोष (शब्द) को ही प्रमाण मानने वाले, घोष में ही प्रसन्न; (३) रूक्षाचार को ही प्रमाण मानने वाले, रूक्षाचार में श्रद्धालु; तथा (४) सद्धर्म को ही प्रमाण मानने वाले, सद्धर्म में ही प्रसन्न। भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं।

"इनमें जो रूपों को प्रमाण मानते हैं, एवं जो घोषों का ही अनुगमन करते हैं—वे दोनों प्रकार के पुरुष सांसारिक राग में आसक्त हैं, वे लोग वास्तविक तत्त्व नहीं जानते॥

समन्तावरणो बालो, स वे घोसेन वुय्हति॥
"अज्झत्तं च न जानाति, बहिद्धा च विपस्सति।
बहिद्धा फलदस्सावी, सो पि घोसेन वुय्हति॥
"अज्झत्तं च पजानाति, बहिद्धा च विपस्सति।
विनीवरणदस्सावी, न सो घोसेन वुय्हती" ति॥ ●

६. **सरागसुत्तं** : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना [N.76] लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? सरागो, सदोसो, समोहो, समानो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं ति।

"सारत्ता रजनीयेसुं, पियरूपाभिनन्दिनो। [R.72]
मोहेन आवुता सत्ता, बद्धा वड्ढेन्ति बन्धनं॥
"रागजं दोसजं चा पि, मोहजं चापविद्दसू।
करोन्ताकुसलं कम्मं, सविघातं दुखुद्रयं॥
"अविज्जानिवुता पोसा, अन्धभूता अचक्खुका।
यथा धम्मा तथा सन्ता, न तस्सेवं ति मञ्ञरे" ति॥ ●

७. **अहिराजसुत्तं** : १. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन सावत्थियं अञ्ञतरो भिक्खु अहिना दट्ठो

"जिसको आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है, तथा जो बाह्य की वास्तविकता जान नहीं पाया; जिसका चित्त अज्ञानावरण से ढका हुआ है वह मूर्ख ही घोष के द्वारा बहकाया जा सकता है॥

"तथा ऐसा पुरुष भी, जिसको आध्यात्मिक ज्ञान तो नहीं है, परन्तु बाह्य का तत्त्व समझ चुका है, घोष के द्वारा बहकाया जा सकता है॥

"परन्तु जो पुरुष अध्यात्म एवं बाह्य—दोनों को तत्त्वतः जान चुका है, जिसका अज्ञानान्धकार नष्ट हो चुका है, ऐसा ज्ञानी इस घोष के द्वारा नहीं बहकाया जा सकता॥" ●

६. सरागसूत्र :: चार प्रकार के पुद्गल

"भिक्षुओ! चार प्रकार के पुरुष इस लोक में प्रायः देखे जाते हैं। कौन से चार? (१) रागयुक्त, (२) द्वेषयुक्त, (३) मोहयुक्त; एवं (४) मानयुक्त। भिक्षुओ! इस प्रकार के ये चार पुरुष लोक में देखे जाते हैं॥

"रागयोग्य धर्मों में आसक्त पुरुष ही प्रिय रूपों का अभिनन्दन करनेवाले होते हैं॥

"जो अज्ञानी जन रागजन्य, द्वेषजन्य एवं मोहजन्य अकुशल कर्म करते हैं वे अपने दुःख की वृद्धि तथा दुरवस्था की ओर ही बढ़ते हैं॥

"अविद्यान्धकार से आवृत, ज्ञान-नेत्रविहीन पुरुष वस्तुतः अन्धे ही हैं। परन्तु शान्त ज्ञानी जन इन सांसारिक धर्मों को अपना नहीं मानते॥" ●

७. अहिराजसूत्र :: चतुर्विध अहिराजकुल

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में

[B.384] कालङ्कतो होति। अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खवे, भगवन्तं एतदवोचुं—"इध, भन्ते, सावत्थियं अञ्ञतरो भिक्खु अहिना दट्ठो कालङ्कतो" ति।

२. "न हि नून सो, भिक्खवे, भिक्खु चत्तारि अहिराजकुलानि मेत्तेन चित्तेन फरि। सचे हि सो, भिक्खवे, भिक्खु चत्तारि अहिराजकुलानि मेत्तेन चित्तेन फरेय्य, न हि सो, भिक्खवे, भिक्खु अहिना दट्ठो कालङ्करेय्य। कतमानि चत्तारि? विरूपक्खं अहिराजकुलं, एरापथं अहिराजकुलं, छब्यापुत्तं अहिराजकुलं, कण्हागोतमकं अहिराजकुलं। न हि नून सो भिक्खवे, भिक्खु इमानि चत्तारि अहिराजकुलानि मेत्तेन चित्तेन फरि। सचे हि सो, भिक्खवे, भिक्खु इमानि चत्तारि अहिराजकुलानि मेत्तेन फरेय्य, न हि सो, भिक्खवे, भिक्खु अहिना दट्ठो कालङ्करेय्य।

[N.77] ३. "अनुजानामि, भिक्खवे, इमानि चत्तारि अहिराजकुलानि मेत्तेन चित्तेन फरितुं अत्तगुत्तिया अत्तरक्खाय अत्तपरित्ताया ति।

"विरूपक्खेहि मे मेत्तं, मेत्तं एरापथेहि मे।
छब्यापुत्तेहि मे मेत्तं, मेत्तं कण्हागोतमकेहि च॥
"अपादकेहि मे मेत्तं, मेत्तं द्विपादकेहि मे।
[R.73] चतुप्पदेहि मे मेत्तं, मेत्तं बहुप्पदेहि मे॥

साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय श्रावस्ती में किसी भिक्षु को सर्प ने डस लिया और वह मर गया। तब बहुत से भिक्षु (इसकी सूचना के लिये) भगवान् के सम्मुख आये। वे आकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए वे भिक्षु भगवान् से यों निवेदन करने लगे—"भन्ते! यहाँ श्रावस्ती में एक भिक्षु को किसी सर्प ने डस लिया और वह मर गया।"

२. "भिक्षुओ! अवश्य ही उस भिक्षु ने चार अहिराजकुलों के साथ मैत्रीयुक्त चित्त से व्यवहार नहीं किया होगा। यदि कोई भिक्षु इन चार अहिराजकुलों के साथ मैत्रीयुक्त चित्त से व्यवहार करता है तो वह कभी किसी सर्प के द्वारा काटा जाकर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। कौन से चार? (१) विरूपाक्ष अहिराजकुल, (२) छव्यापुत्र अहिराजकुल, (३) एरापुत्र अहिराजकुल, एवं (४) कृष्णागौतमक अहिराजकुल। भिक्षुओ! अवश्य ही उस भिक्षु ने इन चार अहिराजकुलों के साथ मैत्रीयुक्त चित्त से व्यवहार नहीं किया होगा। यदि, भिक्षुओ! वह भिक्षु इन चार अहिराजकुलों के साथ मैत्रीयुक्त चित्त से व्यवहार करता तो उसको वह सर्प कभी न डसता, न उसकी मृत्यु ही होती।

३. "भिक्षुओ! मैं तुमको अनुमति देता हूँ आत्मगुप्ति, आत्मरक्षा एवं आत्मपरित्राण हेतु इन चार अहिराजकुलों के साथ मैत्रीयुक्त चित्त से व्यवहार करने के लिये।

"विरूपाक्षों से मेरा मैत्रीभाव है, एरापथों के साथ मेरा मैत्रीभाव है, छव्यापुत्रों के साथ मेरा मैत्रीभाव है, तथा कृष्णागौतमकों के साथ भी मेरा मैत्रीभाव है॥

"मा मं अपादको हिंसि, मा मं हिंसि द्विपादको।
मा मं चतुप्पदो हिंसि, मा मं हिंसि बहुप्पदो॥
"सब्बे सत्ता सब्बे पाणा, सब्बे भूता च केवला।
सब्बे भद्रानि पस्सन्तु, मा कञ्चि पापमागमा॥

"अप्पमाणो बुद्धो, अप्पमाणो धम्मो, अप्पमाणो सङ्घो, पमाणवन्तानि सिरिंसपानि अहिविच्छिका सतपदी उण्णनाभी सरबू मूसिका।

"कता मे रक्खा, कता मे परित्ता। पटिक्कमन्तु भूतानि। सोहं नमो भगवतो, नमो सत्तन्नं सम्मासम्बुद्धानं" ति॥ ●

८. देवदत्तसुत्तं : १. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते अचिरपक्कन्ते देवदत्ते। तत्र खो भगवा देवदत्तं आरब्भ भिक्खू आमन्तेसि—[B.385] "अत्तवधाय, भिक्खवे, देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि। पराभवाय, भिक्खवे, देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि।

२. "सेय्यथापि, भिक्खवे, कदली अत्तवधाय फलं देति, पराभवाय फलं देति; एवमेव खो, भिक्खवे, अत्तवधाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि।

"विना पैरवालों के साथ भी मेरा मैत्रीभाव है, द्विपाद, चतुष्पाद एवं बहुपाद वालों के साथ भी मेरा मैत्रीभाव है॥

"मुझको न कोई अपादक (विना पैरों वाला) मार पावे, न दो पैरों वाला मार पावे, न चार पैरों वाला और न बहुत पैरों वाला ही मुझे मार पावे॥

"सभी सत्त्व, सभी प्राणी, सभी एकाकी भूत—ये सब भद्र (मङ्गल) को ही देखें। कोई पापकर्म मन में न लावे।

"भगवान् बुद्ध का कोई प्रमाण (माप) नहीं है। उनके धर्म का... उनके द्वारा स्थापित सङ्घ का कोई प्रमाण (माप) नहीं है। जबकि सरीसृप (पेट के बल रेंगनेवाले सर्प आदि जीव), अहि (सर्प) बिच्छु, शतपदी (कनखजूरा), मकड़ी, सरभू (छिपकली), मूषिका (चुहिया) आदि का प्रमाण सीमित है।

"इस प्रकार मैंने आत्मरक्षा की, आत्मपरित्राण किया। अब ऐसे (प्रतिकूल) प्राणी लौट जायँ। वह मैं भगवान् बुद्ध को प्रणाम करता हूँ। सात विपश्यी आदि सम्यक्सम्बुद्धों को प्रणाम करता हूँ॥" ●

८. देवदत्तसूत्र : : चार आत्मघाती

१. एक समय भगवान् बुद्ध राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर, देवदत्त के कुछ समय पहले चले जाने के बाद, साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को बुलाकर देवदत्त के विषय में यह कहा—"भिक्षुओ! देवदत्त का (जनता से) लाभ, सत्कार एवं प्रशंसा—यह सब उसके आत्मवध के लिये ही हो रहा है। यह सब कुछ उसकी पराजय के लिये ही हो रहा है।

३. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, वेळु अत्तवधाय फलं देति, पराभवाय फलं देति; एवमेव खो, भिक्खवे, अत्तवधाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि।

[N.78] ४. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, नळो अत्तवधाय फलं देति, पराभवाय फलं देति; एवमेव खो, भिक्खवे, अत्तवधाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि।

५. सेय्यथापि, भिक्खवे, अस्सतरी अत्तवधाय गब्भं गण्हाति, पराभवाय गब्भं गण्हाति; एवमेव खो, भिक्खवे, अत्तवधाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादि, पराभवाय देवदत्तस्स लाभसक्कारसिलोको उदपादी ति।

''फलं वे कदलिं हन्ति, फलं वेळुं फलं नळं।
सक्कारो कापुरिसं हन्ति, गब्भो अस्सतरिं यथा'' ति॥ ●

[R.74] **९. पधानसुत्तं** : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, पधानानि। कतमानि चत्तारि? संवरप्पधानं, पहानप्पधानं, भावनाप्पधानं, अनुरक्खणाप्पधानं। कतमं च, भिक्खवे, [B.386] संवरप्पधानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **संवरप्पधानं**।

२. ''कतमं च, भिक्खवे, पहानप्पधानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नानं पापकानं

---

२. ''जैसे, भिक्षुओ! कदली (केला) वृक्ष आत्महत्या के लिये ही फल देता है उसी प्रकार देवदत्त का लाभ, सत्कार एवं यशोगान भी उसके आत्मवध के लिये ही हो रहा है, उसके पराभव के लिये ही उत्पन्न हो रहा है।

३. ''जैसे, भिक्षुओ! वेणु (बाँस) आत्महत्या के लिये ही फल देता है, उसी प्रकार देवदत्त का लाभ... पराभव के लिये ही उत्पन्न हो रहा है।

४. ''जैसे, भिक्षुओ! नड़ (सरकण्डा) आत्मवध के लिये ही फल देता है; उसी प्रकार देवदत्त का लाभ... पराजय के लिये ही उत्पन्न हो रहा है।

५. जैसे भिक्षुओ! अश्वतरी (खच्चरी) आत्मवध के लिये ही सन्तान पैदा करती है; उसी प्रकार देवदत्त का लाभ... पराभव के लिये ही उत्पन्न हो रहा है।

''कदली से पैदा हुआ फल उसी के नाश का कारण बनता है, बाँस का फल... नड़ का फल उसी के नाश का कारण बनता है। दुष्ट पुरुषों का सत्कार भी उनके नाश का उसी तरह कारण बनता है, जैसे किसी खच्चरी की पैदा हुई सन्तान उसके नाश का कारण बनती है॥'' ●

९. प्रधानसूत्र : : चार प्रधान

१. ''भिक्षुओ! ये चार प्रधान (सम्यक्प्रधान=प्रयास=प्रयत्न) होते हैं। कौन से चार? (१) संवर प्रधान, (२) प्रहाण प्रधान, (३) भावना प्रधान, एवं (४) अनुरक्षणा प्रधान।

२. ''भिक्षुओ! यहाँ **संवर प्रधान** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल

अकुसलानं धम्मानं पहानाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **पहानप्पधानं**।

३. "कतमं च, भिक्खवे, भावनाप्पधानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **भावनाप्पधानं**।

४. "कतमं च, भिक्खवे, अनुरक्खणाप्पधानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **अनुरक्खणाप्पधानं**। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि पधानानी ति।

"संवरो च पहानं च, भावना अनुरक्खणा। [N.79]
एते पधाना चत्तारो, देसितादिच्चबन्धुना।
यो हि भिक्खु इधातापी, खयं दुक्खस्स पापुणे" ति॥ ●

१०. अधम्मिकसुत्तं : १. "यस्मिं, भिक्खवे, समये राजानो अधम्मिका होन्ति, राजायुत्ता पि तस्मिं समये अधम्मिका होन्ति। राजायुत्तेसु अधम्मिकेसु ब्राह्मणगहपतिका पि तस्मिं समये अधम्मिका होन्ति। ब्राह्मणगहपतिकेसु अधम्मिकेसु नेगमजानपदा पि तस्मिं

धर्मों का उत्पादन न हो—एतदर्थ इच्छा करता है, उद्योग करता है, शक्ति लगाता है, चित्त का निग्रह करता है एवं तदर्थ अभ्यास करता है। भिक्षुओ! यह संवर प्रधान कहलाता है। (१)

३. "भिक्षुओ! यहाँ **प्रहाण प्रधान** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के विनाश के लिये इच्छा करता है... अभ्यास करता है। भिक्षुओ! यह 'प्रहाण प्रधान' कहलाता है। (२)

४. "भिक्षुओ! यहाँ **भावना प्रधान** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ, भिक्षु अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद की इच्छा करता है... अभ्यास करता है। भिक्षुओ! यह 'भावना प्रधान' कहलाता है। (३)

५. "भिक्षुओ! यहाँ **अनुरक्षणा प्रधान** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थिति के लिये, अक्षीणता के लिये, अधिकाधिक वृद्धि के लिये, अभ्यास एवं पूर्णता के लिये रुचि करता है, उद्योग करता है, शक्ति लगाता है, चित्त का निग्रह करता है तथा अभ्यास करता है। यह कहलाता है; भिक्षुओ! 'अनुरक्षणा प्रधान'। (४)

भिक्षुओ! ये चार 'प्रधान' होते हैं।

"१. संवर, २. प्रहाण, ३. भावना, ४. अनुरक्षण नामक इन चार प्रधानों की आदित्यबन्धु भगवान् ने देशना की है। इनकी साधना करने वाला भिक्षु दुःखक्षय को प्राप्त कर लेता है॥" ●

१०. अधार्मिकसूत्र :: अधर्म से सर्वत्र प्रतिकूलता

१. "भिक्षुओ! जिस समय राजा लोग अधार्मिक (अधर्मपूर्वक आचरण करने वाले) हो जाते हैं उस समय उनसे सम्पृक्त (उनके अधीन पुत्र एवं नौकर चाकर आदि) भी अधार्मिक हो जाते हैं। इनके अधार्मिक हो जाने के कारण (उन राजाओं के अधीन) अच्छे अच्छे ब्राह्मण गृहस्थ भी

समये अधम्मिका होन्ति। नेगमजानपदेसु नेगमजानपदा पि तस्मिं समये अधम्मिका होन्ति। नेगमजानपदेसु अधम्मिकेसु विसमं चन्दिमसुरिया परिवत्तन्ति। विसमं चन्दिमसुरियेसु [R.75] परिवत्तन्तेसु विसमं नक्खत्तानि तारकरूपानि परिवत्तन्ति। विसमं नक्खत्तेसु तारकरूपेसु परिवत्तन्तेसु विसमं रत्तिन्दिवा परिवत्तन्ति। विसमं रत्तिन्दिवेसु परिवत्तन्तेसु विसमं मासड्ढमासा परिवत्तन्ति। विसमं मासड्ढमासेसु परिवत्तन्तेसु विसमं उतुसंवच्छरा परिवत्तन्ति। विसमं उतुसंवच्छरेसु परिवत्तन्तेसु विसमं वाता वायन्ति विसमा अपञ्जसा। [B.387] विसमं वातेसु वायन्तेसु विसमेसु अपञ्जसेसु देवता परिकुपिता भवन्ति। देवतासु परिकुपितासु देवो नं सम्मा धारं अनुप्पवेच्छति। देवे न सम्मा धारं अनुप्पवेच्छन्ते विसमपाकानि सस्सानि भवन्ति। विसमपाकानि, भिक्खवे, सस्सानि मनुस्सा परिभुञ्जन्ता अप्पायुका होन्ति दुब्बण्णा च बव्हाबाधा च।

२. ''यस्मि भिक्खवे, समये राजानो धम्मिका होन्ति, राजायुत्ता पि तस्मिं समये धम्मिका होन्ति। राजायुत्तेसु धम्मिकेसु ब्राह्मणगहपतिका पि तस्मिं समये धम्मिका होन्ति। ब्राह्मणगहपतिकेसु धम्मिकेसु नेगमजानपदा पि तस्मिं समये धम्मिका होन्ति।

अधर्माचरण करने लगते हैं। इन ब्राह्मणों के अधार्मिक होने पर, उस राजा के अधीन निगम एवं जनपदों के वासी अन्य नागरिक भी अधर्माचरण करने लगते हैं। (इस प्रकार जनता के अधार्मिक हो जाने पर उसके इस अधर्माचरण का प्रभाव प्रकृति पर भी होने लगता है, अत:) उन नागरिकों के अधर्माचरण का प्रभाव चन्द्रमा एवं सूर्य पर भी पड़ने लगता है और उनकी गति आदि में कुछ विषमता (प्रतिकूलता) आने लगती है। इन चन्द्रमा एवं सूर्य की प्रतिकूल गति आदि का नक्षत्र एवं तारागण पर भी प्रभाव पड़ने लगता है और उनकी गति आदि में भी विषमता आने लगती है। उन नक्षत्र, तारागण की प्रतिकूलता का प्रभाव रात्रि एवं दिन पर पड़ने लगता है तथा उनमें भी विषम परिवर्तन होने लगता है। इस प्रकार इन रात्रि एवं दिन के प्रतिकूल होने पर उनसे बननेवाले मास (तीस दिन) एवं अर्धमास (पन्द्रह दिन=पक्ष) पर होने लगता है, अत: ये मास एवं अर्धमास भी कुछ प्रतिकूल दिखायी देने लगते हैं। इनकी इस प्रतिकूलता का प्रभाव, इनसे बनने वाले ऋतु (दो दो मास) एवं संवत्सरों (बारह मास या तीन सौ पैंसठ दिन का समूह) पर भी पड़ने लगता है। इस प्रकार इन ऋतु एवं संवत्सरों में प्रतिकूल परिवर्तन होने पर वायु भी अपने नियम के विपरीत सब दिशाओं से प्रतिकूल बहने लगती है। यों, वायु के अपने नियमों से प्रतिकूल बहने पर देवताओं का प्रकोप अवश्यम्भावी है। और देवताओं के प्रकुपित होने पर उनके आदेश से होनेवाली जलवृष्टि पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। तब समय पर अनुकूल जलवृष्टि न होने से खेत में उगे हुए धान के बीजों (दानों) के पाक में विषमता आने लगती है। भिक्षुओ! ऐसे विषम परिपाक वाले अन्न के दानों को खाने से मनुष्यों की आयु क्षीण होने लगती है। फलस्वरूप, वे अल्पायु, कुरूप एवं विविध प्रकार से रोगी होने लगते हैं। (क)

२. ''और, भिक्षुओ! जिस समय राजा लोग धार्मिक होते हैं (धर्मपूर्वक आचरण करते हुए प्रजापालन करते हैं) उस समय उनसे सम्पृक्त (उनके अधीन पुत्र, नौकर चाकर आदि) भी धार्मिक

नेगमजानपदेसु धम्मिकेसु समं नक्खत्तानि तारकरूपानि परिवत्तन्ति। समं नक्खत्तेसु तारकरूपेसु परिवत्तन्तेसु समं रत्तिन्दिवा परिवत्तन्ति। समं रत्तिन्दिवेसु परिवत्तन्तेसु समं मासद्धमासा परिवत्तन्ति। समं मासद्धमासेसु परिवत्तन्तेसु समं उतुसंवच्छरा [N.80] परिवत्तन्ति। समं उतुसंवच्छरेसु परिवत्तन्तेसु समं वाता समा पञ्जसा। समं वातेसु वायन्तेसु समेसु पञ्जसेसु देवता अपरिकुपिता भवन्ति। देवतासु अपरिकुपितासु देवो सम्मा धारं अनुप्पवेच्छति। देवे सम्मा धारं अनुप्पवेच्छन्ते समपाकानि सस्सानि भवन्ति। समपाकानि, भिक्खवे, सस्सानि मनुस्सा परिभुञ्जन्ता दीघायुका च होन्ति वण्णवन्तो च बलवन्तो च अप्पाबाधा चा ति।

''गुन्नं चे तरमानानं, जिम्हं गच्छति पुङ्गवो।
सब्बा ता जिम्हं गच्छन्ति, नेत्ते जिम्हं गते सति॥
''एवमेव मनुस्सेसु, यो होति सेट्ठसम्मतो।
सो चे अधम्मं चरति, पगेव इतरा पजा।
सब्बं रट्ठं दुक्खं सेति, राजा चे होति अधम्मिको॥ [R.76]

हो जाते हैं। इन राजपुत्र आदि के धार्मिक हो जाने पर (उन राजाओं के अधीन) अच्छे अच्छे ब्राह्मण गृहस्थ भी धर्मानुसार आचरण करने लगते हैं। इन ब्राह्मणों के धर्माचरण से प्रभावित होकर उस राज्य के निगमों, जनपदों एवं ग्रामों के वासी अन्य नागरिक भी धर्माचरण करने लगते हैं। (इस प्रकार, मनुष्यों के धार्मिक हो जाने का प्रभाव तत्कालीन प्रकृति पर भी पड़ने लगता है, अत:) उन राजाओं, ब्राह्मणों एवं नागरिकों के धर्माचरण के कारण चन्द्र एवं सूर्य की गति पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इन अनुकूल गतिवाले चन्द्र एवं सूर्य का शुभ प्रभाव उनके समीपस्थ नक्षत्र तारागण आदि पर पड़ना अनिवार्य है। इन नक्षत्र एवं तारागणों के अनुकूल रहने पर रात्रि एवं दिन भी अनुकूल होने लगते हैं। इस प्रकार इन रात्रि एवं दिन के अनुकूल होने पर उनसे बनने वाले मासों एवं अर्धमासों में भी अनुकूल परिवर्तन दिखायी देते हैं। इनकी इस अनुकूलता के कारण ऋतु एवं संवत्सरों में भी अनुकूल परिवर्तन होने लगता है। इन ऋतु एवं संवत्सरों में अनुकूल परिवर्तन होते रहने से वायु भी सभी दिशाओं से यथासमय अनुकूल बहने लगती है। इस प्रकार अनुकूल वायु (मानसूनों) से देवता भी प्रसन्न हुए दिखायी देते हैं। देवताओं के प्रसन्न होने से समय पर अनुकूल वर्षा होती है। समय पर अनुकूल वर्षा होने से खेत में खड़ा धान भली भाँति उन्नत होता है। उन्नत होने पर उसमें पड़े अन्न बीजों का अनुकूल पाक होता है। उस अनुकूल पके हुए अन्न को खाकर उस समय के मनुष्य दीर्घायु, सुन्दरवर्ण एवं नीरोग होते हैं। (ख)

''यदि नदी में तैरती हुई गौओं के आगे आगे तैरने वाला वृषभ टेढ़ी गति से तैरता है तो वे पीछे आने वाली गौएँ भी टेढ़ा ही तैरेंगी; क्योंकि उनका नेता टेढ़ा तैर रहा होता है॥

''इसी प्रकार मनुष्यों में श्रेष्ठ माना गया पुरुष यदि अधर्माचरण करेगा तो उसके अधीन प्रजा भी तब ही अधर्माचरण के लिये कटिबद्ध हो जायगी। उस समय समस्त प्रजा कष्टमय ही जीवन बितायगी यदि उनका राजा अधर्माचारी होगा।

"गुन्नं चे तरमानानं, उजुं गच्छति पुङ्गवो।
सब्बा ता उजुं गच्छन्ति, नेत्ते उजुं गते सति॥
[B.388] "एवमेव मनुसेस्सु, यो होति सेट्ठसम्मतो।
सो सचे धम्मं चरति, पगेव इतरा पजा।
सब्बं रट्ठं सुखं सेति, राजा चे होति धम्मिको'' ति॥ ●

पत्तकम्मवग्गो सत्तमो॥

तस्सुद्दानं

पत्तकम्मं आनण्यको, सब्रह्मनिरया रूपेन पञ्चमं।
सरागअहिराजा देवदत्तो, पधानं अधम्मिकेन चा ति॥ ●

८. अपण्णकवग्गो

१. **पधानसुत्तं** : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अपण्णकप्पटिपदं पटिपन्नो होति, योनि चस्स आरद्धा होति आसवानं खयाय। कतमेहि [N.81] चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति, बहुस्सुतो होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अपण्णकप्पटिपदं पटिपन्नो होति, योनि चस्स आरद्धा होति आसवानं खयाया'' ति॥ ●

(इसके विपरीत) "यदि किसी नदी में तैरती हुई गौओं के आगे आगे तैरनेवाला वृषभ सीधी (सरल) गति से तैरे तो ये पीछे तैरने वाली गौएँ भी सीधी गति से ही तैरेंगी॥

इसी प्रकार, मनुष्यों में श्रेष्ठ माना गया पुरुष यदि शास्त्रानुकूल धर्माचरण करेगा तो उसकी प्रजा उससे पूर्व ही धर्माचरण हेतु कटिबद्ध दिखायी देगी। तब ऐसा लगेगा, मानो, समस्त राष्ट्र सुख की नींद सो रहा है; क्योंकि उसका राजा धार्मिक (धर्माचरण करनेवाला) है॥ ●

प्राप्तकर्मवर्ग सप्तम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्राप्तकर्मसूत्र, २. आनृण्यसूत्र, ३. ब्रह्मसूत्र, ४. निरयसूत्र, ५. रूपसूत्र, ६. सरागसूत्र, ७. अहिराजसूत्र, ८. देवदत्तसूत्र, ९. प्रधानसूत्र एवं १०. अधार्मिक सूत्र॥ ●

८. अपर्णकवर्ग

१. प्रधानसूत्र : : आश्रव क्षयकारक चार धर्म

१. भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त पुरुष अपर्णक (निर्दोष=संशयरहित) साधनामार्ग पर आरूढ होता है तथा आश्रवों के क्षय के लिये उसका मूल प्रयास आरम्भ हो गया समझना चाहिये। किन चार धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु (१) शीलवान् होता है, (२) बहुश्रुत होता है, (३) एतदर्थ आरब्धवीर्य होता है तथा (४) प्रज्ञावान् होता है। भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष

२. सम्मादिट्ठिसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अपण्णकप्पटिपदं पटिपन्नो होति, योनि चस्स आरद्धा होति आसवानं खयाय। कतमेहि चतूहि? नेक्खम्मवितक्केन, अब्यापादवितक्केन, अविहिंसावितक्केन, सम्मादिट्ठिया— इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अपण्णकप्पटिपदं पटिपन्नो होति, योनि चस्स आरद्धा होति आसवानं खयाया" ति॥ [R.77] ●

३. सप्पुरिससुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो असप्पुरिसो वेदितब्बो। कतमेहि चतूहि? [B.389]

इध, भिक्खवे, असप्पुरिसो यो होति परस्स अवण्णो तं अपुट्ठो पि पातु करोति, को पन वादो पुट्ठस्स! पुट्ठो खो पन पञ्हाभिनीतो अहापेत्वा अलम्बित्वा परिपूरं वित्थारेन परस्स अवण्णं भासिता होति। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, असप्पुरिसो अयं भवं ति।

२. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो यो होति परस्स वण्णो तं पुट्ठो पि न पातु करोति, को पन वादो अपुट्ठस्स! पुट्ठो खो पन पञ्हाभिनीतो हापेत्वा लम्बित्वा अपरिपूरं अवित्थारेन परस्स वण्णं भासिता होति। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, असप्पुरिसो अयं भवं ति।

३. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो यो होति अत्तनो अवण्णो तं पुट्ठो पि न पातु

अपर्णक साधनामार्ग पर आरूढ होता है, तथा आश्रवक्षय के लिये उसका मूल प्रयास आरम्भ हो गया समझना चाहिये॥" ●

२. सम्यग्दृष्टिसूत्र : : आश्रवक्षयकारक चार धर्म

१. भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त भिक्षु अपर्णक साधनामार्ग पर आरूढ़ होता है तथा आश्रवों के क्षय के लिये उसका मूल प्रयास आरम्भ हो गया समझना चाहिये। किन चार धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! १. नैष्काम्यवितर्क, २. अव्यापादवितर्क, ३. अविहिंसावितर्क, एवं ४. सम्यग्दृष्टि— भिक्षुओ! इन चार धर्मों से समन्वित भिक्षु अपर्णक साधनामार्ग पर आरूढ होता है तथा आश्रवों के क्षय के लिये उसका मूल प्रयास आरम्भ हो गया समझना चाहिये॥" ●

३. सत्पुरुषसूत्र : : चार धर्मों से युक्त असत्पुरुष, सत्पुरुष

१. भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष को **असत्पुरुष** जानना चाहिये। किन चार धर्मों से?

असत्पुरुष : भिक्षुओ! यहाँ जो असत्पुरुष होता है वह दूसरों के दुर्गुण पूछे विना ही बताना आरम्भ कर देता है; पूछने पर तो बात ही क्या? पूछने पर वह प्रश्न होते ही विना कुछ छोड़े, विना प्रतीक्षा के, पूर्ण विस्तार के साथ उसका दुर्गुण बताता है। ऐसे पुरुष को समझना चाहिये कि यह 'असत्पुरुष' है। (१)

२. फिर, भिक्षुओ! वह भी **असत्पुरुष** ही होता है जो दूसरे के गुण को पूछने पर भी नहीं बताता, न पूछने पर तो बात ही क्या! पूछने पर भी, अनेक बार प्रश्न किये जाने पर बीच में कुछ बातें छिपाता हुआ, छोड़ता हुआ, संक्षेप में ही बता कर तत्काल दूसरे का गुण बताने लगता है। ऐसे पुद्गल को भी समझना चाहिये कि यह असत्पुरुष है। (२)

३. फिर, भिक्षुओ! वह भी **असत्पुरुष** ही होता है जो अपना दुर्गुण पूछे जाने पर भी चुप ही

करोति, को पन वादो अपुट्ठस्स! पुट्ठो खो पन पञ्हाभिनीतो हापेत्वा लम्बित्वा अपरिपूरं अवित्थारेन अत्तनो अवण्णं भासिता होति। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, असप्पुरिसो अयं भवं ति।

[N.82] ४. "पुन च परं, भिक्खवे, असप्पुरिसो यो होति अत्तनो वण्णो तं अपुट्ठो पि पातु करोति, को पन वादो पुट्ठस्स! पुट्ठो खो पन पञ्हाभिनीतो अहापेत्वा अलम्बित्वा परिपूरं वित्थारेन अत्तनो वण्णं भासिता होति। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, असप्पुरिसो अयं भवं ति। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो असप्पुरिसो वेदितब्बो।

५. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो सप्पुरिसो वेदितब्बो। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, सप्पुरिसो यो होति परस्स अवण्णो तं पुट्ठो पि न पातु करोति, को पन वादो [R.78] अपुट्ठस्स! पुट्ठो खो पन पञ्हाभिनीतो हापेत्वा लम्बित्वा अपरिपूरं अवित्थारेन परस्स अवण्णं भासिता होति। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, सप्पुरिसो अयं भवं ति।

[B.390] ६. "पुन च परं, भिक्खवे, सप्पुरिसो यो होति परस्स वण्णो तं अपुट्ठो पि पातु करोति, को पन वादो पुट्ठस्स! पुट्ठो खो पन पञ्हाभिनीतो अहापेत्वा अलम्बित्वा परिपूरं वित्थारेन परस्स वण्णं भासिता होति। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, सप्पुरिसो अयं भवं ति।

७. "पुन च परं, भिक्खवे, सप्पुरिसो यो होति अत्तनो अवण्णो तं अपुट्ठो पि पातु करोति, को पन वादो पुट्ठस्स! पुट्ठो खो पन पञ्हाभिनीतो अहापेत्वा अलम्बित्वा परिपूरं वित्थारेन अत्तनो अवण्णं भासिता होति। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, सप्पुरिसो अयं भवं ति।

रहता है, बताता नहीं है, न पूछने पर तो बात ही क्या? पूछे जाने पर भी प्रश्न को इधर उधर घुमा फिराकर, कुछ छोड़कर, कुछ इधर उधर की बात बढ़ाकर, संक्षेप में मूल प्रश्न का उत्तर देता है। भिक्षुओ! इसको 'असत्पुरुष' ही जानना चाहिये। (३)

४. "फिर, भिक्षुओ! वह भी **असत्पुरुष** ही होता है जो अपनी प्रशंसा विना पूछे ही आरम्भ कर देता है, पूछने पर तो बात ही क्या! पूछने पर तो वह प्रश्न का विस्तार कर बातों को बढ़ा-चढ़ा कर पूर्ण विस्तार के साथ आत्मप्रशंसा करता है। ऐसे पुरुष को भी 'असत्पुरुष' ही जानना चाहिये। (४)

सत्पुरुष : ५. "परन्तु, भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त को सत्पुरुष जानना चाहिये। कौन चार धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! वह **सत्पुरुष** होता है जो पूछने पर भी दूसरों के दुर्गुणों को छिपाता है, न पूछने पर तो बात ही क्या? पूछने पर, पहले टालमटोल करता है, बार बार आग्रह किये जाने पर बहुत देर में फिर भी बहुत ही संक्षेप में उसे बताता है। इसको, भिक्षुओ! समझना चाहिये कि वह 'सत्पुरुष' है। (१)

६. "फिर, भिक्षुओ! वह भी **सत्पुरुष** ही है जो दूसरे के सद्गुण विना पूछे हुए भी बताना आरम्भ कर देता है, पूछने पर तो बात ही क्या! पूछने पर, प्रश्न के साथ ही विना कुछ छोड़े, विना कुछ छिपाये, पूर्णत:, विस्तार के साथ उसके सद्गुण बताता है। भिक्षुओ! समझना चाहिये कि वह 'सत्पुरुष' ही है। (२)

८. ''पुन च परं, भिक्खवे, सप्पुरिसो यो होति अत्तनो वण्णो तं पुट्ठो पि न पातु करोति, को पन वादो अपुट्ठस्स! पुट्ठो खो पन पञ्हाभिनीतो हापेत्वा लम्बित्वा अपरिपूरं अवित्थारेन अत्तनो वण्णं भासिता होति। वेदितब्बमेतं, भिक्खवे, सप्पुरिसो अयं भवं ति। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो सप्पुरिसो वेदितब्बो।

९. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, वधुका यञ्ञदेव रत्तिं वा दिवं वा आनीता होति, तावदेवस्सा तिब्बं हिरोत्तप्पं पच्चुपट्ठितं होति सस्सुया पि ससुरे पि सामिके पि अन्तमसो दासकम्मकरपोरिसेसु। सा अपरेन समयेन संवासमन्वाय विस्सासमन्वाय सस्सुं पि ससुरं पि सामिकं पि एवमाह—अपेथ, किं पन तुम्हे जानाथा' ति! एवमेव खो, भिक्खवे, इधेकच्चो भिक्खु यञ्ञदेव रत्तिं वा दिवं वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, तावदेवस्स तिब्बं हिरोत्तप्पं पच्चुपट्ठितं होति भिक्खूसु भिक्खुनीसु उपासकेसु उपासिकासु अन्तमसो [N.83] आरामिकसमणुद्देसेसु। सो अपरेन समयेन संवासमन्वाय विस्सासमन्वाय आचरियं पि उपज्झायं पि एवमाह—'अपेथ, किं पन तुम्हे जानाथा' ति! तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'अधुनागतवधुकासमेन चेतसा विहरिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

---

७. ''फिर, भिक्षुओ! **सत्पुरुष** वह भी है जो अपनी गुणविषयक दुर्बलता विना पूछे हुए भी बता देता है, पूछने पर तो बात ही क्या! पूछने पर, प्रश्न को इधर उधर किये विना ही, कुछ भी न छोड़कर, स्पष्टत: विस्तार के साथ अपने दुर्गुण उद्घाटित कर देता है।

''भिक्षुओ! इसको भी 'सत्पुरुष' ही समझना चाहिये। (३)

८. ''फिर, भिक्षुओ! जो **सत्पुरुष** होता है वह आत्मप्रशंसा, पूछने पर भी, किसी के सम्मुख नहीं करता, पूछे विना की तो बात ही क्या! पूछने पर भी, पहले वह प्रश्न को इधर उधर टालता है; परन्तु बहुत आग्रह करने पर अति संक्षेप में कुछ शब्दों में ही सब कुछ कहने का प्रयास करता है। इसके विषय में समझना चाहिये कि यह सत्पुरुष है। (४)

''इस प्रकार भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त 'सत्पुरुष' कहलाता है।

वधू का दृष्टान्त : ९. ''जैसे, भिक्षुओ! नयी वधू जिस दिन या रात्रि से घर में आती है, उसी समय से वह घर में सास, ससुर, स्वामी, यहाँ तक कि बड़े बूढ़े दास एवं नौकर चाकरों से भी अतिशय लज्जा एवं सङ्कोच रखती है। वही बहू, कुछ काल बीतने के बाद, घर वालों से यह भी कहना आरम्भ कर देती है—'हटिये, आप इस विषय में क्या जाने!' इसी तरह, भिक्षुओ! कोई भिक्षु जिस किसी दिन या रात्रि में घर से बाहर हो अनागारिक प्रव्रज्या ग्रहण करता है, उस दिन या रात्रि से उसको सभी भिक्षुओं, भिक्षुणियों, उपासकों, उपासिकाओं में यहाँ तक कि विहार में रहने वाले श्रमणभाव के प्रत्याशियों से भी अत्यधिक लज्जा एवं सङ्कोच का अनुभव होता है। परन्तु वही भिक्षु कुछ काल बीतने के बाद, वहाँ रहते रहते, सबका विश्वास प्राप्त कर लेने के बाद, अपने आचार्य को भी, उपाध्याय को भी यों कहने लगता है—'हटिये, गुरुदेव! आप इस विषय में क्या जानें!'। अत: भिक्षुओ! तुमको यह सीखना चाहिये—'हम घर में नयी आयी बहू के समान, सदा लज्जा और

४. पठमअग्गसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, अग्गानि। कतमानि चत्तारि? [R.79] सीलग्गं, समाधिग्गं, पञ्ञाग्गं, विमुत्तग्गं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अग्गानी'' ति॥

५. दुतियअग्गसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, अग्गानि। कतमानि चत्तारि? [B.391] रूपग्गं, वेदनाग्गं, सञ्ञाग्गं, भवग्गं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अग्गानी'' ति॥

६. कुसिनारसुत्तं : १. एकं समयं भगवा कुसिनारायं विहरति उपवत्तने मल्लानं सालवने अन्तरेन यमकसालानं परिनिब्बानसमये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. ''सिया खो पन, भिक्खवे, एकभिक्खुस्स पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—'सम्मुखीभूतो नो सत्था अहोसि, नासक्खिम्ह भगवन्तं सम्मुखा पटिपुच्छितुं''' ति! एवं वुत्ते ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। दुतियं पि खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''सिया खो पन, भिक्खवे, एकभिक्खुस्स पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—'सम्मुखीभूतो नो सत्था अहोसि, नासक्खिम्ह भगवन्तं सम्मुखा पटिपुच्छितुं''' ति। दुतियं पि खो ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। ततियं पि खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''सिया खो पन, भिक्खवे,

---

सङ्कोच सहित चित्त से ही सब भिक्षुओं के साथ व्यवहार करेंगे।' भिक्षुओ! तुमको ऐसा ही सीखना चाहिये॥

४. प्रथम अग्रसूत्र : : चार प्रमुखताएँ

''भिक्षुओ! ये चार **अग्र** (प्रमुखता) कहलाते हैं। कौन से चार? (१) शीलाग्र, (२) समाध्यग्र, (३) प्रज्ञाग्र, एवं (४) विमुक्त्यग्र—भिक्षुओ! ये चार 'अग्र' कहलाते हैं।

५. द्वितीय अग्रसूत्र : : अन्य चार प्रमुखताएँ

''भिक्षुओ! ये भी चार **अग्र** कहलाते हैं। कौन से चार? (१) रूपाग्र, (२) वेदनाग्र, (३) संज्ञाग्र एवं (४) भवाग्र। भिक्षुओ! ये चार अग्र कहलाते हैं॥

६. कुशिनारसूत्र : : चतुर्विध संशय

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) कुशीनगर के बाह्य प्रदेश में स्थित मल्लों के शाल वन में दो शाल वृक्षों के बीच, अपने परिनिर्वाण के समय, लेटे हुए थे। वहाँ भगवान् ने, भिक्षुओं को सम्बोधित किया। भगवान् ने यह देशना की—

२. ''भिक्षुओ! तुममें से किसी एक को भी बुद्ध, धर्म, सङ्घ या मार्ग एवं उपाय के विषय में कोई विमति या सन्देह हो तो मुझसे पूछ लो। (मेरे जाने के) बाद में तुम पश्चात्ताप न करना—'हमारे सम्मुख शास्ता जब विराजमान थे, तब हम उनसे यह नहीं पूछ पाये!' '' शास्ता द्वारा ऐसा पूछे जाने पर भी वहाँ उपस्थित सभी भिक्षु चुप ही रहे। दूसरी बार भी ...पूर्ववत्... तीसरी बार भी भगवान् ने

एकभिक्खुस्स पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा, पुच्छथ, भिक्खवे, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ—'सम्मुखीभूतो नो सत्था [N.84] अहोसि, नासक्खिम्ह भगवन्तं सम्मुखा पटिपुच्छितुं''' ति। ततियं पि खो ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं।

३. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''सिया खो पन, भिक्खवे, सत्थुगारवेन पि न पुच्छेय्याथ, सहायको पि, भिक्खवे, सहायकस्स आरोचेतू'' ति। एवं वुत्ते ते भिक्खू तुण्ही अहेसुं। अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—''अच्छरियं, भन्ते, [R.80] अब्भुतं, भन्ते! एवं पसन्नो अहं, भन्ते! नत्थि इमस्मिं भिक्खुसङ्घे एकभिक्खुस्स पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा'' ति।

४. ''पसादा खो त्वं, आनन्द, वदेसि। ञाणमेव हेत्थ, आनन्द, [B.392] तथागतस्स—'नत्थि इमस्मिं भिक्खुसङ्घे एकभिक्खुस्स पि कङ्खा वा विमति वा बुद्धे वा धम्मे वा सङ्घे वा मग्गे वा पटिपदाय वा'। इमेसं हि, आनन्द, पञ्चन्नं भिक्खुसतानं यो पच्छिमको भिक्खु सो सोतापन्नो अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो'' ति॥ ●

७. अचिन्तेय्यसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, अचिन्तेय्यानि, न चिन्तेतब्बानि; यानि चिन्तेन्तो उम्मादस्स विघातस्स भागी अस्स। कतमानि चत्तारि? बुद्धानं,

---

भिक्षुओं से कहा—''भिक्षुओ! तुममें से किसी को भी बुद्ध, धर्म, सङ्घ या मार्ग एवं उपाय के विषय में कोई विमति या सन्देह हो तो मुझसे पूछ लो। बाद में यह पश्चात्ताप न करना—'जब शास्ता हमारे सम्मुख विराजमान थे, तब हम उनसे नहीं पूछ पाये।' परन्तु तीसरी बार भी सब भिक्षु चुप ही रहे।

३. तब भगवान् ने (भिक्षुओं पर अनुकम्पा दिखाते हुए) उनसे फिर कहा—''भिक्षुओ! यदि तुम शास्ता के गौरव के कारण लज्जा सङ्कोचवश मुझसे प्रत्यक्षतः न पूछ पा रहे हो तो तुम अपने साथी से अपना सन्देह बता दो, वह (तुम्हारा साथी) मुझसे पूछ लेगा।'' भगवान् के इतना कहने पर भी, वे सब भिक्षु चुप ही रहे। तब आयुष्मान् आनन्द बोले—''आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! मैं अतिशय प्रसन्न हूँ कि इतने विशाल भिक्षुसङ्घ में किसी एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, सङ्घ, मार्ग एवं उपाय के विषय में कोई आकांक्षा (पृच्छा) या विमति (सन्देह) नहीं है।''

४. ''आनन्द! तुम श्रद्धावश ऐसा कह रहे हो। परन्तु आनन्द! यह तथागत के ज्ञान (उपदेश पद्धति) की ही महिमा है कि (जिसके प्राप्त करने पर) इस इतने विशाल भिक्षुसङ्घ में एक भिक्षु को भी बुद्ध, धर्म, सङ्घ, मार्ग या उपाय के विषय में कोई पिपृच्छा या विमति नहीं रह गयी। आनन्द! इन पाँच सौ भिक्षुओं में जो सबसे छोटा (पश्चिमक=सबसे अन्त में उपसम्पन्न) भिक्षु है वह भी इस उपदेश के प्रभाव से स्रोतआपन्न हो चुका है। अब उसका संसार में पतन नहीं होगा। वह सम्बोधिप्राप्तिहेतु ही प्रयत्नशील रहेगा॥'' ●

७. अचिन्त्यसूत्र : : चार अचिन्त्य विषय

१. भिक्षुओ! ये चार विषय अचिन्त्य हैं, इनपर चिन्तन नहीं करना चाहिये। जो चिन्तन करेगा वह उन्मादी (पागल) ही कहलायगा तथा अपने विनाश का उत्तरदायी होगा। कौन चार? (१)

भिक्खवे, बुद्धविसयो अचिन्तेय्यो, न चिन्तेतब्बो; यं चिन्तेन्तो उम्मादस्स विघातस्स भागी अस्स। झायिस्स, भिक्खवे, झानविसयो अचिन्तेय्यो, न चिन्तेतब्बो; यं चिन्तेन्तो उम्मादस्स विघातस्स भागी अस्स। कम्मविपाको, भिक्खवे, अचिन्तेय्यो, न चिन्तेतब्बो; यं चिन्तेन्तो उम्मादस्स विघातस्स भागी अस्स। लोकचिन्ता, भिक्खवे, अचिन्तेय्या, न चिन्तेतब्बा; यं चिन्तेन्तो उम्मादस्स विघातस्स भागी अस्स। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अचिन्तेय्यानि, न [N.85] चिन्तेतब्बानि; यानि चिन्तेन्तो उम्मादस्स विघातस्स भागी अस्सा'' ति॥ ●

८. **दक्खिणासुत्तं** : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, दक्खिणा विसुद्धियो। कतमा चतस्सो? अत्थि, भिक्खवे, दक्खिणा दायकतो विसुज्झति, नो पटिग्गाहकतो; अत्थि, भिक्खवे, दक्खिणा पटिग्गाहकतो विसुज्झति, नो दायकतो; अत्थि, भिक्खवे, दक्खिणा नेव दायकतो विसुज्झति, नो पटिग्गाहकतो; अत्थि, भिक्खवे, दक्खिणा दायकतो चेव विसुज्झति पटिग्गाहकतो च।

२. ''कथं च, भिक्खवे, दक्खिणा दायकतो विसुज्झति, नो पटिग्गाहकतो? इध, [R.81] भिक्खवे, दायको होति सीलवा कल्याणधम्मो; पटिग्गाहका होन्ति दुस्सीला पापधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, दक्खिणा दायकतो विसुज्झति, नो पटिग्गाहकतो।

३. ''कथं च, भिक्खवे, दक्खिणा पटिग्गाहकतो विसुज्झति, नो दायकतो? इध, भिक्खवे, दायको होति दुस्सीलो पापधम्मो; पटिग्गाहका होन्ति सीलवन्तो कल्याणधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, दक्खिणा पटिग्गाहकतो विसुज्झति, नो दायकतो।

भिक्षुओ! **बुद्धों के ज्ञान का विषय** अचिन्त्य है, अतः इस पर चिन्तन नहीं करना चाहिये, अन्यथा उस चिन्तक को उन्माद एवं विनाश का भागी होना पड़ेगा। (२) भिक्षुओ! **ध्यानियों के ध्यान का विषय** भी अचिन्त्य है... पूर्ववत्...। (३) भिक्षुओ! **कर्मफल** भी अचिन्त्य है... पूर्ववत्...। (४) भिक्षुओ! **लोकचिन्ता** अचिन्त्य है, अतः इस पर चिन्तन नहीं करना चाहिये; अन्यथा उस चिन्तक को उन्माद एवं विनाश का भागी होना पड़ेगा। भिक्षुओ! ये चार विषय अचिन्त्य हैं, इन पर चिन्तन नहीं करना चाहिये। जिन पर चिन्तन करने वाला उन्माद एवं विनाश का भागी होगा॥'' ●

८. दक्षिणासूत्र : : चार दक्षिणा-विशुद्धियाँ

१. ''भिक्षुओ! ये चार दक्षिणा (दान) की विशुद्धियाँ हैं। कौन सी चार? (१) भिक्षुओ! कोई दक्षिणा दाता की ओर से शुद्ध होती है, याचक (प्रतिग्राहक) की ओर से नहीं। (२) कोई दक्षिणा याचक की ओर से शुद्ध होती है, दाता की ओर से नहीं। (३) कोई दक्षिणा न दाता की ओर से शुद्ध होती है न याचक की ओर से ही शुद्ध होती है। (४) कोई दक्षिणा दाता की ओर से भी शुद्ध होती है और याचक की ओर से भी शुद्ध होती है।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई दक्षिणा दाता की ओर से विशुद्ध होती है, याचक की ओर से नहीं? यहाँ, भिक्षुओ! यदि दाता शीलवान् हो, कल्याणधर्मा हो; और याचक दुःशील एवं पापधर्मा हो तो, भिक्षुओ! यह दक्षिणा दाता की ओर से शुद्ध होती है, याचक की ओर से नहीं। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई दक्षिणा याचक की ओर से शुद्ध होती है, दाता की ओर से नहीं?

४. "कथं च, भिक्खवे, दक्खिणा नेव दायकतो विसुज्झति, नो पटिग्गाहकतो? इध, भिक्खवे, दायको होति दुस्सीलो पापधम्मो; पटिग्गाहका पि होन्ति दुस्सीला [B.393] पापधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, दक्खिणा नेव दायकतो विसुज्झति, नो पटिग्गाहकतो।

५. "कथं च, भिक्खवे, दक्खिणा दायकतो चेव विसुज्झति पटिग्गाहकतो च? इध, भिक्खवे, दायको होति सीलवा कल्याणधम्मो; पटिग्गाहका पि होन्ति सीलवन्तो कल्याणधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, दक्खिणा दायकतो चेव विसुज्झति पटिग्गाहकतो च। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो दक्खिणा विसुद्धियो" ति॥ ●

९. वणिज्जसुत्तं : १. अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा [N.86] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चस्स तादिसा व वणिज्जा पयुत्ता छेदगामिनी होति? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चस्स तादिसा व वणिज्जा पयुत्ता न यथाधिप्पाया होति? को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चस्स तादिसा व वणिज्जा पयुत्ता यथाधिप्पाया होति? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चस्स तादिसा व वणिज्जा पयुत्ता पराधिप्पाया होती" ति?

२. "इध, सारिपुत्त, एकच्चो समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा पवारेति—[R.82]

यहाँ, भिक्षुओ! कोई दाता दु:शील एवं पापधर्मा होता है; परन्तु याचक शीलवान् एवं कल्याणधर्मा होता है तो, भिक्षुओ! ऐसी दक्षिणा याचक की ओर से शुद्ध होती है, दाता की ओर से नहीं। (२)

४. "और कैसे, भिक्षुओ! कोई दक्षिणा न दाता की ओर ही शुद्ध होती है, न याचक की ओर से? भिक्षुओ! जब वह दक्षिणादाता भी दु:शील एवं पापधर्मा होता है औ्र याचक भी दु:शील एवं पापधर्मा; तब ऐसी दक्षिणा न दाता द्वारा दी गयी शुद्ध मानी जाती है और न वह याचक द्वारा ली गयी दक्षिणा ही। (३)

५. "कैसे, भिक्षुओ! कोई दक्षिणा दाता एवं याचक—दोनों ओर से शुद्ध मानी जाती है? जब दाता शीलवान् एवं कल्याणधर्मा हो तथा याचक भी शीलवान् एवं कल्याणधर्मा हो तब ऐसी दक्षिणा दाता एवं याचक—दोनों की ओर से शुद्ध मानी जाती है। (४)

भिक्षुओ! इस प्रकार ये चार दक्षिणा-विशुद्धियाँ होती हैं॥" ●

९. वाणिज्यसूत्र : : चार वाणिज्य

१. ...तब आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ गये, जाकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् से यह निवेदन किया— "भन्ते! क्या हेतु क्या प्रत्यय है कि किसी की कोई की गयी वाणिज्या (व्यापार, देने का व्यवहार) कट (खण्डित हो) जाती है? ...किसी की कोई की गयी वाणिज्या अभिप्रायानुसार नहीं रह जाती है? तथा, भन्ते! कौन हेतु या कौन प्रत्यय है कि किसी की कोई वाणिज्या अभिप्रायानुसार रह जाती है? और ...किसी की की गयी वाणिज्या पराभिप्रायानुसार सिद्ध होती है?

'वदतु, भन्ते, पच्चयेना' ति। सो येन पवारेति तं न देति। सो चे ततो चुतो इत्थत्तं आगच्छति, सो यञ्ञदेव वणिज्जं पयोजेति, सास्स होति छेदगामिनी।

[B.394] ३. ''इध पन, सारिपुत्त, एकच्चो समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा पवारेति— 'वदतु, भन्ते, पच्चयेना' ति। सो येन पवारेति तं यथाधिप्पायं न देति। सो चे ततो चुतो इत्थत्तं आगच्छति, सो यञ्ञदेव वणिज्जं पयोजेति, सास्स न होति यथाधिप्पाया।

४. ''इध पन, सारिपुत्त, एकच्चो समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा पवारेति— 'वदतु, भन्ते, पच्चयेना' ति। सो येन पवारेति तं यथाधिप्पायं देति। सो चे ततो चुतो इत्थत्तं आगच्छति, सो यञ्ञदेव वणिज्जं पयोजेति, सास्स होति यथाधिप्पाया।

५. ''इध, सारिपुत्त, एकच्चो समणं वा ब्राह्मणं वा उपसङ्कमित्वा पवारेति—'वदतु, भन्ते, पच्चयेना' ति। सो येन पवारेति तं पराधिप्पायं देति। सो चे ततो चुतो इत्थत्तं आगच्छति, सो यञ्ञदेव वणिज्जं पयोजेति, सास्स होति पराधिप्पाया।

६. ''अयं खो, सारिपुत्त, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चस्स तादिसा व वणिज्जा पयुत्ता छेदगामिनी होति। अयं पन, सारिपुत्त, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चस्स तादिसा [N.87] व वणिज्जा पयुत्ता न यथाधिप्पाया होति। अयं खो पन, सारिपुत्त, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधकच्चस्स तादिसा व वणिज्जा पयुत्ता यथाधिप्पाया होति। अयं पन, सारिपुत्त, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चस्स तादिसा व वणिज्जा पयुत्ता पराधिप्पाया होति'' ति॥ ●

१०. कम्बोजसुत्तं : १. एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। अथ

---

२. ''यहाँ, सारिपुत्र! कोई (दाता) किसी श्रमण या ब्राह्मण के पास जाकर कहता है— 'भन्ते! आप अपने लिये किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो बताइये?' तब जो सङ्कल्प के अनुसार उसे नहीं देता, वह उस शरीर से च्युत होकर इस शरीर में आता है तब पूर्व प्रदत्त वाणिज्या (विपाक के रूप में) उसके सम्मुख खण्डित रूप में (कटी-फटी) प्रस्तुत होती है। (१)

३. ''यहाँ, सारिपुत्र! कोई (दाता) किसी श्रमण या ब्राह्मण के पास ...पूर्ववत्... तब वह उसको जिस दान से सन्तुष्ट करता है वह उस (श्रमण) के अभिप्रायानुसार नहीं होता। वह उस शरीर से ...पूर्ववत्... पूर्वप्रदत्त वाणिज्या उस (दाता) के सम्मुख अभिप्रायानुकूल नहीं होती। (२)

४. ''यहाँ, सारिपुत्र! कोई (दाता) किसी श्रमण... पूर्ववत्...। तब वह (दाता) उस (श्रमण) को उसके अभिप्रायानुसार ही देता है। ...पूर्ववत्... वह वाणिज्या भी उसके अभि-प्रायानुसार ही उसके सम्मुख प्रस्तुत होती है। (३)

५. ''यहाँ, सारिपुत्र! कोई किसी श्रमण ...पूर्ववत्... तब वह (दाता) उस (श्रमण) को माँगी हुई वस्तु किसी अन्य अभिप्राय से देता है। ...पूर्ववत्... वह वाणिज्या उसके सम्मुख दूसरे अभिप्राय से ही प्रस्तुत होती है। (४)

६. यहाँ, सारिपुत्र! यह उपर्युक्त हेतु एवं प्रत्यय है कि किसी के सम्मुख कोई वाणिज्या छेदगामिनी (कटी पिटी) प्रस्तुत होती है ...पूर्ववत्... अभिप्रायानुसार प्रस्तुत नहीं होती ...पूर्ववत्... वाणिज्या अभिप्रायानुसार प्रस्तुत होती है... वाणिज्या दूसरे अभिप्रायानुसार प्रस्तुत होती है॥'' ●

खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—

२. "को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मातुगामो नेव सभायं निसीदति, न कम्मन्तं पयोजेति, न कम्बोजं गच्छती" ति?

"कोधनो, आनन्द, मातुगामो; इस्सुकी, आनन्द मातुगामो; मच्छरी, आनन्द, [R.83] मातुगामो; दुप्पञ्ञो, आनन्द मातुगामो—अयं खो, आनन्द, हेतु अयं पच्चयो, येन मातुगामो नेव सभायं निसीदति, न कम्मन्तं पयोजेति, न कम्बोजं गच्छती" ति॥ [B.395] ●

अपण्णकवग्गो अट्ठमो॥

तस्सुद्दानं

पधानं दिट्ठिसप्पुरिसवधुका, द्वे च होन्ति अग्गानि।
कुसिनारअचिन्तेय्या, दक्खिणा च वणिज्जा कम्बोजं ति॥ ●

---

१०. कम्बोजसूत्र : : स्त्रियों के चार धर्म

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब आयुष्मान् आनन्द भगवान् के सम्मुख गये। जाकर, उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक और बैठे आनन्द ने भगवान् से यह पूछा—

२. "भन्ते! क्या हेतु है, क्या कारण है कि स्त्रियाँ न सभा में (स्थिरता से) बैठ पाती हैं, न किसी गम्भीर कार्य को पूर्ण करा पाती है और न उनमें विशेष कर्म-सामर्थ्य (कर्म-ओज) ही है?"

"क्योंकि, आनन्द! ये स्त्रियाँ क्रोधी होती हैं, ये ईर्ष्यालु होती हैं, ये वृथाभिमानिनी होती हैं, तथा दुष्प्रज्ञ (कुबुद्धि) होती हैं। आनन्द! यही हेतु है, और यही कारण है कि स्त्रियाँ न सभा में अधिक बैठ पाती हैं, न किसी गम्भीर कार्य को पूर्ण करा पाती हैं और न इनमें अधिक कर्मसामर्थ्य ही होती है। ●

अपर्णकवर्ग अष्टम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रधानसूत्र, २. सम्यग्दृष्टिसूत्र, ३. सत्पुरुषसूत्र, ४. प्रथम अग्रसूत्र, ५. द्वितीय अग्रसूत्र, ६. कुशिनारसूत्र, ७. अचिन्त्यसूत्र, ८. दक्षिणासूत्र, ९. वाणिज्यसूत्र एवं १०. कम्बोजसूत्र॥ ●

९. मचलवग्गो

१. पाणातिपातसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

[N.88] २. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि चतूहि? पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

२. मुसावादसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? मुसावादी होति, पिसुणवाचो होति, फरुसवाचो होति, सम्फप्पलापी होति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

[R.84] २. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि [B.396] चतूहि? मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

---

९. मचलवर्ग

१. प्राणातिपातसूत्र : : चार धर्मों से नरकगामिता

१. भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त पुरुष जैसे आया वैसे ही पुनः नरक में जा गिरता है। किन चार धर्मों से? (१) वह प्राणातिपाती होता है, (२) अदत्तादायी होता है, (३) व्यभिचारी होता है, (४) मृषावादी होता है—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष जैसे आया वैसे ही पुनः नरक में जा गिरता है।

२. (इसके विपरीत) "भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त पुरुष जैसे आया वैसे ही पुनः स्वर्ग में जाकर दिव्यसुख भोगता है। कौन से चार? (१) जो प्राणातिपात से विरत..., (२) अदत्तादान (चौरी) से विरत..., (३) व्यभिचार से विरत..., (४) मृषावाद (असत्यभाषण) से विरत रहता है—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त सत्पुरुष जैसे आया वैसे ही पुनः स्वर्ग में जाकर दिव्यसुख भोगता है॥" ●

२. मृषावादसूत्र : : चार धर्मों से नरकगामिता

१. ...पूर्वसूत्रवत्... किन चार धर्मों से? (१) मृषावादी होता है, (२) पिशुनवाक् (चुगलखोर) होता है, (३) परुषवाक् (कठोर बोलनेवाला) होता है, (४) प्रलापी (बकवादी) होता है—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त कोई पुरुष यथापूर्व नरकगामी होता है।

३. अवण्णारहसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि चतूहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति अनुविच्च परियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति—इमेहि खो, भिक्खवे, [N.89] चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

४. कोधगरुसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? कोधगरु होति न सद्धम्मगरु, मक्खगरु होति न सद्धम्मगरु, लाभगरु होति न सद्धम्मगरु, सक्कारगरु होति न सद्धम्मगरु—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

---

२. ...पूर्वसूत्रवत्... किन चार धमों से? (१) जो मृषावाद से, (२) पिशुनवाक् से, (३) परुषवाक् से एवं (४) प्रलाप (बकवाद) से दूर रहता है—भिक्षुओ! इन चार सद्धर्मों से युक्त पुरुष यथापूर्व... स्वर्ग में जाकर दिव्यसुख भोगता है॥ ●

३. अवर्णार्हसूत्र : : चार धर्मों से नरकगामिता

१. ...पूर्वसूत्रवत्...। किन चार धर्मों से? (१) विना सोचे, विना समीक्षा किये ही किसी निन्दनीय की प्रशंसा आरम्भ कर देता है, (२) विना सोचे, विना समीक्षा किये किसी प्रशंसनीय की निन्दा आरम्भ कर देता है, (३) विना सोचे, विना समीक्षा किये किसी अश्रद्धेय में श्रद्धा प्रकट करना आरम्भ कर देता है, या (४) विना सोचे, विना समीक्षा किये किसी श्रद्धेय में अश्रद्धा प्रकट करना आरम्भ कर देता है; ऐसा पुरुष... नरकगामी ही होता है।

२. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्...। किन चार धर्मों से? (१) सोच समझकर, समीक्षा कर निन्दनीय की निन्दा..., (२) ...प्रशंसनीय की प्रशंसा..., (३) ...अश्रद्धेय के प्रति अश्रद्धा..., (४) तथा ...श्रद्धेय के प्रति श्रद्धा प्रकट करता है, ऐसा पुरुष स्वर्गगामी होता है। भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष ही माना जाता है। उसने मानो अपने आश्रवों के नाशहेतु प्रयास आरम्भ कर दिया है॥'' ●

४. क्रोधगुरु सूत्र : : ये चार धर्म नरकगमन में सहायक

१. ...''चार धर्मों से युक्त पुरुष... नरकगामी होता है। किन चार धर्मों से? (१) जो क्रोध को ही महत्त्व देता है, सद्धर्म को नहीं; (२) म्रक्ष को ही महत्त्व देता है, सद्धर्म को नहीं; (३) अपने

[R.85] २. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि चतूहि? सद्धम्मगरु होति न कोधगरु, सद्धम्मगरु होति न मक्खगरु, सद्धम्मगरु होति न लाभगरु, सद्धम्मगरु होति न सक्कारगरु—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥

५. तमोतमसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना [B.397] लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? तमो तमपरायणो, तमो जोतिपरायणो, जोति तमपरायणो, जोति जोतिपरायणो।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो तमो होति तमपरायणो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति—चण्डालकुले वा वेनकुले वा नेसादकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति। सो च होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा, न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा, वाचाय दुच्चरितं चरित्वा,

---

लाभ को ही महत्त्व देता है, सद्धर्म को नहीं; (४) तथा अपने सत्कार को ही महत्त्व देता है सद्धर्म को नहीं—भिक्षुओ! ऐसा पुरुष... नरकगामी ही होता है।

२. ...''चार धर्मों से युक्त पुरुष...स्वर्गगामी होता है। किन चार धर्मों से? (१) जो सद्धर्म को ही महत्त्व देता है, क्रोध को नहीं, (२) सद्धर्म को ही महत्त्व देता है, म्रक्ष को नहीं, (३) अपने लाभ को महत्त्व न देकर सद्धर्म को ही महत्त्व देता है; (४) तथा जो सद्धर्म को ही महत्त्व देता है, अपने सत्कार को नहीं। भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष... स्वर्गगामी ही होता है॥''

५. तमस्तमःसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार? (१) एक तमस्तम:परायण, तथा (२) तमोज्योतिपरायण, (३) ज्योतिस्तमपरायण, एवं (४) ज्योतिर्ज्योतिपरायण।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **तमस्तमःपरायण** (जीवनपर्यन्त यहाँ अन्धकार में रहकर आगे भी अन्धकार में ही जानेवाला) होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल नीच कुल में उत्पन्न हुआ हो; जैसे—चाण्डालकुल में, वेनकुल में, निषादकुल में, रथकार (बढ़ई) कुल में, पुल्कषकुल में या किसी दरिद्रकुल में जहाँ अन्न-जल, वस्त्र एवं जीवनोपयोगी अन्य वस्तुएँ बहुत अल्पमात्रा में तथा वह भी कठिन परिश्रम के बाद ही उपलब्ध होती हों या दैनिक भोजन भी अतिकठिनता से मिलता हो। वह स्वयं शरीर से भी कुरूप, न देखने योग्य, लुञ्ज पुञ्ज, बाँका-टेढ़ा, रोगी, काणा, कुबड़ा, लंगड़ा या पक्षाघातयुक्त हो। उसे अन्न, पान, वस्त्र, यात्राहेतु यान, माला, गन्धविलेपन तथा प्रकाशयुक्त गृह में विस्तर बिछी हुई शय्या सम्भवत: पूरे जन्म में कभी ही मिले। वह शरीर, वाणी एवं मन से दुराचाररत भी रहे। इस तरह वह जीवनपर्यन्त ये त्रिविध दुराचार करता हुआ, इस देहपात

मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं [N.90] उपपज्जति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो तमो होति तमपरायणो।

३. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो तमो होति जोतिपरायणो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो नीचे कुले पच्चाजातो होति--चण्डालकुले वा वेनकुले वा नेसादकुले वा रथकारकुले वा पुक्कुसकुले वा दलिद्दे अप्पन्नपानभोजने कसिरवुत्तिके, यत्थ कसिरेन घासच्छादो लब्भति; सो च होति दुब्बण्णो दुद्दसिको ओकोटिमको बव्हाबाधो काणो वा कुणी वा खञ्जो वा पक्खहतो वा न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्ध-विलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं चरति। सो कायेन सुचरितं चरित्वा, वाचाय सुचरितं चरित्वा, मनसा सुचरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो तमो होति जोतिपरायणो।

४. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो जोति होति तमपरायणो? इध, [B.398] भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले पच्चाजातो होति—खत्तियमहासालकुले वा [R.86] ब्राह्मणमहासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे; सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन दुच्चरितं चरति, वाचाय दुच्चरितं चरति, मनसा दुच्चरितं चरति। सो कायेन दुच्चरितं चरित्वा, वाचाय दुच्चरितं चरित्वा, मनसा दुच्चरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो जोति होति तमपरायणो।

के बाद मरणानन्तर, दुर्गतिमय पतनभूमि नरक में ही पहुँच जाता है। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष 'तमस्तम:परायण' (अन्धकार में जानेवाला) होता है। (१)

३. "कैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष **तमोज्योति:परायण** (अन्धकारावृत रहकर भी प्रकाशमय आचरण वाला) होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल नीच कुल में उत्पन्न हो ...पूर्ववत्... सम्भवत: पूरे जन्म में कभी ही मिले। परन्तु वह पुरुष शरीर, वाणी एवं मन से सतत सदाचाररत रहता है। यों विविध रूप से सदाचरण करता हुआ वह इस देहपात के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष 'तमोज्योतिपरायण' (अन्धकार में रहता हुआ भी प्रकाशयुक्त) कहलाता है।

४. "और कैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष **ज्योतिष्टमपरायण** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष उच्च कुल में उत्पन्न होता है; जैसे—क्षत्रियों के उच्च कुल में, ब्राह्मणों के उच्चकुल में, गृहपतियों के उच्चकुल में जो आढ्य हो, अतिशय भोगैश्वर्यसम्पन्न हो, जिसके पास अतिमात्रा में सोना चाँदी हो, प्रभूत धन-प्राप्ति के साधन हों, तथा प्रभूत धनधान्य वाला हो। वह पुरुष सुरूप, दर्शनीय, नयनाभिराम हो, परम सुन्दरता से युक्त हो; अन्न, पान, वस्त्र, यान, माला गन्धविलेपन एवं

५. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो जोति होति जोतिपरायणो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो उच्चे कुले पच्चाजातो होति—खत्तियमहासालकुले वा ब्राह्मण-महासालकुले वा गहपतिमहासालकुले वा अड्ढे महद्धने महाभोगे पहूतजातरूपरजते पहूतवित्तूपकरणे पहूतधनधञ्ञे; सो च होति अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो, लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स मालागन्धविलेपनस्स सेय्यावसथपदीपेय्यस्स। सो कायेन सुचरितं चरति, वाचाय सुचरितं चरति, मनसा सुचरितं [N.91] चरति। सो कायेन सुचरितं चरित्वा, वाचाय सुचरितं चरित्वा, मनसा सुचरितं चरित्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो जोति होति जोतिपरायणो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥

६. **ओणतोणतसुत्तं** : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? ओणतोणतो, ओणतुण्णतो, उण्णतोणतो, उण्णतुण्णतो। इमे, खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

७. **पुत्तसुत्तं** : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। [B.399] कतमे चत्तारो? समणमचलो, समणपुण्डरीको, समणपदुमो, समणेसु समण-सुखुमालो।

२. "कथं, च, भिक्खवे, पुग्गलो समणमचलो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सेखो होति पाटिपदो; अनुत्तरं योगक्खेमं पत्थयमानो विहरति। सेय्यथापि, भिक्खवे, रञ्ञो

प्रकाशयुक्त अच्छी शय्याओं का प्राप्तिकर्ता हो। परन्तु वह शरीर वाणी एवं मन से दुराचार ही करता रहे। यों, वह त्रिविध दुराचार करता हुआ, इस देहपात के बाद, मरणानन्तर दुर्गतिमय, अपायभूमि नरक में ही उत्पन्न होगा। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष 'ज्योतिष्टमपरायण' कहलाता है।

५. "और, भिक्षुओ! कौन पुरुष **ज्योतिर्ज्योतिपरायण** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष उच्च कुल में उत्पन्न हो; जैसे क्षत्रिय... पूर्ववत्... सदाचाररत रहता है। वह इस त्रिविध रूप से सदाचाररत रहता हुआ, देहपात के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में ही उत्पन्न होता है। ऐसा पुरुष, भिक्षुओ! 'ज्योतिर्ज्योतिपरायण' कहलाता है॥" ●

६. अवनतावनतसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. "भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं। कौन से चतुर्विध? (१) अवनतावनत, (२) अवनतोन्नत, (३) उन्नतावनत, एवं (४) उन्नतोन्नत। भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल कहलाते हैं॥" ●

७. पुत्रसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. "भिक्षुओ! लोक में ये चार पुद्गल होते हैं। कौन चार? (१) श्रमणमचल, (२) श्रमण-पुण्डरीक, (३) श्रमणपद्म, एवं (४) श्रमणों में श्रमणसुकुमार।

२. "भिक्षुओ! कौन पुद्गल **श्रमणमचल** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शैक्ष्य धर्ममार्गारूढ होता है तथा वह अद्वितीय योगक्षेम (आसक्ति से मुक्ति) प्राप्त कर साधना करता है।

खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स जेट्ठो पुत्तो आभिसेको अनभिसित्तो मचलप्पत्तो; एवमेव [R.87] खो, भिक्खवे, भिक्खु सेखो होति पाटिपदो, अनुत्तरं योगक्खेमं पत्थयमानो विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणमचलो होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणपुण्डरीको होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति, नो च खो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणपुण्डरीको होति।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणपदुमो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु [N.92] आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति, अट्ठ च विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणपदुमो होति।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणेसु समणसुखुमालो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु याचितो व बहुलं चीवरं परिभुञ्जति, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं पिण्डपातं परिभुञ्जति, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं सेनासनं परिभुञ्जति, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं परिभुञ्जति, अप्पं अयाचितो। येहि खो पन सब्रह्मचारीहि सद्धिं विहरति, त्यस्स मनापेनेव बहुलं कायकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं

जैसे, भिक्षुओ! मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का ज्येष्ठ पुत्र राज्याभिषेक प्राप्त कर अभिषिक्त हुआ समाज में उच्चतम पद पा जाता है; उसी प्रकार, भिक्षुओ! वह शैक्ष्य धर्ममार्गारूढ होकर अद्वितीय योगक्षेम को पाकर लोक में सम्मानित रूप से साधनारत रहता है। भिक्षुओ! यह पुद्गल 'श्रमणमचल' कहलाता है। (१)

३. ''भिक्षुओ! कौन भिक्षु **श्रमणपुण्डरीक** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को प्राप्त कर इसी जन्म में जानकर स्वयं साक्षात् कर साधना करता है। परन्तु वह आठ विमोक्षों[1] का काया से स्पर्श (अनुभव) कर साधना नहीं कर पाता। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु पुद्गल 'श्रमणपुण्डरीक' कहलाता है। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमणपद्म** कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में जानकर साक्षात्कार कर साधना करता है। साथ ही, वह आठ विमोक्षों का भी काया से अनुभव कर साधना कर लेता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'श्रमणपद्म' कहलाता है। (३)

५. भिक्षुओ! कौन पुद्गल **श्रमणों में श्रमणसुकुमार** कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु प्राय: माँगकर ही चीवर धारण करता है, माँगे विना बहुत कम चीवर धारण करता है। प्राय: भिक्षा माँगकर ही भोजन करता है, विना माँगे बहुत कम। रोग होने पर उसके निवारणार्थ ओषधियाँ भी माँगकर ही उपयोग में लाता है, विना माँगे बहुत कम। वह जिन ब्रह्मचारियों के साथ वास करता

---

१. आठ विमोक्षों के विशेष ज्ञान के लिये द्रष्टव्य : **दीघनिकाय** दशोत्तरसूत्र, पृ० ८४३ (बौ०भा०सं०)। —स०।

[B.400] अमनापेन; मनापेनेव बहुलं वचीकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन; मनापेनेव बहुलं मनोकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन; मनापंयेव बहुलं उपहारं उपहरन्ति, अप्पं अमनापं। यानि खो पन तानि वेदयितानि पित्तसमुट्ठानानि वा सेम्हसमुट्ठानानि वा वात-समुट्ठानानि वा सन्निपातिकानि वा उतुपरिणामजानि वा विसमपरिहारजानि वा ओपक्क-मिकानि वा कम्मविपाकजानि वा, तानि पनस्स न बहुदेव उप्पज्जन्ति। अप्पाबाधो होति। चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी [R.88] अकसिरलाभी, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणेसु समणसुखुमालो होति।

६. "यं हि तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य समणेसु समणसुखुमालो ति, ममेव तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य समणेसु समणसुखुमालो ति। अहं हि, भिक्खवे, याचितो व बहुलं चीवरं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं पिण्डपातं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं सेनासनं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो। येहि खो पन भिक्खूहि सद्धिं विहरामि ते मे मनापेनेव बहुलं कायकम्मेन समुदाचरन्ति अप्पं अमनापेन; मनापेनेव बहुलं वचीकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन; मनापेनेव बहुलं [N.93] मनोकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन; मनापंयेव बहुलं उपहारं उपहरन्ति, अप्पं अमनापं। यानि खो पन तानि वेदयितानि पित्तसमुट्ठानानि वा सेम्हसमुट्ठानानि वा वातसमुट्ठानानि वा सन्निपातिकानि वा उतुपरिणामजानि वा विसमपरिहारजानि वा ओपक्कमिकानि वा कम्मविपाकजानि वा, तानि मे न बहुदेव उप्पज्जन्ति। अप्पाबाधो-हमस्मि। चतुन्नं खो पनस्मि झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामि।

है वे इसके मनोनुकूल काय, वाक् एवं मन:कर्म का ही व्यवहार करते हैं, मन के प्रतिकूल बहुत कम। उसको वायु से उठने वाले, पित्त से उठने वाले, श्लेष्मा से उठने वाले, ऋतुपरिणामजन्य, विषम आहारजन्य, किसी उपक्रम के कारण, या कर्मविपाक के कारण जो रोग हो सकते हैं वे बहुत कम होते हैं। वह रोगी बहुत कम होता है। वह चार आध्यात्मिक ध्यानों का सतत अतिशय लाभ करता है, पूर्णत: लाभ करता है, समग्रता से लाभ करता है। वह आश्रवों के क्षय से उत्पन्न चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को स्वयं जानकर साक्षात् कर साधना करता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'श्रमणसुकुमार' कहलाता है।

६. "भिक्षुओ! यदि कोई किसी को उचित ढंग से 'श्रमणों में श्रमणसुकुमार' सङ्केतित करना चाहे तो वह इस नाम से मुझको ही सङ्केतित करेगा। भिक्षुओ! मैं ही अधिकतर याचना करके चीवर

७. ''यं हि तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य समणेसु समणसुखुमालो ति, ममेव तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य—समणेसु समणसुखुमालो ति। इमे खो, [B.401] भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

८. संयोजनसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविजमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? समणमचलो, समणपुण्डरीको, समणपदुमो, समणेसु समणसुखुमालो।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणमचलो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो। [R.89] एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणमचलो होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणपुण्डरीको होति? इध भिक्खवे, भिक्खु तिण्णं संयोजनानं परिक्खया, रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणपुण्डरीको होति।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणपदुमो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणपदुमो होति।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणेसु समणसुखुमालो होति? इध, [N.94]

पहनता हूँ, माँगे विना मिला हुआ चीवर बहुत कम पहनता हूँ। प्राय: माँगकर ही भिक्षा... ओषधियों का सेवन करता हूँ, विना माँगे बहुत कम। ...पूर्ववत्...। मैं अनाश्रव चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में जानकर साक्षात् कर, प्राप्त कर साधना करता हूँ। (४)

७. ''अत:, भिक्षुओ! यदि कोई 'श्रमणों में श्रमणसुकुमार' नाम से किसी को संकेतित करना चाहे, तो उस का सही ढंग से मुझको ही 'श्रमणों में श्रमणसुकुमार' संकेतित करना पूर्णत: उचित कहलायगा। भिक्षुओ! यों, ये चार प्रकार के पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥'' ●

८. संयोजनसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में चार तरह के पुद्गल दिखायी देते हैं। कौन से चार? (१) श्रमणमचल, (२) श्रमणपुण्डरीक, (३) श्रमणपद्म, एवं (४) श्रमणों में श्रमणसुकुमार।

२. ''भिक्षुओ! यह **श्रमणमचल** कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु तीन संयोजनों का क्षय करके स्रोतआपन्न हो जाता है, उसका धर्मसाधना से पतन नहीं होता और निश्चय ही वह सम्बोधि की ओर बढ़ने लगता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'श्रमणमचल' कहलाता है। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमणपुण्डरीक** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु तीन संयोजनों के परिक्षय से राग, द्वेष एवं मोह के दुर्बल होने वह सकृदागामी की स्थिति में पहुँच जाता है। तब वह केवल एक बार इस लोक में आकर (साधना द्वारा) अपने 'दु:ख' का अन्त कर लेगा। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'श्रमणपुण्डरीक' कहलाता है।

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमणपद्म** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु पाँच अवरभागीय संयोजनों के परिक्षय से औपपातिक (अयोनिज) हो जाता है, वह वहाँ से न लौटकर

भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणेसु समण-सुखुमालो होति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥●

९. **सम्मादिट्ठिसुत्तं** : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? समणमचलो, समणपुण्डरीको, समणपदुमो, समणेसु समणसुखुमालो।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणमचलो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु [B.402] सम्मादिट्ठिको होति; सम्मासङ्कप्पो होति, सम्मावाचो होति, सम्माकम्मन्तो होति, सम्माआजीवो होति, सम्मावायामो होति, सम्मासति होति, सम्मासमाधि होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणमचलो होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणपुण्डरीको होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सम्मादिट्ठिको होति, सम्मासङ्कप्पो होति, सम्मावाचो होति, सम्माकम्मन्तो होति, [R.90] सम्माआजीवो होति, सम्मावायामो होति, सम्मासति होति, सम्मासमाधि होति, सम्माञाणी होति, सम्माविमुत्ति होति, नो च खो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणपुण्डरीको होति।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणपदुमो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु

वहीं परिनिवृत हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह 'अनागामी' कहलाता है। ऐसा, भिक्षुओ! पुद्गल 'श्रमणपद्म' कहलाता है। (३)

५. ''कैसा, भिक्षुओ! पुद्गल **श्रमणों में श्रमणसुकुमार** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को जानकर, साक्षात् कर जानकर साधना करता है। यह, भिक्षुओ! भिक्षु 'श्रमणों में श्रमणसुकुमार' कहलाता है। (४)

''भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं॥'' ●

९. सम्यग्दृष्टिसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. लोक में, भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल दिखायी देते हैं। कौन से चार? (१) श्रमणमचल, (२) श्रमणपुण्डरीक, (३) श्रमणपद्म एवं (४) श्रमणों में श्रमणसुकुमार।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमण पुद्गल** कहलाता है? भिक्षुओ! यहा कोई भिक्षु सम्यग्दृष्टियुक्त होता है...पूर्ववत्... सम्यक्समाधिनिष्ठ होता है। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु 'श्रमणचल' कहलाता है। (१)

३. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमणपुण्डरीक** कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु सम्यग्दृष्टियुक्त होता है... पूर्ववत्... सम्यक्समाधिनिष्ठ होता है, सम्यग्ज्ञानी होता है, सम्यग्विमुक्ति सम्पन्न होता है; परन्तु आठ विमोक्षों को अपनी काया से स्पर्श (अनुभव) नहीं कर पाता। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु 'श्रमणपुण्डरीक' कहलाता है। (२)

४. भिक्षुओ! कैसे कोई पुद्गल **श्रमणपद्म** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु

सम्मादिट्ठिको होति ...पे०... सम्माविमुत्ति होति, अट्ठ च विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणपदुमो होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणेसु समणसुखुमालो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु याचितो व बहुलं चीवरं परिभुञ्जति, अप्पं अयाचितो ...पे०... यं हि तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य समणेसु समणसुखुमालो ति, ममेव तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य समणेसु समणसुखुमालो ति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो [N.95] संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

१०. खन्धसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? समणमचलो, समणपुण्डरीको, समणपदुमो, समणेसु समणसुखुमालो।

२. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणमचलो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सेखो होति अप्पत्तमानसो, अनुत्तरं योगक्खेमं पत्थयमानो विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणमचलो होति।

३. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणपुण्डरीको होति? इध, भिक्खवे, [B.403] भिक्खु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सी विहरति—'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति वेदना ...पे०... इति सञ्ञा ...पे०... इति सङ्खारा ...पे०... इति विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति; नो च खो अट्ठ विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणपुण्डरीको होति।

सम्यग्दृष्टिक होता है... पूर्ववत्... सम्यग्विमुक्तिसम्पन्न होता है। तथा आठ विमोक्षों का भी काया से स्पर्श करने में समर्थ हो जाता है। ऐसा भिक्षु 'श्रमणपद्म' कहलाता है। (३)

५. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमणों में श्रमणसुकुमार** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु माँगा हुआ चीवर ही प्रायः धारण करता है, विना माँगा हुआ बहुत कम उपयोग में लाता है। ...पूर्ववत्... भिक्षुओ! यदि कोई वस्तुतः किसी के लिये श्रमणों में श्रमणसुकुमार का संकेत करना चाहे तो वह मेरे लिये ही उक्त संकेत करेगा कि ये ही 'श्रमणों में श्रमणसुकुमार' हैं। इस तरह, भिक्षुओ! ये चार पुद्गल लोक में होते हैं॥" ●

१०. स्कन्धसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. "भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं? कौन से चार? (१) श्रमणमचल, (२) श्रमणपुण्डरीक, (३) श्रमणपद्म, एवं (४) श्रमणों में श्रमणसुकुमार।

२. "यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल कैसे **श्रमणमचल** होता है? यहाँ कोई भिक्षु शैक्ष्य हो, जिसका चित्त एकाग्र न हो, आसक्ति से अद्वितीय मुक्ति चाहता हुआ साधना करता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'श्रमणमचल' कहलाता है। (१)

३. "कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमणपुण्डरीक** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु पाँचों उपादानस्कन्धों में उत्पाद एवं नाश को देखने वाला होकर साधना करता है—'यह रूप है, यह रूप का समुदय है, यह रूप का निरोध है, यह रूपनिरोधगामी मार्ग है,' यह वेदना है ...पूर्ववत्...

४. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणपदुमो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्चसु उपादानक्खन्धेसु उदयब्बायानुपस्सी विहरति—'इति रूपं, इति रूपस्स समुदयो, इति रूपस्स अत्थङ्गमो; इति वेदना ...पे०... इति सञ्ञा ...पे०... इति सङ्खारा ...पे०... इति [R.91] विञ्ञाणं, इति विञ्ञाणस्स समुदयो, इति विञ्ञाणस्स अत्थङ्गमो' ति, अट्ठ च विमोक्खे कायेन फुसित्वा विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो समणपदुमो होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो समणेसु समणसुखुमालो होति? इध, भिक्खवे, याचितो व बहुलं चीवरं परिभुञ्जति, अप्पं अयाचितो ...पे०... ममेव तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य समणेसु समणसुखुमालो ति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥

मचलवग्गो नवमो॥ ●

तस्सुद्दानं

[N.96] पाणातिपातो च मुसा, अवण्णकोधतमोणता।
पुत्तो संयोजनं चेव, दिट्ठि खन्धेन ते दसा ति॥ ●

१०. असुरवग्गो

१. असुरसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? असुरो असुरपरिवारो, असुरो देवपरिवारो, देवो असुरपरिवारो, देवो देवपरिवारो।

यह संज्ञा है... ये संस्कार हैं... यह विज्ञान है, यह विज्ञान का समुदय है, यह विज्ञान का अस्त (नाश) होना है।" परन्तु वह आठ विमोक्षों का काया से अनुभव करने की स्थिति में नहीं आता। ऐसा पुद्गल, भिक्षुओ! 'श्रमणपुण्डरीक' कहलाता है। (२)

४. "कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमणपद्म** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु पाँच उपादान स्कन्धों में उत्पाद एवं नाश... पूर्ववत्...। साथ ही वह आठ विमोक्षों का भी काया से स्पर्श कर साधना की स्थिति में आ जाता है। ऐसा साधक भिक्षु, भिक्षुओ! 'श्रमणपद्म' कहलाता है। (३)

५. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **श्रमणों में श्रमणसुकुमार** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु माँग कर ही अधिकतर चीवरों का उपभोग करता है ...पूर्ववत्...। ठीक से कहे जाने पर मेरे लिये ही 'श्रमणों में श्रमणसुकुमार' शब्द का प्रयोग कर सकेगा। (४)

भिक्षुओ! इस प्रकार लोक में ये चार पुद्गल लोक में होते हैं॥"

मचलवर्ग नवम सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्राणातिपात सूत्र, २. मृषावाद सूत्र, ३. अवर्णार्ह सूत्र, ४. क्रोधगुरु सूत्र, ५. तमस्तमः सूत्र, ६. अवनतावनतसूत्र, ७. पुत्रसूत्र, ८. संयोजनसूत्र, ९. समाधिसूत्र, एवं १०. स्कन्धसूत्र॥ ●

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो असुरो होति असुरपरिवारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो, परिसा पिस्स होति दुस्सीला पापधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो असुरो होति असुरपरिवारो।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो असुरो होति देवपरिवारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो, परिसा च ख्वस्स होति सीलवती कल्याणधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो असुरो होति देवपरिवारो।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो देवो होति असुरपरिवारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो, परिसा च ख्वस्स होति दुस्सीला पापधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो देवो होति असुरपरिवारो।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो देवो होति देवपरिवारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो सीलवा होति कल्याणधम्मो, परिसा पिस्स होति सीलवती कल्याणधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो देवो होति, देवपरिवारो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

२. पठमसमाधिसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी होति अज्झत्तं [N.97]

---

१०. असुरवर्ग

१. असुरसूत्र : : लोक में चार पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं। कौन से चार? (१) असुर असुरपरिवार, (२) असुर देवपरिवार, (३) देव असुरपरिवार, एवं (४) देव देवपरिवार।

२. ''भिक्षुओ! कौन पुद्गल **असुर असुरपरिवार** कहलाता है? यहाँ कोई पुद्गल दुराचारी एवं पाप कर्मकर्ता होता है, उसके साथ बैठनेवाले साथी (परिवार) भी दु:शील एवं पापकर्म वाले होते हैं। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'असुर असुरपरिवार' कहलाता है। (१)

३. और कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **असुर देवपरिवार** होता है? यहाँ, कोई पुद्गल स्वयं तो दु:शील एवं पापकर्म निरत होता है, परन्तु उसके साथी देवतास्वभाव वाले सुशील एवं पुण्यकर्मा होते हैं। ऐसा पुद्गल, भिक्षुओ! 'असुर देवपरिवार' कहलाता है। (२)

४. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **देव असुरपरिवार** होता है? यहाँ कोई पुद्गल स्वयं देवस्वभाव वाला, सुशील एवं पुण्यकर्मा होता है, परन्तु उसके साथी दु:शील एवं दुष्कर्म निरत होते हुए असुरस्वभाव के होते हैं—ऐसा पुद्गल 'देव असुरपरिवार' कहलाता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'देव असुरपरिवार' कहलाता है। (३)

५. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **देव देवपरिवार** कहलाता है? यहाँ कोई पुद्गल स्वयं भी देवस्वभाव वाला—सुशील एवं सत्कर्मा तथा उसके साथी भी सुशील एवं सत्कर्मा होते हुए देवस्वभाव वाले ही होते हैं। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'देव देवपरिवार' कहलाता है। (४)

इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल लोक में होते हैं॥'' ●

चेतोसमथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी होति अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, न लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न चेव लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स न च लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी अधिपञ्ञा-धम्मविपस्सनाय। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतो-समथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

३. दुतियसमाधिसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना [B.405] लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी होति अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, न लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न चेव लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स न च लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

२. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स न लाभी [R.93] अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, तेन, भिक्खवे, पुग्गलेन अज्झत्तं चेतोसमथे पतिट्ठाय अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय योगो करणीयो। सो अपरेन समयेन लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

---

२. प्रथम समाधिसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार?

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक आध्यात्मिक चित्तसमाधि (चेत:शमथ) को प्राप्त कर लेता है, परन्तु वह प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना को प्राप्त नहीं कर पाता। (१)

''और यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक प्रज्ञाविषय का धर्मविपश्यना तो प्राप्त कर लेता है, परन्तु आध्यात्मिक चित्तसमाधि नहीं प्राप्त कर पाता। (२)

''और, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न आध्यात्मिक चित्तसमाधि ही प्राप्त कर पाता है तथा न प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना ही। (३)

''तथा, भिक्षुओ! कोई पुद्गल आध्यात्मिक चेतसमाधि भी प्राप्त कर लेता है और प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना भी। (४)

''इस प्रकार, भिक्षुओ! लोक में चार पुद्गल होते हैं॥'' ●

३. द्वितीय समाधिसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल देखे जाते हैं। कौन से चार?...पूर्वसूत्रवत्...।

२. ''वहाँ, भिक्षुओ! जो पुद्गल आध्यात्मिक चित्तसमाधि प्राप्त करके भी प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना प्राप्त नहीं कर पाता, उसको आध्यात्मिक चित्तसमाधि में प्रतिष्ठित होकर प्रज्ञाविषयक

३. "तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय न लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स, तेन, भिक्खवे, पुग्गलेन अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय पतिट्ठाय अज्झत्तं चेतोसमथे योगो करणीयो। सो अपरेन समयेन लाभी चेव होति अधिपञ्ञा-धम्मविपस्सनाय लाभी च अज्झत्तं चेतोसमथस्स।

४. "तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो न चेव लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स न [N.98] च लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, तेन, भिक्खवे, पुग्गलेन तेसंयेव कुसलानं धम्मानं पटिलाभाय अधिमत्तो छन्दो च वायामो च उस्साहो च उस्सोळ्ही च अप्पटिवानी च सति च सम्पजञ्ञं च करणीयं। सेय्यथापि, भिक्खवे, आदित्तचेलो वा आदित्तसीसो वा तस्सेव चेलस्स वा सीसस्स वा निब्बापनाय अधिमत्तं छन्दं च वायामं च उस्साहं च उस्सोळ्हिं च अप्पटिवानिं च सतिं च सम्पजञ्ञं च करेय्य; एवमेव खो, भिक्खवे, तेन पुग्गलेन तेसंयेव कुसलानं धम्मानं पटिलाभाय अधिमत्तो छन्दो च वायामो च उस्साहो च उस्सोळ्ही [B.406] च अप्पटिवानी च सति च सम्पजञ्ञं च करणीयं। सो अपरेन समयेन लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

५. "तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स लाभी

धर्मविपश्यना प्राप्ति हेतु भी प्रयास करना चाहिये। इस प्रकार, वह प्रयास करने पर एक समय आध्यात्मिक चित्तसमाधि के साथ साथ प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना भी प्राप्त करने में समर्थ हो जायगा। (१)

३. और, भिक्षुओ! वहाँ जो पुद्गल प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना प्राप्त करके भी आध्यात्मिक चित्तसमाधि प्राप्त नहीं कर पाता, उसको प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना में प्रतिष्ठित होकर आध्यात्मिक चित्तसमाधि प्राप्ति हेतु भी प्रयास करना चाहिये। इस प्रकार प्रयास करते करते एक समय वह प्रज्ञाविषयक धर्मविश्यना के साथ साथ आध्यात्मिक चित्तसमाधि प्राप्त करने में भी समर्थ हो जायगा। (२)

४. और, भिक्षुओ! वहाँ जो पुद्गल न आध्यात्मिक चित्तसमाधि ही प्राप्त कर पाया हो, तथा न प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना ही; उस पुद्गल को उन उन कुशल धर्मों की प्राप्ति के लिये अपनी अत्यधिक इच्छा, उद्योग, उत्साह, पीछे न हटना एवं स्मृति तथा सम्प्रजन्य आदि प्रयुक्त करने चाहिये।

"जैसे, भिक्षुओ! किसी पुरुष के वस्त्रों में या शिर पर किसी कारण से अग्नि लग जाय तब वह पुरुष अपने उन वस्त्रों तथा शिर पर लगी अग्नि को बुझाने हेतु अपनी सम्पूर्ण इच्छा, प्रयास, उत्साह, पीछे न हटना, स्मृति एवं सम्प्रजन्य के साथ तत्पर हो जाता है; उसी प्रकार, भिक्षुओ! उस साधक पुद्गल को अपनी समस्त इच्छा ...पूर्ववत्... सम्प्रजन्य के साथ तत्परतापूर्वक उन उन कुशल धर्मों की प्राप्ति में लग जाना चाहिये। इस तरह प्रयास करते करते, समय आने पर वह साधक पुद्गल आध्यात्मिक चित्तसमाधि एवं प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना—दोनों ही प्राप्त कर सकता है। (३)

५. "वहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल जब आध्यात्मिक चित्तसमाधि एवं प्रज्ञाविषयक

च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, तेन, भिक्खवे, पुग्गलेन तेसुयेव कुसलेसु धम्मेसु पतिट्ठाय उत्तरि आसवानं खयाय योगो करणीयो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

४. ततियसमाधिसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी होति अज्झत्तं चेतो- [R.94] समथस्स, न लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी होति अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, न लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न चेव लाभी होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स न च लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

२. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स न लाभी अधि- [N.99] पञ्ञाधम्मविपस्सनाय, तेन, भिक्खवे, पुग्गलेन य्वायं पुग्गलो लाभी अधिपञ्ञा- धम्मविपस्सनाय सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'कथं नु खो, आवुसो, सङ्खारा दट्ठब्बा? कथं सङ्खारा सम्मसितब्बा? कथं सङ्खारा विपस्सितब्बा' ति? तस्स सो यथादिट्ठं यथाविदितं ब्याकरोति—'एवं खो, आवुसो, सङ्खारा दट्ठब्बा, एवं सङ्खारा सम्मसितब्बा, एवं सङ्खारा विपस्सितब्बा' ति। सो अपरेन समयेन लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

३. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय न लाभी

धर्मविपश्यना—दोनों ही प्राप्त कर लेता है, तब उसे उन कुशल धर्मों में प्रतिष्ठित रहते हुए आगे बढ़कर आश्रवों के क्षय हेतु प्रयत्न आरम्भ करना चाहिये। (४)

''इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चार प्रकार के साधक पुद्गल लोक में विद्यमान हैं॥'' ●

४. तृतीय समाधिसूत्र : : चतुर्विध साधक पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! ये चतुर्विध साधक पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं। कौन से चार? ...पूर्ववत्...।

२. ''वहाँ, भिक्षुओ! जो पुद्गल आध्यात्मिक चित्तसमाधि प्राप्त कर चुका हो, परन्तु उसे प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना न प्राप्त हुई हो, उस पुद्गल को प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यनाप्राप्त साधक के पास जाकर यों पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! इन संस्कारों का दर्शन, सम्मर्षण एवं विपश्यना कैसे करनी चाहिये?' तब वह साधक, अपने पूर्व अनुभव के आधार पर जैसा उसने स्वयं इनका दर्शन, सम्मर्शन एवं विपश्यना की हो, उस के आधार पर उस पुद्गल को बताता है—'ऐसे इनका दर्शन करना चाहिये', 'ऐसे सम्मर्शन करना चाहिये,' 'ऐसे इनकी विपश्यना करनी चाहिये।' इस प्रकार साधना करता हुआ वह पुद्गल भी यथासमय चित्तसमाधि के साथ साथ प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना का लाभी हो जायगा। (१)

३. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! जो पुद्गल प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना का लाभ कर चुका हो,

अज्झत्तं चेतोसमथस्स, तेन, भिक्खवे, पुग्गलेन य्वायं पुग्गलो लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स सो उपसङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'कथं नु खो, आवुसो, चित्तं सण्ठपेतब्बं ? कथं चित्तं सन्निसादेतब्बं ? कथं चित्तं एकोदि कातब्बं ? कथं चित्तं समादहातब्बं' ति ? तस्स [B.407] सो यथादिट्ठं यथाविदितं ब्याकरोति—'एवं खो, आवुसो, चित्तं सण्ठपेतब्बं, एवं चित्तं सन्निसादेतब्बं, एवं चित्तं एकोदि कातब्बं, एवं चित्तं समादहातब्बं' ति। सो अपरेन समयेन लाभी चेव होति अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय लाभी च अज्झत्तं चेतोसमथस्स।

४. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो न चेव लाभी अज्झत्तं चेतोसमथस्स न च लाभी अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, तेन, भिक्खवे, पुग्गलेन य्वायं पुग्गलो लाभी चेव अज्झत्तं चेतोसमथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय सो उपङ्कमित्वा एवमस्स वचनीयो—'कथं नु खो, आवुसो, चित्तं सण्ठपेतब्बं ? कथं चित्तं समादहातब्बं ? कथं सङ्खारा दट्ठब्बा ? कथं सङ्खारा सम्मसितब्बा ? कथं सङ्खारा विपस्सितब्बा' ति ? तस्स सो यथादिट्ठं यथाविदितं ब्याकरोति—'एवं खो, आवुसो, चित्तं सण्ठपेतब्बं, एवं चित्तं सन्निसादेतब्बं, एवं चित्तं एकोदि कातब्बं, एवं चित्तं समादहातब्बं, एवं सङ्खारा दट्ठब्बा, एवं सङ्खारा सम्मसितब्बा, एवं सङ्खारा विपस्सितब्बा' ति। सो अपरेन समयेन लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतो- [R.95] समथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय।

५. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो लाभी चेव होति अज्झत्तं चेतोसमथस्स लाभी च अधिपञ्ञाधम्मविपस्सनाय, तेन, भिक्खवे, पुग्गलेन तेसु चेव कुसलेसु धम्मेसु [N.100]

परन्तु आध्यात्मिक चित्तसमाधि का लाभ न कर पाया हो, उसको आध्यात्मिक चित्तसमाधि प्राप्त साधक के पास जाकर पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! चित्त की स्थिति का, चित्त के निरोध का, चित्त की एकाग्रता का क्या उपाय है ? कैसे चित्त समाधिस्थ हो ?' तब वह लाभी साधक अपने अनुभव के आधार पर जो बतावे तदनुसार वह पुद्गल चित्त को स्थिर करे, उसका निरोध करे, उसको एकाग्र करे, उसको समाधिस्थ करे। इस तरह, भिक्षुओ! समय आते आते, वह पुद्गल प्रज्ञाविषयक धर्मविश्यना के साथ आध्यात्मिक चित्तसमाधि का भी लाभी हो जायगा। (२)

४. ''और, भिक्षुओ! जो पुद्गल न आध्यात्मिक चित्तसमाधि का तथा न प्रज्ञाविषयक धर्मविपश्यना का लाभी हो, वह पुद्गल ऐसे साधक के पास जावे जो इन दोनों साधनाओं में पूर्ण हो, और उससे यह पूछना चाहिये—'आयुष्मन्! कैसे चित्त की स्थिति का, चित्त के निरोध का, चित्त की एकाग्रता का क्या उपाय है ? तथा चित्त कैसे समाधिस्थ हो ?'—यह बतावें। संस्कारों का दर्शन, सम्मर्शन एवं विपश्यना कैसे हो ?—यह भी बतावें। तब वह लाभी साधक अपने अनुभव के आधार पर तदनुसार बताता है—'आयुष्मन्! चित्त की स्थिति, निरोध, एकाग्रता तथा समाधि का यह उपाय है। संस्कारों के दर्शन, सम्मर्शन एवं विपश्यना का यह उपाय है।' वह पुद्गल (इस उपाय के अनुसार) साधना करते करते एक समय आता है कि वह भी इन दोनों ही साधनाओं में पूर्ण हो जाता है। (३)

५. ''फिर, भिक्षुओ! जो पुद्गल इन दोनों ही साधनाओं में पूर्णता प्राप्त कर चुका हो, उसे

पतिट्ठाय उत्तरि आसवानं खयाय योगो करणीयो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥

५. छवालातसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? नेवत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय, अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च।

[B.408] २. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, छवालातं उभतो पदित्तं, मज्झे गूथगतं, नेव गामे कट्ठत्थं फरति न अरञ्ञे; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि य्वायं पुग्गलो नेवत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय।

३. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय, अयं इमेसं द्विन्नं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च।

तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, अयं इमेसं तिण्णं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च।

तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च, अयं इमेसं चतुन्नं पुग्गलानं अग्गो च सेट्ठो च पामोक्खो च उत्तमो च पवरो च।

४. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा

चाहिये कि वह कुशल धर्मों में प्रतिष्ठित रहकर साधना को आगे बढ़ाता हुआ अपने आश्रवों को चित्त से दूर हटाने का प्रयास करे। (४)

''भिक्षुओ! इस प्रकार ये चार साधक इस लोक में विद्यमान दिखायी देते हैं॥''

५. शवालातसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार? (१) जो न स्वयं अपने लिये, न दूसरों के लिये सत्कर्म करना चाहता है, (२) दूसरे के लिये सत्कर्म करता है, अपने लिये नहीं। (३) अपने लिये सत्कर्म करता है, दूसरों के लिये नहीं। और (४) जो अपने लिये भी सत्कर्म करता है और दूसरों के लिये भी।

२. ''जैसे, भिक्षुओ! मृत शरीर को जलाने वाली लकड़ी आगे पीछे से जली हुई हो और बीच में मल से लिप्त हो। वह न तो घर में जलाने के कार्य में आवे, न जंगल में ही पड़ी हुई अच्छी लगे। इसी तरह, भिक्षुओ! यह पुद्गल होता है जो न अपने लिये, न पर के लिये सत्कर्म करने के लिये तत्पर होता है। (१)

३. ''परन्तु जो पुद्गल परहित में तत्पर हो, और अपने लिये कुछ न करे, यह इन दोनों में अपेक्षाकृत अच्छा है, उत्तम है। (२)

''और जो अपने लिये सत्कर्म करता है, परहित में नहीं, यह इन तीनों में अपेक्षाकृत अच्छा है, उत्तम है। (३)

''तथा जो अपने लिये भी तथा परहित में भी सत्कर्म हेतु तत्पर रहता है—वह इन चारों में श्रेष्ठ है, उत्तम है। (४)

सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो तत्थ अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च, अयं इमेसं चतुन्नं पुग्गलानं अग्गो च सेट्ठो च [R.96] पामोक्खो च उत्तमो च पवरो च। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

६. **रागविनयसुत्तं** : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय, नेवत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय [N.101] च।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तना रागविनयाय पटिपन्नो होति, नो परं रागविनयाय समादपेति; अत्तना दोसविनयाय पटिपन्नो होति, नो परं दोसविनयाय समादपेति; अत्तना मोहविनयाय पटिपन्नो होति, नो परं मोहविनयाय समादपेति। एवं खो, भिक्खवे, [B:409] पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तना न रागविनयाय पटिपन्नो होति, परं रागविनयाय समादपेति; अत्तना न दोसविनयाय पटिपन्नो होति, परं दोसविनयाय समादपेति; अत्तना न मोहविनयाय पटिपन्नो होति, परं मोहविनयाय समादपेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताय।

---

४. ''जैसे, भिक्षुओ! गौ से दूध, दूध से दही, दही से मक्खन, मक्खन से घृत—इस प्रकार घृत ही इन सबमें उत्तम एवं अच्छा कहलाता है; उसी तरह, भिक्षुओ! जो पुद्गल स्व एवं पर—दोनों के हित में तत्पर रहता है वही इन चतुर्विध पुद्गलों में श्रेष्ठ, प्रमुख, प्रधान एवं उत्तम कहलाता है।

''इस तरह, भिक्षुओ! लोक में ये चार पुद्गल देखे जाते हैं॥'' ●

६. रागविनयसूत्र : : पुद्गलों के चार प्रकार

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार? (१) जो अपने लिये ही सत्कर्म करता है परहित में नहीं; (२) या परहित में तो कर्म करता है, परन्तु स्वहित में नहीं; (३) ''कोई स्वहित या परहित दोनों में ही सत्कर्म नहीं करता; तथा (४) जो स्वहित तथा परहित—दोनों के हेतु सत्कर्म के लिये तत्पर रहता है।

२. ''कौन भिक्षुओ! पुद्गल आत्महित में लगा रहता है परहित में नहीं? कोई पुद्गल स्वयं को राग, द्वेष एवं मोह से दूर कर लेता है; परन्तु दूसरों को एतदर्थ प्रोत्साहित नहीं करता—ऐसा पुद्गल आत्महित में लगा रहता है, परहित में नहीं। (१)

३. ''कौन पुद्गल भिक्षुओ! परहित में लगा रहता है, स्वहित में नहीं? कोई पुद्गल दूसरों को राग, द्वेष एवं मोह से दूर रहने के लिये प्रेरित करता रहता है; परन्तु स्वयं तदर्थ प्रेरित नहीं होता—ऐसा पुद्गल परहित में लगा रहता है, स्वहित में नहीं। (२)

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तना न रागविनयाय पटिपन्नो होति, नो परं रागविनयाय समादपेति; अत्तना न दोसविनयाय पटिपन्नो होति, नो पर दोसविनयाय समादपेति; अत्तना न मोहविनयाय पटिपन्नो होति, नो परं मोहविनयाय समादपेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तना च रागविनयाय पटिपन्नो होति, परं च रागविनयाय समादपेति; अत्तना च दोसविनयाय पटिपन्नो होति, परं च दोसविनयाय समादपेति; अत्तना [R.97] च मोहविनयाय पटिपन्नो होति, परं च मोहविनयाय समादपेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

[N.102] **७. खिप्पनिसन्तिसुत्तं** : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय, नेवत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च।

[B.410] २. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो खिप्पनिसन्ती च होति कुसलेसु धम्मेसु, सुतानं च धम्मानं धारकजातिको होति, धातानं च धम्मानं अत्थूपपरिक्खी होति अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय, धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति; नो च कल्याणवाचो होति कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय

---

४. ''कौन पुद्गल, भिक्षुओ! न स्वहित में, न परहित में लगा हुआ कहलाता है? कोई पुद्गल न स्वयं को राग, द्वेष एवं मोह से दूर कर पाता है, न दूसरों को ही इन तीनों से प्रेरित कर पाता है—ऐसा पुद्गल न स्वहित में, न परहित में लगा हुआ कहलाता है। (३)

५. ''कौन पुद्गल, भिक्षुओ! स्वहित एवं परहित—दोनों में तत्पर कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल अपने राग, द्वेष एवं मोह के निरोध के लिये तत्पर रहता है, तथा दूसरों को भी राग, द्वेष एवं मोह के निरोध के लिये प्रोत्साहित करता है। इस तरह वह पुद्गल आत्महित एवं परहित—दोनों में तत्पर कहलाता है। (४)

''इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में विद्यमान हैं॥'' ●

७. क्षिप्रनिशान्तिसूत्र : : चार प्रकार के पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार?...पूर्ववत्...।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वहित में ही निरत रहता है; परहित में नहीं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वयं कुशल धर्मों में तत्काल ध्यान देनेवाला होता है, वह सुने हुए धर्मों को धारण करने वाला होता है, धारण किये हुए धर्मों का अर्थ जानने का प्रयास करता है, इस प्रकार धर्म का अर्थ जानकर, धर्म जानकर धर्मानुसार आचरण करने में लग जाता है। परन्तु दूसरों को वह न शुभ वाणी

समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया, नो च सन्दस्सको होति समादपको समुत्तेजको सम्पहंसको सब्रह्मचारीनं। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न हेव खो खिप्पनिसन्ती होति कुसलेसु धम्मेसु, नो च सुतानं धम्मानं धारकजातिको होति, नो च धातानं धम्मानं अत्थूपपरिक्खी होति, नो च अत्थ-मञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति; कल्याणवाचो च होति कल्याण-वाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया, सन्दस्सको च होति समादपको समुत्तेजको सम्पहंसको सब्रह्मचारीनं। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताय।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो [R.98] परहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न हेव खो खिप्पनिसन्ती होति कुसलेसु धम्मेसु, नो च सुतानं धम्मानं धारकजातिको होति, नो च धातानं धम्मानं अत्थूपपरिक्खी होति, नो च अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति; नो च कल्याणवाचो होति कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया, नो च सन्दस्सको होति समादपको समुत्तेजको सम्पहंसको [N.102] सब्रह्मचारीनं। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च?

बोलता है, न सभ्य वचन बोलता है, न ऐसी वाणी बोलता है जिसका अर्थ मङ्गलमय हो। न वह अपने साथियों को कुशल मार्ग दिखाता है, न उन को उसके लिये प्रेरित, समुत्तेजित या उत्साहित करता है। इस प्रकार का पुद्गल, भिक्षुओ 'स्वहित में निरत, परन्तु परहित में उपेक्षक' कहलाता है। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल परहित में तो लगा रहता है; परन्तु स्वहित में नहीं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न कुशल धर्मों में तत्काल ध्यान देनेवाला होता है, न श्रुतधर्मों को धारण करने वाला होता है...पूर्ववत्... परन्तु अपने साथियों को कुशल धर्मों की प्राप्ति के लिये समुत्तेजित, उत्साहित एवं प्रेरित करता रहता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल कहलाता है—'परहितरत परन्तु स्वहितरत नहीं।' (२)

४. और कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न स्वहित में लगता है, न परहित में ही? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु न स्वयं कुशल धर्मों पर तत्काल ध्यान देनेवाला होता है, न श्रुतधर्मों को धारण करने वाला, ...पूर्ववत्... न वह अपने साथियों को ही कुशल धर्मों की प्राप्ति हेतु समुत्तेजित, उत्साहित एवं प्रेरित करता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'न स्वहित में ही लगता है, न परहित में लगता है'—कहलाता है। (३)

५. और कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'स्वहितनिरत भी एवं परहितनिरत भी' होता है? यहाँ,

[B.411] इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो खिप्पनिसन्ती च होति कुसलेसु धम्मेसु, सुतानं च धम्मानं धारकजातिको होति, धातानं च धम्मानं अत्थूपपरिक्खी होति अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय, धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति; कल्याणवाचो च होति कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया, सन्दस्सको च होति समादपको समुत्तेजको सम्पहंसको सब्रह्मचारीनं। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

८. **अत्तहितसुत्तं :** १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, परहिताय पटिपन्नो नो अत्तहिताय, नेवत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

९. **सिक्खापदसुत्तं :** १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? अत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, परहिताय पटिपन्नो नो अत्त-[R.99] हिताय, नेवत्तहिताय पटिपन्नो नो परहिताय, अत्तहिताय चेव पटिपन्नो परहिताय च।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तना पाणातिपाता पटिविरतो होति, नो परं पाणातिपाता

भिक्षुओ! कोई पुद्गल कुशल धर्मों के पालन में तत्काल ध्यान देता है श्रुत धर्मों को धारण करता है ...पूर्ववत्...; दूसरों साथियों के लिये भी शुभ एवं सभ्य वाणी में कुशल धर्मों के लिये उत्तेजना, प्रेरणा एवं उत्साह प्रदान करता रहता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'स्वहितनिरत भी एवं परहितनिरत भी' कहलाता है। (४)

''भिक्षुओ! इस प्रकार इस लोक में ये चार प्रकार के पुद्गल दिखायी देते हैं॥'' ●

८. आत्महितसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं। कौन से चार? (१) कोई आत्महित में लगा हुआ हो, किन्तु परहित में नहीं; (२) कोई परहित में लगा हुआ हो, परन्तु स्वहित में नहीं; (३) कोई न स्वहित में और न परहित में ही लगा हुआ हो; (४) कोई स्वहित एवं परहित—दोनों में लगा हुआ हो। इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥'' ●

९. शिक्षापदसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं। कौन से चार? (१) आत्महित में ही प्रतिपन्न, परहित में नहीं; (२) परहित में ही प्रतिपन्न, स्वहित में नहीं; (३) न स्वहित में प्रतिपन्न, न परहित में प्रतिपन्न; (४) स्वहित में भी तथा परहित में भी—उभयत्र प्रतिपन्न।

२. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल आत्महित में ही प्रतिपन्न होता है, परहित में नहीं? यहाँ,

वेरमणिया समादपेति; अत्तना अदिन्नादाना पटिविरतो होति, नो परं अदिन्नादाना वेरमणिया समादपेति; अत्तना कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, नो परं कामेसुमिच्छाचारा [N.104] वेरमणिया समादपेति; अत्तना मुसावादा पटिविरतो होति, नो परं मुसावादा [B.412] वेरमणिया समादपेति; अत्तना सुरमेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति, नो परं सुरामेरय-मज्जपमादट्ठाना वेरमणिया समादपेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तना पाणातिपाता अप्पटिविरतो होति, परं पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति; अत्तना अदिन्नादाना अप्पटिविरतो होति, परं अदिन्नादाना वेरमणिया समादपेति; अत्तना कामेसुमिच्छाचारा अप्पटिविरतो होति, परं कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया समादपेति; अत्तना मुसावादा अप्पटिविरतो होति, परं मुसावादा वेरमणिया समादपेति; अत्तना मुसावादा अप्पटिविरतो होति, परं मुसावादा वेरमणिया समादपेति; अत्तना सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना अप्पटिविरतो होति, परं सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणिया समादपेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताय।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तहिताय पटिपन्नो होति नो परहिताय? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तना पाणातिपाता अप्पटिविरतो होति, नो परं पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति ...पे०... अत्तना सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना अप्पटिविरतो होति, नो परं सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणिया समादपेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय।

भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वयं प्राणातिपात से विरत रहता है; परन्तु दूसरों को प्राणातिपात से विरत रहने की प्रेरणा नहीं देता। स्वयं अदत्तादान से, कामों में मिथ्याचार (व्यभिचार) से, मृषावाद (असत्यभाषण) से तथा मद्यपान से प्रतिविरत रहता है; परन्तु दूसरों को अदत्तादान से, कामों में मिथ्याचार से तथा मृषावाद से तथा मद्यपान से विरत रहने की प्रेरणा नहीं देता। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'आत्महित में प्रतिपन्न परन्तु परहित में नहीं'—कहलाता है। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'परहित में प्रतिपन्न, परन्तु स्वहित में प्रतिपन्न नहीं' कहलाता है? कोई पुद्गल स्वयं तो प्राणातिपात से, अदत्तादान से, कामों में मिथ्याचार से, मृषावाद से एवं मद्यपान से विरत नहीं रहता; परन्तु दूसरों को प्राणातिपात, अदत्तादान, कामों में मिथ्याचार, मृषावाद एवं मद्यपान से विरत रहने के लिये प्रेरणा, उत्तेजना एवं उत्साह प्रदान करता है। इस प्रकार का, भिक्षुओ! पुद्गल 'परहित में प्रतिपन्न परन्तु स्वहित में प्रतिपन्न नहीं'—कहलाता है। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न स्वहित एवं न परहित में प्रतिपन्न होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वयं भी प्राणातिपात से विरत नहीं होता और न दूसरों को ही प्राणातिपात से विरत होने के लिये प्रेरित करता है ...पूर्ववत्...। स्वयं भी मद्यपान से विरत नहीं और दूसरों को भी वैसी प्रेरणा

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तनो च पाणातिपाता पटिविरतो होति, परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति ...पे०... अत्तना च सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति, परं च सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणिया समादपेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तहिताय चेव पटिपन्नो होति परहिताय च। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥

[N.105,B.413,R.100] **१०. पोतलियसुत्तं** : १. ''अथ खो पोतलियो परिब्बाजको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो पोतलियं परिब्बाजकं भगवा एतदवोच—

२. ''चत्तारोमे, पोतलिय, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, पोतलिय, एकच्चो पुग्गलो अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च खो वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन। इध पन, पोतलिय, एकच्चो पुग्गलो वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन। इध पन, पोतलिय, एकच्चो पुग्गलो नेव अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन। इध पन, पोतलिय, एकच्चो पुग्गलो अवण्णारहस्स च अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, वण्णारहस्स च वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं

नहीं देता। ऐसा, भिक्षुओ! पुद्गल 'न स्वहित में एवं न परहित में प्रतिपन्न पुद्गल' कहलाता है। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वहित के लिये भी तथा परहित के लिये भी प्रतिपन्न रहता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वयं भी प्राणातिपात, अदत्तादान, कामभोगों में मिथ्याचार, मृषावाद एवं मद्यपान से विरत रहता है तथा दूसरों को भी इन पाँचों दुर्गुणों से दूर रहने हेतु प्रेरित करता रहता है। ऐसा, भिक्षुओ! पुद्गल 'स्वहित परहित में भी प्रतिपन्न' कहलाता है। (४)

''भिक्षुओ! ये चार पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥''

१०. पोतलियसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. तब पोतलिय परिव्राजक भगवान् के सम्मुख आया। आकर कुशलमङ्गल प्रश्नानन्तर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए पोतलिय परिव्राजक को भगवान् ने यह उपदेश किया—

२. ''पोतलिय! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल दिखायी देते हैं। कौन चार? (१) पोतलिय! यहाँ कोई पुद्गल निन्दनीय की निन्दा सत्य, तथ्य तथा समय पर करता है, और प्रशंसनीय की सत्य, तथ्य तथा समय पर प्रशंसा करता है। (२) कोई पुद्गल प्रशंसनीय की तो सत्य, तथ्य तथा समय पर प्रशंसा करता है; परन्तु निन्दनीय की निन्दा नहीं करता। (३) और कोई पुद्गल न किसी प्रशंसनीय की सत्य, तथ्य तथा समय पर प्रशंसा ही करता है और न किसी निन्दनीय की वैसी निन्दा ही। (४) तथा कोई पुद्गल किसी प्रशंसनीय की प्रशंसा तथा निन्दनीय की निन्दा सत्य, तथ्य एवं समय

कालेन। इमे खो, पोतलिय, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं खो, पोतलिय, चतुन्नं पुग्गलानं कतमो ते पुग्गलो खमति अभिक्कन्ततरो च पणीततरो चा'' ति?

३. ''चत्तारोमे, भो गोतम, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भो गोतम, एकच्चो पुग्गलो अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च खो वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन... इध पन, भो गोतम, [B.414] एकच्चो पुग्गलो वण्णारहस्स च अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, वण्णारहस्स च वण्णं भासिता होति भूत तच्छं कालेन। इमे खो, भो गोतम, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं, भो गोतम, चतुन्नं पुग्गलानं य्वायं पुग्गलो नेव अवण्णारहस्स अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, नो च वण्णारहस्स वण्णं भासिता होति [R.101] भूतं तच्छं कालेन; अयं मे पुग्गलो खमति इमेसं चतुन्नं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। तं किस्स हेतु? अभिक्कन्ता हेसा, भो गोतम, यदिदं उपेक्खा'' ति।

४. ''चत्तारोमे, पोतलिय, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे [N.106] चत्तारो ...पे०... इमे खो, पोतलिय, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं खो, पोतलिय, चतुन्नं पुग्गलानं य्वायं पुग्गलो अवण्णारहस्स च अवण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन, वण्णारहस्स च वण्णं भासिता होति भूतं तच्छं कालेन; अयं इमेसं चतुन्नं पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। तं किस्स हेतु? अभिक्कन्ता हेसा, पोतलिय, यदिदं तत्थ तत्थ कालञ्ञुता'' ति।

५. ''चत्तारोमे, भो गोतम, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ...पे०... इमे खो, भो गोतम, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। इमेसं, भो गोतम, चतुन्नं पुग्गलानं य्वायं पुग्गलो अवण्णारहस्स च अवण्णं भासिता भूतं तच्छं कालेन, वण्णारहस्स च वण्णं भासिता भूतं तच्छं कालेन; अयं मे पुग्गलो खमति इमेसं चतुन्नं

पर करता है। यों, पोतलिय! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल दिखायी देते हैं। इनमें तुमको कौन सा पुद्गल श्रेष्ठ, उत्तम तथा प्रिय लगता है?''

३. ''भो, गौतम! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल दिखायी देते हैं। कौन से चार? ...पूर्ववत्...। इन चारों में, भो गौतम! जो पुद्गल निन्दनीय की सत्य, तथ्य तथा समय पर निन्दा नहीं करता; एवं प्रशंसनीय की सत्य, तथ्य तथा समय पर, प्रशंसा भी नहीं करता है—ऐसा पुद्गल ही मुझे श्रेष्ठ तथा उत्तम लगता है। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिये कि यहाँ उपेक्षा ही मुझे सर्वश्रेष्ठ लगती है।''

४. ''पोतलिय! जैसा मैंने बताया, इस लोक में चतुर्विध पुद्गल दिखायी देते हैं। कौन से चार? ...पूर्ववत्...। पोतलिय! इन चारों में जो पुद्गल निन्दनीय की निन्दा, सत्य, तथ्य तथा समय पर करता है और प्रशंसनीय की भी सत्य, तथ्य तथा समय पर प्रशंसा करता है—यही पुद्गल इन चारों में श्रेष्ठ एवं उत्तम कहलाता है। वह किस कारण? वह इस कारण पोतलिय! कि यहाँ वहाँ कालज्ञता ही सर्वश्रेष्ठ है।''

पुग्गलानं अभिक्कन्ततरो च पणीततरो च। तं किस्स हेतु? अभिक्कन्ता हेसा, भो गोतम, यदिदं तत्थ तत्थ कालञ्ञुता।

६. "अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं भो गोतम! सेय्यथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य, पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य, अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति, एवमेवं भोता गोतमेन अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति॥ **असुरवग्गो दसमो॥**

तस्सुद्दानं

असुरो तयो समाधी, छवालातेन पञ्चमं।
रागो निसन्ति अत्तहितं, सिक्खा पोतलियेन चा ति॥ ●

दुतियो पण्णासको समत्तो॥

११. वलाहकवग्गो

ततियो पण्णासको

[N.107,B.416,R.102] **१. पठमवलाहकसुत्तं :** १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—"भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

---

५. "भो गौतम! ये चार पुद्गल लोक में चतुर्विध...पूर्ववत्... यहाँ वहाँ कालज्ञता ही श्रेष्ठ है।

६. "भो गौतम! आपने बहुत अच्छा कहा, बहुत ही अच्छा कहा। ...पूर्ववत्... आज से मेरे प्राण रहने तक मुझे आप अपना शरणागत उपासक समझें॥" **असुरवर्ग दशम सम्पन्न॥** ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. असुरसूत्र, २. प्रथमसमाधिसूत्र, ३. द्वितीय समाधिसूत्र, ४. तृतीय समाधिसूत्र, ५. शवालातसूत्र, ६. रागविनयसूत्र, ७. क्षिप्रनिशान्तिसूत्र, ८. आत्महितसूत्र, ९. शिक्षापदसूत्र, एवं १०. पोतलियसूत्र॥ **द्वितीय पञ्चाशत्क सम्पन्न॥** ●

११. वलाहकवर्ग

तृतीयपञ्चाशत्क

१. प्रथम वलाहकसूत्र : : मेघोपम चतुर्विध पुद्गल

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती स्थित अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी भगवान् ने भिक्षुओं को अपने सम्मुख आमन्त्रित किया। भिक्षु भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य कर वहाँ आये। भगवान् ने उनको यह देशना की—

२. "चत्तारोमे, भिक्खवे, वलाहका। कतमे चत्तारो? गज्जिता नो वस्सिता, वस्सिता नो गज्जिता, नेव गज्जिता नो वस्सिता, गज्जिता च वस्सिता च। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो वलाहका। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? गज्जिता नो वस्सिता, वस्सिता नो गज्जिता, नेव गज्जिता नो वस्सिता, गज्जिता च वस्सिता च।

३. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो गज्जिता होति नो वस्सिता? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो भासिता होति, नो कत्ता। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो गज्जिता होति, नो वस्सिता। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, वलाहको गज्जिता, नो वस्सिता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

४. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो वस्सिता होति, नो गज्जिता? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो कत्ता होति, नो भासिता। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो वस्सिता होति, नो गज्जिता। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, वलाहको वस्सिता, नो गज्जिता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

५. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेव गज्जिता होति, नो वस्सिता? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो नेव भासिता होति, नो कत्ता। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेव गज्जिता होति, नो वस्सिता। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, वलाहको नेव गज्जिता, नो [B.417] वस्सिता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

---

२. "भिक्षुओ! यहाँ चतुर्विध वलाहक (मेघ) होते हैं। कौन चार? (१) कुछ केवल गर्जते हैं, बरसते नहीं; (२) कुछ बरसते हैं, गर्जते नहीं; (३) कुछ न गर्जते हैं न बरसते ही हैं; तथा (४) कुछ गर्जते भी हैं और बरसते भी हैं। भिक्षुओ! ये चतुर्विध वलाहक होते हैं, इसी प्रकार, भिक्षुओ! लोक में पुद्गल भी चतुर्विध होते हैं। कौन से चार? (१) कुछ केवल गर्जते हैं, बरसते नहीं; (२) कुछ बरसते हैं, गर्जते नहीं; (३) कुछ न गर्जते हैं न बरसते हैं; और (४) कुछ गर्जते भी है, बरसते भी हैं।

३. "भिक्षुओ! कौन पुद्गल केवल गर्जता है, बरसता नहीं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल बोलता है, तदनुसार कुछ करता नहीं। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'गर्जता है, बरसता नहीं'—कहलाता है। भिक्षुओ! जैसे वह वलाहक गर्जता है बरसता नहीं; वैसा ही, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। (१)

४. "कैसे, भिक्षुओ! पुद्गल 'केवल बरसने वाला है, न कि गर्जने वाला' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! जो पुद्गल केवल कर्ता है, बोलता नहीं—वह ऐसा कहलाता है। जैसे भिक्षुओ! कोई मेघ बरसता है, गर्जता नहीं; मैं इस पुद्गल को वैसा ही समझता हूँ। (२)

५. "कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'न गर्जने वाला और न ही बरसने वाला' कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल न कर्ता है, न बोलता है—यही पुद्गल ऐसा कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई मेघ न गर्जता है न बरसता है, मैं इस पुद्गल को वैसा ही समझता हूँ। (३)

६. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो गज्जिता च होति वस्सिता च? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो भासिता च होति कत्ता च। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो गज्जिता च होति वस्सिता च। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, वलाहको गज्जिता च वस्सिता च; तथूपमाहं, [N.108] भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

[R.103] **२. दुतियवलाहकसुत्तं :** १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, वलाहका। कतमे चत्तारो? गज्जिता नो वस्सिता, वस्सिता नो गज्जिता, नेव गज्जिता नो वस्सिता, गज्जिता च वस्सिता च। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो वलाहका। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? गज्जिता नो वस्सिता, वस्सिता नो गज्जिता, नेव गज्जिता नो वस्सिता, गज्जिता च वस्सिता च।

२. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो गज्जिता होति, नो वस्सिता? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति, 'अयं दुक्ख-समुदयो' ति यथाभूतं नप्पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं नप्पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो गज्जिता होति, नो वस्सिता। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, वलाहको गज्जिता, नो वस्सिता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

३. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो वस्सिता होति, नो गज्जिता? इध, भिक्खवे,

---

६. "कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'गर्जने वाला भी तथा बरसने वाला भी' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल जो बोलता भी है, करता भी है; ऐसा पुद्गल यह कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई मेघ गर्जता भी है बरसता भी है; मैं वैसा ही इस पुद्गल को समझता हूँ। (४)

"इस प्रकार, भिक्षुओ! मेघ की उपमा वाले ये चार पुद्गल लोक में होते हैं॥" ●

२. द्वितीय वलाहकसूत्र : : मेघोपम चतुर्विध पुद्गल

१. "भिक्षुओ! मेघ चतुर्विध होते हैं? कौन चार? (१) केवल गर्जने वाले, बरसने वाले नहीं; (२) बरसने वाले ही, गर्जने वाले नहीं; (३) न गर्जने वाले, न बरसने वाले; तथा (४) गर्जने वाले भी और बरसने वाले भी। भिक्षुओ! ये चतुर्विध वलाहक होते हैं। भिक्षुओ! इन मेघों के समान लोक में चतुर्विध पुद्गल भी होते हैं। उनमें (१) कोई गर्जता है, बरसता नहीं; (२) कोई बरसता है, गर्जता नहीं; और (३) कोई न गर्जता है, न बरसता है; तथा (४) कोई गर्जता भी है, बरसता भी है।

२. "कैसे, भिक्षुओ! कोई गर्जता ही है, बरसता नहीं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल सूत्र, गेय, व्याकरण, उदान, इत्युक्तक, जातक, अद्भुतधर्म, वेदल्ल—इस समस्त धर्म (शास्त्र) को पूर्णत: पढ़ चुका है। (परन्तु) वह 'यह दु:ख है'—इसको यथार्थत: नहीं जानता, 'यह दु:खसमुदय है'— ...'यह दु:खनिरोध है'— ...'यह दु:खनिरोधगामी मार्ग है'—इसको यथार्थत: नहीं जानता। ऐसा

एकच्चो पुग्गलो धम्मं न परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं [B.418] दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो वस्सिता होति, नो गज्जिता। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, वलाहको वस्सिता, नो गज्जिता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेव गज्जिता होति, नो वस्सिता? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो नेव धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेव गज्जिता होति, नो वस्सिता। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, वलाहको नेव गज्जिता, नो [N.109] वस्सिता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो गज्जिता च होति वस्सिता च? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो गज्जिता च होति वस्सिता च। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, वलाहको गज्जिता च वस्सिता च; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो वलाहकूपमा पुग्गला [R.104] सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

पुद्गल गर्जता ही है, बरसता नहीं। जैसे भिक्षुओ! वह मेघ केवल गर्जता है बरसता नहीं; इसी प्रकार भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी मैं ऐसा ही मानता हूँ। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'बरसता है, गर्जता नहीं?' यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल धर्म को भली भाँति पूर्णतः अधिगत न किये हो; जैसे सूत्र गेय, व्याकरण ...पूर्ववत्...; (परन्तु) वह 'यह दुःख है'...'यह दुःखसमुदय है'...'यह दुःखनिरोध है'...'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—यह भली भाँति जानता है। ऐसा पुद्गल 'बरसने वाला, न कि गर्जने वाला' कहलाता है। भिक्षुओ! जैसे कोई मेघ बरसता है, गर्जता नहीं, मैं उसी के समान इस पुद्गल को मानता हूँ। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'न गर्जता है, न बरसता है?' यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल सूत्र गेय... धर्म को भी नहीं जानता और न 'यह दुःख है' ...पूर्ववत्... मार्ग को ही यथार्थतः जानता है; भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'न गर्जने वाला न बरसने वाला' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई मेघ न गर्जता है, न बरसता है, मैं इस पुद्गल को भी इसी के समान मानता हूँ। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'गर्जने वाला भी एवं बरसने वाला भी' होता है? कोई पुद्गल सूत्र, गेय ...पूर्ववत्... धर्म को भी जानता है तथा 'यह दुःख है' ...मार्ग को भी जानता है; ऐसा पुद्गल 'गर्जने वाला भी एवं बरसने वाला भी' कहलाता है। जैसे भिक्षुओ! कोई मेघ गर्जने वाला भी एवं बरसने वाला भी होता है; भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी उसी मेघ के समान मानता हूँ। (४)

३. कुम्भसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, कुम्भा। कतमे चत्तारो ? तुच्छो पिहितो, पूरो विवटो, तुच्छो विवटो, पूरो पिहितो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो कुम्भा। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो कुम्भूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? तुच्छो पिहितो, पूरो विवटो, तुच्छो विवटो, पूरो पिहितो।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो तुच्छो होति पिहितो ? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो तुच्छो [B.419] होति पिहितो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, कुम्भो तुच्छो पिहितो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो पूरो होति विवटो ? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो पूरो होति [N.110] विवटो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, कुम्भो पूरो विवटो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो तुच्छो होति विवटो ? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स

''भिक्षुओ! इस प्रकार लोक में ये चार पुद्गल होते हैं॥''

३. कुम्भसूत्र : : घट के समान चार पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! घट (कुम्भ) चतुर्विध होते हैं—१. खाली (रिक्त) घट और ढका हुआ, २. जलपूर्ण घट, परन्तु विना ढका हुआ, ३. खाली घट परन्तु ढका हुआ, और ४. जलपूर्ण घट और वह भी ढका हुआ। भिक्षुओ! इस लोक में, इस घट के समान, पुद्गल भी चार प्रकार के होते हैं।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'रिक्त परन्तु ढका हुआ' होता है ? यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु की वेशभूषा—सङ्घाटि, पात्र चीवर आदि एवं उसकी चाल ढाल आदि सभी कुछ नयनाभिराम एवं श्रद्धास्पद होती है। परन्तु वह 'यह दुःख है' ...'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—इसे यथार्थतः नहीं जानता; ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु 'रिक्त परन्तु ढका हुआ' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! वह घट रिक्त (खाली) परन्तु ढका हुआ होता है उसके समान ही इस पुद्गल को मैं समझता हूँ। (१)

३. ''और, भिक्षुओ! कैसा पुद्गल 'पूर्ण एवं खुला हुआ' होता है ? भिक्षुओ! कोई पुद्गल (भिक्षु) वेशभूषा, रूप, चाल ढाल आदि से तो नयनाभिराम एवं श्रद्धास्पद नहीं होता, परन्तु वह 'यह दुःख है' आदि सत्यचतुष्टय का यथार्थ ज्ञान रखता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'पूर्ण एवं खुला हुआ' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई घट 'जलपूर्ण एवं खुला मुख' होता है; वैसे ही, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'रिक्त एवं ढका हुआ' कहलाता है ? यहाँ, भिक्षुओ! किसी

पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो तुच्छो होति विवटो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, कुम्भो तुच्छो विवटो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो पूरो होति पिहितो? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... [R.105] 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो पूरो होति पिहितो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, कुम्भो पूरो पिहितो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो कुम्भूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

४. उदकरहदसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, उदकरहदा। कतमे चत्तारो? उत्तानो गम्भीरोभासो, गम्भीरो उत्तानोभासो, उत्तानो उत्तानोभासो, गम्भीरो गम्भीरोभासो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो उदकरहदा। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो उदकरहदूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? उत्तानो गम्भीरोभासो, गम्भीरो उत्तानो- [B.420] भासो, उत्तानो उत्तानोभासो, गम्भीरो गम्भीरोभासो।

भिक्षु की न वेशभूषा—सङ्घाटि, पात्र, चीवर आदि एवं रूप, चाल ढाल आदि ही नयनाभिराम एवं श्रद्धास्पद हों; और वह 'यह दुःख है'— 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—इस सत्यचतुष्टय को भी यथार्थतः नहीं जानता। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'रिक्त एवं ढका हुआ' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई घट रिक्त हो और ढका हुआ भी हो, ऐसा ही यह पुद्गल होता है। भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को रिक्त एवं ढके हुए घट के समान ही मानता हूँ। (३)

५. ''और कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'पूर्ण और ढका हुआ' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल की सङ्घाटि, पात्र चीवर आदि वेशभूषा, रूप, चाल-ढाल भी नयनाभिराम हो; तथा वह 'यह दुःख है'... इस सत्यचतुष्टय को भी यथार्थतः जानता हो। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'पूर्ण और ढका हुआ कहलाता है।' जैसे, भिक्षुओ! कोई घट जलपूर्ण भी हो और ढका हुआ भी हो; मैं, भिक्षुओ! इसी के समान इस पुद्गल को मानता हूँ। (४)

''भिक्षुओ! ये चार कुम्भसदृश पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥'' ●

३. उदकह्रदसूत्र : : उदकह्रद के समान चार पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! उदकह्रद (जलाशय) चतुर्विध होते हैं। कौन चार? (१) ऊँचा (जलपूर्ण) हो तथा गम्भीर लगता हो; (२) गम्भीर हो, परन्तु ऊँचा लगता हो; (३) ऊँचा हो और और ऊँचे के समान लगता भी हो; (४) गम्भीर हो तथा गम्भीर के समान लगता भी हो—भिक्षुओ! इस प्रकार जलाशय चतुर्विध होते हैं। इसी तरह, भिक्षुओ! इन जलाशयों के समान ही लोक में पुद्गल भी

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो उत्तानो होति गम्भीरोभासो? इध भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, [N.111] पुग्गलो उत्तानो गम्भीरोभासो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, उदकरहदो उत्तानो गम्भीरोभासो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो गम्भीरो होति उत्तानोभासो? इध भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो गम्भीरो होति उत्तानोभासो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, उदकरहदो गम्भीरो उत्तानोभासो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो उत्तानो होति उत्तानोभासो? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो उत्तानो होति उत्तानोभासो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, उदकरहदो उत्तानो उत्तानोभासो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

चतुर्विध ही होते हैं। कौन से चार? (१) ऊँचा हो तथा गम्भीर भी लगता हो; (२) गम्भीर हो, परन्तु ऊँचा लगता हो; (३) ऊँचा हो तथा ऊँचे के समान लगता हो; एवं (४) गम्भीर हो एवं गम्भीर के समान लगता भी हो।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'ऊँचा परन्तु गम्भीर के समान' लगता है? यहाँ भिक्षुओ! किसी पुद्गल की वेशभूषा, रूप, ईर्यापथ तो नयनाभिराम एवं श्रद्धालु हो; परन्तु वह 'यह दुःख है'... सत्यचतुष्टय को यथार्थतः नहीं जानता। इस तरह, भिक्षुओ! वह पुद्गल ऊँचा तथा गम्भीर के समान लगता है। जैसे भिक्षुओ! वह सरोवर ऊँचा ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को समझता हूँ। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'गम्भीर परन्तु ऊँचा' लगता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल की वेशभूषा... नयनाभिराम न हो, परन्तु उसको 'यह दुःख है'... पूर्ववत्... इस सत्यचतुष्टय का यथार्थ ज्ञान हो, वह 'गम्भीर परन्तु ऊँचा' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई जलाशय गम्भीर परन्तु ऊँचे के तुल्य लगता है, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी इस जलाशय के तुल्य समझता हूँ। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'ऊँचा एवं ऊँचे के समान' लगता है? यहाँ भिक्षुओ! किसी पुद्गल की वेशभूषा... भी नयनाभिराम न हो, तथा वह 'यह दुःख है'... इस सत्यचतुष्टय को भी यथार्थतः न जानता हो। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'ऊँचा और ऊँचे के समान' कहलाता है। जैसे

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो गम्भीरो होति गम्भीरोभासो? इध भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो गम्भीरो होति गम्भीरोभासो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, उदकरहदो गम्भीरो गम्भीरोभासो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो उदकरहदूपमा [B.421] पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

५. अम्बसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अम्बानि। कतमानि चत्तारि? आमं पक्कवण्णि, पक्कं आमवण्णि, आमं आमवण्णि, पक्कं पक्कवण्णि—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि अम्बानि। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो अम्बूपमा पुग्गला सन्तो [N.112] संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? आमो पक्कवण्णी, पक्को आमवण्णी, आमो आमवण्णी, पक्को पक्कवण्णी।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो आमो होति पक्कवण्णी? इध, भिक्खवे, [R.107] एकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे,

---

भिक्षुओ! कोई जलाशय ऊँचा एवं ऊँचे के समान लगता है, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी इस जलाशय के समान ही समझता हूँ। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'गम्भीर एवं गम्भीरावभास' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल की वेशभूषा... नयनाभिराम हो, साथ ही वह 'यह दुःख है'... इस आर्यसत्यचतुष्टय को भी यथार्थतः जानता है। ऐसा पुद्गल, भिक्षुओ! 'गम्भीर एवं गम्भीरावभास' कहलाता है। जैसे भिक्षुओ! कोई जलाशय गम्भीर एवं गम्भीरावभास लगता है; भिक्षुओ! ऐसे पुद्गल को मैं इसी जलाशय के समान समझता हूँ। (४)

''भिक्षुओ! ये चार पुद्गल उक्त चतुर्विध जलाशयों के समान लोक में हैं॥'' ●

५. आम्रसूत्र : : आम्र फलसदृश चार पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में आम्रफल चार तरह के दिखायी देते हैं। कौन से चार? (१) कोई कच्चा होते हुए भी पके हुए के समान लगता है, (२) कोई पका हुआ भी कच्चे के समान, (३) तथा कोई कच्चा कच्चे के समान; एवं (४) कोई पका हुआ पके हुए के समान लगता है। भिक्षुओ! इस प्रकार ये चतुर्विध आम्रफल होते हैं। इसी प्रकार पुद्गल भी इन चार आम्रफलों के समान लोक में चतुर्विध होता है।

२. ''कोई पुद्गल, भिक्षुओं 'कच्चा होते हुए पके के समान' कैसे लगता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल की वेशभूषा, रूप, ईर्यापथ प्रसन्नताधायक एवं नयनाभिराम होते हैं; परन्तु वह 'यह दुःख है'... इस आर्य सत्यचतुष्टय को यथार्थतः नहीं जानता। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'कच्चा परन्तु

पुग्गलो आमो होति पक्कवण्णी। सेय्यथापि तं, भिक्खवे, अम्बं आमं पक्कवण्णि; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो पक्को होति आमवण्णी? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो पक्को होति आमवण्णी। सेय्यथापि तं, भिक्खवे, अम्बं पक्कं आमवण्णि; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो आमो होति आमवण्णी? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स न पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, [B.422] पुग्गलो आमो होति आमवण्णी। सेय्यथापि तं, भिक्खवे, अम्बं आमं आमवण्णि; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो पक्को होति पक्कवण्णी? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स पासादिकं होति अभिक्कन्तं पटिक्कन्तं आलोकितं विलोकितं

पके के समान' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई आम्रफल वस्तुतः कच्चा होते हुए भी पके के समान लगता है, उसी प्रकार, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी इस आम्र के समान समझता हूँ। (१)

३. कैसे, भिक्षुओ! कोई 'पका हुआ कच्चे के समान' लगता है? यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल के वेश, रूप, ईर्यापथ आदि भले ही नयनाभिराम हों; परन्तु वह 'यह दुःख है'... इस आर्य सत्यचतुष्टय को भली भाँति जान चुका है, समझ चुका है। ऐसा पुद्गल 'पका हुआ भी कच्चा' दिखायी देता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई आम्रफल पका हुआ भी कच्चे के समान लगता है; इसी प्रकार, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को इसी आम्रफल के समान समझता हूँ। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'कच्चा तथा कच्चे के समान' ही होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न वेशभूषा आदि से दीखने में सुन्दर लगता है; और न वह 'यह दुःख है'... इस सत्यचतुष्टय को भली भाँति जान पाया है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'कच्चा तथा कच्चे के समान' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! वह आम्रफल है, मैं इस पुद्गल को भी उसी के समान समझता हूँ। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई 'पका एवं पके के समान' ही कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल अपने वेश, रूप, ईर्यापथ से भी लोगों को नयनाभिराम लगता है, तथा 'यह दुःख है'... इस सत्यचतुष्टय के ज्ञान को भी पूर्णतः जानता है। इस तरह का पुद्गल 'पका हुआ तथा पके के समान' कहलाता है। भिक्षुओ! जैसे कोई आम्रफल पका तथा पके के समान ही दिखायी देता है, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी वैसा ही समझता हूँ॥ (४)

सम्मिञ्जितं पसारितं सङ्घाटिपत्तचीवरधारणं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, [N.113] पुग्गलो पक्को होति पक्कवण्णी। सेय्यथापि तं, भिक्खवे, अम्बं पक्कं पक्कवण्णि; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अम्बूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

६. दुतियअम्बसुत्तं[1] ●

७. मूसिकसुत्तं : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, मूसिका। कतमा चतस्सो? गाधं कत्ता नो वसिता, वसिता नो गाधं कत्ता, नेव गाधं कत्ता नो वसिता, गाधं कत्ता च वसिता च—इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो मूसिका। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो मूसिकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? गाधं कत्ता नो वसिता, वसिता नो गाधं कत्ता, नेव गाधं कत्ता च वसिता च।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो गाधं कत्ता होति नो वसिता? इध, [R.108] भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो गाधं कत्ता होति, नो वसिता। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, मूसिका गाधं कत्ता, नो वसिता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

''भिक्षुओ! ये चतुर्विध (आम्रफलोपम) पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥'' ●

६. द्वितीय आम्रसूत्र[2] : : आम्रफलोपम चतुर्विध पुद्गल

[पूर्वसूत्र के समान ही इसका भी विस्तार कर लें।] ●

७. मूषिकसूत्र : : मूषिकोपम चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में चतुर्विध मूषिकाएँ (चुहिया) देखी जाती हैं। कौन चार? (१) गहरा बिल खोदने वाली, परन्तु उसमें न रहनेवाली; (२) उसमें रहनेवाली, परन्तु गहरा बिल न खोदने वाली; (३) न गहरा बिल खोदने वाली, न उसमें रहने वाली; (४) तथा गहरा बिल भी खोदने वाली तथा उसमें रहने वाली भी। भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध मूषिकाएँ होती है।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'गहरा खोदने वाला, परन्तु उसमें न रहने वाला' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल यह सब धर्मश्रवण भी करता है; जैसे—सूत्र, गेय... पूर्ववत्... वेदल्ल; परन्तु वह 'यह दुःख है' ...पूर्ववत्... इस सत्यचतुष्टय को यथार्थतः नहीं जानता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'गहरा खोदने वाला परन्तु उसमें न रहने वाला' कहलाता है। भिक्षुओ! जैसे

---

१. छट्ठं उत्तानत्थमेवाति अट्ठकथायं दस्सितं; पालिपोत्थकेसु पन कत्थचि न दिस्सति।

२. इस सूत्र का पालिपाठ किसी भी संस्करण में नहीं मिला। अट्ठकथाकार भी इसको 'उत्तानत्थ' (स्पष्टार्थ ही है) कहकर आगे बढ़ गये। —स०।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो वसिता होति, नो गाधं कत्ता? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो धम्मं न परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, [B.423] जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो वसिता होति, नो गाधं कत्ता। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, मूसिका वसिता होति, नो गाधं कत्ता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं, पुग्गलं वदामि।

[N.114] ४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेव गाधं कत्ता होति नो वसिता? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो धम्मं न परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं नप्पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं नप्पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेव गाधं कत्ता होति, नो वसिता। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, मूसिका नेव गाधं कत्ता होति, नो वसिता; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो गाधं कत्ता च होति वसिता च? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो गाधं कत्ता च होति वसिता च। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, मूसिका गाधं कत्ता च होति वसिता च; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो मूसिकूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

कोई मूषिका गहरा बिल तो खोदती है परन्तु उसमें रहती नहीं है; भिक्षुओ! इस पुद्गल को भी मैं उसी मूषिका के समान मानता हूँ। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'रहने वाला, परन्तु गहरा न खोदने वाला' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल सुत्त, गेय्य आदि धर्म का भली भाँति अध्ययन नहीं करता; परन्तु 'यह दुःख है'... इस सत्यचतुष्टय को यथार्थतः जानता है। ऐसा पुद्गल 'रहनेवाला परन्तु गहरा न खोदने वाला' होता है। जैसे कोई मूषिका बिल में रहती है, परन्तु उसको गहरा नहीं खोदती; इसी तरह, भिक्षुओ! इस पुद्गल को भी मैं उसी मूषिका के समान मानता हूँ। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई 'न रहता है, न गहरा खोदता है'—कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल न सुत्त, गेय्य... धर्म का गहन अध्ययन करता है, न 'यह दुःख है'... इस सत्यचतुष्टय को ही यथार्ततः जान पाया है। ऐसा पुद्गल 'न रहता है, न गहरा खोदता है'—कहलाता है। जैसे कोई मूषिका न किसी बिल में रहती है, न उसको गहरा खोदती है; भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को इसी मूषिका के समान मानता हूँ। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई 'गहरा खोदने वाला तथा रहने वाला भी' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल सुत्त, गेय्य... धर्म को सुनने वाला भी होता है; तथा 'यह दुःख है'... इस

८. बलीबद्दसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, बलीबद्दा। कतमे चत्तारो? [R.109] सगवचण्डो नो परगवचण्डो, परगवचण्डो नो सगवचण्डो, सगवचण्डो च परगवचण्डो च, नेव सगवचण्डो नो परगवचण्डो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो बलीबद्दा। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो बलीबद्दूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? सगवचण्डो नो परगवचण्डो, परगवचण्डो नो सगवचण्डो, सगवचण्डो च परगवचण्डो च, नेव सगवचण्डो नो परगवचण्डो।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो सगवचण्डो होति, नो परगवचण्डो? [B.424] इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सकपरिसं उब्बेजेता होति, नो परपरिसं। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो सगवचण्डो होति, नो परगवचण्डो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, बलीबद्दो सगवचण्डो, नो परगवचण्डो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो परगवचण्डो होति, नो सगवचण्डो? [N.125] इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो परपरिसं उब्बेजेता होति, नो सकपरिसं। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो परगवचण्डो होति, नो सगवचण्डो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, बलीबद्दो परगवचण्डो, नो सगवचण्डो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

आर्यसत्य को जानने वाला भी होता है। भिक्षुओ! जैसे वह मूषिका गहरा खोदती भी है तथा रहती भी है; उसी प्रकार, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को उस मूषिका के समान मानता हूँ। (४)

''भिक्षुओ! मूषिका के समान ये चार पुद्गल लोक में देखे जाते हैं॥'' •

८. बलीवर्दसूत्र : : वृषभसमान चार पुद्गल

१. भिक्षुओ! ये चार प्रकार के वृषभ होते हैं। कौन से चार? (१) अपने ही समूह की गायों पर क्रूरता दिखाने वाला, दूसरे गौओं के समूह पर क्रूरता न करने वाला; (२) दूसरे गौओं के समूह पर क्रूरता करनेवाला अपने समूह की गौओं पर नहीं, (३) अपने और दूसरे समूहों पर क्रूरता दिखाने वाला; (४) अपने और दूसरे—किसी पर क्रूरता न दिखाने वाला। भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं। इसी तरह, भिक्षुओ! इन वृषभों के समान चतुर्विध पुद्गल भी यहाँ देखे जाते हैं। जैसे— ...पूर्ववत्...।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! पुद्गल 'अपने समूह की गौओं पर क्रूरता करने वाला, पर दूसरे गौओं के समूह पर क्रूरता नहीं करने वाला' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल अपनी परिषद् (साथियों के समूह) को उद्विग्न करने वाला होता है, दूसरों की परिषद् को नहीं। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'अपने झुण्ड की गौओं पर क्रूरता करने वाला, परन्तु दूसरे झुण्ड की गौओं पर क्रूरता न करने वाला' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! वह वृषभ स्वगोचण्ड होता है, परगोचण्ड नहीं; वैसे ही, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को इसी वृषभ के समान मानता हूँ। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'दूसरे समूह पर क्रूरता करने वाला, परन्तु अपने समूह पर क्रूरता न करने वाला' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल दूसरी परिषद् (साथियों के समूह) को उद्विग्न करता है, अपनी परिषद् को नहीं। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'परगोचण्ड होता है, स्वगोचण्ड

४. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो सगवचण्डो च होति परगवचण्डो च? इध भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सकपरिसं उब्बेजेता होति परपरिसं च। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो सगवचण्डो च होति परगवचण्डो च। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, बलीबद्दो सगवचण्डो च परगवचण्डो च; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

५. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेव सगवचण्डो होति नो परगवचण्डो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो नेव सकपरिसं उब्बेजेता होति, नो परपरिसं च। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेव सगवचण्डो होति, नो परगवचण्डो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो बलीबद्दूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

[R.110] ९. **रुक्खसुत्तं** : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, रुक्खा। कतमे चत्तारो? फेग्गु फेग्गुपरिवारो, फेग्गु सारपरिवारो, सारो फेग्गुपरिवारो, सारो सारपरिवारो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो रुक्खा। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो रुक्खूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? फेग्गु फेग्गुपरिवारो, फेग्गु सारपरिवारो, सारो फेग्गुपरिवारो, सारो सारपरिवारो।

[B.425] २. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो फेग्गु होति फेग्गुपरिवारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो; परिसा पिस्स होति दुस्सीला पापधम्मा। एवं

नहीं।' जैसे, भिक्षुओ! कोई वृषभ परगोचण्ड होता है, स्वगोचण्ड नहीं; ऐसे ही, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। (२)

४. "कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'स्वगोचण्ड भी और परगोचण्ड' भी होता है? भिक्षुओ! जो पुद्गल स्व एवं पर—दोनों ही परिषदों को उद्विग्न करता रहता है, वह 'स्वगोचण्ड एवं परगोचण्ड' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! वह वृषभ ...पूर्ववत्... मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। (३)

५. "और कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'न स्वगोचण्ड और न परगोचण्ड' होता है? भिक्षुओ! जो पुद्गल स्व एवं पर—दोनों ही परिषदों को उद्वेजित नहीं करता ...पूर्ववत्... मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। (४)

"इस तरह, भिक्षुओ! लोक में इन बलीवर्दों के समान चतुर्विध पुद्गल होते हैं॥" ●

९. वृक्षसूत्र : : वृक्षतुल्य चतुर्विध पुद्गल

१. "भिक्षुओ! चतुर्विध वृक्ष होते हैं। कौन कौन से? (१) किसी वृक्ष के अन्दर और बाहर त्वचा ही त्वचा (फेग्गु) होती है; (२) किसी के त्वचा कम और लकड़ी (सार) अधिक होती है; (३) किसी में लकड़ी कम और त्वचा अधिक होती है; और (४) किसी में अन्दर बाहर लकड़ी ही लकड़ी होती है। इसी प्रकार, भिक्षुओ! इन वृक्षों के समान लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं; जैसे— ...पूर्ववत्...।

२. "कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'त्वचा ही त्वचा वाला' होता है? कोई पुद्गल स्वयं दुःशील एवं पापकर्मा हो; तथा उसके साथी (परिवार) भी दुःशील एवं पापकर्मा हो। ऐसा पुद्गल 'त्वचा ही

खो, भिक्खवे, पुग्गलो फेग्गु होति फेग्गुपरिवारो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, रुक्खो फेग्गु फेग्गुपरिवारो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो फेग्गु होति सारपरिवारो? इध, भिक्खवे, [N.116] एकच्चो पुग्गलो दुस्सीलो होति पापधम्मो; परिसा च ख्वस्स होति सीलवती कल्याणधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो फेग्गु होति सारपरिवारो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, रुक्खो फेग्गु सारपरिवारो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो सारो होति फेग्गुपरिवारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो; परिसा च ख्वस्स होति दुस्सीला पापधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो सारो होति फेग्गुपरिवारो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, रुक्खो सारो फेग्गुपरिवारो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

५. ''कथ च, भिक्खवे, पुग्गलो सारो होति सारपरिवारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलवा होति कल्याणधम्मो; परिसा पिस्स होति सीलवती कल्याणधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो सारो होति सारपरिवारो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, रुक्खो सारो सारपरिवारो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो रुक्खूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

१०. आसीविससुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, आसीविसा। कतमे चत्तारो?

त्वचा वाला' कहलाता है। भिक्षुओ! ऐसे पुद्गल को मैं उस प्रथम वृक्ष के समान 'त्वचा ही त्वचा वाला' कहता हूँ। (१)

३. ''कोई, भिक्षुओ! पुद्गल 'त्वचा कम परन्तु सार (लकड़ी) अधिक वाला' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वयं दुःशील एवं पापकर्मा हो; किन्तु उसके साथी (परिषद्) शीलवान् एवं कल्याणधर्मा हो। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'त्वचा कम तथा अधिक सार वाला' कहलाता है। भिक्षुओ! जैसे वह वृक्ष त्वचा कम तथा अधिक सार वाला होता है; उसी प्रकार, भिक्षुओ! इस पुद्गल को भी मैं उस वृक्ष के समान ही मानता हूँ। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'स्वयं सारवाला परन्तु उसके साथी त्वचा वाले' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वयं तो सुशील एवं कल्याणधर्मा हो, परन्तु उसके साथी दुःशील एवं पापकर्मरत हों। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'स्वयं सार वाला परन्तु उसके साथी त्वचा वाले' कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! वह वृक्ष सार वाला अधिक परन्तु त्वचा वाला होता है; भिक्षुओ! वैसा ही इस पुद्गल को मैं मानता हूँ। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल अन्दर, बाहर—दोनों ओर से सार वाला होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल स्वयं तथा उसके साथी—दोनों ही शीलवान् एवं कल्याणधर्मा हो। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल उभयपक्ष से 'सार वाला' होता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! मैं उस चतुर्थ कोटि के वृक्ष के तुल्य इस पुद्गल को मानता हूँ। (४)

''भिक्षुओ! इस प्रकार लोक में ये पुद्गल, वृक्ष के समान, चतुर्विध होते हैं॥'' ●

आगतविसो च घोरविसो, घोरविसो न आगतविसो, आगतविसो च घोरविसो च, नेवागत-[R.111] विसो न घोरविसो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो आसीविसा। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो आसीविसूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? [B.426] आगतविसो न घोरविसो, घोरविसो न आगतविसो, आगतविसो च घोरविसो च, नेवागतविसो न घोरविसो।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो आगतविसो होति, न घोरविसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अभिण्हं कुज्झति। सो ख्वस्स कोधो न दीघरत्तं अनुसेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो आगतविसो होति, न घोरविसो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, आसीविसो आगतविसो, न घोरविसो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

[N.117] ३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो घोरविसो होति, न आगतविसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न हेव खो अभिण्हं कुज्झति। सो ख्वस्स कोधो न दीघरत्तं अनुसेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो घोरविसो होति, न आगतविसो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, आसीविसो घोरविसो, न आगतविसो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेवागतविसो होति, न घोरविसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न हेव खो अभिण्हं कुज्झति। सो ख्वस्स कोधो न दीघरत्तं अनुसेति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेवागतविसो होति, न घोरविसो। सेय्यथापि सो, भिक्खवे,

---

१०. आशीविषसूत्र : : सर्प के समान चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! सर्प चार प्रकार के होते हैं। कौन चार? (१) जो मन्दविष वाले हों, घोरविष वाले न हों; (२) जो घोरविष वाले हों, मन्दविष न हों; (३) जो (समय पर) मन्दविष हों, तथा (समय पर) घोरविष हों; (४) जो न मन्दविष हों, न घोरविष हों—भिक्षुओ! ऐसे ये चतुर्विध सर्प होते हैं। इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ पुद्गल भी चतुर्विध होते हैं। कौन से चार? (१) जो मन्दविष हो... पूर्ववत्... चतुर्विध पुद्गल होते हैं।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल मन्दविष कहलाता है, घोरविष नहीं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु निरन्तर क्रुद्ध होता रहता है, परन्तु उसका वह क्रोध बहुत समय तक नहीं ठहरता। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'मन्दविष' ही कहलाता है, 'घोरविष' नहीं। जैसे, भिक्षुओ! कोई सर्प मन्दविष ही होता है, घोरविष नहीं; इसी तरह, भिक्षुओ! इस पुद्गल को मैं मन्दविष ही मानता हूँ, घोरविष नहीं। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल घोरविष कहलाता है, मन्दविष नहीं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल सतत क्रोधी नहीं होता, परन्तु जब वह क्रोध करता है तो उसका वह क्रोध बहुत काल तक ठहरता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल घोरविष कहलाता है, मन्दविष नहीं। जैसे, भिक्षुओ! कोई सर्प घोरविष होता है, मन्दविष नहीं; इसी प्रकार, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को घोरविष ही मानता हूँ, मन्दविष नहीं। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल मन्दविष भी होता है और घोरविष भी? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल सतत क्रोधी भी होता है और उसका वह क्रोध बहुत काल तक ठहरता भी है; भिक्षुओ!

आसीविसो नेवागतविसो, न घोरविसो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो आसीविसूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

वलाहकवग्गो एकादसमो॥

तस्सुद्दानं

द्वे वलाहा कुम्भउदकरहदा, द्वे होन्ति अम्बानि।
मूसिका बलीबद्दा रुक्खा, आसीविसेन ते दसा ति॥ ●

१२. केसिवग्गो

१. केसिसुत्तं : १. अथ खो केसि अस्सदम्मसारथि येन भगवा [B.427,R.112] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो केसिं अस्सदम्मसारथिं भगवा एतदवोच—

२. ''त्वं खोसि, केसि, पञ्ञातो अस्सदम्मसारथी ति। कथं पन त्वं, [N.118] केसि, अस्सदम्मं विनेसी'' ति?

ऐसा पुद्गल घोरविष भी कहलाता है एवं मन्दविष भी। जैसे, भिक्षुओ! कोई सर्प घोरविष भी होता है एवं मन्दविष भी; इसी प्रकार, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी घोरविष एवं मन्दविष—उभयविध मानता हूँ। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न घोरविष होता है, न मन्दविष ही? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न सतत क्रोध करता है, और यदि कभी क्रोध करता भी है तो वह अधिक काल तक ठहरता नहीं। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल न मन्दविष होता है, न घोरविष ही। जैसे, भिक्षुओ! कोई सर्प न मन्दविष होता है, न घोरविष; भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी न मन्दविष एवं न घोरविष ही मानता हूँ। (४)

''भिक्षुओ! लोक में ये पुद्गल उस सर्प के समान चतुर्विध होते हैं॥'' ●

वलाहकवर्ग एकादश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१२. केशिवर्ग

१. केशिसूत्र : : अश्वशिक्षा के समान शिष्यशिक्षा

१. तब कोई केशी नामक अश्वशिक्षक भगवान् के पास आया। आकर, प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए केशी से भगवान् ने पूछा—

२. ''केशिन्! तुम यहाँ एक माने हुए अश्वशिक्षक हो। कैसे, तुम किसी अश्व को शिक्षा देते हो?''

"अहं खो, भन्ते, अस्सदम्मं सण्हेन पि विनेमि, फरुसेन पि विनेमि, सण्हफरुसेन पि विनेमी" ति।

"सचे ते, केसि, अस्सदम्मो सण्हेन विनयं न उपेति, फरुसेन विनयं न उपेति, सण्हफरुसेन विनयं न उपेति, किन्ति नं करोसी" ति?

"सचे ते, केसि, अस्सदम्मो सण्हेन विनयं न उपेति, फरुसेन विनयं न उपेति, सण्हफरुसेन विनयं न उपेति; हनामि नं, भन्ते। तं किस्स हेतु? मा मे आचरियकुलस्स अवण्णो अहोसी ति।

३. "भगवा पन, भन्ते, अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि। कथं पन, भन्ते, भगवा पुरिसदम्मं विनेती" ति?

"अहं खो, केसि पुरिसदम्मं सण्हेन पि विनेमि, फरुसेन पि विनेमि, सण्हफरुसेन पि विनेमि। तत्रिदं, केसि, सण्हस्मिं—इति कायसुचरितं इति कायसुचरितस्स विपाको, इति वचीसुचरितं इति वचीसुचरितस्स विपाको, इति मनोसुचरितं इति मनोसुचरितस्स विपाको, इति देवा, इति मनुस्सा ति। तत्रिदं, केसि, फरुसस्मिं—इति कायदुच्चरितं इति कायदुच्चरितस्स विपाको, इति वचीदुच्चरितं इति वचीदुच्चरितस्स विपाको, इति मनोदुच्चरितं इति मनोदुच्चरितस्स विपाको, इति निरयो, इति तिरच्छानयोनि, इति पेत्तिविसयो ति।

"तत्रिदं, केसि, सण्हफरुसस्मिं—इति कायसुचरितं इति कायसुचरितस्स विपाको,

---

"भन्ते! मैं सिखाये जानेवाले अश्व को (१) सरलता (मृदुता) से भी शिक्षा देता हूँ, (२) कठोरता से भी शिक्षा देता हूँ; तथा (३) सरलता एवं कठोरता—दोनों तरह से शिक्षा देता हूँ।

"केशिन्! यदि कोई अश्व तुम्हारे कहे हुए इन तीनों उपायों से भी शिक्षा ग्रहण न कर पावे, तब तुम उसे शिक्षा देने हेतु क्या उपाय करते हो?

"यदि, भन्ते! वह ढीठ अश्व न सरलता से, न कठोरता से, न सरलता एवं कठोरता से शिक्षा नहीं ग्रहण कर पाता तो मैं उस अश्व को मार देता हूँ कि मेरे आचार्यकुल पर 'अशिक्षकता का कलङ्क' न लगे।

३. "परन्तु भगवान् भी तो लोक में अद्वितीय शिक्षक हैं; आप ऐसे विनेय (शिक्षा देने योग्य) के सम्मुख आने पर उसके साथ क्या व्यवहार करते हैं?"

"केशिन्! मैं ऐसे शिष्य के सम्मुख आने पर उसको सरलता से, कठोरता से, सरलता-कठोरता से—इस प्रकार तीनों प्रकार से शिक्षा देता हूँ। (१) केशिन्! **सरलता (मृदुता) से शिक्षा देना** यह है—मैं उसको समझाता हूँ—'कायसदाचार यह है, वाणी का सदाचार यह है, मन का सदाचार यह है; कायसदाचार का यह फल, यह विपाक (परिणाम) होता है, वाणी के सदाचार का यह फल, यह विपाक होता है, मनुष्यों में यह अच्छाई है' आदि। (२) **कठोरता से शिक्षा देना** केशिन्! यह है—'यह कायदुराचार है, कायदुराचार का यह फल तथा विपाक है... पूर्ववत्... मन के दुराचार का यह फल, यह विपाक है, यह नरकगमन, यह पशुयोनि, यह प्रेतयोनि है आदि आदि।

इति कायदुच्चरितं इति कायदुच्चरितस्स विपाको, इति वचीसुचरितं इति वचीसुचरितस्स विपाको, इति वचीदुच्चरितं इति वचीदुच्चरितस्स विपाको, इति मनोसुचरितं इति मनोसुचरितस्स विपाको, इति मनोदुच्चरितं इति मनोदुच्चरितस्स विपाको, इति देवा, इति मनुस्सा, इति निरयो, इति तिरच्छानयोनि, इति पेत्तिविसयो'' ति।

४. ''सचे ते, भन्ते, पुरिसदम्मो सण्हेन विनयं न उपेति, फरुसेन [B.428, R.113] विनयं न उपेति, सण्हफरुसेन विनयं न उपेति, किन्ति नं भगवा करोती'' ति?

''सचे मे, केसि, पुरिसदम्मो सण्हेन विनयं न उपेति, फरुसेन विनयं न [N.119] उपेति, सण्हफरुसेन विनयं न उपेति, हनामि नं, केसी'' ति।

५. ''न खो, भन्ते, भगवतो पाणातिपातो कप्पति। अथ च पन भगवा एवमाह— 'हनामि, नं केसी''' ति!

''सच्चं, केसि! न तथागतस्स पाणातिपातो कप्पति। अपि च यो पुरिसदम्मो सण्हेन विनयं न उपेति, फरुसेन विनयं न उपेति, सण्हफरुसेन विनयं न उपेति, न तं तथागतो वत्तब्बं अनुसासितब्बं मञ्ञति, ना पि विञ्ञू सब्रह्मचारी वत्तब्बं अनुसासितब्बं मञ्ञन्ति। वधो हेसो, केसि, अरियस्स विनये—यं न तथागतो वत्तब्बं अनुसासितब्बं मञ्ञति, ना पि विञ्ञू सब्रह्मचारी वत्तब्बं अनुसासितब्बं मञ्ञन्ती'' ति।

६. ''सो हि नून, भन्ते, सुहतो होति—यं न तथागतो वत्तब्बं अनुसासितब्बं मञ्ञति, ना पि विञ्ञू सब्रह्मचारी वत्तब्बं अनुसासितब्बं मञ्ञन्ती ति। अभिक्कन्तं, भन्ते, अभिक्कन्तं, भन्ते ...पे०... उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

---

(३) ''**सरलता-कठोरता से शिक्षा देना** यह है—'यह काय सदाचार है ...पूर्ववत्... यह कायदुराचार है... यह नरक है, यह पशुयोनि है, वह प्रेतयोनि है—आदि आदि।''

४. ''यदि भन्ते! वह विनेय (शिक्षार्थी) इन तीनों ही उपायों से शिक्षित न हो सके तो आप क्या उपाय करते हैं?''

''यदि, केशिन्! वह विनेय इन तीनों ही उपायों से शिक्षित नहीं हो पाता तो उसको मैं मार देता हूँ।''

''भन्ते! आप प्राणातिपात (हिंसा) को धर्मविरुद्ध कहते हैं; फिर भी आप कह रहे हैं— 'केशिन्! मैं उसको मार देता हूँ।'

''वस्तुतः, केशिन्! प्राणातिपात तथागत के लिये उचित नहीं है; परन्तु जो विनेय सरलता से, कठोरता से, तथा सरलता एवं कठोरता—इन तीनों ही उपायों से शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाता; तथागत उसको धार्मिक संवाद या उपदेश करने योग्य नहीं समझते, न उसके सब्रह्मचारी ही उसको वैसा समझते हैं। हमारे आर्यविनय के अनुसार, केशिन्! तथागत एवं उसके सब्रह्मचारियों द्वारा उससे धार्मिक संवाद आदि न करना ही उसका वध करना है।''

''हाँ, भन्ते! तब तो वह वस्तुतः हत (मरा हुआ) ही माना जायगा जब तथागत या उसके

२. जवसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। कतमेहि चतूहि? अज्जवेन, जवेन, खन्तिया, सोरच्चेन—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति, राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति।

२. "एवमेव खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि चतूहि? अज्जवेन, जवेन, खन्तिया, सोरच्चेन—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति [R.114] ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥ ●

[N.120,B.429] **३. पतोदसुत्तं** : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, भद्रा अस्साजानीया सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो भद्रो अस्साजानीयो पतोदच्छायं दिस्वा संविज्जति संवेगं आपज्जति—'किं नु खो मं अज्ज अस्सदम्मसारथि कारणं कारेस्सति, किमस्साहं पटिकरोमी' ति! एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो अस्साजानीयो होति। अयं, भिक्खवे, **पठमो** भद्रो अस्साजानीयो सन्तो सविज्जमानो लोकस्मिं।

२. "पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो अस्साजानीयो न हेव खो पतोदच्छायं

सब्रह्मचारी उसको धार्मिक संवाद करने के लिये अयोग्य समझने लगें। भन्ते! आपने बहुत उचित कहा, बहुत उत्तम कहा! ...पूर्ववत्... भगवान् आप मुझको आजसे मरणपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥" ●

२. जवसूत्र : : चार धर्मों से युक्त अश्व

१. "भिक्षुओ! राजा का चार अङ्गों (गुणों) से युक्त कोई श्रेष्ठ, उच्चजाति का अश्व ही राजा की आरोहण (सवारी) के कार्य हेतु या राजा के अन्य किसी उपयोग में आने योग्य होता है। कौन से चार अङ्ग? (१) आर्जव (सरलता एवं सीधा स्वभाव), (२) जव (वेग=घुड़दौड़ में तेज), (३) क्षान्ति (सहनशीलता), एवं (४) सौरत्य (नम्रता)। भिक्षुओ! राजा का अश्व इन चार धर्मों से युक्त होकर ही राजा के आरोहण एवं अन्य कार्यों में उपयुक्त माना जाता है। तथा तब वह राजा का एक अङ्ग माना जाता है।

२. "इसी तरह, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु भी इन चार अङ्गों से युक्त होकर ही साधनायोग्य माना जाता है। कौन चार? (१) आर्जव, (२) जव, (३) क्षान्ति एवं (४) सौरत्य। भिक्षुओ! इन चार अङ्गों से युक्त भिक्षु ही गृहस्थों के घर में बुलाने योग्य ...पूर्ववत्... लोक में एक अद्वितीय पुण्यभूमि माना जाता है॥" ●

३. प्रतोदसूत्र विनेय भिक्षु की चार धर्मों से युक्त अश्व से उपमा

१. "भिक्षुओ! लोक में ये चार प्रकार के उच्च जाति के श्रेष्ठ अश्व दिखायी देते हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई उच्च जाति का श्रेष्ठ अश्व चाबुक की छाया देखकर ही उद्विग्न होकर यह सोचने लगता है—'आज मेरा यह शिक्षक मुझे क्या दण्ड देगा! इसका मैं कैसे प्रतीकार करूँ?'

दिस्वा संविज्जति संवेगं आपज्जति, अपि च खो लोमवेधविद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति—'किं नु खो मं अज्ज अस्सदम्मसारथि कारणं कारेस्सति, किमस्साहं पटिकरोमी' ति! एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो अस्साजानीयो होति। अयं, भिक्खवे, **दुतियो** भद्रो अस्साजानीयो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो अस्साजानीयो न हेव खो पतोदच्छायं दिस्वा संविज्जति संवेगं आपज्जति ना पि लोमवेधविद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति, अपि च खो चम्मवेधविद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति—'किं नु खो मं अज्ज अस्सदम्मसारथि कारणं कारेस्सति, किमस्साहं पटिकरोमी' ति! एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो अस्साजानीयो होति। अयं, भिक्खवे, **ततियो** भद्रो अस्साजानीयो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो अस्साजानीयो न हेव खो पतोदच्छायं दिस्वा संविज्जति संवेगं आपज्जति ना पि लोमवेधविद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति नापि चम्मवेधविद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति, अपि च खो अट्ठिवेधविद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति—'किं नु खो मं अज्ज अस्सदम्मसारथि कारणं कारेस्सति, किमस्साहं [R.115]
पटिकरोमो' ति! एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो अस्साजानीयो होति। अयं, [B.430]
भिक्खवे, **चतुत्थो** भद्रो अस्साजानीयो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं। इमे खो, [N.121]
भिक्खवे, चत्तारो भद्रा अस्साजानीया सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

५. ''एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारोमे भद्रा पुरिसाजानीया सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो सुणाति—

भिक्षुओ! ऐसा भी एक उच्च जाति का श्रेष्ठ अश्व होता है। भिक्षुओ! यह प्रथम प्रकार का अश्व लोक में दिखायी देता है। (१)

२. ''फिर, भिक्षुओ! उनमें एक अश्व ऐसा होता है, जो चाबुक देखकर तो नहीं, किन्तु उसकी हलकी मार से उद्विग्न होकर ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! यह द्वितीय प्रकार का अश्व...। (२)

३. ''फिर, भिक्षुओ! उनमें एक अश्व ऐसा होता है, जो चाबुक को देखकर या उसके स्पर्श से उसकी हलकी मार से तो नहीं, पर तेज मार से उद्विग्न होकर यह सोचने लगता है— ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! यह तृतीय प्रकार का अश्व...। (३)

४. ''फिर, भिक्षुओ! उनमें एक अश्व ऐसा होता है जो चाबुक देखकर... या चाबुक की प्रबल मार खाकर ही, जिससे हड्डियों तक वेदना होने लगती है, उद्विग्न होकर यह सोचने लगता है— ...पूर्ववत्...। यह चतुर्थ प्रकार का अश्व...। भिक्षुओ! ये चतुर्विध अश्व लोक में दिखायी देते हैं। (४)

५. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! लोक में ये चार प्रकार के उच्च जाति के श्रेष्ठ पुरुष भी दिखायी देते हैं। कौन से चार? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई उच्च जाति का श्रेष्ठ पुरुष कहीं, किसी के विषय में सुने—'अमुक ग्राम या कस्बे में कोई स्त्री या पुरुष दु:खी था, मर गया।' वह यह सुनकर उद्विग्न

'अमुकस्मिं नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा पुरिसो वा दुक्खितो वा कालङ्कतो वा' ति। सो तेन संविज्जति, संवेगं आपज्जति। संविग्गो योनिसो पदहति। पहितत्तो कायेन चेव परमसच्चं सच्छिकरोति, पञ्ञाय च अतिविज्झ पस्सति। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, भद्रो अस्साजानीयो पतोदच्छायं दिस्वा संविज्जति संवेगं आपज्जति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं भद्रं पुरिसाजानीयं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो होति। अयं भिक्खवे, **पठमो** भद्रो पुरिसाजानीयो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

६. "पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो न हेव खो सुणाति— 'अमुकस्मिं नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा पुरिसो वा दुक्खितो वा कालङ्कतो वा' ति, अपि च खो सामं पस्सति इत्थिं वा पुरिसं वा दुक्खितं वा कालङ्कतं वा। सो तेन संविज्जति, संवेगं आपज्जति। संविग्गो योनिसो पदहति। पहितत्तो कायेन चेव परमसच्चं सच्छिकरोति, पञ्ञाय च अतिविज्झ पस्सति। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, भद्रो अस्साजानीयो लोमवेधविद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं भद्रं पुरिसाजानीयं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो होति। अयं, भिक्खवे, **दुतियो** भद्रो पुरिसाजानीयो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

७. "पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो न हेव खो सुणाति— 'अमुकस्मिं नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा पुरिसो वा दुक्खितो वा कालङ्कतो वा' ति, ना पि सामं पस्सति इत्थिं वा पुरिसं वा दुक्खितं वा कालङ्कतं वा, अपि च ख्वस्स ञाति वा सालोहितो वा दुक्खितो वा होति कालङ्कतो वा। सो तेन संविज्जति, संवेगं आपज्जति। [B.431,R.116] संविग्गो योनिसो पदहति। पहितत्तो कायेन चेव परमसच्चं सच्छिकरोति, पञ्ञाय च अतिविज्झ पस्सति। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, भद्रो अस्साजानीयो चम्मवेध-

---

एवं संविग्न होकर इस संसार पर सूक्ष्मता से विचार करे। विचार करता हुआ वह परम तत्त्व का साक्षात्कार कर ले, तथा उसका, प्रज्ञा द्वारा, सूक्ष्मता से निरीक्षण करे। जैसे, भिक्षुओ! वह प्रथम प्रकार का अश्व चाबुक की छाया देखकर ही उद्विग्न होकर सोचने लगता है; मैं उसी प्रकार का, भिक्षुओ! इस पुरुष को मानता हूँ। अत:, भिक्षुओ! ऐसा भी एक उच्च जाति का पुरुष होता है। यह हुआ, भिक्षुओ! लोक में प्रथम उच्च जाति का श्रेष्ठ पुरुष। (१)

६. "फिर, भिक्षुओ! यहाँ एक उच्च जाति का श्रेष्ठ पुरुष ऐसा भी होता है जो किसी की जहाँ कहीं हुई मृत्यु को सुनकर तो नहीं, परन्तु किसी स्त्री या पुरुष की मृत्यु स्वयं देखकर उद्विग्न एवं संविग्न होकर ...पूर्ववत्... निरीक्षण करे। जैसे, भिक्षुओ! कोई उच्च जाति का श्रेष्ठ अश्व चाबुक की हलकी मार खाकर ...पूर्ववत्...। यह हुआ, भिक्षुओं द्वितीय प्रकार का पुरुष।... (२)

७. "फिर, भिक्षुओ! यहाँ... पुरुष ऐसा भी होता है जो किसी की दूर से मृत्यु सुनकर या अपने सम्मुख किसी की मृत्यु देखकर तो नहीं; परन्तु वह अपने सम्मुख किसी नाते रिश्तेदार की मृत्यु देखकर उद्विग्न एवं संविग्न होकर ...पूर्ववत्... निरीक्षण करे। जैसे, भिक्षुओ! कोई श्रेष्ठ अश्व

विद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं भद्रं पुरिसाजानीयं [N.122] वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो होति। अयं, भिक्खवे, **ततियो** भद्रो पुरिसाजानीयो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

८. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो न हेव खो सुणाति—'अमुकस्मिं नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा पुरिसो वा दुक्खितो वा कालङ्कतो वा' ति, ना पि सामं पस्सति इत्थिं वा पुरिसं वा दुक्खितं वा कालङ्कतं वा, ना पिस्स ञाति वा सालोहितो वा दुक्खितो वा होति कालङ्कतो वा, अपि च खो सामञ्ञेव फुट्ठो होति सारीरकाहि वेदनाहि दुक्खाहि तिब्बाहि खराहि कटुकाहि असाताहि अमनापाहि पाणहराहि। सो तेन संविज्जति, संवेगं आपज्जति। संविग्गो योनिसो पदहति। पहितत्तो कायेन चेव परमसच्चं सच्छिकरोति, पञ्ञाय च अतिविज्झ पस्सति। सेय्यथापि सो, भिक्खवे, भद्रो अस्साजानीयो अट्ठिवेध-विद्धो संविज्जति संवेगं आपज्जति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं भद्रं पुरिसाजानीयं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो भद्रो पुरिसाजानीयो होति। अयं, भिक्खवे, **चतुत्थो** भद्रो पुरिसाजानीयो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो भद्रा पुरिसाजानीया सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥

४. नागसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्खं गच्छति। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सोता च होति, हन्ता च, खन्ता च, गन्ता च।

२. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सोता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो यमेनं हत्थिदम्मसारथि कारणं कारेति—यदि वा कतपुब्बं यदि वा अकतपुब्बं—तं अट्ठिं कत्वा

चाबुक देखकर या उसकी हलकी चोट खाकर तो नहीं, परन्तु उस चाबुक से चर्म तक कष्ट पहुँचाने वाली मार खाकर उद्विग्न...पूर्ववत्...। यह हुआ, भिक्षुओ! तृतीय प्रकार का पुरुष।... (३)

८. ''फिर, भिक्षुओ! यहाँ... पुरुष... अपने सम्मुख किसी नातेदार रिश्तेदार की मृत्यु देखकर तो नहीं; परन्तु अपनी किसी कठोर शारीरिक वेदना से दुःखित होकर उद्वेग संवेग प्राप्त कर... प्रज्ञा द्वारा सूक्ष्म निरीक्षण कर परम सत्य का साक्षात्कार करता है। जैसे, भिक्षुओ! कोई श्रेष्ठ उच्च जाति का अश्व... हड्डियों तक कष्ट पहुँचाने वाली चाबुक की मार खाकर उद्विग्न होकर ...पूर्ववत्... वैसा ही मैं इस श्रेष्ठ, उच्चकुलीन पुरुष को मानता हूँ। यह, भिक्षुओ! चतुर्थ... पुरुष...। (४)

''भिक्षुओ! ये चार श्रेष्ठ, उच्चकुलीन पुरुष लोक में देखे जाते हैं॥ ●

४. नागसूत्र : : गजराजतुल्य चार पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! इन चार अङ्गों से युक्त राजा का हाथी उसकी सवारी (आरोहण) के योग्य तथा अन्य राजकीय कार्यों के उपयुक्त होता है। इसीलिये यह 'राजा का अङ्ग' कहलाता है। कौन से चार? भिक्षुओ! यह राजा का हाथी (१) श्रोता, (२) हन्ता, (३) क्षन्ता (सहनशील), एवं (४) गन्ता (गतिशील) होता है।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! यह राजा का हाथी '**श्रोता**' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई राजा का

[B.432] मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोतो सुणाति। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सोता होति।

[N.123] ३. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो हन्ता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो [R.117] सङ्गामगतो हत्थिं पि हनति, हत्थारूहं पि हनति, अस्सं पि हनति, अस्सारूहं पि हनति, रथं पि हनति, रथिकं पि हनति, पत्तिकं पि हनति। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो हन्ता होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खन्ता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो खमो होति सत्तिप्पहारानं असिप्पहारानं उसुप्पहारानं फरसुप्पहारानं भेरिपणव-सङ्खतिणवनिन्नादसद्दानं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खन्ता होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो गन्ता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो यमेनं हत्थिदम्मसारथि दिसं पेसेति—यदि वा गतपुब्बं यदि वा अगतपुब्बं—तं खिप्पमेव गन्ता होति। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो गन्ता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्खं गच्छति।

६. "एवमेव खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सोता च होति, हन्ता च, खन्ता च, गन्ता च।

७. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सोता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु तथागतप्प-

---

हाथी शिक्षक द्वारा प्राप्त पहली या वर्तमान यातना या दण्ड पर सावधानीपूर्वक मन से विचार करता है। यों, उस पर विचार कर, कानों से ध्यान देकर सुनता है। अत: ऐसा हाथी 'श्रोता' कहलाता है। (१)

३. "कैसे, भिक्षुओ! वह (हाथी) '**हन्ता**' कहलाता है? भिक्षुओ! वह हाथी युद्धक्षेत्र में पहुँचकर विरोधी के हाथी को भी तथा उसके महावत को एवं विरोधी के घोड़ों को, घुड़सवारों को, रथ को, रथी को तथा पैदल सैनिकों को भी मारता है...। (२)

४. "कैसे, भिक्षुओ! वह (हाथी) '**क्षन्ता**' कहलाता है? भिक्षुओ! वह राजा का हाथी युद्ध में जाने पर वहाँ उस पर हुए भाले, तलवार, बाण, फरसा आदि के प्रहारों को, तथा वहाँ हो रहे ढोल, दमामा, शङ्ख आदि के कर्णकठोर शब्दों को सहन करने वाला होता है।...। (३)

५. "कैसे, भिक्षुओ! वह राजा का हाथी '**गन्ता**' कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! वह राजा का हाथी शिक्षक द्वारा जिस किसी भी दिशा में भेजा जाता है, भले ही वहाँ पहले गया हो या न गया हो, वहाँ वह तत्काल चला जाता है। ऐसा वह राजा का हाथी 'गन्ता' कहलाता है। (४)

"इस प्रकार, भिक्षुओ! चार अङ्गों से युक्त वह हाथी राजा के आरोहणयोग्य तथा अन्य कार्यों के उपयुक्त होता है। इसलिये वह... 'राजा अङ्ग' कहलाता है।

"इसी तरह, भिक्षुओ! कोई भिक्षु भी चार धर्मों से युक्त होने पर... लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि होता है। कौन चार धर्म? यहाँ, भिक्षुओ! वह श्रोता, हन्ता, खन्ता एवं गन्ता होता है।

वेदिते धम्मविनये देसियमाने अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बचेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोतो धम्मं सुणाति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सोता होति।

८. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु हन्ता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नं कामवितक्कं नाधिवासेति पजहति विनोदेति हनति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति, उप्पन्नं ब्यापादवितक्कं ...पे०... उप्पन्नं विहिंसावितक्कं ...पे०... उप्पन्नुप्पन्ने पापके अकुसले धम्मे नाधिवासेति पजहति विनोदेति हनति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। एवं [N.124,B.433] खो, भिक्खवे, भिक्खु हन्ता होति।

९. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु खन्ता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय पिपासाय, डंसमकसवातातपसिरिंसपसम्फस्सानं दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं [R.118] कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासकजातिको होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु खन्ता होति।

१०. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु गन्ता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु यायं दिसा अगतपुब्बा इमिना दीघेन अद्धुना यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधिपटिनिस्सग्गो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं, तं खिप्पञ्ञेव गन्ता होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु गन्ता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥ ●

---

७. "कैसे, भिक्षुओ! कौन भिक्षु 'श्रोता' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! जो भिक्षु तथागतोपदिष्ट धर्म का व्याख्यान ध्यानपूर्वक सुनते हुए तदनुसार अपने चित्त को निगृहीत करता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु '**श्रोता**' कहलाता है। (१)

८. "भिक्षुओ! कौन भिक्षु 'हन्ता' कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ वह भिक्षु स्वचित्त में उत्पन्न कामवितर्क को... व्यापादवितर्क को... विहिंसावितर्क को स्वीकार नहीं करता, त्याग देता है, नष्ट कर देता है, दबा देता है, अभावग्रस्त कर देता है। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु '**हन्ता**' कहलाता है। (२)

९. "भिक्षुओ! कौन भिक्षु 'क्षन्ता' कहलाता है? जो भिक्षु शीत, उष्ण, भूख, प्यास, मच्छर-मक्खी का दंश, दूसरों को कहे हुए अपशब्द, उत्पन्न तीव्र कटु अप्रिय शारीरिक एवं प्राणघातक वेदनाएँ सहन करता रहता है। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु '**क्षन्ता**' कहलाता है। (३)

१०. "भिक्षुओ! कौन भिक्षु 'गन्ता' कहलाता है? भिक्षुओ! जो भिक्षु जिस दिशा में वह पहले कभी न गया हो, उस दिशा के लम्बे मार्ग पर चलता हुआ, सभी संस्कारों के शामक, सभी चित्तविकारों का त्याग करा देने वाले, तृष्णाक्षयकारक, वैराग्यमय एवं दुःखनिरोधक निर्वाण के मार्ग पर चल देता है; वही भिक्षु '**गन्ता**' कहलाता है। (४)

"ऐसे, भिक्षुओ! वह चार धर्मों से समन्वागत भिक्षु गृहस्थों द्वारा स्वगृहों में स्वागत-योग्य एवं लोक के लिये अद्वितीय पुण्य का क्षेत्र होता है॥" ●

५. ठानसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, ठानानि। कतमानि चत्तारि? अत्थि, भिक्खवे, ठानं अमनापं कातुं; तं च कयिरमानं अनत्थाय संवत्तति। अत्थि, भिक्खवे, ठानं अमनापं कातुं; तं च कयिरमानं अत्थाय संवत्तति। अत्थि, भिक्खवे, ठानं मनापं कातुं; तं च कयिरमानं अनत्थाय संवत्तति। अत्थि, भिक्खवे, ठानं मनापं कातुं; तं च कयिरमानं अत्थाय संवत्तति।

२. ''तत्र, भिक्खवे, यमिदं ठानं अमनापं कातुं; तं च कयिरमानं अनत्थाय संवत्तति—इदं, भिक्खवे, ठानं उभयेनेव न कत्तब्बं मञ्ञति। यम्पिदं ठानं अमनापं कातुं; इमिना पि नं न कत्तब्बं मञ्ञति। यम्पिदं ठानं कयिरमानं अनत्थाय संवत्तति; इमिना पि नं न कत्तब्बं मञ्ञति। इदं, भिक्खवे, ठानं उभयेनेव न कत्तब्बं मञ्ञति।

[N.125] ३. ''तत्र, भिक्खवे, यमिदं ठानं अमनापं कातुं; तं च कयिरमानं अत्थाय संवत्तति—इमस्मिं, भिक्खवे, ठाने बालो च पण्डितो च वेदितब्बो पुरिसत्थामे पुरिसविरिये [B.434] पुरिसपरक्कमे। न, भिक्खवे, बालो इति पटिसञ्चिक्खति—'किञ्चा पि खो इदं [R.119] ठानं समनापं कातुं; अथ चरहिदं ठानं कयिरमानं अत्थाय संवत्तती' ति। सो तं ठानं न करोति। तस्स तं ठानं अकयिरमानं अनत्थाय संवत्तति। पण्डितो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'किञ्चा पि खो इदं ठानं अमनापं कातुं; अथ चरहिदं ठानं कयिरमानं अत्थाय संवत्तती' ति। सो तं ठानं करोति। तस्स तं ठानं कयिरमानं अत्थाय संवत्तति।

४. ''तत्र, भिक्खवे, यमिदं ठानं मनापं कातुं; तं च कयिरमानं अनत्थाय

---

५. स्थानसूत्र : : चतुर्विध स्थान

१. ''भिक्षुओ! चार स्थान होते हैं। कौन से चार? (१) कोई स्थान मनोनुकूल नहीं होता, उसका उपयोग करने से वह हितकारी नहीं होता; (२) कोई स्थान यद्यपि मनोनुकूल नहीं होता, परन्तु उपयोग हितकारी होता है; (३) कोई स्थान यद्यपि मनोनुकूल होता है परन्तु उसका उपयोग हितकारी नहीं होता; (४) कोई स्थान मनोनुकूल होता है तथा उसका उपयोग भी हितकारी होता है।

२. ''वहाँ, भिक्षुओ! जो स्थान मनोनुकूल नहीं हैं तथा जहाँ रहना अनर्थकारी होता है—ऐसे स्थान का उपयोग दोनों ही प्रकार से उचित नहीं होता; और जो स्थान एक अंश में मनोनुकूल है, उसका उपयोग भी उचित नहीं; एवं जो स्थान मनोनुकूल हो, परन्तु जहाँ रह कर किया हुआ कार्य अनर्थकारी हो, उसका उपयोग भी उचित नहीं कहलाता। यों, इसका उपयोग दोनों ही प्रकार से उचित नहीं। (१)

३. ''वहाँ, भिक्षुओ! जो स्थान मनोनुकूल नहीं; परन्तु उसका कार्य उपयोगी सिद्ध होता हो—उसके विषय में बुद्धिमान् और मूर्ख के भिन्न विचार होते हैं। वहाँ मूर्ख यह नहीं सोचता—'यद्यपि यह स्थान मेरे अनुकूल नहीं है, परन्तु यहाँ किया कार्य तो हितकारी सिद्ध हो ही सकता है।' और वह उस स्थान का उपयोग नहीं करता। बुद्धिमान् यों सोचता है—'यद्यपि यह स्थान अनुकूल नहीं है, परन्तु यहाँ किया कार्य मेरे लिये उपयोगी हो सकता है।' और वह उस स्थान का

संवत्तति—इमस्मिंपि, भिक्खवे, ठाने बालो च पण्डितो च वेदितब्बो पुरिसत्थामे पुरिसविरिये पुरिसपरक्कमे। न, भिक्खवे, बालो इति पटिसञ्चिक्खति—'किञ्चा पि खो इदं ठानं मनापं कातुं; अथ चरहिदं ठानं कयिरमानं अनत्थाय संवत्तती' ति। सो तं ठानं करोति। तस्स तं ठानं कयिरमानं अनत्थाय संवत्तति। पण्डितो च खो, भिक्खवे, इति पटिसञ्चिक्खति—'किञ्चा पि खो इदं ठानं मनापं कातुं; अथ चरहिदं ठानं कयिरमानं अत्थाय संवत्तती' ति। सो तं ठानं न करोति। तस्स तं ठानं अकयिरमानं अत्थाय संवत्तति।

५. ''तत्र, भिक्खवे, यमिदं ठानं मनापं कातुं, तं च कयिरमानं अत्थाय संवत्तति—इदं, भिक्खवे, ठानं उभयेनेव कत्तब्बं मञ्ञति। यम्पिदं ठानं मनापं कातुं, इमिना पि नं कत्तब्बं मञ्ञति; यम्पिदं ठानं कयिरमानं अत्थाय संवत्तति, इमिना पि नं कत्तब्बं मञ्ञति। इदं, भिक्खवे, ठानं उभयेनेव कत्तब्बं मञ्ञति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि ठानानी'' ति॥ ●

६. अप्पमादसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, ठानेहि अप्पमादो करणीयो। कतमेहि चतूहि? कायदुच्चरितं, भिक्खवे, पजहथ, कायसुचरितं भावेथ; तत्थ च मा पमादत्थ। वचीदुच्चरितं भिक्खवे, पजहथ, वचीसुचरितं भावेथ; तत्थ च मा पमादत्थ। मनोदुच्चरितं, भिक्खवे, पजहथ, मनोसुचरितं भावेथ; तत्थ च मा पमादत्थ। मिच्छादिट्ठिं, [N.126] भिक्खवे. पजहथ, सम्मादिट्ठिं भावेथ, तत्थ च मा पमादत्थ।

उपयोग कर लेता है। उसके द्वारा उस स्थान का उपयोग किया हुआ उसके लिये हितकारी सिद्ध होता है। (२)

४. ''और भिक्षुओ! वहाँ जो स्थान मनोनुकूल होता है, उसपर किया हुआ कार्य हितकर नहीं हो पाता। इस विषय में भी पण्डित और मूर्ख के विचार भिन्न होते हैं। वहाँ मूर्ख यह नहीं सोचता है—'यद्यपि यह स्थान अनुकूल है, पर यहाँ कार्य हितकर नहीं होगा।' यह उस स्थान पर जो कार्य करता है वह उसके लिये अहितकर हो जाता है। पण्डित यह सोचता है—'यद्यपि यह स्थान अनुकूल है, परन्तु यहाँ किया हुआ कर्म अहितकर हो सकता है।' और वह उसका कोई उपयोग नहीं करता। यों उस स्थान का अनुपयोग ही उसके लिये हितकर सिद्ध हो जाता है। (३)

५. ''और, भिक्षुओ! जो स्थान अनुकूल हो, और कार्यसिद्धि में भी सहायक हो; ऐसे स्थान का उपयोग दोनों ही अंशों में करना चाहिये।'यह स्थान अनुकूल है'—इस अंश में भी, तथा 'यहाँ कार्य पूर्ण होगा'—इस अंश में भी। यों दोनों ही अंशों में इसका उपयोग उचित ही है। (४)

''यों, भिक्षुओ! चार प्रकार के स्थान होते हैं॥'' ●

६. अप्रमादसूत्र : : चार बातों में अप्रमाद

१. ''भिक्षुओ! इन चार बातों में प्रमाद (असावधानी) नहीं करना चाहिये। कौन सी चार? भिक्षुओ! (१) काया से दुराचार छोड़ देना चाहिये, काया से सदाचार ही करना चाहिये; यहाँ प्रमाद नहीं करना चाहिये। (२) वाणी से दुराचार...। (३) मन से दुराचार नहीं करना चाहिये, मन से सुचरित ही करना चाहिये; इसमें प्रमाद नहीं करना चाहिये। (४) मिथ्यादृष्टि छोड़ देनी चाहिये, सम्यग्दृष्टि की ही भावना करनी चाहिये; यहाँ प्रमाद नहीं करना चाहिये।

[B.435,R.120] २. ''यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो कायदुच्चरितं पहीनं होति कायसुचरितं भावितं, वचीदुच्चरितं पहीनं होति वचीसुचरितं भावितं, मनोदुच्चरितं पहीनं होति मनोसुचरितं भावितं, मिच्छादिट्ठि पहीना होति सम्मादिट्ठि भाविता, सो न भायति सम्परायिकस्स मरणस्सा'' ति॥ ●

७. आरक्खसुत्तं : १. ''चतूसु, भिक्खवे, ठानेसु अत्तरूपेन अप्पमादो सति चेतसो आरक्खो करणीयो। कतमेहि चतूहि? 'मा मे रजनीयेसु धम्मेसु चित्तं रज्जी' ति अत्तरूपेन अप्पमादो सति चेतसो आरक्खो करणीयो; 'मा मे दोसनीयेसु धम्मेसु चित्तं दुस्सी' ति अत्तरूपेन अप्पमादो सति चेतसो आरक्खो करणीयो; 'मा मे मोहनीयेसु धम्मेसु चित्तं मुय्ही' ति अत्तरूपेन अप्पमादो सति चेतसो आरक्खो करणीयो; 'मा मे मदनीयेसु धम्मेसु चित्तं मज्जी' ति अत्तरूपेन अप्पमादो सति चेतसो आरक्खो करणीयो।

२. ''यतो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो रजनीयेसु धम्मेसु चित्तं न रज्जति वीतरागत्ता, दोसनीयेसु धम्मेसु चित्तं न दुस्सति वीतदोसत्ता, मोहनीयेसु धम्मेसु चित्तं न मुय्हति वीतमोहत्ता, मदनीयेसु धम्मेसु चित्तं न मज्जति वीतमदत्ता, सो न छम्भति न कम्पति न वेधति न सन्तासं आपज्जति, न च पन समणवचनहेतु पि गच्छती'' ति॥ ●

८. संवेजनीयसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयानि संवेजनीयानि ठानानि। कतमानि चत्तारि? 'इध तथागतो जातो' ति, भिक्खवे,

---

२. ''भिक्षुओ! जिस भिक्षु का कायदुराचार, वाग्दुराचार एवं मनोदुराचार—तीनों प्रहीण हो चुके हैं, तथा जो साथ ही कायसुचरित, वाक्सुचरित एवं मनःसुचरित की भावना करता है; जिसकी मिथ्यादृष्टि भी प्रहीण हो चुकी है, जो सम्यग्दृष्टि की भावना करता है वह परलोकगमन से भय नहीं मानता॥'' ●

७. आरक्षसूत्र : : इन चार बातों में भी अप्रमाद

१. ''भिक्षुओ! चार स्थानों में (भिक्षु को) 'आत्म' रूप से अप्रमाद, स्मृति एवं चित्त की रक्षा करनी चाहिये। किन चार में? (१) 'रागयोग्य धर्मों में मेरा चित्त आसक्त न हो'—इस स्थान में 'आत्म' रूप से अप्रमाद, स्मृति एवं चित्त की रक्षा करनी चाहिये; (२) द्वेषणीय धर्मों में...; (३) मोहनीय धर्मों में...; (४) 'प्रमादयोग्य धर्मों में मेरा चित्त प्रमत्त न हो'—इस स्थान में 'आत्म' रूप से अप्रमाद, स्मृति एवं चित्त की रक्षा करनी चाहिये।

२. ''भिक्षुओ! जिस भिक्षु का चित्त वीतराग होने से रागमय धर्मों में आसक्त नहीं होता, वीतद्वेष होने से द्वेषमय धर्मों में... वीतमोह होने से मोहमय धर्मों में आसक्त नहीं होता; वीतमद होने से मदनीय धर्मों में आसक्त नहीं होता; वह भिक्षु न कभी किसी कारण स्तब्ध होता है, न काँपता है, न किसी से विद्ध होता है, न त्रास मानता है तथा कभी वह श्रमण धर्म से बाहर नहीं जाता॥'' ●

८. संवेजनीयसूत्र : : चार दर्शनीय एवं धर्मप्रेरक स्थान

१. ''भिक्षुओ! किसी श्रद्धालु कुलपुत्र के ये चार दर्शनीय एवं प्रेरणादायक स्थान हैं। कौन से चार? (१) 'यहाँ तथागत ने जन्म लिया था'—भिक्षुओ! किसी कुलपुत्र के लिये यह प्रथम

सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं। 'इध तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुद्धो' ति, भिक्खवे, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं। 'इध तथागतो अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तेसी' ति, भिक्खवे, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं। 'इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बानधातुया परिनिब्बुतो' ति भिक्खवे, सद्धस्स कुलपुत्तस्स दस्सनीयं संवेजनीयं ठानं। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि सद्धस्स कुलपुत्तस्स [N.121] दस्सनीयानि सेवजनीयानि ठानानी'' ति॥ ●

९. पठमभयसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, भयानि। कतमानि चत्तारि? जातिभयं, जराभयं, ब्याधिभयं, मरणभयं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि भयानी'' ति॥●

१०. दुतियभयसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, भयानि। कतमानि चत्तारि? अग्गिभयं, उदकभयं, राजभयं, चोरभयं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि भयानी'' ति॥●

केसिवग्गो द्वादसमो॥

तस्सुद्दानं

केसि जवो पतोदो च, नागो ठानेन पञ्चमं।
अप्पमादो च आरक्खो, संवेजनीयं च द्वे भया ति॥ ●

दर्शनीय तथा प्रेरक स्थान है। (२) 'यहाँ तथागत ने अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि प्राप्त की थी'—यह द्वितीय दर्शनीय तथा प्रेरक स्थान है। (३) 'यहाँ तथागत ने अद्वितीय धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था' यह तृतीय दर्शनीय तथा प्रेरक स्थान है। (४) 'यहाँ तथागत अनुपादिशेष (अशेष चित्त विकारों का निरोध) निर्वाणधातु से परिनिर्वृत्त हुए थे।'—यह किसी श्रद्धालु कुलपुत्र के लिये चतुर्थ दर्शनीय एवं प्रेरक स्थान है। भिक्षुओ! ये चार स्थान किसी भी श्रद्धालु कुलपुत्र के लिये दर्शनीय एवं प्रेरक स्थान हैं॥'' ●

९. प्रथम भयसूत्र : : चतुर्विध भय

१. ''भिक्षुओ! ये चार भय कहलाते हैं। कौन से चार? (१) जन्मभय, (२) जराभय, (३) व्याधिभय एवं (४) मरणभय—भिक्षुओ! ये चार भय कहलाते हैं॥'' ●

१०. द्वितीय भयसूत्र : : चतुर्विध भय

१. ''भिक्षुओ! ये चार भय कहलाते हैं। कौन चार? (१) अग्निभय, (२) जलभय, (३) राजभय, (४) चोरभय—भिक्षुओ! ये चार भय होते हैं।'' ●

केशिवर्ग द्वादश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. केशिसूत्र, २. जवसूत्र, ३. प्रतोदसूत्र, ४. नागसूत्र, ५. स्थानसूत्र, ६. अप्रमादसूत्र, ७. आरक्षसूत्र, ८. संवेजनीयसूत्र, ९. प्रथम भयसूत्र, एवं १०. द्वितीय भयसूत्र॥ ●

१३. भयवग्गो

१. अत्तानुवादसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, भयानि। कतमानि चत्तारि? अत्तानुवादभयं, परानुवादभयं, दण्डभयं, दुग्गतिभयं।

२. ''कतमं च, भिक्खवे, अत्तानुवादभयं? इध, भिक्खवे, एकच्चो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं चेव खो पन कायेन दुच्चरितं चरेय्यं, वाचाय दुच्चरितं चरेय्यं, मनसा दुच्चरितं चरेय्यं, किञ्च तं यं मं अत्ता सीलतो न उपवदेय्या' ति! सो अत्तानुवाद- [B.437, N.128] भयस्स भीतो कायदुच्चरितं पहाय कायसुचरितं भावेति, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेति, मनोदुच्चरितं पहाय मनोसुचरितं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **अत्तानुवादभयं**।

[R.122] ३. ''कतमं च, भिक्खवे, परानुवादभयं? इध, भिक्खवे, एकच्चो इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं चेव खो पन कायेन दुच्चरितं चरेय्यं, वाचाय दुच्चरितं चरेय्यं, मनसा दुच्चरितं चरेय्यं, किञ्च तं कम्मं परे सीलतो न उपवदेय्युं' ति! सो परानुवादभयस्स भीतो कायदुच्चरितं पहाय कायसुचरितं भावेति, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेति, मनोदुच्चरितं पहाय मनोसुचरितं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **परानुवादभयं**।

४. ''कतमं च, भिक्खवे, दण्डभयं? इध, भिक्खवे, एकच्चो पस्सति चोरं

---

१३. भयवर्ग

१. आत्मानुवादसूत्र : : चतुर्विध भय

१. ''भिक्षुओ! ये चार भय हैं। कौन चार? (१) आत्मानुवादभय, (२) परानुवादभय, (३) दण्डभय, एवं (४) दुर्गतिभय।

२. ''भिक्षुओ! इनमें यह **आत्मानुवादभय** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई यह विचार करता है—'यदि मैं काया से दुराचार करूँगा, वाणी से... मन से दुराचार करूँगा तो ऐसा न हो कि उस समय मेरा मन ही मुझपर आचारविषयक आरोप लगाना आरम्भ कर दे।' अतः वह अपने मन के इस आरोप-भय से भीत होकर कायिक दुराचार, वाचिक दुराचार एवं मानसिक दुराचार छोड़कर कायिक सदाचार, वाचिक सदाचार एवं मानसिक सदाचार में तत्पर होता है और अपने चित्त की शुद्धि स्वीकार करता है। इसे कहते हैं, भिक्षुओ! 'आत्मानुवादभय'। (१)

३. '' और, भिक्षुओ! यह **परानुवादभय** क्या कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई यह चिन्तन करता है—'यदि मैं काया से दुराचार ...पूर्ववत्... उस समय दूसरे लोग मेरा आचार देखकर मुझपर दुराचारी होने का आरोप करने लगें। अतः वह दूसरों द्वारा किये जाने वाले इस आरोप से भयभीत होकर कायिक वाचिक एवं मानसिक सदाचार का पालन करने लगे। इस तरह वह अपने चित्त को शुद्ध करता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—परानुवादभय।' (२)

४. '' और, भिक्षुओ! **दण्डभय** क्या होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई किसी ऐसे चौर अपराधी

आगुचारिं, राजानो गहेत्वा विविधा कम्मकरणा कारेन्ते, कसाहि पि ताळेन्ते, वेत्तेहि पि ताळेन्ते, अड्ढदण्डकेहि पि ताळेन्ते, हत्थं पि छिन्दन्ते, पादं पि छिन्दन्ते, हत्थपादं पि छिन्दन्ते, कण्णं पि छिन्दन्ते, नासं पि छिन्दन्ते, कण्णनासं पि छिन्दन्ते, बिलङ्गथालिकं पि करोन्ते, सङ्खमुण्डिकं पि... राहुमुखं पि करोन्ते, जोतिमालिकं पि करोन्ते, हत्थ-पज्जोतिकं पि करोन्ते, एरकवत्तिकं पि करोन्ते, चीरकवासिकं पि करोन्ते, एणेय्यकं पि करोन्ते, बळिसमंसिकं पि करोन्ते, कहापणकं पि करोन्ते, खारापतच्छिकं पि करोन्ते, पलिघपरिवत्तिकं पि करोन्ते, पलालपीठकं पि करोन्ते, तत्तेन पि तेलेन ओसिञ्चन्ते, सुनखेहि पि खादापेन्ते, जीवन्तं पि सूले उत्तासेन्ते, असिना पि सीसं छिन्दन्ते। तस्स एवं होति—'यथारूपानं खो पापकानं कम्मानं हेतु चोरं आगुचारिं राजानो गहेत्वा विविधा कम्मकरणा कारेन्ति, कसाहि पि ताळेन्ति ...पे०... असिना पि सीसं छिन्दन्ति, अहं चेव खो पन एवरूपं पापकम्मं करेय्यं, मं पि राजानो गहेत्वा एवरूपा विविधा [B.438] कम्मकरणा कारेय्युं ... असिना पि सीसं छिन्देय्युं' ति। सो दण्डभयस्स भीतो न परेसं पाभतं विलुम्पन्तो चरति। कायदुच्चरितं पहाय ...पे०... सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **दण्डभयं**।

५. ''कतमं च, भिक्खवे, दुग्गतिभयं? इध, भिक्खवे, एकच्चो इति [R.123]

को देखे, जिसे राजपुरुष दण्ड दे रहे हों; जैसे—कोड़ों से पीट रहे हों, या बेतों से पीट रहे हों, चाबुक मार रहे हों, हाथ कटवा रहे हों, पैर कटवा रहे हों, हाथ, पैर दोनों कटवा रहे हों, कान कटवा रहे हों, नाक कटवा रहे हों, कान, नाक दोनों कटवा रहे हों, उसकी खोपड़ी (शिर:कपाल) फाड़कर उसमें उष्ण गोलक रख देते हों, फिर शिर की चमड़ी हटाकर शङ्ख के समान चिकनी कर देते हों, उसके मुख को कानों तक फाड़ देते हों, समस्त शरीर पर तैल भरा वस्त्र लपेटकर उसे जला देते हों, एक हाथ पर कपड़ा लपेट कर जला देते हों, उसकी ग्रीवा तक ऊपर की चर्म खींचकर उसको राजमार्गों पर घसीटते हों, ऊपर की चर्म खींचकर कटि तक छोड़ देते हों, या नीचे से चर्म खींचकर ग्रीवा तक छोड़ देते हों, हाथ पैरों में कील ठोककर उसे जमीन पर गिराकर जलाते हों, लोहे की तीखी शलाकाएँ मुख में डाल डालकर निकालते हों, समस्त शरीर से मांस के वृत्ताकार खण्ड काटते हों, शरीर को स्थान स्थान पर काटकर उसमें लवण भर देते हों, दोनों कानों में कील ठोककर उसके सहारे पृथ्वी में गाड़कर घुमाते हों, लौहमुद्गरों से उसके हाथ पैरों की हड्डी चूर चूर करते हों, या उसको उष्ण तैल-कटाह में डाल देते हों, कुत्तों से नुचवाते हों, जीवित ही शूली पर चढ़ा देते हों, या तलवार से उसका शिर काट देते हों। उसको इस प्रकार दण्डित होते हुए देख कर उसके मन में यह विचार होता है—'जैसे ये राजपुरुष विविध पापमय अपराधों के कारण इस चौर को यह दण्ड दे रहे हैं, कोड़ों से भी पीट रहे हैं ...पूर्ववत्... तलवार से भी शिर काट रहे हैं; यदि मैं भी ऐसा पापमय अपराध करूँगा तो मुझे भी ये विविध यातनाएँ मिल सकती हैं।' इस प्रकार वह दण्डभय से भीत होकर दूसरों का उपयोगी द्रव्य नहीं चुराता। तथा कायदुराचार... त्यागकर स्वयं को आचार की दृष्टि से शुद्ध स्वच्छ बना लेता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—'दण्डभय'। (३)

पटिसञ्चिक्खति—'कायदुच्चरितस्स खो पापको विपाको अभिसम्परायं, वचीदुच्चरितस्स [N.129] पापको विपाको अभिसम्परायं, मनोदुच्चरितस्स पापको विपाको अभिसम्परायं। अहं चेव खो पन कायेन दुच्चरितं चरेय्यं, वाचाय दुच्चरितं चरेय्यं, मनसा दुच्चरितं चरेय्यं, किञ्च तं याहं न कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जेय्यं' ति! सो दुग्गतिभयस्स भीतो कायदुच्चरितं पहाय कायसुचरितं भावेति, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेति, मनोदुच्चरितं पहाय मनोसुचरितं भावेति, सुद्धं अत्तानं परिहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **दुग्गतिभयं**।

"इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि भयानी" ति॥ ●

२. ऊमिभयसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, भयानि उदकोरोहन्तस्स पाटिकङ्खितब्बानि। कतमानि चत्तारि? ऊमिभयं, कुम्भीलभयं, आवट्टभयं, सुसुकाभयं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि भयानि उदकोरोहन्तस्स पाटिकङ्खितब्बानि। एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारि भयानि इधेकच्चस्स कुलपुत्तस्स इमस्मिं धम्मविनये अगारस्मा अनगारियं पब्बजितस्स पाटिकङ्खितब्बानि। कतमानि चत्तारि? ऊमिभयं, कुम्भीलभयं, आवट्टभयं, सुसुकाभयं।

२. "कतमं च, भिक्खवे, **ऊमिभयं**? इध, भिक्खवे, एकच्चो कुलपुत्तो सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'ओतिण्णोम्हि जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स

---

५. "और, भिक्षुओ! **दुर्गतिमय** कौन सा होता है? यहाँ कोई यों विचार करता है—'कायदुराचार, वाग्दुराचार एवं मनोदुराचार का पारलौकिक फल (परिणाम) बहुत दुर्गतिमय होता है। यदि मैं भी शरीर वाणी एवं मन से ऐसे दुराचार करूँगा तो मुझको भी इस देहपात के बाद, मरणानन्तर अपायभूत परलोक में दुर्गति ही भोगनी पड़ेगी; हो सकता है, मैं इस कारण घोर नरक में जा गिरूँ।' अत: वह इस पारलौकिक दुर्गति से भयभीत होकर समस्त दुराचार छोड़कर कायिक, वाचिक एवं मानसिक सदाचार करता हुआ अपनी आत्मा को स्वच्छ (पापरहित) कर लेता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—'दुर्गतिभय'। (४)

"भिक्षुओ! ये चार भय होते हैं॥" ●

२. ऊर्मिभयसूत्र : : चतुर्विध भय

१. "भिक्षुओ! जल में उतरने वाले को इन चार भयजनक बातों पर विचार कर लेना चाहिये। कौन से चार? (१) ऊर्मिभय, (२) कुम्भीलभय, (३) आवर्तभय, एवं (४) शुशुकाभय। भिक्षुओ! जल में उतरने वाले को इस चतुर्विध भय पर विचार कर लेना चाहिये। इसी तरह, भिक्षुओ! किसी भी कुलपुत्र को भी इस धर्मविनय में, घर से बेघर होकर प्रव्रजित होने से पूर्व इन चार भयों पर विचार कर लेना चाहिये। कौन से चार भय? (१) ऊर्मिभय ...पूर्ववत्... शुशुकाभय।

२. "भिक्षुओ! यह **ऊर्मिभय** कौन सा होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रद्धालु कुलपुत्र घर से बेघर हो, प्रव्रजित होकर यों विचार करता है—'मैं जाति, जरा, मरण, शोक, परिदेव, दु:ख, दौर्मनस्य, उपायास से घिर गया हूँ, मैं दु:खमग्न एवं दु:खों से घिरा हुआ हूँ। क्यों न मैं इस समस्त

केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति! तमेनं तथा पब्बजितं [B.439] समानं सब्रह्मचारिनो ओवदन्ति अनुसासन्ति—'एवं ते अभिक्कमितब्बं, एवं ते पटिक्कमितब्बं, एवं ते आलोकेतब्बं, एवं ते विलोकेतब्बं, एवं ते सम्मिञ्जितब्बं, [R.124] एवं ते पसारितब्बं, एवं ते सङ्घाटिपत्तचीवरं धारेतब्बं' ति। तस्स एवं होति—'मयं खो पुब्बे अगारियभूता समाना अञ्ञे ओवदाम पि अनुसासाम पि। इमे पनम्हाकं पुत्तमत्ता मञ्ञे नत्तमत्ता मञ्ञे ओवदितब्बं अनुसासितब्बं मञ्ञन्ती' ति। सो कुपितो अनत्तमनो [N.130] सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु ऊमिभयस्स भीतो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो। ऊमिभयं ति खो, भिक्खवे, कोधूपायासस्सेतं अधिवचनं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, ऊमिभयं।

३. ''कतमं च, भिक्खवे, **कुम्भीलभयं**? इध, भिक्खवे, एकच्चो कुलपुत्तो सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'ओतिण्णोम्हि जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवेहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि, दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति! तमेनं तथा पब्बजितं समानं सब्रह्मचारिनो ओवदन्ति अनुसासन्ति—'इदं ते खादितब्बं, इदं ते न खादितब्बं, इदं ते भुञ्जितब्बं, इदं ते न भुञ्जितब्बं, इदं ते सायितब्बं, इदं ते न सायितब्बं, इदं ते पातब्बं, इदं ते न पातब्बं, कप्पियं ते खादितब्बं, अकप्पियं ते न खादितब्बं, कप्पियं ते भुञ्जितब्बं, अकप्पियं ते न भुञ्जितब्बं, कप्पियं ते सायितब्बं, अकप्पियं ते न सायितब्बं, कप्पियं ते

दु:खस्कन्ध से मुक्ति का उपाय खोजने का प्रयास करूँ। तब उस प्रव्रजित के साथी भिक्षु उसे यों उपदेश एवं अनुशासन करते हैं—'तुम्हें ऐसे आगे चलना या पीछे हटना चाहिये, ऐसे आगे तथा पीछे देखना चाहिये, ऐसे पसारना एवं सङ्कोच करना चाहिये, ऐसे सङ्घाटि पात्र एवं चीवर धारण करना चाहिये।' यह उपदेश एवं अनुशासन बार बार सुनने पर उसको यों विचार होता है—'पहले जब हम घर में थे तब हम दूसरों को ऐसा उपदेश या अनुशासन करते थे। आज हमसे आयु में छोटे, हमारे पुत्रतुल्य या नाती के समान ये भिक्षु हमें उपदेश या अनुशासन कर रहे हैं!' यों, वह बार बार के इस उपदेश एवं अनुशासन से खिन्न होकर पुन: पूर्व (गृहस्थ) धर्म में लौट जाता है। यह, भिक्षुओ! कहलाता है—'ऊर्मिभय'। इससे डर कर वह भिक्षु पुन: हीन धर्म में लौट गया। भिक्षुओ! यहाँ यह 'ऊर्मिभय' क्रोध एवं उपायास (पश्चात्ताप) का पर्याय (नाम) है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—'ऊर्मिभय'। (१)

३. ''भिक्षुओ! यह **कुम्भीलभय** क्या होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रद्धालु कुलपुत्र ...पूर्ववत्... तब उस प्रव्रजित के साथी भिक्षु उसको यह उपदेश एवं अनुशासन करते हैं—'तुम्हें यह खाना चाहिये, यह नहीं खाना चाहिये; यह पीना चाहिये, यह नहीं पीना चाहिये; यह चाटना चाहिये, यह नहीं चाटना चाहिये; तुम्हें उपयोगी खाद्य ही खाना चाहिये, अनुपयोगी नहीं; उपयोगी भोजन ही करना चाहिये, अनुपयोगी नहीं; उपयोगी ही पीना चाहिये, अनुपयोगी नहीं; उपयोगी ही चाटना चाहिये, अनुपयोगी नहीं; समय से खाना चाहिये, असमय से नहीं; समय से भोजन करना

पातब्बं, अकप्पियं ते न पातब्बं, काले ते खादितब्बं, विकाले ते न खादितब्बं, काले ते भुञ्जितब्बं, विकाले ते न भुञ्जितब्बं, काले ते सायितब्बं, विकाले ते न सायितब्बं, काले ते पातब्बं, विकाले ते न पातब्बं' ति। तस्स एवं होति—'मयं खो पुब्बे अगारियभूता समाना यं इच्छाम तं खादाम, यं न इच्छाम न तं खादाम; यं इच्छाम तं भुञ्जाम, यं न इच्छाम न तं भुञ्जाम; यं इच्छाम तं सायाम, यं न इच्छाम न तं सायाम; यं इच्छाम तं पिवाम, यं न इच्छाम न तं पिवाम; कप्पियं पि खादाम अकप्पियं पि खादाम, कप्पियं पि भुञ्जाम अकप्पियं पि भुञ्जाम कप्पियं पिं सायाम अकप्पियं पि सायाम कप्पियं पि पिवाम अकप्पियं पि पिवाम, [B.440,R.125] काले पि खादाम विकाले पि खादाम काले पि भुञ्जाम विकाले पि भुञ्जाम काले पि सायाम विकाले पि सायाम काले पि पिवाम विकाले पि पिवाम; यं पि नो सद्धा गहपतिका दिवा विकाले पणीतं खादनीयं वा भोजनीयं वा देन्ति, तत्र पिमे मुखावरणं मञ्ञे करोन्ती' ति। सो कुपितो अनत्तमनो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु कुम्भीलभयस्स भीतो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो। कुम्भीलभयं ति [N.131] खो, भिक्खवे, ओदरिकत्तस्सेतं अधिवचनं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कुम्भीलभयं।

४. "कतमं च, भिक्खवे, **आवट्टभयं**? इध, भिक्खवे, एकच्चो कुलपुत्तो सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'ओतिण्णोम्हि जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवहि, दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति! सो एवं पब्बजितो समानो

चाहिये, असमय से नहीं; समय से चाटना चाहिये, असमय से नहीं; समय से पीना चाहिये, असमय से नहीं।' साथी भिक्षुओं का आदेश अनुशासन सुन कर उसको यों विचार होता है—'हम गृहस्थकाल में जो चाहते थे खाते थे. जो नहीं चाहते थे नहीं खाते थे; जो चाहते थे भोजन करते थे, जो नहीं चाहते थे नहीं करते थे; जो चाहते थे चाटते थे, जो नहीं चाहते थे नहीं चाटते थे; जो चाहते थे पीते थे, जो नहीं चाहते नहीं पीते थे। उपयोगी, अनुपयोगी—सभी कुछ खाते, भोजन करते, चाटते एवं पीते थे। समय असमय पर खाते भी थे, भोजन भी करते थे, चाटते भी थे, पीते भी थे; नहीं भी खाते थे, नहीं भी भोजन करते थे, नहीं भी चाटते थे, नहीं भी पीते थे। ये साथी भिक्षु, श्रद्धालु गृहस्थों द्वारा जो कुछ हमें मिलता है उसके लिये भी मानो हमारे मुख पर ताला लगा रहे हैं।' वह यों विचारता हुआ, कुपित एवं पश्चात्ताप करता हुआ सद्धर्म छोड़कर पुनः हीन (गृहस्थ) धर्म में ही लौट जाता है। भिक्षुओ! यह भिक्षु इस कुम्भीलभय से भीत होकर धर्म-शिक्षाओं का त्याग कर पुनः हीन (गृहस्थ) की ओर ही लौट जाता है। भिक्षुओ! यह 'कुम्भीलभय' औदरिकता (पेटूपन) का ही दूसरा नाम है। भिक्षुओ! यह कहलाता है 'कुम्भीलभय'। (२)

४. भिक्षुओ! यह **आवर्तभय** क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रद्धालु कुलपुत्र घर से ...पूर्ववत्... इस समस्त दुःखस्कन्ध का अन्त (नाश) जानना चाहिये। तब वह नित्य क्रिया के बाद कभी प्रातःकाल वस्त्र व्यवस्थित कर, पात्र चीवर लेकर ग्राम या निगम में भिक्षाहेतु अव्यवस्थित शरीर, अव्यवस्थित वाणी एवं अव्यवस्थित मन तथा इन्द्रियों के साथ प्रविष्ट होता है। वहाँ वह

पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अरक्खितेन चित्तेन अनुपट्ठिताय सतिया असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति गहपतिं वा गहपतिपुत्तं वा पञ्चहि कामगुणेहि समप्पितं समङ्गीभूतं परिचारयमानं। तस्स एवं होति—'मयं खो पुब्बे अगारियभूता समाना पञ्चहि कामगुणेहि समप्पिता समङ्गीभूता परिचारिम्हा; संविज्जन्ति खो पन मे कुले भोगा। सक्का भोगे च भुञ्जितुं पुञ्ञानि न कातुं। यन्नूनाहं सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तित्वा भोगे च भुञ्जेय्यं पुञ्ञानि च करेय्यं' ति! सो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु आवट्टभयस्स भीतो सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तो। आवट्टभयं ति खो, भिक्खवे, पञ्चन्नेतं कामगुणानं अधिवचनं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, आवट्टभयं।

५. ''कतमं च, भिक्खवे, **सुसुकाभयं**? इध, भिक्खवे, एकच्चो कुलपुत्तो सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति—'ओतिण्णोम्हि जातिया जराय मरणेन सोकेहि परिदेवहि दुक्खेहि दोमनस्सेहि उपायासेहि दुक्खोतिण्णो दुक्खपरेतो; अप्पेव नाम इमस्स केवलस्स दुक्खक्खन्धस्स अन्तकिरिया पञ्ञायेथा' ति! सो एवं पब्बजितो समानो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति [B.441] अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अरक्खितेन चित्तेन अनुपट्ठिताय सतिया [R.126] असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति मातुगामं दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा। तस्स मातुगामं दिस्वा दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा रागो चित्तं अनुद्धंसेति। सो रागानुद्धंसितेन चित्तेन सिक्खं पच्चक्खाय हीनाग्यावत्तति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु सुसुकाभयस्स भीतो सिक्खं

किसी के घर में किसी गृहपति या गृहपतिपुत्र को पाँचों कामभोगों में सम्पृक्त, एकीभूत होकर भोगों को भोगते हुए देखता है। तब उसके मन में यह होता है—'हम भी पहले कभी जब गृहस्थ थे तब इसी प्रकार इन पाँचों कामोभोगों में लिप्त रहते थे। आज भी हमारे घर में पूर्ण सम्पत्ति है; क्यों न पुनः गृहस्थधर्म में इन पाँचों कामभोगों का आनन्द लिया जाय तथा शेष सम्पत्ति से कुछ पुण्यकर्म भी किया जाय।' यह विचार कर वह सद्धर्म का त्याग कर पुनः गृहस्थ धर्म में जा मिलता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—आवर्तभय से भीत का धर्मशिक्षा छोड़कर पुनः गृहस्थ धर्म में जा मिलना। भिक्षुओ! इन पाँच गुणों का पर्याय ही 'आवर्तभय' है। भिक्षुओ! यह 'आवर्तभय' कहलाता है। (३)

५. भिक्षुओ! **शुशुकाभय** कौन कहलाता है? यहाँ कोई श्रद्धालु कुलपुत्र घर से ...पूर्ववत्... ग्राम या निगम में अरक्षित काय वाक् एवं चित्त तथा अनुपस्थित स्मृति एवं असंवृत इन्द्रियों के साथ भिक्षाहेतु प्रविष्ट होता है। वह वहाँ स्त्रियों को अस्त-व्यस्त वस्त्रों में देखें। उन स्त्रियों को ऐसी दशा में देखकर उसका चित्त उनके प्रति रागासक्त हो जाता है। वह रागासक्त चित्त से उद्विग्न होकर इन धर्म-शिक्षाओं को छोड़कर पुनः गृहस्थ में लौटनेवाला कहलाता है। भिक्षुओ! यह 'शुशुकाभय' स्त्रियों का ही बोधक पर्याय है। यह कहलाता है, भिक्षुओ! शुशुकाभय। (४)

[N.132] पच्चक्खाय हीनायावत्तो। सुसुकाभयं ति खो, भिक्खवे, मातुगामस्सेतं अधिवचनं। इदं वुच्चति, भिक्खवे, सुसुकाभयं। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि भयानि इधेकच्चस्स कुलपुत्तस्स इमस्मिं धम्मविनये अगारस्मा अनगारियं पब्बजितस्स पाटिकङ्खितब्बानी'' ति॥

३. पठमनानाकरणसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति, तं निकामेति, तेन च वित्तिं आपज्जति। तत्थ ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो ब्रह्मकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। ब्रह्मकायिकानं, भिक्खवे, देवानं कप्पो आयुप्पमाणं। तत्थ पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पामाणं तं सब्बं खेपेत्वा तस्मिंयेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया सति। (१)

[R.127] २. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं

''भिक्षुओ! इस प्रकार ये चार भय हैं, जिनपर किसी भी कुलपुत्र को इस धर्मविनय में घर छोड़कर बेघर होकर प्रवजित होने पर विचार कर लेना चाहिये॥''

३. प्रथम नानाकरणसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं। कौन चार? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल कामभोगों से दूर रहकर, अकुशल धर्मों से पृथक् रहकर, वितर्क विचार सहित विवेकजन्य प्रीतिसुखमय **प्रथम ध्यान** प्राप्त कर साधना करता है। वह उसी में रस (आस्वाद) लेता है, वह उसे चाहता है, वह उससे ज्ञान प्राप्त करता है। वहाँ स्थित रहता हुआ, उसी में झुका हुआ, अधिक समय उसी की साधना करता हुआ उसे छोड़े विना मृत्युभाव को प्राप्त हो जाय तो वह ब्रह्मकायिक देवों की सङ्गति में जाकर उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! उन ब्रह्मकायिक देवों का आयुःप्रमाण एक कल्प होता है। कोई पृथग्जन वहाँ अपनी उस समस्त आयु को बिताकर, उन देवों की समस्त आयु को भोगकर अन्त में नरक में भी जा सकता है, पशुयोनि में भी जा सकता है, प्रेतयोनि में भी जा सकता है। परन्तु कोई बुद्धश्रावक वहाँ समस्त आयु (कल्पपर्यन्त) ठहरकर उन देवताओं की समस्त आयु भोगकर उसी लोक (या जन्म) में परिनिर्वृत हो जाता है। यही, भिक्षुओ! उन दोनों—श्रुतवान् आर्यश्रावक एवं अश्रुतवान् पृथग्जन में भेद है, पृथक्त्व है कि उन दोनों की गति एवं उत्पत्ति पृथक् पृथक् होती है। (१)

२. ''फिर, भिक्षुओ! कोई पुद्गल वितर्क विचारों का उपशमन होने पर, आध्यात्मिक श्रद्धा के वश, तथा चित्त की एकाग्रता से वितर्क विचार रहित समाधिजन्य प्रीतिसुखमय **द्वितीय ध्यान** को

उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति, तं निकामेति, तेन च वित्तिं आपज्जति। तत्थ [B.442] ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहानो कालं कुरुमानो आभस्सरानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। आभस्सरानं, भिक्खवे, देवानं द्वे कप्पा आयुप्पमाणं। तत्थ पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्ब खेपेत्वा तस्मिंयेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता [N.133] पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया सति। (२)

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति यं तं अरिया आचिक्खन्ति— 'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति, तं निकामेति, तेन च वित्तिं आपज्जति। तत्थ ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो, कालं कुरुमानो सुभकिण्हानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। सुभकिण्हानं, भिक्खवे, देवानं चत्तारो कप्पा आयुप्पमाणं। तत्थ पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा तस्मिंयेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया सति। (३)

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च

प्राप्त कर साधना करता है। वह उसका आस्वाद... पूर्ववत्... आभास्वर देवों की सङ्गति में उत्पन्न होता है। इन आभास्वर देवों का आयु:प्रमाण दो कल्प होता है। वहाँ कोई पृथग्जन उस आयु:प्रमाण को वहाँ पूर्ण करने के बाद या तो नरक में जा गिरता है, या पशुपक्षियोनि में या फिर प्रेतयोनि में उत्पन्न होता है। परन्तु बुद्धश्रावक उन ही देवों के साथ समस्त आयु:प्रमाण तक ठहर कर, उस आयु को बिताकर, उसी भव में परिनिर्वृत हो जाता है। यही, भिक्षुओ! उन दोनों— श्रुतवान् आर्यश्रावक एवं अश्रुतवान् पृथग्जन में भेद या पृथक्त्व है कि उनकी गति एवं उत्पत्ति पृथक् पृथक् है। (२)

३. फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल उस प्रीति से वैराग्यसम्पन्न होकर उपेक्षा के साथ साधना आरम्भ करता है। तथा स्मृति सम्प्रजन्य के साथ काया में सुखानुभव करता है। जिसके विषय में आर्यजन कहने लगते हैं—'यह साधक स्मृतिमान् होकर उपेक्षापूर्वक सुखमय साधना कर रहा है।' ऐसा वह साधक **तृतीय ध्यान** को प्राप्त कर साधना में लगा रहता है। वह उसमें आस्वाद... पूर्ववत्... शुभकृत्स्न देवों की सङ्गति में उत्पन्न होता है। इन शुभकृत्स्न देवों का चार कल्प आयु:प्रमाण होता है। ...पूर्ववत्... उनकी गति एवं उत्पत्ति पृथक् पृथक् है। (३)

४. फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल उस सुख दु:ख के प्रहाण से पूर्व ही सौमनस्य दौर्मनस्य

पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति, तं निकामेति, तेन च वित्तिं आपज्जति। तत्थ [R.128] ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो वेहप्फलानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। वेहप्फलानं, भिक्खवे, देवानं पञ्च कप्पसतानि आयुप्पमाणं। तत्थ पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि [B.443] गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा तस्मिंयेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया सति। (४)

"इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गलो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

[N.134] **४. दुतियनानाकरणसुत्तं :** १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो विविच्चेव कामेहि ...पे०... पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो यदेव तत्थ होति रूपगतं वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं, ते धम्मे अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सुद्धावासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं, भिक्खवे, उपपत्ति असाधारणा पुथुज्जनेहि।

२. "पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो वितक्कविचारानं वूपसमा ...पे०...

के अस्त हो जाने से, अदुःख असुखमय स्मृतिपरिशुद्धि रूप **चतुर्थ ध्यान** को प्राप्त कर साधना करता है। यह उसका आस्वाद...पूर्ववत्... बृहत्फल देवों की सङ्गति में उत्पन्न होता है। बृहत्फल देवों का आयुःप्रमाण पाँच सौ कल्प होता है। वहाँ कोई पृथग्जन ...पूर्ववत्... प्रेतयोनि में उत्पन्न होता है। परन्तु बुद्धश्रावक... उसी भव में परिनिर्वृत हो जाता है। भिक्षुओ! यही विशेष एवं पृथक्करण श्रुतवान् आर्यश्रावक एवं अश्रुतवान् पृथग्जन में है कि इन की गति एवं उत्पत्तियाँ भिन्न भिन्न होती हैं। (४)

"भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में विद्यमान हैं॥" ●

४. द्वितीय नानाकरणसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. भिक्षुओ! ये चार पुद्गल लोक में विद्यमान हैं। कौन से चार?

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल कामभोगों को त्यागकर ...पूर्ववत्... **प्रथम ध्यान** प्राप्त कर साधना करता है। वह जो कुछ भी वहाँ रूपगत, वेदनागत, संज्ञागत, संस्कारगत एवं विज्ञानगत धर्म होते हैं, उन सबको अनित्य, दुःख, रोग, कण्टक (या व्रण), शल्य, अघ (पाप) आबाधा (कठिनाई), पर, नाश, शून्य एवं अनात्म रूप से देखता है। वह इस काया के नाश के बाद, मरणानन्तर शुद्धावास देवों की सङ्गति प्राप्त कर उत्पन्न होता है। यह उत्पत्ति पृथग्जनों से असाधारण (विशेष) है। (१)

२. "फिर, भिक्षुओ! कोई पुद्गल वितर्क विचारों के उपशमन से ...पूर्ववत्... **द्वितीय ध्यान**

दुतियं झानं ...पे०... ततियं झानं ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो यदेव तत्थ होति रूपगतं वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं, ते धम्मे अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सुद्धावासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं, भिक्खवे, उपपत्ति असाधारणा पुथुज्जनेहि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गलो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

५. **पठममेत्तासुत्तं** : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं [R.129] सब्बधि सब्बत्तताय सब्बवन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन [B.444] अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। सो तदस्सादेति, तं निकामेति, तेन च वित्तिं आपज्जति। तत्थ ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो ब्रह्मकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। ब्रह्मकायिकानं, भिक्खवे, देवानं कप्पो आयुप्पमाणं। तत्थ पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा [N.135] तस्मियेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया सति।

...पूर्ववत्... **तृतीय ध्यान** ...पूर्ववत्... **चतुर्थ ध्यान** को प्राप्त कर साधना करता है। वह जो कुछ भी वहाँ रूपगत, वेदनागत ...पूर्ववत्... अनात्मरूप से देखता है। वह इस देहनाश के बाद, मरणानन्तर शुद्धावासकायिक देवों की सङ्गति में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! यह उत्पत्ति पृथग्जनों से असाधारण (विशेष) है। (२-४)

''भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥'' ●

५. प्रथम मैत्रीसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में विद्यमान हैं। कौन से चार? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल मैत्रीसहगत चित्त से एक दिशा को पूर्ण कर साधना करता है, उसी तरह दूसरी दिशा... तीसरी दिशा... चौथी दिशा... इसी प्रकार ऊपर नीचे, टेढे सीधे, सर्वथा, सब के लिये, मित्रतायुक्त, विपुल, महद्गत, अप्रमाण, निर्वैर, द्रोहरहितचित्त से समग्र लोक का स्पर्श करता हुआ साधना में लगा रहता है। वह उसका आस्वाद लेता है... मरणानन्तर ब्रह्मकायिक देवों की सङ्गति में उत्पन्न होता है। भिक्षुओं! ब्रह्मकायिक देवों का आयु:प्रमाण एक कल्प होता है। वहाँ पृथग्जन उतनी आयु तक ठहर कर उन देवों की पूरी आयु भोग कर नरक में भी जा सकता है, पशु योनि में भी जा सकता है या प्रेत योनि में भी जा सकता है। परन्तु बुद्धशिष्य वहाँ ठहर कर, वहाँ की समस्त आयु भोग कर उसी

२. "पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चे पुग्गलो करुणासहगतेन चेतसा ...पे०... मुदितासहगतेन चेतसा ...पे०... उपेक्खासहगतेन चेतसा एवं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। सो तदस्सादेति, तं निकामेति, तेन च वित्तिं आपज्जति। तत्थ ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो आभस्सरानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। आभस्सरानं, भिक्खवे, देवानं द्वे कप्पा आयुप्पमाणं। ...पे०... सुभकिण्हानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। सुभकिण्हानं, भिक्खवे, देवानं चत्तारो कप्पा आयुप्पमाणं। ...पे०... वेहप्फलानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। वेहप्फलानं, भिक्खवे, देवानं पञ्च कप्पसतानि आयुप्पमाणं। तत्थ पुथुज्जनो यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा निरयं पि गच्छति तिरच्छानयोनिं पि गच्छति पेत्तिविसयं पि गच्छति। भगवतो पन सावको तत्थ यावतायुकं ठत्वा यावतकं तेसं देवानं आयुप्पमाणं तं सब्बं खेपेत्वा तस्मिंयेव भवे परिनिब्बायति। अयं खो, भिक्खवे, विसेसो अयं अधिप्पयासो इदं नानाकरणं सुतवतो [B.445] अरियसावकस्स अस्सुतवता पुथुज्जनेन, यदिदं गतिया उपपत्तिया सति।

इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

[R.130] ६. **दुतियमेत्तासुत्तं** : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्ज-माना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं

भव में परिनिर्वृत हो जाता है। भिक्षुओ! उस श्रुतवान् आर्यश्रावक एवं अश्रुतवान् पृथग्जन में यही गति एवं उत्पत्ति का भेद है। (१)

२. "पुनः भिक्षुओ! कोई पुद्गल करुणासहगतचित्त से ...पूर्ववत्... मुदितासहगतचित्त से... उपेक्षासहगतचित्त से एक दिशा... दूसरी दिशा... तीसरी दिशा... चौथी दिशा... इसी प्रकार ऊपर नीचे ...पूर्ववत्... मरणानन्तर आभास्वर देवों की सङ्गति में उत्पन्न होता है। आभास्वर देवों का आयुःप्रमाण दो कल्प का होता है। ...पूर्ववत्... शुभकृत्स्नदेवों की सङ्गति में उत्पन्न होता है। इन शुभकृत्स्नदेवों का आयु प्रमाण चार कल्प होता है ...पूर्ववत्... बृहत्फल देवों की सङ्गति में उत्पन्न होता है। इन बृहत्फल देवों का आयुःप्रमाण पाँच सौ कल्प होता है। वहाँ पृथग्जन... प्रेतयोनि में उत्पन्न हो सकता है, परन्तु बुद्धश्रावक उन बृहत्फल देवों की समस्त आयु भोगकर उसी भव में परिनिर्वृत हो जाता है। भिक्षुओ! उस श्रुतवान् आर्यश्रावक एवं अश्रुतवान् पृथग्जन में यही गति एवं उत्पत्ति का भेद एवं विशेष है। (२-४)

भिक्षुओ! लोक में इस प्रकार चतुर्विध पुद्गल हैं"॥ ●

६. द्वितीय मैत्रीसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. "भिक्षुओ! ये चार पुद्गल लोक में देखे जाते हैं। कौन से चार? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल

फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं [N.136] सब्बधि सब्बत्तताय सब्बवन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। सो यदेव तत्थ होति रूपगतं वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं ते धम्मे अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सुद्धावासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं, भिक्खवे, उपपत्ति असाधारणा पुथुज्जनेहि।

२. "पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो करुणा ...पे०... मुदिता ...पे०... उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। सो यदेव तत्थ होति रूपगतं वेदनागतं सञ्ञागतं सङ्खारगतं विञ्ञाणगतं ते धम्मे अनिच्चतो दुक्खतो रोगतो गण्डतो सल्लतो अघतो आबाधतो परतो पलोकतो सुञ्ञतो अनत्ततो समनुपस्सति। सो कायस्स भेदा परं मरणा सुद्धावासानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। अयं, भिक्खवे, उपपत्ति असाधारणा पुथुज्जनेहि।

इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ •

७. पठमतथागतअच्छरियसुत्तं : १. "तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो [B.446] सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा पातुभवन्ति। कतमे चत्तारो? यदा, भिक्खवे, बोधिसत्तो तुसिता काया चवित्वा सतो सम्पजानो मातुकुच्छिं ओक्कमति, अथ सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अप्पमाणो उळारो ओभासो पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। या पि ता लोकन्तरिका अघा असंवुता अन्धकारा अन्धकारतिमिसा यत्थपिमेसं चन्दिमसुरियानं एवंमहिद्धिकानं एवंमहानुभावानं आभा नानुभोन्ति, तत्थ पि अप्पमाणो उळारो ओभासो पातुभवति

मैत्रीसहगत चित्त से एक दिशा... दूसरी दिशा ...पूर्वसूत्रवत्... *[द्वितीय नानाकरणसूत्रानुसार विस्तार करें]*। (१)

२. फिर भिक्षुओ! कोई पुद्गल करुणा... मुदिता... उपेक्षा सहगत चित्त से एक दिशा... दूसरी दिशा... पूर्वसूत्रवत्... *[द्वितीय नानाकरणसूत्रानुसार]*॥ (२-४) •

७. प्रथम तथागत-आश्चर्यसूत्र : : तथागत के चार आश्चर्यमय धर्म

१. "भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के प्रादुर्भाव से ये चार आश्चर्यजनक धर्म (लोक में) दिखायी देते हैं। कौन चार? (१) जब, भिक्षुओ! बोधिसत्त्व तुषित देवकाय से च्युत होकर, स्मृति सम्प्रजन्य के साथ, माता की कोंख में आते हैं, तब देवलोक सहित इस लोक में देव, मार, ब्रह्मा, श्रमण-ब्राह्मणी प्रजा सहित देवताओं एवं मनुष्यों के सम्मुख एक ऐसा आलोक अवभासित होता है जो देवताओं के आलोक को अतिक्रान्त कर देता है। तथा ऐसे लोक जो पूर्ण अन्धकारयुक्त

अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि तेनोभासेन अञ्ञमञ्ञं [N.137] सञ्जानन्ति—'अञ्ञे पि किर, भो, सन्ति सत्ता इधूपपन्ना' ति। तथागतस्स, [R.131] भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा अयं पठमो अच्छरियो अब्भुतो धम्मो पातुभवति। (१)

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, यदा बोधिसत्तो सतो सम्पजानो मातुकुच्छिम्हा निक्खमति, अथ सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेव-मनुस्साय अप्पमाणो उळारो ओभासो पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। या पि ता लोकन्तरिका अघा असंवुता अन्धकारा अन्धकारतिमिसा यत्थपिमेसं चन्दिमसुरियानं एवं महिद्धिकानं एवं महानुभावानं आभा नानुभोन्ति, तत्थ पि अप्पमाणो उळारो ओभासो पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि तेनोभासेन अञ्ञमञ्ञं सञ्जानन्ति—'अञ्ञे पि किर, भो, सन्ति सत्ता इधूपपन्ना' ति। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा अयं दुतियो अच्छरियो अब्भुतो धम्मो पातुभवति। (२)

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, यदा तथागतो अनुत्तरं सम्मासम्बोधिं अभिसम्बुज्झति, अथ, सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अप्पमाणो [B.447] उळारो ओभासो पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। या पि ता लोकन्तरिका अघा असंवुता अन्धकारा अन्धकारतिमिसा यत्थपिमेसं चन्दिमसुरियानं एवंमहिद्धिकानं एवंमहानुभावानं आभा नानुभोन्ति, तत्थ पि अप्पमाणो उळारो ओभासो पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि तेनोभासेन अञ्ञमञ्ञं सञ्जानन्ति—'अञ्ञे पि किर, भो, सन्ति सत्ता इधूपपन्ना' ति। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा अयं ततियो अच्छरियो अब्भुतो धम्मो पातुभवति। (३)

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, यदा तथागतो अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तेति, अथ सदेवके लोके समारके सब्रह्मके सस्समणब्राह्मणिया पजाय सदेवमनुस्साय अप्पमाणो उळारो ओभासो पातुभवति अतिक्कम्मेव देवानं देवानुभावं। या पि ता लोकन्तरिका अघा असंवुता

लोक हैं जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा का प्रकाश भी कभी नहीं पहुँचता, वहाँ भी यह प्रकाश असीमित चमक के साथ पहुँचता है। उस प्रकाश को देखकर, वहाँ के निवासी परस्पर पूछने लगते हैं—'अरे! यहाँ कोई अन्य प्राणी भी उत्पन्न हुए हैं क्या!' भिक्षुओ! तथागत के प्रादुर्भाव के समय यह **प्रथम आश्चर्यमय** अद्भुत धर्म दिखायी देता है। (१)

२. ''जब भिक्षुओ! बोधिसत्त्व माता की कोंख से बाहर आते हैं... पूर्ववत्...। भिक्षुओ! तथागत... के प्रादुर्भाव के समय यह **दूसरा आश्चर्यमय**...। (२)

३. ''जब, भिक्षुओ! तथागत... अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि प्राप्त करते हैं... पूर्ववत्...। भिक्षुओ! तथागत... के प्रादुर्भाव के समय यह **तीसरा आश्चर्यमय**...। (३)

अन्धकारा अन्धकारतिमिसा यत्थपिमेसं चन्दिमसुरियानं एवंमहिद्धिकानं एवंमहानुभावानं आभा नानुभोन्ति, तत्थ पि अप्पमाणो उळारो ओभासो पातुभवति अतिक्कम्मेव [N.138] देवानं देवानुभावं। ये पि तत्थ सत्ता उपपन्ना ते पि तेनोभासेन अञ्ञमञ्ञं सञ्जानन्ति— 'अञ्ञे पि किर, भो, सन्ति सत्ता इधूपपन्ना' ति। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा अयं चतुत्थो अच्छरियो अब्भुतो धम्मो पातुभवति। (४)

तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा इमे चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा पातुभवन्ती'' ति॥ ●

८. **दुतियतथागतअच्छरियसुत्तं** : १. ''तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा पातुभवन्ति। कतमे चत्तारो? आलयारामा, भिक्खवे, पजा आलयरता आलयसम्मुदिता; सा तथागतेन अनालये धम्मे देसियमाने सुस्सूसति सोतं ओदहति अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेति। तथागतस्स भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा अयं पठमो अच्छरियो अब्भुतो धम्मो पातुभवति।

२. ''मानारामा, भिक्खवे, पजा मानरता मानसम्मुदिता। सा तथागतेन [B.448] मानविनये धम्मे देसियमाने सुस्सूसति सोतं ओदहति अञ्ञाचित्तं उपट्ठपेति। [R.132] तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा अयं दुतियो अच्छरियो अब्भुतो धम्मो पातुभवति।

३. ''अनुपसमारामा, भिक्खवे, पजा अनुपसमरता अनुपसमसम्मुदिता। सा तथागतेन ओपसमिके धम्मे देसियमाने सुस्सूसति सोतं ओदहति अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेति।

---

४. ''जब, भिक्षुओ! तथागत अद्वितीय धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हैं... पूर्ववत्... भिक्षुओ! तथागत के प्रादुर्भाव के साथ यह **चतुर्थ आश्चर्यमय** अद्भुत धर्म दिखायी देता है। (४)

''भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के प्रादुर्भाव के समय ये चार आश्चर्यजनक एवं अद्भुत धर्म लोक में दिखायी देते हैं॥'' ●

८. द्वितीय तथागत-आश्चर्यसूत्र : : चार आश्चर्यमय धर्म

१. ''भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध के प्रादुर्भाव के समय ये चार आश्चर्य अद्भुत धर्म लोक में दिखायी देते हैं। कौन से चार?

''भिक्षुओ! उस समय जो जनता सांसारिक आसक्ति (आलय) में ही डूबी हुई है, उसी में लिप्त है, उसी में प्रसन्न है, वह तथागत द्वारा आसक्तिरहित धर्म का उपदेश किये जाने पर उसे सुनना चाहती है, उस पर ध्यान देती है तथा उसे जानकर मन में बैठाती है। भिक्षुओ! यह हुआ तथागत के प्रादुर्भाव के समय उत्पन्न **प्रथम आश्चर्यमय** अद्भुत धर्म। (१)

''भिक्षुओ! उस समय जो जनता अपने वृथाभिमान में डूबी हुई, उसी में लिप्त तथा उसी में प्रसन्न है, वह तथागत द्वारा ऐसे मान के निरोध हेतु किये जा रहे उपदेश को सुनना चाहती है... पूर्ववत्... ।... प्रादुर्भाव के समय **द्वितीय आश्चर्यमय** अद्भुत धर्म। (२)

''भिक्षुओ! उस समय जो जनता अपने मन के चाञ्चल्य में मत्त है, लिप्त है, मुदित है, वह

तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा अयं ततियो अच्छरियो अब्भुतो धम्मो पातुभवति।

४. "अविज्जागता, भिक्खवे, पजा अण्डभूता परियोनद्धा। सा तथागतेन अविज्जाविनये धम्मे देसियमाने सुस्सूसति सोतं ओदहति अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेति। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा अयं चतुत्थो अच्छरियो अब्भुतो [N.139] धम्मो पातुभवति। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावा इमे चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा पातुभवन्ती" ति॥ ●

९. आनन्दअच्छरियसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्दे। कतमे चत्तारो? सचे, भिक्खवे, भिक्खुपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, भिक्खुपरिसा होति, अथ आनन्दो तुण्ही भवति।

२. "सचे, भिक्खवे, भिक्खुनिपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्थ चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, भिक्खुनिपरिसा होति, अथ आनन्दो तुण्ही भवति।

३. "सचे, भिक्खवे, उपासकपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता [B.449] व, भिक्खवे, उपासकपरिसा होति, अथ आनन्दो तुण्ही भवति।

तथागत द्वारा मन के चाञ्चल्य निरोध के लिये दिये जा रहे उपदेश को सुनना चाहती है ...पूर्ववत्...। प्रादुर्भाव के समय **तृतीय आश्चर्यमय** धर्म...। (३)

"भिक्षुओ! उस समय जो अविद्या से ग्रस्त है, अन्धी बनी हुई है तथा उससे बँधी हुई है, वह तथागत द्वारा कृत अविद्यानिरोध हेतु उपदेश को सुनना चाहती है ...पूर्ववत्... ...प्रादुर्भाव से समय यह **चतुर्थ आश्चर्यमय** धर्म उत्पन्न होता है। (४)

"इस तरह, भिक्षुओ! तथागत... के प्रादुर्भाव के समय ये चार अद्भुत धर्म प्रादुर्भूत होते हैं॥" ●

९. आनन्दआश्चर्यसूत्र : : आनन्द भिक्षु में चार आश्चर्यमय धर्म

१. "भिक्षुओ! आनन्द (भिक्षु) में ये चार आश्चर्यजनक अद्भुत धर्म (गुण) हैं। कौन से चार?

"यदि, भिक्षुओ! कोई **भिक्षुपरिषद्** (भिक्षुसमूह) आनन्द के दर्शन हेतु आती है, तो वह उसके दर्शन करके ही प्रसन्न हो जाती है। वहाँ यदि आनन्द धर्मोपदेश करने लगते हैं तब वह उसे सुनकर भी प्रसन्न होती है। और, भिक्षुओ! वह भिक्षु-परिषद् अतृप्त ही रह जाती है, जब आनन्द धर्मोपदेश समाप्त कर चुप होते हैं। (१)

२. "यदि, भिक्षुओ! कोई **भिक्षुणीपरिषद** (भिक्षुणीसमूह) ...पूर्ववत्...। (२)

३. "यदि, भिक्षुओ! कोई **उपासकपरिषद्** ...पूर्ववत्...। (३)

४. ''सचे, भिक्खवे, उपासिकापरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, उपासिकापरिसा होति, अथ आनन्दो तुण्ही भवति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्दे'' ति। ●

१०. चक्कवत्तिअच्छरियसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अच्छरिया अब्भुता धम्मा रञ्ञे चक्कवत्तिम्हि। कतमे चत्तारो? सचे, भिक्खवे, खत्तियपरिसा राजानं [R.133] चक्कवत्तिं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे राजा चक्कवत्ती भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, खत्तियपरिसा होति, अथ राजा चक्कवत्ती तुण्ही भवति।

२. ''सचे, भिक्खवे, ब्राह्मणपरिसा राजानं चक्कवत्तिं दस्सनाय उप-[N.140] सङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे राजा चक्कवत्ती भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, ब्राह्मणपरिसा होति, अथ राजा चक्कवत्ती तुण्ही भवति।

३. ''सचे, भिक्खवे, गहपतिपरिसा राजानं चक्कवत्तिं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे राजा चक्कवत्ती भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, गहपतिपरिसा होति, अथ राजा चक्कवत्ती तुण्ही भवति।

४. ''सचे, भिक्खवे, समणपरिसा राजानं चक्कवत्तिं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे राजा चक्कवत्ती भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, समणपरिसा होति, अथ राजा चक्कवत्ती तुण्ही भवति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा रञ्ञे चक्कवत्तिम्हि।

---

४. यदि भिक्षुओ! कोई **उपासिकापरिषद्** आनन्द के दर्शन हेतु आती है, वह उसके दर्शन करके ही प्रसन्न हो जाती है। वहाँ यदि आनन्द धर्मोपदेश करने लगते हैं तो वह उसे सुनकर भी प्रसन्न होती है। और, भिक्षुओ! वह उपासिकापरिषद् अतृप्त ही रह जाती है जब आनन्द धर्मोपदेश समाप्त कर चुप होते हैं। (४)

भिक्षुओ! आनन्द में अद्भुत एवं आश्चर्यमय धर्म (गुण) हैं॥'' ●

१०. चक्रवर्ति आश्चर्यसूत्र : : चक्रवर्ती के चार आश्चर्यधर्म धर्म

१. भिक्षुओ! चक्रवर्ती राजा में ये चार आश्चर्यजनक एवं अद्भुत धर्म होते हैं। कौन से चार?

''भिक्षुओ! जब किसी चक्रवर्ती राजा को दर्शन हेतु कोई **क्षत्रियसमूह** आता है, तो वह उसके दर्शन करके ही सन्तुष्ट हो जाता है। और यदि वह चक्रवर्ती उनसे वार्तालाप भी करने लगता है तो और अधिक प्रसन्न होता है। वह समूह अतृप्त ही लगता है जब वह चक्रवर्ती उससे वार्तालाप कर चुप हो जाता है। (१)

२. ''भिक्षुओ! यदि कोई **ब्राह्मणों का समूह** ...पूर्ववत्...। (२)

३. ''भिक्षुओ! यदि कोई **गृहपति** (वणिक्) **समूह** ...पूर्ववत्...। (३)

४. ''भिक्षुओ! यदि कोई **श्रमणसमूह** ...पूर्ववत्...। (४)

[B.450]५. "एवमेव खो, भिक्खवे, चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्दे। कतमे चत्तारो? सचे, भिक्खवे, भिक्खुपरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, भिक्खुपरिसा होति, अथ आनन्दो तुण्ही तुण्ही भवति।

६. "सचे, भिक्खवे, भिक्खुनिपरिसा ...पे०... सचे, भिक्खवे, उपासकपरिसा ...पे०... सचे, भिक्खवे, उपासिकापरिसा आनन्दं दस्सनाय उपसङ्कमति, दस्सनेन पि सा अत्तमना होति। तत्र चे आनन्दो धम्मं भासति, भासितेन पि सा अत्तमना होति। अतित्ता व, भिक्खवे, उपासिकापरिसा होति, अथ आनन्दो तुण्ही भवति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अच्छरिया अब्भुता धम्मा आनन्दे" ति॥ ●

भयवग्गो तेरसमो॥

तस्सुद्दानं

अत्तानुवादऊमि च, द्वे च नाना द्वे च होन्ति।
मेत्ता द्वे च अच्छरिया, अपरा च तथा दुवे ति॥ ●

१४. पुग्गलवग्गो

[N.141] **१. संयोजनसुत्तं** : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स ओरम्भागियानि

---

५. "इसी प्रकार, भिक्षुओ! आनन्द (भिक्षु) में भी चार आश्चर्यकारक अद्भुत धर्म (गुण) हैं। कौन से चार?

"भिक्षुओ! यदि कोई **भिक्षुपरिषद्** आनन्द के दर्शन हेतु ...पूर्ववत्...। (१)

६. "भिक्षुओ! यदि कोई **भिक्षुणीपरिषद्** आनन्द के दर्शन हेतु ...पूर्ववत्...। (२)

"भिक्षुओ! यदि कोई **उपासकपरिषद्** आनन्द के दर्शन हेतु ...पूर्ववत्...। (३)

"भिक्षुओ! यदि कोई **उपासिकापरिषद्** आनन्द के दर्शन हेतु आती है तो वह उसके दर्शन से ही सन्तुष्ट हो जाती है। यदि वह उनके लिये धर्मोपदेश आरम्भ करता है, तब वे उस भाषण से भी सन्तुष्ट (प्रसन्न) हो जाती है। जब आनन्द धर्मोपदेश पूर्ण करता है तब वह उपासिकापरिषद् उस भाषण से अतृप्त ही लगती है। (४)

"भिक्षुओ! आनन्द (भिक्षु) में ये चार? अद्भुत आश्चर्यमय धर्म हैं॥" ●

भयवर्ग त्रयोदश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आत्मानुवाद सूत्र, २. ऊर्मिभयसूत्र, ३. प्रथम नानाकरणसूत्र, ४. द्वितीय नानाकरणसूत्र, ५. प्रथम मैत्रीसूत्र, ६. द्वितीय मैत्रीसूत्र, ७. प्रथम तथागतआश्चर्यसूत्र, ८. द्वितीय तथागतआश्चर्यसूत्र, ९. आनन्दआश्चर्यसूत्र, एवं १०. चक्रवर्त्तिआश्चर्यसूत्र॥ ●

संयोजनानि अप्पहीनानि होन्ति, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि होन्ति, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि होन्ति।

२. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स ओरम्भागियानि [R.134] संयोजनानि पहीनानि होन्ति, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि होन्ति, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि होन्ति।

३. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स ओरम्भागियानि [B.451] संयोजनानि पहीनानि होन्ति, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि होन्ति, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि होन्ति।

४. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चस्स पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि होन्ति, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि होन्ति, भवपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि होन्ति।

५. ''कतमस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि अप्पहीनानि, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि? सकदागामिस्स। इमस्स खो, भिक्खवे, पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि अप्पहीनानि, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि।

६. ''कतमस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि,

---

१४. पुद्गलवर्ग

१. संयोजनसूत्र : : **चतुर्विध पुद्गल**

१. ''भिक्षुओ! यहाँ लोक में चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार?

यहाँ, भिक्षुओ! किसी पुद्गल के अवरभागीय संयोजन (इहलोक के बन्धन) भी प्रहीण नहीं हुए हैं, न उत्पत्ति (जन्म) सम्बन्धी संयोजन और न भवसंयोजन ही क्षीण हुए हैं। (१)

२. ''भिक्षुओ! किसी पुद्गल के अवरभागीय संयोजन तो क्षीण हो गये हैं, परन्तु उत्पत्तिदायक एवं भवदायक संयोजन क्षीण न हुए हैं। (२)

३. और, भिक्षुओ! किसी पुद्गल के अवरभागीय संयोजन एवं उत्पत्तिदायक संयोजन तो क्षीण हो गये हैं; परन्तु भवदायक संयोजन क्षीण न हुए हैं। (३)

४. और, भिक्षुओ! किसी पुद्गल के अवरभागीय संयोजन भी, उत्पत्तिदायक संयोजन एवं भवदायक संयोजन भी—तीनों ही क्षीण हो गये हैं। (४)

५. ''भिक्षुओ! किस पुद्गल के अवरभागीय संयोजन, उत्पत्तिदायक एवं भवदायक संयोजन—ये तीनों ही प्रकार के संयोजन क्षीण नहीं हुए रहते? **सकृदागामी साधक के।** भिक्षुओ! इस (सकृदागामी) पुद्गल के ये (उक्त) तीनों प्रकार के संयोजन क्षीण नहीं हुए रहते। (१)

६. तथा, भिक्षुओ! किस पुद्गल के अवरभागीय संयोजन तो क्षीण हो चुके होते हैं; परन्तु

उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि? उद्धंसोतस्स अकनिट्ठगामिनो। इमस्स खो, भिक्खवे, पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि।

७. "कतमस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि, [N.142] उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि? अन्तरापरिनिब्बायिस्स। इमस्स खो, भिक्खवे, पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि, भवपटिलाभियानि संयोजनानि अप्पहीनानि।

८. "कतमस्स, भिक्खवे, पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि, भवपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि? अरहतो। इमस्स खो, भिक्खवे, पुग्गलंस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि, उपपत्तिपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि, भवपटिलाभियानि संयोजनानि पहीनानि। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

[B.452,R.135] **२. पटिभानसुत्तं :** १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? युत्तप्पटिभानो, नो मुत्तप्पटिभानो; मुत्तप्पटिभानो, नो युत्तप्पटि- भानो; युत्तप्पटिभानो च मुत्तप्पटिभानो च; नेव युत्तप्पटिभानो न मुत्तप्पटिभानो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

उत्पत्तिदायक एवं भवदायक संयोजन क्षीण नहीं हुए रहते? **ऊर्ध्वस्रोत अकनिष्ठगामी साधक के।** भिक्षुओ! इस पुद्गल के अवरभागीय संयोजन क्षीण हो चुके होते हैं, परन्तु उत्पत्तिदायक एवं भवदायक संयोजन क्षीण नहीं हुए रहते। (२)

७. "और, भिक्षुओ! किस पुद्गल के अवरभागीय संयोजन एवं उत्पत्तिदायक संयोजन क्षीण हो चुके होते हैं; परन्तु भवदायक संयोजन क्षीण नहीं हुए रहते? **अन्तरापरिनिर्वायी साधक के।** भिक्षुओ! इस पुद्गल के पूर्वद्विविध संयोजन तो क्षीण हो चुके होते हैं; परन्तु भवदायक संयोजन क्षीण नहीं हुए रहते। (३)

८. "भिक्षुओ! किस पुद्गल के ये अवरभागीय संयोजन आदि तीनों ही संयोजन क्षीण हुए रहते हैं? **अर्हत्** के। इस (अर्हत्) पुद्गल के, भिक्षुओ! ये तीनों ही उक्त संयोजन क्षीण हो चुके रहते हैं। (४)

"भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥" ●

२. प्रतिभानसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. "भिक्षुओ! ये चतुर्विध लोक में दिखायी देते हैं। कौन चार? (१) जो युक्तप्रतिभान हो; परन्तु मुक्तप्रतिभान नहीं; (२) जो मुक्तप्रभान हो, परन्तु युक्तप्रतिभान नहीं; (३) जो युक्तप्रतिमान

३. उग्घटितञ्ञूसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? उग्घटितञ्ञू, विपञ्चितञ्ञू, नेय्यो, पदपरमो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

४. उट्ठानफलसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? उट्ठानफलूपजीवी न कम्मफलूपजीवी, कम्मफलूपजीवी न उट्ठानफलूपजीवी, उट्ठानफलूपजीवी चेव कम्मफलूपजीवी च, नेव उट्ठान-[N.143] फलूपजीवी न कम्मफलूपजीवी—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

५. सावज्जसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? सावज्जो, वज्जबहुलो, अप्पवज्जो, अनवज्जो।

२. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो **सावज्जो** होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सावज्जेन कायकम्मेन समन्नागतो होति, सावज्जेन वचीकम्मेन समन्नागतो होति, सावज्जेन मनोकम्मेन समन्नागतो होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो सावज्जो होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो **वज्जबहुलो** होति? इध, भिक्खवे, [R.136] एकच्चो पुग्गलो सावज्जेन बहुलं कायकम्मेन समन्नागतो होति, अप्पं अनवज्जेन; सावज्जेन

एवं मुक्तप्रतिभान—उभयविध हो; (४) या जो न युक्तप्रतिभान हो, न मुक्तप्रतिभान ही हो। भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल लोक में देखे जाते हैं॥'' ●

३. उद्घटितज्ञसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार? (१) उद्घटितज्ञ, (२) विपञ्चितज्ञ, (३) ज्ञेय, एवं (४) पदपरम—भिक्षुओ! ऐसे चार पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥''●

४. उत्थानफलसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चार प्रकार के पुद्गल दिखायी देते हैं। कौन चार? (१) जो उत्थानफलोपजीवी हो, परन्तु कर्मफलोपजीवी न हो; (२) जो कर्मफलोपजीवी हो, उत्थानफलोपजीवी न हो; (३) जो उत्थानफलोपजीवी भी हो और कर्मफलोपजीवी भी हो; तथा (४) जो न उत्थानफलोपजीवी हो और न कर्मफलोपजीवी ही हो—भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं॥'' ●

५. सावद्यसूत्र : : चतुर्विध पुद्गल

१. भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल होते हैं। कौन से चार? (१) सावद्य (सदोष), (२) वद्यबहुल, (३) अल्पावद्य, (४) अनवद्य।

२. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **सावद्य** होता है? यहाँ कोई पुद्गल सदोष कायकर्मों से, वाक्कर्मों से, मनःकर्मों से युक्त होता है, ऐसा पुद्गल 'सावद्य' कहलाता है। (१)

३. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **वद्यबहुल** (अधिकदोष) होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई

बहुलं वचीकम्मेन समन्नागतो होति, अप्पं अनवज्जेन; सावज्जेन बहुलं मनोकम्मेन समन्नागतो होति, अप्पं अनवज्जेन। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो वज्जबहुलो होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो **अप्पवज्जो** होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो [B.453] पुग्गलो अनवज्जेन बहुलं कायकम्मेन समन्नागतो होति; अप्पं सावज्जेन; अनवज्जेन बहुलं वचीकम्मेन समन्नागतो होति, अप्पं सावज्जेन; अनवज्जेन बहुलं मनोकम्मेन समन्नागतो होति, अप्पं सावज्जेन। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अप्पवज्जो होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो **अनवज्जो** होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अनवज्जेन कायकम्मेन समन्नागतो होति, अनवज्जेन वचीकम्मेन समन्नागतो होति, अनवज्जेन मनोकम्मेन समन्नागतो होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अनवज्जो होति।

"इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गलो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥ ●

६. पठमसीलसुत्तं : १. "चत्तारोमे,. भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलेसु न परिपूरकारी होति, समाधिस्मिं न परिपूरकारी, पञ्ञाय न परिपूरकारी।

[N.144] २. "इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलेसु न परिपूरकारी होति, समाधिस्मिं न परिपूरकारी, पञ्ञाय न परिपूरकारी।

३. "इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलेसु न परिपूरकारी होति, समाधिस्मिं न परिपूरकारी, पञ्ञाय न परिपूरकारी।

पुद्गल अधिक सदोष कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्म से युक्त होता है वह पुद्गल 'वद्यबहुल' कहलाता है। (२)

४. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **अल्पावद्य** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल अल्प सदोष कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्म से युक्त होता है, ऐसा पुद्गल, भिक्षुओ! 'अल्पावद्य' कहलाता है। (३)

५. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **अनवद्य** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल निर्दोष कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्मयुक्त होता है, ऐसा पुद्गल, भिक्षुओ! 'अनवद्य' कहलाता है।

"भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल भी लोक में होते हैं। ●

६. प्रथम शीलसूत्र : : शीलसम्बद्ध चतुर्विध पुद्गल

१. भिक्षुओ! यहाँ चार प्रकार के पुद्गल होते हैं। कौन से चार? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न शील में, न समाधि में, न प्रज्ञा में पूर्णता तक पहुँचा होता है। (१)

२. "कोई पुद्गल, भिक्षुओ! शील में तो पूर्ण होता है, पर समाधि या प्रज्ञा में पूर्णता तक नहीं पहुँचता। (२)

३. "कोई पुद्गल, भिक्षुओ! शील में और समाधि में पूर्ण होता है, परन्तु प्रज्ञा में पूर्णता तक नहीं पहुँचता। (३)

४. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलेसु न परिपूरकारी होति, समाधिस्मिं न परिपूरकारी, पञ्ञाय न परिपूरकारी। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ ●

७. दुतियसीलसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न सीलगरु होति न [R.137] सीलाधिपतेय्यो, न समाधिगरु होति न समाधाधिपतेय्यो, न पञ्ञागरु होति न पञ्ञाधिपतेय्यो।

२. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलगरु होति न सीलाधि-[B.454] पतेय्यो, न समाधिगरु होति न समाधाधिपतेय्यो, न पञ्ञागरु होति न पञ्ञाधिपतेय्यो।

३. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलगरु होति सीलाधिपतेय्यो, समाधिगरु होति समाधाधिपतेय्यो, न पञ्ञागरु होति न पञ्ञाधिपतेय्यो।

४. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो सीलगरु होति सीलाधिपतेय्यो, समाधिगरु होति समाधाधिपतेय्यो, पञ्ञागरु होति पञ्ञाधिपतेय्यो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति। ●

८. निकट्ठसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? निकट्ठकायो अनिकट्ठचित्तो, अनिकट्ठकायो निकट्ठचित्तो, अनिकट्ठकायो च अनिकट्ठचित्तो च, निकट्ठकायो च निकट्ठचित्तो च।

---

४. ''कोई पुद्गल, भिक्षुओ! शील, समाधि एवं प्रज्ञा—तीनों की साधना पूर्ण कर लेता है। (४)

''भिक्षुओ! इस लोक में ये चतुर्विध पुद्गल भी होते हैं॥'' ●

७. द्वितीय शीलसूत्र : : चतुर्विध गुरुधर्म

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल भी होते हैं। कौन से चार?

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न शील में गौरव रखता है न समाधि में आधिपत्य; न समाधि में गौरव रखता है न समाधि में आधिपत्य; न प्रज्ञा में गौरव रखता है, न प्रज्ञा में आधिपत्य। (१)

२. ''भिक्षुओ! कोई पुद्गल शील में तो गौरव एवं आधिपत्य रखता है, परन्तु वह न समाधि में गौरवभाव रखता है, न आधिपत्य, और न प्रज्ञा में ही गौरव एवं आधिपत्य रखता है। (२)

३. ''भिक्षुओ! कोई पुद्गल शील एवं समाधि में तो गुरुभाव और आधिपत्य रखता है, परन्तु यह प्रज्ञा में न गुरुभाव रखता है, न आधिपत्य। (३)

४. ''और यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल शील, समाधि एवं प्रज्ञा—तीनों में गुरुभाव भी रखता है तथा आधिपत्य भी। (४)

''इस तरह, भिक्षुओ! इस लोक में ये चार प्रकार के पुद्गल होते हैं॥'' ●

८. निष्कृष्टसूत्र : : चतुर्विध निष्कृष्ट पुद्गल

१. भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं। कौन से चार? (१) निष्कृष्ट-

[N.145] २. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो निकट्ठकायो होति अनिकट्ठचित्तो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवति। सो तत्थ कामवितक्कं पि वितक्केति ब्यापादवितक्कं पि वितक्केति विहिंसावितक्कं पि वितक्केति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो निकट्ठकायो होति अनिकट्ठचित्तो।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अनिकट्ठकायो होति निकट्ठचित्तो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न हेव खो अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवति। सो तत्थ नेक्खम्मवितक्कं पि वितक्केति अब्यापादवितक्कं पि वितक्केति अविहिंसावितक्कं पि वितक्केति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अनिकट्ठकायो होति निकट्ठचित्तो।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अनिकट्ठकायो च होति अनिकट्ठचित्तो च? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न हेव खो अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवति। सो तत्थ कामवितक्कं पि वितक्केति ब्यापादवितक्कं पि वितक्केति विहिंसावितक्कं पि [B.455,R.138] वितक्केति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अनिकट्ठकायो होति अनिकट्ठचित्तो च।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो निकट्ठकायो होति निकट्ठचित्तो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवति। सो तत्थ नेक्खम्मवितक्कं पि वितक्केति अब्यापादवितक्कं पि वितक्केति अविहिंसावितक्कं पि वितक्केति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो निकट्ठकायो च होति निकट्ठचित्तो च। (४)

काय एवं अनिष्कृष्टचित्त; (२) अनिष्कृष्टकाय एवं निष्कृष्टचित्त; (३) अनिष्कृष्टकाय एवं अनिष्कृष्टचित्त, तथा (४) निष्कृष्टकाय एवं निष्कृष्टचित्त।

२. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल कैसे **निष्कृष्टकाय एवं निष्कृष्टचित्त** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल अरण्य एवं वन के एकान्त स्थानों में साधनाहेतु अपना आसन लगाता है। परन्तु वहाँ भी वह कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क से ही चिन्तन करता रहता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'निष्कृष्टकाय परन्तु अनिष्कृष्टचित्त' कहलाता है। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **अनिष्कृष्टकाय एवं निष्कृष्टचित्त** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल यद्यपि अरण्य एवं वन के एकान्त स्थानों में साधनाहेतु तो नहीं जाता; परन्तु वह जहाँ भी रहता है वहीं नैष्क्राम्यवितर्क, अव्यापादवितर्क, एवं अविहिंसावितर्क से ही चिन्तन करता है। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल 'अनिष्कृष्टकाय एवं निष्कृष्टचित्त' कहलाता है। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **अनिष्कृष्टकाय एवं अनिष्कृष्टचित्त** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल अरण्य एवं वन के एकान्त स्थानों का सेवन नहीं करता; वह जहाँ भी रहता है वहीं कामवितर्क, व्यापादवितर्क एवं विहिंसावितर्क पर भी चिन्तन करता है। इस तरह, भिक्षुओ! 'अनिष्कृष्टकाय एवं निष्कृष्टचित्त' कहलाता है। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **निष्कृष्टकाय एवं निष्कृष्टचित्त** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल अरण्य या वन के एकान्त स्थानों में आसन लगाता है वहाँ वह निष्कामवितर्क,

''इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति। ●

९. धम्मकथिकसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो धम्मकथिको अप्पं च भासति असहितं च; परिसा चस्स न कुसलो होति सहितासहितस्स। एवरूपो, भिक्खवे, धम्मकथिको एवरूपाय परिसाय धम्मकथिको त्वेव सङ्खं गच्छति।

२. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो धम्मकथिको अप्पं च भासति सहितं [N.146] च; परिसा चस्स कुसला होति सहितासहितस्स। एवरूपो भिक्खवे, धम्मकथिको एवरूपाय परिसाय धम्मकथिको त्वेव सङ्खं गच्छति।

३. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो धम्मकथिको बहुं च भासति असहितं च; परिसा चस्स कुसला होति सहितासहितस्स। एवरूपो भिक्खवे, धम्मकथिको एवरूपाय परिसाय धम्मकथिको त्वेव सङ्खं गच्छति।

४. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो धम्मकथिको बहुं च भासति सहितं च; परिसा चस्स कुसला होति सहितासहितस्स। एवरूपो भिक्खवे, धम्मकथिको एवरूपाय परिसाय धम्मकथिको त्वेव सङ्खं गच्छति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो धम्मकथिका'' ति॥ ●

१०. वादीसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना [R.139] लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? अत्थि, भिक्खवे, वादी अत्थतो परियादानं गच्छति, नो [B.456]

अव्यापादवितर्क एवं अविहिंसावितर्क का चिन्तन करता है। इस तरह, भिक्षुओ! वह पुद्गल 'निष्कृष्ट काय एवं निष्कृष्ट चित्त' कहलाता है। (४)

''भिक्षुओ! लोक में ऐसे चार पुद्गल भी दिखायी देते हैं॥'' ●

९. धर्मकथिकसूत्र : : चार धर्मकथिक

१. ''भिक्षुओ! ये चार **धर्मकथिक** कहलाते हैं। कौन से चार? यहाँ कोई धर्मकथिक (धार्मिक कथावाचक) अल्प भी बोलता है तथा शास्त्रविरुद्ध भी। उस धर्मसभा में बैठे श्रोता भी यदि शास्त्रकुशल न हों तो वह धर्मवाचक वैसी सभा में 'धर्मकथिक' ही कहलायगा। (१)

२. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई धर्मकथिक यद्यपि अल्प ही भाषण करता है, परन्तु उसका वह भाषण शास्त्रानुकूल होता है। उस धर्मसभा में बैठे श्रोता भी शास्त्रकुशल हों। ऐसा धर्मवाचक, भिक्षुओ! उस सभा के लिये 'धर्मकथिक' ही कहलायगा। (२)

३. ''और, भिक्षुओ! कोई धर्मवाचक बहुत बोलता हो तथा वह शास्त्रविरुद्ध भी हो; धर्मसभा में सामने बैठे श्रोता भी शास्त्रकुशल न हों। भिक्षुओ! ऐसा धर्मवाचक भी उस सभा के लिये 'धर्मकथिक' कहलायगा। (३)

४. ''फिर, भिक्षुओ! कोई धर्मवाचक बहुत बोलता हो, परन्तु उसका वह बोलना शास्त्रसम्मत भी हो, तथा उसके सम्मुख धर्मसभा में बैठे श्रोता भी शास्त्रकुशल हों तो, भिक्षुओ! ऐसा धर्मवाचक उस सभा के लिये 'धर्मकथिक' ही कहलायगा॥

''भिक्षुओ! इस प्रकार लोक में ये धर्मकथिक चतुर्विध कहलाते हैं॥'' ●

ब्यञ्जनतो; अत्थि, भिक्खवे, वादी ब्यञ्जनतो परियादानं गच्छति, नो अत्थतो; अत्थि, भिक्खवे, वादी अत्थतो च ब्यञ्जनतो परियादानं गच्छति; अत्थि, भिक्खवे, वादी नेवत्थतो नो ब्यञ्जनतो परियादानं गच्छति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो वादी। अट्ठानमेतं, भिक्खवे, अनवकासो यं चतूहि पटिसम्भिदाहि समन्नागतो अत्थतो वा ब्यञ्जनतो वा परियादानं गच्छेय्या'' ति॥ ●

पुग्गलवग्गो चुद्दसमो॥

तस्सुद्दानं

संयोजनं पटिभानो, उग्घटितञ्ञु उट्ठानं।
सावज्जो द्वे च सीलानि, निकट्ठ धम्म वादी चा ति॥ ●

१५. आभावग्गो

[N.147] **१. आभासुत्तं :** १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, आभा। कतमा चतस्सो? चन्दाभा, सुरियाभा, अग्गाभा, पञ्ञाभा—इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो आभा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं चतस्सन्नं आभानं यदिदं पञ्ञाभा'' ति॥ ●

२. पभासुत्तं : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, पभा। कतमा चतस्सो? चन्दप्पभा,

---

१०. वादिसूत्र : : चार प्रकार के वादी

१. भिक्षुओ! चार प्रकार के **वादी** (मतविशेष के स्थापक) होते हैं? कौन से चार? (१) एक वादी होता है जो अर्थ से खाली (रिक्त या रहित) होता है, परन्तु व्यञ्जन से नहीं; (२) एकवादी होता है जो व्यञ्जन से तो रिक्त (रहित या खाली) होता है, अर्थ से नहीं; (३) एक वादी होता है जो अर्थ एवं व्यञ्जन—दोनों से रिक्त होता है; (४) और एक वादी होता है जो अर्थ एवं व्यञ्जन—दोनों से रिक्त नहीं होता। भिक्षुओ! ये चार 'वादी' होते हैं।

''भिक्षुओ! यह कभी सम्भव नहीं है कि कोई चारों प्रतिसंविदाओं (मीमांसापूर्ण ज्ञान) से युक्त पुद्गल अर्थ एवं व्यञ्जन से रिक्त हो॥'' **पुद्गलवर्ग चतुर्दश सम्पन्न॥** ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. संयोजनसूत्र, २. प्रतिभानसूत्र, ३. उद्घटितज्ञसूत्र, ४. उत्थानफलसूत्र, ५. सावद्यसूत्र, ६. प्रथम शीलसूत्र, ७. द्वितीय शीलसूत्र, ८. निष्कृष्टसूत्र, ९. धर्मकथिकसूत्र, एवं १०. वादिसूत्र॥ ●

१५. आभावर्ग

१. आभासूत्र : : चतुर्विध आभा

१. ''भिक्षुओ! ये **आभा** (कान्ति=छवि) चार होती हैं। कौन सी चार? (१) चन्द्र की आभा, (२) सूर्य की आभा, (३) अग्नि की आभा, एवं (४) प्रज्ञा की आभा। भिक्षुओ! ये चार आभाएँ होती हैं। भिक्षुओ! इन चारों आभाओं में प्रज्ञा की आभा श्रेष्ठ कहलाती है॥'' ●

सुरियप्पभा, अग्गिप्पभा, पञ्ञापभा—इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो पभा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमासं चतस्सन्नं पभानं यदिदं पञ्ञापभा'' ति॥ ●

३. आलोकसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, आलोका। कतमे चत्तारो? चन्दालोको, सुरियालोको, अग्गालोको, पञ्ञालोको—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो आलोका। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं चतुन्नं आलोकानं यदिदं पञ्ञालोको'' ति॥ ●

४. ओभाससुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, ओभासा। कतमे चत्तारो? चन्दोभासो, सुरियोभासो, अग्गोभासो, पञ्ञोभासो—इमे खो, भिक्खवे, [B.457,R.140] चत्तारो ओभासा। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं चतुन्नं ओभासानं यदिदं पञ्ञोभासो'' ति॥ ●

५. पज्जोतसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पज्जोता। कतमे चत्तारो? चन्दपज्जोतो, सुरियपज्जोतो, अग्गिपज्जोतो, पञ्ञापज्जोतो—इमे खो, भिक्खवे, [N.148] चत्तारो पज्जोता। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं चतुन्नं पज्जोतानं यदिदं पञ्ञापज्जोतो'' ति॥ ●

६. पठमकालसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, काला। कतमे चत्तारो? कालेन धम्मस्सवनं, कालेन धम्मसाकच्छा, कालेन सम्मसना, कालेन विपस्सना—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो काला'' ति॥ ●

७. दुतियकालसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, काला सम्मा भावियमाना सम्मा

---

२. प्रभासूत्र : : **चतुर्विध प्रभा**

१. ''भिक्षुओ! ये **प्रभा** (दीप्ति=द्युति) भी चार होती हैं। कौन सी चार? चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि एवं प्रज्ञा की प्रभा। भिक्षुओ! ये चार प्रभाएँ होती हैं। इन चारों प्रभाओं में प्रज्ञाप्रभा सर्वश्रेष्ठ होती है॥'' ●

३. आलोकसूत्र : : **चतुर्विध आलोक**

१. ''भिक्षुओ! ये चार **आलोक** (प्रकाश) कहलाते हैं। कौन चार? चन्द्रमा का, सूर्य का, अग्नि का, एवं प्रज्ञा का आलोक। भिक्षुओ! ये चार 'आलोक' होते हैं। भिक्षुओ! इनमें प्रज्ञा का आलोक श्रेष्ठ होता है॥'' ●

४. अवभाससूत्र : : **चतुर्विध अवभास**

१. ''भिक्षुओ! ये चार **अवभास** (=प्रकाश) कहलाते हैं। कौन चार? (१) चन्द्रमा का, (२) सूर्य का, (३) अग्नि का, एवं (४) प्रज्ञा का अवभास। भिक्षुओ! ये चार 'अवभास' होते हैं। भिक्षुओ! इन चारों अवभासों में प्रज्ञा का अवभास श्रेष्ठ कहलाता है॥'' ●

५. प्रद्योतसूत्र : : **चतुर्विध प्रद्योत**

१. ''भिक्षुओ! ये चार **प्रद्योत** (=चमक) होते हैं। कौन से चार? (१) चन्द्रमा का, (२) सूर्य का, (३) अग्नि का एवं (४) प्रज्ञा का प्रद्योत। भिक्षुओ! ये चार 'प्रद्योत' कहलाते हैं। इनमें प्रज्ञा का प्रद्योत श्रेष्ठ कहलाता है॥'' ●

६. प्रथम कालसूत्र : : **कालचतुष्टय**

१. ''भिक्षुओ! ये चार **काल** (विशेष समय=अवसर) होते हैं। कौन से चार? (१) काल

अनुपरिवत्तियमाना अनुपुब्बेन आसवानं खयं पापेन्ति। कतमे चत्तारो? कालेन धम्मस्सवनं, कालेन धम्मसाकच्छा, कालेन सम्मसना, कालेन विपस्सना—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो काला सम्मा भावियमाना सम्मा अनुपरिवत्तियमाना अनुपुब्बेन आसवानं खयं पापेन्ति।

२. "सेय्यथापि, भिक्खवे, उपरिपब्बते थुल्लफुसितके देवे वस्सन्ते तं उदकं यथानिन्नं पवत्तमानं पब्बतकन्दरपदरसाखा परिपूरेति; पब्बतकन्दरपदरसाखा परिपूरा कुसोब्भे परिपूरेन्ति; कुसोब्भा परिपूरा महासोब्भे परिपूरेन्ति; महासोब्भा परिपूरा कुन्नदियो परिपूरेन्ति; [B.458] कुन्नदियो परिपूरा महानदियो परिपूरेन्ति; महानदियो परिपूरा समुद्दं परिपूरेन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, इमे चत्तारो काला सम्मा भावियमाना सम्मा अनुपरिवत्तियमाना अनुपुब्बेन आसवानं खयं पापेन्ती" ति॥ ●

[R.141] **८. दुच्चरितसुत्तं** : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, वचीदुच्चरितानि। कतमानि चत्तारि? मुसावादो, पिसुणा वाचा, फरुसा वाचा, सम्फप्पलापो—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि वचीदुच्चरितानी" ति॥ ●

[N.149] **९. सुचरितसुत्तं** : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, वचीसु चरितानि। कतमानि

से धर्मश्रवण, (२) काल से धर्म साक्षात्कार, (३) काल से सम्मर्शन (ग्रहण), तथा (४) काल से विपश्यना—भिक्षुओ! ये चार 'काल' कहलाते हैं॥" ●

७. द्वितीय कालसूत्र : : कालचतुष्टय

१. "भिक्षुओ! यदि अवसरविशेषों का उचित उपयोग किया जाय या इनपर समुचित अभ्यास किया जाय तो इनसे साधक को आश्रवों के क्षय में अतिशय सहयोग मिलता है। ये चार होते हैं। कौन से चार? (१) समय पर धर्मश्रवण, (२) समय से धर्मसाक्षात्कार, (३) समय से धर्म का उद्ग्रहण एवं (४) समय से धर्म की विपश्यना। इस प्रकार इन चारों ही कालों का यथावसर उपयोग करने से आश्रवों के क्षय में अतिशय सहयोग मिलता है।

२. "जैसे, भिक्षुओ! किसी पर्वत पर घनघोर वर्षा से गिरा हुआ जल नीचे पर्वत की कन्दराओं, तलहटियों को भर दे, उनके भर जाने से उसके समीपस्थ छोटे या बड़े—सभी सरोवर एवं झील भर जायँ। उनके भर जाने से वह जल छोटी नदियों को भरता हुआ बड़ी नदियों को भी जलपूर्ण कर दे। अन्त में वह जल, उन महानदियों के सहारे से महासमुद्र में आकर उसे पूर्ण कर दे। इसी तरह, भिक्षुओ! ये चारों काल (सुअवसर) भली भाँति उपयुक्त होने पर, कार्य में लाये जाने पर क्रमश: आश्रवों को क्षीण करने में समर्थ हो ही जाते हैं॥" ●

८. दुश्चरितसूत्र : : वाणी के चार दुश्चरित

१. "भिक्षुओ! ये चार **वाणी के दुश्चरित** कहलाते हैं। कौन से चार? (१) मृषावाद, (२) पिशुनवाक्, (३) परुष (कठोर) वाक् एवं (४) सम्प्रलाप (बकवाद)—भिक्षुओ! ये चार 'वाणी के दुश्चरित' कहलाते हैं॥" ●

९. सुचरितसूत्र : : वाणी के चार सुचरित

१. "भिक्षुओ! ये चार **वाणी के सुचरित** कहलाते हैं। कौन से चार? (१) सत्यवाक्,

चत्तारि? सच्चवाचा, अपिसुणा वाचा, सण्हा वाचा, मन्तभासा—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि वचीदुच्चरितानी'' ति॥ ●

१०. सारसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, सारा। कतमे चत्तारो? सील सारो, समाधिसारो, पञ्ञासारो, विमुत्तिसारो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो सारा'' ति॥ ●

आभावग्गो पण्णरसमो।

तस्सुद्दानं

आभा पभा च आलोका, ओभासा चेव पज्जोता।
द्वे काला चरिता द्वे च, होन्ति सारेन ते दसा ति॥

ततियो पण्णासको समत्तो॥ ●

१६. इन्द्रियवग्गो

चतुत्थो पण्णासको

१. इन्द्रियसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, इन्द्रियानि। कतमानि [B.459] चत्तारि? सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि इन्द्रियानी'' ति॥ ●

२. सद्धाबलसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि चत्तारि? सद्धाबलं, विरियबलं, सतिबलं, समाधिबलं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि बलानी'' ति॥

३. पञ्ञाबलसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, बलानि। [N.150,R.142]

---

(२) अपिशुनवाक्, (३) श्लक्ष्णा (मृदु) वाक्, एवं (४) मन्त्रवाक् (सुविचारित वाणी)—भिक्षुओ! ये चार 'वाणी के सुचरित' कहलाते हैं॥'' ●

१०. सारसूत्र : : चतुर्विध सार

१. ''भिक्षुओ! ये **चार सार** (तत्त्व या बल) कहलाते हैं। कौन से चार? (१) शीलसार, (२) समाधिसार, (३) प्रज्ञासार एवं (४) विमुत्तिसार—भिक्षुओ! ये चार 'सार' कहलाते हैं॥''●

आभावर्ग पञ्चदश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आभासूत्र, २. प्रभासूत्र, ३. आलोकसूत्र, ४. अवभाससूत्र, ५. प्रद्योतसूत्र, ६. प्रथम कालसूत्र, ७. द्वितीय कालसूत्र, ८. दुश्चरितसूत्र, ९. सुचरितसूत्र एवं १०. सारसूत्र॥ ●

(चतुष्क निपात में) तृतीय पञ्चाशत्क समाप्त॥ ●

१६. इन्द्रियवर्ग

चतुर्थ पञ्चाशत्क

१. इन्द्रियसूत्र : : श्रद्धा आदि चार इन्द्रियाँ

१. ''भिक्षुओ! ये **चार इन्द्रियाँ** होती हैं। कौन सी चार? (२) श्रद्धेन्द्रिय, (२) वीर्येन्द्रिय, (३) स्मृतीन्द्रिय, एवं (४) समाधीन्द्रिय—भिक्षुओ! ये 'चार इन्द्रियाँ' होती हैं॥'' ●

कतमानि चत्तारि? पञ्ञाबलं, विरियबलं, अनवज्जबलं, सङ्गहबलं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि बलानी'' ति॥ ●

४. सतिबलसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि चत्तारि? सतिबलं, समाधिबलं, अनवज्जबलं, सङ्गहबलं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि बलानी'' ति॥ ●

५. पटिसङ्खानबलसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि चत्तारि? पटिसङ्खानबलं, भावनाधिबलं, अनवज्जबलं, सङ्गहबलं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि बलानी'' ति॥ ●

[B.460] **६. कप्पसुत्तं :** १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, कप्पस्स असङ्खेय्यानि। कतमानि चत्तारि? यदा, भिक्खवे, कप्पो संवट्टति, तं न सुकरं सङ्खातुं—एत्तकानि वस्सानी ति वा, एत्तकानि वस्ससतानी ति वा, एत्तकानि वस्ससहस्सानी ति वा, एत्तकानि वस्ससतसहस्सानी ति वा।

२. ''यदा, भिक्खवे, कप्पो संवट्टो तिट्ठति, तं न सुकरं सङ्खातुं—एत्तकानि वस्सानी ति वा, एत्तकानि वस्ससतानी ति वा, एत्तकानि वस्ससहस्सानी ति वा, एत्तकानि वस्ससतसहस्सानी ति वा।

३. ''यदा, भिक्खवे, कप्पो संवट्टो विवट्टति, तं न सुकरं सङ्खातुं—एत्तकानि

---

२. श्रद्धाबलसूत्र : : श्रद्धा आदि चार बल

१. ''भिक्षुओ! ये (श्रद्धा आदि) **चार बल** होते हैं। कौन से चार? (१) श्रद्धाबल, (२) वीर्यबल, (३) स्मृतिबल एवं (४) समाधिबल—भिक्षुओ! ये 'चार बल' होते हैं॥'' ●

३. प्रज्ञाबलसूत्र : : प्रज्ञा आदि चार बल

१. ''भिक्षुओ! ये (प्रज्ञा आदि) **चार बल** होते हैं। कौन से चार? (१) प्रज्ञाबल, (२) वीर्यबल, (३) अनवद्यबल, (४) संग्रहबल—भिक्षुओ! ये 'चार बल' होते हैं॥'' ●

४. स्मृतिबलसूत्र : : स्मृति आदि चार बल

१. ''भिक्षुओ! ये (स्मृति आदि) **चार बल** होते हैं। कौन से चार? (१) स्मृतिबल, (२) समाधिबल, (३) अनवद्यबल, (४) संग्रहबल—भिक्षुओ! ये 'चार बल' होते हैं॥'' ●

५. प्रतिसङ्ख्यानबलसूत्र : : प्रतिसङ्ख्यानबल आदि चार बल

१. ''भिक्षुओ! ये (प्रतिसङ्ख्यान आदि) **चार बल** होते हैं। कौन से चार? (१) प्रतिसङ्ख्यान बल, (२) भावना बल, (३) अनवद्य बल, एवं (४) संग्रहबल—भिक्षुओ! ये 'चार बल' होते हैं॥'' ●

६. कल्पसूत्र : : कल्प के चार असङ्ख्येय

१. ''भिक्षुओ! कल्प (सृष्टिक्षय) के ये **चार असङ्ख्येय** हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! जब कल्प क्षीण होता है, तब यह गणना सरल नहीं होती—इतने वर्ष हुए, या इतने सौ वर्ष हुए, या इतने हजार वर्ष हुए, या इतने लाख वर्ष हुए। (१)

वस्सानी ति वा, एत्तकानि वस्ससतानी ति वा, एत्तकानि वस्ससहस्सानी ति वा, एत्तकानि वस्ससतसहस्सानी ति वा।

४. ''यदा, भिक्खवे, कप्पो विवट्टो तिट्ठति, तं न सुकरं सङ्खातुं—एत्तकानि वस्सानी ति वा, एत्तकानि वस्ससतानी ति वा, एत्तकानि वस्ससहस्सानी ति वा, एत्तकानि [N.151] वस्ससतसहस्सानी ति वा। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि कप्पस्स असङ्ख्येय्यानी'' ति॥ ●

७. रोगसुत्तं : १. ''द्वेमे, भिक्खवे, रोगा। कतमे द्वे? कायिको च रोगो [R.143] चेतसिको च रोगो। दिस्सन्ति, भिक्खवे, सत्ता कायिकेन रोगेन एकं पि वस्सं आरोग्यं पटिजानमाना, द्वे पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, तीणि पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, चत्तारि पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, पञ्च पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, दस पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, वीसति पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, तिंसं पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, चत्तारीसं पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, पञ्ञासं पि वस्सानि आरोग्यं पटिजानमाना, वस्ससतं पि, भिय्यो पि आरोग्यं पटिजानमाना। ते, भिक्खवे, सत्ता सुदुल्लभा लोकस्मिं ये चेतसिकेन रोगेन मुहुत्तं पि आरोग्यं पटिजानन्ति, अञ्ञत्र खीणासवेहि।

२. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पब्बजितस्स रोगा। कतमे चत्तारो? इध, [B.461] भिक्खवे, भिक्खु महिच्छो होति विघातवा असन्तुट्ठो इतरीतरचीवरपिण्डपातसेनासन-गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन। सो महिच्छो समानो विघातवा असन्तुट्ठो इतरीतचीवरपिण्ड-

---

२. ''जब, भिक्षुओ! कल्प का यह संवर्त ठहरता है, तब भी यह गणना सरल नहीं होती—इतने वर्ष हुए हैं, इतने सौ वर्ष हुए हैं, इतने हजार वर्ष हुए हैं या इतने लाख वर्ष हुए हैं। (२)

३. ''जब, भिक्षुओ! कल्प का विवर्त (सृष्टि का प्रारम्भ) होने लगता है, तब भी यह गणना सरल नहीं होती—इतने वर्ष हुए हैं या इतने सौ वर्ष हुए हैं या इतने हजार वर्ष हुए हैं या इतने लाख वर्ष हुए हैं। (३)

४. ''जब, भिक्षुओ! कल्प का यह विवर्त ठहरता है, तब भी यह गणना सरल नहीं होती—इतने वर्ष हुए हैं, या इतने सौ वर्ष हुए हैं, या इतने हजार वर्ष हुए हैं, या इतने लाख वर्ष हुए हैं। (४)

''भिक्षुओ! यों ये 'कल्प के चार असङ्ख्येय' कहलाते हैं॥'' ●

७. रोगसूत्र : : चतुर्विध रोग

१. ''भिक्षुओ! ये दो रोग होते हैं। कौन से दो? (१) कायिक रोग, एवं (२) चैतसिक रोग। भिक्षुओ! बहुत से लोग कायिक रोग से एक वर्ष, दो वर्ष, तीन, चार, पाँच, दश, बीस, तीस, चालीस, पचास यहाँ तक कि सौ वर्ष या इसके बाद मुक्त होते हुए पाये जाते हैं। (२) भिक्षुओ! ऐसे लोग तो इस लोक में, क्षीणाश्रव अर्हतों को छोड़कर, दुर्लभ ही हैं जो एक मुहूर्तपर्यन्त भी चैतसिक रोग से मुक्त रह पाते हों।

२. ''भिक्षुओ! प्रव्रजित के रोग चार प्रकार के होते हैं। कौन से चार? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु चीवर, पिण्डपात, शयनासन या औषध—इनमें से किसी न किसी के प्रति अतिशय

पातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन पापिकं इच्छं पणिदहति अनवञ्ञप्पटिलाभाय लाभसक्कारसिलोकप्पटिलाभाय। सो उट्ठहति घटति वायमति अनवञ्ञप्पटिलाभाय लाभसक्कारसिलोकप्पटिलाभाय। सो सङ्खाय कुलानि उपसङ्कमति, सङ्खाय निसीदति, सङ्खाय धम्मं भासति, सङ्खाय उच्चारपस्सावं सन्धारेति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पब्बजितस्स रोगा।

३. "तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'न महिच्छा भविस्साम विघातवन्तो असन्तुट्ठा इतरीतरचीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन, न [N.152] पापिकं इच्छं पणिदहिस्सामा अनवञ्ञप्पटिलाभाय लाभसक्कारसिलोकप्पटिलाभाय, न उट्ठहिस्साम न घटेस्साम न वायमिस्साम अनवञ्ञप्पटिलाभाय लाभसक्कारसिलोकप्पटिलाभाय, खमा भविस्साम सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय पिपासाय डंसमकसवातातपसिरिंसपसम्फस्सानं दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं, उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासकजातिका भविस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ ●

८. परिहानिसुत्तं : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—"आवुसो [R.144] भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

२. "यो हि कोचि, आवुसो, भिक्खु वा भिक्खुनी वा चत्तारो धम्मे अत्तनि

लोभी, ईर्ष्यालु एवं असन्तुष्ट होता है। (२) वह इस मानसिक स्थिति में आकर उक्त वस्तुओं के लिये या सदोष लाभ, सत्कार एवं यश पाने के लिये अपने मन में निश्चय कर लेता है। (३) और तदर्थ प्रयास आरम्भ करता है। (४) तब वह चुन चुनकर ऐसे घरों में जाता है, बैठता है, धर्मोपदेश करता है, या जान बूझकर मल एवं मूत्र के उत्सर्ग का बहाना (छल) करता है। भिक्षुओ! प्रव्रजित के ये चतुर्विध रोग हैं।

"अत: भिक्षुओ! तुम्हें यह शिक्षा लेनी चाहिये—(१) 'हम चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं औषध—इनमें से किसी के प्रति भी अतिशय लोभी, ईर्ष्यालु एवं असन्तुष्ट नहीं होंगे। (२) और न अपने किसी सदोष लाभ, सत्कार एवं कीर्ति के लिये कोई पापमयी इच्छा मन में लायेंगे। (३) न इनकी प्राप्ति के लिये कोई प्रयास या उदयोग ही करेंगे। (४) हम तो शीत ताप, भूख प्यास एवं मच्छर-मक्खी दंश को सहन करने का अपना स्वभाव बनायेंगे। साथ ही हम अपनी अन्य दु:खदायी एवं असह्य तथा प्राणहर वेदनाओं को भी सहन करने का अभ्यास करेंगे।' भिक्षुओ! तुमको ऐसी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये॥" ●

८. परिहानिसूत्र : : परिहेय चार धर्म

१. वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को अपने पास बुलाया। भिक्षु उनके पास आये। तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने उनसे यों कहा—

२. "आयुष्मानो! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन चार धर्मों को अपने में देखें तो उसे निश्चित

समनुपस्सति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। परिहानमेतं वुत्तं भगवता। कतमे चत्तारो? रागवेपुल्लत्तं, दोसवेपुल्लत्तं, मोहवेपुल्लत्तं, गम्भीरेसु खो [B.462] पनस्स ठानाठानेसु पञ्ञाचक्खु न कमति। यो हि कोचि, आवुसो, भिक्खु वा भिक्खुनी वा इमे चत्तारो धम्मे अत्तनि समनुपस्सति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। परिहानमेतं वुत्तं भगवता।

३. ''यो हि कोचि, आवुसो, भिक्खु वा भिक्खुनी वा चत्तारो धम्मे अत्तनि समनुपस्सति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'न परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। अपरिहानमेतं वुत्तं भगवता। कतमे चत्तारो? रागतनुत्तं, दोसतनुत्तं, मोहतनुत्तं, गम्भीरेसु खो पनस्स ठानाठानेसु पञ्ञाचक्खु   कमति। यो हि कोचि, आवुसो, भिक्खु वा भिक्खुनी वा इमे चत्तारो धम्मे अत्तनि समनुपस्सति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'न परिहायामि कुसलेहि धम्मेहि'। अपरिहानमेतं वुत्तं भगवता'' ति॥ ●

९. भिक्खुनीसुत्तं : १. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा आनन्दो [N.153] कोसम्बियं विहरति घोसितारोमे। अथ खो अञ्ञतरा भिक्खुनी अञ्ञतरं पुरिसं आमन्तेसि—''एहि त्वं, अम्भो पुरिस, येनय्यो आनन्दो तेनुपसङ्कम; उपसङ्कमित्वा मम वचनेन अय्यस्स आनन्दस्स पादे सिरसा वन्द—'इत्थन्नामा, भन्ते, भिक्खुनी आबाधिकिनी दुक्खिता बाळ्हगिलाना। सा अय्यस्स आनन्दस्स पादे सिरसा वन्दती' ति। एवं च वदेहि—'साधु किर, भन्ते, अय्यो आनन्दो येन भिक्खुनुपस्सयो येन सा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमतु

समझना चाहिये—'मैं कुशल धर्मों से च्युत हो रहा हूँ।' भगवान् ने इन चार धर्मों का सर्वथा त्याग बताया है। कौन से चार? (१) रागविपुलता, (२) द्वेषविपुलता, (३) मोहविपुलता एवं (४) गम्भीर उचित अनुचित स्थानों में प्रज्ञाचक्षु का न पहुँचना। आयुष्मानो! जो भी भिक्षु या भिक्षुणी अपने में इन चार धर्मों को देखे तो वह समझ ले कि वह कुशल धर्मों से च्युत हो रहा है।' भगवान् ने इनका त्याग बताया है।

३. ''आयुष्मानो! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी अपने में इन चार धर्मों को देखें तो उसे निश्चित समझना चाहिये—'मैं कुशल धर्मों से च्युत नहीं हो रहा हूँ।' भगवान् ने इन चार धर्मों का सतत अभ्यास करना बताया है। कौन से चार? (१) रागक्षीणता, (२) द्वेषक्षीणता, (३) मोहक्षीणता एवं (४) उचित अनुचित स्थानों में प्रज्ञाचक्षु का अवश्य पहुँचना। आयुष्मानो! जो भिक्षु या भिक्षुणी अपने में ...पूर्ववत्... च्युत नहीं हो रहा है। भगवान् ने इन चारों धर्मों का सतत अभ्यास करना बताया है॥'' ●

९. भिक्षुणीसूत्र : : चार धर्म त्याज्य

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब किसी भिक्षुणी ने किसी पुरुष को बुलाकर यह कहा—''अरे भाई! तुम आयुष्मान् आनन्द के पास जाओ। जाकर मेरी ओर से उनके चरणों में वन्दना कर यह कहना—'भन्ते! इस नाम की भिक्षुणी बहुत रोगग्रस्त है, वह आपको शिर झुकाकर प्रणाम करती है।'

अनुकम्पं उपादाया''' ति। ''एवं, अय्ये'' ति खो सो पुरिसो तस्सा भिक्खुनिया पटिस्सुत्वा येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा [R.145] एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो पुरिसो आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—

२. ''इत्थन्नामा, भन्ते, भिक्खुनी आबाधिकिनी दुक्खिता बाळ्हगिलाना। सा आयस्मतो आनन्दस्स पादे सिरसा वन्दति, एवं च वदेहित—'साधु किर, भन्ते, अयस्मा आनन्दो येन भिक्खुनुपस्सयो येन सा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया''' ति। अधिवासेसि खो आयस्मा आनन्दो तुण्हीभावेन।

[B.463] ३. अथ खो आयस्मा आनन्दो निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन भिक्खुनुपस्सयो येन सा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो सा भिक्खुनी आयस्मन्तं आनन्दं दूरतो व आगच्छन्तं। दिस्वा ससीसं पारुपित्वा मञ्चके निपज्जि। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन सा भिक्खुनी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो आयस्मा आनन्दो तं भिक्खुनिं एतदवोच—

४. ''आहारसम्भूतो अयं, भगिनि, कायो आहारं निस्साय। आहारो पहातब्बो। तण्हासम्भूतो अयं, भगिनि, कायो तण्हं निस्साय। तण्हा पहातब्बा। मानसम्भूतो अयं, भगिनि, कायो मानं निस्साय। मानो पहातब्बो। मेथुनसम्भूतो अयं, भगिनि, कायो। मेथुने च सेतुघातो वुत्तो भगवता।

[N.154] ५. '''आहारसम्भूतो अयं, भगिनि, कायो आहारं निस्साय। आहारो पहातब्बो' ति, इति खो पनेतं वुत्तं। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, भगिनि, भिक्खु पटिसङ्खा योनिसो

---

२. तथा यह भी कहना—'अच्छा होगा, भन्ते! यदि आप भिक्षुण्युपाश्रय में आकर अनुकम्पापूर्वक इस भिक्षुणी को दर्शन दें।' '' ''अच्छा, आर्ये!'' उस भिक्षुणी से यह कहकर वह पुरुष आयुष्मान् आनन्द के पास आया तथा उनको प्रणाम कर उस भिक्षुणी का निवेदन अक्षरश: सुना दिया। आयुष्मान् आनन्द ने भी मौन भाव से स्वीकार कर लिया।

३. तब आयुष्मान् आनन्द ...पूर्ववत्... भिक्षुण्युपाश्रय में उस रोगाक्रान्त भिक्षुणी के यहाँ गये। भिक्षुणी आयुष्मान् आनन्द को दूर से ही देखकर अपने शिर पर पल्ला देकर मञ्च पर लेट गयी। आयुष्मान् आनन्द भी वहाँ जाकर, प्रज्ञप्त आसन पर बैठते हुए, भिक्षुणी से यों बोले—

४. (१) ''भगिनि! हम लोगों का यह शरीर आहार से ही वृद्धि पा सका है। आहार के सहारे से यह टिका हुआ है। अत: आहार का उपयोग कम ही करना चाहिये। (२) तृष्णा से ही वृद्धि पा सका है। अत: इसका त्याग करना चाहिये। (३) वृथाभिमान के सहारे... (४) मैथुन के सहारे वृद्धि पाता है, अत: इसका त्याग करना चाहिये।

५. ''भगिनि! मैंने अभी कहा—'हम लोगों का यह शरीर आहार को उत्पत्ति एवं वृद्धि पाता है, अत: इसका त्याग करना चाहिये'—यह किस आधार पर कहा? यहाँ, भगिनि! कोई भिक्षु

आहारं आहारेति—'नेव दवाय न मदाय न मण्डनाय न विभूसनाय, यावदेव इमस्स कायस्स ठितिया यापनाय विहिंसूपरतिया ब्रह्मचरियानुग्गहाय। इति पुराणं च वेदनं पटिहङ्खामि, नवं च वेदनं न उप्पादेस्सामि। यात्रा च मे भविस्सति अनवज्जता च फासुविहारो चा' ति। सो अपरेन समयेन आहारं निस्साय आहारं पजहति। 'आहारसम्भूतो अयं, भगिनि, कायो आहारं निस्साय। आहारो पहातब्बो' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

६. '''तण्हासम्भूतो अयं, भगिनि, कायो तण्हं निस्साय। तण्हा पहातब्बा' [R.146] ति, इति खो पनेतं वुत्तं। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, भगिनि, भिक्खु सुणाति—'इत्थन्नामो किर भिक्खु आसवानं खया अनासवं चतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती' ति। तस्स एवं होति—'कुदास्सु नाम अहं पि आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सामी' ति! सो अपरेन समयेन तण्हं निस्साय तण्हं पजहति। 'तण्हासम्भूतो अयं, भगिनि, कायो तण्हं निस्साय तण्हा तहातब्बा' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

७. '''मानसम्भूतो अयं, भगिनि, कायो मानं निस्साय। मानो पहातब्बो' [B.464] ति, इति खो पनेतं वुत्तं। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, भगिनि, भिक्खु सुणाति—'इत्थन्नामो किर भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरती' ति। तस्स एवं होति—'सो हि नाम आयस्मा आसवानं

सूक्ष्मता से सोच समझ कर ही आहार ग्रहण करता है। वह न क्रीड़ा (मौजमस्ती) के लिये, न मद (अहङ्कार) के वश होकर, न मण्डन (शरीर को मोटा ताजा बनाने के लिये कि वह दूसरों को सुन्दर लगे), न अलङ्करण के लिये उसे ग्रहण करता है; अपितु वह केवल अपने शरीर की स्थिति के लिये, जीवनयापन के लिये, शरीर को नाश से बचाने के लिये तथा धर्मसाधना में सुविधा के लिये ही भोजन का ग्रहण करता है। वह सोचता है—'इस प्रकार मैं अपनी पुरानी वेदनाओं को नष्ट कर सकूँगा तथा नयी वेदनाओं को उत्पन्न न होने दूँगा। इस तरह मेरी जीवनयात्रा भी चलती रहेगी और साधना में सरलता भी बनी रहेगी।' वह आगे चलकर इस आहार के आश्रय का सर्वथा त्याग कर देता है। 'हम लोगों का यह शरीर...'—यह जो कहा था वह इसी आशय से कहा था।

६. ''भगिनी! यह शरीर तृष्णा से उत्पन्न है तथा उसी पर टिका हुआ है। अत: 'तृष्णा का त्याग कर देना चाहिये' यह कहा गया, यह किस आधार पर कहा गया? भगिनि! यहाँ कोई भिक्षु सुनता है—'इस नाम का भिक्षु आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति को प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात् कर प्राप्त कर साधना करता है।' तब श्रोता भिक्षु को यह विचार होता है—'कब मैं भी आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति को... प्राप्त कर साधना कर सकूँगा।' तब वह श्रोता भिक्षु शनै: शनै: इस शरीर की आधारभूत तृष्णा का त्याग कर देता है। भगिनि! 'यह शरीर तृष्णासम्भूत...' यह जो कहा था वह इसी आधार पर कहा था।

७. '' 'भगिनि! यह शरीर मानसम्भूत एवं मान पर ही टिका हुआ है, अत: मान का त्याग कर

खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सति; किमङ्गं पनाहं' ति! सो अपरेन समयेन मानं निस्साय मानं पजहति। 'मानसम्भूतो अयं, भगिनि, कायो मानं निस्साय। मानो पहातब्बो' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

८. ''मेथुनसम्भूतो अयं, भगिनि, कायो। मेथुने च सेतुघातो वुत्तो भगवता'' ति।

९. अथ खो सा भिक्खुनी मञ्चका वुट्ठहित्वा एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा आयस्मतो [N.155] आनन्दस्स पादेसु सिरसा निपतित्वा आयस्मन्तं आनन्दं एतदवोच—''अच्चयो मं, भन्ते, अच्चगमा, यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, याहं एवमकासिं। तस्सा मे, भन्ते, अय्यो आनन्दो अच्चयं अच्चयतो पटिग्गण्हातु, आयतिं संवराया'' ति।

''तग्घ तं, भगिनि अच्चयो अच्चगमा, यथाबालं यथामूळ्हं यथाअकुसलं, या त्वं एवमकासि। यतो च खो त्वं, भगिनि, अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोसि, तं ते मयं पटिग्गण्हाम। वुद्धि हेसा, भगिनि, अरियस्स विनये यो अच्चयं अच्चयतो दिस्वा यथाधम्मं पटिकरोति आयतिं संवरं आपज्जती'' ति॥ ●

१०. सुगतविनयसुत्तं : १. ''सुगतो वा, भिक्खवे, लोके तिट्ठमानो सुगतविनयो [R.147] वा तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं।

२. ''कतमो च, भिक्खवे, सुगतो? इध, भिक्खवे, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं

देना चाहिये।'—यह जो कहा था, वह किस आधार पर कहा था? भगिनि! यहाँ कोई भिक्षु सुनता है— ...पूर्ववत्... इसी आधार पर कहा था।

८. ''भगिनि! हमारा यह शरीर मैथुन से सम्भूत है। और भगवान् ने इसको भिक्षु के लिये मर्यादाभङ्ग बताया है।''

९. तब उस भिक्षुणी ने मञ्चक से उठकर वस्त्र को एक कन्धे पर आयुष्मान् आनन्द के चरणों में प्रणाम कर उनसे यों निवेदन किया—''भन्ते! मुझसे, एक मूर्ख के समान यह भूल हो गयी कि मैने आपको यहाँ आने का कष्ट दिया। अत:, भन्ते! आप मेरे इस प्रमाद को क्षमा करें, भविष्य में मुझसे ऐसा न होगा!''

''निश्चय ही, भगिनि! तुमसे यह मूर्खों के समान ही प्रमाद हुआ। अब तुम अपना यह प्रमाद स्वीकार कर रही हो। यदि तुम भविष्य में ऐसा प्रमाद न करो तो मैं तुम्हें क्षमा कर रहा हूँ। भगिनि! हमारे इस आर्यविनय में क्षमा करना धर्म की वृद्धि का हेतु ही कहा गया है॥'' ●

१०. सुगतविनयसूत्र : : सुगत, विनय एवं चार धर्म

१. ''भिक्षुओ! लोक में स्थित सुगत एवं उनका उपदेश—दोनों ही बहुजनों के हित एवं सुख के सम्पादनार्थ होते हैं, लोक पर अनुकम्पा तथा देव एवं मनुष्यों के हित-सुख सम्पादन एवं प्रयोजन की सिद्धि के लिये होते हैं।

२. ''भिक्षुओ! **सुगत** किसे कहते हैं? भिक्षुओ! जो तथागत लोक में अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध

सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था [B.465] देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। अयं, भिक्खवे, **सुगतो**।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, सुगतविनयो? सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। अयं, भिक्खवे, **सुगतविनयो**। एवं सुगतो वा, भिक्खवे, लोके तिट्ठमानो सुगतविनयो वा तदस्स बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं ति।

४. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खू दुग्गहितं सुत्तन्तं परियापुणन्ति दुन्निक्खित्तेहि पदब्यञ्जनेहि। दुन्निक्खित्तस्स, भिक्खवे, पदब्यञ्जनस्स अत्थो पि दुन्नयो होति। अयं, भिक्खवे, **पठमो धम्मो** सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू दुब्बचा होन्ति दोवचस्सकरणेहि [N.156] धम्मेहि समन्नागता अक्खमा अप्पदक्खिणग्गाहिनो अनुसासनिं। अयं, भिक्खवे, **दुतियो धम्मो** सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

६. ''पुन च परं, भिक्खवे, ये ते भिक्खू बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा, ते न सक्कच्चं सुत्तन्तं परं वाचेन्ति। तेसं अच्चयेन छिन्नमूलको सुत्तन्तो होति अप्पटिसरणो। अयं, भिक्खवे, **ततियो धम्मो** सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं ...पूर्ववत्... देव मनुष्यों के शास्ता बुद्ध भगवान्। भिक्षुओ! ये ही 'सुगत' कहलाते हैं।

३. ''और, भिक्षुओ! यह **सुगतविनय** क्या है? वे भगवान् बुद्ध आदि अन्त एवं मध्य में सर्वत्र कल्याणभूत, सार्थक, सर्वथा परिशुद्ध जिस धर्म की देशना करते हैं वही कहलाता है भिक्षुओ! **'सुगतविनय'**। इस प्रकार के सुगत तथा उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म—दोनों ही बहुत जनों के हित, सुख ...पूर्ववत्... प्रयोजन सिद्धि के लिये होते हैं।

४. ''भिक्षुओ! ये चार धर्म (सुगतोपदिष्ट) सद्धर्म के नाश एवं लोप के कारक होते हैं। कौन से चार? यहाँ, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु उनके द्वारा उपदिष्ट सूत्रान्त के अर्थ एवं व्यञ्जन को मिथ्यारूप से ग्रहण करते हैं। तब इस प्रकार मिथ्यारूप से गृहीत सूत्र का अर्थ भी दुर्गृहीत ही होगा। इस प्रकार यह **प्रथम धर्म** सद्धर्म के नाश एवं लोप का कारक होता है। (१)

५. ''फिर, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु दुर्वच होते हैं, तथा दौर्वचस्यकारक धर्मों से सम्पन्न होकर धर्मानुशासन से बाहर चले जाते हैं। इस प्रकार यह **द्वितीय धर्म** सद्धर्म के नाश एवं लोप का कारक होता है। (२)

६. फिर, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु बहुश्रुत, आगमज्ञ, धर्मधर, विनयधर एवं मातृकाधर होते हैं; वे सावधानतया सूत्रान्तों का वाचन नहीं करते। उनके मरने के बाद ये सूत्रान्त छिन्नमूल एवं असहाय हो जाते हैं। इस प्रकार यह **तृतीय धर्म** सद्धर्म के नाश एवं लोप का कारक होता है। (३)

[R.148] ७. ''पुन च परं, भिक्खवे, थेरा भिक्खू बाहुलिका होन्ति साथलिका, ओक्कमने पुब्बङ्गमा, पविवेके निक्खित्तधुरा, न विरियं आरभन्ति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। तेसं पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति। सा पि होति बाहुलिका साथलिका, ओक्कमने पुब्बङ्गमा, पविवेके निक्खित्तधुरा, न विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। अयं, भिक्खवे, **चतुत्थो धम्मो** सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ती ति॥

[B.466] ८. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खू सुग्गहितं सुत्तन्तं परियापुणन्ति सुनिक्खित्तेहि पदब्यञ्जनेहि। सुनिक्खित्तस्स, भिक्खवे, पदब्यञ्जनस्स अत्थो पि सुनयो होति। अयं, भिक्खवे, **पठमो धम्मो** सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

९. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू सुवचा होन्ति सोवचस्सकरणेहि धम्मेहि समन्नागता खमा पदक्खिणग्गाहिनो अनुसासनिं। अयं, भिक्खवे, **दुतियो धम्मो** सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

१०. ''पुन च परं, भिक्खवे, ये ते भिक्खू बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा [N.157] मातिकाधरा, ते सक्कच्चं सुत्तन्तं परं वाचेन्ति। तेसं अच्चयेन नच्छिन्नमूलको

---

७. फिर, भिक्षुओ! कुछ स्थविर भिक्षु परिगृही, कर्तव्य में शिथिल, लाभार्थ कहीं भी प्रवेश में आगे रहने वाले, एकान्तवास की उपेक्षा करने वाले अप्राप्त की प्राप्ति हेतु या अज्ञात के ज्ञान हेतु या असाक्षात्कृत के साक्षात्कार हेतु प्रयास न करनेवाले होते हैं। उनके पीछे आनेवाली जनता भी उनका ही अनुगमन करती है तथा वह इन उपर्युक्त दुर्गुणों से युक्त हो जाती है। भिक्षुओ! यह **चतुर्थ धर्म** है जो सद्धर्म के नाश एवं लोप का कारक होता है। (४)

भिक्षुओ! ये चार धर्म सद्धर्म के लोपक एवं नाशक होते हैं॥ (क)

८. ''तथा, भिक्षुओ! ये चार धर्म सद्धर्म की स्थिति, सत्ता, एवं विद्यमानता के लिये कार्य-कर होते हैं। कौन से चार? यहाँ, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु सुगृहीत सूत्रान्तों का, सुव्यवस्थित पदों एवं व्यञ्जनों के साथ, प्रवचन करते हैं। किये गये इस प्रवचन से इन सूत्रान्तों का अर्थ भी सुगृहीत होता है। यह, भिक्षुओ! **प्रथम धर्म** सद्धर्म की स्थिति, सत्ता एवं विद्यमानता के लिये कार्यकर होता है। (१)

९. ''फिर, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु सौवचस्यकारक धर्मों से युक्त कर्णमधुर शब्दों से धर्म प्रवचन करते हैं। इस प्रकार वे धर्मानुशासन को भी दृढता प्रदान करते हैं। भिक्षुओ! यह **दूसरा धर्म** सद्धर्म की स्थिति, सत्ता एवं विद्यमानता के लिये कार्यकर होता है। (२)

१०. ''फिर, भिक्षुओ! जो भिक्षु बहुश्रुत, आगमज्ञ, धर्मधर, विनयधर एवं मातृकाधर होते हैं वे सावधानी से सूत्रान्तों का प्रवचन करते हैं। इस कारण, उन भिक्षुओं के देहपात के बाद भी इस

सुत्तन्तो होति सप्पटिसरणो। अयं, भिक्खवे, **ततियो धम्मो** सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

११. ''पुन च परं, भिक्खवे, थेरा भिक्खू न बाहुलिका होन्ति न साथलिका, ओक्कमने निक्खित्तधुरा, पविवेके पुब्बङ्गमा, विरियं आरभन्ति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। तेसं पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति। सा पि होति न बाहुलिका न साथलिका, ओक्कमने निक्खित्तधुरा, पविवेके पुब्बङ्गमा, विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। अयं, भिक्खवे, **चतुत्थो धम्मो** सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया [R.149] असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ती'' ति॥ ●

इन्द्रियवग्गो सोळसमो॥

तस्सुद्दानं

इन्द्रियानि सद्धा पञ्ञा, सति सङ्खानपञ्चमं।
कप्पो रोगो परिहानि, भिक्खुनी सुगतेन चा ति॥ ●

१७. पटिपदावग्गो

१. सङ्खित्तसुत्तं : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, पटिपदा। कतमा [B.467] चतस्सो? दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा—इमा खो, भिक्खवे, **चतस्सो पटिपदा**'' ति॥

२. वित्थारसुत्तं : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, पटिपदा। कतमा [N.158]

सद्धर्म का मूल उच्छिन्न नहीं होता तथा इसको आधार मिला रहता है। भिक्षुओ! यह **तीसरा धर्म** भी सद्धर्म की स्थिति, सत्ता एवं विद्यमानता के लिये कार्यकर होता है। (३)

११. ''फिर, भिक्षुओ! कुछ स्थविर भिक्षु अपरिग्रही, कर्तव्य में सावधान, कहीं भी लौकिक लाभार्थ प्रवेश न करने वाले, एकान्तवास में उत्साही; अप्राप्त की प्राप्ति हेतु, अज्ञात के ज्ञानहेतु, तथा असाक्षात्कृत के साक्षात्कार हेतु सतत प्रयास करनेवाले होते हैं। उनके पीछे आनेवाली जनता भी उनका ही अनुगमन करती है तथा वह भी इन उपर्युक्त सद्गुणों से युक्त रहती है। भिक्षुओ! यह **चतुर्थ धर्म** है जो इस सद्धर्म की स्थिति, सत्ता एवं विद्यमानता के लिये कार्यकर होता है। (४)

''भिक्षुओ! ये चार धर्म सद्धर्म की स्थिति, सत्ता एवं विद्यमानता के लिये अति आवश्यक हैं॥'' (ख) **इन्द्रियवर्ग षोडश सम्पन्न॥**●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. इन्द्रियसूत्र, २. श्रद्धाबलसूत्र, ३. प्रज्ञाबलसूत्र, ४. स्मृतिबलसूत्र, ५. प्रतिसङ्ख्यानबलसूत्र, ६. कल्पसूत्र, ७. रोगसूत्र, ८. परिहानिकसूत्र, ९. भिक्षुणीसूत्र एवं १०. सुगतिविनयसूत्र॥ ●

चतस्सो? दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा।

२. "कतमा च, भिक्खवे, दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा? इध, भिक्खवे, एकच्चो पकतिया पि तिब्बरागजातिको होति, अभिक्खणं रागजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। पकतिया पि तिब्बदोसजातिको होति, अभिक्खणं दोसजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। पकतिया पि तिब्बमोहजातिको होति, अभिक्खणं मोहजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि मुदूनि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं मुदुत्ता दन्धं आनन्तरियं पापुणाति आसवानं खयाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा**।

३. "कतमा च, भिक्खवे, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा? इध, भिक्खवे, एकच्चो पकतिया पि तिब्बरागजातिको होति, अभिक्खणं रागजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। पकतिया पि तिब्बदोसजातिको होति, अभिक्खणं दोसजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। पकतिया पि तिब्बमोहजातिको होति, अभिक्खणं मोहजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। [R.150] तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि अधिमत्तानि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं अधिमत्तत्ता खिप्पं

---

१७. प्रतिपदावर्ग

१. संक्षिप्तसूत्र : : चार प्रतिपदाएँ

१. "भिक्षुओ! ये चार प्रतिपदाएँ हैं। कौन सी चार? (१) दुःखा प्रतिपदा, विलम्ब से ज्ञान करानेवाली; (२) दुःखा प्रतिपदा, शीघ्र ज्ञान कराने वाली; (३) सुखा प्रतिपदा, विलम्ब से ज्ञान कराने वाली; (४) सुखा प्रतिप्रदा, शीघ्र ज्ञान कराने वाली॥" (प्रतिपदा=मार्ग या उपाय)। ●

२. विस्तारसूत्र : : चार प्रतिपदाएँ

१. "भिक्षुओ! ये चार प्रतिपदाएँ हैं। कौन सी चार? ...पूर्ववत्...।

२. कैसे, भिक्षुओ! कोई दुःखा प्रतिपदा विलम्ब से ज्ञान कराने वाली होती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु स्वभाव से ही तीव्र रागजाति का होता है, वह प्रतिक्षण रागजन्य दुःख का अनुभव करता रहता है। या फिर स्वभाव से ही तीव्र द्वेषजाति का होता है, वह प्रतिक्षण द्वेषजन्य दुःख का अनुभव करता रहता है। या फिर तीव्र मोहजाति का होता है, वह निरन्तर मोहजन्य दुःख दौर्मनस्य का अनुभव करता रहता है। उसकी ये पाँचों इन्द्रियाँ मृदु होती हैं—श्रद्धेन्द्रिय भी, वीर्येन्द्रिय भी, स्मृतीन्द्रिय भी, समाधीन्द्रिय एवं प्रज्ञेन्द्रिय भी। वह इन पाँचों इन्द्रियों के मृदुभाव के कारण, स्वकीय आश्रवों का क्षय विलम्ब से, बहुत कुछ अन्तराल के बाद, प्राप्त कर पाता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है—**दुःखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा**। (१)

३. फिर, भिक्षुओ! दुःखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा (झटिति ज्ञान करानेवाली) कौन होती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु स्वभावतः तीव्र रागजातिक... तीव्र द्वेषजातिक... तीव्र मोहजातिक होता है, वह प्रायः मोहजन्य दुःख दौर्मनस्य का अनुभव करता रहता है। परन्तु उसकी उपर्युक्त श्रद्धेन्द्रिय

आनन्तरियं पापुणाति आसवानं खयाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा**।

४. ''कतमा च, भिक्खवे, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा? इध, भिक्खवे, एकच्चो पकतिया पि न तिब्बरागजातिको होति, नाभिक्खणं रागजं दुक्खं दोमनस्सं [B.468] पटिसंवेदेति। पकतिया पि न तिब्बदोसजातिको होति, नाभिक्खणं दोसजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। पकतिया पि न तिब्बमोहजातिको होति, नाभिक्खणं मोहजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि मुदूनि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं ...पे०... पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं मुदुत्ता दन्धं आनन्तरियं पापुणाति आसवानं खयाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा**।

५. ''कतमा च, भिक्खवे, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा? इध, भिक्खवे, [N.159] एकच्चो पकतिया पि न तिब्बरागजातिको होति, नाभिक्खणं रागजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। पकतिया पि न तिब्बदोसजातिको होति, नाभिक्खणं दोसजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। पकतिया पि न तिब्बमोहजातिको होति, नाभिक्खणं मोहजं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि अधिमत्तानि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं अधिमत्तता खिप्पं आनन्तरियं पापुणाति आसवानं खयाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो पटिपदा'' ति॥ ●

३. असुभसुत्तं : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, पटिपदा। कतमा चतस्सो? दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा।

आदि पाँचों ही इन्द्रियाँ अतिमात्रा वाली होती हैं। वह इन पाँचों इन्द्रियों की अतिमात्रता के कारण स्वकीय आश्रवों का क्षय शीघ्र और विना किसी अन्तराल के, प्राप्त कर लेता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है—**दु:खा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा**। (२)

४. ''फिर, भिक्षुओ! सुखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु स्वभावत: न तीव्र रागजातिक... न तीव्र द्वेषजातिक... न तीव्र मोहजातिक...। परन्तु उसकी श्रद्धादि पाँचों इन्द्रियाँ मृदु होती हैं। इन पाँचों इन्द्रियों की मृदुता के कारण विलम्ब एवं आनन्तर्य के साथ आश्रवों का क्षय प्राप्त कर पाता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है—**सुख'प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा**। (३)

५. ''और भिक्षुओ! सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा कहलाती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु स्वभावत: न तीव्र रागजातिक... न तीव्र द्वेषजातिक... न तीव्र मोहजातिक... परन्तु उसकी उक्त पाँचों इन्द्रियों की अतिमात्रता के कारण उसको आश्रवक्षय शीघ्र और विना किसी अन्तराय के प्राप्त हो जाता है। यह कहलाती है, भिक्षुओ! **सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा**। (४)

इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चार प्रतिपदाएँ होती हैं॥'' ●

२. ''कतमा च, भिक्खवे, दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा? इध, भिक्खवे, भिक्खु असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञी, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी; मरणसञ्ञा खो पनस्स अज्झत्तं सूपट्ठिता होति। सो इमानि पञ्च सेखबलानि उपनिस्साय विहरति—सद्धाबलं, हिरिबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, [R.151] पञ्ञाबलं। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि मुदूनि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं मुदुत्ता दन्धं आनन्तरियं पापुणाति आसवानं खयाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा**।

[B.469] ३. ''कतमा च, भिक्खवे, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा? इध, भिक्खवे, भिक्खु असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञी, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी; मरणसञ्ञा खो पनस्स अज्झत्तं सूपट्ठिता होति। सो इमानि [N.160] पञ्च सेखबलानि उपनिस्साय विहरति—सद्धाबलं ...पे०... पञ्ञाबलं। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि अधिमत्तानि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं ...पे०... पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं अधिमत्तत्ता खिप्पं आनन्तरियं पापुणाति आसवानं खयाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा**।

४. ''कतमा च, भिक्खवे, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं

---

३. अशुभसूत्र : : चार प्रतिपदाएँ

१. भिक्षुओ! प्रतिपदाएँ चार होती हैं। ...पूर्ववत्... ।

२. भिक्षुओ! कौन दुःखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा होती है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु काया में अशुभानुपश्यना, आहार में प्रतिकूल संज्ञा, समस्त लोक में अनभिरति (असन्तोष=अरुचि) तथा सभी संस्कारों में अनित्यानुपश्यना के सहारे साधना में लगा रहता है; परन्तु इसके मन में मरणसंज्ञा भली भाँति उपस्थित रहती है। वह इन पाँच शैक्ष्य बलों के सहारे से साधना करता है— १. श्रद्धाबल, २. ह्रीबल, ३. अवत्राप्यबल, ४. वीर्यबल, ५. प्रज्ञाबल। तथा उसकी ये पाँचों इन्द्रियाँ मृदु होती हैं—१. श्रद्धेन्द्रिय, २. वीर्येन्द्रिय, ३. स्मृतीन्द्रिय, ४. समाधीन्द्रिय एवं ५. प्रज्ञेन्द्रिय। वह इन पाँच इन्द्रियों की मृदुता के कारण, स्वकीय आश्रवों का क्षय विलम्ब एवं विघ्न के साथ प्राप्त कर पाता है। यह, भिक्षुओ! **दुःखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा** कहलाती है। (१)

३. ''कौन सी, भिक्षुओ! दुःखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा होती है?... पूर्ववत्... । वह इन पाँचों इन्द्रियों की अतिमात्रता के कारण स्वकीय आश्रवों का क्षय शीघ्रता से, तत्काल ही, विना किसी विघ्न के, प्राप्त कर पाता है। यह कहलाती है, भिक्षुओ! **दुःखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा**। (२)

४. ''कौन सी, भिक्षुओ! सुखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा कहलाती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु कामभोगों एवं अकुशल धर्मों से दूर रहकर, वितर्क-विचार सहित प्रीतिसुखयुक्त प्रथम ध्यान प्राप्त कर साधना करता है; कुछ समय बाद, अभ्यास करते करते वितर्क, विचारों की शान्ति हो जाने के

पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति; वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति यं तं अरिया आचिक्खन्ति 'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासतिपारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इमानि पञ्च सेखबलानि उपनिस्साय विहरति—सद्धाबलं ...पे०... पञ्ञाबलं। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि मुदूनि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं ...पे०... पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं मुदुत्ता दन्धं आनन्तरियं पापुणाति आसवानं खयाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा**।

५. "कतमा च, भिक्खवे, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति ...पे०... दुतियं झानं ...पे०... ततियं झानं ...पे०... [R.152] चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इमानि पञ्च सेखबलानि उपनिस्साय विहरति—सद्धाबलं, हिरिबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, पञ्ञाबलं। तस्सिमानि [B.470] पञ्चिन्द्रियानि अधिमत्तानि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं अधिमत्तत्ता खिप्पं आनन्तरियं पापुणाति आसवानं खयाय। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा**।

इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो पटिपदा" ति॥ ●

बाद, आध्यात्मिक सम्प्रसाद से चित्त की एकाग्रता (एकोदिभाव) एवं वितर्क विचाररहित समाधिजन्य प्रीतिसुखयुक्त द्वितीय ध्यान प्राप्त कर साधना करता है; कुछ समय बाद, धीरे धीरे प्रीति से भी वैराग्य हो जाने पर स्मृति-सम्प्रजन्यपूर्वक उपेक्षामय सुख का काया से अनुभव करता है, जिसके विषय में आर्यजनों का कथन है—'वह स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ उपेक्षक रहता हुआ सुखपूर्वक साधना करता है'—ऐसे तृतीय ध्यान की साधना करता है; और अन्त में, शनैः शनैः सुख एवं दुःख के प्रहाण से, पहले ही सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के नष्ट हो जाने से, उपेक्षा एवं स्मृति से परिशुद्ध चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। वह इन पाँच शैक्ष्य बलों के सहारे से साधना करता है—श्रद्धाबल... प्रज्ञाबल। उसकी इन पाँचों इन्द्रियों की मृदुता के कारण, विलम्ब एवं विघ्नपूर्वक स्वकीय आश्रवक्षय प्राप्त कर पाता है। यह, भिक्षुओ! **सुखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा** कहलाती है। (३)

५. भिक्षुओ! फिर कौन सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा कहलाती है?... पूर्ववत्...। उसकी—इन पाँचों इन्द्रियों की अतिमात्रता के कारण तत्काल ही विना किसी विलम्ब के स्वकीय आश्रवक्षय प्राप्त कर पाता है। यह, भिक्षुओ! **सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा** कहलाती है। (४)

"भिक्षुओ! इस प्रकार ये चार प्रतिपदाएँ कहलाती हैं॥" ●

४. पठमखमसुत्तं : १. "चतस्सो इमा, भिक्खवे, पटिपदा। कतमा चतस्सो? [N.161,B.470] अक्खमा पटिपदा, खमा पटिपदा, दमा पटिपदा, समा पटिपदा। कतमा च, भिक्खवे, अक्खमा पटिपदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो अक्कोसन्तं पच्चक्कोसति, रोसन्तं पटिरोसति, भण्डन्तं पटिभण्डति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **अक्खमा पटिपदा**।

२. "कतमा च, भिक्खवे, खमा पटिपदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो अक्कोसन्तं न पच्चक्कोसति, रोसन्तं न पटिरोसति, भण्डन्तं न पटिभण्डति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **खमा पटिपदा**।

३. "कतमा च, भिक्खवे, दमा पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति चक्खुन्द्रियं; चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा ... घानेन गन्धं घायित्वा ... जिव्हाय रसं सायित्वा ... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा ... मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं [R.153] विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **दमा पटिपदा**।

---

४. प्रथम क्षमसूत्र

: :

चार प्रतिपदाएँ

१. "भिक्षुओ! ये भी चार प्रतिपदाएँ होती हैं। कौन से चार? (१) अक्षमा प्रतिपदा, (२) क्षमा प्रतिपदा, (३) दमा प्रतिपदा, एवं (४) शमा प्रतिपदा।

"कौन सी, भिक्षुओ! **अक्षमा प्रतिपदा** कहलाती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई निन्दा करने वाले की निन्दा करता है, क्रोध करने वाले के साथ क्रोध करता है, कलह करने वाले के साथ कलह करता। भिक्षुओ! यह कहलाती है—अक्षमा प्रतिपदा। (१)

२. "कौन सी, भिक्षुओ! **क्षमा प्रतिपदा** कहलाती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई निन्दा करने वाले की भी निन्दा नहीं करता; क्रोध करने वाले पर भी क्रोध नहीं करता; कलह करने वाले से भी कलह नहीं करता। भिक्षुओ! यह कहलाती है—**क्षमा** प्रतिपदा। (२)

३. कौन सी, भिक्षुओ! **दमा प्रतिपदा** कहलाती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु चक्षु से रूप (विषय) को देखकर न उसके कारण से आकृष्ट होता है, न उसके आकार से कि कहीं यह मेरी अनिगृहीत चक्षुरिन्द्रिय के कारण अकुशल पाप धर्मों का आवास न बन जाय। अत: वह ऐसे पापमय धर्मों से अपनी चक्षुरिन्द्रिय को बचाता है, उसपर निग्रह रखता है। वह श्रोत्र से शब्द सुनकर भी... घ्राण से गन्ध सूँघ कर भी... जिह्वा से रस चखकर भी काया से स्पर्श योग्य विषयों का स्पर्श करके भी... मन से मनोधर्मों को जानकर भी उनके कारणों की ओर आकृष्ट नहीं होता, न उनके आकारों से ही आकृष्ट होता है कि कहीं ये मेरी अनिगृहीत मन इन्द्रिय के कारण अकुशल पापमय धर्मों का आवास न बन जाय। अत: वह ऐसे पापमय धर्मों से अपनी मन इन्द्रिय को बचाता है,

४. "कतमा च, भिक्खवे, समा पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नं कामवितक्कं नाधिवासेति पजहति विनोदेति समेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति; उप्पन्नं ब्यापादवितक्कं ...पे०... उप्पन्नं विहिंसावितक्कं ... उप्पन्नुप्पन्ने पापके अकुसले धम्मे नाधिवासेति पजहति विनोदेति समेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **समा पटिपदा**। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो पटिपदा" ति॥

५. दुतियखमसुत्तं : १. "चतस्सो इमा, भिक्खवे, पटिपदा। कतमा चतस्सो? अक्खमा पटिपदा, खमा पटिपदा, दमा पटिपदा, समा पटिपदा।

२. "कतमा च, भिक्खवे, अक्खमा पटिपदा? इध, भिक्खवे, [N.162,B.471] एकच्चो अक्खमो होति सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय पिपासाय, डंसमकसवातात-पसिरिंसपसम्फस्सानं दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अनधिवासकजातिको होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **अक्खमा पटिपदा**।

३. "कतमा च, भिक्खवे, खमा पटिपदा? इध, भिक्खवे, एकच्चो खमो होति सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय पिपासाय, डंसमकसवातातपसिरिंसपसम्फस्सानं दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासकजातिको होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **खमा पटिपदा**।

उसपर निग्रह करता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है—दमा प्रतिपदा। (इसी को 'संवरप्रधान' भी कहते हैं।) (३)

४. "भिक्षुओ! **शमा प्रतिपदा** किसे कहते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु उत्पन्न कामवितर्क... उत्पन्न व्यापादवितर्क... उत्पन्न विहिंसावितर्क... उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों को स्वीकार नहीं करता, छोड़ देता है, पृथक् कर देता है या उनको नष्ट कर देता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—शमा प्रतिपदा। (इसी को 'प्रहाण प्रधान' भी कहते हैं।)

"भिक्षुओ! ये भी चार प्रतिपदाएँ हैं॥"

५. द्वितीय क्षमसूत्र

: :

१. "भिक्षुओ! ये भी चार प्रतिपदा होती हैं। ...पूर्ववत्...।

२. "भिक्षुओ! **अक्षमा प्रतिपदा** कौन होती है? यहाँ, भिक्षुओ! जो कोई शीत उष्ण, भूख प्यास, मच्छर मक्खी आदि का काटना, किसी की कटूक्ति, उत्पन्न दुःखमय तीव्र कठोर कटु अप्रिय एवं प्राणहर शारीरिक वेदनाओं को सहन करने की क्षमता (सामर्थ्य) नहीं रखता। भिक्षुओ! यह अक्षमा प्रतिपदा कहलाती है। (१)

३. "भिक्षुओ! **क्षमा प्रतिपदा** कौन कहलाती है? जो कोई भिक्षु शीत उष्ण... पूर्ववत्... प्राणहर शारीरिक वेदनाओं को सहन करने की क्षमता रखता है। यह कहलाती है, भिक्षुओ! क्षमा प्रतिपदा। (२)

४. ''कतमा च, भिक्खवे, दमा पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति ...पे०... सोतेन सद्दं सुत्वा ... घानेन गन्धं घायित्वा ... जिव्हाय रसं सायित्वा... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही; यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **दमा पटिपदा**।

५. ''कतमा च, भिक्खवे, समा पटिपदा? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नं कामवितक्कं नाधिवासेति पजहति विनोदेति समेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गामेति, उप्पन्नं ब्यापादवितक्कं ...पे०... उप्पन्नं विहिंसावितक्कं... उप्पन्नुप्पन्ने पापके अकुसले धम्मे नाधिवासेति पजहति विनोदेति समेति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, **समा पटिपदा**। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो पटिपदा'' ति॥

[R.154] **६. उभयसुत्तं** १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, पटिपदा। कतमा चतस्सो? दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा।

२. ''तत्र, भिक्खवे, यायं पटिपदा दुक्खा दन्धाभिञ्ञा, अयं, भिक्खवे, पटिपदा [N.163,B.472] उभयेनेव हीना अक्खायति—यम्पायं पटिपदा दुक्खा, इमिनापायं हीना अक्खायति; यम्पायं पटिपदा दन्धा, इमिनापायं हीना अक्खायति। अयं, भिक्खवे, पटिपदा उभयेनेव हीना अक्खायति।

३. ''तत्र, भिक्खवे, यायं पटिपदा दुक्खा खिप्पाभिञ्ञा, अयं, भिक्खवे, पटिपदा दुक्खत्ता हीना अक्खायति।

४. ''तत्र, भिक्खवे, यायं पटिपदा सुखा दन्धाभिञ्ञा, अयं, भिक्खवे, पटिपदा दन्धत्ता हीना अक्खायति।

---

४. ...**दमा प्रतिपदा**... उपरिसूत्रवत्...। (३)

५. ...**शमा प्रतिपदा**... उपरिसूत्रवत्...। (४)

''भिक्षुओ! ये कहलाती हैं चार प्रतिपदाएँ॥''

६. उभयसूत्र

चार प्रतिपदाएँ

१. ''भिक्षुओ! ये चार प्रतिपदाएँ हैं। कौन सी चार? (१) दुःखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा, (२) दुःखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा, (३) सुखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा, एवं (४) सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा।

२. ''इनमें प्रथम दो प्रतिपदाओं में, भिक्षुओ! **दुःखा दन्धाभिज्ञा** अपेक्षाकृत उभयथा हीन है। क्योंकि यह दुःखभूत है—इसलिये भी हीन है; और विलम्ब से सिद्ध होती है—इसलिये भी हीन है। इस प्रकार, भिक्षुओ! यह प्रतिपदा उभयथा हीन है। (१)

५. "तत्र, भिक्खवे, यायं पटिपदा सुखा खिप्पाभिञ्ञा, अयं, भिक्खवे, पटिपदा उभयेनेव पणीता अक्खायति—यम्पायं पटिपदा सुखा, इमिनापायं पणीता अक्खायति; यम्पायं पटिपदा खिप्पा, इमिनापायं पणीता अक्खायति। अयं, भिक्खवे, पटिपदा उभयेनेव पणीता अक्खायति। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो पटिपदा" ति॥ ●

७. महामोग्गल्लानसुत्तं : १. अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महामोग्गल्लानेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—

२. "चतस्सो इमा, आवुसो मोग्गल्लान, पटिपदा। कतमा चतस्सो? दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा। इमा खो, आवुसो, चतस्सो पटिपदा। इमासं, आवुसो, चतस्सन्नं पटिपदानं कतमं ते पटिपदं आगम्म अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं" ति?

३. "चतस्सो इमा, आवुसो सारिपुत्त, पटिपदा। कतमा चतस्सो? दुक्खा [R.155] पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा। इमा खो, आवुसो, चतस्सो पटिपदा। इमासं, आवुसो, [B.473] चतस्सन्नं पटिपदानं यायं पटिपदा दुक्खा खिप्पाभिञ्ञा, इमं मे पटिपदं आगम्म [N.164] अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं" ति॥ ●

---

३. "भिक्षुओ! दूसरी **दुःखा क्षिप्राभिज्ञा** भी दुःखभूत होने के कारण हीन है। (२)

४. "भिक्षुओ! तीसरी **सुखा दन्धाभिज्ञा** भी दन्धत्व के कारण हीन कहलाती हैं। (३)

५. "वहाँ, भिक्षुओ! **सुखा क्षिप्राभिज्ञा** यह प्रतिपदा दोनों ही कारणों से श्रेष्ठ हैं; क्योंकि यह 'सुखा' है—इसलिये भी श्रेष्ठ कहलाती है, और 'क्षिप्राभिज्ञा' है—इसलिये भी प्रणीत है। इस प्रकार, भिक्षुओ! यह प्रतिपदा उभयथा श्रेष्ठ कहलाती है। (४)

"भिक्षुओ! यों ये चार प्रतिपदाएँ होती हैं"॥ ●

७. महामौद्गल्यायनसूत्र : : चार प्रतिपदाएँ

१. तब कभी आयुष्मान् सारिपुत्र आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के पास गये। जाकर उनसे कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठने के बाद उनने यह कहा—

२. "आयुष्मान् मौद्गल्यायन! ये चार प्रतिपदाएँ होती हैं। कौन सी चार? (१) दुःखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा, (२) दुःखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा, (३) सुखा प्रतिपदा दन्धाभिज्ञा, एवं (४) सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा। आयुष्मान्! इन चारों प्रतिपदाओं में किस प्रतिपदा की साधना से आपका चित्त आश्रवों से विमुक्त हो पाया?"

३. हाँ, आयुष्मन् सारिपुत्र! ये चार प्रतिपदाएँ हैं... पूर्ववत्...। इन चार प्रतिपदाओं में जो यह 'दुःखा क्षिप्राभिज्ञा प्रतिपदा' है इसकी साधना के आश्रयण से ही मेरा चित्त आश्रवों से विमुक्त हो पाया॥" ●

८. सारिपुत्तसुत्तं : १. अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महामोग्गल्लानो आयस्मन्तं एतदवोच—

२. "चतस्सो इमा, आवुसो सारिपुत्त, पटिपदा। कतमा चतस्सो? दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा। इमा खो, आवुसो, चतस्सो पटिपदा। इमासं, आवुसो, चतस्सन्नं पटिपदानं कतमं ते पटिपदं आगम्म अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं" ति?

३. "चतस्सो इमा, आवुसो मोग्गल्लान, पटिपदा। कतमा चतस्सो? दुक्खा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, दुक्खा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा दन्धाभिञ्ञा, सुखा पटिपदा खिप्पाभिञ्ञा। इमा खो, आवुसो, चतस्सो पटिपदा। इमासं, आवुसो, चतस्सन्नं पटिपदानं यायं पटिपदा सुखा खिप्पाभिञ्ञा, इमं मे पटिपदं आगम्म अनुपादाय आसवेहि चित्तं विमुत्तं" ति॥

●

९. ससङ्खारसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो दिट्ठेव धम्मे ससङ्खार-परिनिब्बायी होति। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो कायस्स भेदा ससङ्खारपरिनिब्बायी होति। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो दिट्ठेव धम्मे असङ्खारपरिनिब्बायी होति। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो कायस्स भेदा असङ्खारपरिनिब्बायी होति।

२. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो दिट्ठेव धम्मे ससङ्खारपरिनिब्बायी होति? इध,

---

८. सारिपुत्रसूत्र

: :

चार प्रतिपदाएँ

१. तब कभी आयुष्मान् महामौद्गल्यायन आयुष्मान् सारिपुत्र के पास गये। ...पूर्ववत्...।

२. ...पूर्ववत्...। आयुष्मन् सारिपुत्र! इन चारों प्रतिपदाओं में किस साधना से आपका चित्त आश्रवों से विमुक्त हो पाया?

३. "हाँ, आयुष्मन् मौद्गल्यायन! ये चार प्रतिपदाएँ हैं... पूर्ववत्...। इन चार प्रतिपदाओं में जो यह सुखा प्रतिपदा क्षिप्राभिज्ञा है, इसकी साधना से मेरा चित्त आश्रवों से विमुक्त हुआ॥"

●

९. ससङ्खारसूत्र

: :

चतुर्विध पुद्गल

१. "भिक्षुओ! इस लोक में चतुर्विध पुद्गल देखे जाते हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! एक पुद्गल वह होता है जो इसी जन्म में संस्कारसहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है; (२) भिक्षुओ! एक पुद्गल वह होता है जो देहपात के बाद संस्कारसहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है; (३) भिक्षुओ! एक पुद्गल वह होता है जो इसी जन्म में संस्काररहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है; (४) और, भिक्षुओ! एक पुद्गल वह होता है जो देहपात के बाद संस्काररहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है।

२. " कैसे, भिक्षुओ! **कोई पुद्गल इसी जन्म में संस्कारसहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है?**

भिक्खवे, भिक्खु असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके [N.165] अनभिरतिसञ्ञी, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी। मरणसञ्ञा खो पनस्स [B.474,R.156] अज्झत्तं सूपट्ठिता होति। सो इमानि पञ्च सेखबलानि उपनिस्साय विहरति—सद्धाबलं, हिरिबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, पञ्ञाबलं। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि अधिमत्तानि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं, विरियन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं मुदुत्ता कायस्स भेदा ससङ्खारपरिनिब्बायी होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो दिट्ठेव धम्मे ससङ्खारपरिनिब्बायी होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो कायस्स भेदा ससङ्खारपरिनिब्बायी होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञी, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी। मरणसञ्ञा खो पनस्स अज्झत्तं सूपट्ठिता होति। सो इमानि पञ्च सेखबलानि उपनिस्साय विहरति—सद्धाबलं, हिरिबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, पञ्ञाबलं। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि मुदूनि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं, विरियन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं मुदुत्ता कायस्स भेदा ससङ्खारपरिनिब्बायी होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो कायस्स भेदा ससङ्खारपरिनिब्बायी होति।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो दिट्ठेव धम्मे असङ्खारपरिनिब्बायी होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... पठमं झानं ...पे०... दुतियं झानं ...पे०... ततियं झानं ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इमानि पञ्च सेखबलानि

यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु काया में अशुभानुपश्यना करता हुआ साधना करता है, आहार में प्रतिकूल संज्ञा, समस्त लोक में असन्तोष (उत्कण्ठा न) रखता हुआ, तथा सभी संस्कारों को अनित्य मानता हुआ साधना करता है। मरणसंज्ञा तो पहले से इसके चित्त में सुस्थित रहती है। वह इन पाँच शैक्ष्यबलों के आधार पर साधना करता है—श्रद्धाबल, ह्रीबल, अवत्राप्यबल, वीर्यबल एवं प्रज्ञाबल। उस समय इसकी ये पाँच इन्द्रियाँ अतिशय प्रवृद्ध हुई रहती हैं—श्रद्धेन्द्रिय, वीर्येन्द्रिय, स्मृतिन्द्रिय, समाधीन्द्रिय एवं प्रज्ञेन्द्रिय। वह इन पाँच इन्द्रियों की अतिशयता के कारण इसी जन्म में संस्कारसहित परिनिर्वाण प्राप्त कर लेता है। (१)

३. '' कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **देहपात के बाद संस्कारसहित परिनिर्वृत होता है?** यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु काया में अशुभानुपश्यना करता हुआ... पूर्ववत्... इसकी ये पाँचों इन्द्रियाँ अतिशय मृदु होने के कारण यह देहपात के बाद संस्कारसहित परिनिर्वृत होता है। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! **कोई इसी जन्म में संस्काररहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है?** यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल कामभोगों से, अकुशल धर्मों से... पूर्ववत्... प्रथम ध्यान... द्वितीय ध्यान... तृतीय ध्यान... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। यह इन पाँच शैक्ष्यबलों को...पूर्ववत्...। उसकी ये पाँच इन्द्रियाँ ...पूर्ववत्... इन्द्रियों के अधिमात्र होने के कारण इसी जन्म में संस्काररहित

उपनिस्साय विहरति—सद्धाबलं ...पे०... पञ्ञाबलं। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि अधिमत्तानि पातुभवन्ति—सद्धिन्द्रियं ...पे०... पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं अधिमत्तत्ता दिट्ठेव धम्मे असङ्खारपरिनिब्बायी होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो **दिट्ठेव धम्मे** असङ्खारपरिनिब्बायी होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो कायस्स भेदा असङ्खारपरिनिब्बायी होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... पठमं झानं ...पे०... दुतियं झानं ...पे०... [N.166] ततियं झानं ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इमानि पञ्च सेखबलानि उपनिस्साय विहरति—सद्धाबलं, हिरिबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, पञ्ञाबलं। तस्सिमानि पञ्चिन्द्रियानि ...पे०... पञ्ञिन्द्रियं। सो इमेसं पञ्चन्नं इन्द्रियानं मुदुत्ता कायस्स भेदा असङ्खारपरिनिब्बायी होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो **कायस्स भेदा असङ्खारपरिनिब्बायी** होति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं" ति॥

●

[B.475] **१०. युगनद्धसुत्तं** : १. एवं मे सुतं। एकं समयं आयस्मा आनन्दो कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। तत्र खो आयस्मा आनन्दो भिक्खू आमन्तेसि—"आवुसो भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा आनन्दो एतदवोच—

[R.157] २. "यो हि कोचि, आवुसो, भिक्खु वा भिक्खुनी वा मम सन्तिके अरहत्तप्पत्तिं ब्याकरोति, सब्बो सो चतूहि मग्गेहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन।

३. "कतमेहि चतूहि? इध, आवुसो, भिक्खु समथपुब्बङ्गमं विपस्सनं भावेति।

परिनिर्वाण प्राप्त करता है। इस तरह, भिक्षुओ! कोई पुद्गल इसी जन्म में संस्काररहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है। (३)

५. "कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **देहपात के बाद संस्काररहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है?** यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु कामभोगों से, अकुशल धर्मों से... पूर्ववत्... इन्द्रियों की मृदुता के कारण देहपात के बाद संस्काररहित परिनिर्वाण प्राप्त करता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! कोई पुद्गल देहपात के बाद संस्काररहित प्राप्त करता है। (४)

"इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चार पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥"

●

: :

१०. युगनद्धसूत्र

चार मार्ग

ऐसा मैंने सुना है। एक समय आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। वहाँ कभी आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को "आयुष्मन् भिक्षुओ!" कहकर अपने पास बुलाया। भिक्षुओं के आने पर, आयुष्मान् आनन्द ने भिक्षुओं को यह धर्मव्याख्यान किया—

२. "आयुष्मानो! जो भी कोई भिक्षु या भिक्षुणी मेरे सम्मुख आकर अपनी अर्हत्त्वप्राप्ति का व्याख्यान करता है, वह इन चार मार्गों से या इनमें किसी एक से ही की हुई बताता है।

३. "किन चार मार्गों से? यहाँ, आयुष्मानो! कोई भिक्षु विपश्यना से पूर्व शमथ की साधना

तस्स समथपुब्बङ्गमं विपस्सनं भावयतो मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि पहीयन्ति, अनुसया ब्यन्तीहोन्ति।

४. ''पुन च परं, आवुसो, भिक्खु विपस्सनापुब्बङ्गमं समथं भावेति। तस्स विपस्सनापुब्बङ्गमं समथं भावयतो मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि पहीयन्ति, अनुसया ब्यन्तीहोन्ति।

५. ''पुन च परं, आवुसो, भिक्खु समथविपस्सनं युगनद्धं भावेति। तस्स समथविपस्सनं युगनद्धं भावयतो मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि पहीयन्ति, अनुसया ब्यन्तीहोन्ति।

६. ''पुन च परं, आवुसो, भिक्खुनो धम्मुद्धच्चविग्गहितं मानसं होति। [N.167] सो, आवुसो, समयो यं तं चित्तं अज्झत्तमेव सन्तिट्ठति सन्निसीदति एकोदि होति समाधियति। तस्स मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। [B.476] तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि पहीयन्ति, अनुसया ब्यन्तीहोन्ति।

करता है। उसके द्वारा इस विधि से साधना किये जाने पर उसका साधनामार्ग स्पष्ट हो जाता है। वह उस मार्ग का अभ्यास करता है, उसमें वृद्धि करता है, अधिकता लाता है। इस तरह उसके द्वारा इसका अभ्यास किये जाने पर... उसके संयोजन क्षीण हो जाते हैं तथा अनुशय (चित्त की सांसारिक प्रवृत्ति) नष्ट हो जाती है। (१)

४. ''फिर, आयुष्मानो! वही भिक्षु, इस अभ्यास को उलटकर, पहले विपश्यना की भावना करता हुआ तब शमथ की भावना करता है। इसमें भी वह साधना का मार्ग पा जाता है, वह उस मार्ग का अभ्यास करता है, उसमें वृद्धि करता है, अतिशयता लाता है। उसके इस प्रकार अभ्यास किये जाने पर उसके संयोजन क्षीण तथा अनुशय नष्ट होने लगते हैं। (२)

५. ''फिर, आयुष्मानो! वह भिक्षु शमथ एवं विपश्यना की एक साथ (गाड़ी में जुते हुए दो बैलों के समान) साधना करता है। उसके द्वारा इस प्रकार शमथ एवं विपश्यना की एक साथ भावना करते हुए भी उसको उचित मार्ग मिल जाता है। उस मार्ग का वह अभ्यास करता है, उसकी वृद्धि करता है, उसमें विपुलता लाता है। इससे उसके संयोजन एवं अनुशय प्रहीण तथा नष्ट होने लगते हैं।

६. ''फिर, आयुष्मानो! जब उस भिक्षु का चित्त सांसारिक बातों से चञ्चल होने लगता है तो अपने मन को अध्यात्म में स्थिर रखने का प्रयास करता है, रोकता है, एकाग्र करता है, समाधिस्थ करता है। इससे भी उसको उचित मार्ग ...पूर्ववत्... नष्ट होने लगते हैं।

७. ''यो हि कोचि, आवुसो, भिक्खु वा भिक्खुनी वा मम सन्तिके अरहत्तप्पत्तिं ब्याकरोति, सब्बो सो इमेहि चतूहि मग्गेहि, एतेसं वा अञ्ञतरेना'' ति॥ ●

पटिपदावग्गो सत्तरसमो॥

तस्सुद्दानं

सङ्खित्तं वित्थारासुभं, द्वे खमा उभयेन च।
मोग्गल्लानो सारिपुत्तो ससङ्खारं युगनद्धेन चा ति॥ ●

१८. सञ्चेतनियवग्गो

[R.158] **१. चेतनासुत्तं** : १. ''काये वा, भिक्खवे, सति कायसञ्चेतनाहेतु उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। वाचाय वा, भिक्खवे, सति वचीसञ्चेतनाहेतु उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। मने वा, भिक्खवे, सति मनोसञ्चेतनाहेतु उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं अविज्जापच्चया व।

२. ''सामं वा तं, भिक्खवे, कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। परे वास्स तं, भिक्खवे, कायसङ्खारं अभिसङ्खरोन्ति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। सम्पजानो वा तं, भिक्खवे, कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं। असम्पजानो वा तं, भिक्खवे कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं।

---

७. ''इस प्रकार, भिक्षुओ! मेरे सामने आकर जो भी भिक्षु या भिक्षुणी अपनी अर्हत्त्व प्राप्ति का व्याख्यान करते हैं, वे सब इन चार मार्गों से ही या इनमें से किसी एक मार्ग से वह प्राप्ति करते हैं॥''

प्रतिपदावर्ग सप्तदश सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. संक्षिप्तसूत्र, २. विस्तारसूत्र, ३. अशुभसूत्र, ४. प्रथम क्षमसूत्र, ५. द्वितीय क्षमसूत्र, ६. उभयसूत्र, ७. महामौद्गल्यायनसूत्र, ८. सारिपुत्रसूत्र, ९. ससङ्खारसूत्र, एवं १०. युगनद्धसूत्र॥ ●

१८. सञ्चेतनीयवर्ग

१. चेतनासूत्र : : चतुर्विध आध्यात्मिक सुखदुःख

१. ...''भिक्षुओ! काया के होने पर कायसञ्चेतना के कारण आध्यात्मिक सुख दुःख उत्पन्न होते हैं; वाणी के होने पर वाक्सञ्चेतना के कारण... मन के होने पर मनःसञ्चेतना के कारण आध्यात्मिक सुख दुःख उत्पन्न होते हैं अविद्या के कारण ही।

२. ''भिक्षुओ! (१) कोई स्वयं किसी कायसंस्कार की रचना करता है, जिससे आध्यात्मिक सुख-दुःख उत्पन्न होते हैं। (२) या दूसरे किसी के द्वारा उस कायसंस्कार की रचना होती है जिससे

३. ''सामं वा तं, भिक्खवे, वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं; परे वास्स तं, भिक्खवे, वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोन्ति; [N.168] यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं; सम्पजानो वा तं, भिक्खवे, [B.477] वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं; असम्पजानो वा तं, भिक्खवे वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं।

४. ''सामं वा तं, भिक्खवे, मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं; परे वास्स तं, भिक्खवे, मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोन्ति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं; सम्पजानो वा तं, भिक्खवे, मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं; असम्पजानो वा तं, भिक्खवे मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति, यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं।

५. ''इमेसु, भिक्खवे, धम्मेसु अविज्जा अनुपतिता, अविज्जाय त्वेव असेसविरागनिरोधा सो कायो न होति यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं, सा वाचा न होति यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं, सो मनो न होति [R.159] यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं, खेत्तं तं न होति ...पे०... वत्थु तं न होति ...पे०... आयतनं तं न होति ...पे०... अधिकरणं तं न होति यंपच्चयास्स तं उप्पज्जति अज्झत्तं सुखदुक्खं ति।

६. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अत्तभावपटिलाभा। कतमे चत्तारो? अत्थि, भिक्खवे, अत्तभावपटिलाभो, यस्मिं अत्तभावपटिलाभे अत्तसञ्चेतना कमति, नो परसञ्चेतना।

वे आध्यात्मिक सुख दु:ख उत्पन्न होते हैं। (३) जानते बूझते किसी कायसंस्कार की रचना होती है जिससे...। (४) न जानते बूझते किसी कायसंस्कार की रचना होती है जिससे आध्यात्मिक सुख दु:ख उत्पन्न होते हैं...।

३. ''भिक्षुओ! कोई स्वयं किसी वाक्संस्कार की रचना करता है...। दूसरे किसी के द्वारा...। जानते बूझते...। न जानते बूझते किसी वाक्संस्कार की रचना करता है, जिससे आध्यात्मिक सुख दु:ख उत्पन्न होते हैं...।

४. ''भिक्षुओ! कोई स्वयं किसी मन:संस्कार की रचना करता है...। दूसरे किसी के द्वारा...। जानते बूझते...। न जानते बूझते किसी मन:संस्कार की रचना करता है, जिससे आध्यात्मिक सुख दु:ख उत्पन्न होते हैं...।

५. ''भिक्षुओ! इस सभी धर्मों में अविद्या सम्पृक्त रहती है; परन्तु इस अविद्या के न होने पर अशेष वैराग्य का निरोध हो जाने से वह काया... वह वाणी... वह मन... वह आयतन... वह वस्तु... वह आयतन... वह अधिकरण नहीं होता जिसके कारण इसको वह आध्यात्मिक सुख दु:ख उत्पन्न होता है।

६. ''भिक्षुओ! ये चार **आत्मभावप्रतिलाभ** होते हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! एक आत्मभावप्रतिलाभ वह होता है जिसमें आत्मसञ्चेतना ही होती है, परन्तु परसञ्चेतना नहीं होती।

अत्थि, भिक्खवे, अत्तभावपटिलाभो, यस्मिं अत्तभावपटिलाभे परसञ्चेतना कमति, नो अत्तसञ्चेतना। अत्थि, भिक्खवे, अत्तभावपटिलाभो, यस्मिं अत्तभावपटिलाभे अत्तसञ्चेतना च कमति परसञ्चेतना च। अत्थि, भिक्खवे, अत्तभावपटिलाभो, यस्मिं अत्तभावपटिलाभे नेवत्तसञ्चेतना कमति, नो परसञ्चेतना। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अत्तभावपटिलाभा'' ति।

७. एवं वुत्ते आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—''इमस्स खो अहं, भन्ते, भगवता सङ्खित्तेन भासितस्स एवं वित्थारेन अत्थं आजानामि—'तत्र, भन्ते, यायं [N.169] अत्तभावपटिलाभो यस्मिं अत्तभावपटिलाभे अत्तसञ्चेतना कमति नो परसञ्चेतना, अत्तसञ्चेतनाहेतु तेसं सत्तानं तम्हा काया चुति होति। तत्र, भन्ते, यायं [B.478] अत्तभावपटिलाभो यस्मिं अत्तभावपटिलाभे परसञ्चेतना कमति नो अत्तसञ्चेतना, परसञ्चेतनाहेतु तेसं सत्तानं तम्हा काया चुति होति। तत्र, भन्ते यायं अत्तभावपटिलाभो यस्मिं अत्तभावपटिलाभे अत्तसञ्चेतना च कमति परसञ्चेतना च, अत्तसञ्चेतना च परसञ्चेतना च हेतु तेसं सत्तानं तम्हा काया चुति होति। तत्र, भन्ते, यायं अत्तभावपटिलाभो यस्मिं अत्तभावपटिलाभे नेव अत्तसञ्चेतना कमति नो परसञ्चेतना, कतमे तेन देवा दट्ठब्बा'' ति?

''नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपगा, सारिपुत्त, देवा तेन दट्ठब्बा'' ति।

८. ''को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चे सत्ता तम्हा काया चुता

---

(२) एक आत्मभावप्रतिलाभ वह होता है जिसमें परसञ्चेतना ही होती है, आत्मसञ्चेतना नहीं होती। (३) एक आत्मभावप्रतिलाभ, भिक्षुओ! वह होता है जिसमें आत्मसञ्चेतना एवं परसञ्चतेतना—दोनों ही होती हैं। (४) तथा एक आत्मभावप्रतिलाभ वह होता है जिसमें आत्मसञ्चेतना एवं परसञ्चेतना—दोनों नहीं होती। भिक्षुओ! इस प्रकार ये चार आत्मभावप्रतिलाभ होते हैं।

७. (भगवान् द्वारा) ऐसा उपदेश किये जाने पर, आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् से यों निवेदन किया—''मैं भन्ते, आपके द्वारा इस संक्षिप्त उपदेश का विस्तारपूर्वक यह अर्थ जानता हूँ—'वहाँ, भन्ते! प्रथम आत्मभावप्रतिलाभ में, जिसमें आत्मसञ्चेतना ही होती है परसञ्चेतना नहीं होती, आत्मसञ्चेतना के कारण ही उन प्राणियों की उस काय से च्युति होती है। तथा, भन्ते! द्वितीय आत्मभावप्रतिलाभ में, जिसमें परसञ्चेतना होती है, आत्मसञ्चेतना नहीं होती, परसञ्चेतना के कारण उन सत्त्वों की उस काया से च्युति होती है। तथा, भन्ते! तृतीय आत्मभावप्रतिलाभ में, जहाँ दोनों ही सञ्चेतनाएँ होती हैं, वहाँ, आत्मसञ्चेतना एवं परसञ्चेतना—दोनों के ही कारण उन प्राणियों की उस काया से च्युति होती है। परन्तु, भन्ते! चतुर्थ आत्मभावप्रतिलाभ में, जिसमें आत्मसञ्चतेतना एवं परसञ्चेतना—दोनों ही नहीं होतीं वहाँ उस प्राणी को कौन देवता दिखायी देते हैं?''

''सारिपुत्र! उसको यहाँ नैवसंज्ञानासंज्ञायतन देवता दिखायी देने चाहिये।''

८. ''भन्ते! क्या हेतु क्या कारण है कि यहाँ कुछ लोग उस काय से च्युत होकर यहाँ आ जाते

आगामिनो होन्ति आगन्तारो इत्थत्तं? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन [R.160] मिधेकच्चे सत्ता तम्हा काया चुता अनागामिनो होन्ति अनागन्तारो इत्थत्तं'' ति?

''इध, सारिपुत्त, एकच्चस्स पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि अप्पहीनानि होन्ति, सो दिट्ठेव धम्मे नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति, तं निकामेति, तेन च वित्तिं आपज्जति; तत्थ ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपगानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। सो ततो चुतो आगामी होति आगन्ता इत्थत्तं।

९. ''इध, सारिपुत्त, एकच्चस्स पुग्गलस्स ओरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि होन्ति, सो दिट्ठेव धम्मे नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सो तदस्सादेति, तं निकामेति, तेन च वित्तिं आपज्जति; तत्थ ठितो तदधिमुत्तो तब्बहुलविहारी अपरिहीनो कालं कुरुमानो नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपगानं देवानं सहब्यतं उपपज्जति। सो ततो चुतो अनागामी होति अनागन्ता इत्थत्तं।

१०. ''अयं खो, सारिपुत्त, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चे सत्ता तम्हा काया चुता आगामिनो होन्ति आगन्तारो इत्थत्तं। अयं पन, सारिपुत्त, हेतु अयं पच्चयो, [N.170] येन मिधेकच्चे सत्ता तम्हा काया चुता अनागामिनो होन्ति अनागन्तारो इत्थत्तं'' ति॥ ●

२. विभत्तिसुत्तं : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—[B.479]

हैं और इसी रूप को धारण कर लेते हैं? और भन्ते! क्या हेतु या क्या कारण है कि कुछ लोग उस काय से च्युत होकर भी यहाँ नहीं लौटते, न इस रूप को ही धारण करते हैं?''

''सारिपुत्र! यहाँ किसी पुद्गल के अवरभागीय संयोजन प्रहीण नहीं हुए रहते, वह इसी जन्म में नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त कर साधना करता है। वह उसमें रस लेता है, उसको चाहता है, उससे प्रीति करने लगता है। वह वहाँ स्थित रहकर उसकी ओर झुका हुआ, अधिकत: उसी की साधना करता हुआ, उससे च्युत न होता हुआ, मरणभाव प्राप्त कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतनदेवताओं की सङ्गति (साथ) प्राप्त करता है। वह पुद्गल वहाँ से च्युत होकर इस जन्म में इस आकार में आ जाता है।

९. ''यहाँ, सारिपुत्र! किसी साधक के अवरभागीय (इस लोक से सम्बद्ध) संयोजन प्रहीण हुए रहते हैं, वह इसी जन्म में नैवसंज्ञानासंज्ञायतन प्राप्त कर साधना करता है। वह उसमें रस लेता है, उसको चाहता है, उससे प्रीति करने लगता है। वह वहाँ, स्थित होकर, उसी की ओर झुका हुआ, अतिशयरूपेण उसी की साधना करता हुआ, उससे च्युत न होता हुआ, मरणभाव प्राप्त कर नैवसंज्ञानासंज्ञायतनदेवों का सान्निध्य प्राप्त कर उनके साथ रहता है। वह पुद्गल च्युत होकर यहाँ नहीं आता, वह 'अनागामी' ही रहता है।

१०. ''सारिपुत्र! यह हेतु है, यह कारण है कि कुछ लोग इस लोक में पुन: लौट आते हैं। तथा, सारिपुत्र यह हेतु, यह कारण है कि कुछ लोग इस लोक में लौटकर नहीं आते, 'अनागामी' ही हो जाते हैं॥'' ●

''आवुसो भिक्खवे'' ति। ''आवुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

२. ''अद्धमासूपसम्पन्नेन मे, आवुसो, **अत्थपटिसम्भिदा** सच्छिकता ओधिसो ब्यञ्जनसो। तमहं अनेकपरियायेन आचिक्खामि देसेमि पञ्ञापेमि पट्ठपेमि विवरामि विभजामि उत्तानीकरोमि। यस्स खो पनस्स कङ्खा वा विमति वा, सो मं पञ्हेन। अहं वेय्याकरणेन सम्मुखीभूतो नो सत्था यो नो धम्मानं सुकुसलो।

३. ''अद्धमासूपसम्पन्नेन मे, आवुसो, **धम्मपटिसम्भिदा** सच्छिकता ओधिसो ब्यञ्जनसो। तमहं अनेकपरियायेन आचिक्खामि देसेमि पञ्ञापेमि पट्ठपेमि विवरामि विभजामि उत्तानीकरोमि। यस्स खो पनस्स कङ्खा वा विमति वा, सो मं पञ्हेन। अहं वेय्याकरणेन सम्मुखीभूतो नो सत्था यो नो धम्मानं सुकुसलो।

४. ''अद्धमासूपसम्पन्नेन मे, आवुसो, **निरुत्तिपटिसम्भिदा** सच्छिकता ओधिसो ब्यञ्जनसो। तमहं अनेकपरियायेन आचिक्खामि देसेमि पञ्ञापेमि पट्ठपेमि विवरामि विभजामि उत्तानीकरोमि। यस्स खो पनस्स कङ्खा वा विमति वा, सो मं पञ्हेन। अहं वेय्याकरणेन सम्मुखीभूतो नो सत्था यो नो धम्मानं सुकुसलो।

५. ''अद्धमासूपसम्पन्नेन मे, आवुसो, **पटिभानपटिसम्भिदा** सच्छिकता ओधिसो ब्यञ्जनसो। तमहं अनेकपरियायेन आचिक्खामि देसेमि पञ्ञापेमि पट्ठपेमि विवरामि विभजामि उत्तानीकरोमि। यस्स खो पनस्स कङ्खा वा विमति वा, सो मं पञ्हेन। अहं वेय्याकरणेन सम्मुखीभूतो नो सत्था यो नो धम्मानं सुकुसलो'' ति॥ ●

---

२. विभक्तिसूत्र : : धर्मों का चतुर्धा विभाजन

१. ...वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को ''आयुष्मन् भिक्षुओ'' कहकर अपने सम्मुख बुलाया। सभी भिक्षु आयुष्मान् सारिपुत्र के आमन्त्रण पर एकत्र हो गये। आयुष्मान् सारिपुत्र ने तब उन से यह कहा—

२. ''आयुष्मानो! जब मुझे 'उपसम्पदा' प्राप्त किये आधा मास ही बीता था, मैंने समग्र त्रिपिटक का **अर्थज्ञान** प्राप्त कर लिया था, तभी से मैं इसका व्याख्यान, विस्तार, स्पष्टीकरण, विभाजन एवं विशदीकरण करता आ रहा हूँ। (आप लोगों में) इस विषय में जो भी शङ्का या सन्देह हो, मुझसे पूछे। मैं उनका व्याख्यान करने के लिये आप लोगों के सम्मुख उपस्थित हूँ। मैं उन धर्मों के व्याख्यान में सर्वांशतः निपुण हूँ। (१)

३. ''आयुष्मानो! जब मुझे 'उपसम्पदा' प्राप्त किये आधा मास ही बीता था, मैंने समस्त शास्त्र का **धर्मज्ञान** मूलतः एवं पदतः प्राप्त कर लिया था... पूर्ववत्...। मैं उन धर्मों के व्याख्यान में सर्वथा निपुण हूँ। (२)

४. ''आयुष्मानो! जब मुझे 'उपसम्पदा' प्राप्त किये आधा मास ही बीता था, मैंने समस्त शास्त्र का **निर्वचनज्ञान** मूलतः एवं पदतः प्राप्त कर लिया था। ...पूर्ववत्...। मैं उन धर्मों के व्याख्यान में सर्वथा निपुण हूँ। (३)

३. महाकोट्ठिकसुत्तं : १. अथ खो आयस्मा महाकोट्ठिको [N.171,R.161] येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं [B.480] सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महाकोट्ठिको आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—

२. ''छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थञ्ञं किञ्ची'' ति?

''मा हेवं, आवुसो''।

''छन्नं, आवुसो फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नत्थञ्ञं किञ्ची'' ति?

''मा हेवं, आवुसो''।

''छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थि च नत्थि च अञ्ञं किञ्ची'' ति? ''मा हेवं, आवुसो''।

''छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नेवत्थि नो नत्थञ्ञं किञ्ची'' ति? ''मा हेवं, आवुसो''।

३. '''छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थञ्ञं किञ्ची' ति,

---

५. ''आयुष्मानो! जब मुझे 'उपसम्पदा' प्राप्त किये आधा मास ही बीता था, मैंने समस्त शास्त्र का **प्रतिभानज्ञान** सर्वथा एवं पदश: प्राप्त कर लिया था।... पूर्ववत्...। मैं उन धर्मों के व्याख्यान में सर्वथा निपुण हूँ॥''

३. महाकोट्ठिकसूत्र : : प्रपञ्चनिरोध का उपाय

१. ...तब आयुष्मान् महाकोष्ठिक आयुष्मान् सारिपुत्र के पास आये। आकर उनसे कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् महाकोष्ठिक ने आयुष्मान् सारिपुत्र से यह कहा—

२. ''आयुष्मन्! इन छह स्पर्शायतनों के अशेष वैराग्य एवं निरोध के अतिरिक्त हमारी इस साधना में अन्य कुछ भी शेष रह जाता है क्या?''

''आयुष्मन्! ऐसा न कहो।''

''आयुष्मन्! इन छह स्पर्शायतनों के अशेष वैराग्य निरोध के बाद इसके अतिरिक्त साधना में कुछ भी करने को शेष नहीं रह जाता?''

''आयुष्मन्! ऐसा न कहो।''

''तो क्या, आयुष्मन्! इन छह स्पर्शायनतनों के अशेष वैराग्य निरोध के अतिरिक्त भी कुछ रह जाता है, या नहीं रह जाता?''

''आयुष्मन्! ऐसा न कहो।''

''आयुष्मन्! इन छह स्पर्शायतनों के अशेष वैराग्य एवं निरोध के अतिरिक्त इस साधना में कुछ नहीं है या कुछ भी न नहीं है?''

''आयुष्मन्! ऐसा न कहो।''

३. ''आयुष्मन्! मैंने आपसे इन छह स्पर्शायतनों के सम्बन्ध में उपर्युक्त चार प्रकार से प्रश्न

इति पुट्ठो समानो 'मा हेवं, आवुसो' ति वदेसि। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति पुट्ठो समानो—'मा हेवं, आवुसो' ति वदेसि। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थि च नत्थि च अञ्ञं किञ्ची' ति, इति पुट्ठो समानो—'मा हेवं, आवुसो' ति वदेसिं। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नेवत्थि नो नत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति पुट्ठो समानो—'मा हेवं, आवुसो' ति वदेसि। यथा कथं पन, आवुसो, इमस्स भासितस्स अत्थो दट्ठब्बो'' ति?

४. '''छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति वदं अप्पपञ्चं पपञ्चेति। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नत्थञ्ञं [N.172] किञ्ची' ति, इति वदं अप्पपञ्चं पपञ्चेति। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थि च नत्थि च अञ्ञं किञ्ची' ति, इति वदं अप्पपञ्चं पपञ्चेति। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नेवत्थि नो नत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति वदं अप्पपञ्चं पपञ्चेति। यावता, आवुसो छन्नं फस्सायतनानं गति तावता पपञ्चस्स गति; [R.162] यावता पपञ्चस्स गति तावता छन्नं फस्सायतनानं गति। छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा पपञ्चनिरोधो पपञ्चवूपसमो'' ति॥ ●

[B.481] **४. आनन्दसुत्तं** : १. अथ खो आयस्मा आनन्दो येनायस्मा महाकोट्ठिको तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता महाकोट्ठिकेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं महाकोट्ठिकं एतदवोच—

२. ''छन्नं आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थञ्ञं किञ्ची'' ति?

''मा हेवं, आवुसो''।

''छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नत्थञ्ञं किञ्ची'' ति?

''मा हेवं, आवुसो''।

''छन्नं आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थि च नत्थि च अञ्ञं किञ्ची'' ति?

''मा हेवं, आवुसो''।

किये, परन्तु आपने सभी के उत्तर में 'ऐसा न कहो', आयुष्मन्!'— कहकर मेरी बात को टाल दिया। आपके इस उत्तर का मैं क्या गूढार्थ समझूँ?''

४. ''आयुष्मन्! 'छह स्पर्शायतनों का अशेष वैराग्य होने से भी कुछ और शेष रह जाता है'—ऐसा कोई कहता हुआ अप्रपञ्च को प्रपञ्चित करता है; इसी प्रकार '...कुछ और शेष नहीं रहता'... '...कुछ और शेष रहता भी है, नहीं भी रहता'... '...न कुछ शेष रहता है न कुछ शेष नहीं ही रहता'—ऐसा कोई कहता हुआ अप्रपञ्च को ही प्रपञ्च करता है। क्योंकि, आयुष्मन्! इन छह स्पर्शायतनों की जो गति है वह प्रपञ्च की ही गति है, तथा जो प्रपञ्च की गति है वह इन छह

"छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरानिरोधा नेवत्थि नो नत्थञ्ञं किञ्ची" ति? "मा हेवं, आवुसो"।

३. "'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति पुट्ठो समानो—'मा हेवं, आवुसो' ति वदेसि। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं [N.173] असेसविरागनिरोधा नत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इतिं पुट्ठो समानो—'मा हेवं, आवुसो' ति वदेसि। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थि च नत्थि च अञ्ञं किञ्ची' ति, इति पुट्ठो समानो—'मा हेवं, आवुसो' ति वदेसि। 'छन्नं, आवुसो फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नेवत्थि नो नत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति पुट्ठो समानो—'मा हेवं, आवुसो' ति वदेसि। यथा कथं पनावुसो, इमस्स भासितस्स अत्थो दट्ठब्बो" ति?

४. "'छन्नं, आवुसो फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा अत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति वदं अप्पपञ्चं पपञ्चेति। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति वदं अप्पपञ्चं पपञ्चेति। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेस-विरागनिरोधा अत्थि च नत्थि च अञ्ञं किञ्ची' ति, इति वदं अप्पपञ्चं पपञ्चेति। 'छन्नं, आवुसो, फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा नेवत्थि नो नत्थञ्ञं किञ्ची' ति, इति वदं अप्पपञ्चं पपञ्चेति। यावता, आवुसो, छन्नं फस्सायतनानं गति तावता पपञ्चस्स गति; यावता पपञ्चस्स गति तावता छन्नं फस्सायतनानं गति। छन्नं, आवुसो, [R.163] फस्सायतनानं असेसविरागनिरोधा पपञ्चनिरोधो पपञ्चवूपसमो" ति॥ ●

५. उपवाणसुत्तं : १. अथ खो आयस्मा उपवाणो येनायस्मा [B.482] सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा उपवाणो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—"किं नु खो, आवुसो सारिपुत्तं, विज्जायन्तकरो होती" ति?

"नो हिदं, आवुसो"।

स्पर्शायतनों की गति है। अत: इन छह स्पर्शायतनों के अशेष विराग एवं निरोध से जो प्रपञ्च का निरोध होता है वही प्रपञ्च का उपशमन है॥" ●

४. आनन्दसूत्र : : प्रपञ्चनिरोध का उपाय

१. कभी आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् महाकोट्ठिक के पास गये।... उपरिसूत्रवत्...। *(नामपरिवर्तन कर पूर्वसूत्र के समान ही इस सूत्र का विस्तार कर लें)।* ●

५. उपवाणसूत्र : : दु:खों का नाशक कौन?

१. कभी आयुष्मान् उपवाण आयुष्मान् सारिपुत्र के पास गये। जाकर कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गये। तब एक ओर बैठे आयुष्मान् उपवाण ने आयुष्मान् सारिपुत्र से यों पूछा—"क्या, आयुष्मन् सारिपुत्र! कोई साधक विद्या से अपने दु:खों का अन्त कर पाता है?"

"किं पनावुसो सारिपुत्त, चरणेनन्तकरो होती" ति? "नो हिदं, आवुसो"।

"किं पनावुसो सारिपुत्त, विज्जाचरणेनन्तकरो होती" ति? "नो हिदं, आवुसो"।

[N.174] "किं पनावुसो सारिपुत्त अञ्ञत्र विज्जाचरणेनन्तकरो होती" ति?

"नो हिदं, आवुसो"।

२. "'किं नु खो, आवुसो सारिपुत्त, विज्जायन्तकरो होती' ति, इति पुट्ठो समानो—'नो हिदं, आवुसो' ति वदेसि। 'किं पनावुसो सारिपुत्त, चरणेनन्तकरो होती' ति, इति पुट्ठो समानो—'नो हिदं, आवुसो' ति वदेसि। 'किं पनावुसो सारिपुत्त, विज्जाचरणेनन्तकरो होती' ति, इति पुट्ठो समानो—'नो हिदं, आवुसो' ति वदेसि। 'किं पनावुसो सारिपुत्त, अञ्ञत्र विज्जाचरणेनन्तकरो होती' ति, इति पुट्ठो समानो—'नो हिदं, आवुसो' ति वदेसि। यथा कथं पनावुसो, अन्तकरो होती" ति?

३. "विज्जाय चे, आवुसो, अन्तकरो अभविस्स, सउपादानो व समानो अन्तकरो अभविस्स। चरणेन चे, आवुसो, अन्तकरो अभविस्स, सउपादानो व समानो अन्तकरो अभविस्स। विज्जाचरणेन चे, आवुसो, अन्तकरो अभविस्स, सउपादानो व समानो अन्तकरो अभविस्स। अञ्ञत्र विज्जाचरणेन चे, आवुसो, अन्तकरो अभविस्स, पुथुज्जनो अन्तकरो अभविस्स। पुथुज्जनो हि, आवुसो, अञ्ञत्र विज्जाचरणेन। चरणविपन्नो खो,
[R.164] आवुसो, यथाभूतं न जानाति न पस्सति। चरणसम्पन्नो यथाभूतं जानाति पस्सति। यथाभूतं जानं पस्सं अन्तकरो होति" ति॥ ●

६. आयाचनसुत्तं : १. "सद्धो, भिक्खवे, भिक्खु एवं सम्मा आयाचमानो

"ऐसा न कहो, आयुष्मन्!"

"तो क्या, आयुष्मन् सारिपुत्र! वह अपने आचरण से दुःखों का अन्त कर पाता है?"

"ऐसा न कहो, आयुष्मन्!"

"तो क्या, आयुष्मन्! विद्या और आचरण—दोनों से अन्त कर पाता है?"

"ऐसा न कहो, आयुष्मन्!"

"तो क्या, आयुष्मन्! विद्या और आचरण—दोनों से ही अन्त नहीं कर पाता?"

"ऐसा न कहो, आयुष्मन्!"

२. "आयुष्मन् सारिपुत्र! अभी मैंने आपसे दुःख के अन्त करने के विषय में चार प्रश्न पूछे... उपरिवत्... आपने उन चारों का ही उत्तर 'ऐसा न कहो, आयुष्मन्' कहकर दे दिया, अब मैं आपके इस उत्तर का क्या रहस्य समझूँ?"

३. "आयुष्मन्! यदि विद्या से कोई अपने दुःख का अन्त कर ले तो वह सउपादान ही होगा। यदि कोई आचरण से अन्त करे तो वह भी सउपादान ही होगा। तथा विद्या एवं आचरण—दोनों से वह दुःखों का अन्त करे तो वह भी सउपादान ही होगा। और यदि विद्या एवं आचरण के विना ही दुःखों का अन्त होने लगे तो कोई पृथग्जन भी निर्वाण प्राप्त कर लेगा; क्योंकि वह भी विद्याचरण से रहित है। जबकि चरणरहित कोई पुरुष यथार्थ का ज्ञान एवं साक्षात्कार नहीं कर

आयाचेय्य—'तादिसो होमि यादिसा सारिपुत्तमोग्गल्लाना' ति। एसा, भिक्खवे, [B.483] तुला एतं पमाणं मम सावकानं भिक्खूनं, यदिदं सारिपुत्तमोग्गल्लाना।

२. ''सद्धा, भिक्खवे, भिक्खुनी एवं सम्मा आयाचमानो आयाचेय्य—'तादिसा होमि यादिसा खेमा च भिक्खुनी उप्पलवण्णा चा' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम साविकानं भिक्खूनीनं, यदिदं खेमा च भिक्खुनी उप्पलवण्णा च।

३. ''सद्धो, भिक्खवे, उपासको एवं सम्मा आयाचमानो आयाचेय्य—[N.175] 'तादिसो होमि यादिसा चित्तो च गहपति हत्थको च आळवको' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम सावकानं उपासकानं, यदिदं चित्तो च गहपति हत्थको च आळवको।

४. ''सद्धा, भिक्खवे, उपासिका एवं सम्मा आयाचमाना आयाचेय्य—'तादिसा होमि यादिसा खुज्जुत्तरा च उपासिका वेळुकण्डकिया च नन्दमाता' ति। एसा, भिक्खवे, तुला एतं पमाणं मम साविकानं उपासिकानं, यदिदं खुज्जुत्तरा च उपासिका वेळुकण्डकिया च नन्दमाता'' ति॥ ●

७. राहुलसुत्तं : १. अथ खो आयस्मा राहुलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं राहुलं भगवा एतदवोच—

२. ''या च, राहुल, अज्झत्तिका पथवीधातु या च बाहिरा पथवीधातु, पथवीधातुरेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति, एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा पथवीधातु निब्बिन्दति, पथवीधातुया चित्तं विराजेति।

३. ''या च, राहुल, अज्झत्तिका आपोधातु या च बाहिरा आपोधातु आपोधातु-

---

पाता। अत: कहना यह चाहिये कि यथार्थ तत्त्व का ज्ञाता एवं साक्षत्कर्ता ही दु:खों का अन्त कर पाता है॥'' ●

६. **आयाचनसूत्र** : : **चार श्रेष्ठ याच्ञाएँ**

१. ''भिक्षुओ! कोई श्रद्धालु **भिक्षु** मुझसे अपने लिये कोई उचित याच्ञा करना चाहे तो उसको यही याच्ञा करनी चाहिये—''मैं वैसा बनूँ, जैसे सारिपुत्र मौद्गल्यायन है।'' क्योंकि भिक्षुओ! सभी भिक्षुओं के लिये सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन ही समस्त भिक्षुओं के लिये श्रेष्ठ भिक्षुत्व के माप (तुला) हैं।

२. ''भिक्षुओ! कोई श्रद्धालु **भिक्षुणी** मुझसे कोई उचित याच्ञा करना चाहे तो उसको यही याच्ञा करनी चाहिये—''मैं वैसी बनूँ, जैसी क्षेमा एवं उत्पलवर्णा भिक्षुणी हैं।'' क्योंकि भिक्षुओ! सभी भिक्षुणियों के लिये क्षेमा एवं उत्पलवर्णा भिक्षुणी ही श्रेष्ठ भिक्षुणीत्व की माप (तुला=प्रमाण) हैं।

३. ''भिक्षुओ! कोई श्रद्धालु **उपासक** मुझसे अपने लिये कोई उचित याच्ञा करना चाहे तो

[R.165] रेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति, एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा आपोधातुया निब्बिन्दति, आपोधातुया चित्तं विराजेति।

[B.484] ४. "या च, राहुल, अज्झत्तिका तेजोधातु या च बाहिरा तेजोधातु, तेजोधातुरेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति, एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा तेजोधातुया निब्बिन्दति, तेजोधातुया चित्तं विराजेति।

५. "या च, राहुल, अज्झत्तिका वायोधातु या च बाहिरा वायोधातु, [N.176] वायोधातुरेवेसा। 'तं नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति, एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दट्ठब्बं। एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय दिस्वा वायोधातुया निब्बिन्दति, वायोधातुया चित्तं विराजेति।

६. "यतो खो, राहुल, भिक्खु इमासु चतूसु धातूसु नेवत्तानं न अत्तनियं समनुपस्सति, अयं वुच्चति, राहुल, भिक्खु अच्छेच्छि तण्हं, विवत्तयि संयोजनं, सम्मा मानाभिसमया अन्तमकासि दुक्खस्सा" ति॥

●

उसको यही याच्त्रा करनी चाहिये—"मैं भी चित्त गृहपति एवं हस्तक आडवक के समान ही इस धर्म का उपासक बनूँ।" क्योंकि, भिक्षुओ! सभी उपासकों के लिये चित्त गृहपति एवं हस्तक आळवक ही इस धर्म में सर्वश्रेष्ठ उपासकत्व के प्रमाण (तुला) हैं।

४. "भिक्षुओ! यदि कोई श्रद्धासम्पन्न उपासिका मुझसे कोई उचित याच्त्रा करना चाहे तो उसको यही याच्त्रा करनी चाहिये—"मैं भी कुब्जोत्तरा उपासिका एवं वेणुकण्डिका नन्दमाता के समान ही उपासिका बनूँ।" क्योंकि, भिक्षुओ! मेरी सभी उपासिकाओं के लिये ये दोनों ही तुलाभूत हैं॥"

७. राहुलसूत्र

●

: :

धातुचतुष्टय का स्पष्टीकरण

१. "तब आयुष्मान् राहुल भगवान् के सम्मुख आये। आकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् राहुल को भगवान् ने यह उपदेश किया—

२. "राहलु! जो भी आध्यात्मिक एवं बाह्य पृथ्वीधातु है वह सब पृथ्वीधातु ही है। उसको 'यह मेरी नहीं है, मैं यह नहीं हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थतः जानना समझना चाहिये। ऐसा जानकर, समझकर ही पृथ्वीधातु से ग्लानि (उपेक्षा) होती है, पृथ्वीधातु से चित्त उपेक्षित होता है।

३. राहुल! जो भी आध्यात्मिक एवं बाह्य अब्धातु है यह सब अब्धातु ही है।... पूर्ववत्...।

४. "और, राहुल! यह जो आध्यात्मिक एवं बाह्य तेजोधातु है यह सब भी तेजोधातु ही है... पूर्ववत्...।

५. "और, राहुल! यह जो आध्यात्मिक एवं बाह्य वायुधातु है, यह सब भी वायुधातु ही है... पूर्ववत्...। ...वायुधातु से चित्त विरक्त होता है।

६. क्योंकि, राहुल! जो भिक्षु इन चारों धातुओं में न अपने को न अपने किसी अन्य सम्बन्ध

८. **जम्बालीसुत्तं** : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? इध, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं सन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरति। सो सक्कायनिरोधं मनसि करोति। तस्स सक्कायनिरोधं मनसि करोतो सक्कायनिरोधे चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति नाधिमुच्चति। तस्स खो एवं, भिक्खवे भिक्खुनो न सक्कायनिरोधो पाटिकङ्खो। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो लेपगतेन हत्थेन साखं गण्हेय्य, तस्स सो हत्थो सज्जेय्य पि गण्हेय्य पि बज्झेय्य पि; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं सन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरति। सो सक्कायनिरोधं मनसि करोति। तस्स सक्कायनिरोधं मनसि करोतो सक्कायनिरोधे चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति नाधिमुच्चति। तस्स खो एवं, भिक्खवे, भिक्खुनो न सक्कायनिरोधो पाटिकङ्खो।

२. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं सन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज [B.485] विहरति। सो सक्कायनिरोधं मनसि करोति। तस्स सक्कायनिरोधं मनसि करोतो [R.166] सक्कायनिरोधे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। तस्स खो एवं, भिक्खवे, भिक्खुनो सक्कायनिरोधो पाटिकङ्खो। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो सुद्धेन हत्थेन साखं गण्हेय्य, तस्स सो हत्थो सज्जेय्य पि गण्हेय्य पि बज्झेय्य पि; एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु

को देखता है उस भिक्षु के विषय में बुद्धिमान् लोग कहने लगतं हैं—'इसने तृष्णा का समूल नाश कर दिया, संयोजनों को खोल दिया, इसने मान के विषय में भी स्पष्ट ज्ञान कर अपने दु:खों का अन्त कर लिया'॥''

८. जम्बालिसूत्र : : **चतुर्विध पुद्गल**

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये चतुर्विध पुद्गल देखे जाते हैं। कौन से चार ?

''कोई भिक्षु किसी उपस्थित चेतोविमुक्ति को प्राप्त कर साधना करता है। वह सत्कायनिरोध का मन में चिन्तन करता है। ऐसा करता हुआ वह स्वमन को सत्कायनिरोध में प्रवृत्त एवं प्रसन्न नहीं होने देता, न वहाँ वह ठहरता है न उसको स्वीकार करता है। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को चित्तनिरोध की कोई आशा नहीं रखनी चाहिये।

''जैसे, भिक्षुओ! हाथ में कोई लेप लगाकर किसी शाखा को पकड़ना चाहे, तो उसका वह हाथ वहाँ चिपक भी सकता है, वहीं लगा-बझा रह सकता है; उसी प्रकार, भिक्षुओ! जो भिक्षु उपस्थित चेतोविमुक्ति को प्राप्त कर साधना करता हुआ सत्कायनिरोध में मन लगाता है तो उसका मन उस सत्कायनिरोध में प्रवृत्त एवं प्रसन्न नहीं होता, न वहाँ ठहरता या उसको स्वीकार करता है। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को सत्कायनिरोध की कोई आशा नहीं रखनी चाहिये। (१)

२. भिक्षुओ! यहाँ कोई अन्य भिक्षु किसी चेतोविमुक्ति को प्राप्त कर साधना करता हुआ, सत्कायनिरोध को मन में कर उस निरोध की ओर प्रवृत्त एवं प्रसन्न होकर वहाँ टिकता है तथा उसकी प्राप्ति का सङ्कल्प लेता है। ऐसे, भिक्षुओ! उस भिक्षु को सत्कायनिरोध प्राप्त होने की आशा करनी चाहिये।

अञ्ञतरं सन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरति। सो सक्कायनिरोधं मनसि करोति। तस्स सक्कायनिरोधं मनसि करोतो सक्कायनिरोधे चित्तं पक्खन्दति पसीदति न सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। तस्स खो एवं, भिक्खवे, भिक्खुनो सक्कायनिरोधो पाटिकङ्खो।

[N.177] ३. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं सन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरति। सो अविज्जाप्पभेदं मनसि करोति। तस्स अविज्जाप्पभेदं मनसि करोतो अविज्जाप्पभेदे चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति सन्तिट्ठति नाधिमुच्चति। तस्स खो एवं, भिक्खवे, भिक्खुनो न अविज्जाप्पभेदो पाटिकङ्खो। सेय्यथापि, भिक्खवे, जम्बाली अनेकवस्सगणिका। तस्सा पुरिसो यानि चेव आयमुखानि तानि पिदहेय्य, यानि च अपायमुखानि तानि विवरेय्य, देवो च न सम्मा धारं अनुप्पवेच्छेय्य। एवं हि, तस्सा, भिक्खवे, जम्बालिया न आळिप्पभेदो पाटिकङ्खो। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं सन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरति। सो अविज्जाप्पभेदं मनसि करोति। तस्स अविज्जाप्पभेदं मनसि करोतो अविज्जाप्पभेदे चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति नाधिमुच्चति। तस्स खो एवं, भिक्खवे, भिक्खुनो न अविज्जाप्पभेदो पाटिकङ्खो।

४. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं सन्तं चेतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज विहरति। सो अविज्जाप्पभेदं मनसि करोति। तस्स अविज्जाप्पभेदं मनसि करोतो अविज्जाप्पभेदे चित्तं न पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। तस्स खो एवं, भिक्खवे भिक्खुनो अविज्जाप्पभेदो पाटिकङ्खो। सेय्यथापि, भिक्खवे, जम्बाली अनेकवस्सगणिका। तस्सा पुरिसो यानि चेव आयमुखानि तानि विवरेय्य, यानि च अपायमुखानि तानि पिदहेय्य, देवो च सम्मा धारं अनुप्पवेच्छेय्य। एवं हि, तस्सा, भिक्खवे, जम्बालिया आळिप्पभेदो

''जैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष स्वच्छ हाथ से किसी शाखा को पकड़े; वह वहाँ न चिपके, न लगे न बझे; इसी प्रकार, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी चेतोविमुक्ति को ...पूर्ववत्... सङ्कल्प लेता है। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को सत्कायनिरोध-प्राप्ति की आशा करनी चाहिये। (२)

३. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी चेतोविमुक्ति को प्राप्त कर साधना करता हुआ अविद्याप्रभेद को मन में करे। उसके ऐसा करते हुए उसका चित्त न यहाँ टिके, न लगे, न बझे। न उसकी प्राप्ति का सङ्कल्प ही करे। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को अपने अविद्याप्रभेद की आशा नहीं करनी चाहिये।

''जैसे, भिक्षुओ! कोई वर्षों पुराना गन्दा तालाब (जम्बाली) हो। उसके जल आने के सभी स्रोत कोई पुरुष बन्द कर दे तथा जल निकलने के सभी स्रोत खोल दे, उधर वर्षा भी न बरसे। ऐसी स्थिति में, भिक्षुओ! उसमें रहनेवाली मछलियाँ बढ़ पायेंगी—ऐसी आशा नहीं करनी चाहिये। इसी प्रकार, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी चेतोविमुक्ति को ...पूर्ववत्... उसके अविद्याप्रभेद की आशा नहीं करनी चाहिये। (३)

४. ''फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी चेतोविमुक्ति की साधना करता हुआ अविद्याप्रभेद का मन में चिन्तन करे। उसके ऐसा करते हुए उसका चित्त उसमें लग जाय, टिक जाय, बझ जाय।

पाटिकङ्खो। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं सन्तं चतोविमुत्तिं उपसम्पज्ज [B.486] विहरति। सो अविज्जाप्पभेदं मनसि करोति। तस्स अविज्जाप्पभेदं मनसि करोतो [R.167] अविज्जाप्पभेदे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति अधिमुच्चति। तस्स खो एवं, भिक्खवे, भिक्खुनो अविज्जाप्पभेदो पाटिकङ्खो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥ •

९. निब्बानसुत्तं : १. अथ खो आयस्मा आनन्दो येनायस्मा सारिपुत्तो [N.178] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—''को नु खो, आवुसो सारिपुत्त, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे न परिनिब्बायन्ती'' ति?

२. ''इधावुसो आनन्द सत्ता इमा हानभागिया सञ्ञा ति यथाभूतं नप्पजानन्ति, इमा ठितिभागिया सञ्ञा ति यथाभूतं नप्पजानन्ति, इमा विसेसभागिया सञ्ञा ति यथाभूतं नप्पजानन्ति, इमा निब्बेधभागिया सञ्ञा ति यथाभूतं नप्पजानन्ति। अयं खो, आवुसो आनन्द, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे न परिनिब्बायन्ती'' ति।

३. ''को पनावुसो सारिपुत्त, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती'' ति?

''इधावुसो आनन्द, सत्ता इमा हानभागिया सञ्ञा ति यथाभूतं पजानन्ति, इमा

उसकी प्राप्ति का सङ्कल्प करे। भिक्षुओ! ऐसे भिक्षु को अपने अविद्याप्रभेद की आशा करनी चाहिये।

''जैसे, भिक्षुओ! कोई वर्षों पुराना गन्दा तालाब हो, उसमें जल आने के सभी स्रोत खोल दिये जायँ तथा जल निकलने के सभी स्रोत बन्द कर दिये जायँ। वर्षा भी अच्छी बरसे। वैसी स्थिति में, भिक्षुओ! उसमें रहने वाली मछलियाँ बढ़ पायँगी—ऐसी आशा करनी चाहिये। इसी प्रकार, भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... उसके अविद्याप्रभेद की आशा करने में कोई हानि नहीं है॥'' (४) •

९. निर्वाणसूत्र : : इसी जन्म में परिनिर्वाण

१. एक समय आयुष्मान् आनन्द, जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र साधनाहेतु विराजमान थे वहाँ गये। कुशलक्षेम प्रश्नानन्तर आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् सारिपुत्र से यह जिज्ञासा प्रकट की—

''आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या हेतु, क्या प्रत्यय है कि यहाँ कुछ साधक (प्राणी) इसी जन्म में परिनिर्वृत नहीं हो पाते?''

२. ''आयुष्मन् आनन्द! यहाँ कुछ साधकजन 'ये हानभागीय संज्ञाएँ हैं'—यह यथार्थतः नहीं जान पाते, 'ये स्थितिभागीय संज्ञाएँ हैं'... 'ये विशेषभागीय संज्ञाएँ हैं'... 'ये निर्वेधभागीय संज्ञाएँ हैं'—यह यथार्थतः नहीं जान पाते। आयुष्मन् आनन्द! यह हेतु तथा यह कारण है कि यहाँ कुछ साधक इसी जन्म में परिनिवृत नहीं हो पाते''।

३. परन्तु, आयुष्मन् सारिपुत्र! क्या हेतु ...पूर्ववत्... इसी जन्म में परिनिर्वृत हो जाते हैं?''

ठितिभागिया सञ्ञा ति यथाभूतं पजानन्ति, इमा विसेसभागिया सञ्ञा ति यथाभूतं पजानन्ति, इमा निब्बेधभागिया सञ्ञा ति यथाभूतं पजानन्ति। अयं खो, आवुसो आनन्द, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चे सत्ता दिट्ठेव धम्मे परिनिब्बायन्ती'' ति॥

१०. महापदेससुत्तं : १. एकं समयं भगवा भोगनगरे विहरति आनन्दचेतिये। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो [B.487] पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—''चत्तारोमे, भिक्खवे, महापदेसे देसेस्सामि, तं [R.168] सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. ''कतमे, भिक्खवे, चत्तारो महापदेसा? इध, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'सम्मुखा मेतं, आवुसो, भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं [N.179] सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि न चेव सुत्ते ओतरन्ति न विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स; इमस्स च भिक्खुनो दुग्गहितं' ति। इति हेतं, भिक्खवे, छड्डेय्याथ।

''यहाँ आयुष्मन् आनन्द! ऐसे साधक 'ये हानभागीय संज्ञाएँ हैं'—...पूर्ववत्... यथार्थतः जानते हैं। आयुष्मन् आनन्द! यह हेतु ...पूर्ववत्... परिनिर्वृत हो जाते हैं॥''

१०. महापदेशसूत्र

: :

चार महापदेश

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) भोगनगर के आनन्दचैत्य में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को ''भिक्षुओ!'' कहकर अपने सम्मुख बुलाया, तथा समस्त भिक्षु भी ''हाँ, भन्ते'' कहकर उपस्थित हो गये। भगवान् ने उनको यह उपदेश दिया—''भिक्षुओ! ये चार **महापदेश** होते हैं। इनको मैं तुम्हें बता रहा हूँ। इनको सुनकर मन में बैठा लो। सुनो!''

''अच्छा, भन्ते!'' कहकर भिक्षुओं ने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् बोले—

२. ''भिक्षुओ! ये चार महापदेश (युक्तियाँ) कौन से होते हैं?

''यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु यह कहे—'मैंने स्वयं भगवान् से यह सुना है, मैंने स्वयं ग्रहण किया है कि यह धर्म है, यह विनय है, यही शास्ता का अनुशासन है।' भिक्षुओ! उस भिक्षु की यह बात सुनते ही तुमको उस बात का न अभिनन्दन करना चाहिये, न निषेध। इस प्रकार, अभिनन्दन एवं निषेध न करते हुए, पहले तुमको उसके कहे शब्दों को और उनके अर्थ को ठीक से सुनकर सम्बद्ध सूत्र से, सम्बद्ध विनय से तुलना करनी चाहिये। ऐसा करने पर यदि उस भिक्षु के कहे शब्द एवं अर्थ सम्बद्ध सूत्र एवं विनय से मेल न खायें, तब तुमको निश्चय कर लेना चाहिये—'यह इस भिक्षु का कथन उन भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध का वचन नहीं है, यह इसके द्वारा दुर्गृहीत है।' और, भिक्षुओ! उस विषय में ऐसा निश्चय कर उस भिक्षु के कथन का त्याग कर देना चाहिये।

३. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'सम्मुखा मेतं, आवुसो, भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि सुत्ते चेव ओतरन्ति विनये च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं तस्स भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स; इमस्स च भिक्खुनो सुग्गहितं' ति। इदं, भिक्खवे, **पठमं महापदेसं** धारेय्याथ।

४. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'असुकस्मिं नाम आवासे सङ्घो विहरति सथेरो सपामोक्खो। तस्स मे सङ्घस्स सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते [B.488] ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि न चेव सुत्ते ओतरन्ति न विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स; तस्स च सङ्घस्स दुग्गहितं' ति। इति हेतं, भिक्खवे, छड्डेय्याथ। [R.169]

५. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'असुकस्मिं नाम आवासे सङ्घो विहरति सथेरो सपामोक्खो। तस्स मे सङ्घस्स सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव [N.180] अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओतारिय-

---

३. ''और, भिक्षुओ! कोई भिक्षु तुमसे यह कहे—'मैंने स्वयं भगवान् से...पूर्ववत्... यदि उस भिक्षु के कहे शब्द एवं उनका अर्थ सूत्र तथा विनय से मेल खायँ तो तुमको निश्चय कर लेना चाहिये—'यह इस भिक्षु द्वारा कथित वचन उन भगवान् ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध का ही है।' और, भिक्षु का यह वचन स्वीकार करते हुए उसका अभिनन्दन करना चाहिये।

''भिक्षुओ! यह **प्रथम महापदेश** है। इसे इसी रूप में धारण कर लो। (१)

४. ''फिर, भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु यह कहे—'अमुक आवास में सङ्घ साधनारत है, उसमें स्थविर भी हैं, प्रमुख भी हैं। उस सङ्घ से मैंने स्वयं सुना है, स्वयं ग्रहण किया है कि यह सूत्र है, यह विनय है, यह शास्ता का अनुशासन है।' भिक्षुओ! उस भिक्षु की... पूर्ववत्... उस सङ्घ के द्वारा दुर्गृहीत है। इस प्रकार उस कथन का, भिक्षुओ! त्याग कर देना चाहिये।

५. ''और, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यह कहे—'अमुक आवास में सङ्घ... शास्ता का अनुशासन है।' भिक्षुओ! यदि उस भिक्षु के कहे शब्द एवं अर्थ सूत्र एवं विनय से मेल खायें ...सम्यक्सम्बुद्ध का ही वचन है। और भिक्षु का यह वचन स्वीकार करते हुए उसका अभिनन्दन करना चाहिये।

मानानि विनये सन्दस्सियमानानि सुत्ते चेव ओतरन्ति विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं तस्स भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स; तस्स च सङ्घस्स सुग्गहितं' ति। इति भिक्खवे, **दुतियं महापदेसं** धारेय्याथ।

६. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'असुकस्मिं नाम आवासे सम्बहुला थेरा भिक्खू विहरन्ति बहुस्सुतां आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा। तेसं मे थेरानं सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारियमानानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि न चेव सुत्ते ओतरन्ति विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स; तेसं च थेरानं दुग्गहितं' ति। इति हेतं, भिक्खवे, छड्डेय्याथ।

७. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'असुकस्मिं नाम आवासे सम्बहुला थेरा भिक्खू विहरन्ति बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा। तेसं मे थेरानं [B.489] सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि सुत्ते चेव ओतरन्ति विनये च सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं तस्स भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स; तेसं च थेरानं सुग्गहितं' ति। इदं, भिक्खवे, **ततियं महापदेसं** धारेय्याथ।

८. ''इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'असुकस्मिं नाम आवासे एको थेरो [R.170] भिक्खु विहरति बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो। तस्स मे [N.181] थेरस्स सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं।

भिक्षुओ! यह **द्वितीय महापदेश** है। इसे इसी रूप में धारण कर लो। (२)

६. ''फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु यह कहे—'अमुक भिक्षु आवास में बहुत से स्थविर भिक्षु साधना कर रहे हैं, जो बहुश्रुत हैं, आगम के अभ्यासी हैं, धर्मधर हैं, विनधर हैं, मातृकाधर हैं। उन स्थविरों के श्रीमुख से मैंने सुना है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता का शासन है।' भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... निश्चित समझ लेना चाहिये कि यह बुद्धवचन नहीं है, अपितु उन स्थविरों द्वारा दुर्गृहीत है। अत:, भिक्षुओ! ऐसे वचन का त्याग कर देना चाहिये।

७. और भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु... अमुक आवास में अनेक भिक्षु मातृकाधर हैं, ...यह बुद्धवचन है तथा उन भिक्षुओं द्वारा सुगृहीत है। भिक्षुओ! यह **तृतीय महापदेश** है, इसे धारण करो। (३)

अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि न चेव सुत्ते ओतरन्ति न विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं न चेव तस्स भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स; तस्स च थेरस्स दुग्गहितं' ति। इति हेतं, भिक्खवे, छड्डेय्याथ।

९. "इध पन, भिक्खवे, भिक्खु एवं वदेय्य—'असुकस्मिं नाम आवासे एको थेरो भिक्खु विहरति बहुस्सुतो आगतागमो धम्मधरो विनयधरो मातिकाधरो। तस्स मे थेरस्स सम्मुखा सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—अयं धम्मो, अयं विनयो, इदं सत्थुसासनं' ति। तस्स, भिक्खवे, भिक्खुनो भासितं नेव अभिनन्दितब्बं नप्पटिक्कोसितब्बं। अनभिनन्दित्वा अप्पटिक्कोसित्वा तानि पदब्यञ्जनानि साधुकं उग्गहेत्वा सुत्ते ओतारेतब्बानि, विनये सन्दस्सेतब्बानि। तानि चे सुत्ते ओतारियमानानि विनये सन्दस्सियमानानि सुत्ते चेव ओतरन्ति विनये सन्दिस्सन्ति, निट्ठमेत्थ गन्तब्बं—'अद्धा, इदं तस्स भगवतो वचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स; तस्स च थेरस्स सुग्गहितं' ति। इदं, भिक्खवे, **चतुत्थं महापदेसं** धारेय्याथ। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो महापदेसा" ति॥ ●

सञ्चेतनियवग्गो अट्ठारसमो॥

तस्सुद्दानं

चेतना विभत्ति कोट्ठिको, आनन्दो उपवाणपञ्चमं। [B.490]
आयाचनराहुलजम्बाली, निब्बानं पहापदेसेना ति॥ ●

१९. ब्राह्मणवग्गो

१. योधाजीवसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो योधाजीवो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे,

---

८. "फिर, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु... एक भिक्षु... मातृकाधर है... यह बुद्धवचन नहीं है, तथा उस भिक्षु द्वारा दुर्गृहीत है। अत: भिक्षुओ! ऐसे वचन का त्याग कर देना चाहिये।

९. "और, फिर भिक्षुओ! यहाँ कोई... एक भिक्षु... मातृकाधर है,... यह बुद्धवचन है तथा उस भिक्षु द्वारा सुगृहीत है। भिक्षुओ! यह **चतुर्थ महापदेश** है, इसे धारण करो। (४)

"भिक्षुओ! ये चार महापदेश हैं॥"

सञ्चेतनीय वर्ग अष्टादश सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. चेतनासूत्र, २. विभक्तिसूत्र, ३. महाकोट्ठिकसूत्र, ४. आनन्दसूत्र, ५. उपवाणसूत्र, ६. आयाचनसूत्र, ७. राहुलसूत्र, ८. जम्बालिसूत्र, ९. निर्वाणसूत्र, १०. महापदेशसूत्र॥ ●

[N.182] योधाजीवो ठानकुसलो च होति, दूरेपाती च, अक्खणवेधी च, महतो च कायस्स पदालेता। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागतो योधाजीवो राजारहो होति [R.171] राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्खं गच्छति। एवमेव खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु ठानकुसलो च होति, दूरेपाती च, अक्खणवेधी च, महतो च कायस्स पदालेता।

२. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु ठानकुसलो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु **ठानकुसलो** होति।

३. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु दूरेपाती होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु यं किञ्चि रूपं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं रूपं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना ... या काचि सञ्ञा ... ये केचि सङ्खारा ... यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु **दूरेपाती** होति।

[B.491] ४. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु अक्खणवेधी होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु

---

१९. ब्राह्मणवर्ग

१. योधाजीवसूत्र

: :

चार अङ्गयुक्त सैनिक

१. "भिक्षुओ! चार अङ्गों से युक्त कोई सैनिक राजयोग्य या राजसेवक होने योग्य होता है। वह 'राजा का अङ्ग' कहलाता है। किन चार अङ्गों से? (१) यहाँ कोई सैनिक स्थान (मोर्चा) सम्हालने में कुशल होता है, (२) दूरदृष्टि होता है, (३) लक्ष्यवेधी होता है, (४) अधिक से अधिक सैनिकों को मारने (दमन करने) वाला होता है। इसी तरह, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु भी इन चार अङ्गों से युक्त हो तो वह आह्वानीय, प्राह्वाणीय, दान देने योग्य, नमस्करणीय तथा लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि है। किन चार अङ्गों से? (१) स्थानकुशल, (२) दूरदृष्टि, (३) लक्ष्यवेधी, एवं (४) अनेक दुर्गुणसमूह का नाशक।

२. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **स्थान कुशल** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलवान् होता है ...पूर्ववत्... ग्रहण कर शिक्षापदों का अभ्यास करता है। इस प्रकार, वह भिक्षु 'स्थानकुशल' कहलाता है। (१)

३. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **दूरेपाती** (दूरदृष्टि) होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु जो कोई भूत, भविष्य एवं वर्तमान रूप हो—जो भले ही अध्यात्म हो या बहिरङ्ग, स्थूल (उदार) हो सूक्ष्म, हीन हो या उत्तम, दूरस्थ हो या समीपस्थ, इस सभी रूप को 'यह मेरा नहीं है, यह मैं नहीं

'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु **अक्खणवेधी** होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु महतो कायस्स पदालेता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु महन्तं अविज्जाक्खन्धं पदालेता। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु महतो **कायस्स पदालेता** होति। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति।

२. पाटिभोगसुत्तं : १. "चतुन्नं, भिक्खवे, धम्मानं नत्थि कोचि [N.183,R.172] पाटिभोगो—समणो वा ब्राह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं।

२. "कतमेसं चतुन्नं? 'जराधम्मं मा जीरी' ति नत्थि कोचि पाटिभोगो—समणो वा ब्राह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं; 'ब्याधिधम्मं मा ब्याधियी' ति नत्थि कोचि पाटिभोगो—समणो वा ब्राह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं; 'मरणधम्मं मा मीयी' ति नत्थि कोचि पाटिभोगो—समणो वा ब्राह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं; 'यानि खो पन तानि पुब्बे अत्तना कतानि पापकानि कम्मानि सङ्किलेसिकानि पोनोब्भविकानि सदरानि दुक्खविपाकानि आयतिं जातिजरा-

---

हूँ, यह मेरी आत्मा नहीं है'—ऐसा यथार्थतः सम्यक्तया जानकर हृदयङ्गम करता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु 'दूरेपाती' होता है। (२)

४. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु '**लक्ष्यवेधी** (अक्खणवेधी) होता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'यह दुःख है'—इसे यथार्थतः जानता है...पूर्ववत्... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—इसे यथार्थतः जानता है। भिक्षुओ! इस तरह का भिक्षु, 'लक्ष्यवेधी' कहलाता है। (३)

५. कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **महान् विकारसमूह का नाशक** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अविद्यास्कन्ध का प्रदारयिता (नाशक) होता है; ऐसा भिक्षु ही महान् विकार (दुर्गुण) समूह का नाश कहलाता है। (४)

"भिक्षुओ! चतुर्धर्म ऐसा भिक्षु ही गृहस्थों द्वारा अपने घरों में आह्वानीय... लोक के लिये उत्तम पुण्यभूमि है॥"

२. प्रातिभोगसूत्र : : चार धर्मों का उत्तरदायी कोई नहीं

१. "भिक्षुओ! इन चार धर्मों से, जमानत देकर, छुड़ानेवाला (प्रतिभू=उत्तरदायी) इस लोक में कोई नहीं हो सकता; भले ही वह कोई श्रमण हो या ब्राह्मण, देव हो या मार या कोई ब्रह्मा ही क्यों न हो!

२. किन चार धर्मों से? (१) 'मुझ पर जराधर्म का प्रभाव न पड़े'—इस बात की जमानत (उत्तरदायित्व=गारण्टी) कोई नहीं ले सकता; भले ही वह कोई श्रमण... या ब्रह्मा ही क्यों न हो। (२) 'मुझ पर किसी व्याधिधर्म (रोग) का प्रभाव न पड़े'...। (३) 'मुझपर मरणधर्म (मृत्यु)का प्रभाव न पड़े'...। (४) 'मेरे द्वारा स्वयंकृत पाप कर्म भी—जो क्लेशप्रद, पुनर्जन्म देनेवाले, भयप्रद, दुःखपरिणाम वाले तथा भविष्य में जाति-जरा-मरणधर्मों की ओर ढकेलने वाले हैं, कभी फल न

मरणिकानि, तेसं विपाको मा निब्बत्ती' ति नत्थि कोचि पाटिभोगो—समणो वा ब्रह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं।

३. ''इमेसं खो, भिक्खवे, चतुन्नं धम्मानं नत्थि कोचि पाटिभोगो—समणो वा ब्राह्मणो वा देवो वा मारो वा ब्रह्मा वा कोचि वा लोकस्मिं'' ति॥ ●

३. सुतसुत्तं : १. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। [B.492] अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवन्तं एतदवोच—

२. ''अहं हि, भो गोतम, एवंवादी एवंदिट्ठि—'यो कोचि दिट्ठं भासति—एवं मे दिट्ठं ति, नत्थि ततो दोसो; यो कोचि सुतं भासति—एवं मे सुतं ति, नत्थि ततो दोसो; यो कोचि मुतं भासति—एवं मे मुतं ति, नत्थि ततो दोसो; यो कोचि विञ्ञातं भासति—एवं मे विञ्ञातं ति, नत्थि ततो दोसो''' ति।

[N.184] ३. ''नाहं, ब्राह्मण, सब्बं दिट्ठं भासितब्बं ति वदामि; न पनाहं, ब्राह्मण, सब्बं दिट्ठं न भासितब्बं ति वदामि; नाहं, ब्राह्मण, सब्बं सुतं भासितब्बं ति वदामि; न पनाहं, ब्राह्मण, [R.173] सब्बं सुतं न भासितब्बं ति वदामि; नाहं, ब्राह्मण, सब्बं मुतं भासितब्बं ति वदामि; न पनाहं, ब्राह्मण, सब्बं मुतं न भासितब्बं ति वदामि; नाहं, ब्राह्मण, सब्बं विञ्ञातं भासितब्बं ति वदामि; न पनाहं, ब्राह्मण, सब्बं विञ्ञातं न भासितब्बं ति वदामि।

४. ''यं हि, ब्राह्मण, दिट्ठं भासतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा

दें'—इस बात की जमानत देने वाला इस लोक में कोई नहीं है; भले ही वह श्रमण हो या ब्राह्मण, देव हो या मार या फिर स्वयं ब्रह्मा ही क्यों न हो!

३. ''अत: भिक्षुओ! इन चार धर्मों से, जमानत देकर, छुड़ाने वाले कोई नहीं है... पूर्ववत्... ब्रह्मा ही क्यों न हो!''॥ ●

३. श्रुतसूत्र : : दृष्ट, श्रुत, स्मृत, विज्ञात का कथन सत्य है?

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवन स्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ कभी मगध साम्राज्य का महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् के सम्मुख आया तथा उनका कुशलमङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उसने भगवान् से यह पूछा—

२. ''भो गौतम! मैं ऐसा मानता हूँ, मेरी ऐसी समझ है—'जो कोई पुरुष अपना कहीं कुछ देखा हुआ कहता है, अपना कहीं सुना हुआ कहता है, अपना स्मरण किया हुआ कहता है या अपने द्वारा विज्ञात कहता है—तो इन चारों में कहनेवाले को कोई दोष (पाप) नहीं लगता'।''

३. ''ब्राह्मण! मैं सभी 'दृष्ट' को कथनयोग्य नहीं मानता और ब्राह्मण! न सभी 'दृष्ट' को न कथनयोग्य ही मानता हूँ। इसी प्रकार सभी श्रुत को... सभी स्मृत को... सभी विज्ञात को न कथनयोग्य या न कथनयोग्य मानता हूँ।

परिहायन्ति, एवरूपं दिट्ठं न भासितब्बं ति वदामि। यं च ख्वस्स, ब्राह्मण, दिट्ठं अभासतो कुसला धम्मा परिहायन्ति, अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपं दिट्ठं भासितब्बं ति वदामि।

५. ''यं हि, ब्राह्मण, सुतं भासतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपं सुतं न भासितब्बं ति वदामि। यं च ख्वस्स, ब्राह्मण, सुतं अभासतो कुसला धम्मा परिहायन्ति, अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपं सुतं भासितब्बं ति वदामि।

६. ''यं हि, ब्राह्मण, मुतं भासतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपं मुतं न भासितब्बं ति वदामि। यं च ख्वस्स, ब्राह्मण, मुतं अभासतो कुसला धम्मा परिहायन्ति, अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपं मुतं भासितब्बं ति वदामि।

७. ''यं हि, ब्राह्मण, विञ्ञातं भासतो अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, [B.493] कुसला धम्मा परिहायन्ति, एवरूपं विञ्ञातं न भासितब्बं ति वदामि। यं च ख्वस्स, ब्राह्मण, विञ्ञातं अभासतो कुसला धम्मा परिहायन्ति, अकुसला धम्मा अभिवड्ढन्ति, एवरूपं विञ्ञातं भासितब्बं ति वदामी'' ति।

अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामी ति॥ ●

४. अभयसुत्तं : १. अथ खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो जाणुस्सोणि ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच— [N.185]

---

४. ''ब्राह्मण! जिस 'दृष्ट' के कहने वाले के अकुशल धर्म बढ़ते हों, कुशल धर्म क्षीण होते हों—ऐसा 'दृष्ट' नहीं कहना चाहिये—मैं ऐसा मानता हूँ। और ब्राह्मण! जिस 'दृष्ट' के न कहने वाले के कुशल धर्म क्षीण होते हो तथा अकुशल धर्म बढ़ते हों—'ऐसा 'दृष्ट' कहना ही चाहिये'—मैं ऐसा मानता हूँ।

५. ''ब्राह्मण! जिस 'श्रुत' के कहने वाले के ...पूर्ववत्...।

६. ''ब्राह्मण! जिस 'स्मृत' के कहने वाले के ...पूर्ववत्...।

७. ''ब्राह्मण! जिस 'विज्ञात' के कहने वाले के अकुशल धर्म बढ़ते हों तथा कुशल धर्म क्षीण होते हों—ऐसा 'विज्ञात' नहीं कहना चाहिये—मैं ऐसा मानता हूँ। और, ब्राह्मण! जिस 'विज्ञात' को न कहने वाले के कुशल धर्म क्षीण होते हों तथा अकुशल धर्म बढ़ते हों—ऐसा 'विज्ञात' कह ही देना चाहिये—मैं ऐसा मानता हूँ॥''

तब मगध महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् के इस मन्तव्य का अभिनन्दन तथा अनुमोदन कर आसन से उठकर चला गया॥ ●

४. अभयसूत्र : : मृत्यु से कौन नहीं डरता ?

१. तब जानुश्रोणि ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ गया। जाकर, कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे जानुश्रोणि ब्राह्मण ने भगवान् से यह निवेदन किया—

२. "अहं हि, भो गोतम, एवंवादी एवदिट्ठि—'नत्थि यो मरणधम्मो समानो न भायति, न सन्तासं आपज्जति मरणस्सा'" ति।

"अत्थि, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो भायति, सन्तासं आपज्जति मरणस्स; अत्थि पन, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो न भायति, न सन्तासं आपज्जति मरणस्स।"

३. "कतमो च, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो भायति, सन्तासं आपज्जति मरणस्स? [R.174] इध, ब्राह्मण, एकच्चो कामेसु अवीतरागो होति अविगतच्छन्दो अविगतपेमो अविगतपिपासो अविगतपरिळाहो अविगततण्हो। तमेनं अञ्ञतरो गाळ्हो रोगातङ्को फुसति। तस्स अञ्ञतरेन गाळ्हेन रोगातङ्केन फुट्ठस्स एवं होति—'पिया वत मं कामा जहिस्सन्ति, पिये चाहं कामे जहिस्सामी' ति। सो सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं खो, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो भायति, सन्तासं आपज्जति मरणस्स।

४. "पुन च परं, ब्राह्मण, इधेकच्चो काये अवीतरागो होति अविगतच्छन्दो अविगतपेमो अविगतपिपासो अविगतपरिळाहो अविगततण्हो। तमेनं अञ्ञतरो गाळ्हो रोगातङ्को फुसति। तस्स अञ्ञतरेन गाळ्हेन रोगातङ्केन फुट्ठस्स एवं होति—'पियो वत मं [B.494] कायो जहिस्सति, पियं चाहं कायं जहिस्सामी' ति। सो सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं खो, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो भायति, सन्तासं आपज्जति मरणस्स।

५. "पुन च परं, ब्राह्मण, इधेकच्चो अकतकल्याणो होति अकतकुसलो

---

२. "भन्ते! मेरी मान्यता यह है कि इस संसार में ऐसा कोई नहीं जो मरणस्वभाव होने के कारण मृत्यु से डरता न हो, या मृत्यु का स्मरण कर उद्विग्न न होता हो।"

"ब्राह्मण! इस संसार में दो प्रकार के पुरुष हैं। **एक**—वे जो मृत्युस्वभाव होने के कारण मृत्यु से डरते हैं, उद्विग्न होते हैं; तथा **दूसरे**—वे जो मरणस्वभाव होते हुए भी मृत्यु से नहीं डरते, उससे उद्विग्न नहीं होते।

३. "ब्राह्मण! इनमें प्रथम प्रकार का पुरुष कौन है जो मरणधर्मा होते हुए भी मृत्यु से भय मानता है, उद्विग्न होता है? ब्राह्मण! यहाँ कोई ऐसा पुरुष, जिसकी संसार के प्रति आसक्ति, स्वेच्छाचार, प्रेम, पिपासा, परिदाह एवं तृष्णा न छूटी हो; उसको कोई भयङ्कर रोग पकड़ ले। तब उस रोगग्रस्त के मन में यह विचार हो—'अरे! अब ये मेरे सांसारिक विषय मुझको छोड़ देंगे, या मैं उनको छोड़ दूँगा।' यह सोच सोचकर वह क्लान्त होता है, विलाप करता है, छाती पीटकर रोता है, मूर्च्छित होता है। ब्राह्मण! ऐसा मरणस्वभाव पुरुष मृत्यु से भय मानता है, मृत्यु का नाम सुनकर उद्विग्न होता है। (१)

४. "ब्राह्मण! फिर एक पुरुष ऐसा भी होता है जो ...पूर्ववत्... 'अरे! अब यह मेरी काया मेरा साथ छोड़ देगी, या मैं इस काया को छोड़ दूँगा' यह सोचकर... मृत्यु का नाम सुनकर उद्विग्न होता है। (२)

अकतभीरुत्ताणो कतपापो कतलुद्दो कतकिब्बिसो। तमेनं अञ्ञतरो गाळ्हो रोगातङ्को फुसति। तस्स अञ्ञतरेन गाळ्हेन रोगातङ्केन फुट्ठस्स एवं होति—'अकतं वत मे कल्याणं, अकतं कुसलं, अकतं भीरुत्ताणं; कतं पापं, कतं लुद्दं, कतं किब्बिसं। यावता, भो, अकतकल्याणानं अकतकुसलानं अकतभीरुत्ताणानं कतपापानं कतलुद्दानं कतकिब्बिसानं गति तं गतिं पेच्च गच्छामी' ति। सो सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं खो, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो भायति, सन्तासं आपज्जति [N.186] मरणस्स।

६. ''पुन च परं, ब्राह्मण, इधेकच्चो कङ्खी होति विचिकिच्छी अनिट्ठङ्गतो सद्धम्मे। तमेनं अञ्ञतरो गाळ्हो रोगातङ्को फुसति। तस्स अञ्ञतरेन गाळ्हेन रोगातङ्केन फुट्ठस्स एवं होति—'कङ्खी वतम्हि विचिकिच्छी अनिट्ठङ्गतो सद्धम्मे' ति। सो सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं पि खो, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो भायति, सन्तासं आपज्जति मरणस्स। इमे खो, ब्राह्मण, चत्तारो मरणधम्मा समाना भायन्ति सन्तासं आपज्जन्ति मरणस्स।

७. '' कतमो च, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो न भायति, न सन्तासं [R.175] आपज्जति मरणस्स? इध, ब्राह्मण, एकच्चो कामेसु वीतरागो होति विगतच्छन्दो विगतपेमो विगतपिपासो विगतपरिळाहो विगततण्हो। तमेनं अञ्ञतरो गाळ्हो रोगातङ्को फुसति। तस्स अञ्ञतरेन गाळ्हेन रोगातङ्केन फुट्ठस्स एवं होति—'पिया वत मं कामा जहिस्सन्ति, पिये

---

५. ''ब्राह्मण! पुनः एक पुरुष ऐसा भी होता है जिसने कभी सुकृत नहीं किये, कुशल कर्म नहीं किये, इस लोक या परलोक में विविध भयों से अपनी रक्षा का कोई उपाय नहीं किया, अपितु वह पापकर्म, लोभ, एवं अकुशल कर्मों में ही लिप्त रहा। ऐसे पुरुष को कोई रोग पकड़ ले। तब वह उस रोग से ग्रस्त होकर यों विचार करने लगे—'अरे! मैंने अब तक कोई शुभकर्म नहीं किया; कुशल कर्म नहीं किया, अपितु पापकर्म एवं लोभकर्म में फँसे रहकर अकुशल कर्म ही किये। अब उन पापियों की, शुभकर्म न करनेवालों की, इस लोक या परलोक में भय से रक्षा हेतु कोई शरण-स्थल न बनाने वालों की जो दुर्गति होती है, मरणानन्तर मेरी भी वही दुर्गति होगी।' यह सोच सोचकर... मृत्यु का नाम सुनकर उद्विग्न होता है। (३)

६. फिर, ब्राह्मण! एक पुरुष ऐसा होता है जो इस सद्धर्म के प्रति नाना प्रकार की शङ्काएँ, सन्देह रखता हुआ इसमें श्रद्धालु नहीं हो पाता। उस समय वह किसी रोग से ग्रस्त हो जाय। तब उसको यह विचार हो—'मैं तो इस सद्धर्म के प्रति विविध सन्देह एवं शङ्काएँ करता हुआ इसके प्रति श्रद्धालु नहीं हो पाया।'...पूर्ववत्... मृत्यु का नाम सुनकर उद्विग्न होता है। (४) (क)

७. ''और कौन, ब्राह्मण! मरणधर्मा होने पर भी मृत्यु से नहीं डरता, उससे उद्विग्न नहीं होता? यहाँ, ब्राह्मण! जो साधक कामभोगों में राग, स्वेच्छाचार, प्रेम, पिपासा, परिदाह एवं तृष्णा का त्याग कर चुका है; वह कभी किसी रोग से ग्रस्त हो जाय तो उसको यह विचार नहीं होता—

चाहं कामे जहिस्सामी' ति। सो न सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं खो, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो न भायति, न सन्तासं आपज्जति मरणस्स।

[B.495] ८. ''पुन च परं, ब्राह्मण, इधेकच्चो काये वीतरागो होति विगतच्छन्दो विगतपेमो विगतपिपासो विगतपरिळाहो विगततण्हो। तमेनं अञ्ञतरो गाळ्हो रोगातङ्को फुसति। तस्स अञ्ञतरेन गाळ्हेन रोगातङ्केन फुट्ठस्स न एवं होति—'पियो वत मं कायो जहिस्सति, पियं चाहं कायं जहिस्सामी' ति। सो न सोचति न किलमति न परिदेवति, न उरत्ताळिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। अयं पि खो, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो न भायति, न सन्तासं आपज्जति मरणस्स।

९. ''पुन च परं, ब्राह्मण, इधेकच्चो अकतपापो होति अकतलुद्दो अकतकिब्बिसो कतकल्याणो कतकुसलो कतभीरुत्ताणो। तमेनं अञ्ञतरो गाळ्हो रोगातङ्को फुसति। तस्स अञ्ञतरेन गाळ्हेन रोगातङ्केन फुट्ठस्स एवं होति—'अकतं वत मे पापं, अकतं लुद्दं, अकतं किब्बिसं; कतं कल्याणं, कतं कुसलं, कतं भीरुत्ताणं। यावता, भो अकतपापानं अकतलुद्दानं [N.187] अकतकिब्बिसानं कतकल्याणानं कतकुसलानं कतभीरुत्ताणानं गति तं पेच्च गच्छामी' ति। सो न सोचति न किलमति न परिदेवति, न उरत्ताळिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। अयं पि खो, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो न भायति, न सन्तासं आपज्जति मरणस्स।

१०. ''पुन च परं, ब्राह्मण, इधेकच्चो अकङ्खी होति अविचिकिच्छी निट्ठङ्गतो सद्धम्मे। तमेनं अञ्ञतरो गाळ्हो रोगातङ्को फुसति। तस्स अञ्ञतरेन गाळ्हेन रोगातङ्केन फुट्ठस्स एवं होति—'अकङ्खी वतम्हि अविचिकिच्छी निट्ठङ्गतो सद्धम्मे' ति। सो न सोचति [R.176] न किलमति न परिदेवति, न उरत्ताळिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। अयं पि खो, ब्राह्मण, मरणधम्मो समानो न भायति, न सन्तासं आपज्जति मरणस्स। इमे खो, ब्राह्मण, चत्तारो मरणधम्मा समाना न भायन्ति, न सन्तासं आपज्जन्ति मरणस्सा'' ति।

'ये प्रिय कामभोग मुझको छोड़ देंगे, या मैं इनको छोड़ दूँगा।' अत: वह इस विषय में कोई चिन्ता, विलाप, छाती पीटना आदि नहीं करता और न मूर्च्छित ही होता है। ब्राह्मण! यह वीतराग साधक मृत्युभय से न डरता है, न उद्विग्न होता है। (१)

८. फिर, ब्राह्मण! कोई साधक काया में वीतराग ...पूर्ववत्...। ब्राह्मण! यह वीतराग मरणभय से न उद्विग्न होता है, न डरता है। (२)

९. ''फिर, ब्राह्मण, जिस साधक ने पाप करना त्याग दिया है ...पूर्ववत्... न उद्विग्न होता है, न डरता है। (३)

१०. फिर, ब्राह्मण! कोई साधक सद्धर्म के प्रति सभी शङ्का-सन्देह त्याग कर उसके प्रति श्रद्धालु हो जाता है। वह कभी किसी रोग से ग्रस्त हो जाय, तो उसको यह विचार होता है—'मैं

११. "''अभिक्कन्तं, भो गोतम, अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

५. समणसच्चसुत्तं : १. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे [B.496] पब्बते। तेन खो पन समयेन सम्बहुला अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता परिब्बाजका सिप्पिनिकातीरे परिब्बाजकारामे पटिवसन्ति, सेय्यथीदं अन्नभारो वरधरो सकुलुदायि च परिब्बाजको अञ्ञे च अभिञ्ञाता अभिञ्ञाता परिब्बाजका। अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन सिप्पिनिकातीरे परिब्बाजकारामो तेनुपसङ्कमि।

२. तेन खो पन समयेन तेसं अञ्ञतित्थियानं परिब्बाजकानं सन्निसिन्नानं सन्निपतिन्नानं अयमन्तरा कथा उदपादि—"इति पि ब्राह्मणसच्चानि, इति पि ब्राह्मण-सच्चानी'' ति। अथ खो भगवा येन ते परिब्बाजका तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा ते परिब्बाजके एतदवोच—

३. "काय नुत्थ, परिब्बाजका, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो [N.188] अन्तराकथा विप्पकता'' ति?

"इध, भो गोतम, अम्हाकं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—'इति पि ब्राह्मणसच्चानि, इति पि ब्राह्मणसच्चानी''' ति।

४. "चत्तारिमानि, परिब्बाजका, ब्राह्मणसच्चानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा

सद्धर्म के प्रति किसी शङ्का सन्देह से युक्त नहीं हूँ।' अत: वह कोई सांसारिक चिन्ता, विलाप, छाती पीटना आदि नहीं करता, न कहीं मुग्ध ही होता है। ब्राह्मण! ऐसा साधक भी न मरणभय से डरता है और न उद्विग्न ही होता है।''

११. "बहुत उचित कहा, भो गौतम! बहुत अच्छा कहा। ...पूर्ववत्... आज से आप मुझे जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक समझें॥'' ●

५. श्रमणसत्यसूत्र : : श्रमण सत्य क्या हैं?

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय बहुत प्रसिद्ध प्रसिद्ध परिव्राजक सिप्पिनिका-तीरस्थित परिव्राजकाराम में ठहरे हुए थे; जैसे—अन्नभार, वरधर, एवं सकुलुदायी परिव्राजक और ऐसे ही बहुत से प्रसिद्ध परिव्राजक। तब भगवान् किसी सायङ्काल, दिवासाधना से निवृत्त होकर सिप्पिनिका-तीरस्थित उस परिव्राजकाराम में पहुँचे।

२. उस समय उन परिव्राजकों में यह चर्चा चल रही थी—"ये भी 'ब्राह्मणसत्य' होते हैं, और ये भी।'' तब भगवान् वहाँ पहुँचे। पहुँचकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। वहाँ विराजकर भगवान् ने उन परिव्राजकों से पूछा—

३. "परिव्राजको! अभी तुम लोगों में क्या कथाप्रसङ्ग चल रहा था? तुमने अपनी बात कहाँ अधूरी ही छोड़ दी?''

"भो गौतम! यहाँ हम यही चर्चा कर रहे थे—ये भी ब्राह्मणसत्य होते हैं और ये भी।''

पवेदितानि। कतमानि चत्तारि? इध, परिब्बाजका, ब्राह्मणो एवमाह—'सब्बे पाणा अवज्झा' ति। इति वदं ब्राह्मणो सच्चं आह, नो मुसा। सो तेन न समणो ति मञ्ञति, न ब्राह्मणो ति मञ्ञति, न हीनोहमस्मी ति मञ्ञति। अपि च यदेव तत्थ सच्चं तदभिञ्ञाय पाणानंयेव अनुद्दयाय पटिपन्नो होति।

[R.177] ५. ''पुन च परं, परिब्बाजका, ब्राह्मणो एवमाह—'सब्बे कामा अनिच्चा दुक्खा विपरिणामधम्मा' ति। इति वदं ब्राह्मणो सच्चमाह, नो मुसा। सो तेन न समणो ति मञ्ञति, न ब्राह्मणो ति मञ्ञति, न सेय्योहमस्मी ति मञ्ञति, न सदिसोहमस्मी ति मञ्ञति, न हीनोहमस्मी ति मञ्ञति। अपि च यदेव तत्थ सच्चं तदभिञ्ञाय कामानंयेव निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति।

[B.497] ६. ''पुन च परं, परिब्बाजका, ब्राह्मणो एवमाह—सब्बे भवा अनिच्चा ...पे०... तदभिञ्ञाय भवानंयेव निब्बिदाय विरागाय निरोधाय पटिपन्नो होति।

७. ''पुन च परं, परिब्बाजका, ब्राह्मणो एवमाह—'नाहं क्वचनि कस्सचि किञ्चनतस्मिं न च मम क्वचनि कत्थचि किञ्चनतत्थी' ति। इति वदं ब्राह्मणो सच्चं आह, नो मुसा। सो तेन न समणो ति मञ्ञति, न ब्राह्मणो ति मञ्ञति, न सेय्योहमस्मी ति मञ्ञति, न सदिसोहमस्मी ति मञ्ञति, न हीनोहमस्मी ति मञ्ञति। अपि च यदेव तत्थ सच्चं [N.189] तदभिञ्ञाय आकिञ्चञ्ञंयेव पटिपदं पटिपन्नो होति। इमानि खो, परिब्बाजका, चत्तारि ब्राह्मणसच्चानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी'' ति॥ ●

---

४. ''परिव्राजको! इन चार ब्राह्मणसत्यों को मैंने स्वयं जानकर समझकर प्रत्यक्ष कर इनका उपदेश किया है। कौन से चार?

''परिव्राजको! यहाँ कोई ब्राह्मण यदि यह कहता है—'सभी प्राणी अवध्य है।' ऐसा कहता हुआ वह ब्राह्मण सत्य ही कहता है, असत्य नहीं। वह उस कारण स्वयं को न श्रमण मानता है, न ब्राह्मण; न अपने को किसी से श्रेष्ठ मानता है, न किसी के समान और न किसी से हीन मानता है। अपितु, जो सत्य है उसे जानकर प्राणियों कृपा एवं अनुकम्पा में ही लगा रहता है। (१)

५. ''और, परिव्राजको! कोई ब्राह्मण यदि यह कहता है—'सभी कामभोग अनित्य, दुःखभय एवं परिवर्तनशील हैं।' ऐसा कहता हुआ वह ब्राह्मण सत्य ही कहता है, असत्य नहीं। ...पूर्ववत्... न किसी से हीन मानता है। अपितु, जो सत्य है उसे जानकर कामों के प्रति निर्वेद, वैराग्य, निरोध में लग जाता है। (२)

६. ''पुनः, परिव्राजको! कोई ब्राह्मण यदि यह कहता है—'सभी भव अनित्य ...पूर्ववत्...। अपितु, जो सत्य है उसे जानकर भवों के प्रति निर्वेद, वैराग्य, निरोध में लगा रहता है। (३)

७. ''पुनः, परिव्राजको! कोई ब्राह्मण यदि यह कहता है—'मैं कहीं भी, किसी का भी कुछ भी नहीं हूँ, और न मेरा कहीं भी किसी में भी कुछ है।' ऐसा कहता हुआ वह ब्राह्मण सत्य ही कहता है, असत्य नहीं। ...पूर्ववत्...। वह वहाँ जो सत्य है उसी का आलम्बन कर आकिञ्चन्य मार्ग पर आरूढ रहता है। (४)

६. उम्मग्गसुत्तं : १. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"केन नु खो, भन्ते, लोको नीयति, केन लोको परिकस्सति, कस्स च उपन्नस्स वसं गच्छती" ति?

२. "साधु साधु, भिक्खु! भद्दको खो ते, भिक्खु उम्मग्गो, भद्दकं पटिभानं, कल्याणी परिपुच्छा। एवं हि त्वं, भिक्खु पुच्छसि—'केन नु खो, भन्ते, लोको नीयति, केन लोको परिकस्सति, कस्स च उप्पन्नस्स वसं गच्छती'" ति? "एवं, भन्ते"।

"चित्तेन खो, भिक्खु, लोको नीयति, चित्तेन परिकस्सति, चित्तस्स उप्पन्नस्स वसं गच्छती" ति।

३. "साधु, भन्ते" ति खो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा [R.178] अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरि पञ्हं अपुच्छि—"'बहुस्सुतो धम्मधरो, बहुस्सुतो धम्मधरो' ति भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, बहुस्सुतो धम्मधरो होती" ति?

४. "साधु साधु, भिक्खु! भद्दको खो ते, भिक्खु उम्मग्गो, भद्दकं पटिभानं, कल्याणी परिपुच्छा। एवं हि त्वं, भिक्खु, पुच्छसि—'बहुस्सुतो धम्मधरो, बहुस्सुतो धम्मधरो ति भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, बहुस्सुतो धम्मधरो होती'" ति? "एवं, भन्ते"। [B.498]

"परिव्राजको! ये चार 'ब्राह्मणसत्य' हैं जिनको मैंने स्वयं जानकर साक्षात् कर जनता में इनका उपदेश किया है॥

६. उन्मार्गसूत्र : : उमङ्ग (उत्साह) भरा प्रश्न

१. ...तब कोई भिक्षु, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर उनको प्रणाम कर एक और बैठ गया। एक और बैठे हुए उस भिक्षु ने भगवान् से उत्सुकतायुक्त प्रश्न किया—"भन्ते! वह लोक किससे प्रेरित होता है, किससे बढ़ावा पाता है तथा वह किसके उत्पन्न होने पर उसके वश में हो जाता है?"

२. "बहुत उत्तम, भिक्षु! बहुत उत्तम! तुम्हारा प्रश्न बहुत ही अच्छा एवं उत्साहसम्पन्न है। तुम्हारी प्रतिभा श्रेष्ठ है। तुम्हारी उत्कण्ठा कल्याणमय है। यही न तुम मुझसे पूछ रहे हो कि यह संसार किसके द्वारा चलाया जाता है, और यह किसके द्वारा बढ़ावा पाता है, किसके उत्पन्न होने पर उसके अधीन हो जाता है?" "हाँ, भन्ते!"

"चित्त के द्वारा वह चलाया जाता है, चित्त के द्वारा वह बढ़ावा पाता है, तथा चित्त के उत्पन्न होने पर यह उसके वश में हो जाता है।"

३. "बहुत, अच्छा, भन्ते" कहते हुए उस भिक्षु ने भगवान् के उत्तर का अभिनन्दन, अनुमोदन करते हुए, पुनः उनसे प्रश्न किया—"भन्ते! (आप अपने उपदेशों में) 'बहुश्रुत', 'धर्मधर' शब्दों का बहुत बार प्रयोग करते हैं। भन्ते! कैसे कोई 'बहुश्रुत' या 'धर्मधर' कहलाता है?"

"बहू खो, भिक्खु, मया धम्मा देसिता—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथा, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। चतुप्पदाय चे पि, भिक्खु, गाथाय अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो होति बहुस्सुतो धम्मरो ति अलं वचनाया'' ति।

[N.190] ५. "साधु, भन्ते'' ति खो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरि पञ्हं अपुच्छि—'''सुतवा निब्बेधिकपञ्ञो, सुतवा निब्बेधिकपञ्ञो' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, सुतवा निब्बेधिकपञ्ञो होती'' ति?

६. "साधु साधु, भिक्खु! भद्दको खो ते, भिक्खु उम्मग्गो, भद्दकं पटिभानं, कल्याणी परिपुच्छा। एवं हि त्वं, भिक्खु, पुच्छसि—'सुतवा निब्बेधिकपञ्ञो, सुतवा निब्बेधिकपञ्ञो ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, सुतवा निब्बेधिकपञ्ञो होती''' ति? "एवं, भन्ते''।

"इध, भिक्खु, भिक्खुनो 'इदं दुक्खं' ति सुतं होति, पञ्ञाय चस्स अत्थं अतिविज्झ पस्सति; 'अयं दुक्खसमुदयो' ति सुतं होति, पञ्ञाय चस्स अत्थं अतिविज्झ पस्सति; 'अयं दुक्खनिरोधो' ति सुतं होति, पञ्ञाय चस्स अत्थं अतिविज्झ पस्सति; 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति सुतं होति, पञ्ञाय चस्स अत्थं अतिविज्झ पस्सति। एवं खो, भिक्खु, सुतवा निब्बेधिकपञ्ञो होती'' ति।

७. "साधु, भन्ते'' ति खो सो भिक्खु भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा भगवन्तं उत्तरि पञ्हं अपुच्छि—'''पण्डितो महापञ्ञो, पण्डितो महापञ्ञो' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, पण्डितो महापञ्ञो होती'' ति?

---

४. "बहुत उत्तम भिक्षु! ...पूर्ववत्... यही न तुम पूछ रहे हो ...पूर्ववत्... 'धर्मधर' कहलाता है?''

"भिक्षु! मैंने बहुत से धर्मों का उपदेश किया है; जैसे—सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इत्युक्तक, जातक, अद्भुत धर्म, एवं वेदल्ल। इनमें से किसी एक की किसी गाथा के चार चरणों का अर्थ एवं धर्म जानकर धर्मानुसार उसका अनुगामी हो जाता है, उसको भी 'बहुश्रुत' एवं 'धर्मधर' कहा जा सकता है—इतना ही समझ लेना पर्याप्त है।

५. "बहुत अच्छा, भन्ते!'' कहते हुए... भिक्षु ने भगवान् से पुनः जिज्ञासा प्रकट की कि भन्ते! (आप अपने उपदेशों में) 'श्रुतवान्' एवं निर्वेधिकप्रज्ञ'—इन शब्दों का प्रायः प्रयोग करते रहते हैं, भन्ते! कैसे कोई 'श्रुतवान्' या 'निर्वेधिकप्रज्ञ' कहलाता है?''

६. "बहुत उत्तम, भिक्षु ...पूर्ववत्... 'निर्वेधिकप्रज्ञ' क्या कहलाता है?''

"हाँ, भन्ते!''

"यहाँ, भिक्षु! किसी भिक्षु ने 'यह दुःख है'—ऐसा सुना होता है, तब वह प्रज्ञा द्वारा इसका अर्थ जानकर उसको गहराई तक समझता है; 'यह दुःखसमुदय है'... 'यह दुःखनिरोध है'... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'... गहराई (अन्तस्थल) तक समझता है। इस प्रकार ऐसा भिक्षु 'श्रुतवान् निर्वेधिकप्रज्ञ' कहलाता है।''

८. "साधु साधु खो, भिक्खु! भद्दको खो ते, भिक्खु, उम्मग्गो, भद्दकं [R.179] पटिभानं, कल्याणी परिपुच्छा। एवं हि त्वं भिक्खु पुच्छसि—'पण्डितो महापञ्ञो, पण्डितो महापञ्ञो ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, पण्डितो महापञ्ञो होती''' ति?

"एवं, भन्ते"।

"इध, भिक्खु, पण्डितो महापञ्ञो नेवत्तब्याबाधाय चेतेति न परब्याबाधाय [B.499] चेतेति न उभयब्याबाधाय चेतेति अत्तहितपरहितउभयहितसब्बलोकहितमेव चिन्तयमानो चिन्तेति। एवं खो, भिक्खु, पण्डितो महापञ्ञो होती" ति॥ ●

७. वस्सकारसुत्तं : १. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने [N.191] कलन्दकनिवापे। अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवन्तं एतदवोच—

२. "जानेय्य नु खो, भो गोतम, असप्पुरिसो असप्पुरिसं—'असप्पुरिसो अयं भवं''' ति?

"अट्ठानं खो एतं, ब्राह्मण, अनवकासो यं असप्पुरिसो असप्पुरिसं जानेय्य—'असप्पुरिसो अयं भवं''' ति।

"जानेय्य पन, भो गोतम, असप्पुरिसो असप्पुरिसं—'सप्पुरिसो अयं भवं''' ति?

---

७. "अच्छा, भन्ते!" कहकर... पुनः जिज्ञासा की—"भन्ते! (आप अपने उपदेशों में) 'पण्डित, महाप्रज्ञ', 'पण्डित, महाप्रज्ञ' प्रायः कहते रहते हैं। यह 'पण्डित, महाप्रज्ञ' कैसे होता है?

८. बहुत उत्तम, भिक्षु! ...पूर्ववत्... महाप्रज्ञ कैसे होता है?" "हाँ, भन्ते!"

"यहाँ, भिक्षु! कोई पण्डित महाप्रज्ञ न अपनी हानि सोचता है, न दूसरे की हानि सोचता है, न स्व एवं पर—दोनों की ही हानि सोचता है; वह तो स्वहित, परहित, उभयहित तथा सर्वलोक का हितचिन्तन करता हुआ धर्मचिन्तन करता रहता है। इस तरह भिक्षु! यह 'पण्डित महाप्रज्ञ' कहलाता है॥" ●

७. वर्षकारसूत्र : : सत्पुरुष असत्पुरुष का ज्ञानभेद

१. एक समय भगवान् राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय मगध साम्राज्य का महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् के दर्शनहेतु आया। आकर भगवान् से कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए वर्षकार ब्राह्मण ने भगवान् से यह पूछा—

२. "भो गौतम! क्या कोई असत्पुरुष किसी अन्य असत्पुरुष को जान सकता है कि यह असत्पुरुष है?"

"ब्राह्मण! यह न सम्भव है, न उचित कि कोई असत्पुरुष दूसरे असत्पुरुष को जान सके कि यह 'असत्पुरुष' है।"

''एतं पि खो, ब्राह्मण, अट्ठानं अनवकासो यं असप्पुरिसो सप्पुरिसं जानेय्य—'सप्पुरिसो अयं भवं''' ति।

''जानेय्य नु खो, भो गोतम, सप्पुरिसो सप्पुरिसं—'सप्पुरिसो अयं भवं''' ति?

''ठानं खो एतं, ब्राह्मण, विज्जति यं सप्पुरिसो सप्पुरिसं जानेय्य—'सप्पुरिसो अयं भवं''' ति।

''जानेय्य पन, भो गोतम, सप्पुरिसो असप्पुरिसं—'असप्पुरिसो अयं भवं''' ति?

''एतं पि खो, ब्राह्मण, ठानं विज्जति यं सप्पुरिसो असप्पुरिसं जानेय्य—'असप्पुरिसो अयं भवं''' ति।

[B.180] ''अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! याव सुभासितं चिदं, भोता गोतमेन—'अट्ठानं खो एतं, ब्राह्मण, अनवकासो यं असप्पुरिसो असप्पुरिसं जानेय्य—असप्पुरिसो अयं भवं ति। एतं पि खो, ब्राह्मण, अट्ठानं अनवकासो यं असप्पुरिसो सप्पुरिसं जानेय्य—सप्पुरिसो अयं भवं ति। ठानं खो एतं, ब्राह्मण, विज्जति यं सप्पुरिसो सप्पुरिसं जानेय्य—सप्पुरिसो अयं भवं ति। एतं पि खो, ब्राह्मण, ठानं विज्जति यं सप्पुरिसो असप्पुरिसं जानेय्य—असप्पुरिसो अयं भवं' ति।

३. ''एकमिदं, भो गोतम, समयं तोदेय्यस्स ब्राह्मणस्स परिसति परूपारम्भं [N.192] वत्तेन्ति—'बालो अयं राजा एळेय्यो समणे रामपुत्ते अभिप्पसन्नो, समणे च पन

क्या, भो गौतम! कोई असत्पुरुष किसी सत्पुरुष के विषय में जान सकता है कि यह 'सत्पुरुष' है?''

''ब्राह्मण! यह भी अनुचित एवं असम्भव है कि कोई असत्पुरुष सत्पुरुष के विषय में जान सके कि यह 'सत्पुरुष' है।

''भो गौतम! क्या यह सम्भव है कि कोई सत्पुरुष किसी अन्य सत्पुरुष के विषय में जान सके कि यह 'सत्पुरुष' है?''

''हाँ, ब्राह्मण! यह सम्भव है कि कोई सत्पुरुष किसी अन्य सत्पुरुष के विषय में जान सके कि यह 'सत्पुरुष' है।''

''क्या, भो गौतम! यह भी सम्भव है कि कोई सत्पुरुष किसी अन्य असत्पुरुष के विषय में जान सके कि यह 'असत्पुरुष' है?''

''हाँ, ब्राह्मण! यह भी सम्भव है कि कोई सत्पुरुष किसी अन्य असत्पुरुष के विषय में जान सके कि यह 'असत्पुरुष' है।''

''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! आपने कितना अच्छा कहा—'ब्राह्मण! यह असम्भव है और अनुचित भी कि कोई असत्पुरुष किसी अन्य असत्पुरुष के विषय में जान सके कि यह 'सत्पुरुष' है।

३. ''एक समय, भो गौतम! तौदेय ब्राह्मण की सभा में एक दूसरे का इस प्रकार उपालम्भ (निन्दा) किया जा रहा था—'यह राजा ऐडेय मूर्ख (अज्ञ) है जो श्रमण रामपुत्र में इतनी श्रद्धा

रामपुत्ते एवरूपं परमनिपच्चकारं करोति, यदिदं अभिवादनं पच्चुट्ठानं [B.500] अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं' ति। इमे पि रञ्ञो एळेय्यस्स परिहारका बाला—यमको मोग्गल्लो उग्गो नाविन्दकी गन्धब्बो अग्गिवेस्सो, ये समणे रामपुत्ते अभिप्पसन्ना, समणे च पन रामपुत्ते एवरूपं परमनिपच्चकारं करोन्ति, यदिदं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं ति। त्यास्सुदं तोदेय्यो ब्राह्मणो इमिना नयेन नेति। तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो, पण्डितो राजा एळेय्यो करणीयाधिकरणीयेसु वचनीयाधिवचनीयेसु अलमत्थदसतरेहि अलमत्थदसतरो'' ति?

'एवं, भो, पण्डितो राजा एळेय्यो करणीयाधिकरणीयेसु वचनीयाधिवचनीयेसु अलमत्थदसतरेहि अलमत्थदसतरो ति। यस्मा च खो, भो, समणो रामपुत्तो रञ्ञा एळेय्येन पण्डितेन पण्डिततरो करणीयाधिकरणीयेसु वचनीयाधिवचनीयेसु अलमत्थदसतरेन अलमत्थदसतरो, तस्मा राजा एळेय्यो समणे रामपुत्ते अभिप्पसन्नो, समणे च पन रामपुत्ते एवरूपं परमनिपच्चकारं करोति, यदिदं अभिवादनं पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं'।

'तं किं मञ्ञन्ति, भोन्तो, पण्डिता रञ्ञो एळेय्यस्स परिहारका—यमको [R.181] मोग्गल्लो उग्गो नाविन्दकी गन्धब्बो अग्गिवेस्सो, करणीयाधिकरणीयेसु वचनीयाधिवचनीयेसु अलमत्थदसतरेहि अलमत्थदसतरा' ति?

'एवं, भो, पण्डितो रञ्ञो एळेय्यस्स परिहारका—यमको मोग्गल्लो उग्गो नाविन्दकी गन्धब्बो अग्गिवेस्सो, करणीयाधिकरणीयेसु वचनीयाधिवचनीयेसु अलमत्थदसतरेहि अलमत्थदसतरा ति। यस्मा च खो, भो, समणो रामपुत्तो रञ्ञो एळेय्यस्स परिहारकेहि पण्डितेहि पण्डिततरो करणीयाधिकरणीयेसु वचनीयाधिवचनीयेसु अलमत्थदसतरेहि अलमत्थदसतरो, तस्मा रञ्ञो एळेय्यस्स परिहारका समणे रामपुत्ते

रखता है। तथा श्रमण रामपुत्र के आने पर उसके सम्मुख झुकता है, अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोड़ना तथा मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता है। ये राजा ऐडेय के दरबारी पण्डित भी मूर्ख ही हैं; जैसे—यमक, मौद्गल्य, उग्र, नाविन्दकी, गन्धर्व, अग्निवेश; ये सब भी श्रमण रामपुत्र में श्रद्धा रखते हैं; तथा उसके आने पर अभिवादन... मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं। यह तौदेय ब्राह्मण भी इनका नेता है'।

'अवश्य! यह राजा ऐडेय पण्डित है और दैनिक कर्तव्य एवं न्यायसम्बद्ध प्रसङ्गों में अन्य विद्वानों से अधिक अर्थदर्शी (ज्ञाता) है। और, क्योंकि श्रमण रामपुत्र राजा ऐडेय की अपेक्षा भी अधिक पण्डित है और दैनिक एवं न्यायसम्बद्ध प्रसङ्गों में भी अन्य विद्वानों की अपेक्षा अधिक अर्थदर्शी (पण्डित) है, अत: राजा ऐडेय भी श्रमण रामपुत्र में श्रद्धालु है ...पूर्ववत्... मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता है।'

'तो आप लोग (इस विषय में) क्या मानते हैं—क्या राजा ऐडेय के वे दरबारी पण्डित भी विद्वान् हैं; जैसे—यमक, मौद्गल्य, उग्र, नाविन्दकी, गन्धर्व एवं अग्निवेश? क्या वे भी दैनिक क्रियाकलाप एवं न्यायसम्बद्ध प्रसङ्गों में अन्य विद्वानों की अपेक्षा अधिक अर्थदर्शी (ज्ञाता) है?'

अभिप्पसन्नो; समणे च पन रामपुत्ते एवरूपं परमनिपच्चकारं करोन्ति, यदिदं अभिवादनं [N.193] पच्चुट्ठानं अञ्जलिकम्मं सामीचिकम्मं' ति।

४. ''अच्छरियं, भो गोतम, अब्भुतं, भो गोतम! याव सुभासितं चिदं भोता गोतमेन—'अट्ठानं खो एतं, ब्राह्मण, अनवकासो यं असप्पुरिसो असप्पुरिसं जानेय्य—[B.501] असप्पुरिसो अयं भवं ति। एतं पि खो, ब्राह्मण, ठानं विज्जति यं सप्पुरिसो असप्पुरिसं जानेय्य—...पे०...। असप्पुरिसो अयं भवं' ति। हन्द च दानि मयं, भो गोतम, गच्छाम। बहुकिच्चा मयं बहुकरणीया'' ति।

''यस्सदानि त्वं, ब्राह्मण, कालं मञ्ञसी'' ति।

५. अथ खो वस्सकारो ब्राह्मणो मगधमहामत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामी ति॥ ●

८. उपकसुत्तं : १. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो उपको मणिडकापुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उपको मण्डिकापुत्तो भगवन्तं एतदवोच—

२. ''अहं हि, भन्ते, एवंवादी एवंदिट्ठि—'यो कोचि परूपारम्भं वत्तेति, परूपारम्भं वत्तेन्तो सब्बो सो उपपादेति। अनुपपादेन्तो गारय्हो होति उपवज्जो''' ति।

''परूपारम्भं चे, उपक, वत्तेति परूपारम्भ वत्तेन्तो न उपपादेति अनुपपादेन्तो गारय्हो

'हाँ, जी! वे सब भी ...पूर्ववत्... अन्य विद्वानों की अपेक्षा अधिक अर्थदर्शी हैं। और क्योंकि श्रमण रामपुत्र इन दरबारी पण्डितों की अपेक्षा... अधिक विद्वान् है अत: राजा के वे दरबारी पण्डित भी उस श्रमण रामपुत्र में श्रद्धा रखते हैं तथा उसके आने पर अभिवादन... आदि मैत्रीपूर्ण व्यवहार करते हैं।'

४. ''आश्चर्य है, भो गौतम! अद्भुत है, भो गौतम! आप गौतम ने बहुत अच्छा कहा—'यह अनुचित है और असम्भव भी है कि कोई असत्पुरुष दूसरे असत्पुरुष को जान ले कि यह असत्पुरुष है... पूर्ववत्... हाँ, यह उचित भी है और सम्भव भी है कि कोई सत्पुरुष किसी असत्पुरुष को जान ले कि यह असत्पुरुष है।' भो गौतम! अब हम पुन: लौटना चाहेंगे; क्योंकि हमारे पीछे बहुत से (पारिवारिक एवं राजकीय) कर्तव्य लगे हुए हैं।''

''ब्राह्मण! जैसा तुम समयानुसार उचित समझो (वैसा करो'')॥ ●

८. उपकसूत्र : : परनिन्दा के चार भेद

१. एक समय भगवान् राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर साधनाहेतु विराजमान थे। तब उपक मण्डिकापुत्र भगवान् के पास आया। आकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस उपक मण्डिकापुत्र ने भगवान् से यह कहा—

२. ''मैं, भन्ते! ऐसा मानता हूँ, मेरा ऐसा विचार है—'जो कोई दूसरे की निन्दा आरम्भ करता है, वह उसका सर्वांशत: उपपादन नहीं कर पाता, अत: वह स्वयं निन्दनीय बन जाता है तथा अपमानित होता है'।''

होति उपवज्जो। त्वं खो, उपक, परूपारम्भं वत्तेसि, परूपारम्भं वत्तेन्तो न [R.182] उपपादेसि अनुपपादेन्तो गारय्हो होति उपवज्जो'' ति।

''सेय्यथापि, भन्ते, उम्मुज्जमानकंयेव महता पासेन बन्धेय्य; एवमेव खो [N.194] अहं, भन्ते, उम्मुज्जमानकोयेव भगवता महता वादपासेन बद्धो'' ति।

३. ''इदं अकुसलं ति खो, उपक, मया पञ्ञत्तं। तत्थ अपरिमाणा पदा अपरिमाणा ब्यञ्जना तथागतस्स धम्मदेसना—इति पिदं अकुसलं ति। तं खो पनिदं अकुसलं पहातब्बं ति खो, उपक, मया पञ्ञत्तं। तत्थ अपरिमाणा पदा अपरिमाणा ब्यञ्जना अपरिमाणा तथागतस्स धम्मदेसना—इति पिदं अकुसलं पहातब्बं ति।

४. ''इदं कुसलं ति खो, उपक, मया पञ्ञत्तं, तत्थ अपरिमाणा पदा [B.502] अपरिमाणा ब्यञ्जना अपरिमाणा तथागतस्स धम्मदेसना—इति पिदं कुसलं ति। तं खो पनिदं कुसलं भावेतब्बं ति खो, उपक, मया पञ्ञत्तं। तत्थ अपरिमाणा पदा अपरिमाणा ब्यञ्जना अपरिमाणा तथागतस्स धम्मदेसना—इति पिदं कुसलं भावेतब्बं'' ति।

५. अथ खो उपको मण्डिकापुत्तो भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा अनुमोदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा यावतको अहोसि भगवता सद्धिं कथासल्लापो तं सब्बं रञ्ञो मागधस्स अजातसत्तुस्स आरोचेसि।

''उपक! यदि तुम्हारा यह मानना है कि दूसरे की निन्दा करने वाला उसका सर्वांशत: उपपादन नहीं कर पाता, अत: वह स्वयं निन्दनीय तथा अपमान योग्य बन जाता है; तो, उपक! तुम भी किसी की निन्दा आरम्भ कर रहे हो, और उसका सर्वांशत: उपपादन नहीं कर पा रहे हो, अत: तुम भी निन्दा एवं अपमान के पात्र हो।''

''भन्ते! जैसे कोई जल से निकलना चाहनेवाला किसी बड़े जाल में फँस जाय, आपने मेरी वैसी ही दशा बना दी!''

३. ''यह अकुशल है''—उपक! ऐसा मैंने उपदेश किया है। उस उपदेश में अनेक पद आये हैं, अनेक व्यञ्जन आये हैं, और तथागत की अपरिमित धर्मदेशना आयी है। फिर, उपक! 'यह अकुशल छोड़ देना चाहिये'—यह भी मैंने उपदेश किया है। वहाँ भी अपरिमित पद, अपरिमित व्यञ्जन और अपरिमित तथागत की धर्मदेशना आयी है।

४. ''इसी प्रकार, उपक! 'यह कुशल है'—मैंने इसकी भी देशना की है। इस देशना में अनेक पद, अनेक व्यञ्जन और तथागत की अपरिमित धर्मदेशना हुई हैं। फिर, उपक! 'इस कुशल की भावना करनी चाहिये'—यह भी मैंने उपदेश किया है। इसमें अपरिमित पद, अपरिमित व्यञ्जन एवं तथागत की अपरिमित देशना आयी है।''

५. तब उपक मण्डिकापुत्र भगवान् के भाषण का अभिनन्दन एवं अनुमोदन कर आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र के पास गया तथा भगवान् के साथ हुआ अपना समग्र संवाद राजा को सुनाया।

६. एवं वते राजा मागधो अजातसत्तु वेदेहिपुत्तो कुपितो अनत्तमनो उपकं मण्डिकापुत्तं एतदवोच—"याव धंसी वतायं लोणकारदारको याव मुखरो याव पगब्बो यत्र हि नाम तं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं आसादेतब्बं मञ्ञिस्सति; अपेहि त्वं, उपक, विनस्स, मा तं अद्दसं" ति॥ ●

९. सच्छिकरणीयसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, सच्छिकरणीया धम्मा। कतमे [R.183] चत्तारो? अत्थि, भिक्खवे, धम्मा कायेन सच्छिकरणीया; अत्थि, भिक्खवे, धम्मा सतिया सच्छिकरणीया; अत्थि, भिक्खवे, चक्खुना सच्छिकरणीया; अत्थि भिक्खवे, धम्मा पञ्ञाय सच्छिकरणीया। कतमे च, भिक्खवे, धम्मा कायेन सच्छिकरणीया? अट्ठ [N.195] विमोक्खा, भिक्खवे, कायेन सच्छिकरणीया।"

२. "कतमे च, भिक्खवे, धम्मा सतिया सच्छिकरणीया? पुब्बनिवासो, भिक्खवे, सतिया सच्छिकरणीयो।

३. "कतमे च, भिक्खवे, धम्मा चक्खुना सच्छिकरणीया? सत्तानं चुतूपपातो, भिक्खवे, चक्खुना सच्छिकरणीयो।

४. "कतमे च, भिक्खवे, धम्मा पञ्ञाय सच्छिकरणीया? आसवानं खयो, भिक्खवे, पञ्ञाय सच्छिकरणीयो। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो सच्छिकरणीया धम्मा" ति॥

---

६. संवाद सुनकर मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र कुपित होकर उससे यों बोले—"अरे लोणकार ग्राम के बालक! तूँ इतना धृष्ट (ढीठ) एवं मुँहफट हो गया और तूँने यह दु:साहस कर लिया कि अब तूँ भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध से वाद करने लगा। निकल जा मेरे यहाँ से! फिर कभी मैं यहाँ तुझे न देखूँ॥" ●

९. साक्षात्करणीयसूत्र : : चार साक्षात्करणीय धर्म

१. "भिक्षुओ! ये चार साक्षात्करणीय धर्म हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! यहाँ कुछ धर्म **काया से** साक्षात्करणीय होते हैं; (२) कुछ धर्म **स्मृति से** साक्षात्करणीय होते हैं; (३) कुछ धर्म **चक्षु से** साक्षात्करणीय होते हैं; (४) और कुछ धर्म **प्रज्ञा से** साक्षात्करणीय होते हैं।

(१) "इनमें, भिक्षुओ! काया से साक्षात्करणीय धर्म कौन से हैं? भिक्षुओ! आठ विमोक्ष[१] धर्म काया से साक्षात्करणीय हैं।

२. "भिक्षुओ! स्मृति से साक्षात्करणीय धर्म कौन से हैं? भिक्षुओ! पूर्वजन्म स्मृति से साक्षात्करणीय हैं।

३. "भिक्षुओ! चक्षु से साक्षात्करणीय धर्म कौन से हैं? प्राणियों का जन्म एवं मरण चक्षु से ही साक्षात्करणीय हैं।

४. "भिक्षुओ! प्रज्ञा से साक्षात्करणीय धर्म कौन से हैं? आश्रवों का क्षय, भिक्षुओ! प्रज्ञा से साक्षात्करणीय धर्म है।

---

१. आठ विमोक्ष के लिये द्रष्टव्य—**दीघनिकायपालि** का सङ्गीतिसूत्र, पृ० ८०९ (बौ० भा० सं०)।—सं०

१०. उपोसथसुत्तं : १. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति पुब्बारामे मिगारमातुपासादे। तेन खो पन समयेन भगवा तदहुपोसथे भिक्खुसङ्घपरिवुतो [B.503] निसिन्नो होति। अथ खो भगवा तुण्हीभूतं तुण्हीभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खू आमन्तेसि—

२. ''अपलापायं, भिक्खवे, परिसा निप्पलापायं, भिक्खवे, परिसा सुद्धा सारे पतिट्ठिता। तथारूपो अयं, भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो, तथारूपायं, भिक्खवे, परिसा। यथारूपा परिसा दुल्लभा दस्सनाय पि लोकस्मिं तथारूपो अयं, भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो, तथारूपायं, भिक्खवे, परिसा। यथारूपा परिसा आहुनेय्या पाहुनेय्या दक्खिणेय्या अञ्जलिकरणीया अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स, तथारूपो अयं, भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो, तथारूपायं, भिक्खवे, परिसा। यथारूपाय परिसाय अप्पं दिन्नं बहु होति बहु दिन्नं बहुतरं, तथारूपो अयं, भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो, तथारूपायं, भिक्खवे, परिसा। यथारूपं अलं योजनगणनानि पि दस्सनाय गन्तुं अपि पुटोसेनापि, तथारूपो अयं भिक्खवे, भिक्खुसङ्घो, तथारूपायं, भिक्खवे, परिसा।

३. ''सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे देवप्पत्ता विहरन्ति; सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं भिक्खुसङ्घे ब्रह्मप्पत्ता विहरन्ति; सन्ति भिक्खवे, भिक्खू [R.184] इमस्मिं भिक्खू सङ्घे आनेञ्जप्पत्ता विहरन्ति सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू इमस्मिं [N.196] भिक्खुसङ्घे अरियप्पत्ता विहरन्ति।

४. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु देवप्पत्तो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव

''भिक्षुओ! इस प्रकार ये चार धर्म साक्षात्करणीय हैं॥'' ●

१०. उपोसथसूत्र : : चार 'प्राप्तों' की साधना

१. एक समय भगवान् श्रावस्ती स्थित पूर्वाराम के मृगारमातृप्रासाद में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय उपोसथ के दिन भगवान् भिक्षुसङ्घ से घिरे हुए बैठे थे। तब भगवान् ने मौनावलम्बन कर बैठे भिक्षुसङ्घ को देखकर भिक्षुओं से यों कहा—

२. ''भिक्षुओ! जैसे एक सभ्य परिषद् व्यर्थ की सांसारिक कथाओं को छोडकर गम्भीर मौनभाव ग्रहण कर बैठी हुई अच्छी लगती है, वैसा ही यह भिक्षुसङ्घ दिखायी दे रहा है। भिक्षुओ! जैसे ब्रह्मपरिषद् का दिखायी देना दुर्लभ है वैसे ही ऐसा भिक्षुसङ्घ भी दुर्लभ है। उस दुर्लभ परिषद् के समान लोक में ऐसे सङ्घ के दर्शन भी दुर्लभ ही हैं। जैसी परिषद् गृहस्थों में घरों को ससम्मान बुलाये जाने योग्य होती है... लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि होती है, वैसा ही यह भिक्षुसङ्घ भी है। जिस परिषद् के लिये अल्पमात्र दान भी अतिशय लाभकारी होता है, वैसा ही इस भिक्षुसङ्घ के लिये भी समझना चाहिये। जैसी परिषद् के पुण्यदर्शन हेतु श्रद्धालु जन थोड़ा सा पाथेय (मार्ग का भोजन) लेकर सैकड़ों योजन दूर से चल देते हैं वैसा ही इस भिक्षुसङ्घ को भी समझना चाहिये। सर्वथा वैसी परिषद् के समान ही इस सङ्घ को समझो।

३. ''भिक्षुओ! इस सङ्घ में (१) कुछ साधक भिक्षु देवत्व (के गुणों) को प्राप्त कर साधना कर रहे हैं। (२) कुछ ब्रह्मत्व (के गुणों) को प्राप्त कर साधना कर रहे हैं। (३) कुछ भिक्षु

कामेहि ...पे०... पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति; वितक्कविचारानं वूपसमा ...पे०... दुतियं झानं ... ततियं झानं ... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु **देवप्पत्तो** होति।

५. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु ब्रह्मपत्तो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु मेत्ता-सहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं। इति [B.504] उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। करुणा ... मुदिता ... उपेक्खासहतेन चतेसा एकं दिसं परित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं। इति उद्धमधो तिरियं सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्याबज्झेन फरित्वा विहरति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु **ब्रह्मप्पत्तो** होति।

६. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु आनेञ्जप्पत्तो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सब्बसो रूपसञ्ञानं समतिक्कमा पटिघसञ्ञानं अत्थङ्गमा नानत्तसञ्ञानं अमनसिकारा 'अनन्तो आकासो' ति आकासानञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सब्बसो आकासानञ्चा-यतनं समतिक्कम्म 'अनन्तं विञ्ञाणं' ति विञ्ञाणञ्चायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सब्बसो विञ्ञाणञ्चायतनं समतिक्कम्म 'नत्थि किञ्ची' ति आकिञ्चञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। सब्बसो आकिञ्चञ्ञायतनं समतिक्कम्म नेवसञ्ञानासञ्ञायतनं उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु **आनेञ्जप्पत्तो** होति।

७. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु अरियप्पत्तो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु 'इदं

आनिञ्ज्य (मन:स्थिरता) प्राप्त कर साधना कर रहे हैं। (४) और कुछ भिक्षु आर्यत्व (श्रेष्ठता) प्राप्त कर साधना कर रहे हैं।

४. ''भिक्षुओ! **देवत्वप्राप्त** साधक कौन होता है? जो भिक्षु कामभोगों का त्याग कर ...पूर्ववत्... प्रथम ध्यान द्वितीय ध्यान... तृतीय ध्यान... चतुर्थ ध्यान... प्राप्त कर साधना करता है वह, भिक्षुओ! भिक्षु 'देवप्राप्त' साधक कहलाता है। (१)

५. कैसे, भिक्षुओ! कोई **ब्रह्मत्वप्राप्त** होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई मैत्रीसहगत चित्त से... साधना करता है। करुणासहगत चित्त से... मुदितासहगत चित्त से... उपेक्षासहगत चित्त से एक दिशा को ...पूर्ववत्... साधना करता है। ऐसा भिक्षु, भिक्षुओ! 'ब्रह्मत्वप्राप्त' साधक कहलाता है। (२)

६. कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **आनिञ्ज्यप्राप्त** साधक होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु रूपसंज्ञाओं का अतिक्रमण कर, प्रतिघसंज्ञाओं के नष्ट हो जाने से, नानात्वसंज्ञाओं को मन में न करने से 'अनन्त आकाश है' ...पूर्ववत्... 'अनन्त विज्ञान है'... 'कुछ भी नहीं है'... नैवसंज्ञानासंज्ञायतन को प्राप्त कर साधना करता है। ऐसा भिक्षु 'आनिञ्ज्यप्राप्त' साधक कहलाता है। (३)

७. ''कैसे भिक्षुओ! कोई साधक **आर्यप्राप्त** कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'यह

दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु **अरियप्पत्तो** होती'' ति॥ ●

ब्राह्मणवग्गो एकूनवीसतिमो॥

तस्सुद्दानं

योधा पाटिभोगसुतं, अभयं समणसच्चेन पञ्चमं। [N.197,R.185]
उम्मग्गवस्सकारो, उपको सच्छिकिरिया च उपोसथो ति॥ ●

२०. महावग्गो

१. सोतानुगतसुत्तं : १. ''सोतानुगतानं भिक्खवे, धम्मानं, वचसा परिचितानं, मनसानुपेक्खितानं, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धानं चत्तारो आनिसंसा पाटिकङ्खा। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। तस्स ते धम्मा सोतानुगता होन्ति, वचसा परिचिता, [B.505] मनसानुपेक्खिता, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। सो मुट्ठस्सति कालं कुरुमानो अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। तस्स तत्थ सुखिनो धम्मपदा प्लवन्ति। दन्धो, भिक्खवे,, सतुप्पादो; अथ सो सत्तो खिप्पंयेव विसेसगामी होति। सोतानुगतानं, भिक्खवे, धम्मानं, वचसा परिचितानं, मनसानेक्खितानं, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धानं अयं पठमो आनिसंसो पाटिकङ्खो।

दुःख है'... पूर्ववत्... 'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है'—इसको यथार्थतः जानकर साधना करता है। ऐसा साधक 'आर्यप्राप्त' कहलाता है।'' (४) **ब्राह्मणवर्ग एकोनविंश सम्पन्न॥** ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. योधाजीवसूत्र, २. प्रतिभोगसूत्र, ३. श्रुतसूत्र, ४. अभयसूत्र, ५. श्रमणसत्यसूत्र, ६. उन्मार्गसूत्र, ७. वर्षकारसूत्र, ८. उपकसूत्र, ९. साक्षात्करणीयसूत्र, एवं १०. उपोसथसूत्र॥ ●

२०. महावर्ग

१. स्त्रोतोनुगतसूत्र : : चार आनृशंस्य

१. ''भिक्षुओ! स्त्रोतों के अनुकूल, वाणी से परिचित, मन से अनुपेक्षित और दृष्टि (धारणा) से सुप्रतिविद्ध धर्मों से चार आनृशंस्य (=माहात्म्य) की आशा करनी चाहिये। कौन से चार?

''कोई भिक्षु धर्म का अभ्यास करता है; जैसे—सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इत्युक्तक, जातक, अद्भुतधर्म एवं वेदल्ल। उस भिक्षु के ये धर्म स्त्रोतोनुकूल...पूर्ववत्... सुप्रतिविद्ध होते हैं। वह अधर्मों के विषय में लुप्तस्मृति होकर मरणानन्तर किसी देवनिकाय में उत्पन्न होता है। वहाँ, उसके सुखमय जीवन बिताने के कारण, वे धर्म उसको पुनः स्मरण हो जाते हैं। भिक्षुओ! यद्यपि उसका यह स्मृत्युत्पाद विलम्ब से होता है तो भी वह सत्त्व विशेषगामी होता है।

''भिक्षुओ! ऐसे स्त्रोतोनुगत... धर्मों का यह **प्रथम आनृशंस्य** है। (१)

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं... अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। तस्स ते धम्मा सोतानुगता होन्ति, वचसा परिचिता, मनसानुपेक्खिता, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। सो मुट्ठस्सति कालं कुरुमानो अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। तत्थ न हेव खो सुखिनो धम्मपदा प्लवन्ति; अपि च खो भिक्खु इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो देवपरिसायं धम्मं देसेति। तस्स एवं होति—'अयं वा सो धम्मविनयो,यत्थाहं पुब्बे ब्रह्मचरियं अतरिं ' ति। दन्धो, भिक्खवे, सतुप्पादो; अथ सो सत्तो खिप्पमेव विसेसगामी होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो कुसलो भेरिसद्दस्स। सो अद्धानमग्गप्पटिन्नो भेरिसद्दं सुणेय्य। तस्स न हेव खो अस्स कङ्खा वा विमति वा—'भेरिसद्दो नु खो, न नु खो भेरिसद्दो ति! अथ खो भेरिसद्दो त्वेव निट्ठं गच्छेय्य। एवमेव खो, [N.198,R.186] भिक्खवे, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। तस्स ते धम्मा सोतानुगता होन्ति, वचसा परिचिता, मनसानुपक्खिता, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। सो मुट्ठस्सति कालं कुरुमानो अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। तस्स तत्थ न हेव खो सुखिनो धम्मपदा प्लवन्ति; अपि च खो भिक्खु इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो देवपरिसायं धम्मं देसेति। तस्स एवं होति—'अयं वा सो धम्मविनयो, यत्थाहं पुब्बे ब्रह्मचरियं अचरि' ति। दन्धो, भिक्खवे, सतुप्पादो; अथ सो [B.506] सत्तो खिप्पंयेव विसेसगामी होति। सोतानुगतानं, भिक्खवे, धम्मानं, वचसा परिचितानं, मनसानुपेक्खितानं, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धानं अयं दुतियो आनिसंसो पाटिकङ्खो।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं,

---

२. फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु धर्म का अध्ययन करता है ...पूर्ववत्... किसी देवनिकाय में उत्पन्न होता है। वहाँ उसको वे धर्म सुखपूर्वक पुनः स्मृत ही नहीं होते, अपितु वह भिक्षु ऋद्धिमान् तथा स्वचित्त को निगृहीत कर उस देवपरिषद् में उस धर्म का प्रवचन भी करने लगता है। उस समय उसको यह स्मरण होता है—'अरे! यह तो वही धर्मविनय है, जिसकी मैंने साधना की थी।' भिक्षुओ! यह स्मृत्युत्पाद विलम्बित है, फिर भी वह सत्त्व शीघ्र ही विशेषगामी हो जाता है। भिक्षुओ! जैसे कोई पुरुष ढोल (भेरी) का शब्द जानने समझने में कुशल हो। वह मार्ग में चलता हुआ कहीं ढोल का शब्द सुने। सुनकर उसे शङ्का या सन्देह नहीं होता कि यह ढोल का शब्द नहीं है। इसी तरह, भिक्षुओ! जो भिक्षु सुत्त आदि धर्म का अध्ययन करता है उसके वे धर्म स्रोतोनुगत रहते हैं...। वह भले ही लुप्तस्मृति होकर मरणानन्तर देवनिकाय में उत्पन्न हो, परन्तु वहाँ उसे वे धर्मपद पुनः स्मरण ही नहीं हो जाते, अपितु यह ऋद्धिमान् रूप से उनका प्रवचन भी करने लगता है। तब उसको यह ध्यान आता है—'अरे! यह तो वही धर्म है, जिसकी मैंने कभी साधना की थी'। भिक्षुओ! यद्यपि प्राणी का यह स्मृत्युपाद विलम्ब से हुआ, परन्तु वह इसके प्रभाव से शीघ्र ही विशेषगामी हो जाता है।

''भिक्षुओ! ऐसे स्रोतोनुगत... धर्मों का यह **द्वितीय आनृशंस्य** है। (२)

गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। तस्स ते धम्मा सोतानुगता होन्ति, वचसा परिचिता, मनसानुपेक्खिता, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। सो मुट्ठस्सति कालं कुरुमानो अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। तस्स तत्थ न हेव खो सुखिनो धम्मपदा प्लवन्ति, न पि भिक्खु इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो देवपरिसायं धम्मं देसेति; अपि च खो देवपुत्तो धम्मं देसेति। तस्स एवं होति—'अयं वा सो धम्मविनयो, यत्थाहं पुब्बे ब्रह्मचरियं अचरिं' ति। दन्धो, भिक्खवे, सतुप्पादो; अथ सो सत्तो खिप्पंयेव विसेसगामी होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो कुसलो सङ्खसद्दस्स। सो अद्धानमग्गप्पटिपन्नो सङ्खसद्दं सुणेय्य। तस्स न हेव खो अस्स कङ्खा वा विमति वा—'सङ्खसद्दो नु खो, न नु खो सङ्खसद्दो' ति! अथ खो सङ्खसद्दो त्वेव निट्ठं गच्छेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। तस्स ते धम्मा सोतानुगता होन्ति, वचसा परिचिता, मनसानुपेक्खिता, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। सो मुट्ठस्सति कालं कुरुमानो अञ्ञतरं देवनिकायं उपज्जति। तस्स तत्थ न हेव खो सुखिनो धम्मपदा प्लवन्ति, न पि भिक्खु इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो देवपरिसायं धम्मं देसेति; अपि च खो देवपुत्तो देवपरिसायं धम्मं देसेति। तस्स एवं होति—'अयं वा सो धम्मविनयो, यत्थाहं पुब्बे ब्रह्मचरियं अचरिं' ति। दन्धो, भिक्खवे, सतुप्पादो; अथ सो सत्तो खिप्पंयेव विसेसगामी होति। सोतानुगतानं, भिक्खवे, धम्मानं, वचसा परिचितानं, मनसानुपेक्खितानं, [N.199] दिट्ठिया सुप्पटिविद्धानं अयं ततियो आनिसंसो पाटिङ्खो।

४. ''पुन च परं, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। तस्स ते धम्मा सोतानुगता होन्ति, वचसा परिचिता, मनसानुपेक्खिता, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। सो मुट्ठस्सति कालं कुरुमानो अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। तस्स तत्थ न हेव खो सुखिनो धम्मपदा प्लवन्ति, न पि भिक्खुं इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो देवपरिसायं धम्मं देसिति, न पि देवपुत्तो देवपरिसायं धम्मं देसेति; अपि च खो ओपपातिको ओपपातिकं सारेति—'सरसि त्वं, मारिस, सरसि त्वं, [B.507]

---

३. ''फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु धर्म का अध्ययन करता है...पूर्ववत्... देवनिकाय में प्रवचन ही नहीं करता, अपितु वह देवपुत्र के रूप में देवपरिषद् में धर्मप्रवचन करता है। उसको यह ध्यान आता है... पूर्ववत्...। ...शङ्ख की ध्वनि... शीघ्र ही विशेषगामी हो जाता है।

''भिक्षुओ! ऐसे स्रोतोनुगत... धर्मों का यह **तृतीय आनृशंस्य** है। (३)

४. फिर, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सूत्र गेय आदि धर्मों का अध्ययन करता है। उसके वे धर्म स्रोतोऽनुगत हो जाते हैं...। वह लुप्तस्मृति होकर मरणानन्तर किसी देवनिकाय में उत्पन्न होता है। वहाँ उसको वे पूर्वाभ्यस्त धर्मपद पुनःस्मरण ही नहीं हो जाते, वह ऋद्धिमान् होकर या देवपुत्र होकर देवसभा में उनका प्रवचन ही नहीं करता; अपितु वहाँ एक देवपुत्र दूसरे देवपुत्र को स्मरण भी कराता है—'मार्ष! तुम्हें स्मरण है, जब हम इन धर्मप्रवचनों की साधना किया करते थे।' दूसरा

यत्थ मारिस, मयं पुब्बे ब्रह्मचरियं अचरिम्हा' ति। सो एवमाह—'सरामि, मारिस, सरामि, मारिसा' ति। दन्धो, भिक्खवे, सतुप्पादो; अथ सो सत्तो खिप्पंयेव विसेसगामी होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, द्वे सहायका सहपंसुकीळिका। ते कदाचि करहचि अञ्ञमञ्ञं समागच्छेय्युं। अञ्ञो पन सहायको सहायकं एवं वदेयय्य—'इदं पि, सरसि, इदं पि, सम्म, सरसी' ति। सो एवं वदेय्य—'सरामि, सम्म, सरामि, सम्मा' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, [R.187] भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। तस्स ते धम्मा सोतानुगता होन्ति, वचसा परिचिता, मनसानुपेक्खिता, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। सो मुट्ठस्सति कालं कुरुमानो अञ्ञतरं देवनिकायं उपपज्जति। तस्स तत्थ न हेव खो सुखिनो धम्मपदा प्लवन्ति, न पि भिक्खु इद्धिमा चेतोवसिप्पत्तो देवपरिसायं धम्मं देसेति, न पि देवपुत्तो देवपरिसायं धम्मं देसेति; अपि च खो ओपपातिकं सारेति—'सरसि त्वं, मारिस, सरसि त्वं, मारिस, यत्थ मयं पुब्बे ब्रह्मचरियं अचरिम्हा' ति। सो एवमाह—'सरामि, मारिस, सरामि, मारिसा' ति। दन्धो, भिक्खवे, सतुप्पादो; अथ खो सो सत्तो खिप्पंयेव विसेसगामी होति। सोतानुगतानं, भिक्खवे, धम्मानं, वचसा परिचितानं, मनसानुपेक्खितानं, दिट्ठिया सुप्पटिविद्धानं अयं चतुत्थो आनिसंसो [N.200] पाटिकङ्खो।

''सोतानुगतानं, भिक्खवे, धम्मानं, वचसा परिचितानं, मनसानुपेक्खितानं दिट्ठिया सुप्पटिविद्धानं इमे चत्तारो आनिसंसा पाटिकङ्खा'' ति॥ ●

२. ठानसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, ठानानि चतूहि ठानेहि वेदितब्बानि। कतमानि चत्तारि? संवासेन, भिक्खवे, सीलं वेदितब्बं, तं च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं;

देवपुत्र कहता है—'हाँ, मार्ष! स्मरण है।' भिक्षुओ! यद्यपि यह धर्मस्मरण भी विलम्ब से हुआ, तो भी इसके प्रभाव से वह शीघ्र ही विशेषगामी हो जायगा। जैसे भिक्षुओ! कोई बचपन के दो साथी हों, गाँव की मिट्टी में एक साथ खेले हुए। वे कभी जीवन में आगे चलकर मिलें। तब उनमें से एक दूसरे को स्मरण दिलावे—'क्या तुम्हें बचपन की वह बात स्मरण है जब हम ऐसा करते थे?' वह कहे—'हाँ! स्मरण है।' इसी तरह का, भिक्षुओ! यह इन दोनों देवपुत्रों का स्मरण दिलाना है। उनमें एक यों कहे—'मार्ष! तुमको स्मरण है, इन धर्मपदों की हम पहले साधना कर चुके हैं?' दूसरा कहे—'हाँ, स्मरण है।' भिक्षुओ! यद्यपि यह स्मरण भी विलम्ब से हुआ, तो भी वह सत्त्व इस स्मरण के प्रभाव से शीघ्र ही विशेषगामी हो जाता है। भिक्षुओ! इन स्रोतोनुगत धर्मों का... यह **चतुर्थ आनृशंस्य** अपेक्षित है।

''भिक्षुओ! स्रोतों के अनुकूल, वाणी से परिचित, मन से अनुपेक्षित और दृष्टि (धारणा) से सुप्रतिविद्ध धर्मों से इन (उक्त) चार धर्मों की आशा करनी चाहिये॥'' ●

२. स्थानसूत्र : : चार विधियों से चार बातों का ज्ञान

१. भिक्षुओ! इन चार प्रकारों से चार स्थानों का ज्ञान करना चाहिये। कौन चार? (१) **साथ रहने से** (संवास) किसी के आचरण (शील) का ज्ञान होता है। उसमें समय लगता है, इतना शीघ्र

मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। संवोहारेन, भिक्खवे, सोचेय्यं वेदितब्बं, तं च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। आपदासु, भिक्खवे, थामो वेदितब्बो, सो च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; [B.508] मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेन। साकच्छाय, भिक्खवे, पञ्ञा वेदितब्बा, सा च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना ति।

२. ''संवासेन भिक्खवे, सीलं वेदितब्बं, ते च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना' ति, इति खो पनेतं वुत्तं। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलेन सद्धिं संवसमानो एवं जानाति—'दीघरत्तं खो अयमायस्मा खण्डकारी छिद्दकारी सबलकारी सम्मासकारी, न सन्ततकारी सन्ततवुत्ति; सीलेसु दुस्सीलो अयमायस्मा, नायमायस्मा सीलवा' ति।

'''इध पन, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलेन सद्धिं संवसमानो एवं जानाति—'दीघरत्तं खो अयमायस्मा अखण्डकारी अच्छिद्दकारी असबलकारी अकम्मासकारी [R.188] सन्ततकारी सन्ततवुत्ति; सीलेसु सीलवा अयमायस्मा, नायमायस्मा दुस्सीलो' ति। 'संवासेन, भिक्खवे, सीलं वेदितब्बं, तं च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुपञ्ञेना' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। (१)

३. ''संवोहारेन, भिक्खवे, सोचेय्यं वेदितब्बं, तं च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं;

ज्ञान नहीं हो जाता। (२) **संव्यवहार** (परस्पर लेन देन) से दूसरे के मन की शुद्धि (सचाई) जानी जा सकती है। इसमें समय लगता है, इतना शीघ्र ज्ञान नहीं हो जाता। (३) **आपत्ति** (संकट) **में** किसी के धैर्य की परीक्षा होती है। उसमें भी समय लगता है, इतना शीघ्र ज्ञान नहीं हो जाता। ध्यान देना पड़ता है, उपेक्षा से कार्य नहीं बनता। बुद्धि भी लगानी पड़ती है। इसके विना सफलता नहीं मिलती। (४) **साक्षात्कार** (प्रत्यक्षदर्शन) **से** उसकी बुद्धि की सम्परीक्षा हो पाती है। इसमें भी समय लगता है ...पूर्ववत्...।

२. ''भिक्षुओ! मैंने यह जो कहा है—साथ रहने से किसी के आचरण का ज्ञान होता है...' इसका तात्पर्य यह है—'यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल के साथ बहुत काल तक रहता है, तभी वह जान पाता है कि इसका शील (आचरण) खण्डित है, छिद्रमय है, कालुष्य (कलङ्क) युक्त एवं पापसम्पृक्त है। यह निरन्तर समान स्थिति में नहीं रहता। यह तो आचरण में बहुत हीन है, इसे पूर्ण सदाचारी नहीं कहा जा सकता।'

''उधर, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल के साथ रहते रहते जान जाता है—'यह पुद्गल शीलवान् है; इसका शील अखण्ड है, अछिद्र है, अकलङ्क है, पुण्यमय है; यह निरन्तर सदाचरण में तत्पर रहता है, यह दुश्शील नहीं है।' भिक्षुओ! 'साथ रहने से किसी के आचरण का ज्ञान हो सकता है...'—यह जो कहा था, उसका यही तात्पर्य है। (१)

मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना' ति, इति खो पनेतं वुत्तं। किञ्चेतं [N.200] पटिच्च वुत्तं? इध, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलेन सद्धिं संवोहरमानो एवं जानाति—'अञ्ञथा खो अयमायस्मा एकेन एको वोहरति, अञ्ञथा द्वीहि, अञ्ञथा तीहि, अञ्ञथा सम्बहुलेहि; वोक्कमति अयमायस्मा पुरिमवोहारा पच्छिमवोहारं; अपरिसुद्धवोहारो अयमायस्मा, नायमायस्मा परिसुद्धवोहारो' ति।

"इध पन, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलेन सद्धिं संवोहरमानो एवं जानाति-'यथेव खो अयमायस्मा एकेन एको वोहरति, तथा द्वीहि, तथा तीहि, तथा सम्बहुलेहि। नायमायस्मा वोक्कमति पुरिमवोहारा पच्छिमवोहारं; परिसुद्धवोहारो अयमास्मा अपरिसुद्धवोहारो' ति। [B.509] 'संवोहारेन, भिक्खवे, सोचेय्यं वेदितब्बं, तं च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। (२)

४. "आपदासु, भिक्खवे, थामो वेदितब्बो, सो चो खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं ; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना' ति, इति खो पनेतं वुत्तं। किञ्चेतं पटिच्च वुत्तं? इध, भिक्खवे, एकच्चो ञातिब्यसनेन वा फुट्ठो समानो, भोगब्यसनेन वा फुट्ठो समानो, रोगब्यसनेन वा फुट्ठो समानो न इति पटिसञ्चिक्खति—'तथाभूतो खो अयं लोकसन्निवासो तथाभूतो अयं अत्तभावपटिलाभो यथाभूते लोकसन्निवासे यथाभूते अत्तभावपटिलाभे अट्ठ लोकधम्मा लोकं अनुपरिवत्तन्ति लोको च अट्ठ लोकधम्मे

---

३. "भिक्षुओ! 'संव्यवहार (लेन देन) से किसी की मनःशुद्धि जानी जा सकती है'...—यह जो कहा था, उसका तात्पर्य यह है—'यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल के साथ दीर्घ काल तक व्यवहार करके ही जान सकता है कि इस पुद्गल का एक पुद्गल के साथ व्यवहार एक है, दूसरे के साथ दूसरा, तीसरे के साथ तीसरा, तथा अन्य बहुतों के साथ अन्य बहुत प्रकार का व्यवहार है। यह एक से दूसरे के साथ व्यवहार करने में भेदभाव करता है। इसका व्यवहार सभी के साथ सर्वथा परिशुद्ध नहीं है।'

"और फिर, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल केसाथ दीर्घकाल तक व्यवहार कर यह भी जान सकता है कि इस पुद्गल का एक...दो...तीन... या अनेक पुद्गलों के साथ समान व्यवहार है, यह किसी के साथ व्यवहार में भेदभाव नहीं करता; अतः इसका व्यवहार परिशुद्ध ही है, अपरिशुद्ध नहीं। अतः, भिक्षुओ! 'व्यवहार (परस्पर लेन देन) से दूसरे की मनःशुद्धि जानी जा सकती है...'—यह जो कहा था, उसका यही तात्पर्य है। (२)

४. "भिक्षुओ! 'आपत्काल (सङ्कट) में ही किसी के धैर्य की परीक्षा हो सकती है, वह भी दीर्घकाल तक साथ रहने पर; मन लगाने पर, उपेक्षा से नहीं; प्रज्ञा (सावधानी) पूर्वक ही, उपेक्षा से नहीं जाना जा सकता'—यह जो मैंने पहले कहा था, उसका क्या तात्पर्य है? उसका तात्पर्य यह है—'यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल अपने किसी नाते-रिश्तेदार पर सङ्कट आने पर या स्वयं की कोई

अनुपरिवत्तति—लाभो च, अलाभो, यसो च, निन्दा च, पसंसा च, सुखं च, दुक्खं चा' ति। सो ञातिब्यसनेन वा फुट्ठो समानो भोगब्यसनेन वा फुट्ठो समानो रोगब्यसनेन वा फुट्ठो समानो सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति।

''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो ञातिब्यसनेन वा फुट्ठो समानो भोगब्यसनेन वा... समानो इति पटिसञ्चिक्खति—'तथाभूतो खो अयं लोकसन्निवासो तथाभूतो अयं [R.189] अत्तभावपटिलाभो यथाभूते लोकसन्निवासे यथाभूते अत्तभावपटिलाभे अट्ठ [N.202] लोकधम्मा लोकं अनुपरिवत्तन्ति लोको च अट्ठ लोकधम्मे अनुपरिवत्तति—लाभो च, अलाभो च, यसो च, अयसो च, निन्दा च, पसंसा च, सुखं च, दुक्खं चा' ति। सो ञातिब्यसनेन वा फुट्ठो समानो भोगब्यसनेन वा फुट्ठो समानो रोगब्यसनेन वा फुट्ठो समानो न सोचति न किलमति न परिदेवति, न उरत्तालिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। 'आपदासु, भिक्खवे, थामो वेदितब्बो, सो च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना, ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।' (३)

५. ''साकच्छाय, भिक्खवे, पञ्ञा वेदितब्बा, सा च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना' ति, इति खो पनेतं [B.510] वुत्तं। किञ्चेतं, पटिच्च वुत्तं? इध, भिक्खवे, पुग्गलेन सद्धिं साकच्छायमानो एवं जानाति—'यथा खो इमस्स आयस्मतो उम्मग्गो यथा च अभिनीहारो यथा च पञ्हासमुदाहारो, दुप्पञ्ञो अयमायस्मा, नायमायस्मा पञ्ञवा। तं किस्स हेतु? तथा हि अयमायस्मा न चेव

भौतिक हानि होने पर या स्वयं के किसी गम्भीर रोग से ग्रस्त हो जाने पर यह नहीं सोचता कि संसार की ऐसी ही स्थिति है, या जन्म के साथ ही ये आठ बातें मनुष्य के गले पड़ जाती हैं—१. लाभ, २. हानि, ३. यश, ४. अयश, ५. निन्दा, ६. प्रशंसा, ७. सुख एवं ८. दुख।' अतः वह उक्त नाते-रिश्तेदारों के सङ्कट के समय, अपनी भौतिक हानि के समय या किसी भयङ्कर रोग से ग्रस्त हो जाने पर रोता कलपता है, छाती पीटता है, मूर्च्छित होता है।

''परन्तु, भिक्षुओ! दूसरा कोई पुद्गल उक्त तीनों प्रकार के सङ्कटों में फँसकर यह सोचता है—'यह तो संसार की स्थिति ही है कि प्रत्येक शरीरधारी के साथ ये आठ बातें जन्म के साथ ही लगी रहती हैं—१. लाभ, २. हानि, ३. यश, ४. अपयश, ५. निन्दा, ६. प्रशंसा, ७. सुख एवं ८. दुःख। इनमें किसी का वश नहीं है।' अतः यह इन तीनों सङ्कटों के आने पर भी न चिन्ता करता है... न इन वेदनाओं से मूर्च्छित ही होता है। अतः 'आपत्काल में ही किसी के धैर्य की प्रशंसा होती है...'—यह जो कहा था उसका यही तात्पर्य है। (३)

५. ''भिक्षुओ! 'साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) से ही उसकी बुद्धि की सम्परीक्षा हो पाती है'—यह जो मैंने कहा था, उसका क्या तात्पर्य है? उसका तात्पर्य यह है—यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल के साथ साक्षात्कार करके ही उसके विषय में यह जान सकता है—'इस पुद्गल की जैसी उमङ्ग है, जैसा अभिनीहार (सङ्कल्प) है, जैसा इसकी प्रज्ञा का समुदाचार (बातचीत) है—इन सबसे यही ज्ञात होता है कि यह पुद्गल दुष्प्रज्ञ (कुमति) है, प्रज्ञावान् नहीं है।' वह क्यों? वह

गम्भीरं अत्थपदं उदाहरति सन्तं पणीतं अतक्कावचरं निपुणं पण्डितदेवनीयं। यं अयमायस्मा धम्मं भासति तस्स च नप्पटिबलो सङ्खित्तेन वा वित्तथारेन वा अत्थं आचिक्खितुं देसेतुं पञ्ञापेतुं पट्ठपेतुं विवरितुं विभजितुं उत्तानीकातुं। दुप्पञ्ञो अयमायस्मा, नायमायस्मा पञ्ञवा 'ति।

''सेय्यथापि भिक्खवे, चक्खुमा पुरिसो उदकरहदस्स तीरे ठितो पस्सेय्य परित्तं मच्छं उम्मुज्जमानं। तस्स एवमस्स—'यथा खो इमस्स मच्छस्स उम्मग्गो यथा ऊमिघातो यथा च वेगायितत्तं, परित्तो अयं मच्छो, नायं मच्छो महन्तो' ति एवमेव खो, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलेन सद्धिं साकच्छायमानो एवं जानाति—'यथा खो इमस्स आयस्मतो उम्मग्गो यथा च अभिनीहारो यथा च पञ्हासमुदाहारो, दुप्पञ्ञो अयमायस्मा, नायमायस्मा पञ्ञवा। तं किस्स हेतु? तथा हि अयमायस्मा न चेव गम्भीरं अत्थपदं उदाहरति सन्तं पणीतं अतक्कावचरं निपुणं पणिडतवेदनीयं। यं च अयमायस्मा धम्मं भासति, तस्स च न पटिबलो सङ्खित्तेन वा वित्थारेन वा अत्थं आचिक्खितुं देसेतुं पञ्ञापेतुं पट्ठपेतुं विवरितुं विभजितुं [N.203] उत्तानीकातुं। दुप्पञ्ञो अयमायस्मा, नायमायस्मा पञ्ञवा' ति।

''इध पन, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलेन सद्धिं साकच्छायमानो एवं जानाति—'यथा खो इमस्स आयस्मतो उम्मग्गो यथा च अभिनीहारो यथा च पञ्हासमुदाहारो, पञ्ञवा अयमायस्मा, नायमायस्मा दुप्पञ्ञो'। तं किस्स हेतु? तथा हि अयमायस्मा गम्भीरं चेव अत्थपदं उदाहरति सन्तं पणीतं अतक्कावचरं निपुणं पण्डितवेदनीयं। यं च अयमायस्मा धम्मं भासति, तस्स च पटिबलो सङ्खित्तेन वा वित्थारेन वा अत्थं आचिक्खितुं देसतुं पञ्ञापेतुं विवरितुं विभाजितुं उत्तानीकातुं। पञ्ञवा अयमायस्मा, नायमायस्मा दुप्पञ्ञो ति।

इसलिये कि इसकी बातचीत में, गम्भीर, शान्त, उत्तम, अकाट्य युक्तिपूर्ण, निपुण एवं पण्डितों के मन में बैठने योग्य अर्थपद नहीं है। तथा यह आयुष्मान् धर्म का जैसा विवेचन कर रहा है वह किसी भी प्रकार से—संक्षेप या विस्तार से अर्थविभाजन में, समझाने में, स्पष्ट करने या विशद व्याख्यान में कथमपि समर्थ नहीं है। अत: यह दुष्प्रज्ञ ही है, प्रज्ञावान् कथमपि नहीं है।

''जैसे, भिक्षुओ! कोई नेत्रों वाला पुरुष किसी उदकपूर्ण सरोवर के तट पर बैठा हुआ उस सरोवर में छोटी छोटी मछलियों को जल में ऊपर नीचे जाते देखे। उनको देखकर उसको ऐसा लगे—'जैसा इन छोटी छोटी मछलियों का उत्साह है और जैसी इस सरोवर की उत्ताल तरंगें हैं, जैसा इसका वेग है, इन सबके देखने से यही ज्ञात होता है कि यह मछली दुर्बल ही है, अधिक सामर्थ्यवान् नहीं है।'' इसी प्रकार, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल के साथ साक्षात्कार कर यह जान लेता है कि इसकी जैसी उमंग है, जैसा अभिनीहार है...पूर्ववत्... प्रज्ञावान् कथमपि नहीं है।

''और, भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल अन्य पुद्गल से साक्षात् संवाद करके ही यह जान सकता है—'जैसी इस आयुष्मान् की उमंग है, जैसा सङ्कल्प है, जैसा संवाद है, उससे ज्ञात होता है कि यह पुद्गल प्रज्ञावान् ही है, दुष्प्रज्ञ नहीं है।' क्योंकि यह आयुष्मान् अर्थपद गम्भीर, शान्त, निपुण,

"सेय्यथापि, भिक्खवे, चक्खुमा पुरिसो उदकरहदस्स तीरे ठितो पस्सेय्य [B.511] महन्तं मच्छं उम्मुज्जमानं। तस्स एवमस्स—'यथा खो इमस्स मच्छस्स उम्मग्गो [R.190] यथा च ऊमिघातो यथा च वेगायितत्तं, महन्तो अयं मच्छो, नायं मच्छो परित्तो' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलेन सद्धिं साकच्छायमानो एवं जानाति—'यथा खो इमस्स आयस्मतो उम्मग्गो यथा च अभिनीहारो यथा च पञ्हासमुदाहारो, पञ्ञवा अयमायस्मा, नायमायस्मा दुप्पञ्ञो। तं किस्स हेतु? तथा हि अयमायस्मा गम्भीरं अत्थपदं उदाहरति सन्तं पणीतं अतक्कावचरं निपुणं पण्डितवेदनीयं। यं च अयमायस्मा धम्मं भासति, तस्स च पटिबलो सङ्खित्तेन वा अत्थं वित्थारेन वा अत्थं आचिक्खितुं देसेतुं पञ्ञापेतुं पट्ठपेतुं विभाजितुं उत्तानीकातुं। पञ्ञवा अयमायस्मा, नायमायस्मा दुप्पञ्ञो' ति।

६. "साकच्छाय, भिक्खवे, पञ्ञा वेदितब्बा, सा च खो दीघेन अद्धुना, न इत्तरं; मनसिकरोता, नो अमनसिकरोता; पञ्ञवता, नो दुप्पञ्ञेना' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं। (४)

इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि ठानानि इमेहि चतूहि वेदितब्बानी" ति॥ ●

३. भद्दियसुत्तं : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो भद्दियो लिच्छवि येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं [N.204] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो भद्दियो लिच्छवि भगवन्तं एतदवोच—

२. "सुतं मेतं, भन्ते—'मायावी गोतमो आवट्टनिं मायं जानाति याय

अकाट्य तर्कसम्मत एवं पण्डितों के समझने योग्य ही बोलता है। तथा यह जिस धर्म का प्रवचन करता है उसका यह विस्तार एवं विशदीकरण तथा विभाजन करने में समर्थ है। अत: यह प्रज्ञावान् है, दुष्प्रज्ञ नहीं।

"जैसे, भिक्षुओ! कोई चक्षुष्मान् पुरुष किसी जलपूर्ण सरोवर के किनारे बैठा हुआ किसी बड़ी मछली को उतराती हुई देखें। उसे देखकर यह विचार हो—'जैसा इस मछली का उत्साह (उमंग) है, तथा इसका तरंगों के काटने की विधि तथा वेग है उससे समझ में आता है कि यह मछली प्रज्ञावान् है, साधारण नहीं ...पूर्ववत्... अत: यह प्रज्ञावान् है, दुष्प्रज्ञ नहीं। (४)

६. "अत:, भिक्षुओ! साक्षात्कार द्वारा उसकी प्रज्ञा को परखना चाहिये। उसकी परख में समय लगता है। मन लगाना पड़ता है। बुद्धि लगानी पड़ती है। इस तरह, भिक्षुओ! ये चार बातें चार विधियों से जानी जा सकती है॥" ●

३. भद्दियसूत्र : : भगवान् की आवर्तनी माया

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी भद्दिय नामक लिच्छवि भगवान् के पास आया। आकर, प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उसने यह जिज्ञासा प्रकट की—

अञ्ञतित्थियानं सावके आवट्टेती' ति।'' ये ते, भन्ते, एवमाहंसु—'मायावी समणो गोतमो आवट्टनिं मायं जानाति याय अञ्ञतित्थियानं सावके आवट्टेती' ति, कच्चि ते, भन्ते, भगवतो वुत्तवादिनो, न च भगवन्तं अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति, धम्मस्स च अनुधम्मं ब्याकरोन्ति, न च कोचि सहधम्मिको वादानुपातो गारय्हं ठानं आगच्छति, अनभक्खातुकामा हि मायं, भन्ते, भगवन्तं'' ति?

[B.512, R.191] ३. ''एथ तुम्हे, भद्दिय, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झान-क्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा 'समणो नो गरु' ति। यदा तुम्हे, भद्दिय, अत्तना वा जानेय्याथ—'इमे धम्मा अकुसला, इमे धम्मा सावज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुगरहिता, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती' ति, अथ तुम्हे, भद्दिय, पजहेय्याथ।

४. ''तं किं मञ्ञथ, भद्दिय, लोभो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति हिताय वा अहिताय वा'' ति? ''अहिताय, भन्ते''।

''लुद्धो पनायं,भद्दिय, पुरिसपुग्गलो लोभेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति परं पि तथत्ताय समादपेति यं स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया'' ति। ''एवं, भन्ते''।

---

२. ''भन्ते! मैंने ऐसा सुना है—'श्रमण गोतम कोई आवर्तनी माया (वशीकरण मन्त्र) जानते हैं, जिसके बल पर ये अपर सम्प्रदायों के परिव्राजकों को अपने वश में कर लेते हैं।' भन्ते! ऐसा जो कहते हैं क्या वे आपके प्रति सत्यता ही प्रकट करते हैं या आप पर मिथ्या आरोप लगा रहे हैं? उनका यह कथन धर्मानुसार ही है क्या? ऐसा कहने से आपके विषय में कोई सहधार्मिक वाद तो नहीं उठ खड़ा होगा? क्योंकि हम लोग आपके विषय में कोई मिथ्या बात कहना सुनना नहीं चाहते!''

३. ''इस प्रसङ्ग में, भद्दिय! मैं तुम्हें यही संकेत करना चाहता हूँ—'सुनी सुनायी बात पर ध्यान न दो, न परम्परा की बातों पर, न इतिहास की बातों पर, न धर्मग्रन्थों के पृष्ठों पर, न किसी तर्क या युक्ति पर, न किसी के आकार से प्रभावित होओ, न किसी की आलङ्कारिक (लच्छेदार) भाषा से, न किसी के कठोर दृष्टिपात से, न किसी की भव्य आकृति से या 'श्रमण हमारा गुरु है'— इस बात से प्रभाव में आओ। जब तुम्हें, भद्दिय! अपने विचार से, अपने मनन से यह बात निश्चित हो जाय—'ये धर्म अकुशल है, ये धर्म सदोष हैं, इन धर्मों की विद्वानों ने निन्दा की है, इन धर्मों के आचरण से तुम्हारा अहित या तुम्हें नष्ट हो सकता है', तब भद्दिय! तुम उन धर्मों को त्याग दो।

४. ''तो क्या मानते हो, भद्दिय! तुम्हारे मन में उत्पन्न लोभ तुम्हारे लिये हितकर होगा या अहितकर?'' ''अहितकर, भन्ते!''

''ऐसा लोभी पुरुष, भद्दिय! लोभाभिभूत होकर किसी की हत्या भी कर सकता है, चौरी भी कर सकता है, परस्त्री के साथ व्यभिचार भी कर सकता है, असत्य भी बोल सकता है, अन्य भी ऐसे वैसे कर्म कर सकता है जो उसके लिये अहितकर एवं कष्टप्रद हों।'' ''हाँ, भन्ते!''

५. ''तं किं मञ्ञथ, भद्दिय, दोसो पुरिसस्स ...पे०... मोहो पुरिसस्स ...पे०... सारम्भो पुरिस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उपज्जति हिताय वा अहिताय वा'' ति?

''अहिताय, भन्ते''।

''सारद्धो पनायं भद्दिय, पुरिसपुग्गलो सारम्भेन अभिभूतो परियादिन्नचित्तो पाणं पि हनति, अदिन्नं पि आदियति, परदारं पि गच्छति, मुसा पि भणति, परं पि तथत्ताय [N.205] समादपेति यं स होति दीघरत्तं अहिताय दुक्खाया'' ति। ''एवं भन्ते''।

६. ''तं किं मञ्ञथ, भद्दिय, इमे धम्मा कुसला वा अकुसला वा'' ति?

''अकुसला, भन्ते''।

''सावज्जा वा अनवज्जा वा'' ति? सावज्जा, भन्ते''।

''विञ्ञुगरहिता वा विञ्ञुप्पसत्था वा'' ति? ''विञ्ञुगरहिता, भन्ते''।

''समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ति, नो वा? कथं वा एत्थ होती'' ति?

''समत्ता, भन्ते, समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ति। एवं नो एत्थ होती'' ति।

७. ''इति खो, भद्दिय, यं तं ते अवोचुम्हा—'एथ तुम्हे, भद्दिय, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा [R.192] आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा समणो नो गरु ति। यदा तुम्हे, भद्दिय, अत्तना व जानेय्याथ—इमे धम्मा अकुसला, इमे धम्मा सावज्जा, [B.513] इमे धम्मा विञ्ञुगरहिता, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना अहिताय दुक्खाय संवत्तन्ती ति, अथ तुम्हे, भद्दिय, पजहेय्याथा' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

---

५. ''तो क्या मानते हो, भद्दिय! द्वेष पुरुष के मन में उत्पन्न... पूर्ववत्...।

''मोह पुरुष के मन में उत्पन्न हुआ हितकर होगा या अहितकर?''...

''क्रोध पुरुष के मन में उत्पन्न हुआ हितकर होगा या अहितकर?''

''अहितकर, भन्ते!''

''ऐसा क्रोधी पुरुष, भद्दिय! क्रोधाभिभूत होकर किसी की हत्या भी कर सकता है ...पूर्ववत्... एवं कष्टप्रद हों।'' ''हाँ, भन्ते!''

६. ''तो क्या मानते हो, भद्दिय! ये धर्मकुशल हैं या अकुशल?''

''अकुशल, भन्ते!''

''सदोष हैं या निदोष?'' ''सदोष भन्ते!''

''विद्वानों द्वारा निन्दित हैं या प्रशंसित?'' ''विद्वानों द्वारा निन्दित।''

''इन पर आचरण किया जाय तो ये अहितकर या दुःखप्रद होंगे कि नहीं?''

''ये अवश्य अहितकर एवं दुःखप्रद होंगे''—ऐसा हमें लगता है।

७. ''इस प्रकार, भद्दिय! मैंने तुमसे जो यह कहा था—'यहाँ, भद्दिय! मैं तुम्हें यही संकेत करना चाहता हूँ—सुनी सुनायी बात पर ...पूर्ववत्... तुम उन धर्मों को त्याग दो'—वह इसी आशय से कहा था। (१)

८. "एथ तुम्हे, भद्दिय, मा अनुस्सवेन, मा परम्पराय, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठि-निज्झानक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा 'समणो नो गरू' ति। यदा तुम्हे, भद्दिय, अत्तना व जानेय्याथ—'इमे धम्मा कुसला, इमे धम्मा अनवज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुप्पसत्था, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ती' ति, अथ तुम्हे, भद्दिय, उपसम्पज्ज विहरेय्याथा ति।

[N.206] ९. "तं किं मञ्ञथ, भद्दिय, अलोभो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति हिताय वा अहिताय वा" ति? "हिताय, भन्ते"।

"अलुद्धो पनायं, भद्दिय, पुरिसपुग्गलो लोभेन अनभिभूतो अपरियादिन्नचित्तो नेव पाणं हनति, न अदिन्नं आदियति, न परदारं गच्छति, न मुसा भणति, परं पि तथत्ताय न समादपेति यं स होति दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति। "एवं, भन्ते!"

१०. "तं किं मञ्ञथ, भद्दिय अदोसो पुरिसस्स ...पे०... अमोहो पुरिसस्स ...पे०... असारम्भो पुरिसस्स अज्झत्तं उप्पज्जमानो उप्पज्जति हिताय वा अहिताय वा" ति?

"हिताय, भन्ते।"

"असारद्धो पनायं भद्दिय, पुरिसपुग्गलो सारम्भेन अनभिभूतो अपरियादिन्नचित्तो नेव पाणं हनति, न अदिन्नं अदियति, न परदारं गच्छति, न मुसा भणति, परं पि तथत्ताय न समादपेति यं स होति दीघरत्तं हिताय सुखाय " ति। "एवं, भन्ते"।

११. "तं किं मञ्ञथ, भद्दिय, इमे धम्मा कुसला वा अकुसला वा" ति?

"कुसला, भन्ते"।

"सावज्जा वा अनवज्जा वा" ति? "अनवज्जा, भन्ते"।

---

८. "इस प्रसङ्ग में, भद्दिय! मैं तुम्हें यह भी संकेत करना चाहता हूँ—'सुनी सुनायी बात पर ध्यान न दो, न परम्परा की बातों पर ... पूर्ववत्... अपने मन से यह बात निश्चित हो जाय—ये धर्म कुशल हैं, ये धर्म निर्दोष हैं, ये धर्म विद्वानों द्वारा प्रशंसित हैं, इन धर्मों द्वारा तुम्हारा हित या कुशल ही होगा, तब, भद्दिय! तुम इन धर्मों को स्वीकार कर तदनुसार साधना करो।'

९. "तो क्या मानते हो, भद्दिय! आध्यात्मिक मन में उत्पन्न अलोभ पुरुष का हितकर होगा या अहितकर?" "हितकर, भन्ते!"

"क्योंकि अलोभी पुरुष... न किसी की हत्या करता है ...पूर्ववत्... चिरकाल तक हितकर ही होगा।

१०. "...अध्यात्म मन में उत्पन्न अद्वेष... अमोह... अक्रोध... अहितकर होगा?"

"हितकर, भन्ते!"

"ऐसा अक्रोधी पुरुष... न किसी की हत्या करता है...। "ऐसा ही है, भन्ते!"

११. "तो क्या मानते हो, भद्दिय! ये धर्म कुशल हैं या अकुशल?" "कुशल, भन्ते!"

"सदोष हैं या निर्दोष?" "निर्दोष, भन्ते!"

"विञ्ञुगरहिता वा विञ्ञुप्पसत्था वा" ति? "विञ्ञुप्पसत्था, भन्ते"। [R.193] "समत्ता समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ति नो वा? कथं वा एत्थ होती " ति?

"समत्ता, भन्ते, समादिन्न हिताय सुखाय संवत्तन्ति। एवं नो एत्थ होती" ति।

१२. "इति खो, भद्दिय, यं तं ते अवोचुम्हा—'एथ तुम्हे, भद्दिय, मा [B.514] अनुस्सवेन, मा इतिकिराय, मा पिटकसम्पदानेन, मा तक्कहेतु, मा नयहेतु, मा [N.207] आकारपरिवितक्केन, मा दिट्ठिनिज्झाननक्खन्तिया, मा भब्बरूपताय, मा 'समणो नो गरू' ति। यदा तुम्हे, भद्दिय, अत्तना व जानेय्याथ—इमे धम्मा कुसला, इमे धम्मा अनवज्जा, इमे धम्मा विञ्ञुप्पसत्था, इमे धम्मा समत्ता समादिन्ना हिताय सुखाय संवत्तन्ती ति, अथ तुम्हे, भद्दिय, उपसम्पज्ज विहरेय्याथा' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं।

१३. "ये खो ते, भद्दिय, लोके सन्तो सप्पुरिसा ते सावकं एवं समादपेन्ति—'एहि त्वं, अम्भो पुरिस, लोभं विनेय्य विहराहि। लोभं विनेय्य विहरन्तो न लोभजं कम्मं करिस्ससि कायेन वाचाय मनसा। दोसं विनेय्य विहराहि। दोसं विनेय्य विहरन्तो न दोसजं कम्मं करिस्ससि कायेन वाचाय मनसा। मोहं विनेय्य विहराहि। मोहं विनेय्य विहरन्तो न मोहजं कम्मं करिस्ससि कायेन वाचाय मनसा। सारम्भं विनेय्य विहराहि। सारम्भं विनेय्य विहरन्तो न सारम्भजं कम्मं करिस्ससि कायेन वाचाय मनसा''' ति।

१४. एवं वुत्ते भद्दियो लिच्छवि भगवन्तं एतदवोच—"अभिक्कन्तं, भन्ते ...पे०... उपासकं मं, भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं" ति।

१५. "अपि नु ताहं, भद्दिय, एवं अवचं—'एहि मे त्वं, भद्दिय, सावको होहि; अहं सत्था भविस्सामी" ति? "नो हेतं, भन्ते"।

"विद्वानों द्वारा प्रशंसित है या निन्दित?" "प्रशंसित, भन्ते!"

इनकी साधना की जाय तो ये हितकर एवं सुखकर होंगे कि नहीं?"

"भन्ते! हितकर एवं सुखकर ही होंगे—ऐसा हमें लगता है।"

१२. "इसीलिये, भद्दिय! हमने जो कहा था—'इस प्रसङ्ग में, भद्दिय! मैं तुम्हें यह भी सङ्केत देना चाहता हूँ—सुनी सुनायी बात पर न जाओ!.... पूर्ववत्... तुम इन धर्मों को स्वीकार कर तदनुसार साधना करो'—यह इसी आशय से कहा था।

१३. "भद्दिय! ये जो लोक में, शान्त सत्पुरुष हैं, वे अपने शिष्य को यह उपदेश करते हैं—'पुरुष! अपने लोभ को दबाकर साधना में लग। लोभ दबाकर साधना करने से तूँ मनसा वाचा कर्मणा लोभजन्य कर्म नहीं करेगा। द्वेष को दबाकर... मोह को दबाकर... क्रोध को दबाकर... पूर्ववत्... क्रोधजन्य कर्म नहीं करेगा।'''

१४. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, भद्दिय लिच्छवि बोला—"बहुत अच्छा, कहा, भन्ते! बहुत अच्छा। ...पूर्ववत्... भन्ते! आज से आप मुझको अपना जीवनपर्यन्त उपासक समझें।"

''एवंवादिं खो भद्दिय, एवमक्खायिं एके समणब्राह्मणा असता तुच्छा मुसा अभूतेन अब्भाचिक्खन्ति—'मायावी समणो गोतमो आवट्टनिं मायं जानाति याय अञ्ञतित्थियानं सावके आवट्टेती''' ति।

''भद्दिका, भन्ते, आवट्टनी माया। कल्याणी, भन्ते आवट्टनी माया। पिया मे, भन्ते, [R.194] ञातिसालोहिता इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं, पियानं पि मे अस्स ञातिसालोहितानं दीघरत्तं हिताय सुखाय। सब्बे चे पि, भन्ते खत्तिया इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं, सब्बेसं पिस्स खत्तियानं दीघरत्तं हिताय सुखाय। सब्बे च पि, भन्ते, ब्राह्मणा... [B.515, N.208] वेस्सा... सुद्दा इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं, सब्बेसं, पिस्स सुद्दानं दीघरत्तं हिताय सुखाय'' ति।

१६. ''एवमेतं, भद्दिय, एवमेतं, भद्दिय! सब्बे चे पि, भद्दिय, खत्तिया इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं अकुसलधम्मप्पहानाय कुसलधम्मूपसम्पदाय, सब्बेसं पिस्स खत्तियानं दीघरत्तं हिताय सुखाय। सब्बे चे पि, भद्दिय, ब्राह्मणा ... वेस्सा ... सुद्दा आवट्टेय्युं अकुसलधम्मप्पहानाय कुसलधम्मूपसम्पदाय, सब्बेसं पिस्स सुद्दानं दीघरत्तं हिताय सुखाय। सदेवको चे पि, भद्दिय, लोको समारको सब्रह्मको सस्समणब्राह्मणी पजा सदेवमनुस्सा इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं, अकुसलधम्मप्पहानाय कुसलधम्मूपसम्पदाय, सदेवकस्स पिस्स लोकस्स समारकस्स सब्रह्मकस्स सस्समणब्रह्मणिया पजाय सदेवनुस्साय दीघरत्तं हिताय सुखाय। इमे चे पि, भद्दिय, महासाला इमाय आवट्टनिया आवट्टेय्युं अकुसल-धम्मप्पहानाय कुसलधम्मूपसम्पदाय, इमेसं पिस्स महासालानं दीघरत्तं हिताय सुखाय। को पन वादो मनुस्सभूतस्सा'' ति॥ ●

---

१५. ''भद्दिय! क्या मैंने तुमको यह कहा है—आ, तूँ मेरा उपासक हो जा, मैं तेरा शास्ता होऊँगा?'' ''ऐसा नहीं है, भन्ते।''

''भद्दिय! ऐसा कहते हुए मुझपर कुछ श्रमण ब्राह्मण मिथ्या दोषारोपण करेंगे—'यह मायावी श्रमण गौतम आवर्तनी माया जानता है, जिसके सहारे से यह अन्य तीर्थिक परिव्राजकों को अपने वश में करता रहता है।''

''भन्ते! आपकी यह आवर्तनी माया ही भली है, सुखदायी है। मेरे सभी प्रिय सम्बन्धी आपकी इस आवर्तनी माया में बँध जायँ। भन्ते! सभी क्षत्रिय... जो उनके लिये दीर्घकाल तक हितावह सुखावह होगी। भन्ते! सभी ब्राह्मण... सभी वैश्य... सभी शूद्र इस आवर्तनी माया में फँसे रहें। इन सभी शूद्रों के लिये यह आवर्तनी माया हितकर एवं सुखकर होगी।''

१६. ''यही बात है, भद्दिय! यही बात है। भद्दिय! सभी क्षत्रिय इस आवर्तनी माया में फँस जायँ, यह उनके लिये दीर्घकाल तक हित-सुखदायिनी ही होगी। भद्दिय! सभी ब्राह्मण... सभी वैश्य... सभी शूद्र अपने अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों की उपसम्पदा के लिये इस माया में बँध जायँ। भद्दिय! यह देवताओं सहित समस्त संसार, मार ब्रह्मा सहित, श्रमण ब्राह्मणसहित ये देवमनुष्य प्रजाजन अपने अकुशल धर्मों के प्रहाण के लिये एवं कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये इस

४. सामुगियसुत्तं : १. एकं समयं आयस्मा आनन्दो कोळियेसु विहरति सामुगं नाम कोलियानं निगमो। अथ खो सम्बहुला सामुगिया कोलियपुत्ता येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं आनन्दं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ने खो ते सामुगिये कोलियपुत्ते आयस्मा आनन्दो एतदवोच—

२. ''चत्तारिमानि, ब्यग्घपज्जा, पारिसुद्धिपधानियङ्गानि तेन भगवता [R.195] जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खातानि सत्तानं विसुद्धिया सोकपरिदेवानं समतिक्कमाय दुक्खदोमनस्सानं अत्थङ्गमाय ञायस्स अधिगमाय निब्बानस्स सच्छिकिरियाय। कतमानि चत्तारि? सीलपारिसुद्धिपधानियङ्गं, चित्तपारिसुद्धिपधानियङ्गं, दिट्ठिपारिसुद्धिपधानियङ्गं, विमुत्तिपारिसुद्धिपधानियङ्गं।

३. ''कतमं च, ब्यग्घपज्जा, सीलपारिसुद्धिपधानियङ्गं? इध, [N.209,B.516] ब्यग्घपज्जा, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। अयं वुच्चति, ब्यग्घपज्जा, सीलपारिसुद्धि। इति एवरूपिं सीलपारिसुद्धिं अपरिपूरं वा परिपूरेस्सामि परिपूरं वा तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी ति, यो तत्थ छन्दो च वायामो च उस्साहो च उस्सोळ्ही च अप्पटिवानी च सति च सम्पजञ्ञं च, इदं वुच्चति, ब्यग्घपज्जा, **सीलपारिसुद्धिपधानियङ्गं**।

४. ''कतमं च, ब्यग्घपज्जा, चित्तपारिसुद्धिपधानिजङ्गं? इध ब्यग्घपज्जा, भिक्खु

आवर्तनी माया के जाल में बँध जायँ, जो इन सबके लिये दीर्घकाल तक हितावह एवं सुखावह ही होगी। ये बड़े बड़े धनपति भी... पूर्ववत्... इस माया में बँध जायँ, यह आवर्तनी माया इन धनपतियों के लिये भी दीर्घकाल तक हितकर एवं सुखकर ही होगी। फिर साधारण मनुष्य की तो बात ही क्या है!"॥ ●

४. सामुगेयसूत्र : : चार प्रधान-अङ्ग

१. एक समय आयुष्मान् आनन्द कौलिय प्रदेश के सामुगा नामक कौलियबहुल कस्बे में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तब बहुत से सामुगावासी कौलिय आयुष्मान् आनन्द के पास आये, आकर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन कौलियपुत्रों को आयुष्मान् आनन्द यह बोले—

२. व्याघ्रपादो! उन भगवान् ज्ञानी सर्वदर्शी सम्यक्सम्बुद्ध ने प्राणियों की मनःशुद्धि, उनके शोक परिदेव तथा दुःख दौर्मनस्य आदि के नाश एवं ज्ञान प्राप्ति और निर्वाण के साक्षात्कार हेतु इन चार परिशुद्धिप्रधान अङ्गों का उपदेश किया है। किन चार का? (१) शीलपरिशुद्धिप्रधान अङ्ग, (२) चित्तपरिशुद्धिप्रधान अङ्ग, (३) दृष्टिपरिशुद्धिप्रधान अङ्ग, एवं (४) विमुक्तिपरिशुद्धिप्रधान अङ्ग।

३. ''व्याघ्रपादो! इनमें 'शीलपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग' कौन सा होता है? यहाँ, व्याघ्रपादो! कोई भिक्षु शीलवान् होता है... पूर्ववत्... प्राप्त कर शिक्षापदों का अभ्यास करता है। व्याघ्रपादो! यह शीलपरिशुद्धि कहलाती है। ऐसी अपूर्ण शीलपरिशुद्धि की पूर्ति के लिये तथा पूर्ण परिशुद्धि को वहाँ वहाँ प्रज्ञा द्वारा विशेषतः अनुगृहीत करने के लिये उसके द्वारा किया गया मनःसङ्कल्प, प्रयास,

विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, व्यग्घपज्जा, चित्तपारिसुद्धि। इति एवरूपिं चित्तपारिसुद्धिं अपरिपूरं वा परिपूरेस्सामि परिपूरं वा तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी ति, यो तत्थ छन्दो च वायामो च उस्साहो च उस्सोळ्ही च अप्पटिवानी च सति च सम्पजञ्ञं च, इदं वुच्चति, ब्यग्घपज्जा, **चित्तपारिसुद्धि-पधानियङ्गं**।

५. "कतमं च, ब्यग्घपज्जा, दिट्ठिपारिसुद्धिधानियङ्गं? इध, ब्यग्घपज्जा, भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। अयं वुच्चति, ब्यग्घपज्जा, दिट्ठिपारिसुद्धि। इति एवरूपिं दिट्ठिपारिसुद्धिं अपरिपूरं वा ...पे०... तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी ति, यो तत्थ छन्दो च वायामो च उस्साहो च उस्सोळ्ही च अप्पटिवानी च सति च सम्पजञ्ञं च, इदं वुच्चति, ब्यग्घपज्जा, दिट्ठि-पारिसुद्धिपधानियङ्गं।

६. "कतमं च, ब्यग्घपज्जा, विमुत्तिपारिसुद्धिंपधानियङ्गं? स खो सो, ब्यग्घपज्जा, अरियसावको इमिना च सीलपारिसुद्धिंपधानियङ्गेन समन्नागतो इमिना च चित्तपारिसुद्धिं-[R.196] पिधानियङ्गेन समन्नागतो इमिना च दट्ठिपारिसुद्धिंधानियङ्गेन समन्नागतो रजनीयेसु धम्मेसु चित्तं विराजेति, विमोचनीयेसु धम्मेसु चित्तं विमोचेति। सो रजनीयेसु धम्मेसु चित्तं विराजेत्वा, विमोचनीयेसु धम्मेसु चित्तं विमोचेत्वा सम्माविमुत्तिं फुसति। अयं वुच्चति, ब्यग्घपज्जा, विमुत्तिपारिसुद्धि। इति एवरूपिं विमुत्तिपारिसुद्धि अपरिपूरं वा परिपूरेस्सामि परिपूरं वा तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी ति, यो तत्थ छन्दो च वायामो च उस्साहो च

उत्साह, बीच में न रुकना या पीछे न हटना, स्मृति एवं सम्प्रजन्य ही, व्याघ्रपादो! **शीलपरिशुद्धि-प्रधानीय अङ्ग** कहलाता है। (१)

४. "व्याघ्रपादो! 'चित्तपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग' क्या है? यहाँ, व्याघ्रपादो! कोई भिक्षु कामभोगों से दूर रहकर... पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। व्याघ्रपादो! यह चित्तपरिशुद्धि कहलाती है। ऐसी अपूर्ण चित्तपरिशुद्धि की पूर्ति के लिये ...पूर्ववत्... स्मृति एवं सम्प्रजन्य ही व्याघ्रपादो! **चित्तपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग** कहलाता है। (२)

५. "व्याघ्रपादो! 'दृष्टिपरिशुद्धि प्रधानीय अङ्ग' क्या कहलाता है? यहाँ, व्याघ्रपादो! कोई भिक्षु 'यह दुःख है' ...पूर्ववत्... यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है?—यह यथार्थतः जानता है। यह कहलाती है—दृष्टिपरिशुद्धि। इस अपूर्ण दृष्टिपरिशुद्धि की पूर्णता के लिये ...पूर्ववत्... स्मृति एवं सम्प्रजन्य—यह कहलाता है, व्याघ्रपादो! **दृष्टिपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग**। (३)

६. और, व्याघ्रपादो! 'विमुक्तिपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग' कौन कहलाता है? व्याघ्रपादो! कोई आर्यश्रावक इन शीलपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग, चित्तविशुद्धिप्रधानीय अङ्ग, दृष्टिपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्गों से युक्त होकर रागाचित धर्मों से चित्त को विरक्त करता है तथा विमोचनीय धर्मों से चित्त को विमुक्त करता है। इस प्रकार वह अपने चित्त को रागयुक्त धर्मों से एवं विमोचनीय धर्मों से से विरक्त एवं विमुक्त कर सम्यग्विमुक्ति का स्पर्श करता है। यह कहलाती है—विमुक्तिपरिशुद्धि। इस अपूर्ण

उस्सोळ्ही च अप्पटिवानी च सति च सम्पजञ्ञं च , इदं वुच्चति, व्यग्घपज्जा, [N.210] **विमुत्तिपारिसुद्धिधानियङ्गं**।

७. ''इमानि खो, ब्यग्घपज्जा, चत्तारि पारिसुद्धिपधानियङ्गानि तेन भगवता [B.517] जानता पस्सता अरहता सम्मासम्बुद्धेन सम्मदक्खातानि सत्तानं विसुद्धिया सोकपरिदेवानं समतिक्कमाय दुक्खदोमनस्सानं अत्थङ्गमाय ञायस्स अधिगमाय निब्बानस्स सच्छि-किरियाया'' ति॥ ●

५. वप्पसुत्तं : १. एकं समयं भगवा सक्केसु विहरति कपिलवत्थुस्मिं निग्रोधारामे। अथ खो वप्पो सक्को निगण्ठसावको येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो वप्पं सक्कं निगण्ठसावकं आयस्मा महामोग्गल्लानो एतदवोच—

२. ''इधस्स, वप्प, कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो अविज्जाविरागा विज्जुप्पादा। पस्ससि नो त्वं, वप्प, तं ठानं यतोनिदानं पुरिसं दुक्खवेदनिया आसवा अस्सवेय्युं अभिसम्पायं'' ति?

''पस्सामहं भन्ते, तं ठानं। इधस्स, भन्ते, पुब्बे पापकम्मं कतं अविपक्कविपाकं। ततोनिदानं पुरिसं दुक्खवेदनिया आसवा अस्सवेय्युं अभिसम्पायं'' ति।

अयं चेव खो पन आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स वप्पेन सक्केन निण्ठसावकेन सद्धिं अन्तराकथा विप्पकता होति; अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन

विमुक्तिपरिशुद्धि को पूर्ण करने के लिये ...पूर्ववत्... स्मृति एवं सम्प्रजन्य—यह कहलाता है व्याघ्रपादो! **विमुक्तिपरिशुद्धिप्रधानीय अङ्ग**। (४)

७. ''व्याघ्रपादो! उन भगवान् ज्ञानी सर्वदर्शी सम्यक्सम्बुद्ध ने प्राणियों की मनःशुद्धि, उनके शोक परिदेव तथा दुःख दौर्मनस्य आदि के नाश एवं ज्ञानप्राप्ति और निर्वाण के साक्षात्कार हेतु इन चार परिशुद्धिप्रधानीय अङ्गों का उपदेश किया है॥'' ●

५. वप्रसूत्र : :

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) शाक्य प्रदेश की राजधानी कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय निर्ग्रन्थ (जैन) का शिष्य वप्र नामक श्रावक आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के साधनास्थल पर गया। जाकर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए वप्रशाक्य से आयुष्मान् महामौद्गल्याययन ने यह जिज्ञासा की—

२. ''वप्र! यहाँ कोई साधक अविद्या के प्रहाण एवं विद्या के उत्पाद से काय, वाक् एवं मन से संवृत हो जाता है। वप्र! क्या तुम वह स्थान जानते हो जिसके कारण पुरुष दुःखवेदनीय धर्मों को मरणानन्तर भी भोगने को विवश होता है?''

''हाँ, भन्ते! मैं वह स्थान देखता हूँ। वह इस पुरुष का पूर्व में किये हुए कर्म का न हुआ विपाक। उसी के कारण पुरुष दुःखवेदनीय धर्मों को मरणानन्तर भी भोगने को विवश रहता है।''

यों यह आयुष्मान् महामौद्गल्यायन की बात अधूरी ही थी कि इसी बीच भगवान् सायङ्काल

[R.197] उपट्ठानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा अयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—

३. ''काय नुत्थ, मोग्गल्लान, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना; का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता'' ति?

''इधाहं, भन्ते, वप्पं सक्कं निगण्ठसावकं एतदवोचं—'इधस्स, वप्प, कायेन संवुतो वाचाय संवुतो मनसा संवुतो अविज्जाविरागा विज्जुपादा। पस्ससि नो त्वं, वप्प, तं ठानं [N.211] यतोनिदानं पुरिसं दुक्खवेदनिया आसवा अस्सवेय्युं अभिसम्परायं' ति? एवं वुत्ते, भन्ते, वप्पो सक्को निगण्ठसावको मं एतदवोच—'पस्सामहं, भन्ते, तं ठानं । इधस्स, भन्ते, पुब्बे पापकम्मं कतं अविपक्कविपाकं। ततोनिदानं पुरिसं दुक्खवेदनिया आसवा अस्सवेय्युं [B.518] अभिसम्परायं' ति। अयं खो नो, भन्ते, वप्पेन सक्केन निगण्ठसावकेन सद्धिं अन्तराकथा विप्पकता; अथ भगवा अनुप्पत्तो'' ति।

४. अथ खो भगवा वप्पं सक्कं निगण्ठसावकं एतदवोच—''सचे मे त्वं, वप्प, अनुञ्ञेय्यं चेव अनुजानेय्यासि, पटिक्कोसितब्बं च पटिक्कोसेय्यासि, यस्स च मे भासितस्स अत्थं न जानेय्यासि ममेवेत्थ उत्तरि पटिपुच्छेय्यासि—'इदं, भन्ते, कथं इमस्स को अत्थो ति, सिया नो एत्थ कथासल्लापो'' ति।

''अनुञ्ञेय्यं चेवाहं, भन्ते, भगवतो अनुजानिस्सामि, पटिक्कोसितब्बं च पटिक्कोसिस्सामि, यस्स चाहं भगवतो भासितस्स अत्थं न जानिस्सामि भगवन्तंयेवेत्थ उत्तरि पटिपुच्छिस्सामि—'इदं भन्ते, कथं, इमस्स को अत्थो' ति? होतु नो एत्थ कथासल्लापो'' ति।

दिवासाधना से उठकर उपस्थानशाला में पधारे; पधारकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। विराजकर भगवान् ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से पूछा—

३. ''तुम लोगों में, मौद्गल्यायन! इस समय क्या बात चल रही थी। क्या बात अपूर्ण ही रह गयी?''

''यहाँ, भन्ते! मैंने इस निर्ग्रन्थशिष्य वप्र से यह पूछा था—'यहाँ, वप्र! कोई अविद्या के विराग से... पूर्ववत्... पुरुष दुःखवेदनीय धर्मों को मरणानन्तर भी भोगने के लिये विवश रहता है।' भन्ते! यह बात इस वप्र के साथ हो ही रही थी कि इसी बीच आप यहाँ पधार गये।''

४. तब भगवान् ने उस निर्ग्रन्थशिष्य वप्र से यह कहा—''वप्र! यदि तूँ मुझसे अनुज्ञेय की ही अनुमति ले, तथा विरोध करने योग्य का ही विरोध और मेरी कही जिस बात का तूँ तात्पर्य न समझे उसको पुनः मुझसे ही पूछे कि भन्ते! इसका क्या अर्थ है? तो तुझसे इस प्रकरण पर संवाद हो सकता है।''

''भन्ते! मैं आपसे अनुज्ञेय की ही अनुमति माँगूँगा तथा विरोध करने योग्य का ही विरोध करूँगा और मैं आपकी जिस बात का तात्पर्य न समझूँगा उसको आपसे ही पूछूँगा कि भन्ते! इसका क्या तात्पर्य है? अतः कृपया इस प्रकरण पर आप मुझसे संवाद अवश्य करें।''

५. "तं किं मञ्ञसि, वप्प, ये कायसमारम्भपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघात-परिळाहा, कायसमारम्भा पटिविरतस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। सो नवं च कम्मं न करोति, पुराणं च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति, सन्दिट्ठिका निज्जरा [R.198] अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूहि। पस्ससि नो त्वं, वप्प, तं ठानं, यतोनिदानं पुरिसं दुक्खवेदनिया आसवा अस्सवेय्युं अभिसम्परायं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

६. "तं किं मञ्ञसि, वप्प, ये वचीसमारम्भपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघात-परिळाहा, वचीसमारम्भा पटिविरतस्स एवसं ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति. सो नवं च कम्मं न करोति, पुराणं च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति। सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूहि। पस्ससि नो त्वं, वप्प तं ठानं, यतोनिदानं पुरिसं दुक्खवेदनिया आसवा अस्सवेय्युं अभिसम्परायं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"। [N.212]

७. "तं किं मञ्ञसि, वप्प, ये मनोसमारम्भपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघात-परिळाहा, मनोसमारम्भा पटिविरतस्स एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। सो नवं च कम्मं न करोति, पुराणं च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति। सन्दिट्ठिका निज्जरा [B.519] अकालिका एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूहि। पस्ससि नो त्वं, वप्प, तं ठानं यतोनिदानं पुरिसं दुक्खवेदनिया आसवा अस्सवेय्युं अभिसम्परायं" ति?

"नो हेतं, भन्ते"।

८. "तं किं मञ्ञसि, वप्प, ये अविज्जापच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघातपरिलाहा, अविज्जाविरागा विज्जुप्पादा एवंस ते आसवा विघातपरिळाहा न होन्ति। सो नवं च कम्मं न करोति, पुराणं च कम्मं फुस्स फुस्स ब्यन्तीकरोति। सन्दिट्ठिका निज्जरा अकालिका

---

५. "तो क्या मानते हो, वप्र! कामक्रिया में व्यापृत रहने वाले को ये आश्रव जैसा विनाश एवं वेदनाएँ उत्पन्न करते हैं वे कायक्रिया से विरत रहने वाले को वैसा विनाश एवं वेदनाएँ उत्पन्न नहीं कर पाते; क्योंकि वह पुद्गल कोई नया कर्म करता नहीं है पुराने कर्मों को प्रज्ञा द्वारा विनष्ट कर चुका होता है। ऐसी स्थिति में, वप्र! क्या तुम इनके कारण ऐसा कोई स्थान देखते हो जहाँ पुरुष दुःखवेदनीय आश्रवों को परलोक में भी भोगने को विवश हो?"

"नहीं, भन्ते!"

६. तो क्या मानते हो, वप्र! अपनी वाक्क्रिया में व्यापृत रहने वाले को ये आश्रव जैसा विनाश ...पूर्ववत्... दुःखवेदनीय आश्रवों को परलोक में भी भोगने को विवश हो?"

"नहीं, भन्ते!"

७. "तो क्या मानते हो, वप्र! मनःक्रिया में व्यापृत रहने वाले को ये आश्रव जैसा विनाश ...पूर्ववत्... दुःखवेदनीय आश्रवों को परलोक में भी भोगने को विवश हो?" "नहीं, भन्ते!"

एहिपस्सिका ओपनेय्यिका पच्चत्तं वेदितब्बा विञ्ञूहि। पस्ससि नो त्वं, वप्प, तं ठानं यतोनिदानं पुरिसं दुक्खवेदनिया आसवा अस्सवेय्युं अभिसम्परायं'' ति?

''नो हेतं, भन्ते'।

९. ''एवं सम्मा विमुत्तचित्तस्स खो, वप्प, भिक्खुनो छ सततविहारा अधिगता होन्ति। सो चक्खुना रूपं दिस्वा नेव सुमनो होति न दुम्मनो; उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। सोतेन सद्दं सुत्वा ....पे०.... घानेन गन्धं घायित्वा ....पे०.... जिह्वाय रसं सायित्वा ....पं०.... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा ....पं०.... मनसा धम्मं विञ्ञाय नेव सुमनो होति न दुम्मनो; उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। सो कायपरियन्तिकं वेदनं वेदियमानो 'कायपरियन्तिकं वेदनं वेदियामी' ति पजानाति; जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदियमानो 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदियामी' ति पजानाति; 'कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदयितानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाति।

१०. ''सेय्यथापि, वप्प, थूणं पटिच्च छाया पञ्ञायति। अथ पुरिसो आगच्छेय्य [R.199] कुदालपिटकं आदाय। सो तं थूणं मूले छिन्देय्य; मूले छिन्दित्वा पलिखणेय्य; [N.213] पलिखणित्वा मूलानि उद्धरेय्य, अन्तमसो उसीरनाळिमत्तानि पि। सो तं थूणं खण्डाखण्डिकं छिन्देय्य। खण्डाखण्डिकं छेत्वा फालेय्य। फालेत्वा सकलिकं सकलिकं करेय्य। सकलिकं सकलिकं कत्वा वातातपे विसोसेय्य। वाततपे विसोसेत्वा अग्गिना

---

८. ''तो क्या मानते हो, वप्र! अविद्या के कारण उत्पन्न हुए ये आश्रव जैसा विनाश ...पूर्ववत्... दुःखवेदनीय आश्रवों को परलोक में भी भोगने को विवश हो?'' ''नहीं, भन्ते!''

९. ''वप्र! इस प्रकार सम्यग्विमुक्त चित्त वाले भिक्षु को ये छह सतत साधनोपाय अधिगत होते हैं। (१) वह चक्षु के रूप (विषय) को देखकर न प्रसन्न होता है, न अप्रसन्न। अपितु वह वहाँ (उभयत्र) उपेक्षापूर्वक स्मृति एवं सम्प्रजन्य के साथ अपनी साधना में ही लगा रहता है। (२) श्रोत्र से शब्द सुन कर...। (३) घ्राण से गन्ध सूँघकर...। (४) जिह्वा से किसी रस को चख कर...। (५) काया से किसी स्प्रष्टव्य विषय का स्पर्श कर...। (६) मन से किसी धर्म को जानकर भी न प्रसन्न होता है, न अप्रसन्न।...। वह अपनी काया तक सीमित वेदना को अनुभव करता हुआ 'काया तक सीमित वेदना का अनुभव कर रहा हूँ'—ऐसा जानता रहता है। तथा वह अपनी जीवनपर्यन्तक वेदना का अनुभव करता हुआ 'जीवनपर्यन्तक वेदना का अनुभव कर रहा हूँ'—ऐसा जानता रहता है। तथा यह भी जानता रहता है कि इस देहपात के बाद, जीवन के समाप्त होने पर, ये सब वेदनाएँ भी यहीं स्वयं शान्त हो जायँगीं।''

१०. ''वप्र! जैसे किसी स्थाणु (काष्ठस्तम्भ) की लघुता या दीर्घता, उच्चता या नीचता की अपेक्षा से ही उसकी छाया की दीर्घता या उच्चता आदि जानी जाती है। वहाँ कोई पुरुष अपने साथ कुदाली (वृक्ष काटने का शस्त्र) तथा छाबड़ी लेकर आवे। वह उस स्थूणा को जड़ से काटकर खोदने लगे, खोदकर उसकी जड़ को भूमि से पृथक् कर उसके उशीर (खस) के समान सूक्ष्म भाग कर उसे खण्ड खण्ड में विभक्त कर दे। विभक्त कर, फाड़कर उसके छोटे छोटे टुकड़े टुकड़े कर

डहेय्य। अग्गिना डहेत्वा मसिं करेय्य। मसिं करित्वा महावाते वा ओफुणेय्य नदिया वा सीघसोताय पवाहेय्य। एवं हिस्स, वप्प, या थूणं पटिच्च छाया सा उच्छिन्नमूला [B.520] तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा।''

''एवमेव खो, वप्प, एवं सम्मा विमुत्तचित्तस्स भिक्खुनो छ सततविहारा अधिगता होन्ति। सो चक्खुना रूपं दिस्वा नेव सुमनो होति न दुमानो; उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। सोतेन सद्दं सुत्वा ...पे०... घानेन गन्धं घायित्वा ...पे०... जिव्हाय रसं सायित्वा ...पे०... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा ...पे०... मनसा धम्मं विञ्ञाय नेव सुमनो होति न दुम्मनो; उपेक्खको विहरति सतो सम्पजानो। सो कायपरियन्तिकं वेदनं वेदियमानो 'कायपरियन्तिकं वेदनं वेदियामी' ति पजानाति; जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदियमानो 'जीवितपरियन्तिकं वेदनं वेदियामी' ति पजानाति; 'कायस्स भेदा उद्धं जीवितपरियादाना इधेव सब्बवेदियतानि अनभिनन्दितानि सीतीभविस्सन्ती' ति पजानाति''।

११. एवं वुत्ते वप्पो सक्को निगण्ठसावको भगवन्तं एतदवोच—''सेय्यथापि, भन्ते, पुरिसो उदयत्थिको अस्सपणियं पोसेय्य। सो उदयं चेव नाधिगच्छेय्य, उत्तरिं च किलमथस्स विघातस्स भागी अस्स। एवमेव खो अहं, भन्ते, उदयत्थिको बाले निगण्ठे पयिरुपासिं। स्वाहं उदयं चेव नाधिगच्छिं, उत्तरिं च किलमथस्स विघातस्स भागी अहोसिं! एसाहं भन्ते, अज्जतग्गे यो मे बालेसु निगण्ठेसु पसादो तं महावाते वा ओफुणामि नदिया वा सीघसोताय पवाहेमि। अभिक्कन्तं, भन्ते ...पे०... उपासकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ [R.200] ●

६. साळ्हसुत्तं : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरतिं महावने कूटागार-

---

वायु एवं धूप में सुखावे। उसे सुखाकर अग्नि से जलाकर भस्म बना दे। भस्म बनाकर उसको वायु में उड़ा दे या किसी तीव्र प्रवाह वाली नदी में बहा दे। इस प्रकार, वप्र! स्थाणु की अपेक्षा से जो ऊँची नीची छाया दिखायी दे रही थी, वह मूलत: समाप्त हो गयी, और ऐसी नष्ट हो गयी कि भविष्य वह कभी उत्पन्न न होगी।

''इसी प्रकार, वप्र! सम्यग्विमुक्तचित्त भिक्षु को ये छह सतत साधनोपाय अधिगत होते हैं। वह चक्षु के रूप देखकर ...पूर्ववत्... इस देहपात के बाद, जीवन की समाप्ति पर, समस्त वेदनाएँ भी स्वयं यहीं शान्त हो जायँगीं।''

११. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर वह निर्ग्रन्थशिष्य वप्र शाक्य भगवान् से यह बोला—''भन्ते! जैसे कोई अपनी आर्थिक समृद्धि चाहनेवाला पुरुष अपना घोड़े खरीदने बेचने का व्यापार बढ़ावे, उसके कारण उसकी आर्थिक समृद्धि होने की अपेक्षा, आर्थिक हानि के कारण उसके क्लेश एवं पश्चात्ताप ही बढ़ने लगें; इसी प्रकार, भन्ते! मैंने अपनी आध्यात्मिक उन्नति की आशा से इन मूर्ख निर्ग्रन्थों की उपासना आरम्भ की थी। परन्तु, भन्ते! इससे मुझको आध्यात्मिक उन्नति तो क्या प्राप्त होनी थी, अपितु इसके बदले में मुझे शारीरिक क्लेश एवं मानसिक पश्चात्ताप भोगना पड़ा! अत:, भन्ते! आज से मैं अपनी निर्ग्रन्थों के प्रति अपनी श्रद्धा को महावात में उड़ा दे

सालायं। अथ खो साळ्हो च लिच्छवि अभयो च लिच्छवी येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; [N.214] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्नो खो साळ्हो लिच्छवि भगवन्तं एतदवोच—

२. "सन्ति, भन्ते, एके समणब्राह्मणा द्वयेन ओघस्स नित्थरणं पञ्ञपेन्ति— सीलविसुद्धिहेतु च तपोजिगुच्छाहेतु च। इध, भन्ते, भगवा किमाहा" ति?

[B.521] ३. "सीलविसुद्धि खो अहं, साळ्ह, अञ्ञतरं सामञ्ञङ्गं ति वदामि। ये ते, साळ्ह, समणब्राह्मणा तपोजिगुच्छावादा तपोजिगुच्छासारा तपोजिगुच्छाअल्लीना विहरन्ति, अभब्बा ते ओघस्स नित्थरणाय। ये पि ते, साळ्ह, समणब्राह्मणा अपरिसुद्धकायसमाचारा अपरिसुद्धवचीसमाचारा अपरिसुद्धमनोसमाचारा अपरिसुद्धाजीवा, अभब्बा ते ञाण- दस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय।

४. "सेय्यथापि, साळ्ह, पुरिसो नदिं तरितुकामो तिण्हं कुठारिं आदाय वनं पविसेय्य। सो तत्थ पस्सेय्य महतिं साललट्ठिं उजुं नवं अकुक्कच्चकजातं। तमेनं मूले छिन्देय्य; मूले छेत्वा अग्गे छिन्देय्य; अग्गे छेत्वा साखापलासं सुविसोधितं विसोधेय्य; साखापलासं सुविसोधितं विसोधेत्वा कुठारीहि तच्छेय्य; कुठारीहि तच्छेत्वा वासीहि तच्छेय्य; वासीहि तच्छेत्वा लेखणिया लिखेय्य; लेखणिया लिखित्वा पासाणगुळेन धोवेय्य;

रहा हूँ, या किसी तीव्र प्रवाह वाली नदी में डुबा दे रहा हूँ। भन्ते! आपने मुझको बहुत उत्तम उपदेश... पूर्ववत्... आज से मुझको जीवनपर्यन्त आप अपना शरणागत उपासक समझे।" ●

६. साढसूत्र : : भवतरण के चार उपाय

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब साढ एवं अभय नामक दो लिच्छवि भगवान् के पास आये। आकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे साढ लिच्छवि ने भगवान् से यह पूछा—

२. "भन्ते! कुछ श्रमण ब्राह्मण इस भवसागर से पार जाने के दो ही उपाय मानते हैं— १. शील की शुद्धि एवं २. शारीरिक तपस्या की निन्दा। इस पर, भन्ते! आपका क्या कहना है?"

३. "साढ! मैं शीलविशुद्धि को अन्य की अपेक्षा श्रामण्यप्राप्ति का श्रेष्ठ अङ्ग मानता हूँ। साढ! जो श्रमण ब्राह्मण केवल शारीरिक तप की निन्दा करने में ही अपनी शक्ति लगाते हैं वे इस भवसागर को पार करने में असमर्थ ही हैं। और जो काय वाक् एवं मन और आजीविका से अपरिशुद्ध हैं, ऐसा होने के कारण तथा उनको ज्ञानदर्शन साक्षात्कार रूप अनुत्तर सम्बोधि प्राप्त होना भी असम्भव ही है।"

४. "साढ! जैसे कोई पुरुष, नदी के पार जाने की इच्छा से, तीक्ष्ण कुठारी लेकर वन में प्रवेश करे। वहाँ उसको कोई साल वृक्ष की शाखा ऐसी दिखायी दे जाय जो सीधी हो, नई हो तथा प्रयोजनसाधक भी हो। इसको वह जड़ से काट ले। पुनः उसके अग्रभागस्थित पत्र आदि को काटकर साफ कर ले। पुनः कुठारी से उसकी छाल (त्वचा) को हटा दे। छाल को हटा कर रन्दे (तक्षणी) से उसको चिकना करे। पुनः पत्थर की गोलियों से रगड़कर उसको धोवे। तदनन्तर

पासाणगुळेन धोवेत्वा नदिं पतारेय्य। तं किं मञ्ञसि, साळ्ह, भब्बो नु खो सो पुरिसो नदिं तरितुं'' ति?

''नो हेतं, भन्ते''। ''तं किस्स हेतु''?

''असु हि, भन्ते, साललट्ठि बहिद्धा सुपरिक्कम्मकता अन्तो अविसुद्धा। [R.201] सस्सेतं पाटिकङ्खं—साललट्ठि संसीदिस्सति, पुरिसो अनयब्यसनं आपज्जिस्सती'' ति।

''एवमेव खो, साळ्ह, ये ते समणब्राह्मणा तपोजिगुच्छावादा तपोजिगुच्छासारा तपोजिगुच्छाअल्लीना विहरन्ति, अभब्बा ते ओघस्स नित्थरणाय। ये पि ते, साळ्ह, समणब्राह्मणा अपरिसुद्धकायसमाचारा अपरिसुद्धवचीसमाचारा अपरिसुद्धाजीवा, अभब्बा ते ञाणदस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय।

''ये च खो ते, साळ्ह, समणब्राह्मणा न तपोजिगुच्छावादा न तपोजिगुच्छासारा न तपोजिगुच्छाअल्लीना विहरन्ति, भब्बा ते ओघस्स नित्थरणाय। ये पि ते, साळ्ह, [N.215] समणब्राह्मणा परिसुद्धकायसमाचारा परिसुद्धवचीसमाचारा परिसुद्धमनोसमाचारा परिसुद्धाजीवा, भब्बा ते ञाणदस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय।

५. ''सेय्यथापि, साळ्ह, पुरिसो नदिं तरितुकामो तिण्हं कुठारिं आदाय वनं पविसेय्य। सो तत्थ पस्सेय्य महतिं साललट्ठिं उजुं नवं अकुक्कुच्चकजातं। तमेनं [B.522] मूले छिन्देय्य; मूले छिन्दित्वा अग्गे छिन्देय्य; अग्गे छिन्दित्वा साखापलासं सुविसोधितं विसोधेय्य; साखापलासं सुविसोधितं विसोधेत्वा कुठारीहि तच्छेत्वा वासीहि तच्छेय्य; वासीहि तच्छेत्वा निखादनं आदाय अन्तो सुविसोधितं विसोधेय्य; अन्तो सुविसोधितं

उसको नदी में डाले। तो क्या मानते हो, साढ, वह पुरुष उस शाल की लकड़ी से नदी को पार कर पायगा?''

''नहीं, भन्ते!'' ''ऐसा क्यों?''

''ऐसा इसलिये, भन्ते! कि वह शालयष्टि बाहर से कितनी भी साफ स्वच्छ या चिकनी कर ली गयी हो उसका अन्तर्भाग दुर्बल ही है। अतः उसके लिये यही सम्भव है कि वह या तो डूब जायगा, या किसी अन्य प्रकार की विपत्ति में फँस जायगा!''

''इसी तरह,साढ! जो श्रमण ब्राह्मण तप की निन्दा में ही लगे रहते हैं, वे इस भवसागर को पार करने में समर्थ नहीं हो सकते। तथा जो श्रमण ब्राह्मण काय वाक् एवं मन की क्रियाओं में परिशुद्ध नहीं हैं उनके लिये भी ज्ञानदर्शनरूप अद्वितीय सम्बोधि प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

''परन्तु, साढ! जो श्रमण ब्राह्मण तप की निन्दा करने में अपना समय नहीं बिताते या तप की निन्दा में ही नहीं लगे रहते, वे इस भवसागर को पार करने में समर्थ हो सकते हैं। तथा जिन श्रमण ब्राह्मणों का कायिक, वाचिक एवं मानसिक कर्म सुपरिशुद्ध है उनको ज्ञानदर्शनरूप अनुत्तर सम्बोधि की प्राप्ति भी सम्भव है।

५. ''साढ! जैसे कोई पुरुष नदी पार करने की इच्छा से, कुल्हाड़ी लेकर वन में जाय। वहाँ

विसोधेत्वा लेखणिया लिखेय्य; लेखणिया लिखित्वा पासाणगुळेन धोवेय्य; पासाणगुळेन धोवेत्वा नावं करेय्य; नावं कत्वा फियारित्तं बन्धेय्य; फियारित्तं बन्धित्वा नदिं पतारेय्य। तं किं मञ्ञसि, साळ्ह, भब्बो नु खो सो पुरिसो नदिं तरितुं'' ति?

''एवं, भन्ते''। ''तं किस्स हेतु''?

''असु हि, भन्ते, साललट्ठि बहिद्धा सुपरिकम्मकता, अन्तो सुविसुद्धा नावा कता फियारित्तबद्धा। तस्सेतं पाटिकङ्खं—'नावा न संसीदिस्सति, पुरिसो सोत्थिना पारं गमिस्सती,'' ति।

''एवमेव खो, साळ्ह, ये ते समणब्राह्मणा न तपोजिगुच्छावादा न तपोजिगुच्छासारा न तपोजिगुच्छाअल्लीना विहन्ति, भब्बा ते ओघस्स नित्थरणाय। ये पि ते, साळ्ह, [R.202] समणब्राह्मणा परिसुद्धकायसमाचारा परिसुद्धवचीसमाचारा परिसुद्धमनोसमाचारा परिसुद्धाजीवा, भब्बा ते ञाणदस्सनाय अनुत्तराय सम्बोधाय। सेय्यथापि, साळ्ह, योधाजीवो बहूनि चे पि कण्डचित्रकानि जानाति; अथ खो सो तीहि ठानेहि राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्खं गच्छति। कतमेहि तीहि? दूरेपाती च, अक्खणवेधी च, महतो च कायस्स पदालेता।

[N.216] ६. ''सेय्यथापि, साळ्ह, योधाजीवी दूरेपाती; एवमेव खो, साळ्ह, अरियसावको सम्मासमाधि होति। सम्मासमाधि, साळ्ह, अरियसावको यं किञ्चि रूपं अतीता-नागचपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे

वह किसी शालवृक्ष की सीधी, नयी एवं निर्दोष, दृढ़ लकड़ी (शाखा) देखें। इसको वह जड़ से काट ले ...पूर्ववत्... वह पुरुष उस शाल की लकड़ी के सहारे नदी पार कर पायगा?''

''अवश्य, भन्ते!'' ''ऐसा क्यों?''

''ऐसा इसलिये भन्ते! वह शालयष्टि बाहर से जितनी साफ, स्वच्छ चिकनी की गयी है, उसी प्रकार उसका अन्तर्भाग भी निर्दोष एवं सुदृढ़ है। अतः वहाँ यही कल्पना की जा सकती है वह शालयष्टि नदी में नहीं डूबेगी तथा वह पुरुष भी उसके सहारे से नदी को निर्विघ्न एवं सकुशल पार कर जायगा।

''इसी तरह, साढ! जो श्रमण ब्राह्मण तप की निन्दा में अपना समय नहीं गँवाते ...पूर्ववत्... उनको अद्वितीय सम्बोधि की प्राप्ति भी सम्भव है।

''साढ! जैसे कोई योद्धा युद्ध की अनेक कलाओं में दक्ष हो, वह इन तीन कारणों से राजा का संरक्षण पाने योग्य है, तथा 'राजा का अङ्ग' कहलाने योग्य है। कौन से तीन? क्योंकि वह १. दूरदृष्टि होता है, २. सफल लक्ष्यवेधक होता है एवं ३. रणक्षेत्र में अनेक सैनिकों को मारने का सामर्थ्य रखता है।

६. साढ! जैसे वह योद्धा दूरदृष्टि होता है, वैसे ही साढ! इस आर्यविनय में आर्यश्रावक सम्यक्समाधिनिष्ठ होता है। साढ! सम्यक्समाधिनिष्ठ रहता हुआ वह आर्यश्रावक लोक में जो कुछ भी अतीत, अनागत, वर्तमान, दूरस्थ या समीपस्थ, स्थूल या सूक्ष्म, हीन या प्रणीत रूप है उसके

सन्तिके वा सब्बं रूपं 'नेतं मम नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं [B.523] सम्मप्पञ्ञाय पस्सति। या काचि वेदना... या काचि सञ्ञा... ये केचि सङ्खारा... यं किञ्चि विञ्ञाणं अतीतानागतपच्चुप्पन्नं अज्झत्तं वा बहिद्धा वा ओळारिकं वा सुखुमं वा हीनं वा पणीतं वा यं दूरे सन्तिके वा, सब्बं विञ्ञाणं 'नेतं मम, नेसोहमस्मि, न मेसो अत्ता' ति एवमेतं यथाभूतं सम्मप्पञ्ञाय पस्सति।

७. "सेय्यथापि, साळ्ह, योधाजीवो अक्खणवेधी; एवमेव खो, साळ्ह, अरियसावको सम्मादिट्ठि होति। सम्मादिट्ठि, साळ्ह अरियसावको 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे० ... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा,' ति यथाभूतं पजानाति।

८. "सेय्यथापि, साळ्ह योधाजीवो महतो कायस्य पदालेता; एवमेव खो साळ्ह, अरियसावको सम्माविमुत्ति होति। सम्माविमुत्ति, साळ्ह, अरियसावको महन्तं अविज्जा-क्खन्ध पदालेती" ति॥ ●

७. मल्लिकादेवीसुत्तं : १. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो मल्लिका देवी येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि । एकमन्तं निसिन्ना खो मल्लिका देवी भगवन्तं एतदवोच—

२. "को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चो मातुगामो दुब्बण्णा [R.203] च होति दुरूपा सुपापिका दस्सनाय; दलिद्दा च होति अप्पस्सका अप्पभोगा अप्पेसक्खा

विषय में वह जानता है कि यह मेरा नहीं है, न मैं यह हूँ, न यह मेरी आत्मा है। इस प्रकार वह इस (रूप) को यथार्थतः जान लेता है, समझ लेता है। लोक में जो कुछ भी वेदना... संज्ञा... संस्कार... विज्ञान... इस प्रकार वह इस विज्ञान को यथार्थतः जान लेता है, समझ लेता है। (क)

७. "साढ! जैसे वह योद्धा सफल (अचूक) लक्ष्यवेधक होता है, उसी प्रकार हमारा यह आर्यश्रावक भी 'सम्यग्दृष्टि' होता है। साढ! यह सम्यग्दृष्टि आर्यश्रावक 'यह दुःख है'—इस आर्यसत्य को भली भाँति जानता है... पूर्ववत्... 'यह दुःखनिरोधगामी प्रतिपदा है'—इस आर्यसत्य को भी भली भाँति जानता है। (ख)

८. "साढ! जैसे वह योद्धा रणक्षेत्र में अनेक प्रतिपक्षी योद्धाओं को मारने में समर्थ होता है, उसी प्रकार हमारा यह आर्यश्रावक भी सम्यग्विमुक्त होता है। यह आर्यश्रावक सम्यग्विमुक्तिसम्पन्न होते हुए अपने विशाल अविद्यास्कन्ध को समूल नष्ट करने में समर्थ होता है॥" (ग) ●

७. मल्लिकादेवीसूत्र : : नारियों के चतुर्विध रूपों में हेतु

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय मल्लिकादेवी जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आयी। आकर, भगवान् को प्रणाम कर वह एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी मल्लिकादेवी ने भगवान् से यह जिज्ञासा की—

२. "भन्ते! (१) इसमें क्या हेतु या क्या कारण है कि यहाँ कोई स्त्री दुर्वर्ण, कुरूप, देखने में

च? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चो मातुगामो दुब्बण्णा च होति दुरूपा [N.217] सुपापिका दस्सनाय; अड्ढा च होति महद्धना महाभोगा महेसक्खा च? को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन मिधेकच्चो मातुगामो अभिरूपा च होति दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता; दलिद्दा च होति अप्पस्सका अप्पभोगा अप्पेसक्खा [B.524] च? को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो, पेन मिधकच्चो मातुगामो अभिरूपा च होति दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता; अड्ढा च होति महद्धना महाभोगा महेसक्खा चा'' ति?

३. ''इध, मल्लिके, एकच्चो मातुगामो कोधना होति उपायासबहुला। अप्पं पि वुत्ता समाना अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सा न दाता होति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं। इस्सामनिका खो पन होति; परलाभसक्कार—गरुकारमाननवन्दनपूजनासु इस्सति उपदुस्सति इस्सं बन्धति। सा चे ततो चुता इत्थत्तं आगच्छति, सा यत्थ यत्थ पच्चाजायति दुब्बण्णा च होति दुरूपा सुपापिका दस्सनाय; दलिद्दा च होति अप्पस्सका अप्पभोगा अप्पेसक्खा च।

४. ''इध पन, मल्लिके, एकच्चो मातुगामो कोधना होति उपायासबुला। अप्पं पि

ही भयदायिनी एवं साथ ही दरिद्र, अल्पधनवाली, अल्पभोगवाली तथा प्रभावहीन लगती है? (२) और, भन्ते! इसमें क्या हेतु या क्या कारण है कि यहाँ कोई स्त्री दुर्वर्ण, कुरूप, देखने में भयदायिनी होते हुए भी विशाल धन सम्पत्ति वाली अत्यधिक ऐश्वर्य भोग वाली तथा समाज में प्रभावशालिनी होती है? (३) और, भन्ते! इसमें क्या हेतु क्या कारण है कि यहाँ कोई स्त्री नयनाभिराम, सुन्दर वर्ण एवं रूप में दर्शनीय हो, जो देखने में सबके लिये प्रीतिवर्धक हो; परन्तु दरिद्र, निर्धन एवं अल्प ऐश्वर्य भोगयुक्त तथा प्रभावहीन होती है? (४) और, भन्ते! इसमें क्या हेतु या कारण है कि यहाँ कोई स्त्री देखने में सर्वथा सुन्दर एवं सबको प्रिय लगने वाली होती है और साथ ही विशाल धन सम्पत्तिवाली तथा परम ऐश्वर्यशालिनी तथा समाज में अत्यधिक प्रभावशालिनी भी होती है?''

३. ''मल्लिके! यहाँ कोई स्त्री प्रायः क्रुद्ध रहती है, चिन्तित रहती है। कुछ भी कहे जाने पर उसकी मन में गाँठ बाँध लेती है, क्रोध एवं द्वेष करती है, आग्रह कर बैठती है, क्रोध द्वेष एवं सन्देह प्रकट करती है। वह किसी श्रमण या ब्राह्मण को न कभी कुछ अन्नदान करती है, न वस्त्रदान या न मालागन्ध, विलेपन, शय्या या ओढ़ने बिछाने के वस्त्र ही देती है। वह ईर्ष्यालुचित्त होती है, दूसरों को प्राप्त हुए लाभसत्कार आदि पर ईर्ष्या करती है, द्वेष करती है, उनके प्रति अपने मन में अशुभ सोचती है। ऐसी स्त्री जब उस काया से च्युत होकर इस भाव (नारीदेह) में आती है तब वह जहाँ जहाँ उत्पन्न होती है वहाँ वहाँ वह दुर्वर्ण, कुरूप, देखने में भी भयानक, साथ ही दरिद्र, निर्धन तथा अल्पभोगैश्वर्य वाली और प्रभावहीन होती है। (१)

४. ''मल्लिके! यहाँ कोई स्त्री प्रायः क्रुद्ध रहती है... पूर्ववत्... सन्देह प्रकट करती है; परन्तु

वुत्ता समाना अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकोरोति। सा दाता होति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्ध-विलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं। अनिस्सामनिका खो पन होति; परलाभसक्कारगरुकार-माननवन्दनपूजनासु न इस्सति न उपदुस्सति न इस्सं बन्धति। सा चे ततो चुता [R.204] इत्थत्तं आगच्छति, सा यत्थ यत्थ पच्चाजायति दुब्बण्णा च होति दुरूपा सुपापिका दस्सनाय; अड्डा च होति महद्धना महाभोगा महेसक्खा च।

५. ''इध पन, मल्लिके, एकच्चो मातुगामो अक्कोधना होति अनुपायासबुला। बहुं पि वुत्ता समाना नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न पतित्थीयति, न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सा न दाता होति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीय्यं। इस्सामनिका खो पन होति; परलाभ- [N.218] सक्कारगरूकारमाननवनदनपूजनासु इस्सति उपदुस्सति इस्सं बन्धति। सा चे ततो [B.525] चुता इत्थत्तं आगच्छति, सा यत्थ यत्थ पच्चाजायति अभिरूपा च होति दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता; दलिद्दा च होति अप्पस्सका अप्पभोगा अप्पेसक्खा च।

६. ''इध पन, मल्लिके, एकच्चो मातुगामो अक्कोधना होति अनुपायासबहुला। बहुं पि वुत्ता समाना नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न पतित्थीयति, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। सा दाता होति समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं। अनिस्सामनिका खो पन होति; परलाभसक्कार-गरुकारमाननवन्दनपूजनासु न इस्सति न उपदुस्सति न इस्सं बन्धति। सा चे ततो चुता इत्थत्तं

वह श्रमण ब्राह्मणों को अन्न, पान, वस्त्र, यान, मालागन्ध विलेपन, शय्या तथा ओढ़ने बिछाने के वस्त्र दान करती है। वह ईर्ष्यालु भी नहीं होती, अतः दूसरों को मिले हुए लाभ सत्कार आदि के प्रति कोई ईर्ष्या या द्वेष मन में नहीं करती। ऐसी स्त्री उस काया से च्युत होकर इस भाव में जहाँ जहाँ उत्पन्न होती है तब वह दुर्वर्ण, कुरूप तथा देखने में भयानक अवश्य लगती है परन्तु साथ ही प्रभूत धन धान्यवाली, भोगैश्वर्यवाली तथा समाज में प्रभावशाली भी होती है। (२)

५. ''मल्लिके! यहाँ कोई स्त्री ऐसी भी होती है जो न किसी पर क्रुद्ध होती है, अचिन्तित रहती है। बहुत कहा सुना जाने पर भी मन में कोई गाँठ नहीं बाँधती, न क्रोध एवं द्वेष करती है, किसी बात का दुराग्रह नहीं करती, न किसी के प्रति अविश्वास ही प्रकट करती है। परन्तु यह किसी श्रमण ब्राह्मण को अन्न पान... ओढ़ने बिछाने के वस्त्र का दान नहीं करती; दूसरों के प्रति ईर्ष्यालु रहते हुए वह उनको प्राप्त लाभ सत्कार आदि से ईर्ष्या करती है। ऐसी स्त्री उस देहपात के बाद जहाँ जहाँ उत्पन्न होती है वहाँ वहाँ वह देखने में तो अवश्य सुरूप एवं नयनाभिराम लगती है, परन्तु धन एवं ऐश्वर्य की दृष्टि से पूर्णतः दरिद्र एवं प्रभावहीन होती है। (३)

६. ''मल्लिके! यहाँ कोई स्त्री ऐसी भी होती है जो न किसी पर क्रुद्ध होती है... पूर्ववत्... अविश्वास ही प्रकट करती है; साथ ही वह श्रमण ब्राह्मणों को अन्न, पान... पूर्ववत्... बिछाने के

आगच्छति, सा यत्थ यत्थ पच्चाजायति अभिरूपा च होति दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता; अड्ढा च होति महद्धना महाभोगा महेसक्खा च।

७. ''अयं खो, मल्लिके, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चो मातुगामो दुब्बण्णा च होति दुरूपा सुपापिका दस्सनाय; दलिद्दा च होति अप्पस्सका अप्पभोगा अप्पेसक्खा च। अयं पन, मल्लिके, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चो मातुगामो दुब्बण्णा चो होति दुरूपा सुपापिका दस्सनाय; अड्ढा च होति महद्धना महाभोगा महेसक्खा च। अयं खो, मल्लिके, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चो मातुगामो अभिरूपा च होति दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता; दलिद्दा च होति अप्पस्सका अप्पभोगा अप्पेसक्खा च। अयं पन, मल्लिके, हेतु अयं पच्चयो, येन मिधेकच्चो मातुगामो अभिरूपा च होति दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता; अड्ढा च होति महद्धना महाभोगा महेसक्खा चा'' ति।

८. ''एवं वुत्ते मल्लिका देवी भगवन्तं एतदवोच—''या नूनाहं भन्ते, अञ्ञं जातिं कोधना अहोसिं उपायासबहुला, अप्पं पि वुत्ता समाना अभिसज्जिं कुप्पिं ब्यापज्जि [B.526,R.205] पतित्थीयिं कोपं च दोसं च च अप्पच्चयं च पात्वाकासिं, साहं भन्ते, एतरहि [N.219] दुब्बण्णा दुरूपा सुपापिका दस्सनाय। या नूनाहं, भन्ते, अञ्ञं जातिं दाता अहोसिं समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीय्यं, साहं भन्ते, एतरहि अड्ढा महद्धना महाभोगा। या नूनाहं, भन्ते, अञ्ञं जातिं अनिस्सामनिका अहोसिं, परलाभसक्कारगरुकारमाननवन्दनपूजनासु न इस्सिं, न उपदुस्सिं न इस्सं बन्धिं, साहं भन्ते, एतरहि महेसक्खा। सन्ति खो पन, भन्ते, इमस्मिं राजकुले खत्तियकञ्ञा पि

वस्त्र भी दान करती है। वह किसी से ईर्ष्या नहीं करती, व दूसरों को प्राप्त हुए लाभ सत्कार से अपना मन मैला करती है। ऐसी स्त्री ...देखने में भी नयनाभिराम लगती है और विपुल धनसम्पत्तिवाली एवं अतुल ऐश्वर्यवाली तथा समाज में प्रभावशाली भी होती है। (४)

७. ''मल्लिके! ये हेतु एवं ये कारण होते हैं, जिनके प्रभाव से यहाँ कोई स्त्री दुर्वर्ण, कुरूप तथा देखने में भी भयानक लगती है... पूर्ववत्... तथा अतिशय प्रभावशालिनी लगती है।''

८. (भगवान् द्वारा) ऐसा कहे जाने पर मल्लिका देवी ने कहा—''तब तो भन्ते! मैं भी किसी अन्य जन्म में क्रोधी एवं व्यर्थ चिन्तामग्न रहती होऊँगी, कुछ कहे जाने पर मन में उसकी गाँठ बाँध लेती होऊँगी, क्रोधी, द्वेषी तथा दुराग्रही रही होऊँगी, दूसरों पर अकारण क्रोध द्वेष एवं सन्देह करती रही होऊँगी; इसी कारण, भन्ते! आज इस जन्म में ऐसी दुर्वर्ण एवं कुरूप हूँ, तथा देखने में भी भयङ्कर लगती हूँ। परन्तु साथ ही, भन्ते! मैं उस जन्म में श्रमण ब्राह्मणों को अन्न पान, वस्त्र, यान, माला गन्धविलेपन, शय्या तथा ओढ़ने बिछाने के वस्त्रों का दान करती रही होऊँगी, उसी दान के प्रभाव से मैं आढ्य एवं अतिशय वैभवशालिनी हूँ। इसी तरह, भन्ते! मैं उस जन्म में ईर्ष्यालु प्रकृति की नहीं रही होऊँगी तथा दूसरों का लाभ सत्कार आदि देखकर मुझे कोई ईर्ष्या नहीं होती होगी या किसी के द्वारा कहीं छोटी बड़ी बात की गाँठ नहीं बाँधती होऊँगी; उसी सद्गुण के पुण्यप्रभाव से

ब्राह्मणकञ्ञापि गहपतिकञ्ञा पि, तासाहं इस्सराधिपच्चं करेमि। एसाहं, भन्ते, अज्जतग्गे अक्कोधना भविस्सामि अनुपायासबहुला, बहुं, पि वुत्ता नाभिसज्जिस्सामि न कुप्पिस्सामि न ब्यापज्जिस्सामि पतित्थीयिस्सामि, कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च न पातुकरिस्सामि; दस्सामि समणस्स वा ब्राह्मणस्स वा अन्नं पानं वत्थं यानं मालागन्धविलेपनं सेय्यावसथपदीपेय्यं। अनिस्सामनिका भविस्सामि, परलाभसक्कारगरुकारमाननवन्दनपूजनासु न इस्सिस्सामि न उपदुस्सिस्सामि न इस्सं बन्धिस्सामि। अभिक्कन्तं, भन्ते ...पे०... उपासिकं मं, भन्ते, भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

८. **अत्तन्तपसुत्तं** : १. ''चत्तारोमे, ¹भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो, परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो नेवत्तन्तपो होति नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न [B.527,R.206] परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। सो नेव अत्तन्तपो न परन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति।

आज मैं इतनी प्रभावशालिनी हूँ। भन्ते! मेरे इस राजकुल में बहुत सी क्षत्रियकन्याएँ, ब्राह्मणकन्याएँ एवं गृहपतिकन्याएँ हैं, जिन पर मेरा ऐश्वर्य एवं आधिपत्य है। आज से, भन्ते! मैं दृढ़ सङ्कल्प करती हूँ कि उनके प्रति न क्रोध करूँगी, न द्वेष। उनके द्वारा बहुत कुछ कहे जाने पर उसको मन में नहीं रखूँगी, न उसके कारण उन पर क्रोध या द्वेष ही करूँगी, न उनकी बातों का कोई अनुचित भाव ही अपने मन में आने दूँगी। आज से सभी श्रमण ब्राह्मणों को अन्न पान, वस्त्र यान, माला, गन्धविलेपन एवं शय्या आदि का दान किया करूँगी। अपने मन से सभी के प्रति ईर्ष्याभाव निकाल दूँगी। दूसरों को मिलने वाले लाभ सत्कार के प्रति मेरा कोई ईर्ष्याभाव न होगा। भन्ते! आपने मुझ को बहुत ही उत्तम एवं उत्कृष्ट उपदेश किया। ...पूर्ववत्... भन्ते! आज से आप मुझे, प्राण रहने तक, अपनी उपासिका समझें॥'' ●

८. **आत्मन्तपसूत्र** : : **चतुर्विध पुद्गल**

१. भिक्षुओ! ये चार प्रकार के पुद्गल लोक में देखे जाते हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल **आत्मन्तप** होता है, जो अपने को ही कष्ट देने वाली साधना (अनुयोग) में ही लगा रहता है। (२) और भिक्षुओ! कोई पुद्गल **परन्तप** होता है, जो दूसरों को कष्ट देनेवाली साधना में ही लगा रहता है। (३) और, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **आत्मन्तप** और **परन्तप**—दोनों ही होता है। (४) तथा, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **न आत्मन्तप** और **न परन्तप**—दोनों ही नहीं होता। वह इस प्रकार की साधना करता हुआ इसी जन्म में शान्त, सुखी, शीतल, सुखानुभवी ब्रह्मभूत आत्मा (स्वयं) के साथ साधना करता है। ...पूर्ववत्...।

२. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अचेलको होति मुत्ताचारो हत्थापलेखनो नएहिभद्दन्तिको नतिट्ठ- [N.220] भद्दन्तिको नाभिहटं न उद्दिस्सकतं न निमन्तनं सादियति। सो न कुम्भिमुखा पटिग्गण्हाति, न कलोपिमुखा पटिग्गण्हाति, न एळकमन्तरं न दण्डमन्तरं न मुसलमन्तरं न द्विन्नं भुञ्जमानानं न गब्भिनिया न पायमानाय न पुरिसन्तरगताय न सङ्कित्तीसु न यत्थ सा उपट्ठितो होति न यत्थ मक्खिका सण्डसण्डचारिनी न मच्छं न मंसं न सुरं न मेरयं थुसोदकं पिवति। सो एकागारिको वा होति एकालोपिको द्वागारिको वा होति द्वालोपिको ...पे०... सत्तागारिको वा होति सत्तालोपिको; एकिस्सा पि दत्तिया यापेति द्वीहि पि दत्तीहि यापेति ...पे०... सत्तहि पि दत्तीहि यापेति; एकाहिकं पि आहारं आहरेति द्वाहिकं पि आहारं आहारेति ...पे०... सत्ताहिकं पि आहारं आहरेति। इति एवरूपं अड्ढमासिकं पि परियाय-भत्तभोजनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। सो साकभक्खो पि होति सामाकभक्खो पि होति नीवारभक्खो पि होति दद्दुलभक्खो पि होति हटभक्खो पि होति कणभक्खो पि होति गोमयभक्खो पि होति; पिञ्ञाकभक्खो पि होति तिणभक्खो पि होति; वनमूलफलाहारो पि यापेति पवत्तफलभोजी। सो साणानि पि धारेति मसाणानि पि धारेति छवदुस्सानि पि धारेति पंसुकूलानि पि धारेति तिरीटानि पि धारेति अजिनं पि धारेति अजिनक्खिपं पि धारेति कुसचीरं पि धारेति वाकचीरं पि धारेति फलकचीरं पि धारेति केसकम्बलं पि धारेति वाळकम्बलं पि धारेति उलूकपक्खं पि धारेति; केसमस्सुलोचको पि होति केसमस्सु-लोचनानुयोगमनुयुत्तो; उब्भट्ठको पि होति आसनप्पटिक्खित्तो; उक्कुटिको पि होति उक्कुटिकप्पधानमनुयुत्तो; कण्टकापस्सयो पि होति, कण्टकापस्सये सेय्यं कप्पेति; [R.207] सायततियकं पि उदकोरोहनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। इति एवरूपं अनेकविहितं [B.528] कायस्स आतापनपरितापनानुयोगमनुयुत्तो विहरति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तन्तपो होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

३. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो ओरब्भिको होति सूकरिको साकुणिको मागविको लुद्दा मच्छघातको चोरो चोरघातको गोघातको बन्धनागारिको, ये वा पनञ्ञे पि केचि कुरूर-कम्मन्ता। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो परन्तपो होति परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

[N.221] ४. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो राजा वा होति

---

*इससे आगे यह समग्र सूत्र **मज्झिमनिकायपालि** के मज्झिमपण्णासक भाग के प्रथमसूत्र (कन्दरकसूत्र) में '**चत्तारो पुग्गला**' शीर्षक से अविकल रूप में (अक्षरश:) व्याख्यात हो चुका है। अत: कृपया इसका हिन्दी अनुवाद **मज्झिमनिकायपालि** में (पृ० ४७५ से ४८३ तक) देखने का कष्ट करें।— सं०*

खत्तियो मुद्धावसित्तो, ब्राह्मणो वा होति महासालो। सो पुरत्थिमेन नगरस्स नवं सन्थागारं कारापेत्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा खराजिनं निवासेत्वा सप्पितेलेन कायं अब्भञ्जित्वा मगविसाणेन पिट्ठिं कण्डुवमानो नवं सन्थागारं पविसति, सद्धिं महेसिया ब्राह्मणेन च पुरोहितेन। सो तत्थ अनन्तरहिताय भूमिया हरितुपलित्ताय सेय्यं कप्पेति। एकिस्साय गविया सरूपवच्छाय यं एकस्मिं थने खीरं होति तेन राजा यापेति; यं दुतियस्मिं थने खीरं होति तेन महेसी यापेति; यं ततियस्मिं थने खीरं होति तेन ब्राह्मणो पुरोहितो योपेति; यं चतुत्थस्मिं थने खीरं होति तेन अग्गिं जुहति; अवसेसेन वच्छको यापेति। सो एवमाह—'एत्तका उसभा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका वच्छतरा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका, वच्छतरियो हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका अजा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका उरब्भा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका अस्सा हञ्ञन्तु यञ्ञत्थाय, एत्तका रुक्खा छिज्जन्तु यूपत्थाय, एत्तका दब्बा लूयन्तु [R.208] बरिहिसत्थाया' ति। ये पिस्स ते होन्ति दासा ति वा पेस्सा कम्मकरा ति वा ते पि दण्डतज्जिता भयतज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोन्ति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो अत्तन्तपो च होति अत्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो परन्तपो च परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तन्तपो होति नात्तपरितापनानुयोगमनु-[B.529] युत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो? सो अनत्तन्तपो अपरन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति। इध, भिक्खवे, तथागतो लोके उप्पज्जति अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं [N.222] परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। तं धम्मं सुणाति गहपति वा गहपतिपुत्तो वा अञ्ञतरस्मिं वा कुले पच्चाजातो। सो तं धम्मं सुत्वा तथागते सद्धं पटिलभति। सो तेन सद्धापटिलाभेन समन्नागतो इति पटिसञ्चिक्खाति—'सम्बाधो घरावासो रजापथो, अब्भोकासो पब्बज्जा; नयिदं सुकरं अगारं अज्झावसता एकन्तपरिपुण्णं एकन्तपरिसुद्धं सङ्खलिखितं ब्रह्मचरियं चरितुं; यन्नूनाहं केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजेय्यं' ति। सो अपरेन समयेन अप्पं वा भोगक्खन्धं पहाय, महन्तं वा भोगक्खन्धं पहायं, अप्पं वा ञातिपरिवट्टं पहाय, महन्तं वा ञातिपरिवट्टं पहाय, केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारम्मा अनगारियं पब्बजति।

६. ''सो एवं पब्बजितो समानो भिक्खूनं सिक्खासजीवसमापन्नो पाणातिपातं पहाय पाणतिपाता पटिविरतो होति निहितदण्डो निहितसत्थो लज्जी दयापन्नो, [R.209] सब्बपाणभूतहितानुकम्पी विहरति। अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो होति दिन्नादायी दिन्नपाटिकङ्खी, अथेनेन सुचिभूतेन अत्तना विहरति। अब्रह्मचरियं पहाय ब्रह्मचारी

होति आराचारी विरतो असद्धम्मा गामधम्मा। मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो होति सच्चवादी सच्चसन्धो थेतो पच्चयिको अविसंवादको लोकस्स। पिसुणं वाचं पिसुणाय [B.530] वाचाय पटिविरतो होति, न इतो सुत्वा अमुत्र अक्खाता इमेसं भेदाय, न अमुत्र वा सुत्वा इमेसं अक्खाता अमूसं भेदाय; इति भिन्नानं वा सन्धाता, सहितानं वा अनुप्पदाता समग्गारामो समग्गरतो समग्गनन्दी समग्गकरणिं वाचं भासिता होति। फरुसं वाचं पहाय फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति; या सा वाचा नेला कण्णसुखा पेमनीया हदयङ्गमा पोरी बहुजनकन्ता बहुजनमनापा तथारूपिं वाचं भासिता होति। सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलापा पटिविरतो होति कालवादी भूतवादी अत्तवादी धम्मवादी विनयवादी; निधानवतिं वाचं भासिता होति कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं।

७. ''सो बीजगामभूतगामसमारम्भा पटिविरतो होति। एकभत्तिको होति रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना। नच्चगीतवादितविसूकदस्सना पटिविरतो होति। मालागन्धविलेप- [N.223] नधारणमण्डनविभूसनट्ठाना पटिविरतो होति। उच्चासयनमहासयना पटिविरतो होति। जातरूपरजतपटिग्गहणा पटिविरतो होति। आमकधञ्ञपटिग्गहणा पटिविरतो होति। आमकमंसपटिग्गहणा पटिविरतो होति। इत्थिकुमारिकपटिग्गहणा पटिविरतो होति। दासि-दासपटिग्गहणा पटिविरतो होति। अजेळकपटिग्गहणा पटिविरतो होति। कुक्कुटसूकर-पटिग्गहणा पटिविरतो होति। हत्थिगवास्सवळवपटिग्गहणा पटिविरतो होति। खेत्तवत्थु-पटिग्गहणा पटिविरतो होति। दूतेय्यपहिनगमनानुयोगा पटिविरतो होति। कयविक्कया पटिविरतो होति। तुलाकूटकंसकूटमानकूटा पटिविरतो होति। उक्कोटनवञ्चननिकतिसाचि-योगा पटिविरतो होति। छेदनवधबन्धनविपरामोसआलोपसहसाकारा पटिविरतो होति।

८. ''सो सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति समादायेव पक्कमति। सेय्यथापि नाम पक्खी सकुणो येन येनेव [R.210] डेति, सपत्तभारो व डेति; एवमेव भिक्खु सन्तुट्ठो होति कायपरिहारिकेन चीवरेन कुच्छिपरिहारिकेन पिण्डपातेन। सो येन येनेव पक्कमति, समादायेव पक्कमति। सो इमिना अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो अज्झत्तं अनवज्जसुखं पटिसंवेदेति।

९. ''सो चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा [B.531] अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति चक्खुन्द्रियं; चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा... घानेन गन्धं घायित्वा... जिव्हाय रसं सायित्वा... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। सो इमिना अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो अज्झत्तं अब्यासेकसुखं पटिसंवेदेति।

१०. ''सो अभिक्कन्ते पटिक्कन्ते सम्पजानकारी होति, आलोकिते [N.224] विलोकिते सम्पजानकारी होति, सम्मिञ्जिते पसारिते सम्पजानकारी होति, सङ्घाटिपत्त-चीवरधारणे सम्पजानकारी होति, असिते पीते खायिते सायिते सम्पजानकारी होति, उच्चारपस्सावकम्मे सम्पजानकारी होति, गते ठिते निसिन्ने सुत्ते जागरिते भासिते तुण्हीभावे सम्पजानकारी होति।

११. ''सो इमिना च अरियेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो, इमाय च अरियाय सन्तुट्ठिया समन्नागतो, इमिना च अरियेन इन्द्रियसंवरेन समन्नागतो, इमिना च अरियेन सतिसम्पजञ्ञेन समन्नागतो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनप्पत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति। ब्यापादपदोसं पहाय अब्यापन्नचित्तो विहरति सब्बपाणभूतहितानुकम्पी, ब्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति। थीनमिद्धं पहाय विगतथीनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, [R.211] थीनमिद्धा चित्तं परिसोधेति। उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति। विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति। सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

१२. ''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे [B.532] मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते पुब्बेनिवासानुस्सतिञाणाय ...पे०... सत्तानं चुतूपपात-ञाणाय ...पे०... आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति।

१३. ''तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, [N.225] भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति; विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो नेवत्तन्तपो होति नात्तपरितापनानुयोगमनुयुत्तो न परन्तपो न परपरितापनानुयोगमनुयुत्तो। सो न अत्तन्तपो न परन्तपो दिट्ठेव धम्मे निच्छातो निब्बुतो सीतीभूतो सुखप्पटिसंवेदी ब्रह्मभूतेन अत्तना विहरति। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥

९. तण्हासुत्तं : १. "भगवा एतदवोच—"तण्हं, वो, भिक्खवे, देसेस्सामि जालिनिं सरितं विसटं विसत्तिकं, याय अयं लोको उद्धस्तो परियोनद्धो तन्ताकुलकजातो [R.212] गुणागुण्ठिकजातो मुञ्जपब्बजभूतो अपायं दुग्गतिं विनिपातं संसारं नातिवत्तति। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. "कतमा च सा, भिक्खवे, तण्हा जालिनी सरिता विसटा विसत्तिका, याय अयं लोको उद्धस्तो परियोनद्धो तन्ताकुलकजातो गुणागुण्ठिकजातो मुञ्जपब्बजभूतो अपायं [B.533] दुग्गतिं विनिपातं संसारं नातिवत्तति? अट्ठारस खो पनिमानि, भिक्खवे, तण्हा-विचरितानि अज्झत्तिकस्स उपादाय, अट्ठारस तण्हाविचरितानि बाहिरस्स उपादाय।

३. "कतमानि अट्ठारस तण्हाविचरितानि अज्झत्तिकस्स उपादाय? अस्मी ति, भिक्खवे, सति इत्थस्मी ति होति, एवंस्मी ति होति, अञ्ञथास्मी ति होति, असस्मी ति होति, सतस्मी ति होति, सं ति होति, इत्थं सं ति होति, एवं सं ति होति, अञ्ञथा सं ति होति, अपिहं सं ति होति, अपिहं इत्थं सं ति होति, अपिहं एवं सं ति होति, अपिहं अञ्ञथा [N.226] सं ति होति, भविस्सं ति होति, इत्थं भविस्सं ति होति, एवं भविस्सं ति होति, अञ्ञथा भविस्सं ति होति। इमानि अट्ठारस तण्हाविचरितानि अज्झत्तिकस्स उपादाय।

"इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चतुर्विध पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं॥"

: :

९. तृष्णासूत्र

तृष्णा के छत्तीस रूप

१. भगवान् ने भिक्षुओं से यह कहा—"भिक्षुओ! मैं तुम्हें तृष्णा के विषय में देशना करूँगा; जो कि जाल जञ्जाल से युक्त है, तीव्र प्रवाहवाली है, सर्वत्र फैली हुई है, आसक्तिमयी है; जिससे यह समस्त संसार छिन्न भिन्न किया जा चुका है, परस्पर आबद्ध है, गुँथा हुआ है, उलझा हुआ है, मूँज एवं वल्वज के समान एक दूसरे से सम्पृक्त है; इसके सम्पर्क में आया प्राणी अपाय या दुर्गति प्राप्त करता है तथा संसार में बँधा ही रह जाता है। उसके विषय में मुझसे सुनो। सुनकर मन में बैठा लो। मैं बता रहा हूँ।"

२. "भिक्षुओ! वह तृष्णा क्या है जो कि ...पूर्ववत्... जिससे प्राणी अपाय एवं दुर्गति प्राप्त करता है, या संसार में बँधा ही रह जाता है उससे मुक्त नहीं हो पाता? भिक्षुओ! यहाँ आध्यात्मिक तृष्णा के अट्ठारह क्रियाकलाप हैं, तथा बाह्य तृष्णा के अट्ठारह।

३. "भिक्षुओ! आध्यात्मिक तृष्णा के अट्ठारह क्रियाकलाप कौन से हैं? भिक्षुओ! 'मैं हूँ'—ऐसी मिथ्यादृष्टि होने पर 'मैं ऐसा हूँ', 'मैं इस प्रकार हूँ', 'मैं अन्य प्रकार से हूँ', 'मैं नहीं हूँ', 'मैं हूँ', 'मैं होता हुआ हूँ', 'मैं ऐसा होता हुआ हूँ', 'मैं इस प्रकार होता हुआ हूँ', 'मैं अन्य प्रकार से होता हुआ हूँ', 'मैं पहले भी था', 'मैं पहले भी ऐसा था', 'मैं पहले भी इस प्रकार था', 'मैं पहले भी दूसरे प्रकार का था', 'मैं भविष्य में भी होऊँगा', 'मैं भविष्य में ऐसा होऊँगा', 'मैं भविष्य में भी इस प्रकार होऊँगा', 'मैं भविष्य में भी दूसरे प्रकार का होऊँगा'—ऐसा होता है। भिक्षुओ! आध्यात्मिक तृष्णा के ये अट्ठारह क्रियाकलाप हैं। (क)

४. ''कतमानि अट्ठारस तण्हाविचरितानि बाहिरस्स उपादाय? इमिनास्मी ति, भिक्खवे, सति इमिना इत्थस्मी ति होति, इमिना एवंस्मी ति होति, इमिना अञ्ञथास्मी ति होति, इमिना असस्मी ति होति, इमिना सतस्मी ति होति, इमिना सं ति होति, इमिना इत्थं सं ति होति, इमिना एवं सं ति होति, इमिना अञ्ञथा सं ति होति, इमिना अपिहं सं ति होति, इमिना अपिहं इत्थं सं ति होति, इमिना अपिहं एवं सं ति होति, इमिना अपिहं अञ्ञथा सं ति होति, इमिना भविस्सं ति होति, इमिना इत्थं भविस्सं ति होति, इमिना एवं भविस्सं ति होति, इमिना अञ्ञथा भविस्सं ति होति। इमानि अट्ठारस तण्हाविचरितानि बाहिरस्स उपादाय।

५. ''इति अट्ठारस तण्हाविचरितानि अज्झत्तिकस्स उपादाय, अट्ठारस तण्हाविचरितानि बाहिरस्स उपादाय। इमानि वुच्चन्ति, भिक्खवे छत्तिंस तण्हाविचरितानि। इति एवरूपानि अतीतानि छत्तिंस तण्हाविचरितानि, अनागतानि छत्तिसं तण्हाविचरितानि, पच्चुप्पन्नानि छत्तिंस तण्हाविचरितानि। एवं अट्ठसतं तण्हाविचरितानि होन्ति। [R.213]

६.''अयं खो सा, भिक्खवे, तण्हा जालिनी सरिता विसटा विसत्तिका, याय [B.534] अयं लोको उद्धस्तो परियोनद्धो तन्ताकुलकजातो गुणागुण्ठिकजातो मुञ्जपब्बभूतो अपायं दुग्गतिं विनिपातं संसारं नातिवत्तती''॥ ●

१०. पेमसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, पेमानि जायन्ति। कतमानि चत्तारि? पेमा पेमं जायति, पेमा दोसो जायति, दोसा पेमं जायति, दोसा दोसो जायति।

---

४. ''भिक्षुओ! बाह्य तृष्णा के अट्ठारह क्रियाकलाप कौन से हैं? भिक्षुओ! 'मैं इससे हूँ'— ऐसी मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होने पर 'मैं इससे ऐसा हूँ', 'मैं इससे इस प्रकार का हूँ', 'मैं इससे अन्य प्रकार का हूँ', 'मैं इससे नहीं हूँ', 'मैं इससे हूँ', 'मैं इससे होता हुआ हूँ', 'मैं इससे ऐसा होता हुआ हूँ', 'मैं इससे इस प्रकार का होता हुआ हूँ', 'मैं इससे अन्य प्रकार का होता हुआ हूँ', 'मैं इससे पहले भी था', 'मैं इससे ऐसा पहले भी था', 'मैं इससे इस प्रकार का पहले भी था', 'मैं इससे पहले दूसरे प्रकार का भी था', 'मैं भविष्य में भी इस से ऐसा होता हुआ होउँगा', 'मैं इससे भविष्य में भी इस प्रकार का होऊँगा', 'मैं इससे भविष्य में भी दूसरे प्रकार का होऊँगा'—ऐसा होता है। इस प्रकार बाह्य तृष्णा के ये अट्ठारह क्रियाकलाप होते हैं। (ख)

५. इस प्रकार, भिक्षुओ! आध्यात्मिक एवं बाह्य तृष्णा के ये पृथक् पृथक् अट्ठारह-अट्ठारह क्रियाकलाप होते हैं। अत: ये सब मिलकर छत्तीस क्रियाकलाप हो जाते हैं। इन छत्तीस तृष्णा क्रियाकलापों का अतीत, अनागत एवं वर्तमान भेद से विस्तार करने पर इसी तृष्णा के ये १०८ भेद बन जाते हैं।

६. ''भिक्षुओ! इस प्रकार इस जाल-जञ्जालयुक्त ... पूर्ववत्... संसार में बँधा ही रह जाता है। यह इससे मुक्त नहीं हो पाता॥'' ●

१०. प्रेमसूत्र : : चतुर्विध प्रेम

१. ''भिक्षुओ! लोक में चार प्रकार से प्रेम (आसक्ति) उत्पन्न होता है। किन चार प्रकार से?

२. "कथं च, भिक्खवे, पेमा पेमं जायति? इध, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलस्स इट्ठो होति कन्तो मनापो। तं परे इट्ठेन कन्तेन मनापेन समुदाचरन्ति। तस्स एवं होति—'यो [N.227] खो म्यायं पुग्गलो इट्ठो कन्तो मनापो, तं परे इट्ठेन कन्तेन मनापेन समुदाचरन्ती' ति। सो तेसु पेमं जनेति। एवं खो, भिक्खवे, पेमा पेमं जायति।

३. "कथं च, भिक्खवे, पेमा दोसा जायति? इध, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलस्स इट्ठो होति कन्तो मनापो। तं परे अनिट्ठेन अकन्तेन अमनापेन समुदाचरन्ति। तस्स एवं होति—'यो खो म्यायं पुग्गलो इट्ठो कन्तो मनापो, तं परे अनिट्ठेन अकन्तेन अमनापेन समुदाचरन्ती' ति। सो तेसु दोसं जनेति। एवं खो, भिक्खवे, पेमा दोसो जायति।

४. "कथं च, भिक्खवे, दोसा पेमं जायति? इध, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलस्स अनिट्ठो होति अकन्तो अमनापो। तं परे अनिट्ठेन अकन्तेन अमनापेन समुदाचरन्ति। तस्स एवं होति—'यो खो म्यायं पुग्गलो अनिट्ठो अकन्तो अमनापो, तं परे अनिट्ठेन अकन्तेन अमनापेन समुदाचरन्ती' ति। सो तेसु पेमं जनेति। एवं खो, भिक्खवे, दोसा पेमं जायति।

५. "कथं च, भिक्खवे, दोसा दोसो जायति? इध, भिक्खवे, पुग्गलो पुग्गलस्स अनिट्ठो होति अकन्तो अमनापो। तं परे इट्ठेन कन्तेन मनापेन समुदाचरन्ति। तस्स एवं [R.214] होति—'यो खो म्यायं पुग्गलो अनिट्ठो अकन्तो अमनापो, तं परे इट्ठेन कन्तेन

---

(१) प्रेम से प्रेम उत्पन्न होता है, (२) प्रेम से द्वेष उत्पन्न होता है, (३) द्वेष से प्रेम उत्पन्न होता है, तथा (४) द्वेष से द्वेष भी उत्पन्न होता है।

२."भिक्षुओ! प्रेम से प्रेम कैसे उत्पन्न होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल का इष्ट, कान्त एवं प्रिय होता है। उसके साथ दूसरे लोग भी इष्ट, कान्त एवं प्रिय समझ कर ही व्यवहार करते हैं। तब उस प्रेमी को यह विचार (अनुभव) होता है कि मेरे इस प्रिय पुद्गल से अन्य लोग भी प्रेम करते हैं। इस कारण वह उन लोगों से भी प्रेम करने लगता है। भिक्षुओ! यह हुआ—**प्रेम से प्रेम** उत्पन्न होना। (१)

३. कैसे, भिक्षुओ! प्रेम से द्वेष उत्पन्न होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल का इष्ट, कान्त एवं प्रिय होता है। परन्तु दूसरे लोग उससे प्रेम-व्यवहार नहीं करते। यह देखकर उसको यह विचार होता है कि ये लोग मेरे इस प्रिय, इष्ट एवं कान्त पुद्गल से द्वेष करते हैं। यह देखकर वह उन लोगों से द्वेष करने लगता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! **प्रेम से द्वेष** भी उत्पन्न होता है। (२)

४. "और, भिक्षुओ! द्वेष से प्रेम कैसे उत्पन्न होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल को अपने लिये अनिष्ट, अकान्त एवं अप्रिय समझता है। कुछ दूसरे लोग भी उस पुद्गल को अपने लिये अनिष्ट, अकान्त एवं अप्रिय ही समझते हैं। उनको देखकर उस प्रथम पुद्गल को यह विचार होता है कि मेरे इस अनिष्ट, अकान्त अप्रिय को ये लोग भी ऐसा ही (अप्रिय) मानते हैं। अत: वह इन लोगों से प्रेम करने लगता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! **द्वेष से प्रेम** होता है।" (३)

५. "और, भिक्षुओ! द्वेष से द्वेष कैसे उत्पन्न होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गलका अनिष्ट, अकान्त एवं अप्रिय होता है; परन्तु कुछ लोगों को वह इष्ट, कान्त एवं प्रिय होता

मनापेन समुदाचरन्ती' ति। सो तेसु दोसं जनेति। एवं खो, भिक्खवे, दोसा दोसो [B.535] जायति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि पेमानि जायन्ति॥

६. ''यस्मिं, भिक्खवे, समये भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति, यं पिस्स पेमा पेमं जायति तं पिस्स तस्मिं समये न होति, यो पिस्स पेमा दोसो जायति सो पिस्स तस्मिं समये न होति, यं पिस्स दोसा पेमं जायति तं पिस्स तस्मिं समये न होति, यो पिस्स दोसा दोसो जायति सो पिस्स तस्मिं समये न होति।

७. ''यस्मिं, भिक्खवे, समये भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा ...पे०... दुतियं झानं ...पे०... ततियं झानं ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति, यं पिस्स पेमा पेमं जायति तं पिस्स तस्मिं समये न होति, यो पिस्स पेमा दोसो जायति सो पिस्स तस्मिं समये न होति, यं पिस्स दोसा पेमं जायति तं पिस्स तस्मिं समये न होति, यो पिस्स दोसा दोसो जायति सो पिस्स तस्मिं समये न होति।

८. ''यस्मिं, भिक्खवे, समये भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतो- [N.228] विमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति, यं पिस्स पेमा पेमं जायति तं पिस्स पहीनं होति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं, यो पिस्स पेमा दोसो जायति सो पिस्स पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो, यं पिस्स दोसा पेमं जायति तं पिस्स पहीनं होति उच्छिन्नमूलं तालावत्थुकतं अनभावङ्कतं आयतिं अनुप्पादधम्मं, यो पिस्स दोसा दोसो जायति सो पिस्स पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं

है। यह देखकर, उसको यह विचार होता है कि मेरे इस अनिष्ट अकान्त एवं अप्रिय पुद्गल से ये लोग इष्ट, कान्त एवं प्रिय व्यवहार करते हैं। अतः वह इन लोगों से भी द्वेष करने लगता है। इस तरह, भिक्षुओ! **द्वेष से द्वेष** उत्पन्न होता है। (४)

इस प्रकार, भिक्षुओ! यह प्रेम चतुर्विध होता है॥

६. ''भिक्षुओ! जिस समय साधक भिक्षु कामभोगों से दूर होकर ...पूर्ववत्... प्रथम ध्यान प्राप्त कर साधना करता है उस समय उसकी प्रेम से प्रेम उत्पन्न होने की स्थिति नहीं होती, न प्रेम से द्वेष या द्वेष से प्रेम, या द्वेष से द्वेष उत्पन्न होने की स्थिति ही होती है।

७. ''भिक्षुओ! जिस समय साधक भिक्षु वितर्क विचारों के शान्त होने से... पूर्ववत्... द्वितीय ध्यान... पूर्ववत्... तृतीय ध्यान... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है उस समय उसकी प्रेम से प्रेम उत्पन्न होने की... पूर्ववत्... द्वेष से द्वेष उत्पन्न होने की स्थिति नहीं होती।

८. ''भिक्षुओ! जिस समय साधक भिक्षु आश्रवों के क्षय से आश्रवरहित चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में यथार्थतः जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधना करता है उस समय उसकी प्रेम से प्रेम, प्रेम से द्वेष, द्वेष से प्रेम या द्वेष से द्वेष वाली ये सभी स्थितियाँ प्रहीण एवं मूलतः विनष्ट हुई रहती हैं, तथा ऐसी अभावग्रस्त हुई रहती हैं कि उनकी भविष्य में उत्पन्न होने की कोई सम्भावना नहीं रहती। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु न किसी में आसक्ति बढ़ाता है, अर्थात् न किसी को

अनुप्पादधम्मो। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु नेव उस्सेनेति न पटिसेनेति न धूपायति न पज्जलति न सम्पज्झायति।

९. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु उस्सेनेति? इध, भिक्खवे, भिक्खु रूपं अत्ततो समनुपस्सति, रूपवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं; वेदनं अत्ततो [B.536,R.215] समनुपस्सति, वेदनावन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा वेदनं, वेदनाय वा अत्तानं; सञ्ञं अत्ततो समनुपस्सति, सञ्ञावन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा सञ्ञं, सञ्ञाय वा अत्तानं; सङ्खारे अत्ततो समनुपस्सति, सङ्खारवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा सङ्खारे, सङ्खारेसु वा अत्तानं; विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, अत्तनि वा विञ्ञाणं, विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु उस्सेनेति।

१०. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु न उस्सेनेति? इध, भिक्खवे, भिक्खु न रूपं अत्ततो समनुपस्सति, न रूपवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा रूपं, रूपस्मिं वा अत्तानं; न वेदनं अत्ततो समनुपस्सति, न वेदनावन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा वेदनं, न वेदनाय वा अत्तानं; न सञ्ञं अत्ततो समनुपस्सति, न सञ्ञावन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा सञ्ञं, न सञ्ञाय वा अत्तानं; न सङ्खारे अत्ततो समनुपस्सति, न सङ्खारवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा सङ्खारे, न सङ्खारेसु वा अत्तानं; न विञ्ञाणं अत्ततो समनुपस्सति, न विञ्ञाणवन्तं वा अत्तानं, न अत्तनि वा विञ्ञाणं, न विञ्ञाणस्मिं वा अत्तानं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु न उस्सेनेति।

[N.229] ११. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु पटिसेनेति? इध, भिक्खवे, भिक्खु अक्कोसन्तं

अपना मानता है, न किसी से विरोध (प्रतिकूलता) करता है, न किसी के प्रति ईष्या द्वेष का धूआँ छोड़ता है और न किसी के प्रति ईर्ष्या द्वेष करता हुआ अन्तर्दाह से जलता है, न इन मानसिक दोषों के कारण बुझा बुझा हुआ सा रहता है।

९. "भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु कौन सा होता है, जो किसी के प्रति अपनी आसक्ति बढ़ाता है या किसी को अपना मानता है? जो भिक्षु रूप को स्वयं से उत्पन्न हुआ समझता है, या स्वयं को रूपवाला समझता है, या अपने में रूप को समझता है, या रूप में स्वयं को समझता है; वेदना... संज्ञा... संस्कार... विज्ञान को अपने से उत्पन्न हुआ समझता है, या स्वयं को विज्ञानवाला समझता है, या स्वयं में विज्ञान को समझता है या विज्ञान में स्वयं को समझता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु ही किसी के प्रति अपनी आसक्ति बढ़ाता है, या किसी को अपना मानता है।

१०. "भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु कौन सा होता है जो किसी के प्रति अपनी आसक्ति नहीं बढ़ाता या किसी को भी अपना नहीं मानता? जो भिक्षु रूप को स्वयं से उत्पन्न नहीं समझता ...पूर्ववत्... ('न' लगाकर); वेदना को... संज्ञा को... संस्कार को... विज्ञान को स्वयं से उत्पन्न नहीं समझता, या स्वयं को विज्ञानवाला नहीं समझता, या विज्ञान को स्वयं में नहीं समझता, या विज्ञान में स्वयं को नहीं समझता। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु किसी के प्रति अपनी आसक्ति नहीं बढ़ाता या किसी को अपना नहीं मानता।

११. "भिक्षुओ! कैसा भिक्षु किसी से अपना विरोध (प्रतिकूलता) दिखाता है? भिक्षुओ!

पच्चक्कोसति, रोसन्तं पटिरोसति, भण्डन्तं पटिभण्डति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु पटिसेनेति।

१२. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु न पटिसेनेति? इध, भिक्खवे, भिक्खु अक्कोसन्तं न पच्चक्कोसति, रोसन्तं न पटिरोसति, भण्डन्तं न पटिभण्डति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु न पटिसेनेति।

१३. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु धूपायति? अस्मी ति, भिक्खवे, सति इत्थस्मी ति होति, एवंस्मी ति होति, अञ्ञथास्मी ति होति, असस्मी ति होति, सतस्मी ति होति, सं ति होति, इत्थं सं ति होति, एवं सं ति होति, अञ्ञथा सं ति होति, अपिहं सं ति होति, अपिहं इत्थं सं ति होति, अपिहं एवं सं ति होति, अपिहं अञ्ञथा सं ति होति, भविस्सं ति होति, इत्थं भविस्सं ति होति, एवं भविस्सं ति होति, अञ्ञथा भविस्सं ति होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु धूपायति।

१४. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु न धूपायति? अस्मी ति, भिक्खवे, [B.537] असति इत्थस्मी ति न होति, एवंस्मी ति न होति, अञ्ञथास्मी ति न होति, असस्मी ति न होति, सतस्मी ति न होति, सं ति न होति, इत्थं सं ति न होति, एवं सं ति न होति, अञ्ञथा सं ति न होति, अपिहं सं ति न होति, अपिहं इत्थं सं ति न होति, अपिहं एवं सं ति [R.216] न होति, अपिहं अञ्ञथा सं ति न होति, भविस्सं ति न होति, इत्थं भविस्सं ति न होति, एवं भविस्सं ति न होति, अञ्ञथा भविस्सं ति न होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु न धूपायति।

जो भिक्षु अपमान करनेवाले का प्रतीकार स्वरूप अपमान करता है, क्रोध करनेवाले से क्रोध करता है, कलह करने वाले से कलह करता है, भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु किसी से अपना विरोध (प्रतिकूलता) प्रकट करनेवाला होता है।

१२. ''भिक्षुओ! कैसा भिक्षु किसी से अपना विरोध (प्रतिकूलता) नहीं दिखाता? भिक्षुओ! जो भिक्षु अपमान करनेवाले का प्रतीकारस्वरूप स्वयं अपमान नहीं करता, क्रोध करने वाले के प्रति अपना क्रोध प्रकट नहीं करता, कलह करनेवाले से कलह नहीं करता, भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु किसी से अपना विरोध न प्रकट करनेवाला कहलाता है।

१३. ''कैसा, भिक्षुओ! भिक्षु दूसरों के प्रति अपने ईर्ष्या द्वेष से धुँधुँआता रहता है? भिक्षुओ! 'मैं हूँ' इस मिथ्यादृष्टि के होने पर किसी पुद्गल को 'मैं ऐसा हूँ' ...पूर्ववत्...[१] 'अन्यथा होऊँगा'—ऐसा विचार होता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु दूसरों के प्रति अपने में उत्पन्न हुए ईर्ष्या द्वेष से धुँधुँआता रहता कहलाता है।

१४. ''भिक्षुओ! कैसा भिक्षु नहीं धुंधुँआता है? भिक्षुओ! 'मैं हूँ'—इस मिथ्यादृष्टि के न रहने पर 'मैं ऐसा नहीं हूँ' ...पूर्ववत्...[२] 'मैं अन्यथा नहीं होऊँगा'—ऐसा विचार होता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु अपने में कोई ईर्ष्या द्वेष न उत्पन्न होने के कारण नहीं धुँधुँआता—ऐसा कहलाता है।

---

१. द्र०—तृष्णासूत्र, इसी वर्ग में, नवम सूत्र।
२. द्र०—तृष्णासूत्र, इसी वर्ग में, नवम सूत्र।

१५. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु पज्जलति? इमिना अस्मी ति, भिक्खवे, सति इमिना इत्थस्मी ति होति, इमिना एवंस्मी ति होति, इमिना अञ्ञथास्मी ति होति, इमिना असस्मी ति होति, इमिना सतस्मी ति होति, इमिना सं ति होति, इमिना इत्थं सं ति होति, इमिना एवं सं ति होति, इमिना अञ्ञथा सं ति होति, इमिना अपिहं सं ति होति, इमिना अपिहं इत्थं सं ति होति, इमिना अपिहं एवं सं ति होति, इमिना अपिहं अञ्ञथा सं ति [N.230] होति, इमिना भविस्सं ति होति, इमिना इत्थं भविस्सं ति होति, इमिना एवं भविस्सं ति होति, इमिना अञ्ञथा भविस्सं ति होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु पज्जलति।

१६. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु न पज्जलति? इमिना अस्मी ति, भिक्खवे, असति इमिना इत्थस्मी ति न होति, इमिना एवंस्मी ति न होति, इमिना अञ्ञथास्मी ति न होति, इमिना असस्मी ति न होति, इमिना सतस्मी ति न होति, इमिना सं ति न होति, इमिना इत्थं सं ति न होति, इमिना एवं सं ति न होति, इमिना अञ्ञथा सं ति न होति, इमिना अपिहं सं ति न होति, इमिना अपिहं इत्थं सं ति न होति, इमिना अपिहं एवं सं ति न होति, इमिना अपिहं अञ्ञथा सं ति न होति, इमिना भविस्सं ति न होति, इमिना इत्थं भविस्सं ति न होति, इमिना एवं भविस्सं ति न होति, इमिना अञ्ञथा भविस्सं ति न होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु न पज्जलति।

[B.538]१७. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सम्पज्झायति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो अस्मिमानो पहीनो न होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पाद-धमो। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सम्पज्झायति।

"कथं च, भिक्खवे, भिक्खु न सम्पज्झायति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो अस्मिमानो

---

१५. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु जलता रहता है? भिक्षुओ! 'इससे मैं हूँ'—इस मिथ्यादृष्टि के होने पर 'इससे मैं ऐसा हूँ' ...पूर्ववत्...[१] 'मैं इससे अन्यथा होऊँगा'—ऐसा विचार होता है। ऐसा विचार करनेवाला ही, भिक्षुओ! जलता रहता हुआ कहलाता है।

१६. "और, भिक्षुओ! कैसे भिक्षु नहीं जलता है? भिक्षुओ! 'इस कारण से मैं हूँ'—ऐसी मिथ्यादृष्टि न उत्पन्न होने पर जिस भिक्षु को 'इससे मैं ऐसा हूँ'... पूर्ववत्...[२] 'इससे मैं अन्यथा होऊँगा'—ऐसा विचार नहीं होता। भिक्षुओ! ऐसा साधक भिक्षु 'नहीं जलता'—ऐसा कहलाता है।

१७. "और, भिक्षुओ! कोई भिक्षु बुझे हुए के समान (साधना में अनुत्साही) रहता है? भिक्षुओ! जिस भिक्षु का लौकिक अहङ्कार प्रहीण नहीं होता, मूलतः विनष्ट नहीं होता, ऐसा अभावग्रस्त नहीं होता कि भविष्य में वह (अहङ्कार) कभी उद्भूत न हो, ऐसा भिक्षु बुझे हुए के समान कहलाता है।

१८. और कैसे भिक्षु न बुझे हुए के समान कहलाता है अर्थात् साधना में सतत उत्साही रहता

---

१. द्र०—तृष्णासूत्र, इसी वर्ग में, नवम सूत्र।
२. द्र०—तृष्णासूत्र, इसी वर्ग में, नवम सूत्र।

पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो, आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु न सम्पज्झायती'' ति॥

महावग्गो वीसतिमो॥ ●

तस्सुद्दानं

सोतानुगतं ठानं, भद्दिय सामुगिय वप्प साळ्हा च।
मल्लिक अत्तन्तापो, तण्हा पेमेन च दसा ते ति॥ ●

चतुत्थो महापण्णासको समत्तो॥

२१. सप्पुरिसवग्गो

पञ्चमो पण्णासको

१. सिक्खापदसुत्तं : १. ''असप्पुरिसं च वो, भिक्खवे, [N.231,B.539,R.217] देसेस्सामि, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरं च; सप्पुरिसं च, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। ''एवं, भन्ते'' ति खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, सुरामेरयमज्जपमाद-ट्ठायी होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसो।

है? भिक्षुओ! जिस भिक्षु का अहङ्कार प्रहीण हो चुका है, मूलतः नष्ट हो चुका है... भविष्य में जिस अहङ्कार के उत्पन्न होने का सम्भावना नहीं है, ऐसा भिक्षु न बुझे हुए के समान अर्थात् साधना में सतत उत्साही कहलाता है॥

महावर्ग बीसवाँ सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. स्रोतोनुगतसूत्र, २. स्थानसूत्र, ३. भद्दियसूत्र, ४. सामुगीयसूत्र, ५. वप्रसूत्र, ६. साढसूत्र, ७. मल्लिकादेवी सूत्र, ८. आत्मन्तपसूत्र, ९. तृष्णासूत्र एवं प्रेमसूत्र॥

चतुर्थ महापञ्चाशत्क सम्पन्न॥

२१. सत्पुरुषवर्ग

पञ्चम पञ्चाशत्क

१. शिक्षापदसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ''भिक्षुओ! मैं तुमको असत्पुरुष के विषय में बताऊँगा, साथ ही उस असत्पुरुष की अपेक्षया जो अधिक असत्पुरुष होता है उसके विषय में भी और सत्पुरुष के विषय में तथा उस सत्पुरुष की अपेक्षया जो अधिक सत्पुरुष होता है—इन सबके विषय में भी बताऊँगा। ध्यानपूर्वक सुनो और इसको मन में बैठा लो।''

''अच्छा, भन्ते!'' कहकर भिक्षुओं ने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाती होति, परं च पाणातिपाते समादपेति; अत्तना च अदिन्नादायी होति, परं च अदिन्नादाने समादपेति; अत्तना च कामेसुमिच्छाचारी होति, परं च कामेसुमिच्छाचारे समादपेति; अत्तना च मुसावादी होति, परं च मुसावादे समादपेति; अत्तना च मुसावादी होति, परं च मुसावादे समादपेति; अत्तना च सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति, परं च सुरामेरयमज्जपमादट्ठाने समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो।

४. ''कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसो।

५. ''कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति, परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति; अत्तना च अदिन्नादाना पटिविरतो होति, परं च अदिन्नादाना वेरमणिया समादपेति; अत्तना च [B.540] कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, परं च कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया समादपेति; अत्तना च मुसावादा पटिविरतो होति, परं च मुसावादा वेरमणिया समादपेति; अत्तना च सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति, परं च सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो'' ति॥ ●

---

२. ''भिक्षुओ! असत्पुरुष कौन होता है? भिक्षुओ! जो पुरुष हिंसा करता है, चौरी करता है, व्यभिचारी होता है, असत्यभाषी होता है, तथा मद्यपायी होता है—ऐसा पुरुष असत्पुरुष (दुर्जन) कहलाता है। (१)

३. ''और, भिक्षुओ! कैसा पुरुष उस असत्पुरुष की अपेक्षा से भी अधिक 'असत्पुरुष' है? जो स्वयं हिंसा करता है तथा दूसरों को भी हिंसा के लिये प्रेरित करता है, जो स्वयं चौरी करता है तथा दूसरों को भी इस दुष्कर्म के लिये प्रेरित करता है, जो स्वयं असत्यभाषी है तथा दूसरों को भी असत्यभाषण के लिये प्रेरित करता है, जो स्वयं व्यभिचारी है तथा दूसरों को भी इस दुष्कर्म के लिये प्रेरित करता है, जो स्वयं मद्यपायी है तथा दूसरों को भी मद्यपान हेतु प्रेरित करता है, ऐसा पुरुष असत्पुरुष की अपेक्षा अधिक असत्पुरुष है। (२)

४. ''और, भिक्षुओ! 'सत्पुरुष' कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई प्राणातिपात (हिंसा) नहीं करता, चौरी नहीं करता, व्यभिचारी नहीं होता, असत्यभाषी भी नहीं होता, और मद्यपायी भी नहीं होता—ऐसा पुरुष 'सत्पुरुष' कहलाता है। (३)

५. ''और, भिक्षुओ! इस सत्पुरुष की अपेक्षा से भी अधिक अच्छा 'सत्पुरुष' कौन होता है? जो स्वयं हिंसा नहीं करता तथा दूसरों को कैसी भी हिंसा के लिये प्रेरित नहीं करता, जो स्वयं चौरी नहीं करता दूसरों को चौरी की प्रेरणा नहीं देता, जो स्वयं व्यभिचारी नहीं होता तथा दूसरों को व्यभिचारहेतु प्रेरित नहीं करता, जो स्वयं असत्यभाषी नहीं होता तथा दूसरों को असत्यभाषण की

२. अस्सद्धसुत्तं : १. ''असप्पुरिसं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, [N.232,R.218] असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरं च; सप्पुरिसं च, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ; भासिस्सामी'' ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

२. ''कतमो च, भिक्खे, असप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अस्सद्धो होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी होति, अप्पस्सुतो होति, कुसीतो होति, मुट्ठस्सति होति, दुप्पञ्ञो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसो।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च अस्सद्धो होति, परं च अस्सद्धिये समादपेति; अत्तना च अहिरिको होति, परं च अहिरिकताय समादपेति; अत्तना च अनोत्तप्पी होति, परं च अनोत्तप्पे समादपेति; अत्तना च अप्पस्सुतो होति, परं च अप्पस्सुते समादपेति; अत्तना च कुसीतो होति, परं च कोसज्जे समादपेति; अत्तना च दुप्पञ्ञो होति, परं च दुप्पञ्ञताय समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो।

४. '' कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो सद्धो होति, हिरिमा होति, ओत्तप्पी होति, बहुस्सुतो होति, आरद्धविरियो होति, सतिमा होति, पञ्ञवा होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसो।

प्रेरणा नहीं देता, जो स्वयं मद्यपान नहीं करता तथा दूसरों को मद्यपान हेतु प्रेरित नहीं करता, भिक्षुओ! ऐसा पुरुष उक्त सत्पुरुष की अपेक्षया अधिक अच्छा 'सत्पुरुष' कहलाता है॥ (४)

२. अश्रद्धसूत्र : : अन्य चतुर्विध पुरुष

१. ''भिक्षुओ! मैं तुमको असत्पुरुष के विषय में बताऊँगा, साथ ही... पूर्ववत्... इसको मन में बैठा लो।... भगवान् ने यह देशना की—

२. ''भिक्षुओ! 'असत्पुरुष' कौन होता है? भिक्षुओ! यहाँ जो रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धा रखता है, निर्लज्ज होता है, कोई भी पाप करने में भय नहीं मानता, अल्पश्रुत (मूर्ख) होता है, आलसी होता है, भ्रष्टस्मृति एवं दुर्बुद्धि होता है—भिक्षुओ! यह 'असत्पुरुष' कहलाता है। (१)

३. ''और, भिक्षुओ! इस असत्पुरुष की अपेक्षा से भी अधिक असत्पुरुष कौन होता है? भिक्षुओ! जो स्वयं रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु होता हुआ दूसरों को भी उनके प्रति अश्रद्धालु रहने के लिये प्रेरित करता है; जो स्वयं निर्लज्ज एवं पापकर्म में भय न माननेवाला होता हुआ दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरित करता है; जो स्वयं अल्पश्रुत होता हुआ दूसरों को भी अल्पश्रवण हेतु प्रेरित करता है; जो स्वयं आलसी होता हुआ दूसरों को भी आलसी रहने के लिये प्रेरित करता है; जो स्वयं भ्रष्टस्मृति (विस्मरणशील) एवं दुर्बुद्धि होता हुआ दूसरों को भी इन दुर्गुणों के लिये प्रेरित करता है—भिक्षुओ! ऐसा पुरुष उस पूर्वोक्त असत्पुरुष की अपेक्षा अधिक असत्पुरुष है। (२)

४. ''और, भिक्षुओ! 'सत्पुरुष' कौन कहलाता है? भिक्षुओ! जो रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु होता है, पापकर्मों में लज्जा एवं भय मानता है; बहुश्रुत होता है, उद्यमी (सतत साधनारत) होता है; स्मृतिमान् एवं प्रज्ञावान् होता है—भिक्षुओ! ऐसा पुरुष 'सत्पुरुष' कहलाता है। (३)

५. ''कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च सद्धासम्पन्नो होति, परं च सद्धासम्पदाय समादपेति; अत्तना च हिरिमा होति, परं [B.541] च हिरिमताय समादपेति; अत्तना च ओत्तप्पी होति, परं च ओत्तप्पे समादपेति; अत्तना च बहुस्सुतो होति, परं च बाहुसच्चे समादपेति; अत्तना च आरद्धविरियो होति, परं च विरियारम्भे समादपेति; अत्तना च उपट्ठितस्सति होति, परं च सतिउपट्ठाने समादपेति; अत्तना च पञ्ञासम्पन्नो होति, परं च पञ्ञासम्पदाय समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो'' ति॥

[N.233] **३. सत्तकम्मसुत्तं :** १. ''असप्पुरिसं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरं च; सप्पुरिसं च, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; [R.219] भासिस्सामी'' ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

२. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, पिसुणवाचो होति, फरुसवाचो होति, सम्फप्पलापी होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसो।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्परिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाती होति, परं च पाणातिपाते समादपेति; अत्तना च अदिन्नादायी होति, परं च अदिन्नादाने समादपेति; अत्तना च कामेसुमिच्छाचारी होति, परं च कामेसुमिच्छाचारे समादपेति; अत्तना च मुसावादी होति, परं च मुसावादे समादपेति; अत्तना च पिसुणवाचो

---

५. ''और, भिक्षुओ! इस सत्पुरुष से भी अच्छा सत्पुरुष कौन कहलाता है? भिक्षुओ! जो पुरुष रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु होता हुआ दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरित करता है; जो स्वयं पापकर्मों में लज्जा एवं भय मानता हुआ दूसरों को भी इनके लिये प्रेरित करता रहता है; जो सद्धर्म का बहु श्रवण करता हुआ दूसरों को एतदर्थ सतत प्रेरणा देता है; जो स्वयं सतत साधनारत रहता हुआ दूसरों को भी एतदर्थ प्रेरित करता है; जो स्वयं उपस्थितस्मृति रहता हुआ दूसरों को भी स्मृतिसम्पन्न होने की प्रेरणा करता है; तथा जो स्वयं प्रज्ञासम्पन्न होता हुआ दूसरों को भी प्रज्ञासम्पत्ति प्राप्तिहेतु प्रेरित करता रहता है—ऐसा सत्पुरुष, भिक्षुओ! उक्त सत्पुरुष की अपेक्षया अधिक अच्छा 'सत्पुरुष' कहलाता है॥ (४)

३. सप्तकर्मसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ''भिक्षुओ! मैं तुमको असत्पुरुष के विषय में बताऊँगा... पूर्ववत्... इसको मन में बैठा लो।... भगवान् ने यह देशना की—

२. ''भिक्षुओ! यहाँ 'असत्पुरुष' कौन कहलाता है? १. जो प्राणातिपाती (हिंसक), २. चौर, ३. व्यभिचारी, ४. असत्यभाषी, ५. चुगलखोर, ६. कठोर बोलने वाला, और ७. प्रलापी (बकवादी) होता है; ऐसा पुरुष 'असत्पुरुष' कहलाता है। (१)

३. और, भिक्षुओ! इस असत्पुरुष से भी बढ़कर 'असत्पुरुष' कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई स्वयं तो प्राणापाती होता ही है, दूसरों को भी प्राणातिपात हेतु प्रेरणा देता है... पूर्ववत्... प्रलाप

होति, परं च पिसुणाय वाचाय समादपेति; अत्तना च फरुसवाचो होति, परं च फरुसाय वाचाय समादपेति; अत्तना च सम्फप्पलापी होति, परं च सम्फप्पलापे समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो।

४. "कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो, होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसो।

५. "कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो? इध भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति, परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति; अत्तना [B.542] च अदिन्नादाना पटिविरतो होति, परं च अदिन्नादाना वेरमणिया समादपेति; अत्तना च कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, परं च कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया समादपेति; अत्तना च मुसावादा पटिविरतो होति, परं च मुसावादा वेरमणिया समादपेति; अत्तना च पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, परं च पिसुणाय वाचाय वेरमणिया समादपेति; अत्तना च [N.234] फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, परं च फरुसाय वाचाय वेरमणिया समादपेति; अत्तना च सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, परं च सम्फप्पलापा वेरमणिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो" ति॥ ●

४. दसकम्मसुत्तं : १. "असप्पुरिसं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरं च; सप्पुरिसं च, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि [R.220] करोथ; भासिस्सामी" ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

२. "कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, पिसुणवाचो होति,

---

की प्रेरणा देता है। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष पूर्वोक्त असत्पुरुष से बढ़कर 'असत्पुरुषतर' होता है। (२)

४. फिर, भिक्षुओ! 'सत्पुरुष' कौन कहलाता है? भिक्षुओ! जो पुरुष प्राणातिपात से विरत... पूर्ववत्... सम्प्रलाप से विरत रहता है भिक्षुओ! वह 'सत्पुरुष' कहलाता है। (३)

५. और, भिक्षुओ! इस सत्पुरुष से भी बढ़कर कौन 'सत्पुरुष' होता है? जो स्वयं प्राणातिपात से विरत रहते हुए दूसरों को भी प्राणातिपात से विरत रहने की प्रेरणा देता है... पूर्ववत्... सम्प्रलाप से विरत रहने की प्रेरणा देता है, भिक्षुओ! ऐसा पुरुष अपेक्षाकृत अधिक उत्तम सत्पुरुष होता है। (४) ●

४. दशकर्मसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्...।

२. "भिक्षुओ! कौन असत्पुरुष होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई प्राणातिपाती होता है, चौर

फरुसवाचो होति, सम्फप्पलापी होति, अभिज्झालु होति, ब्यापन्नचित्तो होति, मिच्छादिट्ठिको होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसो।

३. "कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाती होति, परं च पाणातिपाते समादपेति ...पे०... अत्तना च अभिज्झालु होति, परं च अभिज्झाय समादपेति; अत्तना च ब्यापन्नचित्तो होति, परं च ब्यापादे समादपेति, अत्तना च मिच्छादिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो।

४. "कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... अनभिज्झालु होति, अब्यापन्नचित्तो होति, सम्मादिट्ठिको होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसो।

[B.543] ५. "कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति, परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति ...पे०... अत्तना च अनभिज्झालु होति, परं च अनभिज्झाय समादपेति; अत्तना च अब्यापन्नचित्तो होति, पनं च अब्यापाद् समादपेति; अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो" ति॥ ●

[N.235] **५. अट्ठङ्गिकसुत्तं** : १. "असप्पुरिसं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरं च; सप्पुरिसं च, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

होता है, व्यभिचारी होता है, असत्यभाषी होता है, चुगलखोर होता है, कठोरभाषी होता है, सम्प्रलापी (बकवादी) होता है, लोभी (अभिध्यालु) होता है, मन में द्वेष रखता है, एवं मिथ्यादृष्टि होता है। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष 'असत्पुरुष' कहलाता है। (१)

३. "और, भिक्षुओ! कौन पुरुष इस असत्पुरुष से भी बढ़कर असत्पुरुष होता है? जो स्वयं प्राणातिपाती होता हुआ दूसरों को भी प्राणातिपात हेतु प्रेरणा देता है ...पूर्ववत्...। जो स्वयं मिथ्यादृष्टि होता हुआ दूसरों को भी मिथ्यादृष्टि होने की प्रेरणा देता है। भिक्षुओ! ऐसा पुरुष अपेक्षाकृत अधिक असत्पुरुष है। (२)

४. और, भिक्षुओ! कौन पुरुष सत्पुरुष होता है? भिक्षुओ! जो प्राणातिपात से दूर रहता है ...पूर्ववत्... लोभ नहीं करता, चित्त में किसी के प्रति द्वेष नहीं रखता तथा सम्यग्दृष्टि होता है ऐसा पुरुष ही, भिक्षुओ! 'सत्पुरुष' कहलाता है। (३)

५. और भिक्षुओ! इससे भी बढ़कर अच्छा सत्पुरुष कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! जो स्वयं प्राणातिपात से विरत रहता हुआ दूसरों को भी प्राणातिपात से विरत रहने हेतु प्रेरित करता है ...पूर्ववत्... स्वयं निर्लोभ रहता हुआ, अद्विष्टचित्त तथा सम्यग्दृष्टि रहने हेतु प्रेरित करता रहता है; भिक्षुओ! ऐसा पुरुष पूर्वापेक्षया 'श्रेष्ठ सत्पुरुष' कहलाता है॥" ●

२. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो मिच्छादिट्ठिको होति, मिच्छासङ्कप्पो होति, मिच्छावाचो होति, मिच्छाकम्मन्तो होति, मिच्छाआजीवो होति, मिच्छावायामो होति, मिच्छासति होति, मिच्छासमाधि होति। अयं वुच्चति, [R.221] भिक्खवे, असप्पुरिसो।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च मिच्छादिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति; अत्तना च मिच्छासङ्कप्पो होति, परं च मिच्छासङ्कप्पे समादपेति; अत्तना च मिच्छावाचो होति, परं च मिच्छावाचाय समादपेति; अत्तना च मिच्छाकम्मन्तो होति, परं च मिच्छाकम्मन्ते समादपेति; अत्तना च मिच्छाआजीवो होति, परं च मिच्छाआजीवे समादपेति; अत्तना च मिच्छावायामो होति, परं च मिच्छावायामे समादपेति; अत्तना च मिच्छासति होति, परं च मिच्छासतिया समादपेति; अत्तना च मिच्छासति होति, परं च मिच्छासमाधिम्हि समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो।

४. ''कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसो? इध, भिक्खवे, एकच्चो सम्मादिट्ठिको होति, सम्मासङ्कप्पो होति, सम्मावाचो होति, सम्माकम्मन्तो होति, सम्माआजीवो होति, सम्मावायामो होति, सम्मासति होति, सम्मासमाधि होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसो।

५. ''कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, [B.544] एकच्चो अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति; अत्तना च

---

५. आष्टाङ्गिकसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ''भिक्षुओ! मैं तुमको असत्पुरुष के विषय में ...पूर्ववत्...।'' भगवान् ने यह देशना की—

२. ''भिक्षुओ! असत्पुरुष कौन कहलाता है? भिक्षुओ! जो पुरुष मिथ्यादृष्टि, मिथ्यासङ्कल्प, मिथ्यावाक्, मिथ्याकर्मान्त, मिथ्याआजीव, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति एवं मिथ्यासमाधि होता है, वही 'असत्पुरुष' कहलाता है। (१)

३. इससे भी अपेक्षाकृत अधिक 'असत्पुरुष' कौन होता है? जो स्वयं मिथ्यादृष्टि रहते हुए दूसरों को भी मिथ्यादृष्टि रहने हेतु प्रेरित करता है...पूर्ववत्... जो स्वयं मिथ्यासमाधि रहते हुए दूसरों को भी मिथ्यासमाधि रहने हेतु प्रेरित करता है; भिक्षुओ! यह पुरुष उक्त पुरुष की अपेक्षा अधिक 'असत्पुरुष' कहलाता है। (२)

४. ''फिर, भिक्षुओ! 'सत्पुरुष' कौन कहलाता है? भिक्षुओ! जो सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक्, सम्यक्कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति एवं सम्यक्समाधि वाला पुरुष ही 'सत्पुरुष' कहलाता है। (३)

५. ''फिर, भिक्षुओ! इस सत्पुरुष की अपेक्षा भी अधिक उत्तम सत्पुरुष कौन होता है? भिक्षुओ! जो स्वयं सम्यग्दृष्टि होता हुआ दूसरों को भी सम्यग्दृष्टि रहने की प्रेरणा देता रहता है

सम्मासङ्कप्पो होति, परं सम्मासङ्कप्पे समादपेति; अत्तना च सम्मावाचो होति, परं च सम्मावाचाय समादपेति; अत्तना च सम्मावाचो होति, परं च सम्मावाचाय समादपेति; अत्तना च सम्माकम्मन्तो होति, परं च सम्माकम्मन्ते समादपेति; अत्तना च सम्माआजीवो होति, परं च सम्माआजीवे समादपेति; अत्तना च सम्माआजीवो होति, परं च सम्माआजीवे समादपेति; अत्तना च सम्मावायामो होति, परं च सम्मावायामे समादपेति; अत्तना च [N.236] सम्मासति होति, परं च सम्मासतिया समादपेति; अत्तना च सम्मासमाधि होति, परं च सम्मासमाधिम्हि समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो'' ति॥●

६. दसमग्गसुत्तं : १. ''असप्पुरिसं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरं च; सप्पुरिसं च, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ; भासिस्सामी'' ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

[R.222] २. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो मिच्छादिट्ठिको होति ...पे०... मिच्छाञाणी होति, मिच्छाविमुत्ति होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसो।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च मिच्छादिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति ...पे०... अत्तना च मिच्छाञाणी होति, परं च मिच्छाञाणे समादपेति; अत्तना च मिच्छाविमुत्ति होति, परं च मिच्छाविमुत्तिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, असप्पुरिसेन असप्पुरिसतरो।

४. ''कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो सम्मादिट्ठिको होति ...पे०... सम्माञाणी होति, सम्माविमुत्ति होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसो।

...पूर्ववत्... जो स्वयं सम्यक्समाधि रहता हुआ दूसरों को भी सम्यक्समाधि की प्रेरणा देता है; ऐसा पुरुष, भिक्षुओ! अपेक्षाकृत अधिक उत्तम 'सत्पुरुष' कहलाता है॥'' ●

६. दशमार्गसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्...। भगवान् ने यह देशना की—

२. ''भिक्षुओ! 'असत्पुरुष' कौन कहलाता है ? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष मिथ्यादृष्टि होता है ...पूर्ववत्... मिथ्याज्ञानी होता है, एवं मिथ्याविमुक्ति होता है, ऐसा ही पुरुष 'असत्पुरुष' कहलाता है। (१)

३. ''और, भिक्षुओ! इससे भी निकृष्ट 'असत्पुरुष' कौन कहलाता है ? जो स्वयं मिथ्यादृष्टि होता हुआ दूसरों को भी मिथ्यादृष्टि होने की प्रेरणा देता है ...पूर्ववत्... स्वयं मिथ्याज्ञानी होता है, मिथ्याविमुक्त होता है और दूसरों को भी मिथ्याज्ञानी एवं मिथ्याविमुक्त होने की प्रेरणा देता है ऐसा पुरुष निकृष्टतर 'असत्पुरुष' कहलाता है। (२)

४. ''फिर, भिक्षुओ! 'सत्पुरुष' कौन होता है ? जो सम्यग्दृष्टि ... पूर्ववत्... सम्यग्ज्ञानी एवं सम्यग्विमुक्त होता है वह पुरुष 'सत्पुरुष' कहलाता है। (३)

५. ''कतमो च, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति ...पे०... अत्तना च सम्माञाणी होति, परं च सम्माञाणे समादपेति; अत्तना च सम्माविमुत्ति होति, परं च सम्माविमुत्तिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सप्पुरिसेन सप्पुरिसतरो'' ति॥ ●

७.पठमपापधम्मसुत्तं : १. ''पापं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, पापेन [B.545] पापतरं च; कल्याणं च, कल्याणेन कल्याणतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

२. ''कतमो च, भिक्खवे, पापो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति ...पे०... मिच्छादिट्ठिको होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पापो।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, पापेन पापतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो [N.237] अत्तना च पाणातिपाती होति, परं च पाणातिपाते समादपेति ...पे०... अत्तना च मिच्छा-दिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पापेन पापतरो।

४. ''कतमो च, भिक्खवे, कल्याणो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति, ...पे०... सम्मादिट्ठिको होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कल्याणो। [R.223]

५. ''कतमो च, भिक्खवे, कल्याणेन कल्याणतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति, परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति ...पे०...

---

५. और, भिक्षुओ! इससे भी उत्कृष्टतर 'सत्पुरुष' कौन होता है? जो स्वयं सम्यग्दृष्टि रहरता हुआ दूसरों को भी सम्यग्दृष्टि रहने की प्रेरणा देता है ...पूर्ववत्... जो स्वयं सम्यग्ज्ञानी तथा सम्यग्विमुक्त होता हुआ दूसरों को भी सम्यग्ज्ञानी एवं सम्यग्विमुक्त रहने की प्रेरणा देता है वह पूर्वपुरुष की अपेक्षा उत्कृष्टतर 'सत्पुरुष' कहलाता है॥'' ●

७. प्रथम पापधर्मसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ''भिक्षुओ! अब मैं तुमको पापी पुरुष के विषय में, उससे निकृष्टतर पापी के विषय में तथा कल्याणधर्मा (सत्पुरुष) एवं उससे भी उत्कृष्टतर कल्याणधर्मा पुरुष के लिये बताऊँगा। उसको ध्यानपूर्वक सुनो और अपने मन में बैठा लो। कहता हूँ।'' ...पूर्ववत्... भगवान् ने यह उपदेश किया—

२. ''भिक्षुओ! पापी पुरुष कौन होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई प्राणातिपाती होता है ...पूर्ववत्... मिथ्यादृष्टि होता है, वही 'पापी पुरुष' होता है। (१)

३. ''भिक्षुओ! उससे भी निकृष्टतर पापी कौन होता है? जो स्वयं प्राणातिपाती होता है तथा दूसरों को भी प्राणातिपात की प्रेरणा देता है ...पूर्ववत्... स्वयं मिथ्यादृष्टि होता है तथा दूसरों को भी मिथ्यादृष्टि रहने की प्रेरणा देता है ऐसा पुरुष 'निकृष्टतर पापी' कहलाता है। (२)

४. ''और, भिक्षुओ! कल्याणधर्मा पुरुष कौन होता है? जो प्राणातिपात से सर्वथा दूर रहता है ...पूर्ववत्... सम्यग्दृष्टि होता है वह कल्याणधर्मा पुरुष होता है। (३)

५. ''और, भिक्षुओ! इससे भी उत्कृष्टतर कल्याणधर्मा पुरुष कौन होता है? जो स्वयं

अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कल्याणेन कल्याणतरो'' ति॥ ●

८. दुतियपापधम्मसुत्तं : १. ''पापं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, पापेन पापतरं च; कल्याणं च, कल्याणेन कल्याणतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसिकरोथ; भासिस्सामी'' ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

२. ''कतमो च, भिक्खवे, पापो? इध, भिक्खवे, एकच्चो मिच्छादिट्ठिको होति ...पे०... मिच्छाञाणी होति, मिच्छाविमुत्ति होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पापो।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, पापेन पापतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च मिच्छादिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति ...पे०... अत्तना च मिच्छाञाणी होति, परं च मिच्छाञाणे समादपेति; अत्तना च मिच्छाविमुत्ति होति, परं च मिच्छाविमुत्तिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पापेन पापतरो।

४. ''कतमो च, भिक्खवे, कल्याणो? इध, भिक्खवे, एकच्चो सम्मादिट्ठिको [B.546] होति ...पे०... सम्माञाणी होति, सम्माविमुत्ति होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कल्याणो।

५. ''कतमो च, भिक्खवे, कल्याणेन कल्याणतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो [N.238] अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति ...पे०... अत्तना च सम्माञाणी होति, परं च सम्माञाणे समादपेति; अत्तना च सम्माविमुत्ति होति, परं च सम्माविमुत्तिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कल्याणेन कल्याणतरो'' ति॥ ●

[R.224] **९. ततियपापधम्मसुत्तं** : १. ''पापधम्मं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, पापधम्मेन पापधम्मतरं च; कल्याणधम्मं च, कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरं च। तं सुणाथ, साधुकं सनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

प्राणातिपात से विरत होता है तथा दूसरों को भी इससे विरत रहने की प्रेरणा देता है ... स्वयं सम्यग्दृष्टि होता है तथा दूसरों को भी सम्यग्दृष्टि रहने की प्रेरणा देता है ऐसा पुरुष 'उत्कृष्टतर कल्याणधर्मा सत्पुरुष' कहलाता है॥'' ●

८. द्वितीय पापधर्मसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

[उपर्युक्त प्रथम पापधर्म सूत्र के समान यहाँ भी प्राणातिपात आदि पाँच धर्मों के साथ मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याविमुक्ति इन दो धर्मों को भी मिलाकर, अनुलोम प्रतिलोम क्रम से, चतुर्विध पुरुषों का विस्तार कर लें।] ●

९. तृतीय पापधर्मसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

[उपर्युक्त प्रथम पापधर्मसूत्र के समान यहाँ भी प्राणातिपात आदि पाँच धर्मों से चतुर्विध पुरुषों का विस्तार कर लें।] ●

२. ''कतमो च, भिक्खवे, पापधम्मो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति ...पे०... मिच्छादिट्ठिको होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पापधम्मो।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, पापधम्मेन पापधम्मतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाती होति, परं च पाणातिपाते समादपेति ...पे०... अत्तना च मिच्छादिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पापधम्मेन पापधम्मतरो।

४. ''कतमो च, भिक्खवे, कल्याणधम्मो? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... सम्मादिट्ठिको होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कल्याणधम्मो।

५. ''कतमो च, भिक्खवे, कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति, परं च पाणातिपाता वेरमणिया समादपेति ...पे०... अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो'' ति॥ ●

१०. चतुत्थपापधम्मसुत्तं : १. ''पापधम्मं च वो, भिक्खवे, देसेस्सामि, पापधम्मेन पापधम्मतरं च; कल्याणधम्मं च, कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरं च। तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ; भासिस्सामी'' ति। एवं ...पे०... एतदवोच—

२. ''कतमो च, भिक्खवे, पापधम्मो? इध, भिक्खवे, एकच्चो [N.239,B.547] मिच्छादिट्ठिको होति ...पे०... मिच्छाञाणी होति, मिच्छाविमुत्ति होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पापधम्मो।

३. ''कतमो च, भिक्खवे, पापधम्मेन पापधम्मतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च मिच्छादिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति . .पे०... अत्तना च [R.225] मिच्छाञाणी होति, परं च मिच्छाञाणे समादपेति; अत्तना च मिच्छाविमुत्ति होति, परं च मिच्छाविमुत्तिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, पापधम्मेन पापधम्मतरो।

४. ''कतमो च, भिक्खवे, कल्याणधम्मो? इध, भिक्खवे, एकच्चो सम्मादिट्ठिको होति ...पे०... सम्माञाणी होति, सम्माविमुत्ति होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कल्याणधम्मो।

५. ''कतमो च, भिक्खवे, कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति ...पे०... अत्तना च सम्माञाणी होति, परं च सम्माञाणे समादपेति; अत्तना च सम्माविमुत्ति होति, परं च सम्माविमुत्तिया समादपेति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, कल्याणधम्मेन कल्याणधम्मतरो'' ति॥

सप्पुरिसवग्गो एकवीसतिमो॥ ●

---

१०. चतुर्थ पापधर्मसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

[उपर्युक्त द्वितीय पापधर्मसूत्र के समान यहाँ भी प्राणातिपात आदि पाँच धर्मों के साथ

तस्सुद्दानं

सिक्खापदं च अस्सद्धं, सत्तकम्मं अथो च दसकम्मं।
अट्ठङ्गिकं च दसमग्गं, द्वे पापधम्मा अपरे द्वे ति॥

२२. परिसवग्गो

१. परिसासुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, परिसदूसना। कतमे चत्तारो? भिक्खु, भिक्खवे, दुस्सीलो पापधम्मो परिसदूसनो; भिक्खुनी, भिक्खवे, दुस्सीला पापधम्मा [N.240,B.548] परिसदूसना; उपासको, भिक्खवे, दुस्सीलो पापधम्मो परिसदूसनो; उपासिका, भिक्खवे, दुस्सीला पापधम्मा परिसदूसना। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो परिसदूसना।

२. "चत्तारोमे, भिक्खवे, परिससोभना। कतमे चत्तारो? भिक्खु, भिक्खवे, [R.226] सीलवा कल्याणधम्मो परिससोभनो; भिक्खुनी, भिक्खवे, सीलवती कल्याणधम्मा परिससोभाना; उपासको, भिक्खवे, सीलवा कल्याणधम्मो परिससोभनो; उपासिका, भिक्खवे, सीलवती कल्याणधम्मा परिससोभना। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो परिससोभना" ति॥

मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याविमुक्ति इन दो धर्मों को मिलाकर चतुर्विध पुरुषों का, अनुलोम प्रतिलोम क्रम से, विस्तार कर लें।]

सत्पुरुषवर्ग इक्कीसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. शिक्षापदसूत्र, २. अश्रद्धसूत्र, ३. सप्तकर्मसूत्र, ४. दशकर्मसूत्र, ५. आष्टाङ्गिकमार्गसूत्र, ६. दशमार्गसूत्र, ७-८-९-१०. पापधर्मसूत्र॥

२२. परिषद्वर्ग

१. परिषत्सूत्र : : चतुर्विध परिषद्दूषक एवं परिषदलङ्करण

१. "भिक्षुओ! ये चार परिषद्दूषक (परिषत् को कलङ्कित करने वाले) होते हैं। कौन से चार? वह भिक्षु, वह भिक्षुणी, वह उपासक या वह उपासिका जो दुराचारी तथा पापकर्मकारी होते हैं—इस प्रकार, भिक्षुओ! ये चारों ही अपने अपने वर्ग (परिषत्) को कलङ्कित करने वाले माने जाते हैं। (१)

२. "तथा भिक्षुओ! ये चार अपनी परिषद् के अलङ्करण (शोभावर्धक) माने जाते हैं। कौन से चार? वह भिक्षु, वह भिक्षुणी, वह उपासक, और वह उपासिका जो शीलसम्पन्न हैं, कुशल (कल्याण) कर्म करने वाले हैं—ये अपने अपने वर्ग की शोभा बढ़ाने वाले (परिषत्-शोभन) कहलाते हैं॥"

२. दिट्ठिसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? कायदुच्चरितेन, वचीदुच्चरितेन, मनोदुच्चरितेन, मिच्छादिट्ठिया— इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि चतूहि? कायसुचरितेन, वचीसुचरितेन, मनोसुचरितेन, सम्मादिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

३. अकतञ्ञुतासुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? कायदुच्चरितेन, वचीदुच्चरितेन, मनोदुच्चरितेन, अकतञ्ञुताअकतवेदिता—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि चतूहि? कायसुचरितेन, वचीसुचरितेन, मनोसुचरितेन, कतञ्ञुताकतवेदिता—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

४. पाणातिपातीसुत्तं : १. ...पे०... पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति ...पे०... पाणातिपाता पटिविरतो [N.241,B.549] होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति ... ॥ ●

---

२. दृष्टिसूत्र : : चार धर्मों से युक्त नरकगामी या स्वर्गगामी

१. "भिक्षुओ! इन चार पापधर्मों से युक्त प्राणी देहपात के बाद सीधे अपायभूत नरक में जा गिरता है। कौन से चार? (१) कायिक दुराचार, (२) वाचसिक दुराचार, (३) मानसिक दुराचार एवं (४) मिथ्यादृष्टि—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त प्राणी सीधे नरक में जा गिरता है।

२. "तथा भिक्षुओ! इन चार कुशलधर्मों से युक्त प्राणी देहपात के बाद सीधा स्वर्ग में पहुँचता है। कौन से चार? (१) कायिक सदाचार, (२) वाचसिक सदाचार, (३) मानसिक सदाचार एवं (४) सम्यग्दृष्टि—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त प्राणी, देहपात के बाद, सीधा स्वर्ग में पहुँचता है॥" ●

३. अकृतज्ञतासूत्र : : चतुर्विध पुरुष

[उपर्युक्त दृष्टिसूत्र के समान ही इस सूत्र का भी विस्तार कर लें।] ●

४. प्राणातिपातीसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्... प्राणातिपाती, चौर, व्यभिचारी, असत्यभाषी पुरुष देहपात के बाद सीधे नरक में जा गिरते हैं।

२. तथा प्राणातिपात से विरत, चौरी से विरत, व्यभिचार से विरत, असत्यभाषण से विरत पुरुष, देहपात के बाद, सीधे स्वर्ग में जाते हैं॥" ●

५. पठममग्गसुत्तं : १. ...पे०... मिच्छादिट्ठिको होति, मिच्छासङ्कप्पो होति, [R.227] मिच्छावाचो होति, मिच्छाकम्मन्तो होति ...पे०... सम्मादिट्ठिको होति, सम्मासङ्कप्पो होति, सम्मावाचो होति, सम्माकम्मन्तो होति ... ॥ ●

६. दुतियमग्गसुत्तं : १. ...पे०... मिच्छाआजीवो होति, मिच्छावायामो होति, मिच्छासति होति, मिच्छासमाधि होति ...पे०... सम्माआजीवो होति, सम्मावायामो होति, सम्मासति होति, सम्मासमाधि होति ... ॥ ●

७. पठमवोहारपथसुत्तं : १. ...पे०... अदिट्ठे दिट्ठवादी होति, असुते सुतवादी होति, अमुते मुतवादी होति, अविञ्ञाते विञ्ञातवादी होति ...पे०... अदिट्ठे अदिट्ठवादी होति, असुते असुतवादी होति, अमुते अमुतवादी होति, अविञ्ञाते अविञ्ञातवादी होति ... ॥ ●

८. दुतियवोहारपथसुत्तं : १. ...पे०... दिट्ठे अदिट्ठवादी होति, सुते असुतवादी होति, मुते अमुतवादी होति, विञ्ञाते अविञ्ञातवादी होति ...पे०... दिट्ठे दिट्ठवादी होति, सुते सुतवादी होति, मुते मुतवादी होति, विञ्ञाते विञ्ञातवादी होति ... ॥ ●

९. अहिरिकसुत्तं : १. ...पे०... अस्सद्धो होति, दुस्सीलो होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी होति ...पे०... सद्धो होति, सीलवा होति, हिरिमा होति, ओत्तप्पी होति ... ॥ ●

[N.242,B.550] **१०. दुस्सीलसुत्तं :** १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं

---

५. प्रथम मार्गसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. "...पूर्ववत्... जो पुरुष मिथ्यादृष्टि होता है, मिथ्यासङ्कल्प होता है, मिथ्यावाक् होता है, मिथ्याकर्मान्त होता है वह देहपात के बाद सीधे नरक में जा गिरता है।

२. "तथा जो सम्यग्दृष्टि, सम्यक्सङ्कल्प, सम्यग्वाक् तथा सम्यक्कर्मान्त होता है वह देहपात के बाद सीधा स्वर्ग जा पहुँचता है॥" ●

६. द्वितीय मार्गसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. "...पूर्ववत्... जो पुरुष मिथ्या-आजीव, मिथ्याव्यायाम, मिथ्यास्मृति तथा मिथ्यासमाधि होता है वह ... सीधा नरक में जा गिरता है।

२. "तथा जो सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति एवं सम्यक्समाधि होता है वह देहपात के बाद सीधा स्वर्ग में ही पहुँचता है॥" ●

७. प्रथम व्यवहारपथसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. "...पूर्ववत्... जो पुरुष अदृष्ट को 'देखा है'—ऐसा कहता है, अश्रुत को 'सुना है'—ऐसा कहता है, अस्मृत को 'स्मरण है'—ऐसा कहता है या अविज्ञात को 'जानता हूँ'—ऐसा कहता है वह असत्यभाषी पुरुष देहपातानन्तर सीधा नरक में ही जा गिरता है।

२. "तथा जो पुरुष अदृष्ट को नहीं देखा ही कहता है, अश्रुत को नहीं सुना ही कहता है, अस्मृत को अस्मृत ही कहता है या न जाने (अविज्ञात) को न जाना ही कहता है, ऐसा सत्यवादी पुरुष, देहपातानन्तर, सीधा स्वर्ग में ही पहुँचता है॥" ●

निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? अस्सद्धो होति, दुस्सीलो होति, कुसीतो होति, दुप्पञ्ञो होति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। [R.228] कतमेहि चतूहि? सद्धो होति, सीलवा होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

परिसावग्गो बावीसतिमो॥

तस्सुद्दानं

परिसा दिट्ठि अकतञ्ञुता, पाणातिपाता पि द्वे मग्गा।
द्वे वोहारपथा वुत्ता, अहिरिकं दुप्पञ्ञेन चा ति॥ ●

---

८. द्वितीय व्यवहारपथसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्... तथा जो असत्यवादी पुरुष दृष्ट को भी 'नहीं देखा' ऐसा कहता है, श्रुत को भी 'नहीं सुना'—ऐसा कहता है, स्मृत को भी 'स्मरण नहीं है'—ऐसा कहता है, विज्ञात को 'नहीं जानता'—ऐसा कहता है, वह सीधा नरक में ही जाकर गिरता है।

२. तथा जो दृष्ट को ही 'देखा है'—ऐसा कहता है, श्रुत को ही 'सुना है'—ऐसा कहता है, स्मृत को ही 'स्मरण है'—ऐसा कहता है तथा विज्ञात को ही 'जानता हूँ'—ऐसा कहता है, इस सत्यवादी को देहपातानन्तर सीधे स्वर्ग में ही जाना है, अन्यत्र कहीं नहीं॥'' ●

९. अह्रीकसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्... जो रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु नहीं है, जो दुःशील है, निर्लज्ज है, और कैसा भी पाप करने में कोई भय नहीं मानता—ऐसे पुरुष की देहपातानन्तर, नरक में ही गति है, अन्यत्र नहीं।

२. परन्तु जो श्रद्धालु होता है, शीलवान् होता है, लज्जावान् है, पापकर्मों में भय मानता है—ऐसा पुरुष, देहपातानन्तर, स्वर्ग में ही जाता है॥'' ●

१०. दुःशीलसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ''भिक्षुओ! इन चार पापधर्मों से युक्त पुरुष अन्त में नरक में ही पहुँच जाता है। किन चार से? जो रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु होता है, दुःशील होता है, धर्मकर्म में आलसी होता है तथा दुष्प्रज्ञ होता है—इन चार धर्मों से युक्त पुरुष नरकगामी ही होता है।

२. ''तथा, भिक्षुओ! किन चार धर्मों से युक्त पुरुष स्वर्गगामी होता है? जो श्रद्धालु होता है, सदाचारी होता है, धर्मकर्म में आलस्य नहीं करता तथा जो प्रज्ञावान् होता है—ऐसा पुरुष स्वर्ग में पहुँचता है॥''

परिषद्वर्ग बाईसवाँ सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. परिषत्सूत्र, २. दृष्टिसूत्र, ३. अकृतज्ञतासूत्र, ४. प्राणातिपातीसूत्र, ५. प्रथम मार्गसूत्र, ६. द्वितीय मार्गसूत्र, ७. प्रथम व्यवहारपथसूत्र, ८. द्वितीय व्यवहारपथसूत्र, ९. अह्रीकसूत्र एवं १०. दुःशीलसूत्र॥ ●

२३. दुच्चरितवग्गो

१. दुच्चरितसुत्तं : १. "चत्तारोमे, भिक्खवे, वचीदुच्चरितानि। कतमानि चत्तारि? मुसावादो, पिसुणा वाचा, फरुसा वाचा, सम्फप्पलापो—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि वचीदुच्चरितानि। चत्तारिमानि, भिक्खवे, वचीसुचरितानि। कतमानि चत्तारि? सच्चवाचा, अपिसुणा वाचा, सण्हा वाचा, मन्तवाचा—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि वचीसुचरितानी" ति॥

●

२. दिट्ठिसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो [B.551] असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं; बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि चतूहि? कायदुच्चरितेन, वचीदुच्चरितेन, मनोदुच्चरितेन, [N.243] मिच्छादिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति।

२. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति, अननुवज्जो विञ्ञूनं बहुं च पुञ्ञं पसवति।

---

२३. दुश्चरितवर्ग

१. दुश्चरितसूत्र : : चार वाग्दुश्चरित

१. "भिक्षुओ! वाणी के दुश्चरित चतुर्विध होते हैं। कौन से चार? (१) असत्यभाषण, (२) चुगली करना, (३) कर्कशवाणी एवं (४) सम्प्रलाप—भिक्षुओ! ये **चार वाणी के दुश्चरित** होते हैं। (१)

"भिक्षुओ! वाणी के सुचरित भी चतुर्विध होते हैं। कौन से चार? (१) सत्यभाषण, (२) चुगली न करना, (३) मृदुवाणी एवं (४) विचारपूर्वक बोलना—भिक्षुओ! ये **चार वाणी के सुचरित** होते हैं॥" (२)

●

२. दृष्टिसूत्र : : चार धर्मों से हानि एवं चार से लाभ

१. "भिक्षुओ! चार (अकुशल) धर्मों से युक्त कोई मूर्ख एवं मन्दमति असत्पुरुष स्वयं को क्षत एवं उपहत के समान मानता है। विद्वानों की दृष्टि में भी वह हेय ही समझा जाता है, तथा वह अपने लिये शनैः शनैः पापराशि का सञ्चय करता है। कौन से चार धर्मों से? (१) कायदुराचार, (२) वाग्दुराचार, (३) मनोदुराचार एवं (४) मिथ्यादृष्टि—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त कोई मूर्ख, मन्दमति असत्पुरुष स्वयं को क्षत एवं उपहत के समान मानता है। विद्वानों की दृष्टि में भी वह हेय समझा जाता है तथा स्वयं के लिये शनैः शनैः पापराशि का सञ्चय करता है। (१)

२. "परन्तु, भिक्षुओ! चार (कुशल) धर्मों से युक्त कोई पण्डित एवं दक्ष सत्पुरुष अपने को अक्षत एवं साधना में उत्साही मानता है। विद्वानों की दृष्टि में भी वह प्रशंसनीय होता है तथा अपने लिये विशाल पुण्यराशि का सञ्चय करता है। किन चार धर्मों से? (१) कायसुचरित से,

कतमेहि चतूहि? कायसुरितेन, वचीसुचरितेन, मनोसुचरितेन, सम्मादिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो विञ्ञूनं; बहुं च पुञ्ञं पसवती'' ति॥ ●

३. अकतञ्ञुतासुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो [R.229] अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो च विञ्ञूनं; बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि चतूहि? कायदुच्चरितेन, वचीदुच्चरितेन, मनोदुच्चरितेन, अकतञ्ञुताअकतवेदिता—इमेहि ...पे०... कायसुचरितेन, वचीसुचरितेन, मनोसुचरितेन. कतञ्ञुताकतवेदिता ...पे०...॥ ●

४. पाणातिपातीसुत्तं : १. ...पे०... पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति ...पे०... पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति ...पे०...॥ ●

५. पठममग्गसुत्तं : १. ...पे०... मिच्छादिट्ठिको, होति, मिच्छासङ्कप्पो होति, मिच्छावाचो होति, मिच्छाकम्मन्तो होति ...पे०... सम्मादिट्ठिको होति, सम्मासङ्कप्पो होति, सम्मावाचो होति, सम्माकम्मन्तो होति ...पे०...॥ ●

६. दुतियमग्गसुत्तं : १. ...पे०... मिच्छाआजीवो, होति मिच्छा- [N.244,B.552]

---

(२) वाक्सुचरित से, (३) मनःसुचरित से, एवं (४) सम्यग्दृष्टि से—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पण्डित एवं दक्ष सत्पुरुष स्वयं अक्षत (स्वस्थ) एवं साधना में सावधान समझता है, विद्वानों की दृष्टि में भी वह प्रशस्य माना जाता है, तथा अपने लिये विशाल, पुण्यराशि का सञ्चय करता है॥ ●

३. अकृतज्ञतासूत्र : : चार धर्मों से युक्त पुरुष

१. ''भिक्षुओ! चार (अकुशल) धर्मों से युक्त कोई मूर्ख मन्दमति... पूर्ववत्... कायदुश्चरित से, वागदुश्चरित से, मनोदुश्चरति से तथा अकृतज्ञता-अकृतवेदिता से—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... कायसुचरित से, वाक्सुचरित से, मनःसुचरित से—इन चार धर्मों से युक्त...॥ ●

४. प्राणातिपातीसूत्र : : चार धर्मों से युक्त पुरुष

१. ...पूर्ववत्... प्राणातिपाती (हिंसक) होता है, चौर होता है, व्यभिचारी असत्यभाषी होता है ...पूर्ववत्...। ●

५. प्रथम मार्गसूत्र : : चार धर्मों से युक्त पुरुष

१. ...पूर्ववत्... मिथ्यादृष्टि होता है, मिथ्यासङ्कल्प होता है, मिथ्यावाक् होता है तथा मिथ्याकर्मान्त होता है ...पूर्ववत्... सम्यग्दृष्टि होता है, सम्यक्सङ्कल्प होता है, सम्यग्वाक् होता है तथा सम्यक्कर्मान्त होता है ...पूर्ववत्...॥ ●

६. द्वितीय मार्गसूत्र : : चार धर्मों से युक्त पुरुष

१. ...पूर्ववत्... मिथ्याआजीव होता है, मिथ्याव्यायाम होता है, मिथ्यास्मृति होता है तथा

वायामो होति, मिच्छासति होति, मिच्छासमाधि होति ...पे०... सम्माआजीवो होति, सम्मावायामो होति, सम्मासति होति, सम्मासमाधि होति ...पे०... ॥ ●

७. पठमवोहारपथसुत्तं : १. ...पे०... अदिट्ठे दिट्ठवादी होति, असुते सुतवादी होति, अमुते मुतवादी होति, अविञ्ञाते विञ्ञातवादी होति ...पे०... अदिट्ठे अदिट्ठवादी होति, असुते असुतवादी होति, अमुते अमुतवादी होति, अविञ्ञाते अविञ्ञातवादी होति ...पे०... ॥ ●

८. दुतियवोहारपथसुत्तं : १. ...पे०... दिट्ठे अदिट्ठवादी होति, सुते असुतवादी होति, मुते अमुतवादी होति, विञ्ञाते अविञ्ञातवादी होति ...पे०... दिट्ठे दिट्ठवादी होति, सुते सुतवादी होति, मुते मुतवादी होति, विञ्ञाते विञ्ञातवादी होति ...पे०... ॥ ●

९. अहिरिकसुत्तं : १. ...पे०... अस्सद्धो होति, दुस्सीलो होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी होति ...पे०... सद्धो होति, सीलवा होति, हिरिमा होति, ओत्तप्पी होति ...पे०... ॥ ●

[R.230] **१०. दुप्पञ्ञसुत्तं :** १. ...पे०... अस्सद्धो होति, दुस्सीलो होति, कुसीतो होति, दुप्पञ्ञो होति ...पे०... सद्धो होति, सीलवा होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति—

मिथ्यासमाधि होता है ...पूर्ववत्... सम्यगाजीव होता है, सम्यग्व्यायाम होता है, सम्यक्स्मृति होता है, सम्यक्समाधि होता है ...पूर्ववत्... ॥ ●

७. प्रथम व्यवहारपथसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्... अदृष्ट को 'दृष्ट है'—ऐसा कहता है, अश्रुत को 'सुना है'—ऐसा कहता है, अस्मृत को 'स्मृत है'—ऐसा कहता है, तथा न जाने हुए को 'जानता हूँ'—ऐसा कहता है ...पूर्ववत्... अदृष्ट को 'अदृष्ट है'—ऐसा कहता है, अश्रुत के लिये 'सुना नहीं है'—ऐसा कहता है, अस्मृत को 'स्मरण नहीं है'—ऐसा कहता है तथा अविज्ञात को 'ज्ञात नहीं है'—ऐसा ही कहता है ...पूर्ववत्... ॥ ●

८. द्वितीय व्यवहारपथसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्... दृष्ट को 'अदृष्ट है'... श्रुत को 'अश्रुत है'... स्मृत को 'अस्मृत है'... विज्ञात को 'अविज्ञात है'—ऐसा कहता है ...पूर्ववत्... दृष्ट को ही दृष्ट कहता है, श्रुत को ही श्रुत कहता है, स्मृत को ही स्मृत कहता है, विज्ञात को ही विज्ञात कहता है...पूर्ववत्... ॥ ●

९. अह्रीकसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्... रत्नत्रय के प्रति अश्रद्धालु होता है, दुराचारी होता है, पाप करने में निर्लज्ज होता है, अकुशल कर्मों में कोई भय नहीं मानता ...पूर्ववत्... श्रद्धालु होता है, सदाचारी होता है, पापकर्म में लज्जालु होता है, तथा अकुशल कर्म करने में भय मानता है ...पूर्ववत्... ॥ ●

१०. दुष्प्रज्ञसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. ...पूर्ववत्... अश्रद्धालु होता है, दुराचारी होता है, आलसी होता है, दुष्प्रज्ञ होता है... श्रद्धालु होता है, शीलवान् होता है, साधना में उद्योगरत रहता है तथा प्रज्ञावान् होता है—भिक्षुओ!

इमेहि, खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती'' ति॥

११. कविसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, कवी। कतमे चत्तारो? चिन्ताकवि, सुतकवि, अत्थकवि. पटिभानकवि—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो कवी'' [N.245,B.553] ति॥

दुच्चरितवग्गो तेवीसतिमो॥

तस्सुद्दानं

दुच्चरितं दिट्ठि अकतञ्ञुता, पाणातिपाता पि द्वे मग्गा।
द्वे वोहारपथा वुत्ता, अहिरिकं दुप्पञ्ञकविना चा ति॥

२४. कम्मवग्गो

१. सङ्खित्तसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानि। कतमानि चत्तारि? अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं

इन चार धर्मों से युक्त पण्डित एवं दक्ष पुरुष स्वयं को साधना में उत्साही अनुभव करता है, विद्वज्जन भी उसकी प्रशंसा करते हैं तथा अपने लिये बहुविध पुण्यराशि सञ्चित करता है॥''

११. कविसूत्र : : चतुर्विध कवि

१. ''भिक्षुओ! कवि (काव्यनिर्माता) चतुर्विध होते हैं। कौन से चार? १. चिन्ताकवि, २. श्रुतकवि, ३. अर्थकवि एवं ४. प्रतिभानकवि—भिक्षुओ! ये चार कवि होते हैं॥''

दुश्चरित वर्ग तेईसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (के व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. दुश्चरितसूत्र, २. दृष्टिसूत्र, ३. अकृतज्ञतासूत्र, ४. प्राणातिपातीसूत्र, ५. प्रथम मार्गसूत्र, ६. द्वितीय मार्गसूत्र, ७. प्रथम व्यवहारपथसूत्र, ८. द्वितीय व्यवहारपथसूत्र, ९. अह्नीकसूत्र, १०. दुष्प्रज्ञसूत्र, एवं ११. कविसूत्र॥

२४. कर्मवर्ग

१. संक्षिप्तसूत्र : : चतुर्विध पुरुष

१. भिक्षुओ! मैंने इन चार कर्मों का स्वयं अभिज्ञान एवं साक्षात्कार कर उपदेश किया है। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! एक कर्म होता है जो स्वयं कृष्ण (पापमय) एवं कृष्ण (पापमय) फल ही देने वाला होता है। (२) भिक्षुओ! एक कर्म होता है जो स्वयं शुक्ल (पुण्यमय) एवं शुक्ल

कण्हसुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी'' ति॥

२. वित्थारसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानि। कतमानि चत्तारि? अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं [R.231] कम्मक्खयाय संवत्तति।

२. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं [N.246,B.554] मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा सब्याबज्झं लोकं उपपज्जति। तमेनं सब्याबज्झं लोकं उपपन्नं समानं सब्याबज्झा फस्सा फुसन्ति।

(पुण्यमय) फल ही देनेवाला होता है। (३) भिक्षुओ! एक कर्म होता है जो स्वयं कृष्णशुक्ल होता हुआ कृष्णशुक्ल (मिश्रित पाप-पुण्यमय) ही फल देनेवाला होता है। तथा (४) भिक्षुओ! एक कर्म होता है जो न कृष्ण (अपापमय) और न शुक्ल (अपुण्यमय) होता है एवं जिसका फल भी न कृष्ण-न शुक्ल ही होता है। यह चतुर्थ प्रकार का कर्म ही कर्मक्षय में सहायक होता है। भिक्षुओ! मैंने ये चार कर्म स्वयं अभिज्ञात एवं साक्षात् कर इनका जनता को उपदेश किया है॥''

२. विस्तारसूत्र : : चतुर्विध कर्म

१. भिक्षुओ! मैंने इन चार कर्मों को स्वयं जानकर साक्षात्कार कर उपदेश किया है। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई कर्म कृष्ण (पापमय) होता है तथा उसका फल भी पापमय ही होता है। (२) भिक्षुओ! यहाँ कोई कर्म शुक्ल (पुण्य=शुभ) होता है तथा उसका फल भी शुक्ल ही होता है। (३) भिक्षुओ! यहाँ कोई कर्म कृष्ण शुक्ल (पाप पुण्य) मिश्रित होता है तथा वैसा ही फल देने वाला होता है। और (४) एक कर्म वह होता है जिसे न कृष्ण कहा जा सकता है; न शुक्ल, इसके फल की भी यही स्थिति है। यह चतुर्थ प्रकार का कर्म ही कर्मक्षय में सहायक होता है।

कृष्ण कर्म : २. भिक्षुओ! वह कौन सा कर्म है जो कृष्ण एवं कृष्णविपाक है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक अपने शरीर की समस्त चेष्टाएँ (क्रियाएँ) दूसरों को कष्ट देने के लिये करता रहता है, अपनी वाणी की समस्त चेष्टाएँ... मन की समस्त चेष्टाएँ दूसरों को कष्ट देने के लिये करता रहता है। वह दूसरों को ऐसी पीड़ादायक कायिक, वाचिक, मानसिक चेष्टाएँ करने के कारण, अन्त में पीड़ादायक लोक में ही उत्पन्न होता है। इस पीड़ादायक लोक में उत्पन्न हुए उसको अतिशय कष्टकारक (शूल, भाला, तप्त लौह आदि से) दुःख भोगना पड़ता है। वह इन नारकीय स्पर्शों से वैसा ही कष्ट अनुभव करता है जैसा कि उस नरक में गिरे हुए दूसरे पापी प्राणी

सो सब्याबज्झेहि फस्सेहि फुट्ठो समानो सब्याबज्झं वेदनं वेदयति एकन्तदुक्खं, सेय्यथापि सत्ता नेरयिका। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं **कण्हं कण्हविपाकं**।

३. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो अब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, अब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा अब्याबज्झं लोकं उपपज्जति। तमेनं अब्याबज्झं लोकं उपपन्नं समानं अब्याबज्झा फस्सा फुसन्ति। सो अब्याबज्झेहि फस्सेहि फुट्ठो समानो अब्याबज्झं वेदनं वेदयति एकन्तसुखं, सेय्यथापि देवा सुभकिण्हा। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं **सुक्कं सुक्कविपाकं**।

४. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि लोकं उपपज्जति। तमेनं सब्याबज्झं [R.232] पि अब्याबज्झं पि लोकं उपपन्नं समानं सब्याबज्झा पि अब्याबज्झा पि फस्सा फुसन्ति।

करते हैं। इस प्रकार, भिक्षुओ! वैसे कर्म से वैसे ही फल की उत्पत्ति होगी; क्योंकि जो किया जाता है उसका वैसा ही फल मिलता है। भिक्षुओ! ऐसा पापमय कर्म कृष्ण एवं कृष्णविपाक कहलाता है। (१)

शुक्लकर्म : ३. भिक्षुओ! कौन कर्म शुक्ल एवं शुक्लविपाक (शुभ फलदायक) है? यहाँ कोई सत्पुरुष दूसरों को सुखदायक शारीरिक... वाचसिक... मानसिक चेष्टाएँ करता रहता है। वह इन दूसरों को सुखदायक शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक क्रियाएँ करने के कारण, इस देहपात के बाद, सुखमय लोक में उत्पन्न होता है। उसे इस सुखमय लोक में अत्यधिक सुखद स्पर्श अनुभव हो लगता है। वह इन सुखमय स्पर्शों से शुभकृत्स्न देवों के समान अतिशय सुखानुभव करता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—जैसे को तैसा मिलना। जो किया जाता है उसी के फलस्वरूप अन्य योनि में जन्म होता है। तथा वहाँ उत्पन्न होकर तदनुरूप ही फल भोगता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—शुक्ल एवं शुक्लविपाक कर्म। (२)

कृष्ण शुक्ल (पापपुण्यमय) **मिश्रित कर्म :** ४. ''और, भिक्षुओ! कौन सा कर्म कृष्ण-शुक्ल एवं कृष्णशुक्ल फलदायक होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुरुष दूसरों को दुःख देने के लिये भी तथा सुख देने के लिये भी अपनी शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक चेष्टाएँ करता रहता है। वह दूसरों के लिये ऐसी क्रियाएँ करने के कारण, मरणानन्तर, सुखदुःखमिश्रितफलदायक लोक में उत्पन्न होता है। ऐसे सुखदुःखमिश्रित लोक में उत्पन्न वह वहाँ सुखदुःखमिश्रित फल का ही अनुभव करता है; जैसे कि मनुष्ययोनि, देवयोनि या नरक में उत्पन्न प्राणी। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—

सो सब्याबज्झेहि पि अब्याबज्झेहि पि फस्सेहि फुट्ठो समानो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वेदनं वेदयति वोकिण्णसुखदुक्खं, सेय्यथापि मनुस्सा एकच्चे च देवा एकच्चे च विनिपातिका। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं **कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं**।

[N.247] ५. "कतमं च, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति? तत्र, भिक्खवे, यमिदं कम्मं कण्हं कण्हविपाकं तस्स पहानाय या चेतना, यमिदं कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं तस्स पहानाय या चेतना, यमिदं कम्मं कण्ह-[B.555] सुक्कं कण्हसुक्कविपाकं तस्स पहानाय या चेतना—इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं **अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं** कम्मक्खयाय संवत्तति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी'' ति॥ ●

३. सोणकायनसुत्तं : १. अथ खो सिखामोग्गल्लानो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सिखामोग्गल्लानो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—

२. "पुरिमानि, भो गोतम, दिवसानि पुरिमतरानि सोणकायनो माणवो येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं एतदवोच—'समणो गोतमो सब्बकम्मानं अकिरियं पञ्ञापेति, सब्बकम्मानं खो पन अकिरियं पञ्ञापेन्तो उच्छेदं आह लोकस्स—कम्मसच्चायं, भो, लोको कम्मसमारम्भट्ठायी''' ति।

वैसे से वैसे की ही उत्पत्ति; क्योंकि जो किया जाता है उसका फल भोगना ही पड़ता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—कृष्ण शुक्लमिश्रित कर्म एवं उसका वैसा ही फल। (३)

न कृष्ण न शुक्ल कर्म : ५. "और फिर, भिक्षुओ! वह कर्म कौन सा है जिसकी गणना न कृष्ण कर्म में हो, न शुक्ल कर्म में हो। एवं उसका फल भी ऐसा ही हो तथा जो प्राणियों के कर्मक्षय के लिये भी उपयोगी हो? भिक्षुओ! पूर्वोक्त कृष्ण कर्म एवं उसके फल के नाशहेतु किया गया मानसिक उद्योग, तथा शुक्ल कर्म एवं उसके फल के नाशहेतु किया गया मानसिक उद्योग ही 'न कृष्ण न शुक्ल कर्म' एवं 'न कृष्ण न शुक्ल फलविपाक' कहलाता है। साधक का ऐसा मानसिक उद्योग ही उसके कर्मक्षय के लिये भी उपयोगी होता है। (४)

भिक्षुओ! ये चार कर्म मैंने स्वयं जानकर साक्षात्कार कर जनता को उपदिष्ट किये हैं॥" ●

३. सोणकायनसूत्र : : **चतुर्विध कर्म**

१. तब शिखामौद्गल्यायन नामक ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर कुशलक्षेम पूछने के बाद वह एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे शिखामौद्गल्यायन ब्राह्मण ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—

२. बहुत दिन पूर्व मैं सोणकायन नामक माणव के पास गया था। उसके पास जाने पर उसने मुझसे कहा—"श्रमण गौतम सभी कर्म न करने का उपदेश करते हैं। इस तरह वे सभी कर्मों को न करने का उपदेश करते हुए इस संसार को ही उच्छिन्न करना चाह रहे हैं; जबकि यह समस्त जगत् कर्मों के आधार पर ही टिका हुआ है, यहाँ कर्मों की सचाई को झुठलाया नहीं जा सकता।"

३. ''दस्सनं पि खो अहं, ब्राह्मण, सोणकायनस्स माणवस्स नाभिजानामि; कुतो पनेवरूपो कथासल्लापो! चत्तारिमानि, ब्राह्मण, कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानि। कतमानि चत्तारि? अत्थि, ब्राह्मण, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं; अत्थि, ब्राह्मण, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं; अत्थि, ब्राह्मण, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं; [R.233] अत्थि, ब्राह्मण, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति।

४. ''कतमं च, ब्राह्मण, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं? इध, ब्राह्मण, एकच्चो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, [N.248] सब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा सब्याबज्झं लोकं उपपज्जति। तमेनं सब्याबज्झं लोकं उपपन्नं समानं सब्याबज्झा फस्सा फुसन्ति। सो सब्याबज्झेहि फस्सेहि फुट्ठो समानो सब्याबज्झं वेदनं वेदयति एकन्तदुक्खं, सेय्यथापि सत्ता नेरयिका। इदं वुच्चति, ब्राह्मण, कम्मं **कण्हं कण्हविपाकं**।

५. ''कतमं च, ब्राह्मण, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं? इध, ब्राह्मण, [B.556] एकच्चो अब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, अब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, अब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो अब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, अब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा अब्याबज्झं लोकं उपपज्जति। तमेनं अब्याबज्झं लोकं उपपन्नं समानं अब्याबज्झा फस्सा फुस्सन्ति। सो अब्याबज्झेहि फस्सेहि फुट्ठो समानो अब्याबज्झं वेदनं वेदयति एकन्तसुखं, सेय्यथापि देवा सुभकिण्हा। इदं वुच्चति, ब्राह्मण, कम्मं **सुक्कं सुक्कविपाकं**।

६. ''कतमं च, ब्राह्मण, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं? इध, ब्राह्मण, एकच्चो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वचीसङ्खारं अभिसङ्खरोति, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि मनोसङ्खारं अभिसङ्खरोति। सो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वचीसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा, सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं मनोसङ्खारं अभिसङ्खरित्वा सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि लोकं उपपज्जति। तमेनं सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि लोकं उपपन्नं समानं सब्याबज्झा पि अब्याबज्झा पि फस्सा फुसन्ति। सो सब्याबज्झेहि पि अब्याबज्झेहि पि फस्सेहि फुट्ठो समानो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि वेदनं वेदयति

---

३. ''ब्राह्मण! मैंने आज तक इस सोणकायन माणव को देखा ही नहीं है, इससे मेरा संवाद तो बहुत दूर की बात है! (किसी से मिले विना उससे कोई संवाद कैसे हो सकता है!) ब्राह्मण! मैंने ये चार कर्म स्वयं जानकर साक्षात् कर जनता को उपदिष्ट किये हैं। कौन से चार? ...पूर्ववत्...[१]।

१. अनुपद में वर्णित **विस्तारसूत्र** में यह पाठ अक्षरशः आ चुका है। अतः कृपया वहाँ देखें—स०।

वोकिण्णसुखदुक्खं, सेय्यथापि मनुस्सा एकच्चे च देवा एकच्चे च विनिपातिका। इदं वुच्चति, ब्राह्मण, कम्मं **कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं**।

७. "कतमं च, ब्राह्मण, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति? तत्र, ब्राह्मण, यमिदं कम्मं कण्हं कण्हविपाकं तस्स पहानाय या [N.249] चेतना, यमिदं कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं तस्स पहानाय या चेतना, यमिदं कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं तस्स पहानाय या चेतना—इदं वुच्चति, ब्राह्मण, कम्मं **अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं** कम्मक्खयाय संवत्तति। इमानि खो, ब्राह्मण, चत्तारि कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी" ति॥ ●

४. पठमसिक्खापदसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानि। कतमानि चत्तारि? अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हं [R.234] कण्हविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्ख-[B.557] विपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति। कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं।

२. "कतमं च, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं।

---

७. ब्राह्मण! कौन सा कर्म न कृष्ण न शुक्ल तथा उसका विपाक भी न कृष्ण तथा न शुक्ल ही होता है? ब्राह्मण! कृष्ण कर्म के प्रहाण के लिये जो चेतना, तथा इसके विपाक के प्रहाण की जो चेतना, शुक्ल कर्म तथा शुक्ल विपाक की चेतना तथा जो कृष्ण शुक्ल कर्म एवं उसके विपाक की जो चेतना—ब्राह्मण! ये मिलकर न कृष्ण न शुक्ल कर्म तथा उनका न कृष्ण न शुक्ल विपाक कहलाते हैं। ये ही साधक के कर्मक्षय के लिये उपयोगी होते हैं। (४)

"ब्राह्मण! ये चार कर्म मैंने स्वयं जानकर, साक्षात्कार जनता को उपदिष्ट किये हैं॥" ●

४. प्रथम शिक्षापदसूत्र : : चतुर्विध कर्म

१. "भिक्षुओ! मैंने दो चार कर्म स्वयं जानकर ...पूर्ववत्... कर्मक्षय के लिये उपयोगी होता है।

"भिक्षुओ! कौन सा कर्म 'कृष्ण एवं कृष्णविपाक' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष प्राणातिपाती होता है, अदत्तादायी (चौर) होता है, व्यभिचारी होता है, असत्यवादी होता है तथा मद्यपायी होता है। भिक्षुओ! ऐसा कर्म 'कृष्ण एवं कृष्णविपाक' होता है। (१)

२. "और, भिक्षुओ! 'शुक्ल एवं शुक्ल विपाक' कर्म कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! जो

३. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं।

४. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति? तत्र, भिक्खवे, यमिदं कम्मं कण्हं कण्हविपाकं ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति।

''इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी'' ति॥ ●

५. दुतियसिक्खापदसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, कम्मानि मया [N.250] सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानि। कतमानि चत्तारि? अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्ह-सुक्कं कण्हसुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति।

२. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चेन माता जीविता वोरोपिता होति, पिता जीविता वोरोपितो होति, अरहं जीविता वोरोपितो होति, तथागतस्स दुट्ठेन चित्तेन लोहितं उप्पादितं होति, सङ्घो भिन्नो होति। [B.558,R.235] इदं वुच्चति भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं।

प्राणातिपात से, चौरी से, व्यभिचार से, असत्य भाषण से तथा मदयपान से विरत रहता है, ऐसा कर्म ही 'शुक्ल एवं शुक्लविपाक' कहलाता है। (२)

३. ''और, भिक्षुओ! कौन कर्म 'कृष्णशुक्ल एवं कृष्णशुक्ल विपाक' होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पुरुष दूसरों को कष्ट देने के लिये ...पूर्ववत्...[1] यह कर्म कहलाता है 'कृष्णशुक्ल एवं कृष्णशुक्ल विपाक'। (३)

४. ''और, भिक्षुओ! कौन कर्म 'न कृष्ण न शुक्ल एवं न कृष्ण न शुक्ल विपाक' होता है जो कर्म क्षय के लिये उपयोगी कहा गया है? ...पूर्ववत्...[2]। भिक्षुओ! मैंने ये चार कर्म जानकर साक्षात् कर जनता को उपदिष्ट किये हैं॥'' (४) ●

५. द्वितीय शिक्षापदसूत्र : : चतुर्विध कर्म

१. ''भिक्षुओ! मैंने ये चार कर्म स्वयं जानकर ...पूर्ववत्... कर्मक्षय के लिये उपयोगी भी होता है।

२. ''भिक्षुओ! कौन सा कर्म 'कृष्ण एवं कृष्णविपाक' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष अपनी माता को जीवन से वञ्चित कर देता है, पिता को जीवन से वञ्चित कर देता है, अर्हत् को जीवन से वञ्चित कर देता है, या तथागत के किसी अङ्ग से, अपना चित्त द्वेषमय बनाकर, रक्त

---

१. द्र०—इसी वर्ग के विस्तार सूत्र में।

२. द्र०—इसी वर्ग के विस्तार सूत्र में।

३. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कंविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, फरुसाय वाचाय पटिविरतो होति, सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, अनभिज्झालु होति, अब्यापन्नचित्तो होति, सम्मादिट्ठि होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं।

४. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं।

५. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति? तत्र, भिक्खवे, यमिदं कम्मं कण्हं कण्हविपाकं ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी'' ति॥●

[N.251] **६. अरियमग्गसुत्तं :** १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानि। कतमानि चत्तारि? अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं; अत्थि, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्ह-असुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति।

निकाल देता है, या सङ्घ में भेद (फूट) डालने का प्रयास करता है—भिक्षुओ! यह कर्म 'कृष्ण एवं कृष्णविपाक' कहलाता है। (१)

३. ''और, भिक्षुओ! कौन सा कर्म 'शुक्ल एवं शुक्लविपाक' कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई प्राणातिपात से, अदत्तादान से, व्यभिचार से, असत्यभाषण से, चुगलखोरी से, कठोर वाणी से, सम्प्रलाप (बकवाद) से दूर रहता है, लोभी नहीं होता, दूसरों से द्वेष नहीं करता तथा सम्यग्दृष्टि होता है—ऐसा कर्म ही, भिक्षुओ! 'शुक्ल एवं शुक्लविपाक' कहलाता है। (२)

४. ''कैसा, भिक्षुओ! कर्म 'कृष्णशुक्ल एवं कृष्णशुक्लविपाक' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! दूसरों को दुःख देने के लिये ...पूर्ववत्... ऐसा कर्म कहा जाता है—'कृष्णशुक्ल एवं कृष्णशुक्लविपाक'। (३)

५. ''कौन सा, भिक्षुओ! कर्म 'न कृष्ण न शुक्ल एवं न कृष्ण न शुक्लविपाक' कहलाता है तथा कर्मक्षय के लिये उपयोगी होता है? ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! मैंने ये चार कर्म स्वयं जानकर, साक्षात्कार कर जनता को उपदिष्ट किये हैं॥'' ●

६. आर्यमार्गसूत्र : : चार कर्म

१. ''भिक्षुओ! मैंने ये चार कर्म स्वयं जानकर ...पूर्ववत्... कर्मक्षय के लिये भी उपयोगी होता है।

२. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं।

३. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं? इध, [B.559, R.236] भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं।

४. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं।

५. ''कतमं च, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति। सम्मादिट्ठि ...पे०... सम्मासमाधि। इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति। इमानि, खो, भिक्खवे, चत्तारि कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी'' ति॥ ●

७. बोज्झङ्गसुत्तं : १. ''चत्तारिमानि, भिक्खवे, कम्मानि ...पे०... कण्हं

---

२. ''भिक्षुओ! कौन सा कर्म 'कृष्ण एवं कृष्णविपाक' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष दूसरों को कष्ट देने के लिये ...पूर्ववत्...[१] भिक्षुओ! यह कर्म 'कृष्ण एवं कृष्णविपाक' कर्म कहलाता है। (१)

३. ''भिक्षुओ! कौन सा कर्म 'शुक्ल एवं शुक्लविपाक' है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष दूसरों को कष्ट न देने के लिये ...पूर्ववत्...[२] भिक्षुओ! यह कहलाता है—'शुक्ल एवं शुक्लविपाक' कर्म। (२)

४. ''भिक्षुओ! कौन कर्म 'कृष्णशुक्ल एवं कृष्णशुक्लविपाक' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष दूसरों को कष्ट देने के लिये ...पूर्ववत्...[३] या दूसरों को कष्ट न देने के लिये...पूर्ववत्... भिक्षुओ! यह कर्म 'कृष्णशुक्ल एवं कृष्णशुक्लविपाक' कहलाता है। (३)

५. ''भिक्षुओ! कौन सा कर्म 'न कृष्ण न शुक्ल एवं न कृष्ण न शुक्लविपाक' कहलाता है. जो कि कर्मक्षय के लिये भी उपयोगी होता है? सम्यग्दृष्टि ...पूर्ववत्...[४] सम्यक्समाधि। भिक्षुओ! यह कर्म 'न कृष्ण न शुक्ल' एवं 'न कृष्ण न शुक्लविपाक' कहलाता है, यह कर्मक्षय के लिये उपयोगी है। भिक्षुओ! ये चार कर्म मैंने स्वयं जानकर साक्षात् कर जनता को उपदिष्ट किये हैं॥''●

७. बोध्यङ्गसूत्र : : चार कर्म

१. ...पूर्वसूत्रवत्...[५]।

२. ...पूर्वसूत्रवत्...[६]।

३. ...पूर्वसूत्रवत्...[७]।

---

१. द्र०—पीछे विस्तारसूत्र।

२. द्र०—पीछे विस्तारसूत्र।

३. द्र०—पीछे विस्तारसूत्र।

४-७. द्र०—पीछे विस्तारसूत्र।

कण्हविपाकं ...पे०... इध, भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं कण्हं कण्हविपाकं।

२. "कतमं च, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो अब्याबज्झं कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं सुक्कं सुक्कविपाकं।

[N.252, R.237] ३. "कतमं च, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं? इध, भिक्खवे, एकच्चो सब्याबज्झं पि अब्याबज्झं पि कायसङ्खारं अभिसङ्खरोति ...पे०... इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं कण्हसुक्कं कण्हसुक्कविपाकं।

४. "कतमं च, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति? सतिसम्बोज्झङ्गो, धम्मविचयसम्बोज्झङ्गो, विरियसम्बोज्झङ्गो, पीतिसम्बोज्झङ्गो, पस्सद्धिसम्बोज्झङ्गो, समाधिसम्बोज्झङ्गो, उपेक्खासम्बोज्झङ्गो—इदं वुच्चति, भिक्खवे, कम्मं अकण्हं असुक्कं अकण्हअसुक्कविपाकं कम्मक्खयाय संवत्तति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि कम्मानि मया सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदितानी" ति॥●

[B.560] **८. सावज्जसुत्तं :** १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? सावज्जेन कायकम्मेन, सावज्जेन वचीकम्मेन, सावज्जेन मनोकम्मेन, सावज्जाय दिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि चतूहि? अनवज्जेन कायकम्मेन, अनवज्जेन वचीकम्मेन, अनवज्जेन मनोकम्मेन, अनवज्जाय दिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

९. अब्याबज्झसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं

---

४. "और, भिक्षुओ! न कृष्ण न शुक्ल कर्म एवं न कृष्ण न शुक्ल कर्मविपाक कौन होता है? जो कर्मक्षय में भी उपयोगी होता है? स्मृतिसम्बोध्यङ्ग, धर्मविचयसम्बोध्यङ्ग, वीर्यसम्बोध्यङ्ग, प्रीतिसम्बोध्यङ्ग, प्रश्रब्धिसम्बोध्यङ्ग, समाधिसम्बोध्यङ्ग एवं उपेक्षासम्बोध्यङ्ग—यह कहलाता है 'न कृष्ण न शुक्ल कर्म एवं न कृष्ण न शुक्लकर्मविपाक'। भिक्षुओ! ये चार कर्म मैंने जानकर, साक्षात् करके ही जनता को उपदिष्ट किये हैं॥" ●

८. सावद्यसूत्र : : चतुर्विध धर्म

१. भिक्षुओ! चार (पाप) धर्मों से समन्वित असत्पुरुष सीधा (विना किसी व्यवधान के) नरक में ही जाता है। किन चार धर्मों से? सदोष कायकर्म से, सदोष वाक्कर्म से, सदोष मन:कर्म से तथा सदोष दृष्टि से—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त असत्पुरुष सीधा नरक में ही जाता है।

२. "तथा, भिक्षुओ! चार (कल्याण) धर्मों से युक्त सत्पुरुष सीधा स्वर्ग में ही जाता है। किन

निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? सब्याबज्झेन कायकम्मेन, सब्याबज्झेन वचीकम्मेन, सब्याबज्झेन मनोकम्मेन, सब्याबज्झाय दिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। [R.238] कतमेहि चतूहि? अब्याबज्झेन कायकम्मेन, अब्याबज्झेन वचीकम्मेन, [N.253] अब्याबज्झेन मनोकम्मेन, अब्याबज्झाय दिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

१०. **समणसुत्तं** : १. "'इधेव, भिक्खवे, पठमो समणो, इध दुतियो समणो, इध ततियो समणो, इध चतुत्थो समणो; सुञ्ञा परप्पवादा समणेहि अञ्ञेही' ति—एवमेतं, भिक्खवे, सम्मा सीहनादं नदथ।

२. "कतमो च, भिक्खवे, पठमो समणो? इध, भिक्खवे, भिक्खु तिण्णं संयोजनानं परिक्खया सोतापन्नो होति अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो। अयं, भिक्खवे, **पठमो समणो**।

३. "कतमो च, भिक्खवे, दुतियो समणो? इध, भिक्खवे, भिक्खु तिण्णं [B.561]

चार धर्मों से? निर्दोष कायकर्म से, निर्दोष वाक्कर्म से, निर्दोष मनःकर्म से तथा निर्दोष दृष्टि से—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त सत्पुरुष सीधा स्वर्ग में ही जाता है॥" ●

९. अव्यावद्धसूत्र : : चतुर्विध धर्म

१. भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त असत्पुरुष सीधा नरक में ही जाता है। कौन से चार धर्मों से? जो किसी दूसरे को कष्ट देने के लिये दोषमय दृष्टि से अपनी शारीरिक, वाचसिक, मानसिक चेष्टाएँ करता है—भिक्षुओ! यही कहलाता है—असत्पुरुष का सीधे नरक में गिरना।

२. "तथा, भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त पुरुष सीधा स्वर्ग में ही जाता है। किन चार धर्मों से? किसी को कष्ट न देने के विचार से, निर्दोष दृष्टि से जो अपनी शारीरिक, वाचसिक एवं मानसिक चेष्टाएँ करता है—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष, देहपातानन्तर, सीधा स्वर्ग में ही पहुँचता है॥" ●

१०. श्रमणसूत्र : : चतुर्विध श्रमण

१. "भिक्षुओ! 'प्रथम प्रकार के श्रमण (भिक्षु साधक) यहीं (इसी भिक्षुसङ्घ में) हैं, द्वितीय प्रकार के श्रमण... तृतीय प्रकार के श्रमण... चतुर्थ प्रकार के श्रमण भी यहीं हैं। अन्य सम्प्रदाय भिक्षुओं की ऐसी गणना से शून्य ही हैं'—भिक्षुओ! तुम (अन्य सम्प्रदायों की सभा में जाने पर) ऐसा सिंहनाद करो", (स्पष्ट बात कहो)।

२. "भिक्षुओ! प्रथम प्रकार का श्रमण कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! जो भिक्षु तीन संयोजनों के सर्वथा क्षीण होने से 'स्रोतआपन्न' मार्गारूढ हो जाता है, जिसके लिये धर्म से च्युत होने की सम्भावना नहीं रह जाती, जो सम्बोधिप्राप्तिहेतु आगे बढ़ने लगता है, ऐसा भिक्षु **प्रथम श्रमण** कहलाता है। (१)

संयोजनानं परिक्खया रागदोसमोहानं तनुत्ता सकदागामी होति, सकिदेव इमं लोकं आगन्त्वा दुक्खस्सन्तं करोति। अयं, भिक्खवे, **दुतियो समणो**।

४. "कतमो च, भिक्खवे, ततियो समणो? इध, भिक्खवे, भिक्खु पञ्चन्नं ओरम्भागियानं संयोजनानं परिक्खया ओपपातिको होति तत्थ परिनिब्बायी अनावत्तिधम्मो तस्मा लोका। अयं, भिक्खवे, **ततियो समणो**।

५. "कतमो च, भिक्खवे, चतुत्थो समणो? इध, भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। अयं, भिक्खवे, **चतुत्थो समणो**।

६. "'इधेव, भिक्खवे, पठमो समणो, इध दुतियो समणो, इध ततियो समणो, इध चतुत्थो समणो; सुञ्ञा परप्पवादा समणेहि अञ्ञेही' ति—एवमेतं, भिक्खवे, सम्मा सीहनादं नदथा" ति॥

●

[N.254,R.239] **११. सप्पुरिसानिसंससुत्तं** : १. "सप्पुरिसं, भिक्खवे, निस्साय चत्तारो आनिसंसा पाटिकङ्खा। कतमे चत्तारो? अरियेन सीलेन वड्ढति, अरियेन समाधिना वड्ढति, अरियाय पञ्ञाय वड्ढति, अरियाय विमुत्तिया वड्ढति—सप्पुरिसं, भिक्खवे, निस्साय इमे चत्तारो आनिसंसा पाटिकङ्खा" ति॥

●

कम्मवग्गो चतुवीतिमो॥

---

३. "भिक्षुओ! द्वितीय प्रकार का श्रमण कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! जो भिक्षु तीन संयोजनों के परिक्षय से, तथा राग, द्वेष, मोह—इन तीनों दोषों के अल्प हो जाने से 'सकृदागामी' मार्गारूढ हो जाता है। वह एक बार इस लोक में आकर अपने समस्त दुःखों का अन्त कर लेगा। भिक्षुओ! यह कहलाता है **द्वितीय श्रमण**। (२)

४. भिक्षुओ! तृतीय प्रकार का श्रमण कौन कहलाता है? भिक्षुओ! जो भिक्षु पाँच अवरभागीय संयोजन-क्षय के प्रभाव से औपपातिक (देव-) योनि में उत्पन्न होता है तथा पुनः इस लोक में न आकर वहीं साधना द्वारा परिनिर्वृत हो जाता है, भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु **तृतीय श्रमण** कहलाता है। (३)

५. "भिक्षुओ! चतुर्थ प्रकार का श्रमण कौन कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आश्रवों के क्षय से, अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को स्वयं जानकर, साक्षात् कर, जानकर प्राप्त कर साधनारत रहता है; ऐसा भिक्षुओ! भिक्षु **चतुर्थ श्रमण** कहलाता है। (४)

६. (अतः) "भिक्षुओ! इसी सङ्घ में प्रथम श्रमण, इसी सङ्घ में द्वितीय श्रमण, इसी सङ्घ में तृतीय श्रमण तथा इसी सङ्घ में चतुर्थ श्रमण देखा जा सकता है। दूसरे श्रमण-सम्प्रदायों में (ऐसे श्रमणों के अभाव के कारण) ऐसी गणना सम्भव ही नहीं है॥"

●

११. सत्पुरुषानृशंस्यसूत्र : सत्पुरुष के चार माहात्म्य

१. "भिक्षुओ! किसी सत्पुरुष के ये चार माहात्म्य गिनाये जा सकते हैं। कौन से चार? जो निरन्तर साधना के माध्यम से क्रमशः १. आर्यशील में, २. आर्यसमाधि में, ३. आर्यप्रज्ञा में तथा

तस्सुद्दानं

सङ्खित्त वित्थार सोनकायन, सिक्खापदं अरियमग्गो बोज्झङ्गं।
सावज्जं चेव अब्याबज्झं, समणो च सप्पुरिसानिसंसो ति॥ ●

२५. आपत्तिभयवग्गो

१. सङ्घभेदकसुत्तं : १. एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति [B.562] घोसितारामे। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—"अपि नु तं, आनन्द, अधिकरणं वूपसन्तं" ति?

"कुतो तं, भन्ते, अधिकरणं वूपसमिस्सति! आयस्मतो, भन्ते, अनुरुद्धस्स बाहियो नाम सद्धिविहारिको केवलकप्पं सङ्घभेदाय ठितो। तत्रायस्मा अनुरुद्धो न एकवाचिकं पि भणितब्बं मञ्ञती" ति।

२. "कदा पनानन्द, अनुरुद्धो सङ्घमज्झे अधिकरणेसु वोयुञ्जति! ननु, आनन्द, यानि कानिचि अधिकरणानि उप्पज्जन्ति, सब्बानि तानि तुम्हे चेव वूपसमेथ सारिपुत्तमोग्गल्लाना च।

---

४. आर्यविमुक्ति में आगे बढ़ता रहता है—भिक्षुओ! सत्पुरुष के ये चार माहात्म्य गिनाये जा सकते हैं॥" ●

कर्मवर्ग चौबीसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. संक्षिप्त सूत्र, २. विस्तारसूत्र, ३. सोणकायनसूत्र, ४. प्रथम शिक्षापदसूत्र, ५. द्वितीय शिक्षापदसूत्र, ६. आर्यमार्गसूत्र, ७. बोध्यङ्गसूत्र, ८. सावद्यसूत्र, ९. अव्यावद्धसूत्र, १०. श्रमणसूत्र एवं ११. सत्पुरुषानृशंस्यसूत्र॥ ●

२५. आपत्तिभयवर्ग

१. सङ्घभेदकसूत्र : : चार सङ्घभेदक कर्म

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के सम्मुख आये। आकर, भगवान् को प्रणाम कर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द को भगवान् ने पूछा—"आनन्द! सङ्घ का वह वाद शान्त हुआ?"

"भन्ते! वह वाद कैसे शान्त होगा! भन्ते! आयुष्मान् अनुरुद्ध का बाहिय नामक सहविहारी (सब्रह्मचारी=सहपाठी) सङ्घ में फूट डालने हेतु एकान्ततः सन्नद्ध है। उधर आयुष्मान् अनुरुद्ध एक अक्षर भी इस विषय में बोलना नहीं चाहते।"

३. ''चत्तारोमे, आनन्द, अत्थवसे सम्पस्समानो पापभिक्खु सङ्घभेदेन नन्दति। कतमे चत्तारो? इधानन्द, पापभिक्खु दुस्सीलो होति पापधम्मो असुचि सङ्कस्सरसमाचारो [R.240] पटिच्छन्नकम्मन्तो अस्समणो समणपटिञ्ञो अब्रह्मचारी ब्रह्मचारिपटिञ्ञो अन्तोपूति अवस्सुतो कसम्बुजातो। तस्स एवं होति—'सचे खो मं भिक्खू जानिस्सन्ति—[N.255] दुस्सीलो पापधम्मो असुचि सङ्कस्सरसमाचारो पटिच्छन्नकम्मन्तो अस्समणो समणपटिञ्ञो अब्रह्मचारी ब्रह्मचारिपटिञ्ञो अन्तोपूति अवस्सुतो कसम्बुजातो ति, समग्गा मं सन्ता नासेस्सन्ति; वग्गा पन मं न नासेस्सन्ती' ति। इदं, आनन्द, पठमं अत्थवसं सम्पस्समानो पापभिक्खु सङ्घभेदेन नन्दति।

४. ''पुन च परं, आनन्द, पापभिक्खु मिच्छादिट्ठिको होति, अन्तग्गाहिकाय दिट्ठिया समन्नागतो। तस्स एवं होति—'सचे खो मं भिक्खू जानिस्सन्ति—मिच्छादिट्ठिको अन्तग्गहिकाय दिट्ठिया समन्नागतो ति, समग्गा मं सन्ता नासेस्सन्ति; वग्गा पन मं न नासेस्सन्ती' ति। इदं, आनन्द, दुतियं अत्थवसं सम्पस्समानो पापभिक्खु सङ्घभेदेन नन्दति।

५. ''पुन च परं, आनन्द, पापभिक्खु मिच्छाआजीवो होति, मिच्छाआजीवेन [B.563] जीविकं कप्पेति। तस्स एवं होति—'सचे खो मं भिक्खू जानिस्सन्ति—

---

२. ''तब, आनन्द! सङ्घ के इन आन्तरिक कलहों में अनुरुद्ध कब और कैसे ध्यान देगा! आनन्द! सङ्घ में जो भी आन्तरिक कलह उत्पन्न होते हैं उन सबको तुम दोनों ही शान्त करा सकते हो, या फिर सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन।

३. ''आनन्द! चार कारणों से कोई पापी भिक्षु सङ्घ में फूट डालकर प्रमुदित होता है। कौन से चार? (१) यहाँ, आनन्द! कोई पापी, दुराचारी, पापकर्मरत, काय वाक् एवं मन से मलिन आचरण वाला, लुक छिपकर कदाचरण करने वाला, सम्मुख श्रमण दिखायी देता हुआ भी आन्तरिक रूप से अश्रमण वृत्ति वाला, धर्म साधना से दूर होता हुआ भी धर्मसाधक के समान दिखायी देनेवाला, हृदय से अपवित्र, संसार में आसक्त तथा कूड़े कर्कट सा होता है। उसके मन में यह विचार होता है—'यदि ये भिक्षु मेरे विषय में मेरी वास्तविकता जान लेंगे कि यह ऐसा आकण्ठ पापपङ्कनिमग्न है तो ये सब मिलकर मुझको सङ्घ से निकाल देंगे; परन्तु जब तक इनमें फूट (भेद) पड़ी रहेगी तब तक ये मुझे निकालने में समर्थ नहीं हो सकेंगे।' आनन्द! यह प्रथम कारण है जिसके सहारे कोई पापी भिक्षु सङ्घ में फूट डालता हुआ प्रसन्न होता है। (१)

४. ''फिर, आनन्द! कोई पापाचार भिक्षु मिथ्यादृष्टि होता है, अन्तर्ग्राहिका दृष्टि से प्रभावित (मनमौजी) होता है। उसको यह विचार होता है—'यदि ये भिक्षु मेरे विषय में जान जायँगे कि यह मिथ्यादृष्टि है तथा अन्तर्ग्राहिका दृष्टि के वशीभूत है तो ये सब मिलकर मुझको सङ्घ से निकाल देंगे। जब तक इनमें परस्पर फूट रहेगी ये मुझको सङ्घ से निकालने में समर्थ न हो सकेंगे।' आनन्द! यह दूसरा कारण है जिसके सहारे, कोई पापी भिक्षुसङ्घ में फूट डालता हुआ प्रसन्न होता है। (२)

५. ''फिर, आनन्द! कोई पापाचार भिक्षु मिथ्याजीव होता है, मिथ्या (शास्त्रविरुद्ध) आजीविका (जीवनव्यापार) से जीवन चलाने वाला है। उसको भी यह विचार होता है—'यदि ये

मिच्छाआजीवो मिच्छाआजीवेन जीविकं कप्पेती ति, समग्गा मं सन्ता नासेस्सन्ति; वग्गा पन मं न नासेस्सन्ती' ति। इदं, आनन्द, ततियं अत्थवसं सम्पस्समानो पापभिक्खु सङ्घभेदेन नन्दति।

६. "पुन च परं, आनन्द, पापभिक्खु लाभकामो होति सक्कारकामो अनवञ्ञत्तिकामो। तस्स एवं होति—'सचे खो मं भिक्खू जानिस्सन्ति—लाभकामो सक्कारकामो अनवञ्ञत्तिकामो ति, समग्गा मं सन्ता न सक्करिस्सन्ति न गरुं करिस्सन्ति न मानेस्सन्ति न पूजेस्सन्ति; वग्गा पन मं सक्करिस्सन्ति गरुं करिस्सन्ति मानेस्सन्ति पूजेस्सन्ती' ति। इदं, आनन्द, चतुत्थं अत्थवसं सम्पस्समानो पापभिक्खु सङ्घभेदेन नन्दति।

"इमे खो, आनन्द, चत्तारो अत्थवसे सम्पस्समानो पापभिक्खु सङ्घभेदेन नन्दती" ति॥ ●

२. आपत्तिभयसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, आपत्तिभयानि। कतमानि चत्तारि? सेय्यथापि, भिक्खवे, चोरं आगुचारिं गहेत्वा रञ्ञो दस्सेय्युं—'अयं ते, देव, चारो आगुचारी। इमस्स देवो दण्डं पणेतू' ति। तमेनं राजा एवं वदेय्य—'गच्छथ, [N.256,R.241] भो, इमं पुरिसं दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्दथा' ति। तमेनं रञ्ञो पुरिसा दळ्हाय रज्जुया

भिक्षु मेरे विषय में जान जायँगे कि यह मिथ्याजीव है तो ये सब मिलकर मुझको सङ्घ से निकाल देंगे। जब तक इनमें फूट रहेगी तब तक ये मुझे सङ्घ से नहीं निकाल पायँगे।' आनन्द! यह तीसरा कारण है, जिसके सहारे, कोई पापी भिक्षुसङ्घ में फूट डालता हुआ प्रसन्न होता है। (३)

६. "फिर, आनन्द! कोई पापी भिक्षु अपने लाभ सत्कार की इच्छा करता हुआ समाज में अपना सत्कार चाहता है, सबमें प्रमुख रहना चाहता है। उसको यह विचार होता है—'यदि ये भिक्षु मेरे इस दुराचार को जान जायँगे तो मुझको सङ्घ से निकाल देंगे; मेरा सत्कार, मान,पूजा एवं गौरव नहीं करेंगे। परन्तु जब तक इनमें फूट रहेगी ये मुझको सङ्घ से निकाल नहीं पायँगे, अपितु मेरा सत्कार, मान, पूजा एवं गौरव करते रहेंगे।' आनन्द! यह चतुर्थ कारण है जिसके सहारे कोई पापी भिक्षु सङ्घ में फूट (भेद) डालता हुआ प्रसन्न होता है। (४)

"आनन्द! ये चार कारण हैं, जिनके सहारे से सङ्घ में फूट डालकर कोई पापी भिक्षु प्रसन्न होता है॥" ●

२. आपत्तिभयसूत्र : : चार आपत्ति भय

१. "भिक्षुओ! ये चार आपत्तिभय (दूसरे की आपत्ति देखकर भय मानना) होते हैं। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! जैसे कोई राजपुरुष किसी अपराधी चौर को पकड़ कर राजा के सम्मुख प्रस्तुत करे और कहे—'देव! यह चौर आपका अपराधी है। देव! इसको आप जैसा चाहें दण्ड दें।' उसके प्रति राजा यह कहे—'अरे! इस पुरुष को ले जाओ! और इसके हाथ सुदृढ़ रस्सियों से पीछे बाँधकर, इसका शिर मूँड़कर तीव्र ध्वनि से ढोल बजाते हुए, एक गली से दूसरी गली में, एक

पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्देय्युं। तत्रञ्ञतरस्स थलट्ठस्स पुरिसस्स एवमस्स—'पापकं वत, भो, अयं पुरिसो कम्मं अकासि गारय्हं सीसच्छेज्जं। यत्र हि नाम रञ्ञो पुरिसा दळ्हाय रज्जुया पच्छाबाहं गाळ्हबन्धनं बन्धित्वा खुरमुण्डं करित्वा खरस्सरेन पणवेन रथिकाय रथिकं सिङ्घाटकेन [B.564] सिङ्घाटकं परिनेत्वा दक्खिणेन द्वारेन निक्खामेत्वा दक्खिणतो नगरस्स सीसं छिन्दिस्सन्ति! सो वतस्साहं एवरूपं पापकम्मं न करेय्यं गारय्हं सीसच्छेज्जं' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा एवं तिब्बा भयसञ्ञा पच्चुपट्ठिता होति पाराजिकेसु धम्मेसु। तस्सेतं पाटिकङ्खं—अनापन्नो वा पाराजिकं धम्मं न आपज्जिस्सति, आपन्नो वा पाराजिकं धम्मं यथाधम्मं पटिकरिस्सति।

२. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो काळवत्थं परिधाय केसे पकिरित्वा मुसलं खन्धे आरोपेत्वा महाजनकायं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'अहं, भन्ते, पापकम्मं अकासिं गारय्हं मोसल्लं, येन मे आयस्मन्तो अत्तमना होन्ति तं करोमी' ति। तत्रञ्ञतरस्स थलट्ठस्स पुरिसस्स एवमस्स—'पापकं वत, भो, अयं पुरिसो कम्मं अकासि गारय्हं मोसल्लं। यत्र हि नाम काळवत्थं परिधाय केसे पकिरित्वा मुसलं खन्धे आरोपेत्वा महाजनकायं उपसङ्कमित्वा [R.242] एवं वक्खति—'अहं, भन्ते, पापकम्मं अकासिं गारय्हं मोसल्लं, येन मे आयस्मन्तो

चौराहे से दूसरे चौराहे पर घुमाते हुए दक्षिण द्वार से निकाल कर पुनः नगर के दक्षिण द्वार में ले जाकर इसका शिर काट दो।' तब वे राजपुरुष वैसी राजाज्ञा पाकर उसके हाथ सुदृढ़ रस्सी से पीछे बाँधकर, शिर मूँड़कर, तीव्र ध्वनि से ढोल बजाते हुए, एक गली से दूसरी गली में, एक चौराहे से दूसरे चौराहे पर घुमाते हुए दक्षिण द्वार से निकाल कर पुनः नगर के दक्षिण द्वार में ले जाकर उसका शिर काट दें। इस घटना को प्रत्यक्ष देखते हुए किसी तटस्थ दर्शक को यह विचार हो—'इस पुरुष ने अवश्य ऐसा कोई शिर काटे जाने योग्य घृणित अपराध किया होगा, जिस कारण ये राजपुरुष... नगर के दक्षिण द्वार पर लाकर इसका शिर काटेंगे। मुझे चाहिये कि मैं ऐसा शिर काटे जाने योग्य कोई घृणित अपराध न करूँ।' इसी प्रकार, भिक्षुओ! किसी भिक्षु या भिक्षुणी को भी **पाराजिक अपराधों** के विषय में ऐसी ही भयसंज्ञा उपस्थित हो जाय तो वे यह दृढ़ सङ्कल्प कर लें कि प्रथम तो वे किसी पाराजिक धर्म से सम्पृक्त ही नहीं होंगे, यदि कभी दौर्भाग्य से किसी पाराजिक धर्म से सम्पृक्त हो ही गये तो तत्काल उसका प्रतीकार करने का प्रयास करेंगे। (१)

२. ''भिक्षुओ! जैसे कोई पापी अपराधी पुरुष प्रायश्चित्तस्वरूप, काला वस्त्र ओढ़कर, शिर के बाल विखेरकर, कन्धे पर मूसल रखकर किसी समाज में प्रतिष्ठित सत्पुरुष के पास जाकर यह कहे—'भन्ते! मैंने यह पापकर्म किया है, यह घृणित था। अब, इसके प्रतीकारस्वरूप, मैं वही करूँगा जिससे आप मुझसे प्रसन्न हों।' तब यह घटना देखकर, वहाँ उपस्थित किसी तटस्थ पुरुष को यह विचार हो—'अवश्य इसने ऐसा कोई घृणित पापकर्म किया होगा, इसीलिये यह काला वस्त्र धारण कर, शिर के बाल विखेर कर कन्धे पर मूसल रखकर सभ्य पुरुष के पास आकर यों कह

अत्तमना होन्ति तं करोमी ति। सो वतस्साहं एवरूपं पापकम्मं न करेय्यं गारय्हं मोसल्लं' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा एवं तिब्बा भयसञ्ञा पच्चुपट्ठिता होति सङ्घादिसेसेसु धम्मेसु, तस्सेतं पाटिकङ्खं—अनापन्नो वा [N.257] सङ्घादिसेसं धम्मं आपज्जिस्सति, आपन्नो वा सङ्घादिसेसं धम्मं यथाधम्मं पटिकरिस्सति।

३. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो काळवत्थं परिधाय केसे पकिरित्वा भस्मपुटं खन्धे आरोपेत्वा महाजनकायं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'अहं, भन्ते, पापकम्मं अकासिं गारय्हं भस्मपुटं। येन मे आयस्मन्तो अत्तमना होन्ति तं करोमी' ति। तत्रञ्ञतरस्स थलट्ठस्स पुरिसस्स एवमस्स—'पापकं वत, भो, अयं पुरिसो कम्मं अकासि गारय्हं भस्मपुटं। यत्र हि नाम काळवत्थं परिधाय केसे पकिरित्वा भस्मपुटं खन्धे आरोपेत्वा महाजनकायं उपसङ्कमित्वा एवं वक्खति—'अहं, भन्ते, पापकम्मं अकासिं गारय्हं भस्मपुटं; येन मे आयस्मन्तो अत्तमना होन्ति तं करोमी ति। सो वतस्साहं एवरूपं पापकम्मं न करेय्यं [B.565] गारय्हं भस्मपुटं' ति। एवमेव खो, भिक्खवे, यस्स कस्सचि भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा एवं तिब्बा भयसञ्ञा पच्चुपट्ठिता होति पाचित्तियेसु धम्मेसु, तस्सेतं पाटिकङ्खं—अनापन्नो वा पाचित्तियं धम्मं न आपज्जिस्सति, आपन्नो वा पाचित्तियं धम्मं यथाधम्मं पटिकरिस्सति।

४. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो काळवत्थं परिधाय केसे पकिरित्वा महाजनकायं उपसङ्कमित्वा एवं वदेय्य—'अहं, भन्ते, पापकम्मं अकासिं गारय्हं उपवज्जं। येन मे आयस्मन्तो अत्तमना होन्ति तं करोमी' ति। तत्रञ्ञतरस्स थलट्ठस्स पुरिसस्स एवमस्स—'पापकं वत, भो, अयं पुरिसो कम्मं अकासि गारय्हं उपवज्जं। यत्र हि नाम काळवत्थं परिधाय केसे पकिरित्वा महाजनकायं उपसङ्कमित्वा एवं वक्खति—'अहं, भन्ते, पापकम्मं अकासिं गारय्हं उपवज्जं; येन मे आयस्मन्तो अत्तमना होन्ति तं करोमी [R.243] ति। सो वतस्साहं एवरूपं पापकम्मं न करेय्यं गारय्हं उपवज्जं' ति। एवमेव खो, भिक्खवे,

---

रहा है कि मैंने ऐसा घृणित पापकर्म किया है, अब मैं इसका वैसा प्रतीकार करने को सन्नद्ध हूँ कि जिससे आप लोग प्रसन्न हों। अतः मुझे भी ऐसा कोई पापकर्म नहीं करना चाहिये कि मुझे समाज के सम्मुख ऐसी अपमानजनक अवस्था में आना पड़े।' इसी प्रकार, भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी को **सङ्घादिशेष धर्मों** के विषय में भयसंज्ञा उपस्थित हो तो उनको यह आशा रखनी चाहिये कि प्रथम तो वे ऐसा कोई कर्म नहीं करेंगे जिसके कारण उनको सङ्घादिशेष की आपत्ति लग सके। यदि कभी किसी कारण ऐसी आपत्ति से आपन्न हो ही गये तो, समय रहते, उसका यथासम्भव प्रतीकार करेंगे। (२)

३. ''जैसे, भिक्षुओ! कोई पापी अपराधी पुरुष काला वस्त्र पहनकर ...पूर्ववत्... अवस्था में आना पड़े। इसी प्रकार, भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी को **पाचित्तिय धर्मों के** प्रति भयसंज्ञा उपस्थित हो तो उनको यह दृढ़सङ्कल्प ...पूर्ववत्... यथासम्भव प्रतीकार करेंगे। (३)

४. ''जैसे, भिक्षुओ! कोई पापी अपराधी पुरुष काला वस्त्र पहनकर ...पूर्ववत... अवस्था में

यस्स कस्सचि भिक्खुस्स वा भिक्खुनिया वा एवं तिब्बा भयसञ्ञा पच्चुपट्ठिता होति पाटिदेसनीयेसु धम्मेसु, तस्सेतं पाटिकङ्खं—अनापन्नो वा पाटिदेसनीयं धम्मं न आपज्जिस्सति, आपन्नो वा पाटिदेसनीयं धम्मं यथाधम्मं पटिकरिस्सति। इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि आपत्तिभयानी'' ति॥ ●

[N.258] **३. सिक्खानिसंससुत्तं** : १. ''सिक्खानिसंसमिदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं वुस्सति पञ्ञुत्तरं विमुत्तिसारं सताधिपतेय्यं। कथं च, भिक्खवे, सिक्खानिसंसं होति? इध, भिक्खवे, मया सावकानं आभिसमाचारिका सिक्खा पञ्ञत्ता अप्पसन्नानं पसादाय पसन्नानं भिय्योभावाय। यथा यथा, भिक्खवे, मया सावकानं आभिसमाचारिका सिक्खा पञ्ञत्ता अप्पसन्नानं पसादाय पसन्नानं भिय्योभावाय तथा तथा सो तस्सा सिक्खाय अखण्डकारी होति अच्छिद्दकारी असबलकारी अकम्मासकारी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, मया सावकानं आदिब्रह्मचरियिका सिक्खा पञ्ञत्ता सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय। यथा यथा, भिक्खवे, मया सावकानं आदिब्रह्मचरियिका [B.566] सिक्खा पञ्ञत्ता सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय तथा तथा सो तस्मा सिक्खाय अखण्डकारी होति अच्छिद्दकारी असबलकारी अकम्मकारी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, भिक्खवे, **सिक्खानिसंसं** होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, **पञ्ञुत्तरं** होति? इध, भिक्खवे, मया सावकानं धम्मा

आना पड़े। इसी प्रकार, भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षु या भिक्षुणी को **प्रतिदेशनीय धर्मों के** प्रति भयसंज्ञा उपस्थित हो तो उनको यह दृढ़सङ्कल्प ...पूर्ववत्... यथासम्भव प्रतीकार करेंगे। (४)

''भिक्षुओ! ये चार आपत्तिभय होते हैं।'' ●

३. शिक्षानृशंस्यसूत्र : : धर्मसाधना का चतुर्विध आधार

१. ''भिक्षुओ! (हमारी) यह धर्मसाधना (ब्रह्मचर्य) चार बातों पर आधृत है—(१) शिक्षा की महत्ता पर, (२) प्रज्ञा पर, (३) विमुक्तिसार पर, तथा (४) स्मृत्याधिपत्य पर।

''भिक्षुओ! यह शिक्षा की महत्ता कैसे होती है? यहाँ, भिक्षुओ! मैंने अपने शिष्यों को छोटे से छोटे कर्तव्यों के लिये शिक्षा दी है, वह अश्रद्धालुओं में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये, तथा श्रद्धालुओं में उस श्रद्धा की अतिशय वृद्धि के लिये दी है। भिक्षुओ! जैसे जैसे मैं यह शिक्षा उनकी श्रद्धा बढ़ाने हेतु देता रहता हूँ वैसे वैसे वे इस शिक्षा की अखण्डता बनाये रखने का प्रयास करते हैं। वे उसमें कोई छिद्र या खण्ड नहीं होने देते, न उसमें कोई कलङ्क लगने देते हैं। अथ च, वे अधिक से अधिक उस शिक्षा का अभ्यास करते हैं।

२. ''फिर, भिक्षुओ! मैंने अपने शिष्यों को, अपने सभी दुःखों के सम्यक् नाशहेतु धर्मसाधना की आरम्भिक शिक्षा भी दी है। भिक्षुओ! वह शिक्षा भी दुःखक्षय हेतु जैसे जैसे दी गयी वैसे वैसे वे उस शिक्षा की भी अखण्डता, अच्छिद्रता, एवं अभेद्यता स्थिर रखते हुए उसका अधिक से अधिक अभ्यास करते हैं। (१)

३. ''फिर, भिक्षुओ! यह 'शिक्षा की प्रज्ञोत्तरता' क्या होती है? यहाँ, भिक्षुओ! मैंने दुःखों के

देसिता सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय। यथा यथा, भिक्खवे, मया सावकानं धम्मा देसिता सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय तथा तथास्स ते धम्मा पञ्ञाय समवेक्खिता होन्ति। एवं खो, भिक्खवे, पञ्ञुत्तरं होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, **विमुत्तिसारं** होति? इध, भिक्खवे, मया [R.244] सावकानं धम्मा देसिता सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय। यथा यथा, भिक्खवे, मया सावकानं धम्मा देसिता सब्बसो सम्मा दुक्खक्खयाय तथा तथास्स ते धम्मा विमुत्तिया फुसिता होन्ति। एवं खो, भिक्खवे, विमुत्तिसारं होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, **सताधिपतेय्यं** होति? 'इति अपरिपूरं वा अभिसमाचारिकं सिक्खं परिपूरेस्सामि, परिपूरं वा अभिसमाचारिकं सिक्खं तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी' ति—अज्झत्तंयेव सति सूपट्ठिता होति। 'इति अपरिपूरं वा आदिब्रह्मचरियिकं सिक्खं परिपूरेस्सामि, परिपूरं वा आदिब्रह्मचरियिकं सिक्खं [N.259] तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी' ति—अज्झत्तंयेव सति सूपट्ठिता होति। 'इति असमवेक्खितं वा धम्मं पञ्ञाय समवेक्खिस्सामि, समवेक्खितं वा धम्मं तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी' ति—अज्झत्तंयेव सति सूपट्ठिता होति। 'इति अफुसितं वा धम्मं विमुत्तिया फुस्सामि, फुसितं वा धम्मं तत्थ तत्थ पञ्ञाय अनुग्गहेस्सामी' ति—अज्झत्तंयेव सति सूपट्ठिता होति। एवं खो, भिक्खवे, सताधिपतेय्यं होति। 'सिक्खानिसंसमिदं, भिक्खवे, ब्रह्मचरियं वुस्सति पञ्ञुत्तरं विमुत्तिसारं सताधिपतेय्यं' ति, इति यं तं वुत्तं इदमेतं पटिच्च वुत्तं" ति॥ ●

सर्वथा नाशहेतु श्रावकों को जिन धर्मों का उपदेश किया है, वे उन धर्मों का अपनी प्रज्ञा द्वारा सम्यगन्वीक्षण करते हैं—यही शिक्षा की प्रज्ञोत्तरता है। (२)

४. "फिर, भिक्षुओ! 'विमुक्तिसार' क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! मैने दुःखों के सर्वथा क्षयहेतु श्रावकों को जिन धर्मों का जैसे जैसे उपदेश किया है वैसे वैसे वे धर्म उसकी विमुक्ति का स्पर्श करने (समीप पहुँचाने) वाले होते हैं। भिक्षुओ! यही इस शिक्षा की विमुक्तिसारता है।

५. "और, भिक्षुओ! यहाँ यह 'स्मृत्याधिपत्य' क्या है? उपदेश सुनने के बाद साधक को (१) 'छोटे बड़े कर्तव्यबोधक अपूर्ण शिक्षापदों को अभ्यास द्वारा पूर्ण करूँगा', या 'पूर्ण हुए शिक्षापदों का प्रज्ञा द्वारा अनुवीक्षण करूँगा'—ऐसी आध्यात्मिक स्मृति व्यवस्थित होती है। (२) 'धर्मसाधना हेतु अपरिपूर्ण आरम्भिक शिक्षापदों को अभ्यास द्वारा पूर्ण करूँगा', तथा 'पूर्ण हुए शिक्षापदों का प्रज्ञा द्वारा अनुवीक्षण करूँगा'—ऐसी आध्यात्मिक स्मृति उपस्थित होती है। (३) यों 'अनुवीक्षित न किये गये धर्म की प्रज्ञा से अनुवीक्षा करूँगा, तथा अनुवीक्षित धर्म को भी प्रज्ञा से भली भाँति अनुगृहीत करूँगा' ऐसी आध्यात्मिक स्मृति उपस्थित होती है। इसी प्रकार उसको (४) 'मैं अपने अस्पृष्ट धर्म का विमुक्ति से स्पर्श कराऊँगा,' तथा 'स्पृष्ट धर्म को प्रज्ञा द्वारा अनुगृहीत कराऊँगा'—यह आध्यात्मिक स्मृति उपस्थित होती है। भिक्षुओ! इस प्रकार की स्मृतियों का उपस्थित होना ही यहाँ 'स्मृत्याधिपत्य' कहलाता है। (४)

४. सेय्यासुत्तं : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, सेय्या। कतमा चतस्सो ? पेतसेय्या, कामभोगिसेय्या, सीहसेय्या, तथागतसेय्या।

[B.567] कतमा च, भिक्खवे, **पेतसेय्या** ? येभुय्येन, भिक्खवे, पेता उत्ताना सेन्ति; अयं वुच्चति, भिक्खवे, पेतसेय्या।

२. ''कतमा च, भिक्खवे, **कामभोगिसेय्या** ? येभुय्येन, भिक्खवे, कामभोगी वामेन पस्सेन सेन्ति; अयं वुच्चति, भिक्खवे, कामभोगिसेय्या।

३. ''कतमा च, भिक्खवे, **सीहसेय्या** ? सीहो, भिक्खवे, मिगराजा दक्खिणेन [B.245] पस्सेन सेय्यं कप्पेति, पादे पादं अच्चाधाय, अन्तरसत्थिम्हि नङ्गुट्ठं अनुपक्खिपित्वा। सो पटिबुज्झित्वा पुरिमं कायं अब्भुन्नामेत्वा पच्छिमं कायं अनुविलोकेति। सचे, भिक्खवे, सीहो मिगराजा किञ्चि पस्सति कायस्स विक्खित्तं वा विसटं वा, तेन, भिक्खवे, सीहो मिगराजा अनत्तमनो होति। सचे पन, भिक्खवे, सीहो मिगराजा न किञ्चि पस्सति कायस्स विक्खित्तं वा विसटं वा, तेन, भिक्खवे, सीहो मिगराजा अत्तमनो होति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, सीहसेय्या।

४. ''कतमा च, भिक्खवे, **तथागतसेय्या** ? इध, भिक्खवे, तथागतो विविच्चेव [N.260] कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। अयं वुच्चति, भिक्खवे, तथागतसेय्या। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो सेय्या'' ति॥ ●

''भिक्षुओ! सूत्र के आरम्भ में मैने 'इस प्रकार (हमारी) यह धर्मसाधना चार बातों पर आधृत है—(१) शिक्षा की महत्ता पर, (२) प्रज्ञा पर, (३) विमुक्ति पर, तथा (४) स्मृत्याधिपतेय्य पर'—जो कहा था वह इसी लक्ष्य से कहा था॥'' ●

४. शय्यासूत्र : : चतुर्विध शयन

१. भिक्षुओ! शयन के ये चार प्रकार है। कौन से चार ? (१) प्रेतशय्या, (२) कामभोगि-(गृहस्थ) शय्या, (३) सिंहशय्या, तथा (४) तथागतशय्या। इनमें भिक्षुओ! **प्रेतशय्या** कौन कहलाती है ? भिक्षुओ! प्राय: प्रेत (मृत प्राणी) सीधे पैर पसार कर सोया करते हैं अत: ऐसे शयन को 'प्रेतशय्या' कहा जाता है। (१)

२. और, भिक्षुओ! कामभोगियों (गृहस्थों) के शयन का कौन प्रकार होता है ? भिक्षुओ! कामभोगी प्राय: वामपार्श्व से सोया करते हैं, अत: ऐसा शयन **कामभोगिशय्या** कहलाता है। (२)

३. ''और, भिक्षुओ! 'सिंहशय्या' कौन शयन कहलाता है ? भिक्षुओ! सिंह प्राय: दक्षिण पार्श्व से सोता है, पैर पर पैर रखकर तथा पूँछ को दोनों जाँघों के बीच में रखकर। वह जगकर, शरीर के अग्रभाग को झुका कर शरीर के पिछले भाग को देखता है। भिक्षुओ! यदि वह मृगराज सिंह वहाँ शरीर के किसी भाग में कोई विकृति देखता है तो वह असन्तुष्ट होता है। और यदि वह वहाँ कुछ विकृति नहीं देखता तो उसको प्रसन्नता होती है। भिक्षुओ! यह कहलाती है—**सिंहशय्या**। (३)

४. ''और भिक्षुओ! 'तथागतशय्या' कौन कहलाती है ? यहाँ, भिक्षुओ! तथागत कामभोगों

५. थूपारहसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, थूपारहा। कतमे चत्तारो? तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो थूपारहो, पच्चेकबुद्धो थूपारहो, तथागतसावको थूपारहो, राजा चक्कवत्ती थूपारहो—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो थूपारहा'' ति॥ ●

६. पञ्ञावुद्धिसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, धम्मा पञ्ञावुद्धिया संवत्तन्ति। कतमे चत्तारो? सप्पुरिससंसेवो, सद्धम्मसवनं, योनिसो मनसिकारो, धम्मानुधम्मप्पटिपत्ति—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो धम्मा पञ्ञावुद्धिया संवत्तन्ती'' ति॥ ●

७. बहुकारसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, धम्मा मनुस्सभूतस्स [B.568] बहुकारा होन्ति। कतमे चत्तारो? सप्पुरिससंसेवो, सद्धम्मसवनं, योनिसो [R.246] मनसिकारो, धम्मानुधम्मप्पटिपत्ति—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो धम्मा मनुस्सभूतस्स बहुकारा होन्ती'' ति॥ ●

८. पठमवोहारसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अनरियवोहारा। कतमे चत्तारो? अदिट्ठे दिट्ठवादिता, असुते सुतवादिता, अमुते मुतवादिता, अविञ्ञाते विञ्ञातवादिता—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अनरियवोहारा'' ति॥ ●

से दूर रहते हुए ...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान प्राप्त कर साधना करते हैं। भिक्षुओ! यह कहलाती है **तथागतशय्या**। (४)

''इस तरह, भिक्षुओ! शय्या चतुर्विध होती हैं॥'' ●

५. स्तूपार्हसूत्र : : स्तूपयोग्य चतुर्विध पुरुष

१. ''भिक्षुओ! ऐसे पुरुष चतुर्विध होते हैं, जिनके सम्मान में मरणोत्तर स्तूप बनाने की प्रथा है। कौन से चार? (१) तथागत, अर्हत्, सम्यक्सम्बुद्ध स्तूप बनाने योग्य होते हैं, (२) प्रत्येकबुद्धों का भी स्तूप बनाया जाना चाहिये, (३) तथागत-शिष्य भी स्तूपयोग्य होते हैं, तथा (४) चक्रवर्ती राजा का भी मरणोत्तर स्तूप बनाया जाना चाहिये॥'' ●

६. प्रज्ञावृद्धिसूत्र : : प्रज्ञा के बढ़ाने वाले चार धर्म

१. ''भिक्षुओ! चार धर्म प्रज्ञावृद्धि में सहायक होते हैं। कौन से चार धर्म? (१) सत्पुरुषों की सेवा, (२) सद्धर्म का श्रवण, (३) उसका सूक्ष्मतया चिन्तन, तथा (४) धर्म एवं अनुधर्म का प्रतिपादन—भिक्षुओ! ये चार धर्म प्रज्ञावृद्धि में सहायक होते हैं॥'' ●

७. बहुकारसूत्र : : मनुष्यमात्र के लिये चार उपयोगी धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये चार धर्म मनुष्यमात्र के लिये उपयोगी होते हैं। कौन से चार? सत्पुरुषों की सेवा, सद्धर्म का श्रवण, उसका सूक्ष्म चिन्तन तथा धर्म एवं अनुधर्म का क्रमशः प्रतिपादन—भिक्षुओ! ये **चार धर्म मनुष्यमात्र के लिये उपयोगी** होते हैं॥'' ●

८. प्रथम व्यवहारसूत्र : : चार अनार्यव्यवहार

१. ''भिक्षुओ! ये चार धर्म '**अनार्य** (असत्पुरुष) **व्यवहार**' कहलाते हैं। कौन से चार? (१) न देखे को देखा हुआ कहना, (२) न सुने हुए को सुना हुआ कहना, (३) न स्मरण किये हुए को स्मरण किया हुआ कहना, (४) तथा न जाने हुए को जाना हुआ कहना।

९. दुतियवोहारसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अरियवोहारा। कतमे चत्तारो? अदिट्ठे अदिट्ठवादिता, असुते असुतवादिता, अमुते अमुतवादिता, अविञ्ञाते अविञ्ञात-[N.261] वादिता—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अरियवोहारा'' ति॥ ●

१०. ततियवोहारसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अनरियवोहारा। कतमे चत्तारो? दिट्ठे अदिट्ठवादिता, सुते असुतवादिता, मुते अमुतवादिता, विञ्ञाते अविञ्ञातवादिता—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अनरियवोहारा'' ति॥ ●

११. चतुत्थवोहारसुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, अरियवोहारा। कतमे चत्तारो? दिट्ठे दिट्ठवादिता, सुते सुतवादिता, मुते मुतवादिता, विञ्ञाते विञ्ञातवादिता—इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो अरियवोहारा'' ति॥ ●

आपत्तिभयवग्गो पञ्चवीसतिमो॥

तस्सुद्दानं

[B.569] भेदआपत्ति सिक्खा च, सेय्या थूपारहेन च।
पञ्ञावुद्धि बहुकारा, वोहारा चतुरो ठिता ति॥ ●

पञ्चमो पण्णासको समत्तो॥

भिक्षुओ! ये कहलाते हैं चार **अनार्यव्यवहार**॥'' ●

९. द्वितीय व्यवहारसूत्र : : चार आर्यव्यवहार

१. ''भिक्षुओ! ये चार धर्म आर्यों (सत्पुरुषों) के व्यवहार कहलाते हैं। कौन से चार? (१) दृष्ट को दृष्ट ही कहना, (२) श्रुत को श्रुत ही कहना, (३) स्मृत को स्मृत ही कहना, तथा (४) अविज्ञात को अविज्ञात ही कहना—भिक्षुओ! ये चार धर्म **आर्यव्यवहार** कहलाते हैं॥'' ●

१०. तृतीय व्यवहारसूत्र : : दूसरे चार अनार्य व्यवहार

१. ''भिक्षुओ! ये चार धर्म (भी) अनार्यव्यवहार कहलाते हैं। कौन से चार? (१) दृष्ट को अदृष्ट कहना, (२) अश्रुत को श्रुत कहना, (३) अस्मृत को स्मृत कहना, तथा (४) विज्ञात को अविज्ञात कहना—भिक्षुओ! ये चार धर्म **अनार्यव्यवहार** कहलाते हैं॥'' ●

११. चतुर्थ व्यवहारसूत्र : : द्वितीय चार आर्य व्यवहार

१. और, भिक्षुओ! ये चार आर्यव्यवहार कहलाते हैं। कौन से चार? (१) दृष्ट को दृष्ट ही कहना, (२) श्रुत को श्रुत ही कहना, (३) स्मृत को स्मृत ही कहना, तथा (४) अविज्ञात को अविज्ञात ही कहना। भिक्षुओ! ये चार धर्म **आर्यव्यवहार** कहलाते हैं॥'' ●

आपत्तिभयवर्ग पचीसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. सङ्घभेदकसूत्र, २. आपत्तिभयसूत्र, ३. शिक्षानृशंस्य सूत्र, ४. शय्यासूत्र, ५. स्तूपार्हसूत्र, ६. प्रज्ञावृद्धिसूत्र, ७. बहुकारसूत्र, ८. प्रथम व्यवहारसूत्र, ९. द्वितीय व्यवहारसूत्र, १०. तृतीय व्यवहारसूत्र, एवं ११. चतुर्थ व्यवहारसूत्र॥ ●

पञ्चम पञ्चाशत्क समाप्त॥

२६. अभिञ्ञावग्गो

१. अभिञ्ञासुत्तं : १. ''चत्तारोमे, भिक्खवे, धम्मा। कतमे चत्तारो? अत्थि, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या; अत्थि, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा [B.570] पहातब्बा; अत्थि, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा भावेतब्बा; अत्थि, भिक्खवे, धम्मा [R.247] अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा।

२. ''कतमे च, भिक्खवे, धम्मा **अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या**? पञ्चुपादानक्खन्धा—इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा परिञ्ञेय्या।

३. ''कतमे च, भिक्खवे, धम्मा **अभिञ्ञा पहातब्बा**? अविज्जा च [N.262] भवतण्हा च—इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा पहातब्बा।

४. ''कतमे च, भिक्खवे, धम्मा **अभिञ्ञा भावेतब्बा**? समथो च विपस्सना च—इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा भावेतब्बा।

५. ''कतमे च, भिक्खवे, धम्मा **अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा**? विज्जा च विमुत्ति च—इमे वुच्चन्ति, भिक्खवे, धम्मा अभिञ्ञा सच्छिकातब्बा। इमे खो, भिक्खवे, चत्तारो धम्मा'' ति॥ ●

२. परियेसनासुत्तं : १. ''चतस्सो इमा, भिक्खवे, अनरियपरियेसना। कतमा

---

२६. अभिज्ञावर्ग

१. अभिज्ञासूत्र : : अभिज्ञा से परिज्ञेय आदि चार धर्म

१. ''भिक्षुओ! धर्म चार प्रकार के होते हैं। कौन से चार? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कुछ धर्म अभिज्ञा से परिज्ञेय (ज्ञातव्य) होते हैं, (२) कुछ धर्म अभिज्ञा से प्रहातव्य (छोड़ने योग्य) होते हैं, (३) कुछ धर्म अभिज्ञा से भावनीय (साधना करने योग्य) होते हैं, और (४) कुछ धर्म अभिज्ञा द्वारा साक्षात्करणीय होते हैं।

२. ''भिक्षुओ! कौन से धर्म अभिज्ञा से परिज्ञेय होते हैं? रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान—ये पाँच उपादानस्कन्ध। भिक्षुओ! ये धर्म **अभिज्ञा द्वारा परिज्ञेय** होते हैं। (१)

३. ''और, भिक्षुओ! कौन धर्म अभिज्ञा से प्रहाणीय (छोड़ने योग्य) होते हैं? अविद्या एवं भवतृष्णा—भिक्षुओ! ये दो धर्म **अभिज्ञा से प्रहाणीय** होते हैं। (२)

४. ''और, भिक्षुओ! कौन धर्म अभिज्ञा से साधनाभ्यास करने योग्य होते हैं? शमथ एवं विपश्यना—भिक्षुओ! ये दो धर्म **अभिज्ञा से साधनाभ्यास** (भावना) **करने योग्य** होते हैं। (३)

५. ''और, भिक्षुओ! कौन धर्म अभिज्ञा से साक्षात्करणीय होते हैं? विद्या एवं विमुक्ति—भिक्षुओ! ये कहलाते हैं **अभिज्ञा से साक्षात्करणीय** धर्म। (४)

''भिक्षुओ! इस प्रकार चार धर्म साक्षात्करणीय होते हैं॥'' ●

२. पर्येषणासूत्र : : चार अनार्य पर्येषणा

१. भिक्षुओ! ये चार अनार्य पर्येषणाएँ होती हैं। कौन-सी चार? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई

चतस्सो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना जराधम्मो समानो जराधम्मंयेव परियेसति; अत्तना ब्याधिधम्मो समानो ब्याधिधम्मंयेव परियेसति; अत्तना मरणधम्मो समानो मरणधम्मंयेव परियेसति; अत्तना सङ्किलेसधम्मो समानो सङ्किलेसधम्मंयेव परियेसति। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो अनरियपरियेसना।

२. "चतस्सो इमा, भिक्खवे, अरियपरियेसना। कतमा चतस्सो ? इध, भिक्खवे, एकच्चो अत्तना जराधम्मो समानो जराधम्मे आदीनवं विदित्वा अजरं अनुत्तरं योगक्खेमं निब्बानं परियेसति; अत्तना ब्याधिधम्मो समानो ब्याधिधम्मे आदीनवं विदित्वा अब्याधिं [B.571] अनुत्तरं योगक्खेमं निब्बानं परियेसति; अत्तना मरणधम्मो समानो मरणधम्मे आदीनवं विदित्वा अमतं अनुत्तरं योगक्खेमं निब्बानं परियेसति; अत्तना सङ्किलेसधम्मो [R.248] समानो सङ्किलेसधम्मे आदीनवं विदित्वा असङ्किलिट्ठं अनुत्तरं योगक्खेमं निब्बानं परियेसति। इमा खो, भिक्खवे, चतस्सो अरियपरियेसना" ति॥ ●

३. सङ्गहवत्थुसुत्तं : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, सङ्गहवत्थूनि। कतमानि चत्तारि? दानं, पेयवज्जं, अत्थचरिया, समानत्तता—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि सङ्गहवत्थूनी" ति॥ ●

४. मालुक्यपुत्तसुत्तं : १. अथ खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; [N.263] उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—

पुरुष बुढ़ापा (जरा) आने पर बुढ़ापे के निवारण में लगा रह जाता है, (२) कोई, स्वयं रोगग्रस्त होने पर रोगनिराकरण की खोज में ही लगा रह जाता है, (३) कोई मृत्यु सम्मुख उपस्थित होने पर, मृत्यु के निराकरण की ही खोज में लगा रह जाता है। (४) कोई किसी प्रकार का कष्ट आने पर, उस कष्ट के निवारण की खोज में ही लगा रह जाता है। भिक्षुओ! इस प्रकार ये **चार अनार्य पर्येषणा** होती हैं। (१)

२. "और, भिक्षुओ! ये चार आर्य पर्येषणाएँ होती हैं? कौन-सी चार? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुरुष बुढ़ापे को शरीर का स्वभाव मान कर अपने बुढ़ापे (वार्धक्य) के दोषों को देखता हुआ जरा (बुढ़ापा) रहित अद्वितीय निर्वाण की पर्येषणा करता है; (२) इसी प्रकार, कोई रोग के दोषों को शरीर का स्वभाव जान कर रोगरहित अद्वितीय निर्वाण की खोज करता है; (३) इसी प्रकार, भिक्षुओ! कोई, मृत्यु को शरीर का स्वभाव मान कर मृत्यु में नाना प्रकार के दोष देखता हुआ मरणरहित अद्वितीय निर्वाण की खोज करता है; (४) इसी प्रकार, भिक्षुओ! क्लेशों को शरीर की प्रकृति मानकर उसके दोषों को देखता हुआ क्लेशरहित अद्वितीय निर्वाण की खोज करता है। भिक्षुओ! ये **चार आर्य पर्येषणा** होती हैं॥" ●

३. संग्रहवस्तुसूत्र : : चार संग्रह वस्तुएँ

१. "भिक्षुओ! ये चार वस्तुएँ संग्रहयोग्य होती हैं। कौन-सी चार? (१) दान में प्राप्त वस्तु,

२. ''साधु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं देसेतु, यमहं भगवतो धम्मं सुत्वा एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरेय्यं'' ति।

''एत्थ इदानि, मालुक्यपुत्त, किं दहरे भिक्खू वक्खाम; यत्र हि नाम त्वं जिण्णो वुड्ढो महलको तथागतस्स सङ्खित्तेन ओवादं याचसी'' ति!

''देसेतु मे, भन्ते, भगवा सङ्खित्तेन धम्मं; देसेतु सुगतो सङ्खित्ते धम्मं। अप्पेव नामाहं भगवतो भासितस्स अत्थं आजानेय्यं; अप्पेव नामाहं भगवतो भासितस्स दायादो अस्सं'' ति।

''चत्तारोमे, मालुक्यपुत्त, तण्हुप्पादा यत्थ भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति। कतमे चत्तारो? चीवरहेतु वा, मालुक्यपुत्त, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति। पिण्डपातहेतु वा, मालुक्यपुत्त, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति। सेनासनहेतु वा, मालुक्यपुत्त, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति। इतिभवाभवहेतु वा, मालुक्यपुत्त, भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति। इमे खो, मालुक्यपुत्त, चत्तारो तण्हुप्पादा यत्थ भिक्खुनो तण्हा उप्पज्जमाना उप्पज्जति। यतो खो, मालुक्यपुत्त, भिक्खुनो तण्हा पहीना होति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा, [B.572,R.249] अयं वुच्चति, मालुक्यपुत्त, 'भिक्खु अच्छेच्छि तण्हं, विवत्तयि संयोजनं, सम्मा मानाभिसमया अन्तमकासि दुक्खस्सा''' ति।

३. अथ खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो भगवता इमिना ओवादेन ओवदितो उट्ठायासना

---

(२) प्रेमयुक्त वाणी, (३) अर्थचर्या तथा (४) सब में समान भाव रखना—भिक्षुओ! ये चार संग्रहयोग्य वस्तु होती हैं॥''

•

४. मालुक्यपुत्रसूत्र : : चार तृष्णोत्पाद

१. तब आयुष्मान् मालुक्यपुत्र जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् मालुक्यपुत्र ने भगवान् से यह निवेदन किया—

२. ''अच्छा हो, भन्ते! भगवान् मुझे संक्षेप में धर्म का उपदेश करें। भगवान् के श्रीमुख से वह धर्मोपदेश सुनकर कहीं एकान्त में एकाकी बैठकर सावधानीपूर्वक उत्साहसम्पन्न होकर मैं उसका अभ्यास करता।''

''अरे मालुक्यपुत्र! अब हम इन तरुण भिक्षुओं को क्या उपालम्भ दें, जब तुम्हारे जैसे वृद्ध पुराने भिक्षु भी संक्षिप्त धर्मोपदेश की ही याच्ञा कर रहे हैं!''

''भन्ते! कुछ भी कहिये; परन्तु मुझको संक्षिप्त धर्मोपदेश कर ही दें, जिसके फलस्वरूप मैं अपना प्रयोजन सिद्ध कर लूँ और आपके इस उपदेश का भी उत्तराधिकारी बन सकूँ!''

'मालुक्यपुत्र! तृष्णा की उत्पत्ति के ये चार स्थान हैं। कौन से चार? (१) चीवर के कारण मालुक्यपुत्र! किसी भिक्षु को तृष्णा उत्पन्न होती है; (२) पिण्डपात के कारण...पूर्ववत्..., (३) शयनासन के कारण..., (४) 'यहाँ उत्पन्न होऊँ या यहाँ उत्पन्न न होऊँ'—इस इच्छा के कारण तृष्णा उत्पन्न होती है। मालुक्यपुत्र! जब उस भिक्षु की यह तृष्णा मूलत: उच्छिन्न हो जाती है, नष्ट हो जाती है, तब ऐसा भिक्षु—'इसने अपनी तृष्णा का मूलत: उच्छेद कर लिया', 'अपने संयोजनों को क्षीण

भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो आयस्मा मालुक्यपुत्तो एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा [N.264] सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनायस्मा मालुक्यपुत्तो अरहतं अहोसी ति॥ ●

५. कुलसुत्तं : १. ''यानि कानिचि, भिक्खवे, कुलानि भोगेसु महत्तं पत्तानि न चिरट्ठितिकानि भवन्ति, सब्बानि तानि चतूहि ठानेहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन। कतमेहि चतूहि? नट्ठं न गवेसन्ति, जिण्णं न पटिसङ्खरोन्ति, अपरिमितपानभोजना होन्ति, दुस्सीलं इत्थिं वा पुरिसं वा आधिपच्चे ठपेन्ति। यानि कानिचि, भिक्खवे, कुलानि भोगेसु महत्तं पत्तानि न चिरट्ठितिकानि भवन्ति, सब्बानि तानि इमेहि चतूहि ठानेहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन।

२. ''यानि कानिचि, भिक्खवे, कुलानि भोगेसु महत्तं पत्तानि चिरट्ठितिकानि भवन्ति, सब्बानि तानि चतूहि ठानेहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन। कतमेहि चतूहि? नट्ठं गवेसन्ति, जिण्णं पटिसङ्खरोन्ति, अपरिमितपानभोजना होन्ति, सीलवन्तं इत्थिं वा पुरिसं वा आधिपच्चे

कर लिया', 'इसने धर्म की सम्यक् आराधना कर अपने दुःखों का अन्त कर लिया'—ऐसा कहलाता है।''

तब आयुष्मान् मालुक्यपुत्र, भगवान् का यह उपदेश सुनकर, आसन से उठकर, भगवान् को प्रणाम कर वहाँ से चला गया और उसने कहीं एकान्त में एकाकी बैठकर, सावधानीपूर्वक उद्योग करते हुए कुछ ही समय में; जिसके लिये कुलपुत्र घर-द्वार छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण करते हैं, तथा धर्मसाधना कर इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात् कर प्राप्त कर साधना किया करते हैं; यह ज्ञान प्राप्त कर लिया—''मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है, मेरी धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी है, मेरा कर्त्तव्य पूर्ण हो गया, अब मेरा कोई कर्त्तव्य शेष नहीं है।'' और, वह मालुक्यपुत्र कुछ ही समय बाद अर्हतों में एक (विशिष्ट) गिना जाने लगा॥ ●

५. कुलसूत्र : : चार स्थानों से कुलों की महत्ता

१. भिक्षुओ! जितने भी कुलों ने भोगैश्वर्य में महत्ता (वृद्धि) प्राप्त की, परन्तु वे फिर भी चिरकाल तक स्थायी न रह सके, इसमें चार ही कारण है, या इनमें से कोई एक। कौन से चार? (१) वे नष्ट वस्तु की वास्तविक गवेषणा (खोज) नहीं करते; (२) जीर्ण (पुरानी) वस्तु का प्रतिसंस्कार (जीर्णोद्धार= मरम्मत) नहीं करते; (३) भोजन और पान की मात्रा न जानकर उनका अपिरिमित सेवन (उपयोग) करते हैं; तथा (४) दुराचारी स्त्री या पुरुष की अधीनता (आधिपत्य) में रहते हैं। (इस प्रकार) भिक्षुओ! आज तक जितने भी कुलों ने भोगैश्वर्य में महत्ता प्राप्त की, परन्तु वे चिरस्थायी न रह सके, उसमें उपर्युक्त चार ही कारण हैं, या इनमें से कोई एक।

२. ''और, भिक्षुओ! जितने भी कुलों ने भोगैश्वर्यों में वृद्धि प्राप्त की है तथा उनकी यह वृद्धि चिरस्थायी भी रह सकी है, इसमें भी चार ही कारण हैं, या इनमें से कोई एक। कौन से चार?

ठपेन्ति। यानि कानिचि, भिक्खवे, कुलानि भोगेसु महत्तं पत्तानि चिरट्ठितिकानि भवन्ति, सब्बानि तानि इमेहि चतूहि ठानेहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन" ति॥ ●

६. पठमआजानीयसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो [R.250] रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। [B.573] कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति।

२. "एवमेव खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु [N.265] वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च।

३. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु

---

१. वे नष्ट वस्तु की सच्चाई जानने का प्रयास (खोज) करते हैं; २. वे अपनी जीर्णवस्तुओं का प्रतिसंस्कार (जीर्णोद्धार) करते रहते हैं; ३. भोजन एवं पान की मात्रा जानते हुए उनका यथोचित उपयोग ही करते हैं; तथा ४. किसी शीलवान् स्त्री या पुरुष के अधीन रहते हैं। इस प्रकार, भिक्षुओ! आज तक जितने भी कुलों ने भोगैश्वर्यों में महत्ता प्राप्त की, तथा जो चिरस्थायी हो सके उसमें ये चार ही कारण हैं, या इनमें से कोई एक॥" ●

६. प्रथम आजानेयसूत्र : : उच्च जाति के अश्व में चार अच्छाइयाँ

१. "भिक्षुओ! चार अङ्गों (अच्छाइयों) से युक्त कोई उच्च जाति का अश्व ही राजा के योग्य तथा उसका कार्यसाधक होता हुआ उसका अङ्ग कहलाता है। किन चार अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई उच्च जाति का अश्व (१) वर्ण (रूप) सम्पन्न, (२) बलसम्पन्न, (३) जव (वेग) सम्पन्न तथा (४) आरोहण (चढ़ना) एवं अवरोहण (उतरना) में सहज (सरल) होता है। भिक्षुओ! इन चार अङ्गों से युक्त...पूर्ववत्...उसका अङ्ग कहलाता है।

२. "इसी प्रकार, भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों के लिये अपने घरों में आह्वानीय ...पूर्ववत्... इस लोक के लिये पुण्यभूमि है। किन चार धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु (१) वर्णसम्पन्न, (२) बलसम्पन्न, (३) जवसम्पन्न एवं (४) आरोहपरिणाहसम्पन्न होता है।

३. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'वर्णसम्पन्न' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलवान् होता है ...पूर्ववत्... प्राप्त शिक्षाओं का सतत अभ्यास करता है; ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु **वर्णसम्पन्न** कहलाता है। (१)

४. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'बलसम्पन्न' कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु साधना

आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति।

५. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति।

६. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु आरोहपरिणाहसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं। एवं खो, [R.251] भिक्खवे, भिक्खु आरोहपरिणाहसम्पन्नो होति।

७. ''इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा'' ति॥

७. दुतियआजानीयसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति। कतमेहि चतूहि? [B.574] इध, भिक्खवे, रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च। इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं तेव सङ्ख्यं गच्छति।

२. ''एवमेव खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति [N.266] ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि चतूहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो च होति बलसम्पन्नो च जवसम्पन्नो च आरोहपरिणाहसम्पन्नो च।

में उद्योगरत हो कर अकुशल धर्मों के प्रहाण तथा कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये बलपूर्वक दृढ़पराक्रम होकर, जूआ न टेकते हुए (उत्साह न त्याग कर), प्रयासरत रहता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु **बलसम्पन्न** कहलाता है। (२)

५. कैसे भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'जवसम्पन्न' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'यह दुःख है'—ऐसा जानता है...पूर्ववत्...'यह दुःखनिरोधगामी मार्ग है' ऐसा जानता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु **जवसम्पन्न** कहलाता है। (३)

६. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आरोह परिणाहसम्पन्न होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु चीवर, पिण्डपात, शयनासन तथा व्याधि-उपशमनार्थ औषध आदि का अनायास लाभ करता रहता है; ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु **आरोहपरिणाहसम्पन्न** होता है। (४)

७. ''भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त ऐसा साधक भिक्षु ही गृहस्थजनों द्वारा अपने घरों में आह्वानीय होता है...वह लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि होता है॥''

७. द्वितीय आजानेयसूत्र : : साधक भिक्षु में चार गुण

१. ...पूर्वसूत्रवत्...।

३. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु वण्णसम्पन्नो होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु बलसम्पन्नो होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु आसवानं खया ...पे०... सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु जवसम्पन्नो होति।

६. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु आरोहपरिणाहसम्पन्नो होति? इध, [R.252] भिक्खवे, भिक्खु लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु आरोहपरिणाहसम्पन्नो होति।

७. "इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥ ●

८. **बलसुत्तं** : १. "चत्तारिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि चत्तारि? विरियबलं, सतिबलं, समाधिबलं, पञ्ञाबलं—इमानि खो, भिक्खवे, चत्तारि बलानी" ति॥ ●

९. अरञ्ञसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु नालं [B.575]

---

२. ...पूर्वसूत्रवत्...। किन चार धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु वर्णसम्पन्न...आरोह-परिणाहसम्पन्न होता है।

३. पूर्वसूत्रवत्...। (वर्णसम्पन्न)

४. पूर्वसूत्रवत्...। (बलसम्पन्न)

५. कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'जवसम्पन्न' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आश्रवों के क्षय से...पूर्ववत्...साक्षात्कार कर, प्राप्त कर साधना करता है—ऐसा भिक्षु **जवसम्पन्न** होता है।

६. कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आरोहपरिणाहसम्पन्न होता है?...पूर्वसूत्रवत्...ऐसा भिक्षु **आरोहपरिणाहसम्पन्न** होता है।

७. "भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों द्वारा अपने घरों में आह्वानीय होता है... पूर्ववत्...लोक के लिये यह अद्वितीय पुण्यभूमि है॥" ●

८. बलसूत्र : : **चार बल**

"भिक्षुओ! ये चार 'बल' कहलाते हैं। कौन से चार? (१) वीर्यबल, (२) स्मृतिबल, (३) समाधिबल एवं (४) प्रज्ञाबल। भिक्षुओ! ये चार बल कहलाते हैं॥" ●

अरञ्ञवनप्पत्थानि पन्तानि सेनासनानिं पटिसेवितुं। कतमेहि चतूहि? कामवितक्केन, ब्यापादवितक्केन, विहिंसावितक्केन, दुप्पञ्ञो होति जळो एळमूगो—इमेहि खो, भिक्खवे, [N.267] चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु नालं अरञ्ञवनप्पत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं।

२. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलं अरञ्ञवनप्पत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं। कतमेहि चतूहि? नेक्खम्मवितक्केन, अब्यापादवितक्केन, अविहिंसावितक्केन, पञ्ञवा होति अजळो अनेळमूगो—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलं अरञ्ञवनप्पत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं" ति॥●

१०. कम्मसुत्तं : १. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि चतूहि? सावज्जेन कायकम्मेन, सावज्जेन वचीकम्मेन, सावज्जेन मनोकम्मेन, सावज्जाय दिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो बालो अब्यत्तो असप्पुरिसो खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति॥

२. "चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खत्तं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवति।

---

९. अरण्यसूत्र : : धर्म-साधना में विघ्नभूत चार वितर्क

१. "भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त कोई भिक्षु अरण्य या किसी वनप्रदेश के एकान्त स्थान में अपना आसन लगाकर साधना करने योग्य नहीं होता। किन चार धर्मों से? (१) कामवितर्क से, (२) व्यापादवितर्क से, (३) विहिंसावितर्क से, एवं (४) मूक के समान दुष्प्रज्ञात से—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त भिक्षु अरण्य...साधना करने योग्य नहीं होता।

२. "और, भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त भिक्षु किसी अरण्य या वनप्रदेश के एकान्त स्थान में अपना आसन लगाकर साधना करने योग्य होता है। किन चार धर्मों से? नैष्काम्य वितर्क से, अव्यापादवितर्क से, अविहिंसावितर्क से तथा बुद्धिमान् के समान प्रज्ञावत्ता से—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त भिक्षु ही अरण्य या किसी वनप्रदेश के एकान्त स्थान में बैठकर साधना करने योग्य होता है॥"

●

१०. कर्मसूत्र : : अपुण्य एवं पुण्य के दाता चार धर्म

१. "भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त कोई मूर्ख कुबुद्धि असत्पुरुष स्वयं को क्षत उपहत के समान मानता है, विद्वज्जन भी उसकी निन्दा ही करते हैं। यह अपने लिये बहुत-सा अपुण्य सञ्चित करता रहता है। किन चार धर्मों से? सदोष (निन्द्य) कायकर्म, वाक्कर्म एवं मन:कर्म से तथा सदोष दृष्टि से—इन चार (पाप) धर्मों से युक्त मूर्ख, कुबुद्धि असत्पुरुष...पूर्ववत्...अपुण्यसञ्चित करता है।

२. "तथा, भिक्षुओ! चार (कुशल) धर्मों से युक्त, पण्डित, सुबुद्धि सत्पुरुष धर्मसाधना में

कतमेहि चतूहि ? अनवज्जेन कायकम्मेन, अनवज्जेन वचीकम्मेन, अनवज्जेन मनोकम्मेन, अनवज्जाय दिट्ठिया—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो पण्डितो वियत्तो सप्पुरिसो अक्खत्तं अनुपहतं अत्तानं परिहरति, अनवज्जो च होति अननुवज्जो विञ्ञूनं, बहुं च पुञ्ञं पसवती'' ति॥ ●

अभिञ्ञावग्गो छब्बीसतिमो॥

तस्सुद्दानं

अभिञ्ञा परियेसना, सङ्गहं मालुक्यपुत्तो। [B.576]
कुलं द्वे च आजानीया, बलं अरञ्ञकम्मुना ति॥ ●

२७. कम्मपथवग्गो

१. पाणातिपातीसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो [N.268] यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? अत्तना च पाणातिपाती होति, परं च पाणातिपाते समादपेति, पाणातिपाते च समनुञ्ञो होति, पाणातिपातस्स च वण्णं भासति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि चतूहि? अत्तना च पाणातिपाता पटिविरतो होति, परं च पाणातिपाता वेरमणिया

स्वयं सतत उत्साहित अनुभव करता है, विद्वान् भी उसका प्रशंसा करते हैं। कौन से चार धर्मों से ? अनवद्य (निर्दोष) कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्म से तथा निर्दोष दृष्टि से—भिक्षुओ ! इन चार धर्मों से युक्त पण्डित...स्वयं के लिये बहुत पुण्य का सञ्चय कर लेता है॥'' ●

अभिज्ञावर्ग छब्बीसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. अभिज्ञासूत्र, २. पर्येषणासूत्र, ३. संग्रहवस्तुसूत्र, ४. मालुक्यपूत्रसूत्र, ५. कुलसूत्र, ६. प्रथम आजानेयसूत्र, ७. द्वितीय आजानेयसूत्र, ८. बलसूत्र, ९. अरण्यसूत्र एवं १०. कर्मसूत्र। ●

२७. कर्मपथवर्ग

१. प्राणातिपातिसूत्र : : चार धर्मों से युक्त पुरुष नरक या स्वर्ग जाता है

१. ''भिक्षुओ! इन चार (पाप) धर्मों से युक्त पुरुष सीधे नरकगामी होता है। किन चार धर्मों से ? (१) जो स्वयं प्राणातिपाती (हिंसक) होता है, (२) दूसरों को प्राणातिपात के लिये प्रेरित करता है, (३) किसी के प्राणातिपात का समर्थन करता है, या (४) प्राणातिपात की प्रशंसा करता है—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष अनायास ही नरक में जा गिरता है।

२. ''और, भिक्षुओ! इन चार (कुशल) धर्मों से युक्त पुरुष स्वर्ग में ही जाता है। किन चार धर्मों से ? (१) जो स्वयं प्राणातिपात से विरत रहता है, (२) तथा दूसरों को भी प्राणातिपात से विरत

समादपेति, पाणातिपाता वेरमणिया च समनुञ्ञो होति, पाणातिपाता वेरमणिया च वण्णं भासति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥

२. अदिन्नादायीसुत्तं : १. ''चतूहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि चतूहि? अत्तना च अदिन्नादायी होति, परं च अदिन्नादाने समादपेति, अदिन्नादाने च समनुञ्ञो होति, अदिन्नादानस्स च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

[R.254]२. ''अत्तना च अदिन्नादाना पटिविरतो होति, परं च अदिन्नादाना वेरमणिया समादपेति, अदिन्नादाना वेरमणिया च समनुञ्ञो होति, अदिन्नादाना वेरमणिया च वण्णं भासति—इमेहि खो, भिक्खवे, ...पे०... एवं सग्गे'' ति॥

[B.577] **३. मिच्छाचारीसुत्तं :** १. ''अत्तना च कामेसुमिच्छाचारी होति, परं च कामेसुमिच्छाचारे समादपेति, कामेसुमिच्छाचारे च समनुञ्ञो होति, कामेसुमिच्छाचारस्स च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

२. ''अत्तना च कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, परं च कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया समादपेति, कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिया च समनुञ्ञो होति, कामेसुमिच्छाचारा [N.269] च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये॥

४. मुसावादीसुत्तं : १. ''अत्तना च मुसावादी होति, परं च मुसावादे समादपेति, मुसावादे च समनुञ्ञो होति, मुसावादस्स च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

२. ''अत्तना च मुसावादा पटिविरतो होति, परं च मुसावादे वेरमणिया समादपेति,

---

रहने की प्रेरणा देता है, (३) जो प्राणातिपात से विरत रहने का समर्थन करता है, एवं (४) प्राणातिपात से विरति की प्रशंसा करता है—भिक्षुओ! इन चार धर्मों से युक्त पुरुष अनायास स्वर्ग में ही पहुँचता है॥''

२. अदत्तादायिसूत्र :: नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म

१. ''भिक्षुओ! चार धर्मों से युक्त पुरुष अनायास नरक में जा गिरता है। किन चार धर्मों से? जो स्वयं न दिये को लेने वाला चौर होता है...पूर्वसूत्रवत्...॥ *('अदत्तादान' शब्द लगाकर विस्तार कर लें।)*

३. मिथ्याचारिसूत्र :: नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म

१. ...पूर्ववत्...जो स्वयं कामभोगों में मिथ्याचरण (व्यभिचार) करनेवाला होता है... पूर्वसूत्रवत्...॥ *('मिथ्याचार' शब्द लगाकर विस्तार कर लें।)*

४. मृषावादिसूत्र :: नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म

१. ...पूर्ववत्...जो स्वयं मृषावादी (असत्यभाषी) होता है...पूर्वसूत्रवत्...॥ *('असत्य-भाषण' शब्द लगाकर विस्तार कर लें।)*

मुसावादा वेरमणिया च समनुञ्ञो होति, मुसावादा वेरमणिया च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं सग्गे'' ति॥ ●

५. पिसुणवाचासुत्तं : १. ''अत्तना च पिसुणवाचो होति, परं च पिसुणाय वाचाय समादपेति, पिसुणाय वाचाय च समनुञ्ञो होति, पिसुणाय वाचाय च वण्णं भासति—इमेहि ...पे०... एवं निरये।

२. ''अत्तना च पिसुणाय वाचाय पटिविरतो होति, परं च पिसुणाय वाचाय वेरमणिया समादपेति, पिसुणाय वाचाय वेरमणिया च समनुञ्ञो होति, पिसुणाय वाचाय च वेरमणिया च वण्णं भासति—इमेहि ...पे०... एवं सग्गे'' ति॥ ●

६. फरुसवाचासुत्तं : १. ''अत्तना च फरुसवाचो होति, परं च फरुसाय वाचाय समादपेति, फरुसाय वाचाय च समनुञ्ञो होति, फरुसाय वाचाय च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

२. ''अत्तना च फरुसवाचाय पटिविरतो होति, परं च फरुसाय वाचाय [B.578] वेरमणिया समादपेति, फरुसाय वाचाय वेरमणिया च समनुञ्ञो होति, फरुसाय [R.255] वाचाय वेरमणिया च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं सग्गे'' ति॥ ●

७. सम्फप्पलापसुत्तं : १. ''अत्तना च सम्फप्पलापी होति, परं च [N.270] सम्फप्पलापे समादपेति, सम्फप्पलापे च समनुञ्ञो होति, सम्फप्पलापस्स च वण्णं भासति—इमेहि खो, ...पे०... एवं निरये।

२. ''अत्तना च सम्फप्पलापा पटिविरतो होति, परं च सम्फप्पलापा वेरमणिया समादपेति, सम्फप्पलापा वेरमणिया च समनुञ्ञो होति, सम्फप्पलापा वेरमणिया च वण्णं भासति—इमेहि खो, भिक्खवे, ...पे०... एवं सग्गे'' ति॥ ●

८. अभिज्झालुसुत्तं : १. ''अत्तना च अभिज्झालु होति, परं च अभिज्झाय समादपेति, अभिज्झाय च समनुञ्ञो होति, अभिज्झाय च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

---

५. पिशुनवाक्सूत्र :: **नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म**

१. पूर्ववत्...जो स्वयं पिशुनवाक् (चुगलखोर) होता है...पूर्वसूत्रवत्....। *('पिशुनवाक्' शब्द लगाकर विस्तार कर लें।)* ●

६. परुषवाक्सूत्र :: **नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म**

१. ...पूर्ववत्...जो परुषवाक् (कठोर वाणी बोलनेवाला) होता है...पूर्वसूत्रवत्...॥ *('परुषवाक्' शब्द लगाकर सूत्र का विस्तार कर लें।)* ●

७. सम्प्रलापसूत्र :: **नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म**

१. ...पूर्ववत्...जो स्वयं सम्प्रलापी (बकवादी=व्यर्थ बोलने वाला) होता है...पूर्वसूत्रवत्...॥ *('सम्प्रलाप' शब्द लगाकर सूत्रका विस्तार कर लें।)* ●

२. "अत्तना च अनभिज्झालु होति, परं च अनभिज्झाय समादपेति, अनभिज्झाय च समनुञ्ञो होति, अनभिज्झाय च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं सग्गे" ति॥ ●

९. ब्यापन्नचित्तसुत्तं : १. "अत्तना च ब्यापन्नचित्तो होति, परं च ब्यापादे समादपेति, ब्यापादे च समनुञ्ञो होति, ब्यापादस्स च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

२. "अत्तना च ब्यापन्नचित्तो होति, परं च अब्यापादे समादपेति, अब्यापादे च समनुञ्ञो होति, अब्यापादस्स च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं सग्गे" ति॥ ●

१०. मिच्छादिट्ठिसुत्तं : १. "अत्तना च मिच्छादिट्ठिको होति, परं च मिच्छादिट्ठिया समादपेति, मिच्छादिट्ठिया च समनुञ्ञो होति, मिच्छादिट्ठिया च वण्णं भासति—इमेहि खो ...पे०... एवं निरये।

[N.271,B.579] २. "अत्तना च सम्मादिट्ठिको होति, परं च सम्मादिट्ठिया समादपेति, [R.256] सम्मादिट्ठिया च समनुञ्ञो होति, सम्मादिट्ठिया च वण्णं भासति—इमेहि खो, भिक्खवे, चतूहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

कम्मपथवग्गो सत्तवीसतिमो॥

२८. रागपेय्यालं

१. सतिपट्ठानसुत्तं : १. "रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय चत्तारो धम्मा भावेतब्बा। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खु काये कायानुपस्सी विहरति आतापी

---

८. अभिध्यालुसूत्र : : नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म

१. ...पूर्ववत्...जो स्वयं अभिध्यालु (लोभी) होता है...पूर्वसूत्रवत्... ॥ *('अभिध्यालु शब्द लगाकर सूत्र का विस्तार कर लें।)* ●

९. व्यापन्नचित्तसूत्र : : नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म

१. ...पूर्ववत्...जो स्वयं दूसरों के प्रति अपने मन में द्वेष रखता है (व्यापन्नचित्त होता है)... पूर्वसूत्रवत्... ॥ *('व्यापन्नचित्त' शब्द लगाकर सूत्र का विस्तार कर लें।)* ●

१०. मिथ्यादृष्टिसूत्र : : नरक या स्वर्ग में ले जानेवाले चार धर्म

१. ...पूर्ववत्...जो स्वयं रत्नत्रय के प्रति मिथ्यादृष्टि (मिथ्याधारणा) रखता है...पूर्वसूत्रवत्... ॥ *('मिथ्यादृष्टि' शब्द लगाकर सूत्र का विस्तार कर लें।)* ●

कर्मपथवर्ग सत्ताईसवाँ सम्पन्न॥

२८. रागपेय्याल

१. स्मृतिप्रस्थानसूत्र : : राग के अभिज्ञान हेतु अभ्यसनीय चार धर्म

१. "भिक्षुओ! राग (आसक्ति) के अभिज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) के लिये चार धर्मों की भावना

सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं; वेदनासु ...पे०... चित्ते ...पे०... धम्मेसु धम्मानुपस्सी विहरति आतापी सम्पजानो सतिमा विनेय्य लोके अभिज्झादोमनस्सं। रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे चत्तारो धम्मा भावेतब्बा'' ति॥ ●

२. सम्मप्पधानसुत्तं : १. ''रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय चत्तारो धम्मा भावेतब्बा। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खु अनुप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं अनुप्पादाय छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति; उप्पन्नानं पापकानं अकुसलानं धम्मानं पहानाय ...पे०... अनुप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं उप्पादाय ...पे०... उप्पन्नानं कुसलानं धम्मानं ठितिया असम्मोसाय भिय्योभावाय वेपुल्लाय भावनाय पारिपूरिया छन्दं जनेति वायमति विरियं आरभति चित्तं पग्गण्हाति पदहति। रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे चत्तारो धम्मा भावेतब्बा'' ति॥ ●

३. इद्धिपादसुत्तं : १. ''रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय चत्तारो धम्मा भावेतब्बा। कतमे चत्तारो? इध, भिक्खवे, भिक्खु छन्दसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेति; विरियसमाधि ...पे०... चित्तसमाधि ...पे०... वीमंसासमाधिपधानसङ्खार- [N.272,B.580] समन्नागतं इद्धिपादं भावेति। रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे चत्तारो धम्मा भावेतब्बा'' ति॥ ●

(साधना=अभ्यास) करनी चाहिये। कौन से चार? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु काय (शरीर) में कायानुपश्यना करता हुआ उद्योगसम्पन्न एवं स्मृतिमान् होकर लोक में लोभ एवं दौर्मनस्य को दूर कर साधना करता है। (२) वेदना में...पूर्वसूत्रवत्... (३) चित्त में ...पूर्ववत्... (४) धर्मों में धर्मानुपश्यना करता हुआ उद्योगी एवं स्मृतिमान् होकर लोक में लोभ एवं दौर्मनस्य को दूर कर साधना करता है।

भिक्षुओ! राग के अभिज्ञान के लिये इन चार धर्मों की भावना करनी चाहिये॥'' ●

२. सम्यक्प्रधानसूत्र : : **राग के अभिज्ञानहेतु अभ्यसनीय चार धर्म**

१. ''भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान हेतु चार धर्मों का अभ्यास करना चाहिये। कौन से चार? यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु अनुत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के अनुत्पाद के लिये इच्छा करता है, प्रयत्न करता है, प्रयास करता है, उद्योग करता है, चित्त को निगृहीत करता है, उसको वश में करता है; तथा उत्पन्न पापमय अकुशल धर्मों के नाश के लिये...पूर्ववत्...अनुत्पन्न कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये...पूर्ववत्...तथा उत्पन्न कुशल धर्मों की स्थायिता के लिये इच्छा करता है, प्रयत्न करता है, प्रयास करता है, उद्योग करता है, चित्त को निगृहीत करता है, उसको वश में करता है। भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान के लिये इन चार धर्मों का सतत अभ्यास करना चाहिये॥'' ●

३. ऋद्धिपादसूत्र : : **राग के अभिज्ञानहेतु अभ्यसनीय चार धर्म**

१. ''भिक्षुओ! राग के अभिज्ञानहेतु इन चार धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन से चार? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु छन्दसमाधिप्रधान संस्कार से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है; (२) वीर्यसमाधिप्रधान...पूर्ववत्...; (३) चित्तसमाधिप्रधान...; (४) मीमांसासमाधिप्रधान

४-३०. परिञ्ञादिसुत्तानि : १. रागस्स, भिक्खवे, परिञ्ञाय ...पे०... [R.257] परिक्खयाय... पहानाय... खयाय... वयाय... विरागाय... निरोधाय... चागाय... पटिनिस्सग्गाय चत्तारो धम्मा भावेतब्बा ...पे०... ॥ ●

३१-५१०. दोसअभिञ्ञादिसुत्तानि : १. "दोसस्स ...पे०... मोहस्स... कोधस्स... उपनाहस्स... मक्खस्स... पलासस्स... इस्साय... मच्छरियस्स... मायाय... साठेय्यस्स... थम्भस्स... सारम्भस्स... मानस्स... अतिमानस्स... मदस्स... पमादस्स अभिञ्ञाय... परिञ्ञाय... परिक्खयाय... पहानाय... खयाय... वयाय... विरागाय... निरोधाय... चागाय... पटिनिस्सग्गाय इमे चत्तारो धम्मा भावेतब्बा" ति॥ ●

रागपेय्यालं निट्ठितं॥

चतुक्कनिपातो निट्ठितो॥

●

संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना करता है। भिक्षुओ! राग की अभिज्ञा के लिये इन चार धर्मों की निरन्तर भावना करनी चाहिए॥" ●

४-३०. परिज्ञादिसूत्र : : चार धर्मों का अभ्यास

१. भिक्षुओ! राग के परिज्ञान के लिये...पूर्ववत्...परिक्षय के लिये...प्रहाण के लिये...क्षय के लिये...विराग के लिये...निरोध के लिये...त्याग के लिंये...परित्याग के लिये चार धर्मों की भावना करनी चाहिये। ●

३१-५१०. द्वेष-अभिज्ञादिसूत्र : : चार धर्मों का अभ्यास

१. "द्वेष के ...पूर्ववत्... मोह के... क्रोध के... शत्रुभाव (वैर) के... म्रक्ष (दूसरों को अपने से हीन मानना) के...प्रदाश के...ईर्ष्या के...मात्सर्य के... माया के... शठता के... स्तम्भ (किङ्कर्त्तव्यविमूढता) के...सारम्भ (कलह) के... मान के... अतिमान के... मद के... प्रमाद के अभिज्ञान के लिये... परिज्ञान के लिये... परिक्षय के लिये... प्रहाण के लिये... क्षय के लिये... व्यय के लिये... विराग के लिये... निरोध के लिये... त्याग के लिये... परित्याग के लिये इन चार धर्मों की भावना करनी चाहिये॥" ●

रागपेय्याल सम्पन्न॥

॥ चतुष्कनिपात सम्पन्न॥

●

५. पञ्चकनिपातो

१. सेखबलवग्गो

पठमो पण्णासको

१. सङ्खित्तसुत्तं : १. एवं मे सुतं। एकं [N. Vol II, 273, B. Vol. II, 1, R. Vol. III, 1] समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, सेखबलानि। कतमानि पञ्च? १. सद्धाबलं, २. हिरीबलं, ३. ओत्तप्पबलं, ४. विरियबलं, ५. पञ्ञाबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च सेखबलानि।

३. ''तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'सद्धाबलेन समन्नागता भविस्साम सेखबलेन, हिरीबलेन समन्नागता भविस्साम सेखबलेन, ओत्तप्पबलेन समन्नागता भविस्साम सेखबलेन, विरियबलेन समन्नागता भविस्साम सेखबलेन, पञ्ञाबलेन समन्नागता भविस्साम सेखबलेना' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति।

४. इदमवोच भगवा। अत्तमना ते भिक्खू भगवतो भासितं अभिनन्दुं ति॥ ●

२. वित्थतसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, सेखबलानि। कतमानि पञ्च?

---

५. पञ्चकनिपात

१. शैक्ष्यबलवर्ग

प्रथम पञ्चाशत्क

पाँच बल

१. संक्षिप्तसूत्र : :

१. ऐसा मैने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवन महाविहार में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को ''भिक्षुओ!'' सम्बोधन सें बुलाया। ''हाँ, भन्ते!'' कहकर भिक्षु वहाँ उपस्थित हुए।

भगवान् ने यह उपदेश किया—

२. ''भिक्षुओ! ये पाँच शैक्ष्य बल होते हैं। कौन से पाँच? (१) श्रद्धाबल, (२) ह्रीबल, (३) अवत्राप्यबल, (४) वीर्यबल, एवं (५) प्रज्ञाबल—ये पाँच भिक्षुओ! शैक्ष्यबल होते हैं।

३. ''इसलिये, भिक्षुओ! तुम्हें सीखना चाहिये—'हम श्रद्धा शैक्ष्यबल से, ह्री शैक्ष्यबल से, अवत्राप्य शैक्ष्यबल से, वीर्य शैक्ष्यबल से, तथा प्रज्ञा शैक्ष्यबल से युक्त रहेंगे।' ऐसा भिक्षुओ! तुम्हें सीखना चाहिये।''

भगवान् ने यह उपदेश किया। सन्तुष्ट हुए भिक्षुओं ने भगवान् के भाषण का अभिनन्दन किया॥ ●

[B.2,R.2] सद्धाबलं, हिरीबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, पञ्ञाबलं। कतमं च, भिक्खवे, सद्धाबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **सद्धाबलं**।

२. ''कतमं च, भिक्खवे, हिरीबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको हिरीमा होति, [N.274] हिरीयति कायदुच्चरितेन वचीदुच्चरितेन मनोदुच्चरितेन, हिरीयति पापकानं अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **हिरीबलं**।

३. ''कतमं च, भिक्खवे, ओत्तप्पबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको ओत्तप्पी होति, ओत्तप्पति कायदुच्चरितेन वचीदुच्चरितेन मनोदुच्चरितेन, ओत्तप्पति पापकानं अकुसलानं धम्मानं समापत्तिया। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **ओत्तप्पबलं**।

४. ''कतमं च, भिक्खवे, विरियबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **विरियबलं**।

५. ''कतमं च, भिक्खवे, पञ्ञाबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको पञ्ञवा होति उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **पञ्ञाबलं**। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च सेखबलानि।

---

२. विस्तृतसूत्र : : पाँच शैक्ष्य बल

१. भिक्षुओ! ये पाँच शैक्ष्य बल होते हैं। ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! इनमें श्रद्धाबल कौन होता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई आर्यश्रावक श्रद्धालु होता है। तथागत द्वारा उपदिष्ट ज्ञानपर इस प्रकार श्रद्धालु होता है—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हैं, वे विद्या एवं चरण से सम्पन्न हैं, स्पष्ट वक्ता हैं, लोकव्यवहारज्ञ हैं, अद्वितीय हैं, पुरुषों के दमन करने में सारथिभूत हैं, वे भगवान् देव-मनुष्यों के शास्ता हैं'—भिक्षुओ! यह कहलाता है—**श्रद्धाबल**।

२. ''और, भिक्षुओ! 'ह्रीबल' किसे कहते हैं? यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु लज्जालु होता है। कायिक, वाचसिक एवं मानसिक दुराचार एवं पापमय धर्मों के समापादन (व्यापार) में लज्जा मानता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—**ह्रीबल**।

३. ''भिक्षुओ! 'अवत्राप्यबल' कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक काय, वाक्, मन के दुराचार में, पापमय अकुशल धर्मों के व्यापार में भय मानता है। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—**अवत्राप्यबल**।

४. ''भिक्षुओ! 'वीर्यबल' कौन होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक अकुशल धर्मों के प्रहाण में अपनी शक्ति लगाता है, कुशल धर्मों के उत्पादन में दृढनिश्चय एवं दृढपराक्रम होता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—**वीर्यबल**।

५. ''भिक्षुओ! 'प्रज्ञाबल' किसे कहते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक प्रज्ञावान् होता है, धर्मों का उदय एवं अस्त जानने वाली प्रज्ञा से युक्त होता है, किसी बात को अन्तस्तल तक

६. ''तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'सद्धाबलेन समन्नागता [R.3] भविस्साम सेखबलेन, हिरीबलेन ... ओत्तप्पबलेन ... विरियबलेन ... पञ्ञाबलेन समन्नागता भविस्साम सेखबलेना' ति। एवं हि खो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

३. दुःखसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु दिट्ठेव [B.3] धम्मे दुक्खं विहरति सविघातं सउपायासं सपरिळाहं, कायस्स च भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अस्सद्धो होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी होति, कुसीतो होति। दुप्पञ्ञो होति, इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु दिट्ठेव धम्मे दुक्खं विहरति सविघातं सउपायासं सपरिळाहं, कायस्स च भेदा परं मरणा दुग्गति पाटिकङ्खा।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु दिट्ठेव धम्मे सुखं विहरति अविघातं अनुपायासं अपरिळाहं, कायस्स च भेदा परं मरणा सुगति पाटिकङ्खा। [N.275] कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धो होति, हिरीमा होति, ओत्तप्पी होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु दिट्ठेव धम्मे सुखं विहरति अविघातं अनुपायासं अपरिळाहं, कायस्स च भेदा परं मरणा सुगति पाटिकङ्खा'' ति॥ ●

समझने वाली प्रज्ञा से युक्त होता है, जो दुःखक्षय की ओर भली भाँति लेजाने वाली होती है। भिक्षुओं यह कहलाता है—**प्रज्ञाबल।**

''भिक्षुओ! ये होते हैं पाँच शैक्ष्यबल।

६. ''अतः, भिक्षुओ! तुम्हें यह सीखना चाहिये—'हम श्रद्धा शैक्ष्यबल से युक्त होंगे, ह्रीबल से... अवत्राप्यबल से... वीर्यबल से... प्रज्ञाबल रूप शैक्ष्यबल से युक्त होंगे।' भिक्षुओ! तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये॥'' ●

३. दुःखसूत्र : : अश्रद्धादि पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु इस जन्म में दुःख पाता है, दुरवस्था को भोगता है, जीवनपर्यन्त तीव्र जलन से जलता रहता है। तथा इस देहपात के बाद इसकी दुर्गति की ही आशा करनी चाहिये। किन पाँच धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु श्रद्धारहित होता है, निर्लज्ज होता है, कैसा भी पापकर्म करने में भय नहीं मानता, शुभ कर्मों में आलसी होता है, तथा दुर्बुद्धि होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त कोई भी भिक्षु इस जन्म में दुःख भोगता है, दुरवस्था को प्राप्त होता है, दिनरात दुश्चिन्ताओं से जलता रहता है। तथा इस देहपात के बाद भी उसकी दुर्गति अवश्यम्भावी है।

२. ''और, भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु इस जन्म में सुख भोगता है। उसका जीवन सुव्यवस्थित रहता है। किसी प्रकार का ताप उसको नहीं सताता। तथा इस देहपात के बाद भी उसकी सुगति ही होनी है। कौन से पाँच धर्म? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु श्रद्धालु, लज्जालु, पापकर्मों से भय मानने वाला, शुभ कर्मों में शक्ति लगाने वाला तथा प्रज्ञावान् होता है, ऐसा पाँच

४. यथाभतसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि ? इध, भिक्खवे, भिक्खु अस्सद्धो होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी होति, कुसीतो होति, दुप्पञ्ञो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं [R.4] सग्गे। कतमेहि पञ्चहि ? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धो होति, हिरीमा होति, ओत्तप्पी होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥

५. सिक्खासुत्तं : १. ''यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु वा भिक्खुनी वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति, तस्स दिट्ठेव धम्मे पञ्च सहधम्मिका वादानुपाता गारय्हा ठाना आगच्छन्ति। कतमे पञ्च ? सद्धा पि नाम ते नाहोसि कुसलेसु धम्मेसु, हिरी पि नाम ते नाहोसि कुसलेसु धम्मेसु, ओत्तप्पं पि नाम ते नाहोसि कुसलेसु धम्मेसु, विरियं पि नाम ते [B.4] नाहोसि कुसलेसु धम्मेसु, पञ्ञा पि नाम ते नाहोसि कुसलेसु धम्मेसु। यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु वा भिक्खुनी वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति, तस्स दिट्ठेव धम्मे इमे पञ्च सहधम्मिका वादानुपाता गारय्हा ठाना आगच्छन्ति।

[N.276] २. ''यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु वा भिक्खुनी वा सहा पि दुक्खेन सहा पि

धर्मों से युक्त भिक्षु इस जन्म में सुखी, सुव्यवस्थितजीवन, पश्चात्तापरहित होता है, तथा मरणानन्तर भी उसकी सुगति ही अवश्यम्भावी है॥''

४. यथाभतसूत्र : : पाँच धर्म नरकपाती

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु जैसे आया था, वैसे ही पुनः नरक में जा गिरता है। किन पाँच धर्मों से ? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अश्रद्धालु ...पूर्ववत्... दुष्प्रज्ञ होता है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु जैसे आया था, वैसे ही पुनः नरक में जा गिरता है।

२. ''फिर, भिक्षुओ! इन पाँच (कुशल) धर्मों से युक्त भिक्षु जैसे आया था वैसे ही पुनः स्वर्ग में लौट जाता है। किन पाँच से ? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु श्रद्धालु होता है... प्रज्ञावान् होता है। इन पाँच (कुशल) धर्मों से युक्त भिक्षु जैसे आया था वैसे ही पुनः स्वर्ग में लौट जाता है॥''

५. शिक्षासूत्र : : पाँच धर्मों से निन्दा

१. ''भिक्षुओ! जो भी कोई भिक्षु या भिक्षुणी शिक्षापदों की अवहेलना कर हीन कर्मों में प्रवृत्त होते रहते हैं, उनके ये पाँच निन्दा-स्थान उनके पीछे लग जाते हैं। कौन से पाँच? (१) कुशल धर्मों में उनकी श्रद्धा नहीं रहती, (२) कुशल धर्मों में उनकी कोई लज्जा नहीं रहती, (३) कुशल धर्मों के न करने से उनको कोई भय नहीं रहता, (४) कुशल धर्मों की प्राप्ति में वे अपनी शक्ति नहीं लगाते, तथा (५) कुशल धर्मों में उनकी प्रज्ञा भी प्रवृत्त नहीं होती। इस प्रकार, भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी ...पूर्ववत्... उनके पीछे ये पाँच निन्दास्थान लग जाते हैं।

२. तथा, भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी दुःखपूर्वक दौर्मनस्य के साथ, आँखों में आँसू

दोमनस्सेन अस्सुमुखो रुदमानो परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरति, तस्स दिट्ठेव धम्मे पञ्च सहधम्मिका पासंसा ठाना आगच्छन्ति। कतमे पञ्च? सद्धा पि नाम ते अहोसि कुसलेसु धम्मेसु, हिरी पि नाम ते अहोसि कुसलेसु धम्मेसु, ओत्तप्पं पि नाम ते अहोसि कुसलेसु धम्मेसु, विरियं पि नाम ते अहोसि कुसलेसु धम्मेसु, पञ्ञा पि नाम ते अहोसि कुसलेसु धम्मेसु। यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु वा भिक्खुनी वा सहा पि दुक्खेन सहा पि [R.5] दोमनस्सेन अस्सुमुखो रुदमानो परिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं चरति, तस्स दिट्ठेव धम्मे इमे पञ्च सहधम्मिका पासंसा ठाना आगच्छन्ती'' ति॥ ●

६. समापत्तिसुत्तं : १. ''न ताव, भिक्खवे, अकुसलस्स समापत्ति होति याव सद्धा पच्चुपट्ठिता होति कुसलेसु धम्मेसु। यतो च खो, भिक्खवे, सद्धा अन्तरहिता होति, असद्धियं परियुट्ठाय तिट्ठति; अथ अकुसलस्स समापत्ति होति।

२. ''न ताव, भिक्खवे, अकुसलस्स समापत्ति होति याव हिरी पच्चुपट्ठिता होति कुसलेसु धम्मेसु। यतो च खो, भिक्खवे, हिरी अन्तरहिता होति, अहिरिकं परियुट्ठाय तिट्ठति; अथ अकुसलस्स समापत्ति होति।

३. ''न ताव, भिक्खवे, अकुसलस्स समापत्ति होति याव ओत्तप्पं पच्चुपट्ठितं होति कुसलेसु धम्मेसु। यतो च खो, भिक्खवे, ओत्तप्पं अन्तरहितं होति, अनोत्तप्पं परियुट्ठाय तिट्ठति; अथ अकुसलस्स समापत्ति होति।

४. ''न ताव, भिक्खवे, अकुसलस्स समापत्ति होति याव विरियं पच्चुपट्ठितं [B.5] होति कुसलेसु धम्मेसु। यतो च खो, भिक्खवे, विरियं अन्तरहितं होति, कोसज्जं परियुट्ठाय तिट्ठति; अथ अकुसलस्स समापत्ति होति।

भरकर रोते हुए भी यदि अपनी धर्मसाधना पूर्ण करते रहते हैं तो उनके पीछे इन पाँच स्थानों से उनकी प्रशंसा ही होती है। कौन से पाँच? (१) कुशल धर्मों में वे श्रद्धालु हैं (२) ...लज्जालु हैं, (३) ...भय मानते हैं, (४) कुशल धर्मों के उत्पाद में वे अपनी शक्ति लगाते हैं, तथा (५) कुशल धर्मों में प्रवृत्तिहेतु वे अपनी प्रज्ञा लगाते हैं। भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी ...पूर्ववत्... पाँच स्थानों से उनकी प्रशंसा ही होती है॥'' ●

६. समापत्तिसूत्र : : पाँच कुशल धर्म

१. ''भिक्षुओ! जब तक किसी की कुशल धर्मों में श्रद्धा रहेगी तब तक अकुशल धर्म उसके पास नहीं आ सकते। तथा जब उसकी कुशल धर्मों में श्रद्धा नहीं रहेगी, उनके प्रति उसका चित्त अश्रद्धालु हो जायगा तब अकुशल धर्म उसके समीप आने लगेंगे।

२. ''भिक्षुओ! जब तक किसी की कुशर प्रति लज्जा रहेगी तब तक अकुशल धर्म ...पूर्ववत्... उसके समीप आने लगेंगे।

३. ''भिक्षुओ! जब तक कुशल धर्मों के से भय रहेगा तब तक ...पूर्ववत्।

४. ''भिक्षुओ! जब तक कोई कुशल धर्मों में अपनी शक्ति लगाता रहेगा तब तक ...पूर्ववत्...।

[N.277] ५. ''न ताव, भिक्खवे, अकुसलस्स समापत्ति होति याव पञ्ञा पच्चुपट्ठिता होति कुसलेसु धम्मेसु। यतो च खो, भिक्खवे, पञ्ञा अन्तरहिता होति, दुप्पञ्ञा परियुट्ठाय तिट्ठति; अथ अकुसलस्स समापत्ति होती'' ति॥ ●

७. कामसुत्तं : १. ''येभुय्येन, भिक्खवे, सत्ता कामेसु लळिता। असितब्याभङ्गिं, भिक्खवे, कुलपुत्तो ओहाय अगारस्मा अनगारियं पब्बजितो होति, 'सद्धापब्बजितो कुलपुत्तो' ति अलं वचनाय। तं किस्स हेतु? लब्भा, भिक्खवे, योब्बनेन कामा ते च खो यादिसा वा तादिसा वा। ये च, भिक्खवे, हीना कामा ये च मज्झिमा कामा ये च पणीता कामा, सब्बे कामा कामा त्वेव सङ्खं गच्छन्ति। सेय्यथापि, भिक्खवे, दहरो कुमारो मन्दो [R.6] उत्तानसेय्यको धातिया पमादमन्वाय कट्ठं वा कठलं वा मुखे आहरेय्य। तमेनं धाति सीघं सीघं मनसि करेय्य; सीघं सीघं मनसि करित्वा सीघं सीघं आहरेय्य। नो चे सक्कुणेय्य सीघं सीघं आहरितुं, वामेन हत्थेन सीसं परिग्गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन वङ्कङ्गुलिं करित्वा सलोहितं पि आहरेय्य। तं किस्स हेतु? 'अत्थेसा, भिक्खवे, कुमारस्स विहेसा; नेसा नत्थी' ति वदामि। करणीयं च खो एतं, भिक्खवे, धातिया अत्थकामाय हितेसिनिया अनुकम्पिकाय, अनुकम्पं उपादाय। यतो च खो, भिक्खवे, सो कुमारो वुद्धो होति

---

५. ''भिक्षुओ! जब तक कोई कुशल धर्मों की प्राप्ति में अपनी प्रज्ञा लगाता रहेगा तब तक अकुशल धर्म उसके पास नहीं आ सकते। तथा जब उसकी कुशल धर्मों में श्रद्धा नहीं रहेगी, उनके प्रति उसका चित्त अश्रद्धायुक्त हो जायगा तब अकुशल धर्म उसके समीप आने लगेंगे॥'' ●

७. कामसूत्र : : तथागत द्वारा धर्मपालन में सहायता

१. ''भिक्षुओ! सभी प्राणी कामभोगों में आसक्त रहते हैं। वहाँ कोई कुलपुत्र जङ्गल में जाकर लकड़ी काट कर लाना आदि हीन कर्मों को त्यागकर, घर छोड़कर, बेघर हो, प्रव्रज्या ग्रहण कर लेता है। इसे 'यह कुलपुत्र श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ है'—ऐसा कहा जा सकता है। वह किसलिये? भिक्षुओ! सभी सांसारिक कामभोग युवावस्था में प्राप्त किये जा सकते हैं; फिर भले ही वे जैसे तैसे जो कुछ भी हों, भले ही वे निकृष्ट कामभोग हों, मध्यम श्रेणी के कामभोग हों या उत्तम कामभोग हों—ये सभी कामभोग 'कामभोग' ही कहलाते हैं। भिक्षुओ! जैसे कोई पालने में सोया हुआ छोटा भोला बच्चा, दाई की किसी भूल के कारण, किसी लकड़ी या ठीकरे आदि का टुकड़ा निगल जाय, इसे देखकर वहाँ उपस्थित वह दाई उस बच्चे के गले से वह लकड़ी का टुकड़ा निकालने के लिये शीघ्रता से कुछ प्रयास करे। इस प्रयास में जब वह दाई सफल न हो तब वह अपने एक हाथ से उस बच्चे का सिर पकड़कर दूसरे हाथ से अंगुली टेढ़ी कर उसके गले से उस लकड़ी के टुकड़े को निकाल ले, भले ही इस क्रिया में उस बच्चे के गले से रक्त ही क्यों न बहने लगे। वह किसलिये? क्या भिक्षुओ! दाई का वह कर्म कुमार को पीड़ा देने के लिये हैं? नहीं, मैं ऐसा नहीं मानता। भिक्षुओ! यह तो उस बच्चे पर दयालु उस दाई का अनुग्रह कर्म है कि वह बच्चा किसी तरह जीवित रह जाय। यही बच्चा जब बड़ा हो जाता है, समझदार हो जाता है, स्वहिताहित के लिये विवेकवान् हो जाता हैं, तब वह दाई उसकी उतनी देखभाल नहीं करती जितनी बचपन में करती थी। वह

अलम्पञ्ञो, अनपेक्खा दानि, भिक्खवे, धाति तस्मिं कुमारे होति—'अत्तगुत्तो दानि कुमारो नालं पमादाया' ति।

२. ''एवमेव खो, भिक्खवे, यावकीवं च भिक्खुनो सद्धाय अकतं होति कुसलेसु धम्मेसु, हिरिया अकतं होति कुसलेसु धम्मेसु, ओत्तप्पेन अकतं होति कुसलेसु धम्मेसु, विरियेन अकतं होति कुसलेसु धम्मेसु, पञ्ञाय अकतं होति कुसलेसु धम्मेसु, [B.6] अनुरक्खितब्बो ताव मे सो, भिक्खवे, भिक्खु होति। यतो च खो, भिक्खवे, भिक्खुनो सद्धाय कतं होति कुसलेसु धम्मेसु, हिरिया कतं होति, कुसलेसु धम्मेसु, ओत्तप्पेन कतं होति कुसलेसु धम्मेसु, विरियेन कतं होति कुसलेसु धम्मेसु, पञ्ञाय कतं होति कुसलेसु [N.278] धम्मेसु, अनपेक्खो दानाहं, भिक्खवे, तस्मिं भिक्खुस्मिं होमि—'अत्तगुत्तो दानि भिक्खु नालं पमादाया''' ति॥ ●

८. चवनसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। कतमेहि पञ्चहि? असद्धो, भिक्खवे, भिक्खु चवति, [R.7] नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। अहिरिको, भिक्खवे, भिक्खु चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। अनोत्तप्पी भिक्खवे, भिक्खु चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। कुसीतो, भिक्खवे, भिक्खु चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। दुप्पञ्ञो, भिक्खवे, भिक्खु चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। कतमेहि पञ्चहि? सद्धो, भिक्खवे, भिक्खु न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। हिरिमा, भिक्खवे, भिक्खु न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। ओत्तप्पी, भिक्खवे, भिक्खु चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे।

जानती है—'अब यह कुमार अपनी रक्षा में स्वयं समर्थ है, अब यह वैसी कोई भूल (प्रमाद) नहीं करेगा।'

२. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! जब तक कोई भिक्षु कुशल धर्मों में अपनी श्रद्धा, लज्जा, भय, शक्ति एवं प्रज्ञा का प्रयोग नहीं करता तब तक मैं उसके प्रति सचेत रहता हूँ; परन्तु जब वह स्वयं कुशल धर्मों में अपनी श्रद्धा, लज्जा, भय, शक्ति एवं प्रज्ञा का प्रयोग करने लगता है तब मैं उसके प्रति निरपेक्ष हो जाता हूँ; क्योंकि तब मैं जान जाता हूँ कि वह अपनी रक्षा करने में स्वयं सावधान रहता है, अब धर्मसाधना में इससे कोई प्रमाद नहीं होगा॥'' ●

८. च्यवनसूत्र : : पाँच धर्मों के कारण भिक्षुत्व से च्युति

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त कोई भिक्षु अपनी धर्मसाधना से च्युत (पतित) हो जाता है। किन पाँच धर्मों से? जो धर्म के प्रति श्रद्धालु नहीं रहता, वह धर्मसाधना से च्युत हो जाता है। जो धर्म के प्रति लज्जाभाव नहीं रखता ...पूर्ववत्... जो धर्म से भय नहीं मानता... जो धर्मसाधना में आलस्य करता है... भिक्षुओ! जो धर्म के प्रति दुर्बुद्धि (दुष्प्रज्ञ) होता है वह धर्मसाधना से च्युत हो जाता है, धर्मसाधना में प्रतिष्ठित नहीं रह पाता।

२. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त कोई भिक्षु अपनी धर्मसाधना से च्युत नहीं होता,

आरद्धविरियो, भिक्खवे, भिक्खु न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। पञ्ञवा, भिक्खवे, भिक्खु न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे'' ति॥ ●

९. पठमअगारवसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। कतमेहि पञ्चहि? असद्धो, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। अहिरिको, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। अनोत्तप्पी, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो [B.7] अप्पतिस्सो चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। कुसीतो, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो [N.279] अप्पतिस्सो चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। दुप्पञ्ञो, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो चवति, नप्पतिट्ठाति सद्धम्मे।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो न [R.8] चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। कतमेहि पञ्चहि? सद्धो, भिक्खवे, भिक्खवे, सगारवो सप्पतिस्सो न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। हिरीमा, भिक्खवे, भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। ओत्तप्पी, भिक्खवे, भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। आरद्धविरियो, भिक्खवे, भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। पञ्ञवा, भिक्खवे, भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो न चवति, पतिट्ठाति सद्धम्मे'' ति॥ ●

अपितु धर्म में प्रतिष्ठित ही रहता है। किन पाँच धर्मों से? भिक्षुओ! धर्म में श्रद्धालु, धर्म में लज्जालु, धर्म से भय मानने वाला, धर्मसाधना में अपनी पूर्ण शक्ति लगाने वाला, तथा धर्म में प्रज्ञावान् कभी धर्म से च्युत नहीं होता, वह सद्धर्म में सर्वदा प्रतिष्ठित रहता है॥'' ●

९. प्रथम अगौरवसूत्र : : पाँच धर्मों के कारण सद्धर्म से च्युति

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु इस सद्धर्म में गौरव (गुरुभाव) नहीं रखता, इसके प्रति विद्रोही होता है, वह इस धर्म से च्युत हो जाता है, वह इस धर्म में प्रतिष्ठित नहीं रह पाता। किन पाँच धर्मों से? (१) जो भिक्षु धर्म में अश्रद्धालु होता है, (२) जो भिक्षु धर्म में लज्जारहित होता है, (३) जो भिक्षु धर्म से भय नहीं मानता, (४) जो भिक्षु धर्मपालन एवं धर्मसाधना में आलसी होता है तथा (५) जो भिक्षु दुष्प्रज्ञ (दुर्बुद्धि) होता है ऐसा भिक्षु इस सद्धर्म में गौरव नहीं रखता, इसके प्रति विद्रोही होता है, अतः वह इस सद्धर्म में प्रतिष्ठित नहीं रह पाता।

२. ''तथा, भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु इस सद्धर्म में गौरव रखता है, इसके प्रति विद्रोही नहीं होता, वही इस सद्धर्म में प्रतिष्ठित रह पाता है, वह इस धर्म से च्युत नहीं होता। किन पाँच धर्मों से? (१) जो भिक्षु इस धर्म के प्रति श्रद्धालु होता है, (२) लज्जालु होता है, (३) इससे

१०. दुतियअगारवसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो अभब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं। कतमेहि पञ्चहि? असद्धो, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो अभब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं। अहिरिको, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो अभब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं। अनोत्तप्पी, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो अभब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं। कुसीतो, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो अभब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं। दुप्पञ्ञो, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो अभब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं। इमेहि खो, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो अभब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो [N.280] भब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं। कतमेहि पञ्चहि? सद्धो, भिक्खवे, भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो भब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं [B.8] वेपुल्लं आपज्जितुं। हिरीमा, भिक्खवे, भिक्खु ...पे०... ओत्तप्पी, भिक्खवे, भिक्खु [R.9] ...पे०... आरद्धविरियो, भिक्खवे, भिक्खु ...पे०... पञ्ञवा, भिक्खवे, भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो भब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो भब्बो इमस्मिं धम्मविनये वुद्धिं विरूळ्हिं वेपुल्लं आपज्जितुं'' ति॥

सेखबलवग्गो पठमो॥

भय मानता है, (४) इसके पालन में, इसकी साधना में आलस्य नहीं करता, (५) जो इस धर्म में प्रज्ञावान् है, वह उस धर्म से च्युत नहीं होता, अपितु वह इस धर्म में प्रतिष्ठित रह जाता है॥'' ●

१०. द्वितीय अगौरवसूत्र : : पाँच धर्मों से धर्म की वृद्धि

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सद्धर्म के प्रति गौरव न रखता हुआ तथा इसके प्रति मन में विद्रोह रखता हुआ हमारे इस धर्मविनय में कभी वृद्धि या विपुलता प्राप्त नहीं कर सकता। किन पाँच धर्मों से? जो अश्रद्धालु होता हुआ, जो लज्जारहित होता हुआ, जो भय न मानता हुआ, जो धर्म पालन में आलस्य करता हुआ, जो दुष्प्रज्ञ रहता हुआ धर्म के प्रति अगौरव तथा विद्रोही भाव रखता है वह इस सद्धर्म में कभी वृद्धि या विपुलता नहीं प्राप्त कर सकता। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ...पूर्ववत्... वृद्धि या विपुलता नहीं प्राप्त कर सकता।

२. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सद्धर्म के प्रति गौरव तथा समर्पण भाव रखता हुआ हमारे इस धर्मविनय में सदैव क्रमशः वृद्धि तथा विपुलता प्राप्त करने में समर्थ है। किन पाँच धर्मों से? जो श्रद्धालु होता हुआ, लज्जालु होता हुआ, भय मानता हुआ, धर्मपालन में आलस्य न करता

तस्सुद्दानं

सङ्खित्तं वित्थतं दुक्खा, भतं सिक्खाय पञ्चमं।
समापत्तिं च कामेसु, चवना द्वे अगारवा ति॥ ●

२. बलवग्गो

१. अननुस्सुतसुत्तं : १. "पुब्बाहं, भिक्खवे, अननुस्सुतेसु धम्मेसु अभिञ्ञा-वोसानपारमिप्पत्तो पटिजानामि। पञ्चिमानि, भिक्खवे, तथागतस्स तथागतबलानि, येहि बलेहि समन्नागतो तथागतो आसभं ठानं पटिजानाति, परिसासु सीहनादं नदति, ब्रह्मचक्कं पवत्तेति। कतमानि पञ्च? सद्धाबलं, हिरीबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, पञ्ञाबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च तथागतस्स तथागतबलानि येहि बलेहि समन्नागतो तथागतो आसभं ठानं पटिजानाति, परिसासु सीहनादं नदति, ब्रह्मचक्कं पवत्तेती" ति॥ ●

[R.10] **२. कूटसुत्तं :** १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, सेखबलानि। कतमानि पञ्च? सद्धाबलं, हिरीबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, पञ्ञाबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च

हुआ, तथा प्रज्ञावान् रहता हुआ धर्म के प्रति गौरव एवं समर्पण भाव रखता है वही इस धर्मविनय में सदैव आगे से आगे वृद्धि एवं विपुलता प्राप्त करने में समर्थ है।

"भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सद्धर्म के प्रति गौरव एवं समर्पण भाव रखता हुआ इस धर्म विनय में वृद्धि एवं विपुलता प्राप्त करने में समर्थ है॥" ●

शैक्ष्यबलवर्ग प्रथम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. संक्षिप्त सूत्र, २. विस्तारसूत्र, ३. दुःखसूत्र, ४. यथाभतसूत्र, ५. शिक्षासूत्र, ६. समापत्ति-सूत्र, ७. कामसूत्र, ८. च्यवनसूत्र, ९. प्रथम अगौरवसूत्र, एवं १०. द्वितीय अगौरवसूत्र॥ ●

२. बलवर्ग

१. अननुश्रुतसूत्र : : पाँच तथागत बल

१. "भिक्षुओ! मैं पहले न सुने गये धर्मों को, उनके जानने की अन्तिम सीमा तक जान कर ही, स्वीकार करता हूँ। भिक्षुओ! तथागत के ये पाँच बल हैं, जिनसे युक्त होकर शास्त्रसभाओं (परिषदों) में सिंहनाद करता हूँ, धर्म का उपदेश करता हूँ। कौन से पाँच? श्रद्धाबल...पूर्ववत्... प्रज्ञाबल—इन पाँच बलों से युक्त होकर... धर्म का उपदेश करता हूँ॥" ●

२. कूटसूत्र : : पाँच शैक्ष्यबल

१. "भिक्षुओ! ये पाँच शैक्ष्यबल कहलाते हैं। कौन से पाँच? श्रद्धाबल...पूर्ववत्...

सेखबलानि। इमेसं खो, भिक्खवे, पञ्चन्नं सेखबलानं एतं अग्गं एतं सङ्गाहिकं एतं [N.280] सङ्घातनियं, यदिदं पञ्ञाबलं।

२. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, कूटागारस्स एतं अग्गं एतं सङ्गाहिकं एतं [B.9] सङ्घातनियं, यदिदं कूटं। एवमेव खो, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं सेखबलानं एतं अग्गं एतं सङ्गाहिकं एतं सङ्घातनियं, यदिदं पञ्ञाबलं।

३. ''तस्मातिह, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'सद्धाबलेन समन्नागता भविस्साम सेखबलेन, हिरीबलेन ... ओत्तप्पबलेन ... विरियबलेन ... पञ्ञाबलेन समन्नागता भविस्साम सेखबलेना' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

३. सङ्खित्तसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि पञ्च? सद्धाबलं, विरियबलं, सतिबलं, समाधिबलं, पञ्ञाबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च बलानी'' ति॥ ●

४. वित्थतसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि पञ्च? सद्धाबलं, विरियबलं, सतिबलं, समाधिबलं, पञ्ञाबलं।

२. ''कतमं च, भिक्खवे, सद्धाबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। इदं [R.11] वुच्चति, भिक्खवे, सद्धाबलं।

३. ''कतमं च, भिक्खवे, विरियबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको

प्रज्ञाबल—भिक्षुओ! ये पाँच शैक्ष्यबल होते हैं। इन पाँचों बलों में श्रेष्ठ, इनका संग्राहक तथा इनको एक स्थान पर एकत्र करने वाला प्रज्ञाबल होता है।

२. भिक्षुओ! जैसे किसी कूटागार का कूट (शिखर) ही श्रेष्ठ होता है तथा समस्त कूटागार का संग्राहक एवं उसका नियन्त्रक होता है, उसी प्रकार, भिक्षुओ! इन पाँचों शैक्ष्यबलों का...पूर्ववत्... प्रज्ञाबल होता है॥''

३. ''अतः भिक्षुओ! तुमको यह शिक्षाग्रहण करनी चाहिये—'हम श्रद्धारूप शैक्ष्यबल से, लज्जारूप शैक्ष्यबल से... अवत्राप्य... वीर्य... प्रज्ञा रूप शैक्ष्यबल से युक्त होंगे।' भिक्षुओ! तुमको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये॥'' ●

३. संक्षिप्तसूत्र : : पाँच बल

१. ''भिक्षुओ! ये भी पाँच बल होते हैं। कौन से पाँच बल? (१) श्रद्धाबल, (२) वीर्यबल, (३) स्मृतिबल, (४) समाधिबल एवं (५) प्रज्ञाबल। भिक्षुओ! ये पाँच बल होते हैं॥'' ●

४. विस्तृतसूत्र : : पाँच बलों का विस्तृत वर्णन

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच बल होते हैं... पूर्वसूत्रवत्... प्रज्ञाबल।

२. भिक्षुओ! इनमें 'श्रद्धाबल' कौन सा कहलाता है? ...पूर्वसूत्रवत्... (द्र० ३५०) यह कहलाता है—**श्रद्धाबल**। (१)

आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। इदं वुच्चति, भिक्खवे, विरियबलं।

[N.282] ४. "कतमं च, भिक्खवे, सतिबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको सतिमा होति परमेन सतिनेपक्केन समन्नागतो, चिरकतं पि चिरभासितं पि सरिता अनुस्सरिता। इदं वुच्चति, भिक्खवे, सतिबलं।

५. "कतमं च, भिक्खवे, समाधिबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको विविच्चेव कामेहि विविच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं [B.10] उपसम्पज्ज विहरति; वितक्कविचारानं वूपसमा अज्झत्तं सम्पसादनं चेतसो एकोदिभावं अवितक्कं अविचारं समाधिजं पीतिसुखं दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; पीतिया च विरागा उपेक्खको च विहरति सतो च सम्पजानो सुखं च कायेन पटिसंवेदेति यं तं अरिया आचिक्खन्ति—'उपेक्खको सतिमा सुखविहारी' ति ततियं झानं उपसम्पज्ज विहरति; सुखस्स च पहाना दुक्खस्स च पहाना पुब्बेव सोमनस्सदोमनस्सानं अत्थङ्गमा अदुक्खमसुखं उपेक्खासति पारिसुद्धिं चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, समाधिबलं।

---

३. भिक्षुओ! इनमें 'वीर्यबल' कौन सा ऐसा है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक उद्योग (वीर्य) सम्पन्न होकर अकुशल धर्मों के प्रहाणहेतु साधना आरम्भ करता है, कुशल धर्मों के उत्पाद हेतु साहसपूर्वक, दृढ़पराक्रम होकर, निरुत्साह न होता हुआ साधना आरम्भ करता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—**वीर्यबल**। (२)

४. "फिर, भिक्षुओ! 'स्मृतिबल' कौन सा होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक स्मृतिमान् होकर बुद्धिमत्ता (सतिनेपक्क) के साथ बहुत पहले किये किसी कार्य का तथा बहुत पहले कही किसी बात का स्मरण एवं अनुस्मरण करने वाला होता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—**स्मृतिबल**। (३)

५. "और, भिक्षुओ! 'समाधिबल' कौन सा होता है? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक कामभोगों से तथा अकुशल धर्मों से दूर रहता हुआ, वितर्क विचारसहित प्रीतिसुखयुक्त **प्रथम ध्यान** को प्राप्त कर साधना करता है। (२) कुछ समय बाद, अभ्यास करते करते वितर्क एवं विचारों का व्युपशम (शान्ति) हो जाने के बाद, आध्यात्मिक सम्प्रसाद से चित्त की एकाग्रता (एकोदिभाव) एवं वितर्क विचाररहित समाधिजन्य प्रीतिसुखयुक्त **द्वितीय ध्यान** को प्राप्त कर साधना करता है। (३) फिर शनैः शनैः प्रीति से भी वैराग्य हो जाने पर, स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक उपेक्षामय सुख का काया से अनुभव करता है, जिसके विषय में आर्यजनों का कथन है—'वह स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक उपेक्षक रहता हुआ सुख से साधना करता है'—ऐसा **तृतीय ध्यान** प्राप्त कर साधना करता है। (४) और अन्त में, शनैः शनैः सुख दुःख के प्रहाण से, पहले ही सौमनस्य एवं दौर्मनस्य के अस्त हो जाने से, उपेक्षा एवं स्मृति से परिशुद्ध **चतुर्थ ध्यान** प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—**समाधिबल**। (४)

६. ''कतमं च, भिक्खवे, पञ्ञाबलं? इध, भिक्खवे, अरियसावको पञ्ञवा होति उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया। इदं वुच्चति, भिक्खवे, पञ्ञाबलं। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च बलानी'' ति॥ ●

५. दट्ठब्बसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि पञ्च? सद्धाबलं, विरियबलं, सतिबलं समाधिबलं, पञ्ञाबलं। कत्थ च, भिक्खवे, सद्धाबलं दट्ठब्बं? [R.12] चतूसु सोतापत्तियङ्गेसु। एत्थ सद्धाबलं दट्ठब्बं। कत्थ च, भिक्खवे, विरियबलं दट्ठब्बं? चतूसु सम्मप्पधानेसु। एत्थ विरियबलं दट्ठब्बं। कत्थ च, भिक्खवे, सतिबलं दट्ठब्बं? चतूसु सतिपट्ठानेसु। एत्थ सतिबलं दट्ठब्बं। कत्थ च, भिक्खवे, समाधिबलं दट्ठब्बं? चतूसु झानेसु। एत्थ समाधिबलं दट्ठब्बं। कत्थ च, भिक्खवे, पञ्ञाबलं दट्ठब्बं? चतूसु अरियसच्चेसु। एत्थ पञ्ञाबलं दट्ठब्बं। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च बलानी'' ति॥ ●

६. पुनकूटसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि पञ्च? [N.283] सद्धाबलं, विरियबलं, सतिबलं समाधिबलं, पञ्ञाबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च बलानि। इमेसं खो, भिक्खवे, पञ्चन्नं बलानं एतं अग्गं एतं सङ्गाहिकं एतं सङ्घातनियं, यदिदं पञ्ञाबलं। सेय्यथापि, भिक्खवे, कूटागारस्स एतं अग्गं एतं सङ्गाहिकं एतं सङ्घातनियं, यदिदं कूटं; एवमेव खो, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं बलानं एतं अग्गं एतं सङ्गहिकं एतं सङ्घातनियं, यदिदं पञ्ञाबलं'' ति॥ ●

७. पठमहितसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अत्त–

---

६. ''भिक्षुओ! 'प्रज्ञाबल' किसे कहते हैं? यहाँ, भिक्षुओ! कोई श्रावक प्रज्ञावान् होता है, धर्मों का उदय अस्त जानने वाली उत्तम प्रज्ञा से युक्त होता है, और धर्मों का सूक्ष्म ज्ञान करानेवाली तथा दुःखक्षयबोधक प्रज्ञा से युक्त होता है। भिक्षुओ! यह कहा जाता है—**प्रज्ञाबल**। (५)

भिक्षुओ! ये पाँच बल होते हैं॥'' ●

५. द्रष्टव्य सूत्र : : पाँच द्रष्टव्य बल

१. ''भिक्षुओ! बल पाँच होते हैं। कौन से पाँच? श्रद्धाबल ...पूर्ववत्... प्रज्ञाबल। भिक्षुओ! श्रद्धाबल कहाँ देखना चाहिये? चार स्रोतआपत्ति अङ्गों में। यहाँ श्रद्धाबल देखना चाहिये। (२) कहाँ, भिक्षुओ! वीर्यबल देखना चाहिये? चार सम्यक्प्रधान अङ्गों में। यहाँ वीर्यबल देखना चाहिये। (३) भिक्षुओ! स्मृतिबल कहाँ देखना चाहिये? चार स्मृतिप्रस्थानों में। यहाँ स्मृतिबल देखना चाहिये। (४) भिक्षुओ! समाधिबल कहाँ देखना चाहिये? चार ध्यानों में। यहाँ समाधिबल देखना चाहिये। (५) प्रज्ञाबल कहाँ देखना चाहिये? चार आर्यसत्यों में। यहाँ प्रज्ञाबल देखना चाहिये। भिक्षुओ! ये पाँच बल होते हैं॥'' ●

६. पुनः कूटसूत्र : : पाँच बलों में श्रेष्ठ बल

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच बल होते हैं। कौन से पाँच? ...पूर्ववत्...।

[इसी वर्ग में पूर्वपठित कूटसूत्र के समान इस सूत्र का भी विस्तार कर लें। केवल उसमें से 'शैक्ष्य' शब्द हटा दें।] ●

[B.11] हिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अत्तना सीलसम्पन्नो होति, नो परं सीलसम्पदाय समादपेति; अत्तना समाधिसम्पन्नो होति, नो परं समाधिसम्पदाय समादपेति; अत्तना पञ्ञासम्पन्नो होति, नो परं पञ्ञासम्पदाय समादपेति; अत्तना विमुत्तिसम्पन्नो होति, नो च परं विमुत्तिसम्पदाय समादपेति; अत्तना [R.13] विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, नो च परं विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय समादपेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु अत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताया'' ति॥ ●

८. दुतियहितसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताय। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अत्तना न सीलसम्पन्नो होति, परं सीलसम्पदाय समादपेति; अत्तना न समाधिसम्पन्नो होति, परं समाधिसम्पदाय समादपेति; अत्तना न पञ्ञासम्पन्नो होति, परं पञ्ञासम्पदाय समादपेति; अत्तना न विमुत्तिसम्पन्नो होति, परं विमुत्तिसम्पदाय समादपेति; अत्तना न विमुत्तिञाण-दस्सनसम्पन्नो होति, परं विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय समादपेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु परहिताय पटिपन्नो होति, नो अत्तहिताया'' ति॥ ●

---

७. प्रथम हितसूत्र : : स्वहितकारक पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आत्महित करने में तो समर्थ हो पाता है, परन्तु परहित सम्पन्न नहीं कर पाता। किन पाँच धर्मों से? १. जो भिक्षु स्वयं शीलपालन में तत्पर रहता है, परन्तु वह दूसरों को शीलपालन हेतु प्रोत्साहित नहीं करता; २. जो भिक्षु स्वयं समाधिभावना में तत्पर रहता है, परन्तु दूसरों को समाधिभावना हेतु प्रोत्साहित नहीं करता; ३. जो भिक्षु स्वयं प्रज्ञासम्पन्न होता है, परन्तु दूसरों को प्रज्ञासम्पत्ति होने के लिये प्रोत्साहित नहीं करता; ४. जो भिक्षु स्वयं विमुक्तिसम्पन्न होता है, परन्तु दूसरों को विमुक्तिसम्पत्ति होने के लिये प्रोत्साहित नहीं करता; ५. तथा जो भिक्षु स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न होता है, परन्तु दूसरों को ऐसा होने के लिये प्रेरित नहीं करता। भिक्षुओ! ये पञ्चविध भिक्षु अपना हितसम्पादन करने में ही समर्थ हैं, परन्तु दूसरों के हितसम्पादन में समर्थ नहीं हो पाते॥'' ●

८. द्वितीय हितसूत्र : : परहित कारक पाँच बल

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु परहित ही सम्पादन कर सकता है, स्वहित नहीं। किन पाँच धर्मों से? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु स्वयं भले ही शीलसम्पन्न न हो, परन्तु दूसरों को इस शीलसम्पन्नता के लिये प्रोत्साहित करता रहता है; (२) (कोई भिक्षु) स्वयं भले ही समाधिसम्पन्न न हो, परन्तु दूसरों को समाधिसम्पन्नता के लिये प्रोत्साहित करता है; (३) (कोई) स्वयं प्रज्ञासम्पन्न भले ही न हो, परन्तु दूसरों को प्रोत्साहित करता है; (४) (कोई) स्वयं विमुक्तिसम्पन्न भले ही न हो, परन्तु दूसरों को विमुत्तिसम्पन्नता के लिये प्रोत्साहित करता है; (५) इसी तरह, कोई स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शन सम्पन्न न हो; परन्तु दूसरों को विमुक्तिज्ञानदर्शन-सम्पन्नता के लिये प्रोत्साहित करता रहता है; भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु दूसरों का ही हितसम्पादन कर सकता है, स्वहितसम्पादन नहीं कर सकता॥'' ●

९. ततियहितसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु [N.284] नेव अत्तहिताय पटिपन्नो होति, नो परहिताय। कतमेहि पञ्चहि ? इध, भिक्खवे, भिक्खु अत्तना न सीलसम्पन्नो होति, नो परं सीलसम्पदाय समादपेति; अत्तना न समाधिसम्पन्नो होति, नो परं समाधिसम्पदाय समादपेति; अत्तना न पञ्ञासम्पन्नो होति, नो परं पञ्ञासम्पदाय समादपेति; अत्तना न विमुत्तिसम्पन्नो होति, नो परं विमुत्तिसम्पदाय समादपेति; अत्तना न विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, नो परं विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय समादपेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु नेव अत्तहिताय [B.12, R.14] पटिपन्नो होति, नो परहिताया'' ति॥ ●

१०. चतुत्थहितसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अत्तहिताय पटिपन्नो होति परहिताय च। कतमेहि पञ्चहि ? इध, भिक्खवे, भिक्खु अत्तना च सीलसम्पन्नो होति, परं च सीलसम्पदाय समादपेति; अत्तना समाधिसम्पन्नो होति, परं च समाधिसम्पदाय समादपेति; अत्तना च पञ्ञासम्पन्नो होति, परं च पञ्ञासम्पदाय समादपेति; अत्तना च विमुत्तिसम्पन्नो होति, परं च विमुत्तिसम्पदाय समादपेति; अत्तना च विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, परं च विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय समादपेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अत्तहिताय च पटिपन्नो होति परहिताया चा'' ति॥ ●

बलवग्गो दुतियो॥

तस्सुद्दानं

अननुस्सुतकूटं च, सङ्खित्तं वित्थतेन च।
दट्ठब्बं च पुन कूटं, चत्तारो पि हितेन चा ति॥ ●

---

९. तृतीय हितसूत्र : : स्वपरहित न सम्पन्न कराने वाले धर्म

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु न स्वहित का सम्पादन कर सकता है, न परहित का। किन पाँच धर्मों से ? (१) भिक्षुओ! जो भिक्षु न स्वयं शीलसम्पन्न होता है और न इस शीलसम्पन्नता के लिये दूसरों को प्रोत्साहित करता है, (२) जो न स्वयं समाधिसम्पन्न होता है... पूर्ववत्... (३) जो न स्वयं प्रज्ञासम्पन्न होता है... (४) जो न स्वयं विमुक्तिसम्पन्न होता है... (५) जो न स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शन से सम्पन्न होता है और न दूसरों को इसके लिये प्रोत्साहित करता है; भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु न स्वहित का सम्पादन कर सकता है, न परहित का॥'' ●

१०. चतुर्थ हितसूत्र : : स्वपरहित सम्पादक धर्म

१. ''परन्तु, भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु स्वहित तथा परहित—इस प्रकार उभयहित सम्पादन कर सकता है। किन पाँच धर्मों से ? (१) यहाँ, भिक्षुओ! जो स्वयं शीलसम्पन्न रहता है तथा दूसरों को भी एतदर्थ प्रोत्साहित करता है... पूर्ववत्... (५) जो स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न होता है तथा दूसरों को भी एतदर्थ प्रोत्साहित करता है; भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु स्वहित तथा परहित—उभयविध हित का सम्पादन कर सकता है॥''

बलवर्ग द्वितीय सम्पन्न॥ ●

३. पञ्चङ्गिकवग्गो

१. पठमअगारवसुत्तं : १. ''सो वत, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो असभागवुत्तिको 'सब्रह्मचारीसु आभिसमाचारिकं धम्मं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं [N.285,R.15] विज्जति। 'आभिसमाचारिकं धम्मं अपरिपूरेत्वा सेखं धम्मं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति। 'सेखं धम्मं अपरिपूरेत्वा सीलानि परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति। 'सीलानि अपरिपूरेत्वा सम्मादिट्ठिं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति। 'सम्मादिट्ठिं अपरिपूरेत्वा सम्मासमाधिं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति।

[B.13] २. ''सो वत, भिक्खवे, भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो सभागवुत्तिको 'सब्रह्मचारीसु आभिसमाचारिकं धम्मं परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति। 'आभिसमाचारिकं धम्मं परिपूरेत्वा सेखं धम्मं परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति। 'सेखं धम्मं परिपूरेत्वा सीलानि परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति। 'सीलानि परिपूरेत्वा सम्मादिट्ठिं परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति। 'सम्मादिट्ठिं परिपूरेत्वा सम्मासमाधिं परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जती'' ति॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. अननुश्रुतसूत्र, २. कूटसूत्र, ३. संक्षिप्तसूत्र, ४. विस्तृतसूत्र, ५. द्रष्टव्यसूत्र, ६. पुनः कूटसूत्र, ७. प्रथम हितसूत्र, ८. द्वितीय हितसूत्र, ९. तृतीय हितसूत्र, एवं १०. चतुर्थ हितसूत्र॥ ●

३. पञ्चाङ्गिकवर्ग

१. प्रथम अगौरवसूत्र : : रत्नत्रय के प्रति गौरव रखनेवाले की पाँच धर्मों में पूर्णता

१. ''भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु जो (क) रत्नत्रय का गौरव (सम्मान) नहीं करता, उनके प्रति वैमनस्य रखता है, व्यावहारिक वस्तुओं का साथियों में बाँटकर उपयोग नहीं करता, वह भिक्षु साथियों के साथ दैनिक छोटे बड़े कर्तव्यों को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव नहीं है; (ख) इन छोटे बड़े कर्तव्यों को पूर्ण न करता हुआ वह शैक्ष्य धर्म को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव नहीं है; (ग) वह शैक्ष्य धर्मों को पूर्ण न करता हुआ शील का पालन कर पायगा—यह सम्भव नहीं है; (घ) शील की पूर्ति के विना वह सम्यग्दृष्टिसम्पन्न हो सकेगा—यह भी सम्भव नहीं है; (ङ) तथा सम्यग्दृष्टि की सम्पन्नता के विना वह सम्यक्समाधि पूर्ण कर पायगा—यह भी सम्भव नहीं है।

२. परन्तु, भिक्षुओ! जो भिक्षु (क) रत्नत्रय के प्रति गुरुभाव रखता है, उसके प्रति मन में वैमनस्य नहीं रखता; व्यावहारिक वस्तुओं का साथियों में बाँटकर उपयोग करता है, वही भिक्षु साथियों के साथ दैनिक छोटे बड़े कर्तव्यों को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव है; (ख) वैसे कर्तव्यों को पूर्ण करता हुआ ही वह शैक्ष्य धर्मों को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव है; (ग) शैक्ष्य धर्मों को पूर्ण करता हुआ ही शीलसम्पन्न बन पायगा—यह भी सम्भव है; (घ) शीलसम्पन्न होकर वह सम्यग्दृष्टि भी हो जायगा—यह भी सम्भव है; तथा (ङ) सम्यग्दृष्टि से सम्पन्न होकर वह सम्यक्समाधि भी पूर्ण कर लेगा—यह भी सम्भव है॥'' ●

२. दुतियअगारवसुत्तं : १. ''सो वत, भिक्खवे, भिक्खु अगारवो अप्पतिस्सो असभागवुत्तिको 'सब्रह्मचारीसु आभिसमाचारिकं धम्मं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति। 'आभिसमाचारिकं धम्मं अपरिपूरेत्वा सेखं धम्मं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति। 'सेखं धम्मं अपरिपूरेत्वा सीलक्खन्धं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति। 'सीलक्खन्धं अपरिपूरेत्वा समाधिक्खन्धं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति। 'समाधिक्खन्धं अपरिपूरेत्वा पञ्ञाक्खन्धं परिपूरेस्सती' ति नेतं ठानं विज्जति।

२. ''सो वत, भिक्खवे, भिक्खु सगारवो सप्पतिस्सो सभागवुत्तिको 'सब्रह्मचारीसु आभिसमाचारिकं धम्मं परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति। 'आभिसमाचारिकं धम्मं परिपूरेत्वा सेखं धम्मं परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति। 'सेखं धम्मं परिपूरेत्वा सीलक्खन्धं परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति। 'सीलक्खन्धं परिपूरेत्वा समाधिक्खन्धं परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जति। 'समाधिक्खन्धं परिपूरेत्वा पञ्ञाक्खन्धं [R.16]
परिपूरेस्सती' ति ठानमेतं विज्जती'' ति॥ ●

२. उपक्किलेससुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, जातरूपस्स उपक्कि- [N.286]
लेसा, येहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठं जातरूपं न चेव मुदु होति न च कम्मनियं न च पभस्सरं पभङ्गु च न च सम्मा उपेति कम्माय। कतमे पञ्च? अयो, लोहं, तिपु, सीसं, सज्झं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च जातरूपस्स उपक्किलेसा, येहि उपक्किलेसेहि [B.14]

---

२. द्वितीय अगौरवसूत्र : : पाँच धर्मों में पूर्णता

१. ''भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु जो (क) रत्नत्रय का गौरव (सम्मान) नहीं करता, उसके प्रति वैमनस्य रखता है, व्यावहारिक वस्तुओं का अपने साथी भिक्षुओं में बाँटकर उपयोग नहीं करता वह भिक्षु साथियों के साथ अपने छोटे-बड़े कर्तव्यों को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव नहीं है; (ख) इन छोटे बड़े कर्तव्यों को पूर्ण न करता हुआ भी शैक्ष्य धर्मों को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव नहीं है; (ग) शैक्ष्यधर्म को पूर्ण न करता हुआ वह शीलस्कन्ध को... (घ) समाधिस्कन्ध को... या (ङ) प्रज्ञास्कन्ध को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव नहीं है।

२. ''परन्तु, भिक्षुओ! जो भिक्षु (क) रत्नत्रय का गौरव रखता हुआ उनके प्रति वैमनस्य नहीं रखता, व्यावहारिक वस्तुओं का अपने साथियों में बाँटकर उपयोग करता है वही भिक्षु अपने साथियों के साथ दैनिक कर्तव्यों को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव है, (ख) ...शैक्ष्य धर्मों को पूर्ण कर पायगा... (ग) ...शीलस्कन्ध को पूर्ण कर पायगा... (घ) समाधिस्कन्ध को पूर्ण कर पायगा... (ङ) प्रज्ञास्कन्ध को पूर्ण कर पायगा—यह सम्भव है॥'' ●

३. उपक्लेशसूत्र : : पाँच उपक्लेश

१. ''भिक्षुओ! सुवर्ण के पाँच उपक्लेश (मैल=खोट) माने गये हैं; जिनके कारण ऐसा सुवर्ण न मृदु होता है, न दर्शनीय, न चमकीला, न परिवर्तन योग्य और न कार्य में आने योग्य। कौन से पाँच उपक्लेश? उसमें कुछ (१) लौह का, (२) कुछ कच्चे लौह का, (३) कुछ जस्ते का, (४) कुछ सीसे का तथा (५) कुछ चाँदी का भाग होता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! सुवर्ण के ये पाँच

उपक्किलिट्ठं जातरूपं न चेव मुदु होति न च कम्मनियं न च पभस्सरं पभङ्गु च न च सम्मा उपेति कम्माय। यतो च खो, भिक्खवे, यं जातरूपं इमेहि पञ्चहि उपक्किलेसेहि विमुत्तं होति, तं होति जातरूपं मुदु च कम्मनियं च पभस्सरं च न च पभङ्गु सम्मा उपेति कम्माय। यस्सा यस्सा च पिलन्धनविकतिया आकङ्खति—यदि मुद्दिकाय यदि कुण्डलाय यदि गीवेय्यकाय यदि सुवण्णमालाय—तं चस्स अत्थं अनुभोति।

२. "एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चिमे चित्तस्स उपक्किलेसा, येहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठं चित्तं न चेव मुदु होति न च कम्मनियं न च पभस्सरं पभङ्गु च न च सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। कतमे पञ्च? कामच्छन्दो, ब्यापादो, थीनमिद्धं, उद्धच्च-कुक्कुच्चं, विचिकिच्छा—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च चित्तस्स उपक्किलेसा, येहि उपक्किलेसेहि उपक्किलिट्ठं चित्तं न चेव मुदु होति न च कम्मनियं न च पभस्सरं पभङ्गु च न च सम्मा [R.17] समाधियति आसवानं खयाय। यतो च खो, भिक्खवे, चित्तं इमेहि पञ्चहि उपक्किलेसेहि विमुत्तं होति, तं होति चित्तं मुदु च कम्मनियं च पभस्सरं च न च पभङ्गु सम्मा समाधियति आसवानं खयाय। यस्स यस्स च अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

३. "सो सचे आकङ्खति—'अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभवेय्यं—एको पि हुत्वा बहुधा अस्सं, बहुधा पि हुत्वा एको अस्सं; आविभावं, तिरोभावं; तिरोकुड्डं तिरोपाकारं

विकार होते हैं। जिनके कारण ...पूर्ववत्... कार्य में नहीं लाया जा सकता। परन्तु जब उस सुवर्ण के ये विकार नष्ट कर दिये जाते हैं तब वह मृदु, दर्शनीय, चमकीला, आभायुक्त, परिवर्तनयोग्य, तथा कार्य में प्रयुक्त किये जाने योग्य हो जाता है। तब उसको आभूषण आदि का जो रूप देना चाहें, दिया जा सकता है, जैसे—अंगूठी, कुण्डल, गले का हार, या माला आदि, जो भी आकार देना चाहें, दिया जा सकता है।

२. "इसी प्रकार, भिक्षुओ! हमारे इस चित्त के भी पाँच विकार (उपक्लेश) होते हैं, जिनके कारण वह न मृदु होता है... न परिवर्तनीय होता है, न आश्रवों के क्षयहेतु समाधि में व्यापृत हो सकता है। कौन से पाँच? (१) कामभोगों में आसक्ति, (२) द्वेष, (३) आलस्य, (४) औद्धत्य कौकृत्य; एवं (५) विचिकित्सा। भिक्षुओ! इन पाँच विकारों के कारण यह न मृदु होता है... न आश्रवों के क्षयहेतु समाधि में व्यापृत हो सकता है। परन्तु जब यह चित्त उक्त विकारों से रहित हो जाता है तब इसमें मृदुता... आश्रवक्षयहेतु समाधिनिष्ठ होना—ये सभी गुण आ जाते हैं। तथा उस समय साधक अपने चित्त को ज्ञान से साक्षात्कारणीय जिस जिस धर्म के ज्ञान के साक्षात्कारहेतु जहाँ जहाँ लगाता है, वह वहाँ वहाँ उसका साक्षात्कार करने योग्य हो जाता है।

३. "यदि वह (साधक) चाहता है—'मैं अनेक प्रकार के चमत्कारों का अनुभव करूँ'—एक होकर भी अनेक रूप में दिखायी दूँ, या अनेक होते हुए एक दिखायी दूँ, मैं प्रकट भी रहूँ, लुप्त

तिरोपब्बतं असज्जमानो गच्छेय्यं, सेय्यथापि आकासे; पथविया पि उम्मुज्जनिमुज्जं करेय्यं, सेय्यथापि उदके; उदके पि अभिज्जमानो गच्छेय्यं, सेय्यथापि पथवियं; आकासे पि [N.287] पल्लङ्केन कमेय्यं, सेय्यथापि पक्खी सकुणो; इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परिमसेय्यं परिमज्जेय्यं याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेय्यं' ति, तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

४. ''सो सचे आकङ्खति—'दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्त-[B.15] मानुसिकाय उभो सद्दे सुणेय्यं—दिब्बे च मानुसे च ये दूरे सन्तिके चा' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

५. ''सो सचे आकङ्खति—'परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानेय्यं—सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानेय्यं, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानेय्यं, सदोसं वा चित्तं सदोसं चित्तं ति पजानेय्यं, वीतदोसं वा चित्तं वीतदोसं [R.18] चित्तं पि पजानेय्यं, समोहं वा चित्तं समोहं चित्तं ति पजानेय्यं, वीतमोहं वा चित्तं वीतमोहं चित्तं ति पजानेय्यं, सङ्खित्तं वा चित्तं सङ्खित्तं चित्तं ति पजानेय्यं, विक्खित्तं वा चित्तं विक्खित्तं चित्तं ति पजानेय्यं, महग्गतं वा चित्तं महग्गतं चित्तं ति पजानेय्यं, अमहग्गतं वा चित्तं अमहग्गतं चित्तं ति पजानेय्यं, सउत्तरं वा चित्तं सउत्तरं चित्तं ति पजानेय्यं, अनुत्तरं वा चित्तं अनुत्तरं चित्तं ति पजानेय्यं, समाहितं वा चित्तं समाहितं चित्तं ति पजानेय्यं, असमाहितं वा चित्तं असमाहितं चित्तं ति पजानेय्यं, विमुत्तं वा चित्तं विमुत्तं चित्तं ति पजानेय्यं, अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

भी दिखायी दूँ, मैं किसी भी दीवार, प्राकार (उच्च भित्ति) या पर्वत के बीच से स्पर्श किये विना निकल जाऊँ, पृथ्वी में जल की तरह डूबता उतराता रहूँ, पृथ्वी पर रहने के समान जल में रहकर भी मैं आर्द्र न हो पाऊँ, आकाश में, पक्षी के समान, आसन लगाकर उड़ता रहूँ, चन्द्र तथा सूर्य को अपने हाथ से स्पर्श कर सकूँ, यहाँ तक कि मैं ब्रह्मलोक को भी अपने वश में कर सकूँ।' तथा वह साधक वहाँ वहाँ, समय आने पर, वैसा करने में समर्थ होता है। (१)

४. ''यदि वह चाहता है—'मैं मानवदुर्लभ विशुद्ध दिव्य श्रोत्रधातु से देवताओं तथा मनुष्यों के दूर या समीप के उभयविध शब्द सुन सकूँ', तो वह अवसर आने पर ऐसा करने में भी समर्थ हो जाता है। (२)

५. ''यदि वह (साधक) यह चाहता है—'मैं दूसरे प्राणियों के, दूसरे मनुष्यों के चित्त से स्वचित्त को सम्पृक्त कर उनके सराग चित्त को 'सराग चित्त है'—ऐसा जान सकूँ। उनके वीतराग चित्त को 'वीतराग चित्त है'; द्वेषयुक्त चित्त को 'द्वेषयुक्त चित्त है'; द्वेषरहित चित्त को 'द्वेषरहित चित्त है'; मोहयुक्त चित्त को 'मोहयुक्त चित्त है'; मोहरहित चित्त को 'मोहरहित चित्त है'; संक्षिप्त चित्त को 'संक्षिप्त चित्त है', विक्षिप्त चित्त को 'विक्षिप्त चित्त है'; महद्गत चित्त को 'महद्गत चित्त है', अमहद्गत चित्त को 'अमहद्गत चित्त है'; उत्तरसहित चित्त को 'उत्तरसहित चित्त है', अनुत्तर चित्त

६. ''सो सचे आकङ्खति—'अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्यं, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं द्वे पि जातियो तिस्सो पि जातियो चतस्सो पि जातियो पञ्च पि जातियो दस पि जातियो वीसं पि जातियो तिंसं पि जातियो चत्तारीसं पि जातियो पञ्ञासं पि जातियो जातिसतं पि जातिसहस्सं पि जातिसतसहस्सं पि अनेके पि संवट्टकप्पे अनेके पि विवट्टकप्पे अनेके पि संवट्टविवट्टकप्पे—अमुत्रासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुख-[N.288] दुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो अमुत्र उदपादिं; तत्रापासिं एवंनामो एवंगोत्तो एवंवण्णो एवमाहारो एवंसुखदुक्खप्पटिसंवेदी एवमायुपरियन्तो, सो ततो चुतो इधूपपन्नो ति, इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

[B.16,R.19] ७. ''सो सचे आकङ्खति—'दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सेय्यं चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानेय्यं—इमे वत भोन्तो सत्ता कायदुच्चरितेन समन्नागता वचीदुच्चरितेन समन्नागता मनोदुच्चरितेन समन्नागता अरियानं उपवादका मिच्छादिट्ठिका मिच्छादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपन्ना; इमे वा पन भोन्तो सत्ता कायसुचरितेन समन्नागता वचीसुचरितेन समन्नागता मनोसुचरितेन समन्नागता अरियानं अनुपवादका सम्मादिट्ठिका सम्मादिट्ठिकम्मसमादाना, ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं

को 'अनुत्तर चित्त है' समाहित चित्त को 'समाहित चित्त है', असमाहित चित्त को 'असमाहित चित्त है', विमुक्त चित्त को 'विमुक्त चित्त है', तथा अविमुक्त चित्त को 'अविमुक्त चित्त है'—ऐसा जानूँ' तो वह, अवसर पड़ने पर, वैसा वैसा जानने में समर्थ होता है। (३)

६. ''यदि वह यह चाहता है—'मैं अपने अनेक योनियों में भोगे हुए जन्मों का स्मरण करूँ; जैसे—एक जन्म को, दो जन्म को ...पूर्ववत्... लाखों जन्मों को, अनेक संवर्तकल्पों को, अनेक विवर्तकल्पों को, अनेक संवर्त-विवर्तकल्पों को, कि मैं वहाँ इस नामवाला, इस गोत्रवला, इस वर्णवाला, ऐसा भोजन करने वाला, ऐसे सुख दुःख का अनुभव करने वाला इतनी आयु तक रहा था। वहाँ से च्युत होकर वहाँ उत्पन्न हुआ था। वहाँ भी मैं इस नाम वाला ...पूर्ववत्... इतनी आयु तक रहा था। अब वही मैं वहाँ से च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ। इस प्रकार आकार एवं उद्देश (संकेत) सहित अनेक योनियों के अपने जन्मों का अनुस्मरण करूँ' तो वह, अवसर पड़ने पर, वैसा वैसा जानने में समर्थ हो सकता है। (४)

७. ''यदि वह यह चाहता है—'मैं विशुद्ध मानवदुर्लभ दिव्य चक्षु से यहाँ उत्पन्न मृत, विकलाङ्ग सुन्दर, सुरूप कुरूप, भोगैश्वर्य सम्पन्न या दरिद्र प्राणियों के विषय में ऐसा पृथक् पृथक् जानूँ कि ये लोग कायदुराचार वाणी के दुराचार तथा मन के दुराचार से युक्त, आर्यजनों के निन्दक, मिथ्यादृष्टिसम्पन्न तथा मिथ्यादृष्टि वाले कर्मों में लिप्त हैं और ये लोग मरणानन्तर दुर्गतिमय नरक में ही जा गिरते हैं; तथा ये लोग कायसुचरित वाक्सुचरित एवं मनःसुचरित से सम्पन्न हैं, आर्यजनों के प्रशंसक हैं, सम्यग्दृष्टिसम्पन्न हैं और सम्यग्दृष्टियुक्त कर्मों में लिप्त हैं अतः ये मरणानन्तर सुगतिमय

सग्गं लोकं उपपन्ना ति, इति दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन सत्ते पस्सेय्यं चवमाने उपपज्जमाने हीने पणीते सुवण्णे दुब्बण्णे, सुगते दुग्गते यथाकम्मूपगे सत्ते पजानेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

८. ''सो सचे आकङ्खति—'आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने'' ति॥ ●

४. दुस्सीलसुत्तं : १. ''दुस्सीलस्स, भिक्खवे, सीलविपन्नस्स हतूपनिसो होति सम्मासमाधि; सम्मासमाधिम्हि असति सम्मासमाधिविपन्नस्स हतूपनिसं होति यथाभूतञाणदस्सनं; यथाभूतञाणदस्सने असति यथाभूतञाणदस्सनविपन्नस्स हतूपनिसो होति निब्बिदाविरागो; निब्बिदाविरागे असति निब्बिदाविरागविपन्नस्स हतूपनिसं होति विमुत्तिञाणदस्सनं। सेय्यथापि, भिक्खवे, रुक्खो साखापलासविपन्नो। तस्स पपटिका पि न पारिपूरिं गच्छति, तचो पि न पारिपूरिं गच्छति, फेग्गु पि न पारिपूरिं गच्छति, सारो पि [R.20] न पारिपूरिं गच्छति; एवमेव खो, भिक्खवे, दुस्सीलस्स सीलविपन्नस्स हतूपनिसो होति सम्मासमाधि; सम्मासमाधिम्हि असति सम्मासमाधिविपन्नस्स हतूपनिसं होति [N.289] यथाभूतञाणदस्सनं; यथाभूतञाणदस्सने असति यथाभूतञाणदस्सनविपन्नस्स [B.17] हतूपनिसो होति निब्बिदाविरागो; निब्बिदाविरागे असति निब्बिदाविरागविपन्नस्स हतूपनिसं होति विमुत्तिञाणदस्सनं।

स्वर्गलोक में उत्पन्न हुए हैं—इन दोनों ही प्रकार के प्राणियों को, जो स्व स्व कर्मानुसार वैसा वैसा रूप एवं वर्ण आदि प्राप्त किये हैं, पृथक् पृथक् जानूँ—तो वह साधक, समय पड़ने पर, उनका वैसा साक्षात्कार कर सकता है। (५)

८. ''वह यदि चाहता है कि मैं आश्रवों का क्षय कर अनाश्रवा चेतोविमुक्ति को प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात्कार द्वारा प्राप्त कर साधना करूँ तो समय आने पर वह वहाँ वहाँ वैसा साक्षात्कार कर उनको प्राप्त करने में समर्थ है॥'' ●

४. दुःशीलसूत्र : : दुःशील के विनष्ट पाँच धर्म

१. भिक्षुओ! सदाचाररहित (दुराचारी) दुःशील पुरुष का, कारण नष्ट हो जाने से सम्यक्समाधि का भाव नष्ट हो जाता है; सम्यक्समाधि के न रहने पर, उसकी सत्यदर्शन की क्षमता भी नष्ट हो जाती है; इस क्षमता के नष्ट होने पर संसार के प्रति उसके निर्विदा एवं विराग भी क्षीण हो जाते हैं। इनके क्षीण होने पर उसकी विमुक्तिज्ञानदर्शन की क्षमता भी क्षीण होनी ही है। जैसे, भिक्षुओ! कोई वृक्ष शाखा एवं पत्रों से विहीन हो जाय। तब उसकी छाल (बाह्य त्वचा) भी शनैः शनैः नष्ट हो जायगी, इस तरह बाह्य त्वचा की पूर्णता न रहने पर उसकी आन्तरिक त्वचा भी नष्ट हो जायगी, उसके नष्ट होने पर उस वृक्ष की दारुगत कठोरता भी नष्ट हो जाती है; इसी प्रकार भिक्षुओ! सदाचाररहित दुःशील पुरुष का मूल कारण (शील) नष्ट हो जाने से सम्यक्समाधि का भाव नष्ट हो जाता है... पूर्ववत्... विमुक्तिज्ञानदर्शन की क्षमता भी नष्ट होनी ही है। विमुक्तिज्ञानदर्शन भी सम्भव

२. ''सीलवतो, भिक्खवे, सीलसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नो होति सम्मासमाधि; सम्मासमाधिम्हि सति सम्मासमाधिसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नं होति यथाभूतञाणदस्सनं; यथाभूतञाणदस्सने सति यथाभूतञाणदस्सनसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नो होति निब्बिदा-विरागो; निब्बिदाविरागे सति निब्बिदाविरागसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नं होति विमुत्तिञाण-दस्सनं। सेय्यथापि, भिक्खवे, रुक्खो साखापलाससम्पन्नो। तस्स पपटिका पि पारिपूरिं गच्छति, तचो पि पारिपूरिं गच्छति, फेग्गु पि पारिपूरिं गच्छति, सारो पि पारिपूरिं गच्छति; एवमेव खो, भिक्खवे, सीलवतो सीलसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नो होति सम्मासमाधि; सम्मासमाधिम्हि सति सम्मासमाधिसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नं होति यथाभूतञाणदस्सनं; यथाभूतञाणदस्सने सति यथाभूतञाणदस्सनसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नो होति निब्बिदा-विरागो; निब्बिदाविरागे सति निब्बिदाविरागसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नं होति विमुत्तिञाण-दस्सनं'' ति॥ ●

५. अनुग्गहितसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि अनुग्गहिता सम्मादिट्ठि चेतोविमुत्तिफला च होति चेतोविमुत्तिफलानिसंसा च, पञ्ञाविमुत्तिफला च होति पञ्ञाविमुत्तिफलानिसंसा च।

[R.21] २. ''कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, सम्मादिट्ठि सीलानुग्गहिता च होति, सुतानुग्गहिता च होति, साकच्छानुग्गहिता च होति, समथानुग्गहिता च होति, विपस्सनानुग्गहिता च होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि अनुग्गहिता सम्मादिट्ठि चेतोविमुत्तिफला च होति चेतोविमुत्तिफलानिसंसा च, पञ्ञाविमुत्तिफला च होति पञ्ञाविमुत्तिफलानिसंसा चा'' ति॥ ●

[N.290] **६. विमुत्तायतनसुत्तं** : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, विमुत्तायतनानि यत्थ

नहीं है। जैसे भिक्षुओ! कोई वृक्ष शाखापत्रसमन्वित हो तो उसकी पपड़ी... बाह्य त्वचा भी... आन्तरिक त्वचा भी... दारु की कठोरता भी सम्भव होती है; इसी प्रकार, भिक्षुओ! शीलसम्पन्न सदाचारी पुरुष की, शील हेतु के उपस्थित रहने से, सम्यक्समाधि की भावना बनी रहती है ... पूर्ववत्... हेतु के रहने से विमुक्तिज्ञानदर्शन भी सम्भव है॥'' ●

५. अनुगृहीतसूत्र : : पाँच धर्मों से सम्यग्दृष्टि की सफलता

१. ''भिक्षुओ! पाँच अङ्गों की भावना से सम्यग्दृष्टि चेतोविमुक्तिफल वाली तथा प्रज्ञाविमुक्तिफल वाली हो पाती है तथा इन फलों के माहात्म्य से सम्पन्न होती है।

२. ''किन पाँच अङ्गों की भावना से? यहाँ, भिक्षुओ! यदि साधक की सम्यग्दृष्टि (१) शील से, (२) शास्त्रश्रवण से, (३) साक्षात्कार से, (४) शमथ से, एवं (५) विपश्यना से अनुगृहीत होती है तो, भिक्षुओ! ऐसी सम्यग्दृष्टि से चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति की साधना की जा सकती है। तथा एक न एक दिन वह सम्यग्दृष्टि चेतोविमुक्तिफल एवं प्रज्ञाविमुक्तिफल के माहात्म्य से सम्पन्न हो जायगी—यह निश्चित है॥'' ●

भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं वा चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा वा आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं वा अनुत्तरं योगक्खेमं [B.18] अनुपापुणाति।

२. ''कतमानि पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो सत्था धम्मं देसेति अञ्ञतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी। यथा यथा, भिक्खवे, तस्स भिक्खुनो सत्था धम्मं देसेति, अञ्ञतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी, तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थपटिसंवेदी च होति धम्मपटिसंवेदी च। तस्स अत्थपटिसंवेदिनो धम्मपटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदेति। सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं, भिक्खवे, पठमं विमुत्तायतनं यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं वा चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा वा आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं वा अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति, अञ्ञतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी, अपि च खो यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं [R.22] देसेति। यथा यथा, भिक्खवे, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थपटिसंवेदी च होति धम्मपटिसंवेदी च। तस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदेति। सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं, भिक्खवे, दुतियं विमुत्तायतनं यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो

---

६. विमुक्त्यायतनसूत्र : : पाँच विमुक्त्यायतन

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच विमुक्ति के आयतन (क्षेत्र) हैं जहाँ किसी सावधान, उद्योगी, आश्रवों के प्रदहन (क्षय) में रत, साधक भिक्षु का अविमुक्त चित्त विमुक्त हो जाता है, न क्षीण हुए आश्रव क्षीण होने लगते हैं तथा उसको अप्राप्त अद्वितीय योगक्षेम प्राप्त होता है।

२. कौन से पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! किसी साधक भिक्षु को शास्ता स्वयं धर्मोपदेश करे या उसका कोई गुरुतुल्य साथी। भिक्षुओ! जैसे जैसे उस भिक्षु को शास्ता या उसके गुरुतुल्य ज्येष्ठ साथी धर्मोपदेश करते हैं वैसे वैसे वह भिक्षु उस धर्म में अर्थ एवं धर्म की यथार्थता का अनुभव करने लगता है। तब अर्थ, धर्म का अनुभव करते हुए उस भिक्षु को प्रमोद (हर्ष) होता है, प्रमोद से उसको उस धर्म के प्रति श्रद्धा (प्रीति) होने लगती है। इस प्रकार उस श्रद्धालु चित्त वाले भिक्षु की काया, चञ्चलता नष्ट होकर, स्थिर हो जाती है। ऐसे उस स्थिरकाय भिक्षु को सुख का अनुभव होने लगता है। ऐसे उस सुखी भिक्षु का चित्त समाहित (स्थिर) होने लगता है। भिक्षुओ! यह प्रथम विमुक्त्यायन है जहाँ ...पूर्ववत्... भिक्षु को अप्राप्त अद्वितीय योगक्षेम प्राप्त होता है। (१)

३. ''पुनः, भिक्षुओ! ऐसा भी कोई भिक्षु होता है जिसे न शास्ता धर्मोपदेश कर पाते हैं, न उसका कोई गुरुतुल्य ज्येष्ठ साथी ही; अपितु वह स्वयं यथाश्रुत एवं यथाधीत शास्त्र का दूसरों को विस्तारपूर्वक उपदेश करने लगता है। भिक्षुओ! जैसे जैसे वह उस यथाश्रुत यथाधीत शास्त्र का

अविमुत्तं वा चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा वा आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं वा अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

४. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति, अञ्ञतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति। अपि च खो [N.291] यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति। यथा यथा, भिक्खवे, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थपटि- [B.19] संवेदी च होति धम्मपटिसंवेदी च। तस्स अत्थपटिसंवेदिनो धम्मपटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदेति। सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं, भिक्खवे, ततियं विमुत्तायतनं यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो ...पे०... योगक्खेमं अनुपापुणाति।

५. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति, अञ्ञतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति; अपि च खो यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं [R.23] चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति। यथा यथा, भिक्खवे, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थपटिसंवेदी च होति धम्मपटिसंवेदी च। तस्स अत्थपटिसंवेदिनो धम्म-पटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदेति। सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं, भिक्खवे, चतुत्थं विमुत्तायतनं यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं वा चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा वा आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं वा अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

दूसरों को विस्तृत उपदेश करता है वैसे वैसे वह भिक्षु उस धर्म में ...पूर्ववत्... अप्राप्त अद्वितीय योगक्षेम प्राप्त होता है। (२)

४. "पुनः, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को न शास्ता उपदेश करते हैं, न उसका कोई गुरुतुल्य ज्येष्ठ सब्रह्मचारी ही, न वह स्वयं यथाश्रुत यथाधीत शास्त्र का दूसरों को उपदेश करता है; अपितु वह यथाश्रुत यथाधीत शास्त्र का स्वयं स्वाध्याय करता है। भिक्षुओ! जैसे जैसे वह उस यथाश्रुत यथाधीत शास्त्र का स्वयं स्वाध्याय करता है वैसे वैसे यह भिक्षु उस धर्म में ...पूर्ववत्... भिक्षु को अप्राप्त अद्वितीय योगक्षेम प्राप्त होता है। (३)

५. "पुनः, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को ...पूर्ववत्... न वह स्वयं यथाश्रुत यथाधीत शास्त्र का स्वाध्याय ही करता है, अपितु जैसे जैसे वह उस यथाश्रुत यथाधीत शास्त्र का अनुवितर्कण (मनन), अनुविचार एवं अनुप्रेक्षण (ध्यान) करता है वैसे वैसे वह भिक्षु उस धर्म में ...पूर्ववत्... भिक्षु को अप्राप्त अद्वितीय योगक्षेम प्राप्त होता है। (४)

६. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो न हेव खो सत्था धम्मं देसेति, अञ्ञतरो वा गरुट्ठानियो सब्रह्मचारी, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति, नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति; नापि यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति; अपि च ख्वस्स अञ्ञतरं समाधिनिमित्तं सुग्गहितं होति सुमनसिकतं सूपधारितं सुप्पटिविद्धं पञ्ञाय। यथा यथा, भिक्खवे, भिक्खुनो अञ्ञतरं समाधिनिमित्तं सुग्गहितं होति सुमनसिकतं सूपधारितं सुप्पटिविद्धं पञ्ञाय तथा तथा सो तस्मिं धम्मे अत्थपटिसंवेदी च होति धम्मपटिसंवेदी च। तस्स अत्थपटिसंवेदिनो धम्मपटिसंवेदिनो पामोज्जं जायति। पमुदितस्स पीति जायति। पीतिमनस्स कायो [N.292] पस्सम्भति। पस्सद्धकायो सुखं वेदेति। सुखिनो चित्तं समाधियति। इदं, भिक्खवे, पञ्चमं विमुत्तायतनं यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो [B.20,R.24] अविमुत्तं वा चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा वा आसवा परिक्खयं गच्छन्ति. अननुप्पत्तं वा अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाति।

७. ''इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च विमुत्तायतनानि यत्थ भिक्खुनो अप्पमत्तस्स आतापिनो पहितत्तस्स विहरतो अविमुत्तं वा चित्तं विमुच्चति, अपरिक्खीणा वा आसवा परिक्खयं गच्छन्ति, अननुप्पत्तं वा अनुत्तरं योगक्खेमं अनुपापुणाती'' ति॥ ●

७. समाधिसुत्तं : १. ''समाधिं, भिक्खवे, भावेथ अप्पमाणं निपका पतिस्सता। समाधिं, भिक्खवे, भावयतं अप्पमाणं निपकानं पतिस्सतानं पञ्च ञाणानि पच्चत्तञ्ञेव उप्पज्जन्ति। कतमानि पञ्च? 'अयं समाधि पच्चुप्पन्नसुखो चेव आयतिं च सुखविपाको' ति पच्चत्तञ्ञेव ञाणं उप्पज्जति, 'अयं समाधि अरियो निरामिसो' ति पच्चत्तञ्ञेव ञाणं उप्पज्जति, 'अयं समाधि अकापुरिससेवितो' ति पच्चत्तञ्ञेव ञाणं उप्पज्जति, 'अयं

---

६. ''पुनः, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को ...पूर्ववत्... अनुप्रेक्षण (ध्यान) करता है, अपितु वह इस शास्त्रोक्त धर्म को, समाधिनिष्ठ होकर प्रज्ञाद्वारा मन में भली भाँति बैठा लेता है। भिक्षुओ! जैसे जैसे वह इस धर्म को समाधिभावना से मन में बैठाता है वैसे वैसे वह उस धर्म में ...पूर्ववत्... भिक्षु को... अप्राप्त अद्वितीय योगक्षेम प्राप्त होता है। (५)

७. भिक्षुओ! ये पाँच विमुक्त्यायतन हैं जहाँ किसी सावधान, उद्योगी ...पूर्ववत्... तथा उसको अप्राप्त अद्वितीय योगक्षेम प्राप्त होता है॥'' ●

: :

पाँच ज्ञान

७. समाधिसूत्र

१. ''भिक्षुओ! तुम लोग दक्ष एवं बुद्धिमान् हो, तुमको अप्रमाण समाधि की भावना करनी चाहिये। तुम दक्ष एवं बुद्धिमानों द्वारा ऐसी भावना करने से तुमको ये पाँच ज्ञान व्यक्तिगत रूप से प्रत्यक्ष हो जायँगे। कौन से पाँच?

''यह समाधि वर्तमान में भी सुख देनेवाली हैं तथा भविष्य में भी सुखमय फल ही देनेवाली है'—यह ज्ञान तुम्हें व्यक्तिगत रूप से हो जायगा। (१)

''यह समाधि श्रेष्ठ एवं निर्दोष है'—यह ज्ञान तुम्हें व्यक्तिगत रूप से हो जायगा। (२)

समाधि सन्तो पणीतो पटिप्पस्सद्धलद्धो एकोदिभावाधिगतो, न सङ्खारनिग्गय्हवारितगतो' ति पच्चत्तञ्ञेव ञाणं उप्पज्जति, 'सतो खो पनाहं इमं समापज्जामि सतो वुट्ठहामी' ति पच्चत्तञ्ञेव ञाणं उप्पज्जति।

२. "समाधिं, भिक्खवे, भावेथ अप्पमाणं निपका पतिस्सता। समाधिं, भिक्खवे, भावयतं अप्पमाणं निपकानं पतिस्सतानं इमानि पञ्च ञाणानि पच्चत्तञ्ञेव उप्पज्जन्ती" ति॥

●

[R.25] **८. पञ्चङ्गिकसुत्तं** : १. "अरियस्स, भिक्खवे, पञ्चङ्गिकस्स सम्मासमाधिस्स भावनं देसेस्सामि। तं सुणाथ, साधुकं, मनसि करोथ; भासिस्सामी" ति। "एवं, भन्ते" ति [N.293] खो ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

[B.21] २. "कतमा च, भिक्खवे, अरियस्स पञ्चङ्गिकस्स सम्मासमाधिस्स भावना? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव कामेहि ...पे०... पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, दक्खो न्हापको वा न्हापकन्तेवासी वा कंसथाले न्हानीयचुण्णानि आकिरित्वा उदकेन परिप्फोसकं परिप्फोसकं सन्नेय्य। सायं न्हानीयपिण्डि स्नेहपरेता सन्तरबाहिरा फुटा स्नेहेन,

---

"घृणित पुरुष इस समाधि का अभ्यास नहीं कर पाते'—यह ज्ञान ...पूर्ववत्...। (३)

"यह समाधि शान्त, उत्तम शान्ति एवं एकाग्रता द्वारा प्राप्त की जा सकती है, संस्कारों को निगृहीत कर इसका निषेध नहीं किया जा सकता'—यह ज्ञान ...पूर्ववत्...। (४)

" 'स्मृतिमान् होकर ही मैं इस समाधि की भावना करता हूँ, तथा स्मृतिमान् होकर ही मैं इससे उठता हूँ'—यह ज्ञान तुमको व्यक्तिगत रूप से हो जायगा। (५)

"अतः भिक्षुओ! तुम लोग दक्ष एवं बुद्धिमान् हो, तुमको अप्रमाण समाधि की भावना करनी चाहिये। तुम दक्ष एवं बुद्धिमानों द्वारा ऐसी भावना करने से तुमको व्यक्तिगत रूप से ये पाँच ज्ञान प्रत्यक्ष हो जायँगे॥"

●

८. पञ्चाङ्गिकसूत्र : : पञ्चाङ्गिक सम्यक्समाधि

१. "भिक्षुओ! मैं तुमको आर्य सम्यक्समाधि का उपदेश करूँगा, उसको तुम ध्यानपूर्वक सुनो और मन मैं बैठा लो। कहता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते!" कहकर भिक्षुओं ने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् यह बोले—

२. "भिक्षुओ! इस आर्य पञ्चाङ्गिक सम्यक्समाधि की भावना कैसे होती है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु कामभोगों से दूर रहता हुआ... पूर्ववत्... प्रथम ध्यान प्राप्त कर साधना करता है। वह इसी काया को विवेकजन्य प्रीतिसुख से अभिष्यन्दित, परिष्यन्दित, परिपूर्ण एवं परिस्फरण करता है, उसके शरीर का कोई भाग उस विवेकजन्य प्रीतिसुख से अस्पृष्ट (अछूता) नहीं रह जाता। जैसे, भिक्षुओ! कोई स्नान कराने वाला चतुर पुरुष या उसका कोई कुशल साथी कांसे की चिकनी

न च पग्घरिनी। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं विवेकजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स विवेकजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। अरियस्स, भिक्खवे, पञ्चङ्गिकस्स सम्मासमाधिस्स अयं **पठमा भावना**।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु वितक्कविचारानं वूपसमा ...पे०... दुतियं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, उदकरहदो गम्भीरो उब्भिदोदको। तस्स नेवस्स पुरत्थिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न पच्छिमाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न उत्तराय दिसाय उदकस्स आयमुखं, न दक्खिणाय दिसाय उदकस्स आयमुखं, देवो च कालेन कालं [R.26] सम्मा धारं नानुप्पवेच्छेय्य। अथ खो तम्हा व उदकरहदा सीता वारिधारा उब्भिज्जित्वा तमेव उदकरहदं सीतेन वारिना अभिसन्देय्य परिसन्देय्य परिपूरेय्य परिप्फरेय्य; नास्स किञ्चि सब्बावतो उदकरहदस्स सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं समाधिजेन पीतिसुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति [N.294] नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स समाधिजेन पीतिसुखेन अप्फुटं होति। अरियस्स, भिक्खवे, पञ्चङ्गिकस्स सम्मासमाधिस्स अयं **दुतिया भावना**।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु पीतिया च विरागा ...पे०... ततियं झानं [B.22]

थाली में स्नानीय चूर्ण (उबटन) को डालकर, जल में सब तरफ हाथ से मिलावे। इस तरह वह चूर्ण पिण्ड के रूप में अन्दर बाहर सब तरफ से जलमिश्रित हो जायगा, वह विखरेगा नहीं। इसी प्रकार, भिक्षुओ! कोई भिक्षु जब अपनी काया को विवेकजन्य प्रीतिसुख से अभिष्यन्दित, परिष्यन्दित एवं परिपूर्ण करता है तब उसकी काया का कोई भी भाग उस विवेकजन्य प्रीतिसुख से अस्पृष्ट नहीं रहता। भिक्षुओ! इस आर्यसम्यक्समाधि की यह **प्रथम भावना** कहलाती है। (१)

३. तदनन्तर, भिक्षुओ! कोई साधक भिक्षु वितर्क विचारों के शमन हो जाने से ...पूर्ववत्... द्वितीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। तब वह अपनी काया को समाधिजन्य प्रीतिसुख से अभिष्यन्दित, परिष्यन्दित, परिपूर्ण करता है। उस समय उसकी काया का कोई भी अङ्ग उस समाधिजन्य प्रीतिसुख से अस्पृष्ट नहीं रहता। जैसे, भिक्षुओ! कोई ऐसा सरोवर हो जिसमें भूतल के जलस्रोत से जल आता हो। उसमें बाहर से जल आने का कोई स्रोत न पूर्व दिशा से हो, न पश्चिम दिशा से, न उत्तर दिशा से, न दक्षिण दिशा से हो, तथा मेघों से समय पर जलवृष्टि भी न हो। तब उसी जलह्रद (सरोवर) से ठण्ढी जल की धारा नीचे से उठकर उसको ठण्ढे जल से इतना भर दे, परिपूर्ण कर दे कि उस सरोवर का कोई भाग जल से रिक्त न रहे। वैसे ही, भिक्षुओ! वह भिक्षु अपने समाधिजन्य प्रीतिसुख से अपनी काया को अभिष्यन्दित, परिष्यन्दित एवं परिपूर्ण करता रहता है। उस समय उसकी काया का कोई भी भाग उस समाधिजन्य प्रीतिसुख से अस्पृष्ट नहीं रहता। भिक्षुओ! यह है आर्य पञ्चाङ्गिक सम्यक्समाधि की **द्वितीय भावना**। (२)

उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, उप्पलिनियं वा पुण्डरीकिनियं वा अप्पेकच्चानि उप्पलानि वा पदुमानि वा पुण्डरीकानि वा उदके जातानि उदके संवड्ढानि उदकानुग्गतानि अन्तो निमुग्गपोसीनि। तानि याव चग्गा याव च मूला सीतेन वारिना अभिसन्नानि परिसन्नानि परिपूरानि परिप्फुटानि; नास्स किञ्चि सब्बावतं उप्पलानं वा पदुमानं वा पुण्डरीकानं वा सीतेन वारिना अप्फुटं अस्स। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं निप्पीतिकेन सुखेन अभिसन्देति परिसन्देति परिपूरेति परिप्फरति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स निप्पीतिकेन सुखेन अप्फुटं होति। अरियस्स, भिक्खवे, पञ्चङ्गिकस्स सम्मासमाधिस्स अयं **ततिया भावना**।

[R.27] ५. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सुखस्स च पहाना ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति। सेय्यथापि, भिक्खवे, पुरिसो ओदातेन वत्थेन ससीसं पारुपित्वा निसिन्नो अस्स; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स ओदातेन वत्थेन अप्फुटं अस्स। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु इममेव कायं परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन फरित्वा निसिन्नो होति; नास्स किञ्चि सब्बावतो कायस्स परिसुद्धेन चेतसा परियोदातेन अप्फुटं होति। अरियस्स, भिक्खवे, पञ्चङ्गिकस्स सम्मासमाधिस्स अयं **चतुत्थी भावना**।

---

४. ''पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु इस प्रीति से विराग होने से...पूर्ववत्... तृतीय ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। वह इस काया को प्रीतिरहित सुख से इतना अभिषिक्त, परिषिक्त एवं परिपूर्ण करता है कि उस समय उसकी काया का कोई भी अङ्ग अस्पृष्ट नहीं बचता। जैसे, भिक्षुओ! किसी उत्पल या पद्म वाले सरोवर (पुष्करिणी) में कुछ उत्पल, पुण्डरीक या पद्म जल में उत्पन्न होते हैं उसी में बढ़ते हैं, उससे सम्पृक्त रहे हैं, उसी के सहारे उनका पोषण होता है, वे अग्रभाग से मूलभाग तक शीत जल से अभिषिक्त, परिषिक्त तथा परिपूर्ण रहते हैं, इनका कोई भी अंश उस शीत जल से अस्पृष्ट नहीं रहता; वैसे ही, भिक्षुओ! वह भिक्षु अपनी काया को प्रीतिरहित सुख से ...पूर्ववत्... अस्पृष्ट नहीं रहता। भिक्षुओ! यह है इस पञ्चाङ्गिक सम्यक्समाधि की **तृतीय भावना**। (३)

५. ''पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सुख के प्रहाण से ...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है। वह अपनी काया को परिशुद्ध एवं पर्यवदात चित्त से व्याप्त कर स्थिरतापूर्वक बैठता है। उस समय इसकी काया का कोई भी अङ्ग परिशुद्ध एवं पर्यवदात चित्त से अस्पृष्ट नहीं रहता। जैसे, भिक्षुओ! कोई पुरुष शिर सहित अपने समस्त शरीर को श्वेत वस्त्र से ढककर बैठा हो, उस समय इसके शरीर का कोई भी अङ्ग वस्त्र से अस्पृष्ट नहीं रहता; वैसे ही भिक्षुओ! कोई भिक्षु अपनी काया को परिशुद्ध एवं पर्यवदात चित्त से ...पूर्ववत्... अस्पृष्ट नहीं रहता। भिक्षुओ! आर्य पञ्चाङ्गिक सम्यक्समाधि की यह **चतुर्थ भावना** है। (४)

६. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्चवेक्खणानिमित्तं सुग्गहितं होति सुमनसिकतं सूपधारितं सुप्पटिविद्धं पञ्ञाय। सेय्यथापि, भिक्खवे, अञ्ञो व अञ्ञं पच्चवेक्खेय्य, ठितो वा निसिन्नं पच्चवेक्खेय्य, निसिन्नो वा निपन्नं पच्चवेक्खेय्य। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खुनो पच्चवेक्खणानिमत्तं सुग्गहितं होति, सुमनसिकतं सूप-[N.295] धारितं सुप्पटिविद्धं पञ्ञाय। अरियस्स, भिक्खवे, पञ्चङ्गिकस्स सम्मासमाधिस्स अयं **पञ्चमा भावना**। एवं भाविते खो, भिक्खवे, भिक्खु अरिये पञ्चङ्गिके सम्मा-[B.23] समाधिम्हि एवं बहुलीकते यस्स यस्स अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभि-निन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

७. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, उदकमणिको आधारे ठपितो पूरो उदकस्स समतित्तिको काकपेय्यो। तमेनं बलवा पुरिसो यतो यतो आवज्जेय्य, आगच्छेय्य उदकं'' ति? ''एवं, भन्ते''। [R.28]

''एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु एवं भाविते अरिये पञ्चङ्गिके सम्मासमाधिम्हि एवं बहुलीकते यस्स अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

८. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, समे भूमिभागे पोक्खरणी चतुरंसा आलिबद्धा पूरा उदकस्स समतित्तिका काकपेय्या। तमेनं बलवा पुरिसो यतो यतो आलिं मुञ्चेय्य, आगच्छेय्य उदकं'' ति? ''एवं, भन्ते''।

---

६. ''पुनः, भिक्षुओ! किसी भिक्षु की प्रत्यवेक्षणा का निमित्त सुगृहीत होता है, मन से भली भाँति धारण किया हुआ होता है, प्रज्ञा द्वारा अन्तस्तल तक प्रविष्ट हुआ रहता है। जैसे भिक्षुओ! कोई किसी को देखे, खड़ा हुआ बैठे हुए को देखे, या बैठा हुआ लेटे हुए को देखे; इसी प्रकार, भिक्षुओ! भिक्षु का प्रत्यवेक्षणानिमित्त सुगृहीत होता है ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! यह आर्य पञ्चाङ्गिक सम्यक्समाधि की **पञ्चम भावना** है। (५)

''भिक्षुओ! किसी भिक्षु द्वारा इस आर्य पञ्चाङ्गिक सम्यक्समाधि का बहुलतया अभ्यास करते रहने पर, जिस जिस अभिज्ञा द्वारा साक्षात्करणीय धर्म की ओर अभिज्ञा द्वारा साक्षात्कार हेतु झुकता है, अवसर आने पर, वह उस धर्म का साक्षात्कार कर लेता है।

७. जैसे, भिक्षुओ! कोई घड़ा किसी आधार पर सुव्यवस्थित टिका हो, और वह किनारे तक जल से इतना पूर्ण हो कि कौए भी उसमें सरलता से जल पी सके; उसको कोई बलवान् पुरुष इधर उधर झुकाकर उसमें से जल ले सकता है?'' ''हाँ, भन्ते!''

वैसे ही, भिक्षुओ! किसी भिक्षु द्वारा इस आर्य पञ्चाङ्गिक सम्यक्समाधि का बहुलतया अभ्यास करते रहने पर... वह साक्षात्कार कर लेता है।

८. ''भिक्षुओ! जैसे कोई समतल भूभाग पर चारों ओर पक्के तटबन्ध वाली कोई पुष्करणी हो, जो जल से इतनी भरी हुई हो कि जहाँ कौए भी अनायास जल पी सकें। वहाँ कोई बलवान् पुरुष आवे और किधर से उसका किनारा तोड़कर उससे जल ले सकेगा? ''हाँ, भन्ते!''

''एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु एवं भाविते अरिये पञ्चङ्गिके सम्मासमाधिम्हि एवं बहुलीकते यस्स यस्स अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स ...पे०... सति सति आयतने।

९. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, सुभूमियं चातुम्महापथे आजञ्ञरथो युत्तो अस्स ठितो ओधस्तपतोदो। तमेन दक्खो योग्गाचरियो अस्सदम्मसारथि अभिरुहित्वा वामेन हत्थेन रस्मियो गहेत्वा दक्खिणेन हत्थेन पतोदं गहेत्वा येनिच्छकं यदिच्छकं सारेय्य पि पच्चासारेय्य पि। एवमेव खो, भिक्खवे, भिक्खु एवं भाविते अरिये पञ्चङ्गिके सम्मासमाधिम्हि एवं बहुलीकते यस्स यस्स अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेति अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

[N.296,R.29] १०. ''सो सचे आकङ्खति—'अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभवेय्यं—एको पि हुत्वा बहुधा अस्सं ...पे०... याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

[B.24] ११. ''सो सचे आकङ्खति—'दिब्बाय सोतधातुया विसुद्धाय अतिक्कन्तमानुसिकाय उभो सद्दे सुणेय्यं—दिब्बे च मानुसे च ये दूरे सन्तिके चा' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

१२. ''सो सचे अकङ्खति—'परसत्तानं परपुग्गलानं चेतसा चेतो परिच्च पजानेय्यं—सरागं वा चित्तं सरागं चित्तं ति पजानेय्यं, वीतरागं वा चित्तं वीतरागं चित्तं ति पजानेय्यं, सदोसं वा चित्तं... वीतदोसं वा चित्तं... समोहं वा चित्तं... वीतमोहं वा चित्तं...

''इसी प्रकार, भिक्षुओ! कोई भिक्षु इस आर्य पञ्चाङ्ग सम्यक्समाधि की दृढ़तापूर्वक निरन्तर अभ्यास करने पर जिस जिस अभिज्ञा से साक्षात्करणीय धर्म का अभिज्ञा से साक्षात्कार करना चाहेगा वह समय आने पर ऐसा साक्षात्कार कर सकेगा।

९. ''भिक्षुओ! जैसे किसी सीधे चौरस्ते पर कोई सजा हुआ रथ हो, जिसमें अच्छी जाति के घोड़े जुते हो, जिस पर चाबुक लटका हो। वहाँ कोई दक्ष अश्वचालक उस रथ पर चढ़कर, बाँये हाथ से अश्वों की लगाम (रस्सी) पकड़कर तथा दाहिने हाथ में चाबुक लेकर, जिधर चाहे जैसा चाहे आगे पीछे उसे चला फिरा सकता है, उसी प्रकार, भिक्षुओ! कोई भिक्षु इस आर्य पञ्चाङ्गिक ...पूर्ववत्... साक्षात्कार कर सकेगा।

१०. ''वह साधक भिक्षु यदि चाहता है—अनेक प्रकार के चमत्कार देखूँ; जैसे एक होता हुआ भी बहुत हो जाऊँ ...पूर्ववत्... ब्रह्मलोक तक समस्त जगत् को अपने अधीन कर लूँ, तो वह समर्थ भिक्षु, समय पड़ने पर, यह सब चमत्कार देख सकता है।

११. ''वह साधक भिक्षु यदि चाहता है—विशुद्ध, मानवदुर्लभ दिव्य श्रोत्रधातु से दिव्य एवं मानव शब्द सुनूँ ...पूर्ववत्... वह ऐसा साक्षात्कार कर सकता है।

१२. ''वह साधक भिक्षु यदि चाहता है—दूसरे प्राणियों के, दूसरे पुद्गलों के चित्त को

सङ्खित्तं वा चित्तं... विक्खित्तं वा चित्तं... महग्गतं वा चित्तं... अमहग्गतं वा चित्तं... सउत्तरं वा चित्तं... अनुत्तरं वा चित्तं... समाहितं वा चित्तं... असमाहितं वा चित्तं... विमुत्तं वा चित्तं... अविमुत्तं वा चित्तं अविमुत्तं चित्तं ति पजानेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

१३. ''सो सचे आकङ्खति—'अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्यं, सेय्यथीदं—एकं पि जातिं, द्वे पि जातियो ...पे०... इति साकारं सउद्देसं अनेकविहितं पुब्बेनिवासं अनुस्सरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

१४. ''सो सचे आकङ्खति—'दिब्बेन चक्खुना विसुद्धेन अतिक्कन्तमानुसकेन ...पे०... यथाकम्मूपगे सत्ते पजानेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने।

१५. ''सो सचे आकङ्खति—'आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणाति सति सति आयतने'' ति। ●

९. चङ्कमसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, चङ्कमे आनिसंसा। कतमे पञ्च? अद्धानक्खमो होति, पधानक्खमो होति, अप्पाबाधो होति, असितं पीतं खायितं [R.30] सायितं सम्मा परिणामं गच्छति, चङ्कमाधिगतो समाधि चिरट्ठितिको होति। इमे खो, [N.297] भिक्खवे, पञ्च चङ्कमे आनिसंसा'' ति॥ ●

स्वचित्त से जान सकूँ, जैसे—सराग चित्त को ...पूर्ववत्... तो वह ऐसा साक्षात्कार सरलता से कर सकता है।

१३. ''यदि वह साधक भिक्षु चाहता है कि वह अपने अनेक पूर्वजन्मों का अनुस्मरण करे, जैसे—एक जन्म, दो जन्म ...पूर्ववत्... अनुस्मरण करूँ तो वह, समय आने पर, ऐसा करने में समर्थ हो सकता है।

१४. ''यदि वह साधक भिक्षु चाहता है कि विशुद्ध, मानवदुर्लभ दिव्य चक्षु से ...पूर्ववत्... स्व स्व प्रारब्ध कर्मवश यहाँ आये हुए प्राणियों के विषय में जान लूँ तो वह, समय आने पर, ऐसा करने में समर्थ हो सकता है।''

१५. ''यदि वह साधक भिक्षु चाहता है कि आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में ...पूर्ववत्... ऐसा करने में समर्थ हो सकता है॥'' ●

९. चंक्रमसूत्र : : **चंक्रमण की पाँच विशेषताएँ**

१. भिक्षुओ! चंक्रमण की ये पाँच विशेषताएँ हैं। कौन सी पाँच? चंक्रमण करनेवाला साधक (१) (साधना के लम्बे) मार्ग को पार करने में समर्थ है, (२) अपने चित्तविकारों प्रदहन (नाश) में समर्थ होता है; (३) उसको शारीरिक रोग कम सताते हैं, (४) उसका खाया, पीया, चाटा हुआ पदार्थ शीघ्र पच जाता है। (५) तथा चंक्रमणाभ्यासी की समाधि चिरस्थायी होती है। भिक्षुओ! चंक्रमण की ये पाँच विशेषताएँ होती हैं॥'' ●

[B.25] **१०. नागितसुत्तं :** १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं येन इच्छानङ्गलं नाम कोसलानं ब्राह्मणगामो तदवसरि। तत्र सुदं भगवा इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवनसण्डे। अस्सोसुं खो इच्छानङ्गलका ब्राह्मण-गहपतिका—"समणो खलु भो गोतमो सक्यपुत्तो सक्यकुला पब्बजितो इच्छानङ्गलं अनुप्पत्तो; इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवनसण्डे। तं खो पन भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्समणब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा पवेदेति। सो धम्मं देसेति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं होती" ति। अथ खो इच्छानङ्गलका ब्राह्मणगहपतिका तस्सा रत्तिया अच्चयेन पहूतं खादनीयं भोजनीयं आदाय येन इच्छाङ्गलवनसण्डो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा बहिद्वारकोट्ठके अट्ठंसु उच्चासद्दमहासद्दा।

[R.31] २. तेन खो पन समयेन आयस्मा नागितो भगवतो उपट्ठाको होति। अथ खो भगवा आयस्मन्तं नागितं आमन्तेसि—"के पन खो, नागित, उच्चासद्दमहासद्दा, केवट्टा मञ्ञे मच्छविलोपे" ति?

"एते, भन्ते, इच्छानङ्गलका ब्राह्मणगहपतिका पहूतं खादनीयं भोजनीयं आदाय बहिद्वारकोट्ठके ठिता भगवन्तञ्ञेव उद्दिस्स भिक्खुसङ्घं चा" ति।

---

१०. नागितसूत्र : : पाँच निष्यन्द (परिणाम)

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) कोसल देश में चारिका करते हुए, अपने विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ, इच्छानङ्गल नामक किसी ब्राह्मणग्राम में पधारे। वहाँ वे भगवान् इच्छानङ्गल ग्राम के समीपस्थ इच्छानङ्गल वनप्रदेश में साधनाहेतु विराजमान थे। तब इच्छानङ्गलवासी ब्राह्मण गृहस्थों ने सुना—"अरे! श्रमण गौतम शाक्यपुत्र, शाक्यकुल से प्रव्रजित होकर इच्छानङ्गल में पधारे हैं तथा इसके वनप्रदेश में साधनाहेतु विराजमान हैं। उन श्रमण गौतम का यह कीर्तिशब्द लोक में फैला हुआ है—वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ...पूर्ववत्... भगवान् बुद्ध हैं।... ऐसे ज्ञानियों का दर्शन बहुत कल्याणप्रद होता है।" तब वे इच्छानङ्गलवासी ब्राह्मण गृहपति, उस रात्रि के बीत जाने पर, प्रचुर मात्रा में खाद्य भोज्य सामग्री लेकर उस इच्छानङ्गल वनप्रदेश में आये तथा विहार के बाह्य द्वार पर आकर कोलाहल करते हुए खड़े रहे।

२. उस समय आयुष्मान् नागित भगवान् की परिचर्या में थे। अत: भगवान् ने आयुष्मान् नागित से पूछा—"नागित! ये कौन इतना भीषण कोलाहल कर रहे हैं, मानो केवट मछली बाजार में कोलाहल करते हुए मछली बेच रहे हों?"

"भन्ते! ये इच्छानङ्गलवासी गृहपति भगवान् तथा भिक्षुसङ्घ के लिये प्रचुरमात्रा में खाद्य भोज्य सामग्री लाये हैं। बाह्य द्वार पर खड़े हैं।"

''माहं, नागित, यसेन समागमं, मा च मया यसो। यो खो, नागित, नयिमस्स नेक्खम्मसुखस्स पविवेकसुखस्स उपसमसुखस्स सम्बोधसुखस्स निकामलाभी [N.298] अस्स अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, यस्साहं नेक्खम्मसुखस्स पविवेकसुखस्स उपसम-सुखस्स सम्बोधसुखस्स निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। सो तं [B.26] मीळ्हसुखं मिद्धसुखं लाभसक्कारसिलोकसुखं सादियेय्या'' ति।

३. ''अधिवासेतु दानि, भन्ते, भगवा, अधिवासेतु सुगतो; अधिवासनकालो दानि, भन्ते, भगवतो। येन येनेव दानि भगवा गमिस्सति तंनिन्ना व गमिस्सन्ति ब्राह्मणगहपतिका नेमगा चेव जानपदा च। सेय्यथापि, भिन्ते, थुल्लफुसितके देवे वस्सन्ते यथानिन्नं उदकानि पवत्तन्ति; एवमेव खो, भन्ते, येन येनेव दानि भगवा गमिस्सति, तंनिन्ना व गमिस्सन्ति ब्राह्मणगहपतिका नेगमा चेव जानपदा च। तं किस्स हेतु? तथा हि, भन्ते, भगवतो सीलपञ्ञाणं'' ति।

४. ''माहं, नागित, यसेन समागमं, मा च मया यसो। यो खो, नागित, नयिमस्स नेक्खम्मसुखस्स पविवेकसुखस्स उपसमसुखस्स सम्बोधसुखस्स निकामलाभी अस्स अकिच्छालाभी अकसिरलाभी, यस्साहं नेक्खम्मसुखस्स पविवेकसुखस्स उपसमसुखस्स सम्बोधसुखस्स निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। सो तं मीळ्हसुखं मिद्धसुखं लाभसक्कारसिलोकसुखं सादियेय्य। असितपीतखायितसायितस्स खो, नागित, [B.32] उच्चारपस्सावो—एसो तस्स निस्सन्दो। पियानं खो, नागित, विपरिणामञ्ञथाभावा

''नागित! मुझे किसी प्रकार के यश की स्पृहा नहीं है, न कोई लौकिक यश (प्रशंसा) वाला कार्य मुझसे सम्बद्ध हो सकता है। नागित! इन कार्यों से नैष्काम्यसुख या प्रविवेकसुख एवं शान्तिसुख तथा सम्बोधिसुख एकान्ततः प्राप्त नहीं किया जा सकता। जबकि मैं निरन्तर नैष्काम्य-सुख या प्रविवेकसुख एवं शान्तिसुख तथा सम्बोधिसुख एकान्ततः अनुभव करता रहता हूँ। इनके सामने यह सांसारिक सुख, आलस्य लौकिक लाभ, सत्कार एवं यश का ही देनेवाला है।''

''भन्ते! इसे भी आप स्वीकार कीजिये। भगवन्! यह आपके स्वीकार करने का अवसर है। आप जैसा आचरण करेंगे वैसा ही आचरण ये ब्राह्मण गृहपति भी करेंगे। भन्ते! जैसे मेघवर्षा से एकत्र हुआ जल नीचे की ओर ही जाता है, वैसे ही भन्ते! आप जैसा आचरण करेंगे, वैसा ही आचरण ये ब्राह्मण गृहपति, यहाँ के निगमवासी एवं जनपदवासी भी करेंगे। वह क्यों? वह इसलिये कि आपका सदाचार ही ऐसा है जिसके प्रभाव से ये लोग भी सत्कार्याभिमुख हो जायँगे।

४. ''नागित! मैं अपने किसी प्रकार के यश से सम्बद्ध होना नहीं चाहता, न मुझसे किसी प्रकार का लौकिक यश ही सम्बद्ध है। वह इस नैष्काम्यसुख, प्रविवेकसुख, उपशमसुख या सम्बोधिसुख का लाभ नहीं करा सकता; जबकि मैं निरन्तर नैष्काम्यसुख, प्रविवेकसुख, उपशम-सुख एवं सम्बोधिसुख का अनुभव करता रहता हूँ। वह लौकिक सुख तो इसकी अपेक्षा विष्ठा (मल)- सुख के समान है। वह केवल लौकिक लाभ सत्कार दिला सकता है। (१) नागित! जैसे हमारे खाये पीये पदार्थ का अन्तिम परिणाम मल या मूत्र होता है, उसी प्रकार इस लौकिक यश का

उप्पज्जन्ति सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा—एसो तस्स निस्सन्दो। असुभनिमित्तानुयोगं अनुयुत्तस्स खो, नागित, सुभनिमित्ते पाटिकुल्यता सण्ठाति—एसो तस्स निस्सन्दो। छसु खो, नागित, फस्सायतनेसु अनिच्चानुपस्सिनो विहरतो फस्से पाटिकुल्यता सण्ठाति—एसो तस्स निस्सन्दो। पञ्चसु खो, नागित, उपादानक्खन्धेसु उदयब्बयानुपस्सिनो विहरतो उपादाने पाटिकुल्यता सण्ठाति—एसो तस्स निस्सन्दो'' ति॥ ●

पञ्चङ्गिकवग्गो ततियो॥

तस्सुद्दानं

द्वे अगारवुपक्किलेसा, दुस्सीलानुग्गहितेन च। [N.299]
विमुत्तिसमाधिपञ्चङ्गिका, चङ्कमं नागितेन चा ति॥ ●

४. सुमनवग्गो

[B.27] **१. सुमनसुत्तं :** १. एकं समयं ...पे०... अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो सुमना राजकुमारी पञ्चहि रथसतेहि पञ्चहि राजकुमारिसतेहि परिवुता येन भगवा

परिणाम (निष्यन्द) भी समझो। (२) नागित! प्रिय वस्तुओं में परिवर्तन या अन्यथा (नाश) हो जाने पर शोक, परिदेव एवं दौर्मनस्य आदि होते हैं—यह भी उसका एक परिणाम है। (३) काया के अशुभ निमित्त की साधना में लगे हुए साधक को शुभनिमित्त में प्रतिकूलता उपस्थित होती है—यह इसका तीसरा परिणाम है। (४) नागित! छह स्पर्शायतनों में अनित्यता की भावना करनेवाले साधक को स्पर्श में प्रतिकूलता उपस्थित होती है—यह इसका चतुर्थ परिणाम है। (५) पाँच उपादानस्कन्धों में उत्पाद एवं विनाश की भावना करनेवाले साधक को उपादान में प्रतिकूलता होती है—यह इसका पाँचवाँ परिणाम है॥'' ●

पञ्चाङ्गिकवर्ग तृतीय सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम अगौरवसूत्र, २. द्वितीय अगौरवसूत्र, ३. उपक्लेशसूत्र, ४. दुःशीलसूत्र, ५. अनुगृहीतसूत्र, ६. विमुक्त्यायतनसूत्र, ७. समाधिसूत्र, ८. पञ्चाङ्गिकसूत्र, ९. चंक्रमणसूत्र, एवं १०. नागितसूत्र॥ ●

४. सुमनोवर्ग

१. सुमनासूत्र : : पाँच स्थानों से विशेषता

१. एक समय ...पूर्ववत्... अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मापित जेतवन आराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कोई सुमना नामक राजकुमारी पाँच सौ राजकुमारियों के साथ पाँच सौ रथों में

तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो सुमना राजकुमारी भगवन्तं एतदवोच—

२. ''इधस्सु, भन्ते, भगवतो द्वे सावका समसद्धा समसीला समपञ्ञा—एको दायको, एको अदायको। ते कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं [R.33] उपपज्जेय्युं। देवभूतानं पन नेसं, भन्ते, सिया विसेसो, सिया नानाकरणं'' ति?

''सिया, सुमने,'' ति भगवा अवोच—''यो सो, सुमने, दायको सो अमुं अदायकं देवभूतो समानो पञ्चहि ठानेहि अधिगण्हाति—दिब्बेन आयुना, दिब्बेन वण्णेन, दिब्बेन सुखेन, दिब्बेन यसेन, दिब्बेन आधिपतेय्येन। यो सो, सुमने, दायको सो अमुं अदायकं देवभूतो समानो इमेहि पञ्चहि ठानेहि अधिगण्हाति''।

३. ''सचे पन ते, भन्ते, ततो चुता इत्थत्तं आगच्छन्ति, मनुस्सभूतानं पन नेसं, भन्ते, सिया विसेसो, सिया नानाकरणं'' ति?

''सिया, सुमने,'' ति भगवा अवोच—''यो सो, सुमने, दायको सो अमुं अदायकं मनुस्सभूतो समानो पञ्चहि ठानेहि अधिगण्हाति—मानुसकेन आयुना, मानुसकेन वण्णेन, मानुसकेन सुखेन, मानुसकेन यसेन, मानुसकेन आधिपतेय्येन। यो सो, सुमने, दायको सो अमुं अदायकं मनुस्सभूतो समानो इमेहि पञ्चहि ठानेहि अधिगण्हाति''।

४. ''सचे पन ते, भन्ते, उभो अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, पब्ब-[N.300] जितानं पन नेसं, भन्ते, सिया विसेसो, सिया नानाकरणं'' ति?

बैठकर, जहाँ भगवान् विराजमान थे, वहाँ पहुँची। पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी हुई सुमना राजकुमारी भगवान् से यों बोली—

२. ''भन्ते, यहाँ आपके दो उपासक शिष्य हों, दोनों आपके प्रति समान श्रद्धालु हों, वे समान आचार वाले हों, समान प्रज्ञा वाले हों; परन्तु उनमें एक दान करता हो, तथा एक दान न करता हो। वे अपने देहपात के बाद, मरणानन्तर, स्वर्ग लोक में उत्पन्न हों। वहाँ उत्पन्न होने पर उनमें क्या कोई विशेषता होगी? क्या कोई भेद होगा?''

''हाँ, सुमने! होगा''—भगवान् बोले—''जो उनमें दानदाता था वह, देवता होते हुए भी, उस न दानदाता से पाँच गुणों से विशेष होगा—१. दिव्य आयु से, २. दिव्य वर्ण से, ३. दिव्य सुख से, ४. दिव्य यश से, एवं ५. दिव्य ऐश्वर्य से। सुमने! वह दानदाता उस न दानदाता से इन पाँच गुणों से विशिष्ट होगा।''

३. भन्ते! यदि वे दोनों ही मनुष्य रूप में जन्म लें तब उनमें क्या भेद होगा? क्या विशेषता होगी?

''सुमने! तब भी उन दोनों में विशेषता रहेगी।'' भगवान् बोले—सुमने! वह दानी दान न देनेवाले से पाँच गुणों में विशेष रहेगा—१. मानव को मिलने वाली आयु से, २. मानव वर्ण से, ३. मानव सुख से, ४. मानव यश से तथा ५. मानव को मिलने वाले ऐश्वर्य से। सुमने! इस प्रकार वह दानी न दान देने वाले से इन पाँच गुणों में विशिष्ट रहता है।''

"सिया, सुमने," ति भगवा अवोच—"यो सो, सुमने, दायको सो अमुं अदायकं पब्बजितो समानो पञ्चहि ठानेहि अधिगण्हाति—याचितो व बहुलं चीवरं परिभुञ्जति अप्पं अयाचितो, याचितो व बहुलं पिण्डपातं परिभुञ्जति अप्पं अयाचितो, याचितो व [B.28] बहुलं सेनासनं परिभुञ्जति अप्पं अयाचितो, याचितो व बहुलं गिलानप्पच्चय-भेसज्जपरिक्खारं परिभुञ्जति अप्पं अयाचितो। येहि खो पन सब्रह्मचारीहि सद्धिं विहरति त्यस्स मनापेनेव बहुलं कायकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन, मनापेनेव बहुलं वची-[R.34] कम्मेन समुदाचरन्ति अप्पं अमनापेन, मनापेनेव बहुलं मनोकम्मेन समुदाचरन्ति अप्पं अमनापेन, मनापंयेव बहुलं उपहारं उपहरन्ति अप्पं अमनापं। यो सो, सुमने, दायको सो अमुं अदायकं पब्बजितो समानो इमेहि पञ्चहि ठानेहि अधिगण्हाती" ति।

५. "सचे पन ते, भन्ते, उभो अरहत्तं पापुणन्ति, अरहत्तप्पत्तानं पन नेसं, भन्ते, सिया विसेसो, सिया नानाकरणं" ति?

"एत्थ खो पनेसाहं, सुमने, न किञ्चि नानाकरणं वदामि, यदिदं विमुत्तिया विमुत्तिं" ति।

६. "अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं, भन्ते! यावञ्चिदं, भन्ते, अलमेव दानानि दातुं

---

४. "यदि, भन्ते! वे दोनों ही घर छोड़कर प्रव्रजित हों तो उन दोनों में क्या विशेषता होगी? क्या भेद होगा?"

"सुमने! वहाँ भी उन दोनों में भेद होगा।" भगवान् बोले—"वह दानी परिव्राजक उस न दानदाता परिव्राजक से इन पाँच गुणों में विशिष्ट होगा—१. उस दानी परिव्राजक को माँगे विना भी पर्याप्त चीवरों का उपभोग करने को मिलेगा, उसको चीवर की याच्ञा सम्भवतः कभी ही करनी पड़े। २. उसको विना माँगे भी, पर्याप्त पिण्डपात (खाद्य पदार्थ) मिलता रहेगा, उसको पिण्डपात की याच्ञा (भिक्षा) कभी कदाचित् ही करनी पड़ती है। ३. उसको उपयोगहेतु शयनासन अनायास, विना माँगे ही, मिलता रहता है, उसको इसके लिये किसी से याच्ञा नहीं करनी पड़ती है। ४. उसको रुग्णावस्था में औषध एवं पथ्य माँगे विना ही मिलते रहेंगे, उसको पथ्यौषध की याच्ञा कभी कदाचित् ही करनी पड़ती है। ५. वह जिन सब्रह्मचारी भिक्षुओं के साथ साधनाहेतु रहता है, वे इसके कायकर्म वाक्कर्म एवं मानस कर्म कहे विना ही पूर्ण करते हैं, उसको इन कार्यों के लिये उनसे सम्भवतः कदाचित् ही कहना पड़ता है। सुमने न दाता परिव्राजक की अपेक्षा दाता परिव्राजक में ये पाँच विशेषताएँ होती हैं।"

५. "भन्ते! यदि वे दोनों (दानी एवं अदानी) अर्हत्त्व (ज्ञान) प्राप्त कर लें तब भन्ते! उन दोनों में क्या भेद या विशेषता होगी?"

"सुमने! वहाँ कोई विशेषता होगी—ऐसा मैं नहीं मानता; क्योंकि ज्ञानियों को ऐसी विशेषताओं से विभाजित नहीं किया जा सकता। कारण कि वे उस अवस्था में सभी भेदों से, सभी विशेषताओं से विमुक्त हो जाते हैं।

६. "आश्चर्य है, भन्ते! अद्भुत है, भन्ते! तब तो, भन्ते! हम लोगों को दानकर्म करते हुए

अलं पुञ्ञानि कातुं; यत्र हि नाम देवभूतस्सा पि उपकारानि पुञ्ञानि, मनुस्सभूतस्सा पि उपकारानि पुञ्ञानि, पब्बजितस्सा पि उपकारानि पुञ्ञानी'' ति।

''एवमेतं, सुमने! अलं हि, सुमने, दानानि दातुं अलं पुञ्ञानि कातुं! देवभूतस्सा पि उपकारानि पुञ्ञानि, मनुस्सभूतस्सा पि उपकारानि पुञ्ञानि, पब्बजितस्सा पि उपकारानि पुञ्ञानी'' ति।

७. इदमवोच भगवा। इदं वत्वानं सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था—

''यथा पि चन्दो विमलो, गच्छं आकासधातुया।
सब्बे तारागणे लोके, आभाय अतिरोचति॥
''तथेव सीलसम्पन्नो सद्धो पुरिसपुग्गलो। [N.301]
सब्बे मच्छरिनो लोके, चागेन अतिरोचति॥
''यथा पि मेघो थनयं, विज्जुमाली सतक्ककु।
थलं निन्नं च पूरेति, अभिवस्सं वसुन्धरं॥
''एवं दस्सनसम्पन्नो, सम्मासम्बुद्धसावको।
मच्छरिं अधिगण्हाति, पञ्चठानेहि पण्डितो॥
''आयुना यससा चेव, वण्णेन च सुखेन च। [B.29]
स वे भोगपरिब्यूळ्हो, पेच्च सग्गे पमोदती'' ति॥ ●

पुण्यकर्म अवश्य करने चाहिये, जबकि देवत्व प्राप्त होने पर भी ये पुण्य उसमें उपकारक ही होते हैं, मनुष्यत्व प्राप्त होने पर भी... प्रव्रजित होने पर भी ये पुण्यकर्म वहाँ उपकारक ही होते हैं।''

''हाँ, सुमने! ऐसी ही बात है। सभी को ये दान एवं पुण्य कर्म अवश्य करने चाहिये; क्योंकि ये पुण्यकर्म ...पूर्ववत्... प्रव्रजित होने पर भी उपकारक ही होते हैं।''

७. भगवान् ने यह उपदेश किया। यह उपदेश कर मधुरभाषी शास्ता ने गाथाओं के माध्यम से यह भी कहा—

(१) ''जैसे निर्मल (स्वच्छ, निष्कलङ्क) चन्द्रमा आकाश में गमन करता हुआ लोक में अन्य साधारण तारासमूह से अतिरिक्त अपनी विशिष्ट आभा से द्योतित होता रहता है॥

(२) ''उसी प्रकार, कोई शीलसम्पन्न श्रद्धालु उत्तम पुरुष लोक में अन्य सभी मात्सर्यसम्पन्न (अतिलोभी, कंजूस) पुरुषों से अपनी अतिरिक्त विशेष शोभा से शोभित होता रहता है॥

(३) ''जैसे हजारों पंक्तियों वाले काले मेघ से बिजली सी कड़कती है, पृथ्वी पर जलवृष्टि भी होती है, तथा नीची भूमि जल से भर जाती है॥

(४) उसी प्रकार, सम्यक्सम्बुद्ध का सुन्दराकृति दानी शिष्य अपनी इन पाँच विशेषताओं से लोक में अतिलोभी (कञ्जूस) लोगों को तिरस्कृत करता रहता है॥

आयु से, यश से, वर्ण से, सुख से एवं ऐश्वर्य सम्पत्ति से। वह यहाँ इनका यथेच्छ उपभोग कर, मरणानन्तर स्वर्ग में जाकर दिव्यसुख का अनुभव कर प्रमुदित होता है॥'' ●

[R.35] **२. चुन्दीसुत्तं :** १. एकं समयं भगवा राजगहे विहरति वेळुवने कलन्दकनिवापे। अथ खो चुन्दी राजकुमारी पञ्चहि रथसतेहि पञ्चहि च कुमारिसतेहि परिवुता येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्ना खो चुन्दी राजकुमारी भगवन्तं एतदवोच—

२. ''अम्हाकं, भन्ते, भाता चुन्दो नाम राजकुमारो, सो एवमाह—'यदेव सो होति इत्थी वा पुरिसो वा बुद्धं सरणं गतो, धम्मं सरणं गतो, सङ्घं सरणं गतो, पाणातिपाता पटिविरतो, अदिन्नादाना पटिविरतो, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो, मुसावादा पटिविरतो, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो, सो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिंयेव उपपज्जति, नो दुग्गतिं' ति। साहं, भन्ते, भगवन्तं पुच्छामि—'कथंरूपे खो, भन्ते, सत्थरि पसन्नो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिंयेव उपपज्जति, नो दुग्गतिं? कथंरूपे धम्मे पसन्नो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिंयेव उपपज्जति, नो दुग्गतिं? कथंरूपे सङ्घे पसन्नो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिंयेव उपपज्जति, नो दुग्गतिं''' ति?

३. ''यावता, चुन्दि, सत्ता अपदा वा द्विपदा वा चतुप्पदा वा बहुप्पदा वा रूपिनो [N.302] वा अरूपिनो वा सञ्ञिनो वा असञ्ञिनो वा नेवसञ्ञिनासञ्ञिनो वा, तथागतो तेसं अग्गमक्खायति अरहं सम्मासम्बुद्धो। ये खो, चुन्दि, बुद्धे पसन्ना, अग्गे ते पसन्ना। अग्गे खो पन पसन्नानं अग्गो विपाको होति।

---

२. चुन्दीसूत्र : : अग्रदानी का अग्रविपाक

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) राजगृह के वेणुवनस्थित कलन्दकनिवाप में साधनाहेतु विराजमान थे। उस अवसर पर कोई चुन्दी नामक राजकुमारी, पाँच सौ रथों पर बैठी हुई कुमारियों के साथ, जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँची। पहुँचकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गयी। एक ओर बैठी हुई उसने भगवान् से यह कहा—

२. ''भन्ते! हमारा भाई चुन्द राजकुमार यह कहता है—'जो भी कोई हो—स्त्री या पुरुष, वह यदि बुद्ध की, धर्म की एवं सङ्घ की शरण में चला जाता है, प्राणातिपात से दूर रहता है, चौर्य कर्म से दूर रहता है, कामभोगों के मिथ्याचार (व्यभिचार) से, असत्यभाषण से तथा सुरामैरयमद्य के पान से दूर रहता है, वह देहच्युति के बाद, मरणानन्तर सुगति ही प्राप्त करता है, दुर्गति नहीं।' भन्ते! इस विषय में, हमारा भगवान् से यह पूछना है—'भन्ते! वह कैसे शास्ता में श्रद्धालु होकर उनकी शरण में जाता है? कैसे धर्म में... कैसे सङ्घ में... पूर्ववत्... कैसे शीलों (सदाचारों) का परिपूरक होकर देहच्युति के बाद, मरणानन्तर सुगति ही प्राप्त करता है, दुर्गति नहीं?''

३. ''चुन्दि! यहाँ (इस संसार में) जितने भी विना पैरों वाले, दो पैरों वाले, चार पैरों वाले या बहुत से पैरों वाले, रूपी या अरूपी, संज्ञी या असंज्ञी तथा न संज्ञी न असंज्ञी प्राणी हैं, तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध उन सबमें श्रेष्ठ कहलाते हैं। चुन्दि! यहाँ जो बुद्ध में श्रद्धालु कहे गये हैं वे उस अग्र (उपर्युक्त सर्वश्रेष्ठ) में ही श्रद्धालु कहे गये हैं। इन अग्र (श्रेष्ठ) में श्रद्धालुओं का यह श्रद्धाफल श्रेष्ठ ही होता है।

४. ''यावता, चुन्दि, धम्मा सङ्खता वा असङ्खता वा, विरागो तेसं अग्गमक्खायति, यदिदं—मदनिम्मदनो पिपासविनयो आलयसमुग्घातो वट्टुपच्छेदो तण्हाक्खयो [B.30] विरागो विरोधो निब्बानं। ये खो, चुन्दि, विरागे धम्मे पसन्ना, अग्गे ते पसन्ना। अग्गे [R.36] खो पन पसन्नानं अग्गो विपाको होति।

५. ''यावता, चुन्दि सङ्घा वा गणा वा, तथागतसावकसङ्घो तेसं अग्गमक्खायति, यदिदं—चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला, एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। ये खो, चुन्दि, सङ्घे पसन्ना, अग्गे ते पसन्ना। अग्गे खो पन पसन्नानं अग्गो विपाको होति।

६. ''यावता, चुन्दि, सीलानि, अरियकन्तानि सीलानि तेसं अग्गमक्खायति, यदिदं—अखण्डानि अच्छिद्दानि असबलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्ञुप्पसत्थानि अपरामट्ठानि समाधिसंवत्तनिकानि। ये खो, चुन्दि, अरियकन्तेसु सीलेसु परिपूरकारिनो, अग्गे ते परिपूरकारिनो। अग्गे खो पन परिपूरकारीनं अग्गो विपाको होती ति।

''अग्गतो वे पसन्नानं, अग्गं धम्मं विजानतं।
अग्गे बुद्धे पसन्नानं, दक्खिणेय्ये अनुत्तरे॥
''अग्गे धम्मे पसन्नानं, विरागूपसमे सुखे।
अग्गे सङ्घे पसन्नानं, पुञ्ञक्खेत्ते अनुत्तरे॥

---

४. ''चुन्दि! जितने भी संस्कृत या असंस्कृत धर्म हैं विराग (रागहीनता) उनमें अग्र (श्रेष्ठ) हैं, जो कि मद (अहङ्कार) का नाशक, तृष्णा का विघातक, आसक्ति को उखाड़ फेंकनेवाला, भवपरम्परा का उपच्छेदक, तृष्णाक्षय, निरोध एवं निर्वाण कहलाता है। चुन्दि! जो इस विराग धर्म में श्रद्धालु हैं उन्हें अग्र में ही श्रद्धालु समझ।

५. ''चुन्दि! लोक में जितने भी श्रमणों या परिव्राजकों के 'सङ्घ' या समूह हैं उनमें तथागत का श्रावकसङ्घ ही श्रेष्ठ होता है। जिसमें चार पुरुषयुगल एवं आठ पुरुषपुद्गल होते हैं। यह भगवान् का श्रावकसङ्घ ही गृहस्थजनों द्वारा अपने घरों पर बुलाने योग्य, दानदक्षिणायोग्य, आतिथ्ययोग्य, प्रणाम करने योग्य, तथा लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि है। अतः चुन्दि! जो सङ्घ में श्रद्धालु हैं वे ही अग्र में श्रद्धालु कहलाते हैं।

६. ''चुन्दि! लोक में जितने भी आर्यों के सदाचार परिगणित हैं उनमें 'शील' सर्वश्रेष्ठ हैं। जो कि अखण्ड, छिद्ररहित, विभागरहित, कल्मषरहित (निष्कलङ्क), स्वतन्त्र, विद्वज्जनप्रशंसित, असम्पृक्त एवं समाधि में सहायक हैं। चुन्दि! जो साधक इन शीलों की साधना पूर्ण करते हैं वे 'अग्र' को ही पूर्ण करते हैं। इन अग्र के पूर्तिकर्ताओं का फल भी अग्र ही होता है।

(१) ''अग्र में श्रद्धालुओं का, अग्रधर्म के ज्ञाताओं का, दानकरणीय एवं अद्वितीय अग्र बुद्ध में श्रद्धालुओं का॥

(२) ''अग्र धर्म में श्रद्धालुओं का, जो कि वैराग्य एवं सुखशान्तिदायक हैं; अग्र सङ्घ में श्रद्धालुओं का, जो कि अद्वितीय पुण्यभूमि है॥

"अग्गस्मिं दानं ददतं, अग्गं पुञ्ञं पवड्ढति।
अग्गं आयु च वण्णो च यसो कित्ति सुखं बलं॥
अग्गस्स दाता मेधावी, अग्गधम्मसमाहितो।
देवभूतो मनुस्सो वा, अग्गप्पत्तो पमोदती" ति॥

[N.303] **३. उग्गहसुत्तं :** १. एकं समयं भगवा भद्दिये विहरति जातिया वने। अथ खो उग्गहो मेण्डकनत्ता येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उग्गहो मेण्डकनत्ता भगवन्तं एतदवोच—

[B.31] २. "अधिवासेतु मे, भन्ते, भगवा स्वातनाय अत्तचतुत्थो भत्तं" ति। अधिवासेसि [R.37] भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो उग्गहो मेण्डकनत्ता भगवतो अधिवासनं विदित्वा उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि।

३. अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अच्चयेन पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवर-मादाय येन उग्गहस्स मेण्डकनत्तुनो निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ खो उग्गहो मेण्डकनत्ता भगवन्तं पणीतेन खादनीयेन भोजनीयेन सहत्था सन्तप्पेसि सम्पवारेसि। अथ खो उग्गहो मेण्डकनत्ता भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उग्गहो मेण्डकनत्ता भगवन्तं एतदवोच—"इमा मे, भन्ते, कुमारियो पतिकुलानि गमिस्सन्ति। ओवदतु तासं, भन्ते, भगवा; अनुसासतु तासं, भन्ते, भगवा, यं तासं अस्स दीघरत्तं हिताय सुखाया" ति।

---

(३) "ऐसे अग्र सङ्घ को दानदाताओं के श्रेष्ठ पुण्य की वृद्धि होती है। उनकी आयु, उनका वर्ण, यश, कीर्ति, सुख एवं बल—सभी बढ़ते रहते हैं॥

(४) "अग्र को दानदाता पुरुष बुद्धिमान् एवं अग्र धर्म में समाहित होता है। वह, भले ही देवता हो या मनुष्य, उस पुण्यमय अग्र को प्राप्त कर लोक में प्रमुदित ही रहता है॥"

३. उद्ग्रहसूत्र : : नारियों द्वारा पाँच धर्मों का पालन

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) भद्दिया (जि० मुँगेर, बिहार) के जातिवन में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय मेण्डक श्रेष्ठी का उद्गृह नामक नाती भगवान् के सम्मुख आया। आकर भगवान् को प्रणाम कर उद्ग्रह श्रेष्ठी ने भगवान् से यह निवेदन किया—

२. "भन्ते! आप कल मेरे घर पर अपने सहित चार भिक्षुओं का भोजनहेतु निमन्त्रण स्वीकार करें।" भगवान् ने इसको मौन भाव से स्वीकृत किया। तब उद्ग्रह भगवान् की स्वीकृति जानकर आसन से उठकर भगवान् को प्रणाम कर अपने घर की ओर चल दिया।

३. तब भगवान्, उस रात्रि के बीतने पर, प्रात:काल अपने वस्त्र व्यवस्थित कर, पात्र चीवर साथ में लेकर मेण्डक श्रेष्ठी के नाती उद्ग्रह के घर की ओर चल दिये। वहाँ जाकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजे। तब मेण्डक श्रेष्ठी के नाती उद्ग्रह ने भगवान् को उत्तम उत्तम खाद्य एवं पेय पदार्थ अपने हाथ से परोसे। तदनन्तर उस उद्ग्रह ने भगवान् को भोजन पूर्ण किया हुआ तथा पात्र से हाथ हटाया हुआ देखकर, वह उनके समीप आकर बैठकर उनसे यह निवेदन करने लगा—"भन्ते! ये मेरी

४. अथ खो भगवा ता कुमारियो एतदवोच—''तस्मातिह, कुमारियो, एवं सिक्खितब्बं—'यस्स वो मातापितरो भत्तुनो दस्सन्ति अत्थकामा हितेसिनो अनुकम्पका अनुकम्पं उपादाय, तस्स भविस्साम पुब्बुट्ठायिनियो पच्छानिपातिनियो किङ्कारपटिस्साविनियो मनापचारिनियो पियवादिनियो' ति। एवं हि वो, कुमारियो, सिक्खितब्बं।

५. ''तस्मातिह, कुमारियो, एवं सिक्खितब्बं—'ये ते भत्तु गरुनो भविस्सन्ति माता ति वा पिता ति वा समणब्राह्मणा ति वा, ते सक्करिस्साम गरुं करिस्साम मानेस्साम पूजेस्साम अब्भागते च आसनोदकेन पटिपूजेस्सामा' ति। एवं हि वो, कुमारियो, सिक्खितब्बं।

६. ''तस्मातिह, कुमारियो, एवं सिक्खितब्बं—'ये ते भत्तु गरुनो अब्भन्तरा कम्मन्ता उण्णा ति वा कप्पासा ति वा, तत्थ दक्खा भविस्साम अनलसा, [N.304,B.32] तत्रुपायाय वीमंसाय समन्नागता, अलं कातुं अलं संविधातुं' ति। एवं हि वो, कुमारियो, सिक्खितब्बं।

७. ''तस्मातिह, कुमारियो एवं सिक्खितब्बं—'यो सो भत्तु अब्भन्तरो [R.38] अन्तोजनो दासा ति वा पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा, तेसं कतं च कततो जानिस्साम अकतं च अकततो जानिस्साम, गिलानकानं च बलाबलं जानिस्साम, खादनीयं भोजनीयं चस्स पच्चंसेन संविभजिस्सामा' ति। एवं हि वो, कुमारियो, सिक्खितब्बं।

पुत्रियाँ पतिगृह जायँगी। भन्ते! आप इनको ऐसा अनुशासन तथा उपदेश करें जो इनके लिये दीर्घकाल तक हितकारक एवं सुखप्रद हो।''

४. तब भगवान् ने उन कुमारियों को यह उपदेश किया—''कुमारियो! तुमको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'हमारे दयालु माता पिता हमारा हित एवं सुख समझते हुए, हम पर कृपा कर, हमें जिस किसी पुरुष को भर्ता के रूप में सौंप देंगे, हम उसी की आज्ञाकारिणी रहेंगी—प्रात: उससे पूर्व निद्रात्याग कर रात्रि में उसके बाद सोने के लिये जायँगीं, कुछ करने के लिये उसकी आज्ञा को सुनने में सावधान रहेंगीं, उसको जो प्रिय लगे वही करेंगी, इससे सदा प्रिय वचन ही बोलेंगी।'—कुमारियो! तुमको यह शिक्षाग्रहण करनी चाहिये। (१)

५. ''कुमारियो! तुमको यह भी सीखना चाहिये—'हमारे पति के जो पूज्य एवं श्रद्धेय पुरुष होंगे; जैसे—माता पिता या श्रमण ब्राह्मण, हम उनका सत्कार, सम्मान एवं पूजा करेंगीं, वहाँ आने वाले अतिथियों (अभ्यागतों) का, आसन एवं पैर धोने को जल आदि देकर, सत्कार करेंगीं'—कुमारियो! तुम्हें यह सीखना चाहिये। (२)

६. ''कुमारियो! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये—'पति के घर में जो करणीय कर्म (व्यापार) होंगे, फिर भले ही वे ऊन के विषय में हों या कपास के विषय में हों, उन कर्मों में हम भी दक्षता प्राप्त करेंगीं, उस कार्य को पूर्ण करने में आलस्य न करेंगीं, उस व्यापार की सफलता के लिये नये नये उपाय खोजेंगी कि वह शीघ्र ही सरलता से पूर्ण होने लगे।' कुमारियो! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये। (३)

७. ''कुमारियो! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये—'पति के घर के कर्मचारियों के प्रति, फिर

८. ''तस्मातिह, कुमारियो, एवं सिक्खितब्बं—'यं भत्ता आहरिस्सति धनं वा धञ्ञं वा रजतं वा जातरूपं वा, तं आरक्खेन गुत्तिया सम्पादेस्साम, तत्थ च भविस्साम अधुत्ती अथेनी असोण्डी अविनासिकायो' ति। एवं हि वो, कुमारियो, सिक्खितब्बं।

इमेहि खो कुमारियो, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो मातुगामो कायस्स भेदा परं मरणा मनापकायिकानं देवानं सहब्यतं उपपज्जती ति।

''यो नं भरति सब्बदा, निच्चं आतापि उस्सुको।
सब्बकामहरं पोसं, भत्तारं नातिमञ्ञति॥
''न चापि सोत्थि भत्तारं, इस्साचारेन रोसये।
भत्तु च गरुनो सब्बे, पटिपूजेति पण्डिता॥
''उट्ठाहिका अनलसा, सङ्गहितपरिज्जना।
भत्तु मनापं चरति, सम्भतं अनुरक्खति॥
''या एवं वत्तती नारी, भत्तुछन्दवसानुगा।
मनापा नाम ते देवा, यत्थ सा उपपज्जती'' ति॥

४. सीहसेनापतिसुत्तं : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने

भले ही वे दास हों या दासी, दूत हों या कर्मकर, उनके कर्म को अपना कर्म समझेंगीं, अकर्म को अकर्म समझेंगीं, उनके रुग्ण होने पर उनकी परिस्थिति के अनुसार उनकी चिकित्साव्यवस्था करेंगीं, उनके खाने पीने एवं और अन्य पदार्थों के उनके अंश के प्रति सदा ध्यान रखेंगीं।' कुमारियो! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये। (४)

८. ''कुमारियो! तुम्हें यह भी सीखना चाहिये—'तुम्हारा पति जो कुछ बाहर से घर में लायगा, जैसे—धन, धान्य, चाँदी एवं सोना; उन सबको सुरक्षित एवं गुप्त रखेंगीं। तथा उसके विषय में किसी प्रकार की धूर्तता, चौरी या हथफेरी या उसका नाश नहीं करेंगीं।' इस प्रकार, कुमारियो! तुम्हें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। (५)

''कुमारियो! इन पाँच धर्मों से युक्त नारियाँ, देहपात के बाद, मरणानन्तर, मनोनुकूल शरीर वाले देवताओं के साथ उत्पन्न होती हैं।

''जो पति सर्वदा निरन्तर उद्योगपूर्वक उत्साह से सभी इच्छाओं को पूर्ण करता हुआ भरण-पोषण करता है, अच्छे कुल की नारियाँ ऐसे पति की उपेक्षा या तिरस्कार नहीं करतीं॥

''ऐसे भले पति को ईर्ष्या द्वारा क्रुद्ध नहीं करना चाहिये। तथा पति के सभी पूजनीयों का, बुद्धिमती स्त्री द्वारा, सदा सम्मान करना चाहिये॥

''उसको पतिगृह में सदा आलस्यरहित होकर सबकी परिचर्या करनी चाहिये, सभी परिजनों को अपने अनुकूल बनाये रखना चाहिये। पति के प्रियकर्म करते रहना चाहिये, तथा उसके गोपनीय की सर्वथा रखनी चाहिये॥

''जो नारी इस प्रकार कार्य करती हुई भर्ता (पति) के अधीन रहती हैं, वे मनोनुकूल सुन्दर काया वाले देवताओं के लोक में उत्पन्न होंगे॥''

कूटागारसालायं। अथ खो सीहो सेनापति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्क- [B.33,R.39] मित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सीहो सेनापति भगवन्तं एतदवोच—''सक्का नु खो, भन्ते, भगवा सन्दिट्ठिकं दानफलं पञ्ञापेतुं'' ति?

२. ''सक्का, सीहा,'' ति भगवा अवोच—''दायको, सीह, दानपति [N.305] बहुनो जनस्स पियो होति मनापो। यं पि, सीह, दायको दानपति बहुनो जनस्स पियो होति मनापो, इदं पि सन्दिट्ठिकं दानफलं।

३. ''पुन च परं, सीह, दायकं दानपतिं सन्तो सप्पुरिसा भजन्ति। यं पि, सीह, दायकं दानपतिं सन्तो सप्पुरिसा भजन्ति, इदं पि सन्दिट्ठिकं दानफलं।

४. ''पुन च परं, सीह, दायकस्स दानपतिनो कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति। यं पि, सीह, दायकस्स दानपतिनो कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति, इदं पि सन्दिट्ठिकं दानफलं।

५. ''पुन च परं, सीह, दायको दानपति यं यदेव परिसं उपसङ्कमति—यदि खत्तियपरिसं यदि ब्राह्मणपरिसं यदि गहपतिपरिसं यदि समणपरिसं—विसारदो उपसङ्कमति अमङ्कुभूतो। यं पि, सीह, दायको दानपति यं यदेव परिसं उपसङ्कमति—विसारदो उपसङ्कमति अमङ्कुभूतो, इदं पि सन्दिट्ठिकं दानफलं।

६. ''पुन च परं, सीह, दायको दानपति कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं

---

४. सिंहसेनापतिसूत्र : : दान के पाँच माहात्म्य

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन में स्थित कूटागारशाला साधनाहेतु विराजमान थे। उसी समय सिंहसेनापति जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए सिंहसेनापति ने भगवान् से यह प्रश्न किया—''भन्ते! क्या आप दान का सान्दृष्टिक (प्रत्यक्ष) फल बता सकते हैं?''

२. ''बता सकता हूँ, सिंह!'' भगवान् बोले—''सिंह! दाता दानपति अनेक मनुष्यों का प्रिय एवं हितकारी हो जाता है। सिंह! यह 'अनेक मनुष्यों का प्रेम प्राप्त कर लेना' दान का **प्रथम प्रत्यक्ष फल** है। (१)

३. ''उस दाता दानपति के पास अनेक सत्पुरुष आते रहते हैं। यह 'अनेक सत्पुरुषों का उसके पास आते रहना'—दान का **द्वितीय प्रत्यक्ष फल** है। (२)

४. ''सिंह! तब दान देते देते उस दाता दानपति का शुभ यश चारों ओर फैलने लगता है। यह 'चारों ओर शुभ यश फैलना'—उसका **तृतीय प्रत्यक्ष दानफल** है। (३)

५. पुनः, सिंह! वह दाता दानपति जिस सभा में भी जाता है—भले ही क्षत्रियसभा हो, या ब्राह्मणसभा हो, या गृहपतिसभा हो या कोई श्रमणसभा हो—वह इन सभी सभाओं में बुद्धिमत्तापूर्वक शिर ऊँचा करके जाता है। यह उसका 'सभाओं में शिर ऊँचा करके जाना'—दान का **चतुर्थ प्रत्यक्ष फल** है। (४)

६. ''पुनः सिंह! वह दाता दानपति, इस देहपात के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक

उपपज्जति। यं पि, सीह, दायको दानपति कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति, इदं पि सम्परायिकं दानफलं'' ति।

७. एवं वुत्ते सीहो सेनापति भगवन्तं एतदवोच—''यानिमानि, भन्ते, भगवता चत्तारि सन्दिट्ठिकानि दानफलानि अक्खातानि, नाहं एत्थ भगवतो सद्धाय गच्छामि; अहं पेतानि जानामि। अहं, भन्ते, दायको दानपति बहुनो जनस्स पियो मनापो। अहं, भन्ते, दायको दानपति; मं सन्तो सप्पुरिसा भजन्ति। अहं, भन्ते, दायको दानपति; मय्हं कल्याणो [B.34] कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'सीहो सेनापति दायको कारको सङ्घुपट्ठाको' ति। अहं, [R.40] भन्ते, दायको दानपति यं यदेव परिसं उपसङ्कमामि—यदि खत्तियपरिसं यदि ब्राह्मणपरिसं यदि गहपतिपरिसं यदि समणपरिसं—विसारदो उपसङ्कमामि अमङ्कुभूतो। यानिमानि, भन्ते, भगवता चत्तारि सन्दिट्ठिकानि दानफलानि अक्खातानि, नाहं एत्थ भगवतो [N.306] सद्धाय गच्छामि; अहं पेतानि जानामि। यं च खो मं, भन्ते, भगवा एवमाह—'दायको, सीह, दानपति कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती' ति, एताहं न जानामि; एत्थ च पनाहं भगवतो सद्धाय गच्छामी'' ति।

''एवमेतं, सीह, एवमेतं, सीह! दायको दानपति कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जती ति।

''ददं पियो होति भजन्ति नं बहू, कित्तिं च पप्पोति यसो च वड्ढति।

में पहुँच जाता है। सिंह! उस दाता दानपति का इस प्रकार 'मरणानन्तर स्वर्गलोक में पहुँचना'—दान का यह पारलौकिक **पञ्चम प्रत्यक्ष फल** है। (५)

७. भगवान् के द्वारा ऐसा कहे जाने पर, सिंह सेनापति ने भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! आपने मुझको ये जो दान के चार प्रत्यक्षफल बताये, इनको सुनकर आपके प्रति मेरी श्रद्धा नहीं बढ़ रही है; क्योंकि मैं भी इनको पहले से जानता हूँ। भन्ते! मैं भी दाता दानपति बनकर अनेक जनों का प्रिय हूँ; मेरे पास भी सत्पुरुष आते रहते हैं; भन्ते! दान के कारण मेरा भी यश चारों ओर फैला हुआ है कि यह सिंह अच्छा दानपति, सबका हितकारक एवं सङ्घ का प्रसिद्ध उपासक है; भन्ते! मैं भी जिस किसी सभा में जाता हूँ... पूर्ववत्... बुद्धिमत्तापूर्वक शिर ऊँचा करके ही जाता हूँ। अतः, भन्ते! आपने दान के ये चार प्रत्यक्ष फल बताये, इनसे तो आपके प्रति मेरी श्रद्धा नहीं बढ़ी; क्योंकि मैं भी इनको जानता हूँ; परन्तु भगवान् ने यह कहा—'सिंह! कोई भी दाता दानपति मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में जन्म लेता है'—इसे मैं नहीं जानता था। इसे सुनकर ही मेरी आपके प्रति श्रद्धा बढ़ी है।''

''यह बात पूर्णतः सत्य है, सिंह! पूर्णतः सत्य कि दाता दानपति मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में जाता है।

''दानदाता बहुत मनुष्यों का प्रिय हो जाता है, लोक में उसकी कीर्ति तथा यश बढ़ने लगता है; वह किसी भी परिषद् में बुद्धिमत्तापूर्वक शिर ऊँचा करके ही चलता है तथा वह बुद्धिमान् एवं लोभरहित होता है॥

अमङ्कुभूतो परिसं विगाहति, विसारदो होति नरो अमच्छरी॥
"तस्मा हि दानानि ददन्ति पण्डिता, विनेय्य मच्छेरमलं सुखेसिनो।
ते दीघरत्तं तिदिवे पतिट्ठिता, देवानं सहब्यगता रमन्ति ते॥
"कतावकासा कतकुसला इतो चुता, सयंपभा अनुविचरन्ति नन्दनं।
ते तत्थ नन्दन्ति रमन्ति मोदरे, समप्पिता कामगुणेहि पञ्चहि॥
"कत्वान वाक्खयं असितस्स तादिनो, रमन्ति सग्गे सुगतस्स सावका" ति॥ ●

५. दानानिसंससुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, दाने आनिसंसा। कतमे [R.41] पञ्च? बहुनो जनस्स पियो होति मनापो; सन्तो सप्पुरिसा भजन्ति; कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति; गिहिधम्मा अनपगतो होति; कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं [B.35] लोकं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च दाने आनिसंसा ति।

"ददमानो पियो होति, सतं धम्मं अनुक्कमं। [N.307]
सन्तो नं सदा भजन्ति, सञ्ञता ब्रह्मचारयो॥
"ते तस्स धम्मं देसेन्ति, सब्बदुक्खापनूदनं।
यं सो धम्मं इधञ्ञाय, परिनिब्बाति अनासवो" ति॥ ●

६. कालदानसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, कालदानानि। कतमानि पञ्च? आगन्तुकस्स दानं देति; गमिकस्स दानं देति; गिलानस्स दानं देति; दुब्भिक्खे दानं देति; यानि

"अतः बुद्धिमान् लोग निरन्तर दान करते हैं; तथा वे दूसरों का सुख चाहने वाले तथा निर्लोभ होते हैं। इस कारण से वे चिरकाल तक स्वर्गलोक में वास करते हैं॥

"कुशल कर्म करते हुए पापों से छुटकारा पाकर वे स्वयम्प्रभ (देव) बनकर नन्दन वन में जाकर, समस्त पाँचों कामगुणों का उपभोग करते हैं।

"ऐसे तथागत के शिष्य उनके उपदेशों के अनुसार शुभ कर्म करते हुए स्वर्ग सुख का सतत उपभोग करते हैं"॥ ●

५. दानमाहात्म्यसूत्र : : दान के पाँच माहात्म्य

१. "भिक्षुओ! दान के ये पाँच माहात्म्य हैं। कौन से पाँच? वह दानी अनेक जनों का प्रियपात्र होता है, स्नेही होता है। सत्पुरुष उसकी प्रशंसा करते हैं। उसका चारों ओर यश फैलता है। वह गृहस्थ धर्मों से च्युत नहीं होता। तथा इस देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में जाता है।

"भिक्षुओ! ये दान के पाँच माहात्म्य हैं।

"सद्धर्म का अनुक्रमण करता हुआ दानी पुरुष सबका स्नेहपात्र होता है। उसके संग के साथी तथा सत्पुरुष उसकी प्रशंसा करते हैं॥

"वे ऐसे पुरुष को सर्वदुःखनाशक सद्धर्म का उपदेश करते हैं। वह इस धर्म को जानकर, इसको साक्षात् कर निर्विकारचित्त होकर परिनिर्वाण प्राप्त कर लेता है॥ ●

६. कालदानसूत्र : : पाँच सामयिक दान

१. "भिक्षुओ! ये पाँच सामयिक (समय समय पर दिये जाने वाले) दान कहलाते हैं। कौन

तानि नवसस्सानि नवफलानि तानि पठमं सीलवन्तेसु पतिट्ठापेति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च कालदानानी ति।

"काले ददन्ति सप्पञ्ञा, वदञ्ञू वीतमच्छरा।
कालेन दिन्नं अरियेसु, उजुभूतेसु तादिसु॥
"विप्पसन्नमना तस्स, विपुला होति दक्खिणा।
ये तत्थ अनुमोदन्ति, वेय्यावच्चं करोन्ति वा।
न तेन दक्खिणा ऊना, ते पि पुञ्ञस्स भागिनो॥
"तस्मा ददे अप्पटिवानचित्तो, यत्थ दिन्नं महप्फलं।
पुञ्ञानि परलोकस्मिं, पतिट्ठा होन्ति पाणिनं" ति॥ ●

[R.42] ७. **भोजनसुत्तं** : १. "भोजनं, भिक्खवे, ददमानो दायको पटिग्गाहकानं पञ्च ठानानि देति। कतमानि पञ्च? आयुं देति, वण्णं देति, सुखं देति, बलं देति, पटिभानं देति। आयुं खो पन दत्वा आयुस्स भागी होति दिब्बस्स वा मानुस्स वा; वण्णं दत्वा वण्णस्स भागी [B.36] होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा; सुखं दत्वा सुखस्स भागी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा; बलं दत्वा बलस्स भागी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा; पटिभानं दत्वा पटिभानस्स भागी होति दिब्बस्स वा मानुसस्स वा। भोजनं, भिक्खवे, ददमानो दायको पटिग्गाहकानं इमानि पञ्च ठानानि देती ति।

से पाँच? (१) आगन्तुक (अतिथि) को दान दिया जाता है; (२) यात्री को दान दिया जाता है; (३) रोगी को दान दिया जाता है; (४) दुर्भिक्ष (अकाल) में दान दिया जाता है; और (५) नया अन्न आने पर उसमें से कुछ अंश सर्वप्रथम सदाचारी पुरुषों को दिया जाता है। भिक्षुओ! ये पाँच 'सामयिक दान' कहलाते हैं।

"बुद्धिमान्, उदार एवं निर्लोभ पुरुष द्वारा समय समय पर सरलस्वभाव आर्यजनों को दान किया जाता है॥

"प्रसन्नचित्त से किये हुए दान का पुण्य बढ़ता ही रहता है। वहाँ जो इस दान का अनुमोदन या व्याख्यान (प्रशंसा) करते हैं, इससे इस दक्षिणा का पुण्य कम नहीं होता। वे (अनुमोदक) भी इस पुण्य के भागी होते हैं॥

"अत: ऐसे दानी पुरुष को दान से अपना चित्त पीछे न हटाते हुए दानार्थी पुरुषों को दान करना चाहिये, जिनको दिया हुआ दान विशेष फलदायी होता है। ऐसे दान का पुण्य उन दानी प्राणियों को परलोक (स्वर्ग) में सुप्रतिष्ठित करता है॥" ●

७. भोजनसूत्र : : भोजनदान के पाँच फल

१. "भिक्षुओ! भोजन का दान करने वाला दानार्थी को पाँच बातों से अनुगृहीत करता है। कौन सी पाँच? (१) आयु, (२) वर्ण, (३) सुख, (४) बल एवं (५) तीक्ष्णबुद्धि। परन्तु दानी दानार्थी को आयु प्रदान करता हुआ स्वयं भी दिव्य एवं लौकिक आयु का प्रतिभागी होता है; वर्ण प्रदान करता हुआ स्वयं भी दिव्य एवं लौकिक वर्ण का...; सुख का दान करता हुआ स्वयं भी दिव्य

"आयुदो बलदो धीरो, वण्णदो पटिभानदो।
सुखस्स दाता मेधावी, सुखं सो अधिगच्छति॥
"आयुं दत्वा बलं वण्णं, सुखं च पटिभानकं। [N.308]
दीघायु यसवा होति, यत्थ यत्थूपपज्जती" ति॥

८. सद्धसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, सद्धे कुलपुत्ते आनिसंसा। कतमे पञ्च? ये ते, भिक्खवे, लोके सन्तो सप्पुरिसा ते सद्धञ्ञेव पठमं अनुकम्पन्ता अनुकम्पन्ति, नो तथा अस्सद्धं; सद्धञ्ञेव पठमं उपसङ्कमन्ता उपसङ्कमन्ति, नो तथा अस्सद्धं; सद्धञ्ञेव पठमं पटिग्गण्हन्ता पटिग्गण्हन्ति, नो तथा अस्सद्धं; सद्धञ्ञेव पठमं धम्मं देसेन्ता देसेन्ति, नो तथा अस्सद्धं; सद्धो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च सद्धे कुलपुत्ते आनिसंसा।

२. "सेय्यथापि, भिक्खवे, सुभूमियं चातुम्महापथे महानिग्रोधो समन्ता [R.43] पक्खीनं पटिसरणं होति; एवमेव खो, भिक्खवे, सद्धो कुलपुत्तो बहुनो जनस्स पटिसरणं होति भिक्खूनं भिक्खुनीनं उपासकानं उपासिकानं ति।

"साखापत्तफलूपेतो, खन्धिमा व महादुमो।
मूलवा फलसम्पन्नो, पतिट्ठा होति पक्खिनं॥

एवं लौकिक सुख का...; बल का दान करता हुआ स्वयं भी दिव्य एवं लौकिक बल का...; तथा तीव्र बुद्धि का दान करता हुआ स्वयं भी दिव्य एवं लौकिक तीव्र बुद्धि का प्रतिभागी होता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! भोजन का दाता लेनेवाले को ये पाँच वस्तुएँ देता है।

"ऐसा दानी, मेधावी, धीर, पुरुष दानार्थी को आयु, वर्ण, बल, सुख एवं तीव्र बुद्धि देता हुआ स्वयं भी सुख प्राप्त करता है॥

"ऐसा दानी दानार्थी आयु आदि पाँच वस्तुएँ देकर स्वयं जहाँ जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ वहाँ वह दीर्घ आयुष्मान्, यशस्वी एवं तीव्रबुद्धि वाला होता है॥"

८. श्रद्धसूत्र : : श्रद्धालु के पाँच महत्त्व

१. "भिक्षुओ! श्रद्धालु कुलपुत्र की पाँच विशेषताएँ होती हैं। कौन सी पाँच? भिक्षुओ! लोक में सत्पुरुष (१) पहले श्रद्धालु पर ही कृपा करते हैं, अश्रद्धालु पर नहीं; ...(२) जाते हुए पहले श्रद्धालु के पास ही जाते हैं, अश्रद्धालु के पास नहीं; (३)...कुछ लेते हुए पहले श्रद्धालु से ही लेते हैं, अश्रद्धालु से नहीं; (४) ...धर्मोपदेश करना हो तो वे पहले श्रद्धालु को ही धर्मोपदेश करते हैं, अश्रद्धालु को नहीं; (५) ऐसा श्रद्धालु देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग में पहुँच जाता है।

"भिक्षुओ! श्रद्धालु कुलपुत्र में ये पाँच विशेषताएँ होती हैं।

२. "भिक्षुओ! जैसे किसी अच्छी भूमि में चौराहे पर खड़ा हुआ कोई विशाल वटवृक्ष पक्षियों का शरणस्थल होता है; उसी तरह, भिक्षुओ! श्रद्धालु कुलपुत्र अनेक जनों का शरणस्थल बन जाता है; विशेषत: भिक्षुओं का, भिक्षुणियों का, उपासकों का, उपासिकाओं का।

"मनोरमे आयतने, सेवन्ति नं विहङ्गमा।
छायं छायत्थिका यन्ति, फलत्था फलभोजिनो॥
"तथेव सीलसम्पन्नं, सद्धं पुरिसपुग्गलं।
निवातवुत्तिं अत्थद्धं, सोरतं सखिलं मुदुं॥
[B.37] "वीतरागा वीतदोसा, वीतमोहा अनासवा।
पुञ्ञक्खेत्तानि लोकस्मिं, सेवन्ति तादिसं नरं॥
"ते तस्स धम्मं देसेन्ति, सब्बदुक्खापनूदनं।
यं सो धम्मं इधञ्ञाय, परिनिब्बाति अनासवो" ति॥

९. पुत्तसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, ठानानि सम्पस्सन्ता मातापितरो पुत्तं इच्छन्ति कुले जायमानं। कतमानि पञ्च? भतो वा नो भरिस्सति; किच्चं नो वा करिस्सति; [N.309] कुलवंसो चिरं ठस्सति; दायज्जं पटिपज्जिस्सति; अथ वा पन पेतानं कालङ्कतानं दक्खिणं अनुप्पदस्सती ति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च ठानानि सम्पस्सन्ता मातापितरो पुत्तं इच्छन्ति कुले जायमानं ति।

"पञ्च ठानानि सम्पस्सं, पुत्तं इच्छन्ति पण्डिता।
भतो वा नो भरिस्सति, किच्चं वा नो करिस्सति॥
"कुलवंसो चिरं तिट्ठे, दायज्जं पटिपज्जति।
अथ वा पन पेतानं, दक्खिणं अनुप्पदस्सति॥

"जैसे कोई शाखा, पत्र फल आदि से युक्त, महान् स्कन्ध वाला दृढ़ मूल एवं फल सम्पन्न विशाल वृक्ष पक्षियों का शरणस्थल बन जाता है॥

"उस मनोरम स्थान पर आकर पक्षी सुख का अनुभव करते हैं; छायार्थी छाया में बैठते हैं, तथा फलार्थी उसके फल खाते हैं॥

"इसी प्रकार, सदाचारी श्रद्धालु साधनारत स्थिर एवं निरुद्ध तथा मृदु चित्तवाले कुलपुत्र को राग-द्वेष-मोहरहित तथा लोक में पुण्यक्षेत्र के समान सत्पुरुष स्नेह की दृष्टि से देखते हैं, तथा उसके पास जाते हैं॥

"और उसको सर्वदुःखनाशक धर्म का उपदेश करते हैं। वह इस धर्म को जानकर निराश्रव होकर समय पर परिनिर्वाण प्राप्त करता है"॥

९. पुत्रसूत्र : : पुत्रप्राप्तिहेतु पाँच इच्छाएँ

१. "भिक्षुओ! इन पाँच कारणों से माता पिता अपने कुल में पुत्र उत्पन्न हुआ देखना चाहते हैं। कौन से पाँच? (१) बुढ़ापे में हमारा भरण-पोषण करेगा; (२) हमारे अधूरे (अवशिष्ट) कार्यों को पूर्ण करेगा; (३) हमारी कुलपरम्परा चलती रहेगी; (४) हमारा उत्तराधिकार अक्षुण्ण रहेगा; (५) हमारे देहपात के बाद, मरणानन्तर भी हमारी चलायी दानक्रियाओं को चलाता रहेगा। भिक्षुओ! ये पाँच कारण हैं, जिनको देखकर, सभी माता पिता अपने कुल में पुत्र उत्पन्न हुआ देखना चाहते हैं।

"ठानानेतानि सम्पस्सं, पुत्तं इच्छन्ति पण्डिता।
तस्मा सन्तो सप्पुरिसा, कतञ्ञू कतवेदिनो॥
"भरन्ति मातापितरो, पुब्बे कतमनुस्सरं।
करोन्ति नेसं किच्चानि, यथा तं पुब्बकारिनं॥ [R.44]
"ओवादकारी भतपोसी, कुलवंसं अहापयं।
सद्धो सीलेन सम्पन्नो, पुत्तो होति पसंसियो" ति॥ ●

१०. महासालपुत्तसुत्तं : १. "हिमवन्तं, भिक्खवे, पब्बतराजं निस्साय महासाला पञ्चहि वड्ढीहि वड्ढन्ति। कतमाहि पञ्चहि? साखापत्तपलासेन वड्ढन्ति; तचेन वड्ढन्ति; पपटिकाय वड्ढन्ति; फेग्गुना वड्ढन्ति; सारेन वड्ढन्ति। हिमवन्तं, भिक्खवे, पब्बतराजं निस्साय महासाला इमाहि पञ्चहि वड्ढीहि वड्ढन्ति। एवमेव खो, भिक्खवे, सद्धं कुलपुत्तं निस्साय अन्तोजनो पञ्चहि वड्ढीहि वड्ढति। कतमाहि पञ्चहि? सद्धाय वड्ढति; सीलेन वड्ढति; [B.38] सुतेन वड्ढति; चागेन वड्ढति; पञ्ञाय वड्ढति। सद्धं, भिक्खवे, कुलपुत्तं निस्साय अन्तोजनो इमाहि पञ्चहि वड्ढीहि वड्ढती ति।

"यथाहि पब्बतो सेलो, अरञ्ञस्मिं ब्रहावने।
तं रुक्खा उपनिस्साय, वड्ढन्ते ते वनप्पती॥

"पाँच कारणों से बुद्धिमान् लोग अपने कुल में पुत्रोत्पत्ति देखना चाहते हैं—(१) समर्थ होने पर यह हमारा भरण-पोषण करेगा; (२) हमारे अधूरे कार्यों को पूर्ण करेगा॥

(३) "हमारी कुलपरम्परा बनी रहेगी; (४) हमारा अधिकार अक्षुण्ण रहेगा। (५) तथा यह हमारे देहपात के बाद भी हमारी दानक्रियाओं को चलाता रहेगा॥

"इन पाँच कारणों को देखते हुए बुद्धिमान् लोग अपने कुल में पुत्र की कामना करते हैं। अत: कृतज्ञ एवं कृतवेदी सत्पुरुष॥

"माता पिता के पूर्वकृत उपकारों को स्मरण करते हुए उनके द्वारा चलायी गयी कुल-परम्परा को आगे बढ़ाते रहते हैं॥

"वे पुत्र उन (माता पिता) के आज्ञाकारी होते हैं, कुल की मर्यादा का त्याग नहीं करते। श्रद्धा एवं शील से सम्पन्न पुरुष ही लोक में प्रशंसा पाता है॥" ●

१०. महासालसूत्र : : श्रद्धालु कुलपुत्र की पाँच वृद्धियाँ

"भिक्षुओ! पर्वतराज हिमालय पर खड़े वृक्ष पाँच विधियों से वृद्धि पाते हैं। किन पाँच से? उनके शाखा, पत्र, पलाश बढ़ते हैं, त्वचा (छाल) बढ़ती रहती है; प्रपटिका (आन्तरिक सूक्ष्म त्वचा) बढ़ती रहती है; उनकी असार (फेग्गु) वस्तुएँ बढ़ती रहती हैं; तथा सार वस्तुएँ भी बढ़ती रहती हैं। इस प्रकार, भिक्षुओ! हिमालय पर्वतराज पर खड़े हुए बड़े वृक्ष इन पाँच विधियों से बढ़ते रहते हैं। इसी प्रकार, भिक्षुओ! श्रद्धालु कुलपुत्र का आश्रयप्राप्त उसके अधीन जनों की इन पाँच विधियों से उन्नति होती है। किन पाँच विधियों से? (१) श्रद्धा से, (२) शील से, (३) श्रुत से, (४) त्याग से, एवं (५) प्रज्ञा से।

"तथेव सीलसम्पन्नं, सद्धं कुलपुत्तं इमं।
उपनिस्साय वड्ढन्ति, पुत्तदारा च बन्धवा॥
[N.310] "अमच्चा ञातिसङ्घा च, ये चस्स अनुजीविनो।
त्यस्स सीलवतो सीलं, चागं सुचरितानि च॥
"पस्समानानुकुब्बन्ति, ये भवन्ति विचक्खणा।
इमं धम्मं चरित्वान, मग्गं सुगतिगामिनं।
नन्दिनो देवलोकस्मिं, मोदन्ति कामकामिनो" ति॥

सुमनवग्गो चतुत्थो॥

तस्सुद्दानं

सुमना चुन्दी उग्गहो, सीहो दानानिसंसको।
कालभोजनसद्धा च, पुत्तसालेहि ते दसा ति॥

५. मुण्डराजवग्गो

[R.45] **१. आदियसुत्तं :** १. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथ-

---

"जैसे किसी अरण्य के महावन में पर्वत का आश्रय पाकर वहाँ उत्पन्न महावृक्ष एवं वनस्पति (लता, गुल्म आदि) बढ़ते रहते हैं॥

उसी प्रकार श्रद्धालु कुलपुत्र का आश्रय पाकर उसके अधीन पुत्र, स्त्री, बन्धु, बान्धव आदि कुटुम्बी जन॥

"सहायक (अमात्य), सम्बन्धिजन, उसके अनुजीवी (भृत्य आदि) उस सदाचारी के शील, त्याग, सुचरित आदि देखते हुए॥

"उसका अनुसरण करते हुए लोकव्यवहार में कुशल हो जाते हैं। वे यहाँ इस सुगतिगामी मार्ग पर चलते हुए धर्म का पालन करते हुए यहाँ कामभोगों का यथेच्छ उपभोग कर, देहपात के बाद, स्वर्ग में जाकर दिव्य सुख भोगते हैं॥

सुमनवर्ग चतुर्थ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. सुमनासूत्र, २. चुन्दीसूत्र, ३. उद्ग्रहसूत्र, ४. सिंहसेनापतिसूत्र, ५. दानमाहात्म्यसूत्र, ६. कालदानसूत्र, ७. भोजनसूत्र, ८. श्रद्धसूत्र, ९. पुत्रसूत्र एवं १०. महासालसूत्र॥

५. मुण्डराजवर्ग

१. आद्यसूत्र : : कामभोगों के पाँच आद्य (प्रथम)

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन

पिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथ-पिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—"पञ्चिमे, गहपति, भोगानं आदिया। कतमे पञ्च? इध, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि [B.39] सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि अत्तानं सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति; मातापितरो सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति; पुत्तदारदासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति सम्मासुखं परिहरति। अयं **पठमो भोगानं आदियो**।

२. "पुन च परं, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबल-परिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि मित्तामच्चे सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति। अयं **दुतियो भोगानं आदियो**।

३. "पुन च परं, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबल-परिचित्तेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि या ता होन्ति आपदा—[N.311] अग्गितो वा उदकतो वा राजतो वा चोरतो वा अप्पियतो वा दायादतो—तथारूपासु आप-दासु भोगेहि परियोधाय वत्तति, सोत्थिं अत्तानं करोति। अयं **ततियो भोगानं आदियो**।

४. "पुन च परं, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबल-परिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि पञ्चबलिं कत्ता होति। ञातिबलिं, अतिथिबलिं, पुब्बपेतबलिं, राजबलिं, देवताबलिं—अयं **चतुत्थो भोगानं आदियो**।

५. "पुन च परं, गहपति, अरियसावको उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबल-

---

आराम में साधनाहेतु विराजमान थे। तब अनाथपिण्डिक गृहपति किसी समय वहाँ आकर भगवान् को, प्रणाम कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस गृहपति को भगवान् ने यह उपदेश किया— "गृहपति! कामभोगों के ये पाँच आद्य (आरम्भ) हैं। कौन से पाँच? यहाँ, गृहपति! कोई आर्यश्रावक परिश्रम से प्राप्त कामभोगों से, जिनको प्राप्त करने में उसकी बाहुओं की पूर्ण शक्ति लगी हो, ऐड़ी से चोटी तक पसीना (स्वेद) बह चला हो, जो धार्मिक एवं धर्माचरण से प्राप्त हों, स्वयं को प्रसन्न करता है, सुखी करता है, सम्यक्सुख का अनुभव करता है; साथ ही अपने पुत्र, स्त्री, दास, भृत्य आदि को भी सुखी करता है, प्रसन्न करता है, सम्यक् सुख का अनुभव करता है। यह उसको कामभोगों का प्रथम आद्य (आरम्भ) है। (१)

२. "तब, गृहपति! वही आर्यश्रावक ...पूर्ववत्... कामभोगों से अपने मित्र अमात्यों को सुखी करता है...। यह उसके कामभोगों का द्वितीय आरम्भ है। (२)

३. "पुनः, गृहपति! वह आर्यश्रावक ...पूर्ववत्... कामभोगों को अग्नि, जल, राजा, चौर, शत्रु एवं परिवार से बचाता रहता है। यह उसके कामभोगों का तृतीय आरम्भ है। (३)

४. "पुनः, गृहपति! वह आर्यश्रावक ...पूर्ववत्... कामभोगों से कुछ अंश देकर इन पाँच को भी प्रसन्न करता रहता है; जैसे—सम्बन्धिजन, अतिथिजन, परिवार के पूर्व मृत पुरुष, राजा एवं देवता। यह उसके कामभोगों का चतुर्थ आरम्भ है। (४)

[R.46] परिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि ये ते समणब्राह्मणा मदप्पमादा पटिविरता खन्तिसोरच्चे निविट्ठा एकमत्तानं दमेन्ति, एकमत्तानं समेन्ति एकमत्तानं परिनिब्बापेन्ति, तथारूपेसु समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं, सग्गसंवत्तनिकं। अयं **पञ्चमो भोगानं आदियो**।

इमे खो, गहपति, पञ्च भोगानं आदिया।

६. "तस्स चे, गहपति, अरियसावकस्स इमे पञ्च भोगानं आदिये आदियतो भोगा परिक्खयं गच्छन्ति, तस्स एवं होति—'ये वत भोगानं आदिया ते चाहं आदियामि भोगा च मे परिक्खयं गच्छन्ती' ति। इतिस्स होति अविप्पटिसारो। तस्स चे, गहपति, [B.40] अरियसावकस्स इमे पञ्च भोगानं आदिये आदियतो भोगा अभिवड्ढन्ति, तस्स एवं होति—'ये वत भोगानं आदिया ते चाहं आदियामि भोगा च मे अभिवड्ढन्ती' ति। इतिस्स होति उभयेनेव अविप्पटिसारो ति।

"भुत्ता भोगा भता भच्चा, वितिण्णा आपदासु मे।
उद्धग्गा दक्खिणा दिन्ना, अथो पञ्चबलीकता।
उपट्ठिता सीलवन्तो, सञ्ञता ब्रह्मचारयो॥
"यदत्थं भोगं इच्छेय्य, पण्डितो घरमावसं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, कतं अननुतापियं॥
"एतं अनुस्सरं मच्चो, अरियधम्मे ठितो नरो।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती" ति॥ ●

---

५. "पुनः, गृहपति! वह आर्यश्रावक ...पूर्ववत्... उन अपने कामभोगों में से कुछ अंश उन श्रमण ब्राह्मणों को दान करता रहता है; जो दान उसको देहपात के बाद सुगतिमय स्वर्ग में पहुँचाने की सामर्थ्य रखता है। वे श्रमण ब्राह्मण मद एवं प्रमाद से दूर रहते हैं, क्षान्ति एवं नम्रता की साक्षात् मूर्ति हैं; जो अपने शम दम एवं निर्वाण की साधना में सतत दत्तचित्त रहते हैं। यह उसके कामभोगों का पञ्चम आरम्भ है। इस प्रकार, गृहपति! कामभोगों के ये पाँच आरम्भ होते हैं। (५)

६. "गृहपति! यदि उस आर्यश्रावक द्वारा इन पाँच कामभोगों को लेने के आरम्भ में ही इनका क्षय होने लगे तो उसको यह खेद नहीं होता कि जिन कामभोगों की प्राप्ति का मैं आरम्भ कर रहा हूँ वे कामभोग पहले ही नष्ट होते जा रहे हैं। तथा इन कामभोगों के आरम्भ करने के बाद इनकी क्रमशः वृद्धि होने लगे तो उसको उसका हर्ष भी नहीं होता कि मेरे आरब्ध कामभोग वृद्धि प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार, गृहपति! उस आर्यश्रावक को उभय प्रकार से कहीं भी खेद या हर्ष नहीं होता।

" 'कामभोगों का यथेष्ट उपभोग किया, उनसे पालनीय लोगों का पालन पोषण किया, आपत्तियों से उनकी रक्षा की। उपरि लोक में गये परिवारजनों के हेतु दान किया तथा उससे अतिथि आदि को पाँच आगन्तुक दान किये एवं सदाचारियों का सत्कार किया॥

"विद्वानों द्वारा जिसके लिये कामभोग चाहे जाते हैं वह सब मैंने यथेच्छ और विना किसी कष्ट के प्राप्त किया॥

२. सप्पुरिससुत्तं : १. ''सप्पुरिसो, भिक्खवे, कुले जायमानो बहुनो [N.312] जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय होति; मातापितूनं अत्थाय हिताय सुखाय होति; पुत्तदारस्स अत्थाय हिताय सुखाय होति; दासकम्मकरपोरिसस्स अत्थाय हिताय सुखाय होति; मित्तामच्चानं अत्थाय हिताय सुखाय होति; समणब्राह्मणानं अत्थाय हिताय सुखाय होति।

२. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, महामेघो सब्बसस्सानि सम्पादेन्तो बहुनो [R.47] जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय होति; एवमेव खो, भिक्खवे, सप्पुरिसो कुले जायमानो बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय होति; मातापितूनं अत्थाय हिताय सुखाय होति; पुत्तदारस्स अत्थाय हिताय सुखाय होति; मित्तामच्चानं अत्थाय हिताय सुखाय होति; समणब्राह्मणानं अत्थाय हिताय सुखाय होती ति।

''हितो बहुन्नं पटिपज्ज भोगे, तं देवता रक्खति धम्मगुत्तं।
बहुस्सुतं सीलवतूपपन्नं, धम्मे ठितं न विजहाति कित्ति॥
''धम्मट्ठं सीलसम्पन्नं, सच्चवादिं हिरीमनं। [B.41]
नेक्खं जम्बोनदस्सेव, को तं निन्दितुमरहति।
देवा पि नं पसंसन्ति, ब्रह्मुना पि पसंसितो'' ति॥ ●

३. इट्ठसुत्तं : १. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—

''आर्यधर्म में प्रतिष्ठित किसी भी पुरुष को निरन्तर यह बात स्मरण रखनी चाहिये। ऐसे पुरुष की इस लोक में भी प्रशंसा होती है तथा मरणानन्तर स्वर्ग में भी वह दिव्य सुख का अनुभव करता है॥'' ●

२. सत्पुरुषसूत्र : : सत्पुरुष के पाँच लाभ

१. ''भिक्षुओ! कुल में उत्पन्न हुआ सत्पुरुष अनेक जनों के हित एवं सुख का साधक होता है। वह (१) माता पिता के...; (२) पुत्र एवं पत्नी के...; (३) दास एवं भृत्य आदि के...; (४) मित्र एवं साथियों के...; एवं (५) श्रमणों ब्राह्मणों के हितसुख का साधक होता है।

२. ''जैसे, भिक्षुओ! महामेघ (वर्षा का जल) सभी धान्यों को उत्पन्न करता हुआ बहुत लोगों के हित सुख का सम्पादन करता है; इसी प्रकार, भिक्षुओ! कुल में उत्पन्न सत्पुरुष बहुत लोगों के ...पूर्ववत्... श्रमण ब्राह्मणों के हित एवं सुख का सम्पादक होता है।

''जो कामभोगों को प्राप्त कर बहुत से लोगों के हित में लगा रहता है, ऐसे धर्म से रक्षित सत्पुरुष की देवता भी रक्षा करते हैं। जो बहुश्रुत होता है, सदाचार एवं व्रतपालन से सम्पन्न है, धर्माचरण में तत्पर है ऐसे पुरुष का यश साथ नहीं छोड़ता॥

''धर्मनिष्ठ, सदाचारपरायण, सत्यवादी, पापकर्म में लज्जित होनेवाला पुरुष किसी की निन्दा का पात्र नहीं होता; जैसे कसौटी पर चढ़ा हुआ शुद्ध सुवर्ण। उसकी देवता भी प्रशंसा करते हैं तथा वह देवाधिदेव ब्रह्मा द्वारा भी प्रशंसित होता है॥'' ●

२. ''पञ्चिमे, गहपति, धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा दुल्लभा लोकस्मिं। कतमे पञ्च? आयु, गहपति, इट्ठो कन्तो मनापो दुल्लभो लोकस्मिं; वण्णो इट्ठो कन्तो मनापो दुल्लभो लोकस्मिं; सुखं इट्ठं कन्तं मनापं दुल्लभं लोकस्मिं; यसो इट्ठो कन्तो मनापो दुल्लभो [N.313] लोकस्मिं; सग्गा इट्ठा कन्ता मनापा दुल्लभा लोकस्मिं। इमे खो, गहपति, पञ्च धम्मा इट्ठा कन्ता मनापा दुल्लभा लोकस्मिं।

३. ''इमेसं खो, गहपति, पञ्चन्नं धम्मानं इट्ठानं कन्तानं मनापानं दुल्लभानं लोकस्मिं न आयाचनहेतु वा पत्थनाहेतु वा पटिलाभं वदामि। इमेसं खो, गहपति, पञ्चन्नं [R.48] धम्मानं इट्ठानं कन्तानं मनापानं दुल्लभानं लोकस्मिं आयाचनहेतु वा पत्थनाहेतु वा पटिलाभो अभविस्स, को इध केन हायेथ!

४. ''न खो, गहपति, अरहति अरियसावको आयुकामो आयुं आयाचितुं वा अभिनन्दितुं वा आयुस्स वा पि हेतु। आयुकामेन, गहपति, अरियसावकेन आयुसंवत्तनिका पटिपदा पटिपज्जितब्बा। आयुसंवत्तनिका हिस्स पटिपदा पटिपन्ना आयुपटिलाभाय संवत्तति। सो लाभी होति आयुस्स दिब्बस्स वा मानुसस्स वा।

५. ''न खो, गहपति, अरहति अरियसावको वण्णकामो वण्णं आयाचितुं वा अभिनन्दितुं वा वण्णस्स वा पि हेतु। वण्णकामेन, गहपति, अरियसावकेन वण्णसंवत्तनिका पटिपदा पटिपज्जितब्बा। वण्णसंवत्तनिका हिस्स पटिपदा पटिपन्ना वण्णपटिलाभाय संवत्तति। सो लाभी होति वण्णस्स दिब्बस्स वा मानुसस्स वा।

---

३. इष्टसूत्र : : लोक में दुर्लभ पाँच धर्म

१. ...तब अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान् के सम्मुख पहुँचे। पहुँचकर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे गृहपति को भगवान् यों बोले—

२. ''गृहपति! लोक में ये पाँच इष्ट, कान्त, मनाप धर्म दुर्लभ है। कौन पाँच? गृहपति इष्ट कान्त मनाप **आयु** लोक में दुर्लभ हैं; इष्ट, कान्त मनाप **वर्ण** लोक में दुर्लभ हैं; इष्ट, कान्त मनाप **सुख** लोक में दुर्लभ हैं; इष्ट कान्त मनाप **यश** लोक में दुर्लभ हैं; इष्ट कान्त मनाप **स्वर्ग** लोक में दुर्लभ है। गृहपति! लोक में ये पाँच इष्ट कान्त मनाप धर्म लोक में दुर्लभ हैं।

३. ''गृहपति! इन पाँचों इष्ट कान्त मनाप धर्मों को लोक में किसी से माँगने, याच्ञा करने में मैं कोई लाभ नहीं देखता; क्योंकि माँगने या याच्ञा करने से यदि ये मिल जाते तो कोई इनको क्यों छोड़ता।

४. ''गृहपति! आयुर्वृद्धि की इच्छा रखने वाले किसी आर्यश्रावक का किसी से आयु का माँगना उचित नहीं; अपितु इसे आयु बढ़ाने वाले मार्ग का स्वयं अनुसरण करना चाहिये। इस आयुर्वर्धक मार्ग के अनुसरण से ही उसकी आयु बढ़ सकेगी। और वह दिव्य एवं लौकिक दीर्घायु प्राप्त कर सकेगा। (१)

५. ''गृहपति! वर्णवृद्धि की इच्छा रखनेवाले ...पूर्ववत्... वह दिव्य एवं लौकिक वर्ण प्राप्त कर सकेगा। (२)

६. ''न खो, गहपति, अरहति अरियसावको सुखकामो सुखं आयाचितुं वा [B.42] अभिनन्दितुं वा सुखस्स वा पि हेतु। सुखकामेन, गहपति, अरियसावकेन सुखसंवत्तनिका पटिपदा पटिपज्जितब्बा। सुखसंवत्तनिका हिस्स पटिपदा पटिपन्ना सुखपटिलाभाय संवत्तति। सो लाभी होति सुखस्स दिब्बस्स वा मानुसस्स वा।

७. ''न खो, गहपति, अरहति अरियसावको यसकामो यसं आयाचितुं वा अभिनन्दितुं वा यसस्स वा पि हेतु। यसकामेन, गहपति, अरियसावकेन यससंवत्तनिका पटिपदा पटिपज्जितब्बा। यससंवत्तनिका हिस्स पटिपदा पटिपन्ना यसपटिलाभाय संवत्तति। सो लाभी होति यसस्स दिब्बस्स वा मानुसस्स वा।

८. ''न खो, गहपति, अरहति अरियसावको सग्गकामो सग्गं आयाचितुं वा अभिनन्दितुं वा सग्गानं वा पि हेतु। सग्गकामेन, गहपति, अरियसावकेन [N.314] सग्गसंवत्तनिका पटिपदा पटिपज्जितब्बा। सग्गसंवत्तनिका हिस्स पटिपदा पटिपन्ना सग्गपटिलाभाय संवत्तति। सो लाभी होति सग्गानं ति।

''आयु वण्णं यसं कित्तिं, सग्गं उच्चाकुलीनतं।
रतियो पत्थयानेन, उळारा अपरापरा।
अप्पमादं पसंसन्ति, पुञ्ञकिरियासु पण्डिता॥
''अप्पमादं उभो अत्थे, अधिगण्हाति पण्डितो। [R.49]
दिट्ठे धम्मे च यो अत्थो, यो चत्थो सम्परायिको।
अत्थाभिसमया धीरो, पण्डितो ति पवुच्चती'' ति॥

४. मनापदायीसुत्तं : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय येन उग्गस्स

---

६. ''गृहपति! सुखवृद्धि की कामना करने वाले ...पूर्ववत्... वह दिव्य एवं लौकिक सुख प्राप्त कर सकेगा। (३)

७. ''गृहपति! यशोभिवृद्धि की कामना करनेवाले ...पूर्ववत्... वह दिव्य एवं लौकिक यश प्राप्त कर सकेगा। (४)

८. ''गृहपति! स्वर्गसुख की कामना करने वाले ...पूर्ववत्... वह यथासमय स्वर्ग का लाभ कर सकेगा। (५)

''आयु, वर्ण, यश, कीर्ति, स्वर्ग या उच्च कुल में जन्म—ये सब किसी से माँगने से नहीं मिलते। इनकी प्राप्ति के लिये बताये गये मार्ग का अवलम्बन करने से ही ये सब प्राप्त होते हैं। ये सभी गुण एक दूसरे की अपेक्षा बढ़कर हैं॥

''बुद्धिमान् आर्यश्रावक, उस मार्ग का सावधान होकर आलम्बन करने से ही, ये दोनों प्रकार के अर्थ प्राप्त कर सकते हैं, भले ही वह अर्थ लौकिक हो या दिव्य। इन दोनों ही अर्थों (प्रयोजनों) की प्राप्ति से वह आर्यश्रावक 'पण्डित' कहलाता है॥''

गहपतिनो वेसालिकस्स निवेसनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। अथ [B.43] खो उग्गो गहपति वेसालिको येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो उग्गो गहपति वेसालिको भगवन्तं एतदवोच—

२. ''सम्मुखा मेतं, भन्ते भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'मनापदायी लभते मनापं' ति। मनापं मे, भन्ते, सालपुप्फकं खादनीयं; तं मे भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया'' ति। पटिग्गहेसि भगवा अनुकम्पं उपादाय।

३. ''सम्मुखा मेतं, भन्ते भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'मनापदायी लभते मनापं' ति। मनापं मे, भन्ते, सम्पन्नकोलकं सूकरमंसं; तं मे भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया'' ति। पटिग्गहेसि भगवा अनुकम्पं उपादाय।

४. ''सम्मुखा मेतं, भन्ते भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'मनापदायी लभते मनापं' ति। मनापं मे, भन्ते, निब्बत्ततेलकं नालियसाकं; तं मे भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया'' ति। पटिग्गहेसि भगवा अनुकम्पं उपादाय।

[N.315] ५. ''सम्मुखा मेतं, भन्ते भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'मनापदायी लभते मनापं' ति। मनापो मे, भन्ते, सालीनं ओदनो विचितकाळको अनेकसूपो अनेकब्यञ्जनो; तं मे भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया'' ति। पटिग्गहेसि भगवा अनुकम्पं उपादाय।

[R.50] ६. ''सम्मुखा मेतं, भन्ते भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'मनापदायी लभते

---

४. मनापदायिसूत्र

: :

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब कभी भगवान् प्रातःकाल वस्त्रों को व्यवस्थित कर पात्रचीवर लेकर उग्र गृहपति के वासस्थान (घर) पर पहुँचे। पहुँचकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। तब वैशालीवासी उग्र गृहपति भगवान् के सम्मुख आया। आकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस वैशालीवासी उग्र गृहपति भगवान् से यों बोला—

२. ''भन्ते! मैंने भगवान् के श्रीमुख से ही सुना है, ग्रहण किया है—'अनुकूल वस्तुएँ देनेवाला अनुकूल वस्तु प्राप्त करता है', भन्ते! मुझको खाद्य पदार्थों में सालपुष्प अनुकूल लगते हैं, अतः आप कृपाकर इनको ग्रहण करें।'' भगवान् ने कृपा कर उन सालपुष्पों को ग्रहण कर लिया।

३. ''भन्ते! मैंने भगवान् के ...पूर्ववत्... भन्ते! मुझको मरिच मिला हुआ शूकरमांस चित्तानुकूलक लगता है, कृपया आप इसका उपभोग करें।'' भगवान् ने उस शूकरमांस का उपयोग किया।

४. ''भन्ते! मैंने भगवान् के ...पूर्ववत्... भन्ते! मुझको तैल में भुना हुआ नाड़ी का साग अच्छा लगता है,... । भगवान् ने कृपा कर उसको ग्रहण किया।

मनापं' ति। मनापानि मे, भन्ते, कासिकानि वत्थानि; तानि मे भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादाया'' ति। पटिग्गहेसि भगवा अनुकम्पं उपादाय।

७. ''सम्मुखा मेतं, भन्ते भगवतो सुतं सम्मुखा पटिग्गहितं—'मनापदायी लभते मनापं' ति। मनापो मे, भन्ते, पल्लङ्को गोनकत्थतो पटलिकत्थतो कदलिमिगपवर-पच्चत्थरणो सउत्तरच्छदो उभतोलोहितकूपधानो। अपि च, भन्ते, मयं पेतं जानाम—'नेतं भगवतो कप्पती' ति। इदं मे, भन्ते, चन्दनफलकं अग्घति अधिकसतसहस्सं; तं मे भगवा पटिग्गण्हातु अनुकम्पं उपादया'' ति। पटिग्गहेसि भगवा अनुकम्पं उपादाय। अथ [B.44] खो भगवा उग्गं गहपतिं वेसालिकं इमिना अनुमोदनीयेन अनुमोदि—

''मनापदायी लभते मनापं, यो उज्जुभूतेसु ददाति छन्दसा।
अच्छादनं सयनमथन्नपानं, नानाप्पकारानि च पच्चयानि॥
''चत्तं च मुत्तं च अनुग्गहीतं, खेत्तूपमे अरहन्ते विदित्वा।
सो दुच्चजं सप्पुरिसो चजित्वा, मनापदायी लभते मनापं'' ति॥

अथ खो भगवा उग्गं गहपतिं वेसालिकं इमिना अनुमोदनीयेन अनुमोदित्वा उट्ठायासना पक्कामि।

८. अथ खो उग्गो गहपति वेसालिको अपरेन समयेन कालमकासि। कालङ्कतो च उग्गो गहपति वेसालिको अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपज्जि। तेन खो पन समयेन [N.316]

---

५. ''भन्ते! मैंने भगवान् के ...पूर्ववत्... भन्ते! मुझको शालि चावल का भात अच्छा लगता है...। भगवान् ने कृपा कर उसको ग्रहण किया।

६. ''भन्ते! मैंने भगवान् के ...पूर्ववत्... भन्ते! मुझको काशी के बने वस्त्र अच्छे लगते हैं...। भगवान् ने कृपा कर उसको ग्रहण किया।

७. ''भन्ते! मैंने भगवान् के ...पूर्ववत्... भन्ते! मुझको दोनों ओर लाल तकिये लगा हुआ, उनका दुशाला बिछा हुआ पलंग बहुत प्रिय लगता है, परन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि आपके धर्म में यह निषिद्ध है, अत: मेरे पास एक चन्दनफलक (तख्ता) है जो एक लाख मुद्रा से भी अधिक महर्घ होगा, इसको आप कृपया ग्रहण करें।'' भगवान् ने उस गृहपति पर अनुकम्पा करते हुए उसको ग्रहण कर लिया।

तब भगवान् ने वैशालीवासी उग्र गृहपति के दान का इन गाथाओं से अनुमोदन किया—

''चित्ताकर्षक प्रिय वस्तुओं का दाता साधना से सरल चित्त बने अर्हतों को स्वेच्छा से बिछौना, शय्या, अन्न, पान तथा रोगियों को नाना प्रकार के पथ्य आदि दान करता है, ऐसा दाता फलस्वरूप स्वयं भी आकर्षक वस्तुएँ प्राप्त करता है॥

''लोक में पुण्यक्षेत्र के रूप में माने गये अर्हतों को किसी कठिनता से त्यागने योग्य वस्तु के त्याग या मोक्ष से प्रसन्न करता है वह सत्पुरुष ऐसा दान कर प्रतिफल में अपने लिये भी आकर्षक एवं प्रिय वस्तु प्राप्त करता है''॥ ऐसा कहकर भगवान् अपने आसन पर आ गये।

भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो उग्गो देवपुत्तो [R.51] अभिक्कन्ताय रत्तिया अभिक्कन्तवण्णो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितं खो उग्गं देवपुत्तं भगवा एतदवोच—

"कच्चि ते, उग्ग, यथाधिप्पायो" ति? "तग्घ मे, भगवा, यथाधिप्पायो" ति।

९. अथ खो भगवा उग्गं देवपुत्तं गाथाहि अज्झभासि—

"मनापदायी लभते मनापं, अग्गस्स दाता लभते पुनग्गं।
वरस्स दाता वरलाभि होति, सेट्ठं ददो सेट्ठमुपेति ठानं॥

[B.45] "यो अग्गदायी वरदायी, सेट्ठदायी च यो नरो।
दीघायु यसवा होति, यत्थ यत्थूपपज्जती" ति॥ ●

५. पुञ्ञाभिसन्दसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, पुञ्ञाभिसन्दा कुसलाभिसन्दा सुखस्साहारा सोवग्गिका सुखविपाका सग्गसंवत्तनिका इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? यस्स, भिक्खवे, भिक्खु चीवरं परिभुञ्जमानो अप्पमाणं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति, अप्पमाणो तस्स पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति।

तब वह वैशालीवासी उग्र गृहपति, आगे समय आने पर मरणभाव को प्राप्त हो गया। मरणानन्तर वह उग्र गृहपति किसी मनोमय देवों के काय में उत्पन्न हुआ। उस समय भी भगवान् श्रावस्ती के जेतवनराम में ही विराजमान थे। तब वह उग्र देवपुत्र चाँदनी रात में अपने प्रकाशमय वर्ण से समस्त जेतवन को अवभासित करता हुआ भगवान् के सम्मुख आया। आकर भगवान् को प्रणाम कर एक ओर खड़ा हो गया। एक ओर खड़े हुए उग्र देवपुत्र को भगवान् ने पूछा—

"उग्र! तुझे तेरे मनोनुकूल कुछ मिला?"

"हाँ, भन्ते! अवश्य मुझको मनोनुकूल मिल गया।"

९. तब भगवान् ने इन गाथाओं के माध्यम से यह कहा—

"चित्ताकर्षक वस्तुओं का दाता चित्ताकर्षक वस्तुएँ ही फलस्वरूप प्राप्त करता है। और अग्र (उत्तम) का दाता अग्र को ही प्राप्त करता है। इष्ट वस्तु का दाता इष्ट वस्तु ही प्राप्त करता है तथा श्रेष्ठ वस्तु का दाता श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त करता है॥

"जो अग्रदायी होता है, वरदायी तथा श्रेष्ठदायी होता है; ये तीनों ही प्रकार के दाता जहाँ भी उत्पन्न होते हैं वे वहाँ दीर्घायु एवं यशस्वी होते हैं॥" ●

५. पुण्याभिष्यन्दसूत्र : : पाँच पुण्यस्रोत

१. भिक्षुओ! ये पाँच पुण्यस्रोत कुशलस्रोत सुखदाता, स्वर्ग-सुख का अनुभव कराने वाले, सुखमय फल देनेवाले, स्वर्ग तक पहुँचाने वाले साधक के कान्त, मनाप एवं हित सुख के सम्पादक होते हैं। कौन पाँच? भिक्षुओ! साधक भिक्षु जिस दाता का दिया हुआ चीवर पहनकर अप्रमाण

२. ''यस्स, भिक्खवे, भिक्खु पिण्डपातं परिभुञ्जमानो ...पे०... यस्स, भिक्खवे, भिक्खु विहारं परिभुञ्जमानो ...पे०... यस्स, भिक्खवे, भिक्खु मञ्चपीठं परिभुञ्जमानो ...पे०... यस्स, भिक्खवे, भिक्खु गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं परिभुञ्जमानो अप्पमाणं चेतोसमाधिं उपसम्पज्ज विहरति, अप्पमाणो तस्स पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो [R.52] सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पुञ्ञाभिसन्दा कुसलाभिसन्दा [N.317] सुखस्साहारा सोवग्गिका सुखविपाका सग्गसंवत्तनिका इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तन्ति।

३. ''इमेहि च पन, भिक्खवे, पञ्चहि पुञ्ञाभिसन्देहि कुसलाभिसन्देहि समन्नागतस्स अरियसावकस्स न सुकरं पुञ्ञस्स पमाणं गहेतुं—'एत्तको पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तती' ति। अथ खो असङ्ख्येय्यो अप्पमेय्यो महापुञ्ञक्खन्धो त्वेव सङ्ख्यं गच्छति।

४. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, महासमुद्दे न सुकरं उदकस्स पमाणं गहेतुं—'एत्तकानि उदकाळ्हकानी ति वा एत्तकानि उदकाळ्हकसतानी ति वा एत्तकानि उदकाळ्हकसहस्सानी ति वा एत्तकानि उदकाळ्हकसतसहस्सानी ति वा; अथ खो असङ्ख्येय्यो अप्पमेय्यो [B.46] महाउदकक्खन्धो त्वेव सङ्ख्यं गच्छति। एवमेव खो, भिक्खवे, इमेहि पञ्चहि पुञ्ञाभिसन्देहि कुसलाभिसन्देहि समन्नागतस्स अरियसावकस्स न सुकरं पुञ्ञस्स पमाणं गहेतुं—'एत्तको

चेत:समाधि प्राप्त कर साधना करता है, उसका वह पुण्यस्रोत कुशलस्रोत ...पूर्ववत्... कान्त एवं मनाप हित सुख का सम्पादक होता है। (१)

२. ''भिक्षुओ! जो भिक्षु जिस दाता का दिया हुआ पिण्डपात खाकर ...पूर्ववत्...। (२)

''भिक्षुओ! जो भिक्षु जिस दाता के द्वारा निर्मित विहार में रहकर ...पूर्ववत्...। (३)

''भिक्षुओ! जो भिक्षु जिस दाता के दिये हुए मञ्चपीठ पर बैठकर ...पूर्ववत्...। (४)

''भिक्षुओ! जो भिक्षु रुग्णावस्था में जिस दाता द्वारा दी हुई ओषधियाँ एवं पथ्य खाकर अप्रमाण चेत:समाधि प्राप्त कर साधना करता है उसका वह पुण्यस्रोत कुशलस्रोत ...पूर्ववत्... कान्त एवं मनाप हित सुख का सम्पादक होता है। (५)

''भिक्षुओ! ये पाँच पुण्यस्रोत कुशलस्रोत ... कान्त एवं मनाप हित सुख के सम्पादक होते हैं।

३. भिक्षुओ! इन पाँच पुण्यस्रोतों कुशलस्रोतों से युक्त किसी आर्यश्रावक का पुण्यप्रमाण मापना सरल नहीं है कि इसका यह पुण्यस्रोत कुशलस्रोत... पूर्ववत्... हित सुख का सम्पादक है। उसका वह पुण्यस्रोत असङ्ख्य अप्रमेय महापुण्यस्कन्ध ही कहलाता है।

४. ''भिक्षुओ! जैसे महासमुद्र के जल का प्रमाण किसी भी प्रकार से मापा नहीं जा सकता कि इसमें इतने आढक, इतने सौ आढक, इतने हजार आढक या इतने लाख आढक जल है, अपितु

पुञ्ञाभिसन्दो कुसलाभिसन्दो सुखस्साहारो सोवग्गिको सुखविपाको सग्गसंवत्तनिको इट्ठाय कन्ताय मनापाय हिताय सुखाय संवत्तती' ति। अथ खो असङ्ख्येय्यो अप्पमेय्यो महापुञ्ञक्खन्धो त्वेव सङ्ख्यं गच्छती ति।

''महोदधिं अपरिमितं महासरं, बहुभेरवं रत्नगणानमालयं।
नज्जो यथा नरगणसङ्घसेविता, पुथू सवन्ती उपयन्ति सागरं॥

[R.53] ''एवं नरं अन्नदपानवत्थदं, सेय्यानिसज्जत्थरणस्स दायकं।
पुञ्ञस्स धारा उपयन्ति पण्डितं, नज्जो यथा वारिवहा व सागरं'' ति॥ ●

[N.318] **६. सम्पदासुत्तं** : १. ''पञ्चिमा, भिक्खवे, सम्पदा। कतमा पञ्च ? सद्धासम्पदा, सीलसम्पदा, सुतसम्पदा, चागसम्पदा, पञ्ञासम्पदा—इमा खो, भिक्खवे, पञ्च सम्पदा'' ति॥ ●

७. धनसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, धनानि। कतमानि पञ्च ? सद्धाधनं, सीलधनं, सुतधनं, चागधनं, पञ्ञाधनं।

२. ''कतमं च, भिक्खवे, सद्धाधनं ? इध, भिक्खवे, अरियसावको सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं—'इति पि सो भगवा ...पे०... सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **सद्धाधनं**।

वहाँ का वह उदकस्कन्ध (उदकराशि) असङ्ख्य एवं अप्रमेय ही माना जाता है। वैसे ही, भिक्षुओ! इन पाँच पुण्यस्रोतों कुशलस्रोतों से युक्त उस आर्यश्रावक का पुण्य ...पूर्ववत्... असङ्ख्य अप्रमेय महापुण्यस्कन्ध ही कहलाता है।

''जैसे अनेक नदियाँ, जिनके तट पर विशाल मानवसमूह वास करता है, पृथक् पृथक् बहती हुई अपरिमित जलराशिवाले, भयङ्कर कलकल शब्द वाले अनेक रत्नसमूहों के आगारभूत महासमुद्र में जा मिलती हैं॥

''उसी प्रकार याचकों को अन्न, पान, वस्त्र, शय्या, उस पर ओढ़ने बिछाने के वस्त्र के दाता की पुण्य धाराएँ उसी से आ मिलती है; जैसे महानदियाँ समुद्र में जा मिला करती हैं॥'' ●

६. सम्पदासूत्र : : पाँच सम्पदाएँ

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच सम्पत्तियाँ होती हैं। कौन सी पाँच? (१) श्रद्धासम्पत्ति, (२) शीलसम्पत्ति, (३) श्रुतसम्पत्ति, (४) त्यागसम्पत्ति, एवं (५) प्रज्ञासम्पत्ति—भिक्षुओ! ये पाँच सम्पत्ति होती हैं॥'' ●

७. धनसूत्र : : पाँच धन

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धन कहलाते हैं। कौन से पाँच? श्रद्धाधन, शीलधन, श्रुतधन, त्यागधन, एवं प्रज्ञाधन।

२. ''भिक्षुओ! **श्रद्धाधन** कौन सा होता है ? भिक्षुओ! यहाँ कोई आर्यश्रावक श्रद्धालु होता है, वह तथागत के ज्ञान (बोधि) पर श्रद्धा रखता है—'ऐसे भी भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध... देवमनुष्यों के शास्ता बुद्ध भगवान्'। इसे कहते हैं, भिक्षुओ! श्रद्धाधन। (१)

३. ''कतमं च, भिक्खवे, सीलधनं? इध, भिक्खवे, अरियसावको [B.47] पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **सीलधनं**।

४. ''कतमं च, भिक्खवे, सुतधनं? इध, भिक्खवे, अरियसावको बहुस्सुतो होति ...पे०... दिट्ठिया सुप्पटिविद्धो। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **सुतधनं**।

५. ''कतमं च, भिक्खवे, चागधनं? इध, भिक्खवे, अरियसावको विगतमल-मच्छेरेन चेतसा अगारं अज्झावसति मुत्तचागो पयतपाणि वोस्सग्गरतो याचयोगो दान-संविभागरतो। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **चागधनं**।

६. ''कतमं च, भिक्खवे, पञ्ञाधनं? इध, भिक्खवे, अरियसावको पञ्ञवा होति, उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मादुक्खक्खयगामिनिया। इदं वुच्चति, भिक्खवे, **पञ्ञाधनं**। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च धनानी ति।

''यस्स सद्धा तथागते, अचला सुप्पतिट्ठिता। [R.54]
सीलं च यस्स कल्याणं, अरियकन्तं पसंसितं॥
''सङ्घे पसादो यस्सत्थि, उजुभूतं च दस्सनं। [N.319]
अदलिद्दो ति तं आहु, अमोघं तस्स जीवितं॥

---

३. ''और, भिक्षुओ! **शीलधन** किसको कहते हैं? भिक्षुओ! यहाँ कोई आर्यश्रावक प्राणातिपात से दूर रहता है ...पूर्ववत्... मद्यपान से दूर रहता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है शीलधन। (२)

४. ''भिक्षुओ! यह **श्रुतधन** क्या कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक धर्म के विषय में बहुश्रुत होता है ...पूर्ववत्... दृष्टि से सुप्रतिविद्ध। यह कहलाता है, भिक्षुओ! श्रुतधन। (३)

५. ''और, भिक्षुओ! **त्यागधन** क्या होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक विकार एवं मात्सर्यरहित चित्त से गृहस्थ धर्म का पालन करता है, मुक्तहस्त से त्याग (दान) करता हुआ, दान के लिये हाथ उठाने के लिये सदा तत्पर, व्यवसर्ग (दान) में लगा हुआ, दानशील, दान के विभाग में रत रहता है—भिक्षुओ! यह कहलाता है त्यागधन। (४)

६. भिक्षुओ! **प्रज्ञाधन** कौन सा कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई आर्यश्रावक प्रज्ञावान् होताहै, उत्पत्ति एवं नाश को पहचानने वाली प्रज्ञा से युक्त रहता है, आर्य, अन्तःप्रविष्ट, सम्यग्दुःख क्षय की ओर ले जानेवाली प्रज्ञा से समन्वित रहता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है प्रज्ञाधन। (५)

''भिक्षुओ! ये पाँच धन कहलाते हैं।

''जिसकी भगवान् बुद्ध में स्थिर एवं सुप्रतिष्ठित श्रद्धा है, जिसके पास आर्यों को प्रिय एवं उनके द्वारा प्रशंसित कल्याणमय शील है॥

''जिसकी सङ्घ में श्रद्धा है, जिसकी दृष्टि सरल है, ऐसे पुरुष को लोग 'अदरिद्र' (धनवान्) कहते हैं। उसका जीवन सफल है॥

"तस्मा सद्धं च सीलं च, पसादं धम्मदस्सनं।
अनुयुञ्जेथ मेधावी, सरं बुद्धान सासनं" ति॥ ●

८. ठानसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, अलब्भनीयानि ठानानि समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं। कतमानि पञ्च? 'जराधम्मं मा जीरी' ति अलब्भनीयं ठानं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं। 'ब्याधिधम्मं मा ब्याधीयी' ति ...पे०... 'मरणधम्मं मा मीयी' ति ... 'खयधम्मं मा खीयी' ति ... 'नस्सनधम्मं मा नस्सी' ति अलब्भनीयं ठानं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं।

[B.48] २. "अस्सुतवतो, भिक्खवे, पुथुज्जनस्स जराधम्मं जीरति। सो जराधम्मे जिण्णे न इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो मय्हेवेकस्स जराधम्मं जीरति, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं जराधम्मं जीरति। अहं चेव खो पन जराधम्मे जिण्णे सोचेय्यं किलमेय्यं परिदेवेय्यं, उरत्ताळिं कन्देय्यं, सम्मोहं आपज्जेय्यं, भत्तं पि मे नच्छादेय्य, काये पि दुब्बण्णियं ओक्कमेय्य, कम्मन्ता पि नप्पवत्तेय्युं, अमित्ता पि अत्तमना अस्सु, मित्ता पि दुम्मना अस्सू' ति। सो जराधम्मे जिण्णे सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे—'अस्सुतवा पुथुज्जनो विद्धो सविसेन सोकसल्लेन अत्तानंयेव परितापेति'।

[R.55] ३. "पुन च परं, भिक्खवे, अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स ब्याधिधम्मं ब्याधीयति

"अत: बुद्धों के अनुशासन का स्मरण करते हुए बुद्धिमान् पुरुष को श्रद्धा एवं शील तथा धर्मदर्शन के अभ्यास (साधना) में निरन्तर लगे रहना चाहिये॥" ●

८. स्थानसूत्र : : पाँच अलभ्य स्थान

१. "भिक्षुओ! लोक में ये पाँच स्थान किसी के लिये भी अलभ्य ही है, फिर भले ही श्रमण हो या ब्राह्मण, देवता हो या मार, ब्रह्मा हो या और कोई। कौन से पाँच? (१) 'जराधर्म (बुढ़ापा) को न प्राप्त करूँ' लोक में यह किसी भी श्रमण या ब्राह्मण के लिये, देवता या मार के लिये, ब्रह्मा या किसी अन्य के लिये अलभ्य स्थान ही है। (२) 'मैं व्याधिधर्म को न प्राप्त करूँ' ...पूर्ववत्...। (३) 'मैं मरणधर्म को न प्राप्त करूँ' ...पूर्ववत्...। (४) 'मैं क्षयधर्म को न प्राप्त करूँ' ...पूर्ववत्...। (५) 'मैं नाशधर्म को न प्राप्त करूँ' ...पूर्ववत्... किसी अन्य के लियें अलभ्य स्थान ही है।

२. "किसी अश्रुतवान् (मूर्ख) पृथग्जन को जब जराधर्म प्राप्त होता है, तब वह इस जराधर्म के प्राप्त होने पर यह विचार नहीं करता—'यह जराधर्म मुझ अकेले को ही प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु जहाँ तक प्राणियों का आवागमन है, उनकी उत्पत्ति या मरण है सभी को यह जराधर्म प्राप्त होता है। अत: केवल मैं ही इस जराधर्म के विषय में इतना रोऊँ, कलपूँ, विलाप करूँ, छाती पीटूँ, मूर्च्छित होऊँ तो मेरा यह खाया पीया भी शरीर को न लगेगा, शरीर भी धीरे धीरे क्षीण होता जायगा, दुर्वर्ण (कुरूप) होता जायगा, मैं अपने दैनिक कार्य भी पूर्ण न कर सकूँगा, इससे मेरे शत्रु प्रसन्न होंगे तथा मित्र दु:खी होंगे'। वह (यह न सोचकर) इस जराधर्म के प्राप्त होने पर चिन्ता करने लगता है, रोने

...पे०... मरणधम्मं मीयति ... खयधम्मं खीयति ... नस्सनधम्मं नस्सति। सो नस्सनधम्मे नट्ठे न इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो मय्हेवेकस्स नस्सनधम्मं नस्सति, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुतिं उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं नस्सनधम्मं नस्सति। अहं चेव खो [N.320] पन नस्सनधम्मे नट्ठे सोचेय्यं किलमेय्यं परिदेवेय्यं, उरत्ताळिं कन्देय्यं, सम्मोहं आपज्जेय्यं, भत्तं पि मे नच्छादेय्य, काये पि दुब्बण्णियं ओक्कमेय्य, कम्मन्ता पि नप्पवत्तेय्युं, अमित्ता पि अत्तमना अस्सु, मित्ता पि दुम्मना अस्सू' ति। सो नस्सनधम्मे नट्ठे सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे—'अस्सुतवा पुथुज्जनो विद्धो सविसेन सोकसल्लेन अत्तानंयेव परितापेति'।

४. "सुतवतो च खो, भिक्खवे, अरियसावकस्स जराधम्मं जीरति। सो जराधम्मे जिण्णे इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो मय्हेवेकस्स जराधम्मं जीरति, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं जराधम्मं जीरति। अहं चेव खो पन जराधम्मे जिण्णे सोचेय्यं किलमेय्यं परिदेवेय्यं, उरत्ताळिं कन्देय्यं, सम्मोहं आपज्जेय्यं, भत्तं पि मे नच्छादेय्य, काये पि दुब्बण्णियं ओक्कमेय्य, कम्मन्ता पि नप्पवत्तेय्युं, अमित्ता पि अत्तमना अस्सु, मित्ता पि दुम्मना अस्सू' ति। सो जराधम्मे जिण्णे न सोचति न किलमति न परिदेवति, न उरत्ताळिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे—[B.49] 'सुतवा अरियसावको अब्बुहि सविसं सोकसल्लं, येन विद्धो अस्सुतवा पुथुज्जनो अत्तानंयेव परितापेति। असोको विसल्लो अरियसावको अत्तानंयेव परिनिब्बापेति'।

कलपने लगता है, मूर्च्छित होने लगता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—'यह मूर्ख पृथग्जन विषमय शोकशल्य से बिंधा हुआ स्वयं को (चिन्ता से) जला रहा है।'

३. "और, भिक्षुओ! मूर्ख (शास्त्र के अनभ्यस्त) पृथग्जन को जब व्याधिधर्म (कोई रोग) घेर लेता है, तब वह उस व्याधि धर्म से घिर जाने पर यह नहीं विचार करता—'यह व्याधिधर्म मुझ अकेले को ही ...पूर्ववत्... तथा मित्र दुःखी होंगे' ...मरणधर्म से घिर जाता है तो उससे घिर जाने पर ...पूर्ववत्... क्षयधर्म से घिर जाता है ...पूर्ववत्... नाशन धर्म से घिर जाता है, वह नाशनधर्म वस्तु के नष्ट हो जाने पर यह नहीं सोचता—'यह नाशनधर्म मुझ अकेले को ही नहीं घेरे हुए हैं' ...पूर्ववत्... मूर्च्छित होने लगता है। भिक्षुओ! यह कहलाता है—'यह मूर्ख पृथग्जन विषमय शोकशल्य से विंधा हुआ स्वयं को ही (चिन्ता से) जला रहा है।'

४. (इसके विपरीत) "भिक्षुओ! श्रुतवान् (शास्त्राभ्यासी) आर्यजन को भी जराधर्म समय पर घेरता है, वह जराधर्म के आ जाने पर यह विचारता है—'मुझ अकेले पर ही यह जराधर्म नहीं आया है, अपितु इस संसार में जितने भी प्राणियों का आगमन, गमन या च्युति, उत्पत्ति होती है उन सभी को यह जराधर्म घेरता है। इससे घिर जाने पर, मैं किसी प्रकार की चिन्ता करूँ, रोऊ, कलपूँ, छाती पीटूँ, मूर्च्छित होऊँ तो मेरा खाया पिया भी शरीर को न लगेगा, शरीर में दुर्वर्णता आ जायगी, शरीर या मन से होनेवाले कार्य भी पूर्ण न हो पायँगें, यह देखकर शत्रु प्रसन्न होंगे तथा मित्र दुःखी होंगे।' यह श्रुतवान्, यह विचारता हुआ, इस जराधर्म के आने पर भी न कोई चिन्ता करता है, न रोता

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, सुतवतो अरियसावकस्स ब्याधिधम्मं ब्याधीयति ...पे०... मरणधम्मं मीयति ... खयधम्मं खीयति ... नस्सनधम्मं नस्सति। सो नस्सनधम्मे नट्ठे इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो मय्हेवेकस्स नस्सनधम्मं नस्सति, अथ खो यावता [R.56] सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं नस्सनधम्मं नस्सति। अहं चेव खो पन नस्सनधम्मे नट्ठे सोचेय्यं किलमेय्यं परिदेवेय्यं, उरत्तालिं कन्देय्यं, सम्मोहं आपज्जेय्यं, भत्तं पि मे नच्छादेय्य, काये पि दुब्बण्णियं ओक्कमेय्य, कम्मन्ता पि नप्पवत्तेय्युं, अमित्ता पि अत्तमना अस्सु, मित्ता पि दुम्मना अस्सू' ति। सो नस्सनधम्मे नट्ठे न सोचति न किलमति न परिदेवेति, न उरत्तालिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, भिक्खवे—'सुतवा [N.321] अरियसावको अब्बुहि सविसं सोकसल्लं, येन विद्धो अस्सुतवा पुथुज्जनो अत्तानंयेव परितापेति। असोको विसल्लो अरियसावको अत्तानंयेव परिनिब्बापेती' ति।

६. ''इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च अलब्भनीयानि ठानानि समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं ति।

''न सोचनाय परिदेवनाय, अत्थोध लब्भा अपि अप्पको पि।
सोचन्तमेनं दुखितं विदित्वा, पच्चत्थिका अत्तमना भवन्ति॥
''यतो च खो पण्डितो आपदासु, न वेधती अत्थविनिच्छयञ्ञू।
पच्चत्थिकास्स दुखिता भवन्ति, दिस्वा मुखं अविकारं पुराणं॥
[B.50] ''जप्पेन मन्तेन सुभासितेन, अनुप्पदानेन पवेणिया वा।

कलपता है, न छाती पीटता है, न मूर्च्छित होता है। भिक्षुओ! इसके विषय में कहा जाता है—'श्रुतवान् आर्यश्रावक ने विषमय शोकशल्य को उखाड़ फेंका; जबकि अश्रुतवान् पृथग्जन इस शोकशल्य से विंधकर स्वयं को चिन्ता से जलाये रखता है।

५. ''पुन: भिक्षुओ! श्रुतवान् आर्यश्रावक को व्याधिधर्म ...पूर्ववत्... मरणधर्म... क्षयधर्म... पूर्ववत्... नाशनधर्म वस्तु के नष्ट होने पर यह विचार करता है... उपरिवत्... *(विस्तार कर लें)*। भिक्षुओ! इसके विषय में यह कहा जाता है—'श्रुतवान् आर्यश्रावक ने अपने शोकशल्य को उखाड़ फेंका। जबकि अश्रुतवान् पृथग्जन इस शोकशल्य से विंधकर स्वयं को ही चिन्ता से जलाये रखता है। यह शोकरहित शल्यरहित आर्यश्रावक स्वयं को निर्वाण की साधना में लगाये रहता है॥'

६. ''भिक्षुओ! लोक में किसी श्रमण ब्राह्मण के द्वारा, देव या मार के द्वारा, ब्रह्मा या किसी अन्य के द्वारा ये पाँच स्थान अलभ्य ही कहे जाते हैं॥

''चिन्ता या विलाप करने मात्र से कोई छोटे से छोटा प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ करता। अपितु, इसको शोक तथा चिन्ता में मग्न जानकर इसके शत्रु प्रसन्न होते हैं॥

''जब कोई बुद्धिमान्, अपने अर्थ (प्रयोजन) के विषय में भलीभाँति आलोडन कर लेता है तो वह विचलित नहीं होता, अपितु निश्चिन्त रहता है। इसको, इस प्रकार निश्चिन्त देखकर तथा इसके मुख पर इस कारण कोई विकृति न देखकर इसके विरोधी ही, इसकी कोई हानि न देखकर, चिन्तित हो उठते हैं।

यथा यथा यत्थ लभेथ अत्थं, तथा तथा तत्थ परक्कमेय्य॥
''सचे पजानेय्य अलब्भनेय्यो, मया व अञ्ञेन वा एस अत्थो।
असोचमानो अधिवासयेय्य, कम्मं दळ्हं किन्ति करोमि दानी'' ति॥ ●

९. कोसलसुत्तं : १. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने [R.57] अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो राजा पसेनदि कोसलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि।

२. ''तेन खो पन समयेन मल्लिका देवी कालङ्कता होति। अथ खो [N.322] अञ्ञतरो पुरिसो येन राजा पसेनदि कोसलो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा रञ्ञो पसेनदिस्स कोसलस्स उपकण्णके आरोचेति—''मल्लिका देवी, देव, कालङ्कता'' ति। एवं वुत्ते राजा पसेनदि कोसलो दुक्खी दुम्मनो पत्तक्खन्धो अधोमुखो पज्झायन्तो अप्पटिभानो निसीदि।

३. अथ खो भगवा राजानं पसेनदिं कोसलं दुक्खिं दुम्मनं पत्तक्खन्धं अधोमुखं पज्झायन्तं अप्पटिभानं विदित्वा राजानं पसेनदिं कोसलं एतदवोच—''पञ्चिमानि, महाराज, अलब्भनीयानि ठानानि समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं। कतमानि पञ्च? 'जराधम्मं मा जीरी' ति अलब्भनीयं ठानं ...पे०... न सोचनाय परिदेवनाय ...पे०... कम्मं दळ्हं किन्ति करोमि दानी'' ति॥ ●

''अत: बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि वार्तालाप (जल्प), मन्त्र (विचार), सुभाषित, देने लेने (आदान-प्रदान), परम्परा आदि से जहाँ जैसे भी प्रयोजन की सिद्धि होती हो वहाँ वैसा प्रयत्न करना चाहिये।

''जब वह किसी अर्थ के विषय में जान ले कि यह मेरे या किसी अन्य के द्वारा अलभ्य (मिलना कठिन) है तो उसके प्रति किसी भी प्रकार की चिन्ता करना इसलिये छोड़ देना चाहिये कि यह कर्म असम्भव है, अत: मैं भी इस विषय में क्या कर सकता हूँ॥'' ●

९. कोसलसूत्र : : पाँच अलभ्य स्थान

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। तब राजा प्रसेनजित् कोसल भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुआ। और भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

२. उसी समय (उसकी रानी) मल्लिका देवी का देहावसान हो गया। तब उसके किसी अनुचर ने आकर उसके कान में (धीरे से) कहा—''देव! मल्लिका देवी का देहावसान हो गया!'' ऐसा कहे जाने पर, राजा प्रसेनजित् कोसल दु:खी, दुर्मना, कन्धे गिराया हुआ, नीचा मुखकर, बुझा हुआ एवं चेतनारहित के समान होकर बैठ गया।

३. तब भगवान् ने उसको इस स्थिति में देखकर यह उपदेश किया—''महाराज! किसी भी श्रमण ब्राह्मण के द्वारा, देवता या मार के द्वारा, ब्रह्मा या किसी अन्य के द्वारा ये पाँच स्थान (बातें) अलभ्य हैं। कौन सा पाँच? (१) उसको कभी जराधर्म (बुढ़ापा) न प्राप्त हो, (२) उसको कभी व्याधिधर्म ...पूर्ववत्... यह कर्म असम्भव है, अत: इस विषय में मैं भी क्या कर सकता हूँ॥'' ●

१०. नारदसुत्तं : १. एकं समयं आयस्मा नारदो पाटलिपुत्ते विहरति कुक्कुटारामे। [B.51] तेन खो पन समयेन मुण्डस्स रञ्ञो भद्दा देवी कालङ्कता होति पिया मनापा। सो भद्दाय देविया कालङ्कताय पियाय मनापाय नेव न्हायति न विलिम्पति न भत्तं भुञ्जति न कम्मन्तं पयोजेति—रत्तिन्दिवं भद्दाय देविया सरीरे अज्झोमुच्छितो। अथ खो मुण्डो राजा [R.58] पियकं कोसारक्खं आमन्तेसि—"तेन हि, सम्म पियक, भद्दाय देविया सरीरं आयसाय तेलदोणिया पक्खिपित्वा अञ्ञिस्सा आयसाय दोणिया पटिकुज्जथ, यथा मयं भद्दाय देविया सरीरं चिरतरं पस्सेय्यामा" ति। "एवं, देवा" ति खो पियको कोसारक्खो मुण्डस्स रञ्ञो पटिस्सुत्वा भद्दाय देविया सरीरं आयसाय तेलदोणिया पक्खिपित्वा अञ्ञिस्सा आयसाय दोणिया पटिकुज्जि।

२. अथ खो पियकस्स कोसारक्खस्स एतदहोसि—"इमस्स खो मुण्डस्स रञ्ञो भद्दा देवी कालङ्कता पिया मनापा। सो भद्दाय देविया कालङ्कताय पियाय मनापाय नेव [N.323] न्हायति न विलिम्पति न भत्तं भुञ्जति न कम्मन्तं पयोजेति—रत्तिन्दिवं भद्दाय देविया सरीरे अज्झोमुच्छितो। कं नु खो मुण्डो राजा समणं वा ब्राह्मणं वा पयिरुपासेय्य, यस्स धम्मं सुत्वा सोकसल्लं पजहेय्या" ति!

३. अथ खो पियकस्स कोसारक्खस्स एतदहोसि—"अथं खो आयस्मा नारदो

---

१०. नारदसूत्र : : किसी भी द्वारा पाँच अलभ्य स्थान

१. एक समय आयुष्मान् नारद पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। उस समय राजा मुण्ड की भद्रा नामक रानी का देहावसान हो गया जो कि इस राजा की अतिशय प्रिय एवं स्नेहभाजन थी। वह अपनी प्रिय भद्रादेवी के देहावसान से इतना विचलित हो गया कि उसके बाद न स्नान करता था, न शरीर पर गन्धविलेपन या भोजन करता था, न अन्य कोई कार्य करता था। वह राजा रातदिन केवल भद्रा देवी के शरीर पर मूर्च्छित होकर पड़ा रहता था। तब राजा मुण्ड ने अपने प्रियक नामक कोशरक्षक को यह आदेश दिया—"सौम्य प्रियक! भद्रा देवी के इस शरीर को तैल से भरी हुई किसी लौहनिर्मित द्रोणी (नौका के सदृश कड़ाही) में रखकर किसी अन्य रिक्त द्रोणी से ढक दिया जाय, जिससे हम भद्रा देवी का यह शरीर चिरकाल तक देखते रह सकें।" कोशरक्षक प्रियक ने "अच्छा, देव!" कहते हुए राजा मुण्डक की आज्ञा मानकर भद्रा देवी के शरीर को एक तैल से भरी द्रोणी में रखकर उसको दूसरी खाली द्रोणी से ढक दिया।

२. तब उस प्रियक कोशरक्षक को यह विचार हुआ—"राजा मुण्ड की प्रिया भद्रा देवी का देहावसान हो गया। वे अपनी इस प्रिया भद्रा देवी के शोक में 'न स्वयं स्नान करते हैं, न शरीर पर गन्धविलेपन ही लगाते हैं, न भोजन करते हैं, न कोई अन्य व्यक्तिगत या शासकीय कार्य ही करते हैं। केवल ये भद्रा देवी के मृत शरीर पर मूर्च्छित हुए पड़े रहते हैं। मैं राजा मुण्ड को किस श्रमण या ब्राह्मण से उपदेश लेने के लिये कहूँ कि उसका उपदेश सुनकर ये शोकरहित होकर अपने दैनिक कार्यों में पूर्ववत् प्रवृत्त हो सकें!"

३. तब उस प्रियक कोशरक्षक को यह ध्यान में आया—"आजकल पाटलिपुत्र के

पाटलिपुत्ते विहरति कुक्कुटारामे। तं खो पनायस्मन्तं नारदं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'पण्डितो वियत्तो मेधावी बहुस्सुतो चित्तकथी कल्याणपटिभानो वुद्धो चेव अरहा च'। यन्नून मुण्डो राजा आयस्मन्तं नारदं पयिरुपासेय्य, अप्पेव नाम मुण्डो राजा आयस्मतो नारदस्स धम्मं सुत्वा सोकसल्लं पजहेय्या'' ति।

४. अथ खो पियको कोसारक्खो येन मुण्डो राजा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मुण्डं राजानं एतदवोच—''अयं खो, देव, आयस्मा नारदो पाटलिपुत्ते विहरति कुक्कुटारामे। तं खो पनायस्मन्तं नारदं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो—'पण्डितो वियत्तो मेधावी बहुस्सुतो चित्तकथी कल्याणपटिभानो वुद्धो चेव अरहा च'। यदि पन देवो [B.52] आयस्मन्तं नारदं पयिरुपासेय्य, अप्पेव नाम देवो आयस्मतो नारदस्स धम्मं सुत्वा सोकसल्लं पजहेय्या'' ति।

''तेन हि, सम्म पियकं आयस्मन्तं नारदं पटिवेदेहि। कथं हि नाम मादिसो [R.59] समणं वा ब्राह्मणं वा विजिते वसन्तं पुब्बे अप्पटिसंविदितो उपसङ्कमितब्बं मञ्ञेय्या'' ति! ''एवं, देवा'' ति खो पियको कोसारक्खो मुण्डस्स रञ्ञो पटिस्सुत्वा येनायस्मा नारदो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नारदं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो पियको कोसारक्खो आयस्मन्तं नारदं एतदवोच—

५. ''इमस्स, भन्ते, मुण्डस्स रञ्ञो भद्दा देवी कालङ्कता पिया मनापा। सो भद्दाय देविया कालङ्कताय पियाय मनापाय नेव न्हायति न विलिम्पति न भत्तं भुञ्जति न कम्मन्तं पयोजेति—रत्तिन्दिवं भद्दाय देविया सरीरे अज्झोमुच्छितो। साधु, भन्ते, आयस्मा नारदो

कुक्कुटाराम में आयुष्मान् नारद साधना कर रहे हैं। उनके विषय में हम ने प्रामाणिक सत्पुरुषों से ऐसा यशोगान (कीर्ति शब्द) सुना है—''वे पण्डित हैं, उपदेशकुशल (व्यक्त=चतुर) हैं, मेधावी (प्रतिभासम्पन्न), बहुश्रुत, अनेक प्रकार से कथा करने में कुशल, कल्याणमय ज्ञान देने वाले, वृद्ध एवं अर्हत् (ज्ञानी) हैं। क्या ही अच्छा हो कि राजा मुण्ड उपदेश ग्रहणहेतु उनके पास जायँ। हो सकता है, राजा मुण्ड का यह शोकशल्य आयुष्मान् नारद से धर्मश्रवण कर, उनके हृदय से निकल जाय।''

४. यह निश्चय कर वह प्रियक कोशरक्षक राजा मुण्ड के पास गया तथा उनसे यह बोला—''देव! पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में आयुष्मान् नारद ठहरे हुए हैं। जिनके विषय यह कीर्तिशब्द ...पूर्ववत्... धर्मश्रवण करने से आपका यह शोकशल्य आपके हृदय से निकल जाय!''

५. ''तो, सौम्य प्रियक! आयुष्मान् नारद को मेरे आने की पहले सूचना दे दो। यह कैसे सम्भव है कि मेरे राज्य में रहनेवाले किसी प्रतिष्ठित श्रमण या ब्राह्मण के आवास पर विना सूचना दिये चला जाऊँ!'' ''अच्छा, देव'' कहकर प्रियक कोशरक्षक ने राजा की आज्ञा मान ली, और वह आयुष्मान् नारद के आश्रम पर पहुँचा। पहुँचकर आयुष्मान् नारद को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उसने आयुष्मान् नारद से यह निवेदन किया—''भन्ते! हमारे राजा मुण्ड की प्रिया भद्रा देवी का देहावसान हो गया है। अपनी उस प्रिया देवी के शोक में विह्वल होकर राजा मुण्ड अब

मुण्डस्स रञ्ञो तथा धम्मं देसेतु यथा मुण्डो राजा आयस्मतो नारदस्स धम्मं सुत्वा सोकसल्लं पजहेय्या'' ति।

[N.324] ''यस्सदानि, पियक, मुण्डो राजा कालं मञ्ञती'' ति।

६. अथ खो पियको कोसारक्खो उट्ठायासना आयस्मन्तं नारदं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा येन मुण्डो राजा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मुण्डं राजानं एतदवोच— ''कतावकासो खो, देव, आयस्मता नारदेन। यस्सदानि देवो कालं मञ्ञती'' ति।

''तेन हि, सम्म पियक, भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेही'' ति।

''एवं, देवा'' ति खो पियको कोसारक्खो मुण्डस्स रञ्ञो पटिस्सुत्वा भद्रानि भद्रानि यानानि योजापेत्वा मुण्डं राजानं एतदवोच—''युत्तानि खो ते, देव, भद्रानि भद्रानि यानानि। यस्सदानि देवो कालं मञ्ञती'' ति।

७. अथ खो मुण्डो राजा भद्रं यानं अभिरुहित्वा भद्रेहि भद्रेहि यानेहि येन कुक्कुटारामो तेन पायासि महच्चा राजानुभावेन आयस्मन्तं नारदं दस्सनाय। यावतिका यानस्स भूमि यानेन गन्त्वा, याना पच्चोरोहित्वा पत्तिको व आरामं पाविसि। अथ खो [B.53] मुण्डो राजा येन आयस्मा नारदो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं नारदं [R.60] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो मुण्डं राजानं आयस्मा नारदो एतदवोच—

८. ''पञ्चिमानि, महाराज, अलब्भनीयानि ठानानि समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं। कतमानि पञ्च? 'जराधम्मं मा जीरी' ति

न स्नान करते हैं ...पूर्ववत्... आप उनको ऐसा धर्मोपदेश करें कि उनका यह शोकशल्य उनके हृदय से निकल सकें।''

''प्रियक! राजा मुण्ड जैसा समयोचित समझें।''

६. तब वह प्रियक कोशरक्षक आसन से उठकर आयुष्मान् नारद को प्रणाम प्रदक्षिणा कर, पुनः राजा मुण्ड के पास आया तथा उसको यह सूचित किया—''देव! आयुष्मान् नारद ने आपको अपने पास आने के लिये स्वीकृति दे दी है, अब आप जैसा उचित समझें।''

''तो, सौम्य प्रियक! (वहाँ चलने के लिये) अच्छे अच्छे रथयान सन्नद्ध कराओ।''

''ठीक है, देव!'' कहकर प्रियक कोशरक्षक ने अच्छे अच्छे यान सन्नद्ध कराकर राजा को सूचित किया—''देव! यान सन्नद्ध हो गये हैं, अब आप जैसा उचित समझें।''

७. तब राजा मुण्ड उन अच्छे यानों पर (सपरिवार) आरूढ़ होकर, राजकीय शोभा के साथ, कुक्कुटाराम में आयुष्मान् नारद के दर्शन हेतु चल दिया। वह यान से जाने योग्य भूमि तक यान से जाकर तथा अवशिष्ट मार्ग को पैदल ही पार कर कुक्कुटाराम में प्रविष्ट हुआ। तथा क्रमशः आयुष्मान् नारद के सम्मुख पहुँचकर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा मुण्ड को आयुष्मान् नारद ने यह उपदेश किया—

८. ''महाराज! ये पाँच स्थान (बातें) किसी भी श्रमण या ब्राह्मण द्वारा, या किसी देव या

अलब्भनीयं ठानं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं। 'ब्याधिधम्मं मा ब्याधीयी' ति ... 'मरणधम्मं मा मीयी' ति ... 'खयधम्मं मा खीयी' ति ... 'नस्सनधम्मं मा नस्सी' ति अलब्भनीयं ठानं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं।

९. "अस्सुतवतो, महाराज, पुथुज्जनस्स जराधम्मं जीरति। सो जराधम्मे जिण्णे न इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो मय्हेवेकस्स जराधम्मं जीरति, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं जराधम्मं जीरति। अहं चेव खो पन जराधम्मे जिण्णे सोचेय्यं किलमेय्यं परिदेवेय्यं, उरत्ताळिं कन्देय्यं, सम्मोहं आपज्जेय्यं, भत्तं [N.325] पि मे नच्छादेय्य, काये पि दुब्बण्णियं ओक्कमेय्य, कम्मन्ता पि नप्पवत्तेय्युं, अमित्ता पि अत्तमना अस्सु, मित्ता पि दुम्मना अस्सू' ति। सो जराधम्मे जिण्णे सोचति किलमति परिदेवेति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, महाराज—'अस्सुतवा पुथुज्जनो विद्धो सविसेन सोकसल्लेन अत्तानंयेव परितापेति'।

१०. "पुन च परं, महाराज, अस्सुतवतो पुथुज्जनस्स ब्याधिधम्मं ब्याधीयति ...पे०... मरणधम्मं मीयति... खयधम्मं खीयति... नस्सनधम्मं नस्सति। सो नस्सनधम्मे नट्ठे न इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो मय्हेवेकस्स नस्सनधम्मं नस्सति, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं नस्सनधम्मं नस्सति। अहं चेव खो पन नस्सनधम्मे नट्ठे सोचेय्यं किलमेय्यं परिदेवेय्यं, उरत्ताळिं कन्देय्यं, सम्मोहं आपज्जेय्यं, भत्तं पि मे नच्छादेय्य, काये पि दुब्बण्णियं ओक्कमेय्य, कम्मन्ता पि नप्पवत्तेय्युं, अमित्ता पि [R.61] अत्तमना अस्सु, मित्ता पि दुम्मना अस्सू' ति। सो नस्सनधम्मे नट्ठे सोचति किलमति परिदेवति, उरत्ताळिं कन्दति, सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, महाराज—'अस्सुतवा पुथुज्जनो विद्धो सविसेन सोकससल्लेन अत्तानंयेव परितापेति'।

११. "सुतवतो च खो, महाराज, अरियसावकस्स जराधम्मं जीरति। सो जराधम्मे जिण्णे इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो मय्हेवेकस्स जराधम्मं जीरति, अथ खो [B.54] यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं जराधम्मं जीरति। अहं चेव खो पन जराधम्मे जिण्णे सोचेय्यं किलमेय्यं परि[दे]वेय्यं, उरत्ताळिं कन्देय्यं, सम्मोहं आपज्जेय्यं, भत्तं पि मे नच्छादेय्य, काये पि दुब्बण्णियं ओक्कमेय्य, कम्मन्ता पि नप्पवत्तेय्युं, अमित्ता पि अत्तमना अस्सु, मित्ता पि दुम्मना अस्सू' ति। सो जराधम्मे जिण्णे न सोचति न किलमति न परिदेवति, न उरत्ताळिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, महाराज—'सुतवा

मार द्वारा या ब्रह्मा या किसी अन्य के द्वारा सर्वथा अलभ्य (न प्राप्त करने योग्य) हैं। कौन से पाँच ? ...पूर्ववत्[1]...। मैं भी इस विषय में क्या कर सकता हूँ।" *(पूर्वसूत्र के समान विस्तार कर लें)*

---

१. द्र०—पीछे अनुपद में वर्णित **स्थानसूत्र**। —सं०

अरियसावको अब्बुहि सविसं सोकसल्लं, येन विद्धो अस्सुतवा पुथुज्जनो अत्तानंयेव परितापेति। असोको विसल्लो अरियसावको अत्तानंयेव परिनिब्बापेति'।

[N.326]१२. ''पुन च परं, महाराज, सुतवतो अरियसावकस्स ब्याधिधम्मं ब्याधीयति ...पे०... मरणधम्मं मीयति ... खयधम्मं खीयति ... नस्सनधम्मं नस्सति। सो नस्सनधम्मे नट्ठे इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो मय्हेवेकस्स नस्सनधम्मं नस्सति, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं नस्सनधम्मं नस्सति। अहं चेव खो पन नस्सनधम्मे नट्ठे सोचेय्यं किलमेय्यं परिदेवेय्यं, उरत्ताळिं कन्देय्यं, सम्मोहं आपज्जेय्यं, भत्तं पि मे नच्छादेय्य, काये पि दुब्बण्णियं ओक्कमेय्य, कम्मन्ता पि नप्पवत्तेय्युं, अमित्ता पि अत्तमना अस्सु, मित्ता पि दुम्मना अस्सू' ति। सो नस्सनधम्मे नट्ठे न सोचति न किलमति न परिदेवति, न उरत्ताळिं कन्दति, न सम्मोहं आपज्जति। अयं वुच्चति, महाराज—'सुतवा अरियसावको अब्बुहि सविसं सोकसल्लं, येन विद्धो अस्सुतवा पुथुज्जनो अत्तानंयेव परितापेति। असोको विसल्लो अरियसावको अत्तानंयेव परिनिब्बापेति'।

[R.62] १३. ''इमानि खो, महाराज, पञ्च अलब्भनीयानि ठानानि समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं ति।

''न सोचनाय परिदेवनाय, अत्थोध लब्भा अपि अप्पको पि।
सोचन्तमेनं दुखितं विदित्वा, पच्चत्थिका अत्तमना भवन्ति॥

[B.55] ''यतो च खो पण्डितो आपदासु, न वेधती अत्थविनिच्छयञ्ञू।
पच्चत्थिकास्स दुखिता भवन्ति, दिस्वा मुखं अविकारं पुराणं॥

''जप्पेन मन्तेन सुभासितेन, अनुप्पदानेन पवेणिया वा।
यथा यथा यत्थ लभेथ अत्थं, तथा तथा तत्थ परक्कमेय्य॥

[N.327] ''सचे पजानेय्य अलब्भनेय्यो, मया व अञ्ञेन वा एस अत्थो।
असोचमानो अधिवासयेय्य, कम्मं दळ्हं किन्ति करोमि दानी'' ति॥

१४. एवं वुत्ते मुण्डो राजा आयस्मन्तं नारदं एतदवोच—''को नामो अयं, भन्ते, धम्मपरियायो'' ति?

''सोकसल्लहरणो नाम अयं, महाराज, धम्मपरियायो'' ति।

''तग्घ, भन्ते, सोकसल्लहरणो! इमं हि मे, भन्ते, धम्मपरियायं सुत्वा सोकसल्लं पहीनं'' ति।

---

१४. आयुष्मान् नारद द्वारा यह उपदेश किये जाने पर राजा मुण्ड ने उनसे पूछा—''भन्ते! इस धर्मपर्याय का क्या नाम है?''

''महाराज! यह धर्मपर्याय (धर्म व्याख्यान) **शोकशल्यहरण** नाम से जाना जाता है।''

''भन्ते! यह धर्मपर्याय अवश्य शोकशल्यहरण है; क्योंकि इस धर्मपर्याय को सुनकर मेरा भद्रादेवीविषयक शोक शल्य विनष्ट हो चुका है''।

१५. अथ खो मुण्डो राजा पियकं कोसारक्खं आमन्तेसि—"तेन हि, सम्म पियक, भद्दाय देविया सरीरं झापेथ; थूपं चस्सा करोथ। अज्जतग्गे दानि मयं न्हायिस्साम चेव विलिम्पिस्साम भत्तं च भुञ्जिस्साम कम्मन्ते च पयोजेस्सामा" ति॥ ●

मुण्डराजवग्गो पञ्चमो॥ [R.63]

तस्सुद्दानं

आदियो सप्पुरिसो इट्ठा, मनापदायीभिसन्दं।
सम्पदा च धनं ठानं, कोसलो नारदेन चा ति॥ ●

६. नीवरणवग्गो

दुतियो पण्णासको

१. आवरणसुत्तं : १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति [B.56] जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—'भिक्खवो" ति। "भदन्ते" ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

---

१५. तदनन्तर राजा मुण्ड ने अपने कोशरक्षक प्रियक को बुलाकर आदेश दिया—"सौम्य प्रियक! अब इस भद्रा देवी के शरीर को जला दो, तथा इस पर (इसकी स्मृति में) एक स्तूप बनवा दो। आज से अब हम स्नानादि करेंगे, शरीर पर गन्धविलेपन आदि भी लगायेंगे, भोजन भी करेंगे तथा अपने अन्य वैयक्तिक एवं प्रशासनिक कार्य भी यथापूर्व किया करेंगे॥" ●

मुण्डराजवर्ग पञ्चम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आद्यसूत्र, २. सत्पुरुषसूत्र, ३. इष्टसूत्र, ४. मनापदायिसूत्र, ५. पुण्याभिष्यन्दसूत्र, ६. सम्पदासूत्र, ७. धनसूत्र, ८. स्थानसूत्र, ९. कोसलसूत्र, एवं १०. नारदसूत्र॥ ●

प्रथम पञ्चाशत्क समाप्त॥

६. नीवरणवर्ग

द्वितीय पञ्चाशत्क

१. आवरणसूत्र : : चित्त के पाँच आवरण

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को "भिक्षुओ" कहकर सम्बोधन किया। भिक्षुओं ने भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् ने उनको यह उपदेश किया—

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आवरणा नीवरणा चेतसो अज्झारुहा पञ्ञाय दुब्बली- [N.328] करणा। कतमे पञ्च? **कामच्छन्दो**, भिक्खवे, आवरणो नीवरणो चेतसो अज्झारुहो दुब्बलीकरणो। **ब्यापादो**, भिक्खवे, आवरणो नीवरणो चेतसो अज्झारुहो पञ्ञाय दुब्बलीकरणो। **थीनमिद्धं**, भिक्खवे, आवरणं नीवरणं चेतसो अज्झारुहं पञ्ञाय दुब्बलीकरणं। **उद्धच्चकुक्कुच्चं**, भिक्खवे, आवरणं नीवरणं चेतसो अज्झारुहं पञ्ञाय दुब्बलीकरणं। **विचिकिच्छा**, भिक्खवे, आवरणा नीवरणा चेतसो अज्झारुहा पञ्ञाय दुब्बलीकरणा। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आवरणा नीवरणा चेतसो अज्झारुहा पञ्ञाय दुब्बलीकरणा।

३. ''सो वत, भिक्खवे, भिक्खु इमे पञ्च आवरणे नीवरणे चेतसो अज्झारुहे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे अप्पहाय, अबलाय पञ्ञाय दुब्बलाय अत्तत्थं वा ञस्सति परत्थं [R.64] वा ञस्सति उभयत्थं वा ञस्सति उत्तरि वा मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सन-विसेसं सच्छिकरिस्सती ति नेतं ठानं विहरति। सेय्यथापि, भिक्खवे, नदी पब्बतेय्या दूरङ्गमा सीघसोता हारहारिनी। तस्सा पुरिसो उभतो नङ्गलमुखानि विवरेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, मज्झे नदिया सोतो विक्खित्तो विसटो ब्यादिण्णो नेव दूरङ्गमो अस्स न सीघसोतो न हारहारी। एवमेव खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु इमे पञ्च आवरणे नीवरणे चेतसो [B.57] अज्झारुहे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे अप्पहाय, अबलाय पञ्ञाय दुब्बलाय अत्तत्थं वा ञस्सति परत्थं वा ञस्सति उभयत्थं वा ञस्सति उत्तरि वा मनुस्सधम्मा अलमरियञाण-दस्सनविसेसं सच्छिकरिस्सती ति नेतं ठानं विज्जति।

---

२. ''भिक्षुओ! ये पाँच नीवरण, आवरण (ढक्कन), चित्त पर आरोहण एवं प्रज्ञा को दुर्बल करने वाले होते हैं। कौन से पाँच? (१) भिक्षुओ! कामच्छन्द (कामुकता) चित्त का नीवरण, आवरण, चित्त पर आरोहण एवं प्रज्ञा को दुर्बल करनेवाला होता है; (२) व्यापाद (द्वेष) नीवरण आवरण ...पूर्ववत्...; (३) स्त्यानमृद्ध (जड़ता=आलस्य) नीवरण, आवरण...; (४) औद्धत्य कौकृत्य, भिक्षुओ! नीवरण, आवरण...; (५) विचिकित्सा (सन्देह) भिक्षुओ! नीवरण, आवरण, चित्त पर आरोहण एवं प्रज्ञा को दुर्बल करनेवाला है। भिक्षुओ! ये पाँच नीवरण... प्रज्ञा को दुर्बल करनेवाले हैं।

३. फिर, भिक्षुओ! वह साधक भिक्षु इन पाँच नीवरणों आवरणों... को छोड़े विना दुर्बल एवं निर्बल प्रज्ञा से किसी आत्महित, परहित या उभयहित का चिन्तन कर सकेगा—यह सम्भव नहीं है। जैसे भिक्षुओ! पर्वत से निकलकर दूर तक जानेवाली तीव्र प्रवाह वाली कलकल करती तरङ्गवती कोई नदी हो, उसके दोनों ओर के मुख कोई पुरुष खोल दे, तब उस नदी का वह विक्षिप्त स्रोत (प्रवाह) रुकता हुआ न दूर तक जा सकेगा, न उसमें तीव्र प्रवाह रहेगा, न उसमें कलकल ध्वनि ही होगी; वैसी ही, भिक्षुओ! वह भिक्षु इन पाँच आवरणों को दूर हटाये विना दुर्बल प्रज्ञा से स्वहित, परहित या उभयहित का चिन्तन कर सकेगा या मानवधर्म से ऊपर आर्य ज्ञानदर्शनविशेष का साक्षात्कार कर सकेगा—यह सम्भव नहीं है।

४. "सो वत, भिक्खवे, भिक्खु इमे पञ्च आवरणे नीवरणे चेतसो अज्झारुहे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे पहाय, बलवतिया पञ्ञाय अत्तत्थं वा ञस्सति परत्थं वा ञस्सति उभयत्थं वा ञस्सति उत्तरि वा मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरिस्सती ति ठानमेतं विज्जति। सेय्यथापि, भिक्खवे, नदी पब्बतेय्या दूरङ्गमा सीघसोता हारहारिनी। तस्सा पुरिसो उभतो नङ्गलमुखानि पिदहेय्य। एवं हि सो, भिक्खवे, मज्झे नदिया सोतो अविक्खित्तो अविसटो अब्यादिण्णो दूरङ्गमो चेव अस्स सीघसोतो च हारहारी च। एवमेव खो, भिक्खवे, सो वत भिक्खु इमे पञ्च आवरणे नीवरणे चेतसो अज्झारुहे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे पहाय, बलवतिया पञ्ञाय अत्तत्थं वा ञस्सति परत्थं वा ञस्सति उभयत्थं वा ञस्सति उत्तरि वा मनुस्सधम्मा अलमरियञाणदस्सनविसेसं सच्छिकरिस्सती [N.329] ति ठानमेतं विज्जती" ति॥ ●

२. अकुसलरासिसुत्तं : १. "अकुसलरासी ति, भिक्खवे, वदमानो पञ्च [R.65] नीवरणे सम्मा वदमानो वदेय्य। केवलो हायं, भिक्खवे, अकुसलरासि यदिदं पञ्च नीवरणा। कतमे पञ्च? कामच्छन्दनीवरणं, ब्यापादनीवरणं, थीनमिद्धनीवरणं, उद्धच्चकुक्कुच्च-नीवरणं, विचिकिच्छानीवरणं। अकुसलरासी ति, भिक्खवे, वदमानो इमे पञ्च नीवरणे सम्मा वदमानो वदेय्य। केवलो हायं, भिक्खवे, अकुसलरासि यदिदं पञ्च नीवरणा" ति॥

३. पधानियङ्गसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, पधानियङ्गानि। कतमानि पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं—'इति पि सो भगवा

---

४. "परन्तु, भिक्षुओ! वह भिक्षु प्रज्ञा के दुर्बलकारक इन उपर्युक्त पाँच नीवरणों को दूर कर, बलवती प्रज्ञा से आत्महित, परहित एवं उभयहित तथा मनुष्यधर्म से ऊपर आर्यज्ञानदर्शन विशेष का साक्षात्कार कर सकेगा—यह सम्भव है। भिक्षुओ! जैसे पर्वत से निकलकर दूर तक जानेवाली ...नदी के दोनों मुख बन्द कर दे, तब उस नदी का वह अविक्षिप्त प्रवाह न रुकता हुआ दूर तक जा सकेगा...; वैसे ही, भिक्षुओ! वह भिक्षु भी प्रज्ञा के दुर्बलकारक आवरणों को हटाकर बलवती प्रज्ञा से आत्महित... पूर्ववत्... आर्य ज्ञानदर्शनविशेष का साक्षात्कार कर सकेगा—यह सम्भव है॥" ●

२. अकुशलराशिसूत्र : : पाँच नीवरण ही अकुशलराशि हैं

१. "भिक्षुओ! यदि कोई 'अकुशल राशि' का उचित व्याख्यान करना चाहता है तो वह उचित कहता हुआ पाँच नीवरणों को ही अकुशलराशि बतायगा। कौन से पाँच? (१) कामच्छन्द नीवरण, (२) व्यापाद नीवरण, (३) स्त्यानमृद्ध नीवरण, (४) औद्धत्य कौकृत्य नीवरण एवं (५) विचिकित्सा नीवरण। इस प्रकार, भिक्षुओ! 'अकुशलराशि' शब्द का उचित व्याख्यान करना चाहनेवाला इन उपर्युक्त पाँच नीवरणों को ही बतायगा; क्योंकि भिक्षुओ! केवल इन पाँच नीवरणों को ही 'अकुशलराशि' कहा जा सकता है॥ ●

३. प्रधानीय अङ्ग सूत्र : : पाँच प्रधानीय अङ्ग

१. "भिक्षुओ! योगाभ्यास के लिये प्रयास करने योग्य ये पाँच अङ्ग हैं। कौन पाँच? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु श्रद्धालु होता है, एवं तथागत के ज्ञान में इस प्रकार श्रद्धा रखता

अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था [B.58] देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को; समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय; असठो होति अमायावी; यथाभूतं अत्तानं आविकत्ता सत्थरि वा विञ्ञूसु वा सब्रह्मचारीसु; आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु; पञ्ञवा होति, उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च पधानियङ्गानी'' ति॥

[R.66] ४. **समयसुत्तं** : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, असमया पधानाय। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु जिण्णो होति जरायाभिभूतो। अयं, भिक्खवे, **पठमो असमयो** पधानाय।

[N.330] २. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु ब्याधितो होति ब्याधिनाभिभूतो। अयं, भिक्खवे, **दुतियो असमयो** पधानाय।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, दुब्भिक्खं होति दुस्सस्सं दुल्लभपिण्डं, न सुकरं उञ्छेन पग्गहेन यापेतुं। अयं, भिक्खवे, **ततियो असमयो** पधानाय।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, भयं होति अटविसङ्कोपो, चक्कसमारुळ्हा जानपदा परियायन्ति। अयं, भिक्खवे, **चतुत्थो असमयो** पधानाय।

है—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध हैं ...पूर्ववत्... देव मनुष्यों के शास्ता बुद्ध भगवान् हैं।' (२) रोग एवं स्वास्थ्य की दुर्बलता अल्प ही भोगता है, तथा ऐसी समविपाक वाली पाचकाग्नि (ग्रहणी) से युक्त होता है जो न अधिक शीतल हो, न अधिक उष्ण हो, योगाभ्यास के साधन में मध्यम स्थिति वाली हो। (३) जो शठता (धूर्तता) या माया (चालाकी) न करता है। अपितु गुरु, विद्वान् तथा साथियों के सम्मुख अपने आपको वैसा ही दिखाता है जैसा वह है। (४) अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये प्रयासरत रहता है, उत्साही, सतत पराक्रमसम्पन्न, कन्धे न गिराने वाला (हतोत्साह न होने वाला) होता है। (५) प्रज्ञावान् होता है, धर्मों के उत्पाद एवं विनाश का ज्ञान करानेवाली, दुःखक्षय की ओर ले जानेवाली प्रज्ञा से युक्त होता है। भिक्षुओ! ये पाँच प्रधानीय अङ्ग हैं॥''

४. समयसूत्र : : योगाभ्यास के लिये पाँच अवसर

(क) १. ''भिक्षुओ! योगाभ्यास के लिये ये पाँच उचित अवसर नहीं होते। कौन से पाँच? **जरा** (बुढ़ापा), भिक्षुओ! इस अवस्था में साधक का शरीर जरा से आक्रान्त हो जाता है। भिक्षुओ! योगाभ्यास हेतु यह **प्रथम असमय** है। (१)

२. ''**व्याधि** (रोग), भिक्षुओ! व्याधि से आक्रान्त होने पर यथेष्ट योगाभ्यास पूर्ण नहीं हो पाता। भिक्षुओ! योगाभ्याससहेतु यह **दूसरा असमय** है।

३. ''भिक्षुओ! **दुर्भिक्ष** भी योगाभ्यास के लिये अनवसर है, क्योंकि तब अन्न की कमी से भिक्षा मिलना दुर्लभ हो जाता है। भिक्षुओ!... यह **तीसरा असमय** है।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, सङ्घो भिन्नो होति। सङ्घे खो पन, भिक्खवे, भिन्ने अञ्ञमञ्ञं अक्कोसा च होन्ति, अञ्ञमञ्ञं परिभासा च होन्ति, अञ्ञमञ्ञं परिक्खेपा च होन्ति, अञ्ञमञ्ञं परिच्चजा च होन्ति। तत्थ अप्पसन्ना चेव नप्पसीदन्ति, पसन्नानं च एकच्चानं अञ्ञथत्तं होति। अयं, भिक्खवे, **पञ्चमो असमयो** पधानाय।

इमे खो, भिक्खवे, पञ्च असमया पधानाया ति॥

६. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, समया पधानाय। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु दहरो होति युवा सुसु काळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा। अयं, भिक्खवे, **पठमो समयो** पधानाय।

७. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खवे, अप्पाबाधो होति अप्पातङ्को, समवे- [B.59] पाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय। अयं, भिक्खवे, **दुतियो समयो** पधानाय।

८. ''पुन च परं, भिक्खवे, सुभिक्खं होति सुसस्सं सुलभपिण्डं, सुकरं [R.67] उञ्छेन पग्गहेन यापेतुं। अयं, भिक्खवे, **ततियो समयो** पधानाय।

९. ''पुन च परं, भिक्खवे, मनुस्सा समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरन्ति। अयं, भिक्खवे, **चतुत्थो समयो** पधानाय।

---

४. ''भिक्षुओ! नगरों में किसी भय से त्रस्त **जनता द्वारा अरण्य** (वन) **का वास** किया जाना भी योगाभ्यास हेतु अनवसर है। वहाँ किसी भय के कारण अनेक यानों में बैठकर जनता आती जाती रहती है, इससे योगाभ्यास में विघ्न की आशङ्का रहती है। भिक्षुओ! योगाभ्यासहेतु यह **चतुर्थ असमय** है।

५. ''भिक्षुओ! जब **सङ्घ में मतभेद** (फूट) हो। भिक्षुओ! सङ्घ में मतभेद होने पर, भिक्षु परस्पर अपमान (आक्रोश) युक्त बातें करते रहते हैं, एक दूसरे को अपशब्द बोलते रहते हैं, एक दूसरे पर आरोप लगाते हैं, एक दूसरे से दूर रहने का प्रयास करते हैं। उस समय अश्रद्धालु तो श्रद्धा करते ही नहीं, अपितु श्रद्धालुओं की श्रद्धा में भी कमी आ जाती है। भिक्षुओ! योगाभ्यासहेतु यह **पञ्चम असमय** है।

(ख) ६. ''(परन्तु), भिक्षुओ! योगाभ्यास के ये पाँच उचित समय (अवसर) हैं। कौन से पाँच? जब भिक्षुओ! साधक भिक्षु युवावस्था से सम्पन्न हो, पहली आयु को पार कर रहा हो। यह योगाभ्यास का **प्रथम समय** है।

७. ''जब साधक रोगी न हो, किसी रोग से आक्रान्त न हो, सम्पन्न पाचन करनेवाली पाचकाग्नि से युक्त हो, न अधिक शील हो, न अधिक उष्ण हो, मध्यम स्थिति हो, जिससे योगाभ्यास में सहायता मिल सके। यह योगाभ्यास का **द्वितीय समय** है।

८. ''भिक्षुओ! सुभिक्ष (सुकाल) योगाभ्यास के लिये उचित अवसर है; क्योंकि तब अन्न

१०. ''पुन च परं, भिक्खवे, सङ्घो समग्गो सम्मोदमानो अविवदमानो एकुद्दोसो फासु विहरति। सङ्घे खो पन, भिक्खवे, समग्गे न चेव अञ्ञमञ्ञं अक्कोसा होन्ति, न च [N.331] अञ्ञमञ्ञं परिभासा होन्ति, न च अञ्ञमञ्ञं परिक्खेपा होन्ति, न च अञ्ञमञ्ञं परिच्चजा होन्ति। तत्थ अप्पसन्ना चेव पसीदन्ति, पसन्नानं च भिय्योभावो होति। अयं, भिक्खवे, **पञ्चमो समयो** पधानाय। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च समया पधानाया'' ति॥ ●

५. मातापुत्तसुत्तं : १. एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तेन खो पन समयेन सावत्थियं उभो मातापुत्ता वस्सावासं उपगमिंसु—भिक्खु च भिक्खुनी च। ते अञ्ञमञ्ञस्स अभिण्हं दस्सनकामा अहेसुं। माता पि पुत्तस्स अभिण्हं दस्सनकामा अहोसि; पुत्तो पि मातरं अभिण्हं दस्सनकामो अहोसि। तेसं अभिण्हं दस्सना संसग्गो अहोसि। संसग्गे सति विस्सासो अहोसि। विस्सासे सति ओतारो अहोसि। ते ओतिण्णचित्ता सिक्खं अपच्चक्खाय दुब्बल्यं अनाविकत्वा मेथुनं धम्मं पटिसेविंसु।

२. ''अथ खो सम्बहुला भिक्खू येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदिंसु। एकमन्तं निसिन्ना खो ते भिक्खू भगवन्तं एतदवोच—

की बहुलता से घर घर भिक्षा मिलना सुलभ हो जाता है। अत: भिक्षुओ! यह योगाभ्यास का **तृतीय समय** है।

९. ''भिक्षुओ! जब जनता ग्रामों एवं नगरों में परस्पर एकतापूर्वक मिल जुलकर रहे। एक दूसरे को स्नेहभरी दृष्टि से देखे। भिक्षुओ! योगाभ्यास के लिये यह **चतुर्थ समय** उचित है।

१०. ''भिक्षुओ! जब सङ्घ में एकता हो। भिक्षु मिल जुलकर प्रसन्नतापूर्वक रहते हुए साधनारत हों। भिक्षु परस्पर अपमानयुक्त बातें न करें, अपशब्द न बोले, परस्पर आरोप न लगायें, एक दूसरे को स्नेहभरी दृष्टि से देखें। एक दूसरे से दूर रहने का प्रयास न करें। श्रद्धालुओं की बहुलता हो। भिक्षुओ! योगाभ्यास के लिये यह **पञ्चम अवसर** उचित है।

''भिक्षुओ! ये पाँच अवसर योगाभ्यास हेतु उचित कहलाते हैं॥'' ●

५. मातापुत्रसूत्र : : स्त्रियों में आसक्ति साधना में विघ्नकारक

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवन विहार में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय श्रावस्ती में कोई दो माता एवं पुत्र वर्षावास के समय भिक्षु भिक्षुणी बन गये। परन्तु वे दोनों परस्पर एक दूसरे को देखे विना नहीं रह पाते थे। अत: माता पुत्र से मिलती रहती थी, पुत्र माता से मिलता रहता था। उन दोनों में, यों परस्पर मिलते रहने से, परस्पर आसक्ति बढ़ती गयी। आसक्ति बढ़ते जाने से परस्पर विश्वास हो गया। परस्पर विश्वास से मैथुनहेतु चित्तविकार हो गया। यों वे दोनों विकृतचित्त होकर धर्मशिक्षा की उपेक्षा कर, अपनी दुर्बलता को न छिपाकर मैथुनधर्म का सेवन करने लगे।

२. तब बहुत से भिक्षु भगवान् के सम्मुख आये, प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर

''इध, भन्ते, सावत्थियं उभो मातापुत्ता वस्सावासं उपगमिंसु—भिक्खु च [B.60,R.68] भिक्खुनी च ... मेथुनं धम्मं पटिसेविंसू'' ति।

३. ''किं नु सो, भिक्खवे, मोघपुरिसो मञ्ञति—'न माता पुत्ते सारज्जति, पुत्तो वा पन मातरी' ति? नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकरूपं पि समनुपस्सामि एवं रजनीयं एवं कमनीयं एवं मदनीयं एवं बन्धनीयं एवं मुच्छनीयं एवं अन्तरायकरं अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिरूपं। इत्थिरूपे, भिक्खवे, सत्ता रत्ता गिद्धा गथिता मुच्छिता अज्झोपन्ना। ते दीघरत्तं सोचन्ति इत्थिरूपवसानुगा।

४. ''नाहं, भिक्खवे, अञ्ञं एकसद्दं पि ... एकगन्धं पि ... एकरसं पि ... [N.332] एकफोट्ठब्बं पि समनुपस्सामि एवं रजनीयं एवं कमनीयं एवं मदनीयं एवं बन्धनीयं एवं मुच्छनीयं एवं अन्तरायकरं अनुत्तरस्स योगक्खेमस्स अधिगमाय यथयिदं, भिक्खवे, इत्थिफोट्ठब्बं। इत्थिफोट्ठब्बे, भिक्खवे, सत्ता रत्ता गिद्धा गथिता मुच्छिता अज्झोपन्ना। ते दीघरत्तं सोचन्ति इत्थिफोट्ठब्बवसानुगा।

५. ''इत्थी, भिक्खवे, गच्छन्ती पि पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति; ठिता पि ...पे०... निसिन्ना पि... सयाना पि... हसन्ती पि... भणन्ती पि... गायन्ती पि... रोदन्ती पि ... उग्घातिता पि... मता पि पुरिसस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति। यं हि तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य—'समन्तपासो मारस्सा' ति मातुगामंयेव सम्मा वदमानो वदेय्य—'समन्तपासो मारस्सा' ति।

बैठे उनने भगवान् से यों निवेदन किया—''भन्ते! इस श्रावस्ती में दो माता एवं पुत्र भिक्षु भिक्षुणी बने थे। ...पूर्ववत्... मैथुन धर्म का सेवन करने लगे''।

३. ''भिक्षुओ! कौन मूर्ख ऐसा मानता है कि माता पुत्र में आसक्त नहीं होती, या पुत्र माता में आसक्त नहीं होता। भिक्षुओ! मैं इस लोक में **स्त्रीरूप** के अतिरिक्त किसी अन्य वस्तु को नहीं जानता जो इस प्रकार का राग, काम, मद, बन्धन, मूर्च्छा (मोह) तथा अद्वितीय योगक्षेम की प्राप्ति में विघ्न उत्पन्न करता हो। उस स्त्रीरूप में आसक्त होकर प्राणी आसक्त, रागयुक्त, लोभयुक्त, मोहयुक्त होते रहते हैं।

४. ''भिक्षुओ! मैं कोई अन्य **शब्द** ... अन्य **गन्ध** ... अन्य **रस** ... अन्य **स्प्रष्टव्य** विषय नहीं जानता जो इस स्त्री स्प्रष्टव्य के समान राग, काय, मद, बन्धन, मूर्च्छा (मोह) तथा अद्वितीय योगक्षेम की प्राप्ति में विघ्न उत्पन्न करता हो। भिक्षुओ! स्त्री-स्प्रष्टव्य में सभी प्राणी रक्त, आसक्त, लुब्ध, बद्ध, एवं मुग्ध होते रहते हैं। ऐसे प्राणी स्त्रीस्प्रष्टव्य के वश में होकर जीवनपर्यन्त शोक एवं चिन्ता में मग्न रहते हैं।

५. ''भिक्षुओ! स्त्री चलती हुई भी किसी पुरुष के चित्त को वश में कर लेती है, खड़ी हुई भी... बैठी हुई भी... सोती हुई भी... हँसती हुई भी... बोलती हुई भी... गाती हुई भी... रोती हुई भी... रोग से दुर्बल भी... मृत भी किसी पुरुष के चित्त को वश में कर लेती है। यदि वास्तविक मार-बन्धन के विषय में कहा जाय तो एकमात्र स्त्री ही चहुमुखी 'मार-बन्धन' है।

[R.69] "सल्लपे असिहत्थेन, पिसाचेना पि सल्लपे।
आसीविसं पि आसीदे, येन दट्ठो न जीवति॥
"न त्वेव एको एकाय, मातुगामेन सल्लपे।
[B.61] मुट्ठस्सतिं ता बन्धन्ति, पेक्खितेन सितेन च॥
"अथो पि दुन्निवत्थेन, मञ्जुना भणितेन च।
नेसो जनो स्वासीसदो, अपि उग्घातितो मतो॥
"पञ्च कामगुणा एते, इत्थिरूपस्मिं दिस्सरे।
रूपा सद्दा रसा गन्धा, फोट्ठब्बा च मनोरमा॥
"तेसं कामोघवूळ्हानं, कामे अपरिजानतं।
कालं गति भवा भवं, संसारस्मिं पुरक्खता॥
"ये च कामे परिञ्ञाय, चरन्ति अकुतोभया।
ते वे पारङ्गता लोके, ये पत्ता आसवक्खयं" ति॥ ●

६. उपज्झायसुत्तं : १. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन सको उपज्झायो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सकं उपज्झायं एतदवोच—"एतरहि मे, भन्ते मधुरकजातो चेव कायो, दिसा च मे न पक्खायन्ति, धम्मा च मं नप्पटिभन्ति, थीनमिद्धं च मे चित्तं परियादाय [N.333] तिट्ठति, अनभिरतो च ब्रह्मचरियं चरामि, अत्थि च मे धम्मेसु विचिकिच्छा" ति।

"तलवार हाथ में लिये पुरुष से या पिशाच से बात की जा सकती है या विषधर सर्प से, जिसका काटा हुआ जीवित नहीं बचता, भी सामना किया जा सकता है॥

"परन्तु कभी एकाकी होकर किसी अकेली स्त्री से बात नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वे पुरुष की स्मृति (विवेक) नष्ट कर उसको अपने प्रेक्षण एवं मन्द हास्य से वश में कर लेती हैं॥

"अस्त व्यस्त वस्त्र पहनी हुई, मधुरवादिनी, विक्षिप्त या मृत स्त्री का भी विश्वास नहीं करना चाहिये॥

ये पाँचों कामगुण स्त्री-रूप में प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं; जैसे—मनोरम रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श॥

"ऐसे कामौघ में डूबे हुए पुरुषों की, जो कि कामभोगों की वास्तविकता नहीं जानते, मृत्यु, परलोकगमन, जन्ममरणपरम्परा आदि इस स्त्री-संसार पर ही आधृत है॥

"परन्तु जो इन कामगुणों की वास्तविक निस्सारता जानकर संसार में निर्भय होकर विचरण करते हैं, जिनका चित्तविकार क्षीण हो चुका है वे इस लोक के पार जानेवाले होते हैं॥" ●

६. उपाध्यायसूत्र : : साधना में आवश्यक पाँच धर्म

१. तब कोई भिक्षु अपने उपाध्याय के पास गया। वहाँ जाकर वह अपने उपाध्याय से यों बोला—"भन्ते! इस समय मेरा शरीर मीठा मीठा सा हो गया है। दिशाओं को मैं भली भाँति नहीं देख पाता, मेरा धर्मज्ञान भी धुँधला हो गया है। मेरे शरीर को आलस्य निरन्तर घेरे रखता है, मैं इस समय धर्माभ्यास भी उपेक्षापूर्वक ही कर रहा हूँ। मुझे धर्मों के प्रति सन्देह होने लगा है।"

२. अथ खो सो भिक्खु तं सद्धिविहारिकं भिक्खुं आदाय येन भगवा तेनुप-[R.70] सङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—''अयं, भन्ते, भिक्खु एवमाह—'एतरहि मे, भन्ते, मधुरक-जातो चेव कायो, दिसा च मे न पक्खायन्ति, धम्मा च मं नप्पटिभन्ति, थीनमिद्धं च मे चित्तं परियादाय तिट्ठति, अनभिरतो च ब्रह्मचरियं चरामि, अत्थि च मे धम्मेसु विचिकिच्छा''' ति।

३. ''एवं हेतं, भिक्खु, होति इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारस्स, भोजने अमत्तञ्ञुनो, [R.70] जागरियं अननुयुत्तस्स, अविपस्सकस्स कुसलानं धम्मानं, पुब्बरत्तापररत्तं बोधिपक्खियानं धम्मानं भावनानुयोगं अननुयुत्तस्स विहरतो, यं मधुरकजातो चेव कायो होति, दिसा चस्स न पक्खायन्ति, धम्मा च तं नप्पटिभन्ति, थीनमिद्धं चस्स चित्तं परियादाय तिट्ठति, [B.62] अनभिरतो च ब्रह्मचरियं चरति. होति चस्स धम्मेसु विचिकिच्छा। तस्मातिह ते, भिक्खु एवं सिक्खितब्बं—'इन्द्रियेसु गुत्तद्वारो भविस्सामि, भोजने मत्तञ्ञू, जागरियं अनुयुत्तो, विपस्सको कुसलानं धम्मानं, पुब्बरत्तापररत्तं बोधिपक्खियानं धम्मानं भावनानुयोगं अनुयुत्तो विहरिस्सामी' ति। एवं हि ते, भिक्खु, सिक्खितब्बं'' ति।

४. अथ खो सो भिक्खु भगवता इमिना ओवादेन ओवदितो उट्ठायासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा पक्कामि। अथ खो सो भिक्खु एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। ''खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया'' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो पन सो भिक्खु अरहतं अहोसि। (क)

---

२. तब वह (उपाध्याय) भिक्षु अपने इस सहविहारी भिक्षु को भगवान् के पास ले गया, तथा उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उसने भगवान् से यह निवेदन किया—''भन्ते! यह भिक्षु कह रहा है—'इस समय मेरा शरीर ...पूर्ववत्... मुझे धर्मों के प्रति सन्देह होने लगा है'।''

३. ''भिक्षु! जो साधक इन्द्रियों के प्रति संयत नहीं है, जो भोजन की मात्रा नहीं जानता, जागरणपूर्वक साधना नहीं करता, कुशल धर्मों का अन्वीक्षण नहीं करता, जो बोधिपक्षीय धर्मों का सतत साधनाभ्यास नहीं करता, ऐसे साधक भिक्षु का शरीर मीठा मीठा सा हो जाता है, इसको दिशाओं का भी यथार्थ भान नहीं होता, इसका धर्मज्ञान भी धुँधला हो जाता है, इसका शरीर आलस्य से निरन्तर घिरा रहता है, धर्माभ्यास भी उपेक्षापूर्वक ही करता है, धर्मों के प्रति इसको सन्देह भी होता है। अत: ऐसे भिक्षु को यह सीखना चाहिये—'इन्द्रियों के प्रति संयत रहूँगा, भोजन की मात्रा जानूँगा, जागरणपूर्वक साधना करूँगा, कुशल धर्मों का सतत अन्वीक्षण करूँगा, बोधिपक्षीय धर्मों की सतत साधना करूँगा'। भिक्षु! तुमको ऐसा सीखना चाहिये।

४. तब वह भिक्षु भगवान् द्वारा प्रदत्त इस अनुशासन से सचेत होकर आसन से उठकर

५. अथ खो सो भिक्खु अरहत्तं पत्तो येन सको उपज्झायो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा सकं उपज्झायं एतदवोच—"एतरहि, मे, भन्ते न चेव मधुरकजातो कायो, [N.334] दिसा च मे पक्खायन्ति, धम्मा च मं पटिभन्ति, थीनमिद्धं च मे चित्तं न परियादाय तिट्ठति, अभिरतो च ब्रह्मचरियं चरामि, नत्थि च मे धम्मेसु विचिकिच्छा" ति। अथ खो सो भिक्खु तं सद्धिविहारिकं भिक्खुं आदाय येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं [R.71] अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"अयं, भन्ते, भिक्खु एवमाह—'एतरहि मे, भन्ते, न चेव मधुरकजातो कायो, दिसा च मे पक्खायन्ति, धम्मा च मं पटिभन्ति, थीनमिद्धं च मे चित्तं न परियादाय तिट्ठति, अभिरतो च ब्रह्मचरियं चरामि, नत्थि च मे धम्मेसु विचिकिच्छा'" ति।

६. "एवं हेतं, भिक्खु, होति इन्द्रियेसु गुत्तद्वारस्स, भोजने मत्तञ्ञुनो, जागरियं अनुयुत्तस्स, विपस्सकस्स कुसलानं धम्मानं पुब्बरत्तापररत्तं बोधिपक्खियानं धम्मानं भावनानुयोगं अनुयुत्तस्स विहरतो, यं न चेव मधुरकजातो कायो होति, दिसा चस्स [B.63] पक्खायन्ति, धम्मा च तं पटिभन्ति, थीनमिद्धं चस्स चित्तं न परियादाय तिट्ठति, अभिरतो च ब्रह्मचरियं चरति, न चस्स होति धम्मेसु विचिकिच्छा। तस्मातिह वो, भिक्खवे, एवं सिक्खितब्बं—'इन्द्रियेसु गुत्तद्वारा भविस्साम, भोजने मत्तञ्ञुनो, जागरियं अनुयुत्ता, विपस्सका कुसलानं धम्मानं, पुब्बरत्तापररत्तं बोधिपक्खियानं धम्मानं भावनानुयोगं अनुयुत्ता विहरिस्सामा' ति। एवं हि वो, भिक्खवे, सिक्खितब्बं" ति॥ (ख) ●

७. ठानसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, ठानानि अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बानि इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा। कतमानि पञ्च? 'जराधम्मोम्हि, जरं

भगवान् को प्रणाम प्रदक्षिणा कर चला गया। तब वह भिक्षु एकान्त में जाकर सावधानी से उद्योग कर साधना करता हुआ ...पूर्ववत्... वह भिक्षु विशिष्ट अर्हत् गिना जाने लगा। (क)

५. तब वही भिक्षु, अर्हत्व प्राप्त करने के बाद, अपने उपाध्याय के पास आया तथा उनसे यह बोला—"भन्ते! अब मेरा शरीर मीठा मीठा सा नहीं रहता, मुझको दिशाओं का भली भाँति ज्ञान है... पूर्ववत्... धर्मों के प्रति अब मेरी कोई विचिकित्सा नहीं रह गयी है।"

६. 'भिक्षु! इन्द्रियों पर संयम रखने वाले का, भोजन की मात्रा जानने वाले का, बोधिपक्षीय धर्मों का सतत अभ्यास करनेवाले का शरीर मीठा मीठा नहीं रहता ...पूर्ववत्... धर्मों के प्रति कोई विचिकित्सा नहीं रहती। अत: भिक्षुओ! यह सीखना चाहिये—'हम इन्द्रियों के प्रति संयम रखेंगे, भोजन की मात्रा का ज्ञान रखेंगे... बोधिपक्षीय धर्मों का सतत अभ्यास करते हुए साधनारत रहेंगे।' ऐसा तुमको सीखना चाहिये॥" (ख) ●

७. स्थानसूत्र : : पाँच स्थानों का सतत प्रत्यवेक्षण

१. "भिक्षुओ! किसी भी स्त्री या पुरुष द्वारा, गृहस्थ या प्रव्रजित द्वारा इन पाँच स्थानों का निरन्तर प्रत्यवेक्षण करते रहना चाहिये। कौन से पाँच? (१) 'बूढ़ा होना शरीर का स्वभाव है, मैं इस

अनतीतो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा। 'ब्याधिधम्मोम्हि, ब्याधिं अनतीतो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा। 'मरणधम्मोम्हि, मरणं अनतीतो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा। 'सब्बेहि मे पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा [N.335,R.72] पब्बजितेन वा। 'कम्मस्सकोम्हि, कम्मदायादो कम्मयोनि कम्मबन्धु कम्मपटिसरणो। यं कम्मं करिस्सामि—कल्याणं वा पापकं वा, तस्स दायादो भविस्सामी' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा।

२. ''किञ्च, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'जराधम्मोम्हि, जरं अनतीतो' ति अभिण्हं, पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा? अत्थि, भिक्खवे, सत्तानं योब्बने योब्बनमदो, येन मदेन मत्ता कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो यो योब्बने योब्बनमदो सो सब्बसो वा पहीयति तनु वा पन होति। इदं खो, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'जराधम्मोम्हि, जरं अनतीतो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा।

३. ''किञ्च, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'ब्याधिधम्मोम्हि, ब्याधिं अनतीतो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा? अत्थि,

---

बुढ़ापे को अतिक्रान्त नहीं कर सकता...; (२) रोगी होना शरीर का स्वभाव है, अतः रोग को अतिक्रान्त नहीं किया जा सकता...; (३) मरना शरीर का स्वभाव है, अतः मृत्यु को कोई अतिक्रान्त नहीं कर सकता...; (४) सभी इष्ट एवं प्रिय विषय परिवर्तनशील एवं विनाश स्वभाव वाले हैं...; (५) 'मैं अपने कर्मों का स्वामी हूँ, कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ, कर्मों से ही मेरी उत्पत्ति है, कर्म मेरे बन्धुरूप हैं, कर्म ही मेरे शरणस्थल हैं। मैं जो भी कुशल या अकुशल कर्म करूँगा, मैं ही उनका उत्तराधिकारी बनूँगा'—इस प्रकार स्त्री या पुरुष द्वारा, गृहस्थ या प्रव्रजित द्वारा निरन्तर प्रत्यवेक्षण करना चाहिये।

२. ''भिक्षुओ! ऊपर यह बात किस प्रयोजन से कही गयी है कि बूढ़ा होना शरीर का स्वभाव है, इसको अतिक्रान्त नहीं किया जा सकता—इस बात का प्रत्येक स्त्री या पुरुष को, गृहस्थ या प्रव्रजित को निरन्तर प्रत्यवेक्षण करना चाहिये? भिक्षुओ! प्राणियों को अपनी युवावस्था का यौवनमद हुआ करता है। उस मद से उन्मत्त होकर वे काय से वाणी से तथा मन से निरन्तर दुराचार करते रहते हैं। उनको उक्त बात का निरन्तर प्रत्यवेक्षण करते रहने से उनका वह यौवनमद सर्वथा क्षीण हो जाता है, या शनैः शनैः कम (तनु) होता जाता है। इसी प्रयोजन के कारण उपर्युक्त वचन कहा गया है...।

३. ''पुनः, भिक्षुओ! यह वचन किस प्रयोजन से कहा गया है कि—रोगी होना शरीर का स्वभाव है, अतः रोग को अतिक्रान्त नहीं किया जा सकता।... ? भिक्षुओ! स्वस्थ पुरुषों को अपने

भिक्खवे, सत्तानं आरोग्ये आरोग्यमदो, येन मदेन मत्ता कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय [B.64] दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो यो आरोग्ये योब्बनमदो सो सब्बसो वा पहीयति तनु वा पन होति। इदं खो, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'ब्याधिधम्मोम्हि, ब्याधिं अनतीतो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा।

४. ''किञ्च, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'मरणधम्मोम्हि, मरणं अनतीतो' ति अभिण्हं, पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा? अत्थि, भिक्खवे, सत्तानं जीविते जीवितमदो, येन मदेन मत्ता कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय [R.73] दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो यो जीविते जीवितमदो सो सब्बसो वा पहीयति तनु वा पन होति। इदं खो, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'मरणधम्मोम्हि, मरणं अनतीतो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा।

[N.336] ५. ''किञ्च, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'सब्बेहि मे पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो' ति अभिण्हं, पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा? अत्थि, भिक्खवे, सत्तानं पियेसु मनापेसु यो छन्दरागो येन रागेन रत्ता कायेन दुच्चरितं चरन्ति, वाचाय दुच्चरितं चरन्ति, मनसा दुच्चरितं चरन्ति। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो यो पियेसु मनापेसु छन्दरागो सो सब्बसो वा पहीयति तनु वा पन होति। इदं खो, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'सब्बेहि मे पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो' ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा।

६. ''किञ्च, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'कम्मस्सकोम्हि, कम्मदायादो कम्मयोनि कम्मबन्धु कम्मपटिसरणो, यं कम्मं करिस्सामि—कल्याणं वा पापकं वा—तस्स

स्वास्थ्य का मद होता है, वे उस मद में मत्त होकर काय से वाणी से तथा मन से... उपरिवत्...। इसी प्रयोजन से उक्त वचन कहा गया है।

४. ''पुनः, भिक्षुओ! यह वचन किस प्रयोजन से कहा गया है कि—मृत्यु इस शरीर का स्वभाव है, इस (मृत्यु) को अतिक्रान्त नहीं किया जा सकता? भिक्षुओ! जीवित प्राणियों को जीवित रहने का मद होता है, वे उस 'जीवितमद' से उन्मत्त होकर काय से, वाणी से, मन से... पूर्ववत्...। इसी प्रयोजन से उपर्युक्त वचन कहा गया है।

५. ''पुनः, भिक्षुओ! यह वचन किस प्रयोजन से कहा गया है कि—सभी इष्ट प्रिय वस्तुएं परिवर्तनशील एवं विनशनस्वभाव वाली हैं, इनको अतिक्रान्त नहीं किया जा सकता? भिक्षुओ! सभी प्राणियों का अपनी इष्ट एवं प्रिय वस्तुओं में एक विशेष छन्दराग होता है, उसके वश में होकर काय से वाणी से तथा मन से... पूर्ववत्...। इसी प्रयोजन से उपर्युक्त वचन कहे गये हैं।

६. ''और, भिक्षुओ! यह वचन किस प्रयोजन से कहा गया है कि—मैं अपने कर्मों का

दायादो भविस्सामी' ति अभिण्हं, पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा? अत्थि, भिक्खवे, सत्तानं कायदुच्चरितं वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो सब्बसो वा दुच्चरितं पहीयति तनु वा पन होति। इदं खो, भिक्खवे, अत्थवसं पटिच्च 'कम्मस्सकोम्हि, कम्मदायादो कम्मयोनि कम्मबन्धु कम्मपटिसरणो, यं कम्मं करिस्सामि—कल्याणं वा पापकं वा, तस्स दायादो भविस्सामी' [B.65] ति अभिण्हं पच्चवेक्खितब्बं इत्थिया वा पुरिसेन वा गहट्ठेन वा पब्बजितेन वा।

७. ''स खो, सो भिक्खवे, अरियसावको इति पटिसञ्चिक्खति—'न खो [R.74] अहञ्ञेवेको जराधम्मो जरं अनतीतो, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बे सत्ता जराधम्मा जरं अनतीता' ति। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि सब्बसो पहीयन्ति अनुसया ब्यन्तीहोन्ति।

८. ...'न खो अहञ्ञेवेको ब्याधिधम्मो ब्याधिं अनतीतो, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बे सत्ता ब्याधिधम्मा ब्याधिं अनतीता' ति। तस्स तं [N.337] ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि सब्बसो पहीयन्ति, अनुसया ब्यन्तीहोन्ति।

९. ...'न खो अहञ्ञेवेको मरणधम्मो मरणं अनतीतो, अथ खो यावता सत्तानं

स्वामी हूँ, कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ, कर्मों से ही मेरी उत्पत्ति है, कर्म मेरे बन्धुरूप हैं, कर्म ही मेरे शरणस्थल हैं। मैं जो भी कुशल या अकुशल कर्म करूँगा उनका मैं उत्तराधिकारी बनूँगा—इस प्रकार स्त्री या पुरुष द्वारा, गृहस्थ या प्रव्रजित द्वारा निरन्तर प्रत्यवेक्षण करना चाहिये? भिक्षुओ! सभी प्राणी काय, वाक् एवं मन से दुश्चरित करते रहते हैं। उनका उपर्युक्त रीति से निरन्तर प्रत्यवेक्षण करते रहने से या तो वे दुश्चरित सर्वथा क्षीण हो जाते हैं या फिर उनमें कुछ अल्पता तो अवश्य आ जायगी। यही विचार कर इसी प्रयोजन से उपर्युक्त बात कही गयी है...।

७. भिक्षुओ! ऐसा वह आर्यश्रावक यह चिन्तन करता है—'मैं ही अकेला इस बुढ़ापे के स्वभाव वाला नहीं हूँ, यहाँ जितने भी आये या गये सभी को प्राय: यह बुढ़ापा आया था, तथा कोई इसको अतिक्रान्त नहीं कर पाया।' ऐसा चिन्तन करने से उसको (इससे मुक्ति का) मार्ग मिल जाता है। वह उस मार्ग की साधना करता है, अभ्यास करता है, उस पर निरन्तर चलता हुआ उसको बढ़ाता है। ऐसा करने से उसके भवबन्धन सर्वथा क्षीण हो जाते हैं तथा अनुशय (कुपथगामिता) भी नष्ट हो जाते हैं।

८. ''... मैं अकेला ही यहाँ रोगी नहीं बनता, अपितु यहाँ आने तथा जानेवाले सभी प्राणी रोग से आक्रान्त होते हैं, कोई उसको अतिक्रान्त नहीं कर पाता। उसके विषय में उक्त प्रकार से निरन्तर चिन्तन करते रहने से उसके भवबन्धन सर्वथा क्षीण हो जाते हैं तथा अनुशय नष्ट हो जाते हैं।

आगति गति चुति उपपत्ति सब्बे सत्ता मरणधम्मा मरणं अनतीता ति। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि सब्बसो पहीयन्ति, अनुसया ब्यन्तीहोन्ति।

१०. ...'न खो मय्हेवेकस्स सब्बेहि पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो, अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बेसं सत्तानं पियेहि मनापेहि नानाभावो विनाभावो' ति। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि सब्बसो पहीयन्ति, अनुसया ब्यन्तीहोन्ति।

[B.66] ११. ...'न खो अहञ्ञेवेको कम्मस्सको कम्मदायादो कम्मयोनि कम्मबन्धु कम्मप्पटिसरणो, यं कम्मं करिस्सामि—कल्याणं वा पापकं वा, तस्स दायादो भविस्सामि; अथ खो यावता सत्तानं आगति गति चुति उपपत्ति सब्बे सत्ता कम्मस्सका कम्मदायादा कम्मयोनि कम्मबन्धु कम्मप्पटिसरणा, यं कम्मं करिस्सन्ति—कल्याणं वा पापकं वा, तस्स [R.75] दायादा भविस्सन्ती' ति। तस्स तं ठानं अभिण्हं पच्चवेक्खतो मग्गो सञ्जायति। सो तं मग्गं आसेवति भावेति बहुलीकरोति। तस्स तं मग्गं आसेवतो भावयतो बहुलीकरोतो संयोजनानि सब्बसो पहीयन्ति, अनुसया ब्यन्तीहोन्ती ति।

"ब्याधिधम्मा जराधम्मा, अथो मरणधम्मिनो।
यथा धम्मा तथा सत्ता, जिगुच्छन्ति पुथुज्जना॥
"अहं चे तं जिगुच्छेय्यं, एवं धम्मेसु पाणिसु।
न मेतं पतिरूपस्स, मम एवं विहारिनो॥

---

९. "...मुझ अकेले की ही मृत्यु नहीं होगी, अपितु यहाँ आने जाने वाले सभी प्राणी मृत्यु से आक्रान्त होते हैं, कोई भी मृत्यु को अतिक्रान्त नहीं कर सकता।... वह, इस बात का निरन्तर चिन्तन करते रहने से, अपने भवबन्धनों को क्षीण कर लेता है तथा उसके अनुशय भी नष्ट हो जाते हैं।

१०. "...सब इष्ट प्रिय वस्तुओं से सभी प्राणियों का वियोग होता है, इस बात को अतिक्रान्त नहीं कर सकता। वह इस बात का निरन्तर... अनुशय भी नष्ट हो जाते हैं।

११. "... मैं अकेला ही अपने कर्मों का स्वामी हूँ, कर्मों का उत्तराधिकारी हूँ ...पूर्ववत्... इस बात का निरन्तर प्रत्यवेक्षण करते रहने से वह मार्ग प्राप्त कर लेता है। वह तदनुसार साधना करता हुआ अभ्यास करता है, उस अभ्यास से उसके सभी संयोजन एवं अनुशय क्षीण हो जाते हैं।

"वह (साधक) इस प्रकार चिन्तन करता है—

"सभी प्राणी व्याधि, जरा एवं मृत्यु से आक्रान्त रहते हैं। इन धर्मों से कोई मूर्ख ही घृणा कर सकता है।

"यदि मैं भी इन धर्मों से, उस मूर्खजन की तरह घृणा करने लगूँ, तो यह इस प्रकार की साधना में रत मेरे सम्मान के विपरीत होगा॥

"सोहं एवं विहरन्तो, ञत्वा धम्मं निरूपधिं। [N.338]
आरोग्ये योब्बनस्मिं च, जीवितस्मिं च ये मदा॥
"सब्बे मदे अभिभोस्मि, नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो।
तस्स मे अहु उस्साहो, निब्बानं अभिपस्सतो॥
"नाहं भब्बो एतरहि, कामानि पटिसेवितुं।
अनिवत्ति भविस्सामि, ब्रह्मचरियपरायणो" ति॥ ●

८. **लिच्छविकुमारकसुत्तं** : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वेसालिं पिण्डाय पाविसि। वेसालियं पिण्डाय चरित्वा पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो महावनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले दिवाविहारं निसीदि।

२. तेन खो पन समयेन सम्बहुला लिच्छविकुमारका सज्जानि धनूनि आदाय कुक्कुरसङ्घपरिवुता महावने अनुचङ्कममाना अनुविचरमाना अद्दसंसु भगवन्तं अञ्ञतरस्मिं रुक्खमूले निसिन्नं; दिस्वान सज्जानि धनूनि निक्खिपित्वा कुक्कुरसङ्घं एकमन्तं [B.67] उय्योजेत्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा [R.76] तुण्हीभूता तुण्हीभूता पञ्जलिका भगवन्तं पयिरुपासन्ति।

३. तेन खो पन समयेन महानामो लिच्छवि महावने जङ्घाविहारं अनुचङ्कममानो अद्दस ते लिच्छविकुमारके तुण्हीभूते तुण्हीभूते पञ्जलिके भगवन्तं पयिरुपासन्ते; दिस्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं

"ऐसी साधना करता हुआ मैं निरुपधि धर्म (निर्वाण) को ही प्राप्त कर आरोग्यमद, यौवनमद एवं जीवनमद—इन सभी मदों को अभिभूत कर, नैष्काम्य की साधना में मेरा उत्साह बढ़े तथा मैं निर्वाण का साक्षात्कार करूँ॥

"इन तुच्छ कामभोगों का सेवन मेरे लिये उचित नहीं है। मैं अब धर्मसाधना करता हुआ निर्वाण की ओर ही बढ़ूँगा, यही मेरे लिये उचित हैं॥" ●

८. लिच्छविकुमारकसूत्र : : कुलपुत्रों के पाँच धर्म

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। तब वे किसी दिन पूर्वाह्ण में अपने वस्त्र व्यवस्थित कर पात्र चीवर साथ लेकर भिक्षाहेतु वैशाली में प्रविष्ट हुए। वैशाली में भिक्षाचर्या से निवृत्त होकर, भोजन के बाद, महावन में प्रविष्ट होकर किसी एकान्त में वृक्ष के नीचे दिन की साधना में प्रवृत्त हो गये।

२. उस समय धनुष् वाण लिये हुए, अपने शिकारी कुत्तों के साथ बहुत से लिच्छविकुमार महावन में इधर उधर घूम रहे थे। उसी समय साधनारत भगवान् को उन लोगों ने देख लिया। उनको देखकर वे लोग अपने धनुष् वाण रखकर, कुत्तों को एक ओर बाँधकर भगवान् के पास आये। आकर उनको प्रणाम कर चुपचाप हाथ जोड़कर सामने बैठ गये।

३. उस समय महानाम लिच्छवि महावन में पैदल ही घूम रहा था कि उसने भगवान् के

निसिन्नो खो महानामो लिच्छवि उदानं उदानेसि—'भविस्सन्ति वज्जी, भविस्सन्ति वज्जी''' ति!

४. ''किं पन त्वं, महानाम, एवं वदेसि—'भविस्सन्ति वज्जी, भविस्सन्ति वज्जी''' ति?

[N.339] ''इमे, भन्ते, लिच्छविकुमारका चण्डा फरुसा अपानुभा। यानि पि तानि कुलेसु पहेणकानि पहीयन्ति, उच्छू ति वा बदरा ति वा पूवा ति वा मोदका ति वा सङ्गुलिका ति वा, तानि विलुम्पित्वा विलुम्पित्वा खादन्ति; कुलित्थीनं पि कुलकुमारीनं पि पच्छालियं खिपन्ति। ते दानिमे तुण्हीभूता पञ्जलिका भगवन्तं पयिरुपासन्ती'' ति।

५. ''यस्स कस्सचि, महानाम, कुलपुत्तस्स पञ्च धम्मा संविज्जन्ति—यदि वा रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स, यदि वा रट्ठिकस्स पेत्तनिकस्स, यदि वा सेनाय सेनापतिकस्स, यदि वा गामगामणिकस्स, यदि वा पूगगामणिकस्स, ये वा पन कुलेसु पच्चेकाधिपच्चं कारेन्ति, वुद्धियेव पाटिकङ्खा, नो परिहानि।

६. ''कतमे पञ्च? इध, महानाम, कुलपुत्तो उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि मातापितरो सक्करोति गरुं करोति मानेति पूजेति। तमेनं मातापितरो सक्कता गरुकता मानिता पूजिता कल्याणेन मनसा [R.77] अनुकम्पन्ति—'चिरं जीव, दीघमायुं पालेही' ति। मातापितानुकम्पितस्स, महानाम, कुलपुत्तस्स वुद्धियेव पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (१)

[B.68] ७. ''पुन च परं, महानाम, कुलपुत्तो उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबल-

---

सन्मुख हाथ जोड़कर चुपचाप बैठे हुए उन लिच्छविकुमारों को देखा, तब उसके मुख से अकस्मात् ये उद्गार निकले—''होंगे वज्जी! होंगे वज्जी!''

४. (भगवान् ने पूछा—) ''महानाम! तुमने अभी ऐसा किस हेतु से कहा—''वज्जी होंगे वज्जी होंगे! ''

''भन्ते! ये लिच्छविकुमार तो बहुत भयानक, कठोर बोलने वाले होते हैं तथा इनकी छाया पड़ना भी अशुभ माना जाता है। घरों में जो कुछ भी मालपूए, लड्डू या जलेबी आदि मिठाइयाँ रखी रहती हैं उन को ये चुराकर या छीनकर खा जानेवालों में है, या फिर उन वस्तुओं को घर की स्त्रियों या कुमारियों की छाबड़ियों में रख देते हैं (जिससे उनपर दोषारोपण हो)। ऐसे दुष्ट पुरुष इस समय आपके सम्मुख नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर चुपचाप बैठे हुए हैं!''

५. ''महानाम! किसी भी कुलपुत्र में ये पाँच धर्म होते हैं; फिर भले ही वह मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय (राजा) हो, या कोई पिता की सम्पत्ति पर जीने वाला बड़ा जमींदार, या किसी सेना का सेनापति, या किसी ग्राम का ग्रामणी (मुखिया), या किसी जाति का चौधरी (प्रधान), या फिर जो किसी भी परिवार में एकाधिपत्य रखता हो, उसकी वृद्धि (उन्नति) ही समझनी चाहिये, हानि नहीं।

६. ''कौन से पाँच धर्म? यहाँ, महानाम! कोई कुलपुत्र अपने कठोर परिश्रम से पसीना बहाकर अपने बाहुबल द्वारा धर्मपूर्वक अर्जित भोगसम्पत्ति से अपने माता पिता का सम्मान करता

परिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि पुत्तदारदासकम्मकरपोरिसे सक्करोति गरुं करोति मानेति पूजेति। तमेनं पुत्तदारदासकम्मकरपोरिसा सक्कता गरुकता मानिता पूजिता कल्याणेन मनसा अनुकम्पन्ति—'चिरं जीव, दीघमायुं पालेही' ति। पुत्तदारदासकम्मकरपोरिसानुकम्पितस्स, महानाम, कुलपुत्तस्स वुड्डियेव पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (२)

८. ''पुन च परं, महानाम, कुलपुत्तो उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबल-परिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि खेत्तकम्मन्तसामन्तसब्योहारे सक्करोति गरुं करोति मानेति पूजेति। तमेनं खेत्तकम्मन्तसामन्तसब्योहारा सक्कता गरुकता मानिता पूजिता कल्याणेन मनसा अनुकम्पन्ति—'चिरं जीव, दीघमायुं पालेही' ति। [N.340] खेत्तकम्मन्तसामन्तसब्योहारानुकम्पितस्स, महानाम कुलपुत्तस्स वुड्डियेव पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (३)

९. ''पुन च परं, महानाम, कुलपुत्तो उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि बाहाबल-परिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि यावता बलिपटिग्गाहिका देवता सक्करोति गरुं करोति मानेति पूजेति। तमेनं बलिपटिग्गाहिका देवता सक्कता गरुकता मानिता पूजिता कल्याणेन मनसा अनुकम्पन्ति—'चिरं जीव, दीघमायुं पालेही' ति। देवतानुकम्पितस्स, महानाम, कुलपुत्तस्स वुड्डियेव पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (४)

१०. ''पुन च परं, महानाम, कुलपुत्तो उट्ठानविरियाधिगतेहि भोगेहि

है, पूजा करता है, उनको सुखी रखता है, उनका हित करता है, वे उसके कल्याण एवं दीर्घ आयु की कामना करते हैं। माता पिता के कृपापात्र ऐसे कुलपुत्र की वृद्धि ही होगी, हानि नहीं। (१)

७. ''और, महानाम! जो कुलपुत्र अपने कठोर परिश्रम द्वारा ...पूर्ववत्... अर्जित सम्पत्ति से अपने पुत्र स्त्री की, अधीनस्थ दास एवं कर्मकरों का सत्कार एवं सम्मान के साथ पालन पोषण करता है, वे पुत्र स्त्री आदि उसके हित सुख एवं दीर्घायुष्य की कामना करते हैं। महानाम! पुत्र, स्त्री आदि के कृपापात्र ऐसे कुलपुत्र की वृद्धि ही होती है, हानि नहीं। (२)

८. ''और, महानाम! जो कुलपुत्र अपने कठोर परिश्रम द्वारा ...पूर्ववत्... अर्जित सम्पत्ति से अपने खेत आदि में कार्य करने वाले भृत्यों, कर्मचारियों या अन्य अधिकारियों का सत्कार एवं सम्मान के साथ पालन पोषण करता है, वे मजदूर, कर्मचारी एवं अधिकारी उससे सत्कृत एवं सम्मानित होकर उसके हित, सुख एवं दीर्घायुष्य की कामना करते हैं। महानाम! इस भृत्य आदि के कृपापात्र कुलपुत्र की वृद्धि ही होती है, हानि नहीं। (३)

९. ''और, महानाम! जो कुलपुत्र अपने कठोर परिश्रम द्वारा ...पूर्ववत्... अर्जित सम्पत्ति से वलि देने योग्य ग्रामदेवताओं का सत्कार, सम्मान एवं पूजा करता है। उसको ये वलिग्राहक देवता, वैसा सत्कार सम्मान एवं पूजा प्राप्त कर, उसके हित सुख एवं दीर्घायुष्य की प्रार्थना करते हैं। देवताओं का कृपापात्र यह कुलपुत्र वृद्धि ही प्राप्त करता है, हानि नहीं। (४)

१०. तदनन्तर, महानाम! जो कुलपुत्र अपने कठोर परिश्रम द्वारा ...पूर्ववत्... अर्जित

बाहाबलपरिचितेहि सेदावक्खित्तेहि धम्मिकेहि धम्मलद्धेहि समणब्राह्मणे सक्करोति गरुं करोति मानेति पूजेति। तमेनं समणब्राह्मणा सक्कता गरुकता मानिता पूजिता कल्याणेन [R.78] मनसा अनुकम्पन्ति—'चिरं जीव, दीघमायुं पालेही' ति। समणब्राह्मणानुकम्पितस्स, महानाम, कुलपुत्तस्स वुद्धियेव पाटिकङ्खा, नो परिहानि। (५)

११. "यस्स कस्सचि, महानाम, कुलपुत्तस्स इमे पञ्च धम्मा संविज्जन्ति—यदि [B.69] वा रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धाभिसित्तस्स, यदि वा रट्ठिकस्स पेत्तनिकस्स, यदि वा सेनाय सेनापतिकस्स, यदि वा गामगामणिकस्स, यदि वा पूगगामणिकस्स, ये वा पन कुलेसु पच्चेकाधिपच्चं कारेन्ति, वुद्धियेव पाटिकङ्खा, नो परिहानी ति।

"मातापितुकिच्चकरो, पुत्तदारहितो सदा।
अन्तोजनस्स अत्थाय, ये चस्स अनुजीविनो॥
"उभिन्नं चेव अत्थाय, वदञ्ञू होति सीलवा।
ञातीनं पुब्बपेतानं, दिट्ठे धम्मे च जीवतं॥
"समणानं ब्राह्मणानं, देवतानं च पण्डितो।
वित्तिसञ्जननो होति, धम्मेन घरमावसं॥
"सो करित्वान कल्याणं, पुज्जो होति पसंसियो।
इधेव नं पसंसन्ति, पेच्च सग्गे पमोदती" ति॥

[N.341] ९. **पठमवुड्ढपब्बजितसुत्तं** : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो

सम्पत्ति से श्रमण ब्राह्मणों का सत्कार, सम्मान एवं पूजा करता है, वे श्रमण ब्राह्मण! इस कुलपुत्र से सत्कृत सम्मानित एवं पूजित होकर इसके हित सुख एवं दीर्घायुष्य की प्रार्थना करते हैं। इस प्रकार, महानाम! इन श्रमण ब्राह्मणों द्वारा अनुकम्पित इस कुलपुत्र की वृद्धि ही होती है, हानि नहीं। (५)

११. "महानाम! जिस किसी कुलपुत्र में ये पाँच धर्म होते हैं, भले ही वह मूर्धाभिषिक्त राजा हो, या बड़ा जमींदार, या किसी सेना का सेनापति या किसी ग्राम का ग्रामणी, या किसी समूह का प्रधान, या किसी परिवार का मुख्य, उसकी वृद्धि ही होती है, हानि नहीं।

"जो कुलपुत्र अपने माता पिता का, पुत्र एवं पत्नी आदि का या घर में रहनेवाले अन्य अनुचरों का हित एवं सुख का सम्पादन करता है॥

"दोनों के हित सुख का सम्पादक, दानी, शीलवान्, सम्बन्धिजनों एवं पूर्वजों का तथा वर्तमान में जीवित सम्बन्धियों का सहायक॥

"श्रमण ब्राह्मणों का देवताओं का सत्कार एवं सम्मान करने वाला बुद्धिमान् पुरुष घर में धर्मपूर्वक वास करता हुआ उनका स्नेह प्राप्त करता है॥

"वह सबका हित सम्पादन करता हुआ उनके द्वारा पूजनीय एवं प्रशंसनीय हो जाता है। इन गुणों से इस लोक में ही प्रशंसा नहीं होती, अपितु यहाँ से देहपात के बाद स्वर्ग में जाकर भी सुखानुभव ही करता है॥"

दुल्लभो वुड्ढपब्बजितो। कतमेहि पञ्चहि? दुल्लभो, भिक्खवे, वुड्ढपब्बजितो निपुणो, दुल्लभो आकप्पसम्पन्नो, दुल्लभो बहुस्सुतो, दुल्लभो धम्मकथिको, दुल्लभो विनयधरो। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो दुल्लभो वुड्ढपब्बजितो'' ति॥ ●

१०. दुतियवुड्ढपब्बजितसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो दुल्लभो वुड्ढपब्बजितो। कतमेहि पञ्चहि? दुल्लभो, भिक्खवे, वुड्ढपब्बजितो सुवचो, दुल्लभो सुग्गहितग्गाही, दुल्लभो पदक्खिणग्गाही, दुल्लभो धम्मकथिको, [R.79] दुल्लभो विनयधरो। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो दुल्लभो वुड्ढ-पब्बजितो'' ति॥ ●

नीवरणवग्गो छट्ठो॥

तस्सुद्दानं

आवरणं रासि अङ्गानि, समयं मातुपुत्तिका।
उपज्झा ठाना लिच्छवि, कुमारा अपरा दुवे ति॥ ●

---

९. प्रथम वृद्धप्रव्रजितसूत्र : : पाँच धर्मों से सम्पन्न दुर्लभ प्रव्रजित

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त वृद्ध प्रव्रजित लोक में दुर्लभ ही होता है। कौन से पाँच? (१) भिक्षुओ! **निपुण** (दक्ष) वृद्ध प्रव्रजित दुर्लभ होता है; (२) **अच्छे ईर्यापथ** (चालढाल) **वाला** वृद्ध प्रव्रजित दुर्लभ होता है; (३) **बहुश्रुत** वृद्धप्रव्रजित दुर्लभ होता है; (४) **धर्मवाचक** वृद्धप्रव्रजित दुर्लभ होता है; तथा (५) **विनयधर** (साम्प्रदायिक नियमों को जानने वाला) वृद्ध प्रव्रजित दुर्लभ होता है। ये पाँच प्रकार के वृद्धप्रव्रजित लोक में दुर्लभ होते हैं॥'' ●

१०. द्वितीय वृद्धप्रव्रजितसूत्र : : पाँच धर्मों से सम्पन्न वृद्ध प्रव्रजित दुर्लभ

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त वृद्धप्रव्रजित लोक में दुर्लभ होता है। कौन से पाँच? (१) सुवच (मधुरभाषी); (२) अच्छी बातें ग्रहण करने वाला; (३) दान का लेने वाला; (४) धर्मवाचक, एवं (५) विनयधर—भिक्षुओ! ये पाँच प्रकार के वृद्ध प्रव्रजित लोक में दुर्लभ हैं॥ ●

नीवरणवर्ग षष्ठ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आवरणसूत्र, २. अकुशलराशिसूत्र, ३. प्रधानीय अङ्गसूत्र, ४. समयसूत्र, ५. मातापुत्र-सूत्र, ६. उपाध्यायसूत्र, ७. स्थानसूत्र, ८. लिच्छविकुमारसूत्र, ९. प्रथम वृद्धप्रव्रजितसूत्र, एवं १०. द्वितीय वृद्धप्रव्रजितसूत्र॥ ●

७. सञ्ञावग्गो

[B.70] **१. पठमसञ्ञासुत्तं :** १. ''पञ्चिमा, भिक्खवे, सञ्ञा भाविता बहुलीकता महप्फला होन्ति महानिसंसा अमतोगधा अमतपरियोसाना। कतमा पञ्च? असुभसञ्ञा, मरणसञ्ञा, आदीनवसञ्ञा, आहारे पटिकूलसञ्ञा, सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञा—इमा खो, भिक्खवे, पञ्च सञ्ञा भाविता बहुलीकता महप्फला होन्ति महानिसंसा अमतोगधा अमतपरियोसाना'' ति॥ ●

[N.342] **२. दुतियसञ्ञासुत्तं :** १. ''पञ्चिमा, भिक्खवे, सञ्ञा भाविता बहुलीकता महप्फला होन्ति महानिसंसा अमतोगधा अमतपरियोसाना। कतमा पञ्च? अनिच्चसञ्ञा, [R.80] अनत्तसञ्ञा, मरणसञ्ञा, आहारे पटिकूलसञ्ञा, सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञा—इमा खो, भिक्खवे, पञ्च सञ्ञा भाविता बहुलीकता महप्फला होन्ति महानिसंसा अमतोगधा अमतपरियोसाना'' ति॥ ●

३. पठमवड्ढिसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, वड्ढीहि वड्ढमानो अरियसावको अरियाय वड्ढिया वड्ढति, सारादायी च होति वरादायी च कायस्स। कतमाहि पञ्चहि? सद्धाय वड्ढति, सीलेन वड्ढति, सुतेन वड्ढति, चागेन वड्ढति, पञ्ञाय वड्ढति—इमाहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि वड्ढीहि वड्ढमानो अरियसावको अरियाय वड्ढिया वड्ढति, सारादायी च होति वरादायी च कायस्सा ति।

---

७. संज्ञावर्ग

१. प्रथम संज्ञासूत्र : : पाँच संज्ञाएँ

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच संज्ञाओं की साधना करने पर, अभ्यास करने पर, ये बहुत फल देनेवाली, बहुत माहात्म्य वाली, निर्वाण से पूर्व तथा निर्वाण तक पहुँचाने वाली हैं। कौन सी पाँच? (१) अशुभ संज्ञा, (२) मरण संज्ञा, (३) आदीनव संज्ञा, (४) आहार में प्रतिकूल संज्ञा एवं (५) अनभिरति संज्ञा। भिक्षुओ! ये पाँच संज्ञाएँ साधना तथा अभ्यास किये जाने पर बहुत फल देने वाली, बहुत माहात्म्य वाली, निर्वाण से पूर्व, तथा निर्वाण तक लेजाने वाली हैं।'' ●

२. द्वितीय संज्ञासूत्र : : अन्य पाँच संज्ञाएँ

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच संज्ञाओं की साधना करने पर, अभ्यास किये जाने पर ...पूर्ववत्... निर्वाण तक पहुँचाने वाली हैं। कौन सी पाँच? (१) अनित्य संज्ञा, (२) अनात्म संज्ञा, (३) मरण संज्ञा, (४) आहार में प्रतिकूल संज्ञा, तथा (५) समस्त लोक में अनभिरति (अरुचि) संज्ञा—भिक्षुओ! ये पाँच संज्ञाएँ साधना किये जाने पर ...पूर्ववत्... निर्वाण तक पहुँचाने वाली होती हैं॥''●

३. प्रथम वृद्धिसूत्र : : पाँच वृद्धियाँ

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच वृद्धियों से बढ़ने वाला **आर्यश्रावक** श्रेष्ठ वृद्धि से उन्नति प्राप्त करता है तथा अपने शरीर में बल एवं श्रेष्ठता अनुभव करता है। किन पाँच वृद्धियों से? वह **श्रद्धा** से बढ़ता है, **शील** से बढ़ता है, **श्रुत** से बढ़ता है, **त्याग** से बढ़ता है एवं **प्रज्ञा** से बढ़ता है—भिक्षुओ! उन पाँच वृद्धियों से ...पूर्ववत्... श्रेष्ठता अनुभव करता है।

"सद्धाय सीलेन च यो पवड्ढति, पञ्ञाय चागेन सुतेन चूभयं।
सो तादिसो सप्पुरिसो विचक्खणो,आदीयती सारमिधेव अत्तनो" ति॥ ●

४. दुतियवड्ढिसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, वड्ढीहि वड्ढमाना अरिय- [B.71] साविका अरियाय वड्ढिया वड्ढति, सारादायिनी च होति वरदायिनी च कायस्स। कतमाहि पञ्चहि? सद्धाय वड्ढति, सीलेन वड्ढति, सुतेन वड्ढति, चागेन वड्ढति, पञ्ञाय वड्ढति— इमाहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि वड्ढीहि वड्ढमाना अरियसाविका अरियाय वड्ढिया वड्ढति, सारादायिनी च होति वरादायिनी च कायस्सा ति।

"सद्धाय सीलेन च या पवड्ढति, पञ्ञाय चागेन सुतेन चूभयं।
सा तादिसी सीलवती उपासिका, आदीयती सारमिधेव अत्तनो" ति॥ ●

५. साकच्छसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो [N.343,R.81] भिक्खु अलंसाकच्छो सब्रह्मचारीनं। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अत्तना च सीलसम्पन्नो होति, सीलसम्पदाय कथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च समाधिसम्पन्नो होति, समाधिसम्पदाय कथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च पञ्ञासम्पन्नो होति, पञ्ञासम्पदाय कथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च विमुत्तिसम्पन्नो होति, विमुत्तिसम्पदाय कथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय कथाय च आगतं पञ्हं

"जो श्रद्धा, शील, प्रज्ञा, त्याग एवं श्रुत—इन पाँच गुणों से बढ़ता रहता है, ऐसा कुशल बुद्धिमान् सत्पुरुष इस संसार में ही स्वयं को बलवान् बना लेता है॥" ●

४. द्वितीय वृद्धिसूत्र : : पाँच वृद्धियाँ

१. "भिक्षुओ! इन पाँच वृद्धियों से बढ़ने वाली कोई **आर्यश्राविका** श्रेष्ठ वृद्धि से उन्नति प्राप्त करती है तथा अपने शरीर में जल एवं श्रेष्ठता का अनुभव करती है। कौन सी पाँच? वह **श्रद्धा** से बढ़ती है, **शील** से बढ़ती है, **श्रुत** से बढ़ती है, **त्याग** से बढ़ती है तथा **प्रज्ञा** से बढ़ती है— भिक्षुओ! इन पाँच वृद्धियों से बढ़ती हुई कोई आर्यश्राविका श्रेष्ठ उन्नति पाती है तथा अपने शरीर में बल एवं श्रेष्ठता का अनुभव करती है।

"श्रद्धा, शील से जो वृद्धि प्राप्त करती है, प्रज्ञा से, त्याग एवं श्रुत—इन दोनों से वृद्धि प्राप्त करती है, ऐसी सदाचारवती उपासिका इसी लोक में अपने शरीर में बल का आधान कर लेती है॥"

५. साकच्छसूत्र : : पाँच परामर्श

१. "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपने साथियों से साथ बैठ कर धार्मिक परामर्श कर सकता है। कौन से पाँच धर्मों से? (१) यहाँ, भिक्षुओ! जो भिक्षु स्वयं शीलसम्पन्न होता है तथा धार्मिक कथाओं में शीलसम्पदा का प्रसङ्ग आने पर उस (शील) का समुचित व्याख्यान करने में समर्थ होता है; (२) स्वयं समाधिसम्पन्न होता है ...पूर्ववत्...; (३) स्वयं प्रज्ञासम्पन्न होता है ...पूर्ववत्...; (४) स्वयं विमुक्तिसम्पन्न होता है ...पूर्ववत्...; (५) स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शन सम्पन्न होता है तथा धार्मिक कथाओं में विमुक्तिज्ञानदर्शन का प्रसङ्ग आने पर उसका समुचित व्याख्यान

ब्याकत्ता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलंसाकच्छो सब्रह्मचारीनं'' ति॥ ●

६. साजीवसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलंसाजीवो सब्रह्मचारीनं। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अत्तना च सीलसम्पन्नो होति, सीलसम्पदाय कथाय च कतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च समाधिसम्पन्नो होति, [B.72] समाधिसम्पदाय कथाय च कतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च पञ्ञासम्पन्नो होति, पञ्ञासम्पदाय कथाय च कतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च विमुत्तिसम्पन्नो होति, विमुत्तिसम्पदाय कथाय च कतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाय कथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलंसाजीवो सब्रह्मचारीनं'' ति॥ ●

७. पठमइद्धिपादसुत्तं : १. ''यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु, वा भिक्खुनी वा पञ्च धम्मे भावेति, पञ्च धम्मे बहुलीकरोति, तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं [R.82] पाटिकङ्खं—दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता।

२. ''कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु छन्दसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं [N.344] इद्धिपादं भावेति, विरियसमाधि ... चित्तसमाधि ... वीमंसासमाधिपधानसङ्खार-समन्नागतं इद्धिपादं भावेति, उस्सोळ्हिञ्ञेव पञ्चमिं। यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु वा भिक्खुनी वा इमे पञ्च धम्मे भावेति, इमे पञ्च धम्मे बहुलीकरोति, तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं—दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता'' ति॥ ●

करने में समर्थ होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही साथियों के साथ बैठकर धार्मिक परामर्श कर सकता है॥'' ●

६. साजीवसूत्र : : पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही अपने साथी भिक्षुओं के साथ धार्मिक जीवन सुव्यवस्थित रूप से यापन करने में समर्थ हो सकता है। किन पाँच धर्मों से? ...पूर्वसूत्रवत्... ॥ *(साकच्छसूत्र के समान विस्तार कर लें)।* ●

७. प्रथम ऋद्धिपादसूत्र : : पाँच धर्म (ऋद्धिपाद एवं उत्साह)

१. ''भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन पाँच धर्मों से समन्वित है, उसको धर्माभ्यास के इन दो फलों में से एक फल अवश्य मिलेगा। या तो वे इसी जन्म में ज्ञान (अर्हत्व) प्राप्त कर लेंगे या फिर कोई प्रारब्ध कर्म इसमें विघ्न रूप हो जाय तो भी वे अनागामित्व अवश्य प्राप्त कर लेंगे।

२. ''कौन से पाँच? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु छन्दसमाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की साधना करता है; (२) वीर्यसमाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित...; (३) चित्तसमाधि प्रधान संस्कारों से समन्वित...; (४) मीमांसासमाधिप्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की साधना करता है; तथा (५) उत्साह से समन्वित रहता है। भिक्षुओ! जो भी कोई भिक्षु या भिक्षुणी ...पूर्ववत्... अनागामित्व तो अवश्य प्राप्त कर लेंगे॥'' ●

८. दुतियइद्धिपादसुत्तं : १. ''पुब्बेवाहं, भिक्खवे, सम्बोधा अनभिसम्बुद्धो बोधिसत्तो व समानो पञ्च धम्मे भावेसिं, पञ्च धम्मे बहुलिमकासिं। कतमे पञ्च? छन्दसमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेसिं, विरियसमाधि... चित्तसमाधि... वीमंसासमाधिपधानसङ्खारसमन्नागतं इद्धिपादं भावेसिं, उस्सोळ्हिञ्ञेव पञ्चमिं। सो खो अहं, भिक्खवे, इमेसं उस्सोळ्हिपञ्चमानं धम्मानं भावितत्ता बहुलीकतत्ता यस्स यस्स अभिञ्ञासच्छिकरणीयस्स धम्मस्स चित्तं अभिनिन्नामेसिं अभिञ्ञासच्छिकिरियाय, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणिं सति सति आयतने।

[B.73] २. ''सो सचे आकङ्खिं—'अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभवेय्यं ...पे०...याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणिं सति सति आयतने।

३. ''सो सचे आकङ्खिं ...पे०... 'आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं [R.83] पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरेय्यं' ति, तत्र तत्रेव सक्खिभब्बतं पापुणिं सति सति आयतने'' ति॥ ●

९. निब्बिदासुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा भाविता बहुलीकता एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तन्ति।

२. ''कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञी, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी, मरणसञ्ञा

---

८. द्वितीय ऋद्धिपादसूत्र : : पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! सम्बोधिप्राप्ति से पूर्व ही, जब मैं अभिसम्बुद्ध नहीं हुआ था, बोधिसत्त्व ही था, मैंने इन पाँच धर्मों की साधना की थी, अभ्यास किया था। कौन से पाँच धर्म? (१) छन्द-समाधिप्रधान...; (२) वीर्यसमाधिप्रधान...; (३) चित्तसमाधिप्रधान...; (४) मीमांसासमाधि-प्रधान संस्कारों से समन्वित ऋद्धिपाद की भावना तथा (५) उत्साह। भिक्षुओ! वह मैं इन पाँचों धर्मों की साधना एवं अभ्यास करते करते, जिस किसी अभिज्ञा से साक्षात्करणीय धर्म के प्रति अपने चित्त को झुकाता था उसका ज्ञान करने के लिये, समय आने पर, उसका मैं साक्षात्कार कर लेता था।

२. ''यदि मैं चाहता था—अनेक प्रकार के ऋद्धिविध (चमत्कार) देखूँ, जैसे— ...पूर्ववत्... ब्रह्मलोक तक को अपने शरीर से वश में कर लूँ। तो मैं वैसा करने में समय पर सफल हो जाता था।

३. ''यदि मैं चाहता था—आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति को प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर साक्षात्कार कर प्राप्त कर साधना करूँ तो मैं वैसा करने में भी समय पर सफल हो जाता था।'' ●

९. निर्विदासूत्र : : पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म साधना द्वारा, अभ्यास द्वारा एकान्त निर्वेद के लिये, विराग, विरोध, उपशम, अभिज्ञा, सम्बोध तथा निर्वाण की प्राप्ति कराने के लिये समर्थ होते हैं।

२. ''कौन से पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु काया में अशुभ का दर्शन करता हुआ

[N.345] खो पनस्स अज्झत्तं सूपट्ठिता होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा भाविता बहुलीकता एकन्तनिब्बिदाय विरागाय निरोधाय उपसमाय अभिञ्ञाय सम्बोधाय निब्बानाय संवत्तन्ती'' ति॥ ●

१०. आसवक्खयसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा भाविता बहुलीकता आसवानं खयाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञी, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी, मरणसञ्ञा खो पनस्स अज्झत्तं सूपट्ठिता होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा भाविता बहुलीकता आसवानं खयाय संवत्तन्ती'' ति॥ ●

सञ्ञावग्गो सत्तमो॥

तस्सुद्दानं

द्वे च सञ्ञा द्वे वड्ढी च, साकच्छेन च साजीवं।
इद्धिपादा च द्वे वुत्ता, निब्बिदा चासवक्खया ति॥ ●

८. योधाजीववग्गो

[B.74, R.84] **१. पठमचेतोविमुत्तिफलसुत्तं :** १. ''पञ्चिमा, भिक्खवे, धम्मा भाविता

साधना करता है, आहार में प्रतिकूल संज्ञा की भावना करता हुआ, सम्पूर्ण लोक में अनभिरति (अनासक्ति) की भावना करता हुआ, सब संस्कारों में अनित्यता का दर्शन करता हुआ तथा मरण संज्ञा का अपने मन में चिन्तन करता हुआ साधना करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों की साधना तथा अभ्यास किये जाने पर वह एकान्त निर्वेद, विराग, निरोध, उपशम, अभिज्ञा, सम्बोध तथा निर्वाण की प्राप्ति कराने में समर्थ होता है॥'' ●

१०. आश्रवक्षयसूत्र : : पाँच धर्म

[अनुपद में पठित निर्विदासूत्र के समान इस सूत्र का भी विस्तार कर लें।]

संज्ञावर्ग सप्तम सम्पन्न॥ ●

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम संज्ञासूत्र, २. द्वितीय संज्ञासूत्र, ३. प्रथम वृद्धिसूत्र, ४. द्वितीय वृद्धिसूत्र, ५. साकच्छसूत्र, ६. साजीवसूत्र, ७. प्रथम ऋद्धिपादसूत्र, ८. द्वितीय ऋद्धिपादसूत्र, ९. निर्विदासूत्र एवं १०. आश्रवक्षयसूत्र॥ ●

८. योधाजीववर्ग

१. प्रथम चेतोविमुक्तिफलसूत्र : : पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म ...पूर्वसूत्रवत्...। भिक्षुओ! ये पाँच धर्म साधना तथा अभ्यास

बहुलीकता चेतोविमुत्तिफला च होन्ति चेतोविमुत्तिफलानिसंसा च, पञ्ञा- [B.74,R.84] विमुत्तिफला च होन्ति पञ्ञाविमुत्तिफलानिसंसा च।

"कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके अनभिरतिसञ्ञी, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी, मरणसञ्ञा खो पनस्स अज्झत्तं सूपट्ठिता होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा भाविता बहुलीकता चेतोविमुत्तिफला च होन्ति चेतोविमुत्तिफलानिसंसा च, पञ्ञाविमुत्तिफला च होन्ति पञ्ञाविमुत्तिफलानिसंसा च। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु चेतोविमुत्तो च होति [N.346] पञ्ञाविमुत्तो च होति—अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'भिक्खु उक्खित्तपलिघो इति पि, सङ्किण्णपरिखो इति पि, अब्बुळ्हेसिको इति पि, निरग्गळो इति पि, अरियो पन्नद्धजो पन्नभारो विसंयुत्तो इति पि'।

२. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **उक्खित्तपलिघो** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो अविज्जा पहीना होति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु उक्खित्तपलिघो होति।

३. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **सङ्किण्णपरिखो** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो पोनोब्भविको जातिसंसारो पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सङ्किण्णपरिखो होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **अब्बुळ्हेसिको** होति? इध, भिक्खवे, [R.85] भिक्खुनो तण्हा पहीना होति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अब्बुळ्हेसिको होति।

करने पर चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति का फल देने वाले होते हैं। ये दोनों फल देना ही इनकी विशेषता (माहात्म्य) है। क्योंकि, भिक्षुओ! ऐसी साधना करने वाला भिक्षु चेतोविमुक्त भी हो जाता है एवं प्रज्ञाविमुक्त भी, अतः इस भिक्षु के लिये कहा जाता है कि इसने मार्ग में आने वाली अपनी सभी बाधाएँ, मार्ग के खड्डे, मार्ग के अवरोध एवं प्रतिबन्ध हटा लिये हैं, अब इसने अपने सभी प्रकार के सांसारिक आग्रह, सांसारिक भार से मुक्ति पा ली है।

२. "भिक्षुओ! क्यों यह भिक्षु 'उत्क्षिप्तपरिघ' (मार्ग के अवरोधों को हटाने वाला) कहलाता है? भिक्षुओ! इस भिक्षु की (उपर्युक्त साधना से) अविद्या प्रहीण हो चुकी होती है, समूल नष्ट हो चुकी है, अभाव प्राप्त कर चुकी है, अब वह पुनः उत्पन्न होने वाली नहीं है। अतः ऐसा भिक्षु **'उत्क्षिप्तपरिघ'** कहलाता है।

३. "भिक्षुओ! क्यों यह भिक्षु 'सङ्कीर्णपरिघ' (मार्ग के खाई=गर्त=खड्डा को भर देने वाला) कहलाता है? भिक्षुओ! उस भिक्षु की, इस साधना के फलस्वरूप, संसार में पुनः पुनः जन्म मरण की परम्परा प्रहीण हो जाती है, समूल नष्ट हो जाती है, अतः ऐसा भिक्षु **सङ्कीर्णपरिघ** कहलाता है।

४. "भिक्षुओ! क्यों यह भिक्षु 'अव्यूढैषिक' (अवरोधरहित मार्ग वाला) कहलाता है?

[B.75] ५. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **निरग्गळो** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि होन्ति उच्छिन्नमूलानि तालावत्थुकतानि अनभावङ्कतानि आयतिं अनुप्पादधम्मानि। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु निरग्गळो होति।

६. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **अरियो पन्नद्धजो पन्नभारो विसंयुत्तो** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो अस्मिमानो पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अरियो पन्नद्धजो पन्नभारो विसंयुत्तो होती'' ति॥ ●

२. दुतियचेतोविमुत्तिफलसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा भाविता बहुलीकता चेतोविमुत्तिफला च होन्ति चेतोविमुत्तिफलानिसंसा च, पञ्ञाविमुत्तिफला च [N.347] होन्ति पञ्ञाविमुत्तिफलानिसंसा च। कतमे पञ्च? अनिच्चसञ्ञा, अनिच्चे दुक्खसञ्ञा, दुक्खे अनत्तसञ्ञा, पहानसञ्ञा, विरागसञ्ञा—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा भाविता बहुलीकता चेतोविमुत्तिफला च होन्ति चेतोविमुत्तिफलानिसंसा च, पञ्ञाविमुत्तिफला च होन्ति पञ्ञाविमुत्तिफलानिसंसा च। यतो खो, भिक्खवे, भिक्खु चेतोविमुत्तो च होति पञ्ञाविमुत्तो च—अयं वुच्चति, भिक्खवे, 'भिक्खु उक्खित्तपलिघो इति पि, सङ्किण्णपरिखो इति पि, अब्बुळ्हेसिको इति पि, निरग्गळो इति पि, अरियो पन्नद्धजो पन्नभारो विसंयुत्तो इति पि'।

२. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **उक्खित्तपलिघो** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो अविज्जा पहीना होति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं अनुप्पादधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु उक्खित्तपलिघो होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **सङ्किण्णपरिखो** होति? इध, भिक्खवे, [R.86]

भिक्षुओ! उस भिक्षु की, इस साधना के फलस्वरूप, तृष्णा प्रहीण एवं छिन्नमूल, भविष्य में कभी न उत्पन्न होने वाली हो जाती है, अतः वह भिक्षु '**अव्यूढैषिक**' होता है।

५. ''भिक्षुओ! क्यों यह भिक्षु 'निरर्गल' (अर्गला=अवरोधरहित) कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ, उस भिक्षु के पाँचों अवरभागीय संयोजन प्रहीण, छिन्नमूल तथा भविष्य में कभी न उत्पन्न होने वाले हो जाते हैं, अतः यह भिक्षु **निरर्गल** कहलाता है।

६. ''भिक्षुओ! कैसे यह भिक्षु 'शीर्णध्वज' एवं 'शीर्णभार' (आग्रह एवं भार से रहित) कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ उस भिक्षु का अस्मिमान ('मैं हूँ' यह आग्रह) प्रहीण, उच्छिन्नमूल, तथा भविष्य में कभी न उत्पन्न होने वाला हो जाता है। इसलिये वह भिक्षु **शीर्णध्वज** एवं **शीर्णभार** कहलाता है॥'' ●

२. द्वितीय चेतोविमुक्तिफलसूत्र : : पाँच धर्म

१. ...पूर्वसूत्रवत्...।

[इस सूत्र का पाठ अक्षरशः पहले सूत्र के समान है, अतः उसी के समान विस्तार कर लें।] ●

भिक्खुनो पोनोब्भविको जातिसंसारो पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सङ्किण्णपरिखो होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **अब्बुळ्हेसिको** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो तण्हा पहीना होति उच्छिन्नमूला तालावत्थुकता अनभावङ्कता आयतिं [B.76] अनुप्पादधम्मा। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अब्बुळ्हेसिको होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **निरग्गळो** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो पञ्चोरम्भागियानि संयोजनानि पहीनानि होन्ति उच्छिन्नमूलानि तालावत्थुकतानि अनभावङ्कतानि आयतिं अनुप्पादधम्मानि। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु निरग्गळो होति।

६. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु **अरियो पन्नद्धजो पन्नभारो विसंयुत्तो** होति? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो अस्मिमानो पहीनो होति उच्छिन्नमूलो तालावत्थुकतो अनभावङ्कतो आयतिं अनुप्पादधम्मो। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अरियो पन्नद्धजो पन्नभारो विसंयुत्तो होती" ति॥

३. पठमधम्मविहारीसुत्तं : १. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा [N.348] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"'धम्मविहारी धम्मविहारी' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, भिक्खु धम्मविहारी होती" ति?

२. "इध, भिक्खु, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो ताय धम्मपरियत्तिया दिवसं अतिनामेति, रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं वुच्चति, भिक्खु—'भिक्खु **परियत्तिबहुलो, नो धम्मविहारी**'।

[R.87] ३. "पुन च परं, भिक्खु, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं

---

३. प्रथम धर्मविहारीसूत्र : : धर्मसाधक के पाँच भेद

१. तब कोई भिक्षु भगवान् के सम्मुख आया। आकर, भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए उसने भगवान् से अपनी यह जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! आप अपने उपदेशों में 'धर्मविहारी' (धर्माभ्यासी) शब्द का प्रयोग करते रहते हैं, यह 'धर्मविहारी' कैसे होता है?"

२. "भिक्षु! यहाँ कोई भिक्षु निरन्तर शास्त्र का अध्ययन करता रहता है—सूत्र का भी, गेय का भी, व्याकरण का भी, गाथा का भी, उदान का भी, इत्युक्तक का भी, जातक का भी, अद्भुतधर्म का भी, वेदल्ल (प्रश्नोत्तर शैली के) शास्त्र का भी। वह उस धर्मशास्त्र के अध्ययन में दिन भर बिता देता है, वह साधना समय नहीं निकाल पाता, आध्यात्मिक चेत:समाधि की भी साधना नहीं करता। भिक्षु! ऐसा भिक्षु **शास्त्राभ्यासी कहलाता है, धर्माभ्यासी नहीं।**

३. भिक्षु! फिर कोई अन्य भिक्षु स्वयं भी शास्त्राभ्यास करता रहता है, अवशिष्ट समय दूसरे

देसेति। सो ताय धम्मपञ्ञत्तिया दिवसं अतिनामेति, रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं वुच्चति, भिक्खु—'भिक्खु **पञ्ञत्तिबहुलो, नो धम्मविहारी**'।

[B.77] ४. ''पुन च परं, भिक्खु, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति। सो तेन सज्झायेन दिवसं अतिनामेति, रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं वुच्चति, भिक्खु—'भिक्खु **सज्झायबहुलो, नो धम्मविहारी**'।

५. ''पुन च परं, भिक्खु, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति। सो तेहि धम्मपञ्ञत्तिया दिवसं अतिनामेति, रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं वुच्चति, भिक्खु—'भिक्खु **वितक्कबहुलो, नो धम्मविहारी**'।

६. ''इध, भिक्खु, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुतं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। सो ताय धम्मपरियत्तिया न दिवसं अतिनामेति, नापि रिञ्चति पटिसल्लानं, अनुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। एवं खो, भिक्खु, भिक्खु **धम्मविहारी** होति।

[N.349] ७. ''इति खो, भिक्खु, देसितो मया परियत्तिबहुलो, देसितो पञ्ञत्तिबहुलो, देसितो सज्झायबहुलो, देसितो वितक्कबहुलो, देसितो धम्मविहारी। यं खो, भिक्खु, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया।

भिक्षुओं को यथापठित एवं यथाश्रुत धर्म का उपदेश समस्त दिन करता रहता है, परन्तु अपने लिये साधना का समय नहीं निकाल पाता; न आध्यात्मिक चेत:समाधि की ही साधना करता है। भिक्षु! ऐसा भिक्षु भी **उपदेशाभ्यासी ही कहलाता है, धर्माभ्यासी नहीं।**

४. भिक्षु! फिर कोई भिक्षु गुरु से सुने हुए या पढ़े हुए शास्त्र का ही विस्तारपूर्वक स्वाध्याय करता रहता है। वह उस स्वाध्याय में ही अपना समस्त दिन बिता देता है, वह साधना या आध्यात्मिक चेत:समाधि के लिये समय नहीं निकाल पाता। ऐसा भिक्षु भी, भिक्षु! **स्वाध्यायाभ्यासी ही कहलाता है, धर्माभ्यासी नहीं।**

५. पुन:, भिक्षु! कोई भिक्षु गुरु से सुने या पढ़े शास्त्र पर वितर्क, विचार एवं मन से चिन्तन करता रहता है, वह उसी में अपना समस्त दिन व्यतीत कर देता है। वह साधना के लिये... नहीं निकाल पाता। भिक्षु! ऐसा भिक्षु भी **शास्त्र का चिन्तन-मनन करने वाला ही कहलाता है धर्माभ्यासी नहीं।**

६. ''और, भिक्षु! कोई भिक्षु सूत्र, गेय, व्याकरण आदि शास्त्रों का अभ्यास भी करता है, परन्तु वह उसमें अपना समस्त दिन व्यतीत नहीं करता; अपितु उसमें से कुछ समय शास्त्राभ्यास में लगाता है और कुछ समय आध्यात्मिक चेत:समाधि हेतु भी देता है। भिक्षु! ऐसा भिक्षु **धर्माभ्यासी** कहलाता है।

७. ''इस प्रकार, भिक्षु! मैंने तुमको (१) शास्त्राभ्यासी, (२) स्वाध्यायाभ्यासी, (३) धर्मोपदेशाभ्यासी, (४) चिन्तनमननाभ्यासी, एवं (५) धर्माभ्यासी के भेद बता दिये। तुम्हारे

एतानि, भिक्खु, रुक्खमूलानि एतानि सुञ्ञागारानि। झायथ, भिक्खु, मा पमादत्थ, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी'' ति॥ ●

४. **दुतियधम्मविहारीसुत्तं** : १. अथ खो अञ्ञतरो भिक्खु येन भगवा [R.88] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—'''धम्मविहारी धम्मविहारी' ति, भन्ते, वुच्चति। कित्तावता नु खो, भन्ते, भिक्खु धम्मविहारी होति'' ति?

२. ''इध, भिक्खु, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं; उत्तरि चस्स पञ्ञाय अत्थं नप्पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खु—'भिक्खु **परियत्तिबहुलो, नो धम्मविहारी**'।

३. ''पुन च परं, भिक्खु, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परेसं देसेति, उत्तरि चस्स पञ्ञाय अत्थं नप्पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खु—'भिक्खु **पञ्ञत्तिबहुलो, नो धम्मविहारी**'।

४. ''पुन च परं, भिक्खु, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोति, उत्तरि चस्स पञ्ञाय अत्थं नप्पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खु—'भिक्खु [B.78] **सज्झायबहुलो, नो धम्मविहारी**'।

५. ''पुन च परं, भिक्खु, भिक्खु यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केति अनुविचारेति मनसानुपेक्खति, उत्तरि चस्स पञ्ञाय अत्थं नप्पजानाति। अयं वुच्चति, भिक्खु—'भिक्खु **वितक्कबहुलो, नो धम्मविहारी**'।

हितैषी शास्ता जो कुछ तुमको कृपापूर्वक बता सकते थे, वह तुमको मैंने बता दिया। अब, भिक्षु! यह वृक्षों की छाया है, ये एकान्त स्थान हैं। यहाँ बैठकर धर्मसाधना करो, इसमें प्रमाद न करना। ऐसा न हो कि भविष्य में तुमको इसके लिये पछताना पड़े। मेरा तुमको यही अनुशासन (चेतावनी) है॥'' ●

४. द्वितीय धर्मविहारीसूत्र : : पाँच प्रकार के धर्माभ्यासी

१. तब कोई भिक्षु भगवान् के सम्मुख ...पूर्वसूत्रवत्... धर्माभ्यासी कैसे होता है?

२. यहाँ, भिक्षु! कोई भिक्षु सूत्र, गेय, व्याकरण... शास्त्रों का अध्ययन तो बहुत करता है, परन्तु उसका बुद्धिपूर्वक वास्तविक अर्थ नहीं जान पाता, ऐसा भिक्षु **शास्त्र का अध्येता ही कहलाता है, धर्माभ्यासी नहीं।**

३. पुनः, भिक्षु! यहाँ कोई भिक्षु उक्त शास्त्र का अध्ययन भी करता है, दूसरों को उपदेश भी करता है; परन्तु स्वयं उसका बुद्धिपूर्वक अर्थ नहीं जानता, ऐसा भिक्षु **धर्मोपदेशक ही होता है, धर्माभ्यासी नहीं।**

४. पुनः, भिक्षु! कोई भिक्षु उक्त शास्त्र का बहुत स्वाध्याय करने पर भी बुद्धिपूर्वक उसका अर्थ नहीं समझ पाता; ऐसा भिक्षु **शास्त्रस्वाध्यायी ही होता है, धर्माभ्यासी नहीं।**

५. पुनः, भिक्षु! यहाँ कोई भिक्षु गुरु से यथाश्रुत, यथाधीत शास्त्र पर तर्क वितर्क, विचार,

६. ''इध, भिक्खु, भिक्खु धम्मं परियापुणाति—सुतं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, [N.350] उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं; उत्तरि चस्स पञ्ञाय अत्थं पजानाति। एवं खो, भिक्खु, भिक्खु **धम्मविहारी** होति।

[R.89] ७. ''इति खो, भिक्खु, देसितो मया परियत्तिबहुलो, देसितो पञ्ञत्तिबहुलो, देसितो सज्झायबहुलो, देसितो वितक्कबहुलो, देसितो धम्मविहारी। यं खो, भिक्खु, सत्थारा करणीयं सावकानं हितेसिना अनुकम्पकेन अनुकम्पं उपादाय, कतं वो तं मया। एतानि, भिक्खु, रुक्खमूलानि एतानि सुञ्ञागारानि। झायथ, भिक्खु, मा पमादत्थ, मा पच्छा विप्पटिसारिनो अहुवत्थ। अयं वो अम्हाकं अनुसासनी'' ति। ●

५. पठमयोधाजीवसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, योधाजीवा सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, एकच्चो योधाजीवो रजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, पठमो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो सहति रजग्गं; अपि च खो धजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, दुतियो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो सहति रजग्गं सहति धजग्गं; अपि च खो उस्सारणञ्ञेव सुत्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति सङ्गामं

चिन्तन बहुत करते रहने पर भी उसका बुद्धिपूर्वक अर्थ नहीं कर पाता; ऐसा भिक्षु **तार्किक, विचारक एवं मीमांसक ही कहला सकता है, धर्माभ्यासी नहीं।**

६. पुनः, भिक्षु! कोई भिक्षु... शास्त्र का अध्ययन कर उसका बुद्धिपूर्वक अर्थ भी जानता है, ऐसा भिक्षु ही **धर्माभ्यासी** कहलाता है।

७. ...पूर्वसूत्रवत्...। *[विगत सूत्र के अन्तिम पैरा के अनुसार विस्तार समझ लें।]* ●

५. प्रथम योधाजीवसूत्र : : योद्धा के पाँच दुर्गुण एवं गुण

१. ''भिक्षुओ! लोक में ये पाँच प्रकार के योद्धा (सैनिक) दिखायी देते हैं। कौन से पाँच? (१) कोई सैनिक दूर से आती शत्रु की सेना की उड़ती हुई धूल को देखकर खिन्न हो जाता है, दुःखी हो जाता है, शान्त नहीं रहता, युद्ध में नहीं ठहर पाता। भिक्षुओ! लोक में कुछ ऐसे सैनिक भी होते हैं। (१)

२. ''भिक्षुओ! कोई अन्य योद्धा दूर से आती शत्रु की सेना की उड़ती हुई धूल से तो नहीं डरता, परन्तु सेना के समीप आने पर उसकी ध्वजा को देखर डर जाता है, खिन्न होता है, शान्त नहीं रहता, युद्ध से भाग खड़ा होता है। भिक्षुओ! ...पूर्ववत्...। (२)

३. ''भिक्षुओ! कोई सैनिक शत्रुसेना की धूल से या ध्वजा से तो नहीं डरता, परन्तु उसको

ओतरितुं। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, [B.79] ततियो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो सहति रजग्गं, सहति धजग्गं, सहति उस्सारणं; अपि च खो सम्पहारे हञ्ञति ब्यापज्जति। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो सहति रजग्गं, सहति [N.351] धजग्गं, सहति उस्सारणं, सहति सम्पहारं। सो तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा [R.90] विजितसङ्गामो तमेव सङ्गामसीसं अज्झावसति। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च योधाजीवा सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

६. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चिमे योधाजीवूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु रजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं। सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। किमस्स रजग्गस्मिं? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुणाति—'अमुकस्मिं नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा कुमारी वा अभिरूपा दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता' ति। सो तं सुत्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति,

---

अपनी ओर आते सुनकर डर जाता है, खिन्न होता है, शान्त नहीं रह पाता, युद्ध से भाग खड़ा होता है। भिक्षुओ! ...पूर्ववत्...। (३)

४. ''भिक्षुओ! कोई सैनिक धूल, ध्वजा तथा उनके आगमन की बात देख सुनकर तो भय नहीं मानता; परन्तु उस शत्रुसेना का आक्रमण होते ही युद्ध में ठहर नहीं पाता, वहाँ आहत हो कर मर जाता है। भिक्षुओ! ...पूर्ववत्...। (४)

५. ''भिक्षुओ! कोई सैनिक शत्रु सेना की धूल, ध्वजा, आगमन, उनके आक्रमण से भय न मानता। शत्रु से उस युद्ध को जीत कर भी रणभूमि में ही रुका रह जाता है। भिक्षुओ! ये पाँच प्रकार के सैनिक लोक में दिखायी दते हैं। (५)

६. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! इन उपर्युक्त पञ्चविध सैनिकों के सदृश पाँच प्रकार के भिक्षु भी सङ्घ में दिखायी देते हैं। कौन से पाँच?

(१) कोई भिक्षु दूर उड़ती हुई धूल को देखकर ही खिन्न हो जाता है, दुःखी हो जाता है, शान्त नहीं रह पाता तथा उसका धर्मसाधना में चित्त स्थिर नहीं रहता। इस प्रकार वह धर्मसाधना में दुर्बल होकर पुनः गृहस्थ धर्म स्वीकार कर लेता है। भिक्षुओ! यह 'उड़ती हुई धूल' (रजग्ग) क्या है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु दूर से सुनता है—'अमुक ग्राम या कस्बे में कोई स्त्री या कुमारी सुन्दर, दर्शनीय, नयनाभिराम, परम रूपवती है'। वह यह सुनकर खिन्न हो उठता है, चञ्चल हो उठता है, रुक नहीं पाता, तब उसका धर्मसाधना में भी मन नहीं लगता। तब वह धर्मसाधना

न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं। सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। इदमस्स रजग्गस्मिं।

''सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो रजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, पठमो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

७. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सहति रजग्गं; अपि च खो धजग्गञ्ञेव दिस्वा [B.80] संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं। सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। किमस्स धजग्गस्मिं? इध, भिक्खवे, भिक्खु न हेव खो सुणाति—'अमुकस्मिं नाम गामे वा निगमे वा इत्थी वा कुमारी वा अभिरूपा दस्सनीया पासादिका परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागता' ति; अपि च खो सामं पस्सति इत्थिं वा कुमारिं वा अभिरूपं दस्सनीयं पासादिकं परमाय [N.352,R.91] वण्णपोक्खरताय समन्नागतं। सो तं दिस्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं। सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। इदमस्स धजग्गस्मिं।

''सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो सहति रजग्गं; अपि च खो धजग्गञ्ञेव दिस्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं; तथूपमाहं,

---

त्यागकर पुनः गृहस्थ धर्म में लौट जाता है। भिक्षुओ! यह कहलाती है—'रजग्ग' (उड़ती हुई धूल)।

''भिक्षुओ! जैसे कोई सैनिक शत्रु सैनिकों की उड़ती हुई धूल को देखकर खिन्न हो उठता है... वह युद्ध से भाग जाता है; भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को भी उस सैनिक के समान मानता हूँ। भिक्षुओ! ऐसा भी कोई पुद्गल होता है। भिक्षुओ! यह उस प्रथम सैनिक के समान भिक्षुओं में भी पुद्गल होता है। (१)

७. पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु इस उपर्युक्त 'उड़ती हुई धूल' को तो सह लेता है, परन्तु 'ध्वजाग्र' को नहीं सहन कर पाता; अपितु वह उसे देखकर ही खिन्न हो उठता है, दुःखी एवं उद्विग्न हो जाता है, धर्मसाधना में टिक नहीं पाता; अन्त में वह धर्मसाधना छोड़कर पुनः गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट हो जाता है। भिक्षुओ! यह 'ध्वजाग्र' क्या होता है? भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी से यह तो नहीं सुनता कि अमुक ग्राम में कोई सुन्दर रूपवती स्त्री या कुमारी है, अपितु स्वयं किसी रूपवती सुन्दर स्त्री या कुमारी को कहीं आसपास देख लेता है, वह उसे देखकर उस पर मुग्ध होता हुआ उद्विग्न एवं खिन्न हो उठता है, उसका चित्त स्थिर नहीं रहता। अन्त में वह यह धर्मसाधना छोड़ देता है। इस तरह वह साधना छोड़कर पुनः गृहस्थ में जा मिलता है। यह हुआ इसका 'ध्वजाग्र'।

''भिक्षुओ! जैसे कोई सैनिक शत्रुसैनिकों की उड़ती हुई धूल को देखकर न डरता हुआ भी उनके ध्वजाग्र को देखकर डरने लगता है ... युद्ध हेतु वहाँ ठहर नहीं पाता, वैसा ही मैं इस पुद्गल

भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, दुतियो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

८. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सहति रजग्गं, सहति धजग्गं; अपि च खो उस्सारणञ्ञेव सुत्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं। सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। किमस्स उस्सारणाय? इध, भिक्खवे, भिक्खुं अरञ्ञगतं वा रुक्खमूलगतं वा सुञ्ञागारगतं वा मातुगामो उपसङ्कमित्वा उहसति उल्लपति उज्जग्घति उप्पण्डेति। सो मातुगामेन उहसियमानो उल्लपियमानो उज्जग्घियमानो उप्पण्डियमानो संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं। सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति। इदमस्स उस्सारणाय।

"सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो सहति रजग्गं, सहति धजग्गं; अपि च खो उस्सारणञ्ञेव सुत्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति, न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो, पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, ततियो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

९. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सहति रजग्गं, सहति धजग्गं, सहति उस्सारणं; अपि च खो सम्पहारे हञ्ञति ब्यापज्जति। किमस्स सम्पहारस्मिं? इध, [B.81, R.92] भिक्खवे, भिक्खुं अरञ्ञगतं वा रुक्खमूलगतं वा सुञ्ञागारगतं वा मातुगामो उपसङ्कमित्वा

को समझता हूँ। ऐसा भी, भिक्षुओ! कोई पुद्गल होता है। भिक्षुओ! इस द्वितीय सैनिक के समान भिक्षुओं में भी ऐसा पुद्गल होता है। (२)

८. "पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'रजग्ग' एवं 'धजग्ग' को तो सह लेता है, परन्तु 'उत्सारण' को नहीं सह पाता, वह उसके विषय में सुनकर खिन्न होता है, ...पूर्ववत्... गृहस्थ में जा मिलता है। यह 'उत्सारण' क्या है? भिक्षुओ! यहाँ अरण्य में या किसी वृक्ष के नीचे साधना करते हुए किसी भिक्षु के पास कोई स्त्री आकर उससे हास परिहास करने लगे, प्रेमयुक्त संल्लाप करने लगे, अश्लील हाव भाव करने लगे। वह भिक्षु उस स्त्री के हास परिहास से, प्रेममय संल्लाप से, अश्लील हाव भाव से उद्विग्न होकर, खिन्न होकर, धर्मसाधना में समर्थ न रह जाय...गृहस्थ में पुनः जा मिले। यह कहलाता है इसका उत्सारण।

भिक्षुओ! जैसे वह सैनिक रजग्ग, धजग्ग को सह लेता है, परन्तु 'उत्सारण' को नहीं सह पाता... और रणभूमि से भाग जाता है; वैसे ही, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को कहता हूँ। यहाँ कोई ऐसा भी पुद्गल होता है। भिक्षुओ! इस तृतीय सैनिक के समान भिक्षुओं में कोई भिक्षु भी होता है। (३)

९. "पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'रजग्ग', 'धजग्ग' एवं 'उत्सारण' को सह लेता है, परन्तु सम्मुख युद्ध (सम्प्रहार) में मार खा जाता है। भिक्षुओ! यह 'सम्प्रहार' क्या होता है? भिक्षुओ! अरण्य में किसी वृक्ष के नीचे या किसी एकान्त गृह में साधनारत किसी भिक्षु के पास कोई स्त्री आकर बैठ जाय, उसके पास लेट जाय, या उसके शरीर से लिपट जाय। वह भिक्षु उस स्त्री की इन

[N.353] अभिनिसीदति अभिनिपज्जति अज्झोत्थरति। सो मातुगामेन अभिनिसीदियमानो अभिनिपज्जियमानो अज्झोत्थरियमानो सिक्खं अपच्चक्खाय दुब्बल्यं अनाविकत्वा मेथुनं धम्मं पटिसेवति। इदमस्स सम्पहारस्मिं।

"सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो सहति रजग्गं, सहति धजग्गं, सहति उस्सारणं, अपि च खो सम्पहारे हञ्ञति ब्यापज्जति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

१०. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु सहति रजग्गं, सहति धजग्गं, सहति उस्सारणं, सहति सम्पहारं, सो तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा विजितसङ्गामो तमेव सङ्गा-मसीसं अज्झावसति। किमस्स सङ्गामविजयस्मिं? इध, भिक्खवे, भिक्खु अरञ्ञगतं वा रुक्खमूलगतं वा सुञ्ञागारगतं वा मातुगामो उपसङ्कमित्वा अभिनिसीदति अभिनिपज्जति अज्झोत्थरति। सो मातुगामेन अभिनिसीदियमानो अभिनिपज्जियमानो अज्झोत्थरियमानो विनिवेठेत्वा विनिमोचेत्वा येन कामं पक्कमति। सो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं।

"सो अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय विगताभिज्झेन चेतसा विहरति, अभिज्झाय चित्तं परिसोधेति; ब्यापादपदोसं पहाय

क्रियाओं से उसमें आसक्त होकर धर्मसाधना छोड़कर उसके साथ गार्हस्थ्य स्वीकार कर ले। भिक्षुओ! इसे कहते हैं—सम्प्रहार।

जैसे, भिक्षुओ! वह सैनिक 'रजग्ग', 'धजग्ग', और 'उत्सारण' को सह लेता है, परन्तु वह सम्मुख युद्ध में मार खा जाता है (पराजित हो जाता है); उसी के समान मैं इस पुद्गल को भी मानता हूँ। यहाँ भिक्षुओ! ऐसा भी पुद्गल होता है। भिक्षुओ! यह उस चतुर्थ सैनिक के समान कोई पुद्गल भिक्षुओं में भी होता है। (४)

१०. तथा, भिक्षुओ! कोई भिक्षु उस 'रजग्ग' को भी, 'धजग्ग' को भी, 'उत्सारण' को भी तथा 'सम्प्रहार' को भी सह लेता है और वह उस युद्ध को जीतकर उसी रणयुद्ध में ठहर जाता है। यह 'रणयुद्ध में ठहरना' (संग्रामविजय) क्या कहलाता है? यहाँ किसी अरण्य में किसी वृक्ष के नीचे या किसी शून्य गृह में साधना करते हुए भिक्षु के पास आकर कोई स्त्री आकर बैठ जाय, या उसके पास लेट जाय। तब वह साधक भिक्षु उस पास में बैठी हुई या लेटी हुई स्त्री को छोड़कर तत्काल साधना से उठकर चल दे। वह अन्यत्र किसी अरण्य के वृक्ष के नीचे, या किसी पर्वत की कन्दरा में, गुफा में, श्मशान में, वन के किसी भाग में या एकान्त में पलाल (तृण) राशि बिछा कर साधनारत हो जाय।

"वह अरण्य में जाकर वृक्ष के नीचे, या शून्य गृह में आसन लगाकर अपनी काया को सहज रूप में रख, स्मृति को उपस्थित कर साधना में लग जाता है। वह लोक में सभी प्रकार के प्रलोभन

अब्यापन्नचित्तो विहरति, सब्बपाणभूतहितानुकम्पी ब्यापादपदोसा चित्तं परिसोधेति; थीनमिद्धं पहाय विगतथीनमिद्धो विहरति आलोकसञ्ञी सतो सम्पजानो, थीनमिद्धा चित्तं परिसोधेति; उद्धच्चकुक्कुच्चं पहाय अनुद्धतो विहरति अज्झत्तं वूपसन्तचित्तो, उद्धच्चकुक्कुच्चा चित्तं परिसोधेति; विचिकिच्छं पहाय तिण्णविचिकिच्छो विहरति अकथङ्कथी कुसलेसु धम्मेसु, विचिकिच्छाय चित्तं परिसोधेति। सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि ...पे०... [R.93] चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

''सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतू- [N.354,B.82] पक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं दुक्खनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति, 'इमे आसवा' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवसमुदयो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधो' ति यथाभूतं पजानाति, 'अयं आसवनिरोधगामिनी पटिपदा' ति यथाभूतं पजानाति। तस्स एवं जानतो एवं पस्सतो कामासवा पि चित्तं विमुच्चति, भवासवा पि चित्तं विमुच्चति, अविज्जासवा पि चित्तं विमुच्चति, विमुत्तस्मिं विमुत्तमिति ञाणं होति। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति। इदमस्स सङ्गामविजयस्मिं।

''सेय्यथापि, सो, भिक्खवे, योधाजीवो सहति रजग्गं, सहति धजग्गं, सहति

छोड़कर निर्लोभ चित्त से साधना करता है, लोभ को अपने चित्त से हटाता है। द्वेष को हटाकर निर्द्वेष चित्त होकर साधना करता है; तथा सभी प्राणियों पर दयाभाव रखता हुआ द्वेष से चित्त तो सर्वथा हटा लेता है। आलस्य को छोड़कर निरलस होकर उत्साह एवं स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ साधना करता हुआ अपने चित्त को आलस्य से दूर करता है। औद्धत्य एवं कौकृत्य से अपने चित्त को शुद्ध करता है। विचिकित्सा (सन्देह) को दूर हटाकर असन्दिग्ध होकर किसी से विवाद न करता हुआ सन्देह से चित्त को शुद्ध करता है। वह इन चित्त के क्लेशरूप तथा प्रज्ञा को दुर्बल करने वाले पाँचों नीवरणों को त्याग कर कामभोगों से दूर रहता हुआ ...पूर्ववत्... साधना करता है।

''इस तरह वह अपने चित्त के परिशुद्ध, पर्यवदात, निर्विकार, क्लेशरहित, मृदु, स्थित एवं अचञ्चल हो जाने पर उसको आश्रवों के क्षय में लगाता है। वह 'यह दुःख है', 'यह दुःखसमुदय है', 'यह दुःखनिरोध है', 'यह दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है'—इस चतुष्टय को यथार्थतः जान लेता है। 'ये आश्रव हैं', 'यह आश्रवसमुदय है', 'यह आश्रवनिरोध है', 'यह आश्रवनिरोधगामिनी प्रतिपदा है'—इस चतुष्टय को जानता है। उसके इस प्रकार जान लेने एवं साक्षात्कार कर लेने पर कामाश्रवों, भवाश्रवों एवं अविद्याश्रवों से उसका चित्त विमुक्त हो जाता है। विमुक्त होने पर 'वह विमुक्त हो गया'—ऐसा जान जाता है। ...पूर्ववत्... इसे कहते हैं—'संग्रामविजय'।

''जैसे, भिक्षुओ! कोई योद्धा शत्रु के धूल, ध्वजा, आक्रमण एवं प्रत्यक्ष युद्ध—सबका

उस्सारणं, सहति सम्पहारं, सो तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा विजितसङ्गामो तमेव सङ्गामसीसं अज्झावसति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च योधाजीवूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसू'' ति॥ ●

६. दुतिययोधाजीवसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, योधाजीवा सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, एकच्चो योधाजीवो असिचम्मं [R.94] गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति। सो तस्मिं सङ्गामे उस्सहति वायमति। तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, पठमो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं [B.83] सन्नय्हित्वा वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति। सो तस्मिं सङ्गामे उस्सहति वायमति। तमेनं [N.355] उस्सहन्तं वायमन्तं परे उपलिक्खन्ति, तमेनं अपनेन्ति; अपनेत्वा ञातकानं नेन्ति। सो ञातकेहि नीयमानो अप्पत्वा व ञातके अन्तरामग्गे कालं करोति। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, दुतियो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति। सो तस्मिं सङ्गामे उस्सहति वायमति। तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे उपलिक्खन्ति, तमेनं अपनेन्ति; अपनेत्वा ञातकानं नेन्ति। तमेनं

सामना करता हुआ उस युद्ध को जीतकर उसी रणभूमि में ठहर जाता है; वैसे ही, भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। भिक्षुओ! इस पञ्चम योद्धा के समान पुद्गल भिक्षुओ में भी होता है।'' (५)

''भिक्षुओ! योद्धाओं के समान ये पाँच प्रकार के पुद्गल भिक्षुओं में भी होते हैं॥'' ●

६. द्वितीय योधाजीवसूत्र : : पञ्चविध सैनिकतुल्य भिक्षु

१. ''भिक्षुओ! पाँच प्रकार के योद्धा लोक में देखे जाते हैं। कौन से पाँच?

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई योद्धा ढाल तलवार लेकर, धनुष् बाण लेकर, कवच पहनकर रणभूमि में उतरता है। उसे वहाँ उत्साह एवं साहसपूर्वक लड़ते हुए को दूसरे मार देते हैं। ऐसा भी, भिक्षुओ! कोई सैनिक होता है। भिक्षुओ! यह **प्रथम प्रकार का योद्धा** लोक में देखा जाता है। (१)

२. पुनः, भिक्षुओ! कोई योद्धा... उतरता है। इस तरह रणभूमि में उतर कर उत्साह एवं साहसपूर्वक युद्ध करते हुए शत्रु आहत (घायल) कर देते हैं। तदनन्तर उसके सम्बन्धियों को सौंप देते हैं। सम्बन्धी उसको घर पर लावें, इसी बीच, मार्ग में ही वह मर जाता है। भिक्षुओ! ऐसा भी एक योद्धा होता है। यह **दूसरे प्रकार का योद्धा** भी लोक में देखा जाता है। (२)

३. पुनः, भिक्षुओ! कोई योद्धा ... सौंप देते हैं। सम्बन्धिजन उसकी सेवा, परिचर्या,

ञातका उपट्ठहन्ति परिचरन्ति। सो ञातकेहि उपट्ठहियमानो परिचरियमानो तेनेव आबाधेन कालं करोति। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, ततियो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति। सो तस्मिं सङ्गामे उस्सहति वायमति। तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे उपलिक्खन्ति, तमेनं अपनेन्ति; अपनेत्वा ञातकानं नेन्ति। तमेनं ञातका उपट्ठहन्ति परिचरन्ति। सो ञातकेहि उपट्ठहियमानो परिचरियमानो वुट्ठाति तम्हा आबाधा। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति। सो तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा विजितसङ्गामो तमेव सङ्गामसीसं अज्झावसति। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो योधाजीवो होति। [R.95] अयं, भिक्खवे, पञ्चमो योधाजीवो सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

''इमे खो, भिक्खवे, पञ्च योधाजीवा सन्तो संविज्जमानो लोकस्मिं।

६. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चिमे योधाजीवूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसु। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरति। सो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय तमेव गामं वा निगमं वा [B.84]

चिकित्सा करते हैं। परन्तु वह, सम्बन्धिजनों द्वारा इतना करने पर भी, मर ही जाता है। भिक्षुओ! ऐसा भी एक योद्धा होता है। यह **तीसरे प्रकार का योद्धा** भी लोक में देखा जाता है। (३)

४. ''पुनः, भिक्षुओ! एक योद्धा ... पूर्ववत्...। वह सम्बन्धिजनों की सेवा-परिचर्या से स्वस्थ हो जाता है। भिक्षुओ! एक ऐसा योद्धा भी होता है। भिक्षुओ! यह **चतुर्थ प्रकार का योद्धा** भी लोक में होता है। (४)

५. ''पुनः, भिक्षुओ! एक योद्धा ... रणभूमि जाता है। वह वहाँ उत्साह एवं साहसपूर्वक युद्ध करता हुआ उस युद्ध को जीतता है तथा उस युद्ध को सदा के लिये समाप्त कर देता है। ऐसा भी, भिक्षुओ! एक योद्धा होता है। भिक्षुओ! यह **पाँचवें प्रकार का योद्धा** भी लोक में देखा जाता है। (५)

''भिक्षुओ! ये पाँच प्रकार के योद्धा लोक में दिखायी देते हैं।

६. ''भिक्षुओ! इन पाँच प्रकार के योद्धाओं के समान ही भिक्षुओं में भी पाँच प्रकार के पुद्गल दिखायी देते हैं। कौन से पाँच?

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु किसी ग्राम या निगम का सहारा लेकर साधना करता है। वह प्रात:काल वस्त्र व्यवस्थित कर पात्र चीवर लेकर ग्राम में भिक्षाहेतु जाता है। वहाँ उसका शरीर, वाणी एवं मन, स्मृति एवं इन्द्रियाँ—सब कुछ अव्यवस्थित ही रहते हैं। उस स्थिति में वह वहाँ

[N.356] पिण्डाय पविसति अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अरक्खितेन चित्तेन अनुपट्ठिताय सतिया असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति मातुगामं दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा। तस्स तं मातुगामं दिस्वा दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा रागो चित्तं अनुद्धंसेति। सो रागानुद्धंसितेन चित्तेन सिक्खं अपच्चक्खाय दुब्बल्यं अनाविकत्वा मेथुनं धम्मं पटिसेवति।

''सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति, सो तस्मिं सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे हनन्ति परियापादेन्ति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, पठमो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु। (७)

७. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरति। सो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय तमेव गामं वा निगमं वा पिण्डाय वा पविसति अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अरिक्खतेन चित्तेन अनुपट्ठिताय सतिया असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति मातुगामं दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा। तस्स तं मातुगामं दिस्वा दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा रागो चित्तं अनुद्धंसेति। सो रागनुद्धंसितेन [R.96] चित्तेन परिडय्हतेव कायेन परिडय्हति चेतसा। तस्स एवं होति—'यन्नूनाहं आरामं गन्त्वा भिक्खूनं आरोचेय्यं—रागपरियुट्ठितोम्हि, आवुसो, रागपरेतो, न सक्कोमि ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं; सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी' ति। सो आरामं गच्छन्तो अप्पत्वा व आरामं अन्तरामग्गे सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति।

''सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा वियूळ्हं सङ्गमं ओतरति, सो तस्मिं सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं

किसी स्त्री को अव्यवस्थित वस्त्रों में देखे। उस स्त्री को उस रूप में देखकर उस भिक्षु का मन रागसम्पृक्त (चञ्चल) हो उठता है। वह चञ्चलचित्त होकर, धर्मसाधना छोड़कर मन में दुर्बलता लाकर पुनः गृहस्थ धर्म के लिये कटिबद्ध हो जाता है।

''जैसे, भिक्षुओ! वह योद्धा ...पूर्ववत्... संग्राम में जाता है, वहाँ उसके शत्रु उसको मार देते हैं, समाप्त कर देते हैं; वैसे ही उस योद्धा के समान ही इस पुद्गल को भी मैं समझता हूँ। भिक्षुओ! उस प्रथम योद्धा के समान यह पुद्गल भिक्षुओं में होता है। (१)

७. ''पुनः, भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु किसी ग्राम या निगम का सहारा लेकर ... वह चञ्चलचित्त होकर यह सोचता है—'क्यों न मैं अपनी यह दुर्बलता विहार में जाकर अपने साथियों को बता दूँ, जिससे वे मुझे धर्मसाधना छोड़ने से रोक सकें।' परन्तु वह विहार में पहुँचने से पूर्व ही धर्ममार्ग छोड़कर गृहस्थ धर्म में लौट जाता है।

''जैसे, भिक्षुओ! कोई योद्धा ...पूर्ववत्... सम्बन्धिजनों द्वारा ले जाया जाता हुआ मार्ग में ही

परे उपलिक्खन्ति, तमेनं अपनेन्ति; अपनेत्वा ञातकानं नेन्ति। सो ञातकेहि नीयमानो अप्पत्वा व ञातके अन्तरामग्गे कालं करोति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं [B.85] वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, दुतियो [N.357] योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु। (२)

८. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरति। सो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय तमेव गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अरक्खितेन चित्तेन अनुपट्ठिताय सतिया असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति मातुगामं दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा। तस्स तं मातुगामं दिस्वा दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा रागो चित्तं अनुद्धंसेति। सो रागानुद्धंसितेन चित्तेन परिडय्हतेव कायेन परिडय्हति चेतसा। तस्स एवं होति—'यन्नूनाहं आरामं गन्त्वा भिक्खूनं आरोचेय्यं—रागपरियुट्ठितोम्हि, आवुसो, रागपरेतो, न सक्कोमि ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं; सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी' ति। सो आरामं गन्त्वा भिक्खूनं आरोचेति—'रागपरियुट्ठितोम्हि, आवुसो, रागपरेतो, न सक्कोमि ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं; सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी' ति।

''तमेनं सब्रह्मचारी ओवदन्ति अनुसासन्ति—'अप्पस्सादा, आवुसो, कामा [R.97] वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। अट्ठिकङ्कलूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। मंसपेसूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। तिणुक्कूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। अङ्गारकासूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। सुपिनकूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा,

---

मर जाता है, भिक्षुओ! इस पुद्गल को भी मैं वैसा ही मानता हूँ। भिक्षुओ! मैं इस पुद्गल को उस द्वितीय योद्धा के समान मानता हूँ। भिक्षुओ! भिक्षुओ में ऐसा पुद्गल भी देखा जाता है। (२)

८. ''पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु ...पूर्ववत्... चञ्चलचित्त हो जाता है। वह चञ्चलचित्त होकर भी यह विचारता है—'क्यों न मैं अपनी यह दुर्बल मानसिक स्थिति विहार में चलकर अपने साथियों को बता दूँ, जिससे वे इसका कोई उपाय बता दें और मैं धर्मसाधना छोड़ने से विरत हो जाऊँ।' वह विहार में जाकर अपने साथियों को बताता है कि 'मेरा चित्त अमुक स्त्री के राग में आसक्त हो चुका है। कृपया कोई ऐसा उपाय बताइये कि मेरी धर्मसाधना न छूटने पावे।'

''तब उसको साथी भिक्षु यों समझाते हैं—'आयुष्मन्! भगवान् ने बताया है कि ये सांसारिक कामभोग अल्प ही स्वाद वाले हैं, इनके अर्जन में दुःख अधिक है, ये विविध चिन्तादायक हैं, इनमें दोष ही अधिक है। ये कामभोग अस्थिकङ्काल के समान हैं... मांसपेशी के तुल्य हैं... तृणोल्का (घास में लगी अग्नि) के समान हैं... जलते कोयलों के समान हैं... स्वप्न सदृश हैं... माँगे हुए के

बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। याचितकूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थभिय्यो। रुक्खफलूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। असिसूनूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा [B.86] बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। सत्तिसूलूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। सप्पसिरूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा [N.358] बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। अभिरमतायस्मा ब्रह्मचरिये; मायस्मा सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्ती' ति।

''सो सब्रह्मचारीहि एवं ओवदियमानो एवं अनुसासियमानो एवमाह—'किञ्चापि, आवुसो, अप्पस्सादा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो; अथ खो नेवाहं सक्कोमि ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं, सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी' ति। सो सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तति।

''सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा [R.98] वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति, सो तस्मिं सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे उपलिक्खन्ति, तमेनं अपनेन्ति; अपनेत्वा ञातकानं नेन्ति, तमेनं ञातका उपट्ठहन्ति परिचरन्ति। सो ञातकेहि उपट्ठहियमानो परिचरियमानो तेनेव आबाधेन कालं करोति; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, ततियो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

९. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय विहरति। सो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय तमेव गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति अरक्खितेनेव कायेन अरक्खिताय वाचाय अरक्खितेन चित्तेन अनुपट्ठिताय सतिया असंवुतेहि इन्द्रियेहि। सो तत्थ पस्सति मातुगामं दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा। तस्स

समान हैं... वृक्षफलों के समान ही इन कामभोगों को भगवान् ने बताया है। ये तो तलवार एवं भाले की नोंक के समान हैं। ये तो ऐसे हैं जैसे किसी साँप के शिर पर पैर पड़ गया हो। अतः तुम धर्मसाधना में ही लगे रहो। तुम भगवान् की शिक्षा छोड़कर गृहस्थ के जंजाल में पुनः न फँसो।'

''वह साथी भिक्षुओं द्वारा ऐसा समझाये जाने पर उत्तर में कहता है—'भले ही, आयुष्मानो! ये कामभोग अल्प स्वाद वाले ही हैं, तो भी मैं भगवान् के बताये मार्ग को छोड़कर पुनः गृहस्थ में ही लौटूँगा', और वह धर्मशिक्षा के प्रति दुर्बलता दिखाता हुआ पुनः गृहस्थ धर्म में लौट जाता है।

''जैसे, भिक्षुओ! वह तृतीय योद्धा ...पूर्ववत्... सम्बन्धियों को सौंप दिये जाने पर, सम्बन्धियों द्वारा घर लाया जाता हुआ मध्य मार्ग में ही मर जाता है; उसी प्रकार मैं इस पुद्गल को कहता हूँ। भिक्षुओ! यह उस तृतीय योद्धा के समान पुद्गल भिक्षुओं में भी होता है। (३)

९. ''अथ च, भिक्षुओ! कोई भिक्षु ...पूर्ववत्... गृहस्थ धर्म के जंजाल में पुनः न फँसो।

तं मातुगामं दिस्वा दुन्निवत्थं वा दुप्पारुतं वा रागो चित्तं अनुद्धंसेति। सो रागानुद्धंसितेन चित्तेन परिडय्हतेव कायेन परिडय्हति चेतसा। तस्स एवं होति—'यन्नूनाहं आरामं गन्त्वा भिक्खूनं आरोचेय्यं—रागपरियुट्ठितोम्हि, आवुसो, रागपरेतो, न सक्कोमि ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं; सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा भिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी' ति। सो आरामं गन्त्वा भिक्खूनं आरोचेति—'रागपरियुट्ठितोम्हि, आवुसो, रागपरेतो, न [B.87] सक्कोमि ब्रह्मचरियं सन्धारेतुं; सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी' ति।

[N.359] ''तमेनं सब्रह्मचारी ओवदन्ति अनुसासन्ति—'अप्पस्सादा, आवुसो, कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। अट्ठिकङ्कलूपमा कामा वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। मंसपेसूपमा कामा वुत्ता भगवता ...पे०... तिणुक्कूपमा कामा वुत्ता भगवता... अङ्गारकासूपमा कामा... रुक्खफलूपमा... असिसूनूपमा कामा वुत्ता भगवता... सुपिनकूपमा कामा वुत्ता भगवता... याचितकूपमा कामा वुत्ता भगवता... सत्तिसूलूपमा कामा वुत्ता भगवता... सप्पसिरूपमा कामा [R.99] वुत्ता भगवता बहुदुक्खा बहुपायासा, आदीनवो एत्थ भिय्यो। अभिरमतायस्मा ब्रह्मचरिये; मायस्मा सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्ती' ति।

''सो सब्रह्मचारीहि एवं ओवदियमानो एवं अनुसासियमानो एवमाह—'उस्सहिस्सामि, आवुसो, वायमिस्सामि, आवुसो, अभिरमिस्सामि, आवुसो! न दानाहं, आवुसो, सिक्खादुब्बल्यं आविकत्वा सिक्खं पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सामी' ति।

''सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति, सो तस्मिं सङ्गामे उस्सहति वायमति, तमेनं उस्सहन्तं वायमन्तं परे उपलिक्खन्ति, तमेनं अपनेन्ति; अपनेत्वा ञातकानं नेन्ति, तमेनं ञातका उपट्ठहन्ति परिचरन्ति। सो ञातकेहि उपट्ठहियमानो परिचरियमानो वुट्ठाति तम्हा आबाधा; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु।

१०. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं गामं वा निगमं वा उपनिस्साय

''वह साथी भिक्षुओं द्वारा ऐसा समझाये जाने पर कहता है—'मैं धर्मपालन में उत्साह करूँगा, प्रयास करूँगा, साधना में तत्परता दिखाऊँगा। अब, आयुष्मानो! मैं शिक्षा में दुर्बलता नहीं दिखाऊँगा तथा गृहस्थ धर्म में नहीं लौटूँगा।'

''जैसे, भिक्षुओ! कोई योद्धा ...पूर्ववत्... सम्बन्धिजनों की परिचर्या, चिकित्सा से स्वस्थ हो जाता है, मैं इस पुद्गल को उसी के समान मानता हूँ। भिक्षुओ! यहाँ भी ऐसा कोई पुद्गल होता है। भिक्षुओ! इस चतुर्थ योद्धा के समान कोई पुद्गल भिक्षुओं में भी होता है। (४)

१०. ''पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु ... अपनी सुव्यवस्थित काय, वाक् एवं मन, उपस्थित

विहरति। सो पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय तमेव गामं वा निगमं वा पिण्डाय पविसति रक्खितेनेव कायेन रक्खिताय वाचाय रक्खितेन चित्तेन उपट्ठिताय सतिया संवुतेहि [B.88] इन्द्रियेहि। सो चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। [N.360] यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका [R.100] अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति चक्खुन्द्रियं; चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा... घानेन गन्धं घायित्वा... जिव्हाय रसं सायित्वा..., कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। सो पच्छाभत्तं पिण्डपातपटिक्कन्तो विवित्तं सेनासनं भजति अरञ्ञं रुक्खमूलं पब्बतं कन्दरं गिरिगुहं सुसानं वनपत्थं अब्भोकासं पलालपुञ्जं। सो अरञ्ञगतो वा रुक्खमूलगतो वा सुञ्ञागारगतो वा निसीदति पल्लङ्कं आभुजित्वा उजुं कायं पणिधाय परिमुखं सतिं उपट्ठपेत्वा। सो अभिज्झं लोके पहाय ...पे०... सो इमे पञ्च नीवरणे पहाय चेतसो उपक्किलेसे पञ्ञाय दुब्बलीकरणे विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति।

"सो एवं समाहिते चित्ते परिसुद्धे परियोदाते अनङ्गणे विगतूपक्किलेसे मुदुभूते कम्मनिये ठिते आनेञ्जप्पत्ते आसवानं खयञाणाय चित्तं अभिनिन्नामेति। सो 'इदं दुक्खं' ति यथाभूतं पजानाति ...पे०... 'नापरं इत्थत्ताया' ति पजानाति।

"सेय्यथापि सो, भिक्खवे, योधाजीवो असिचम्मं गहेत्वा धनुकलापं सन्नय्हित्वा

स्मृति एवं संयत इन्द्रियों के साथ भिक्षाहेतु प्रविष्ट होता है। वहाँ वह चक्षु से रूप को देखकर भी न उसके कारण से आकृष्ट होता है, न उसके आकार से कि कहीं यह मेरी अनिगृहीत चक्षुरिन्द्रिय के कारण अकुशल पापधर्मों का आवास न बन जाय। अतः वह ऐसे अकुशल धर्मों से अपनी चक्षुरिन्द्रिय को बचाता है, उस पर निग्रह करता है। श्रोत्र से शब्द सुनकर... घ्राण से गन्ध सूँघकर... जिह्वा से रस चखकर... काय से स्प्रष्टव्य विषय का स्पर्श कर... मन से धर्म को जानकर न उसके कारण से आकृष्ट होता है न उसके आकार से कि कहीं यह मेरी अनिगृहीत मन इन्द्रिय के कारण अकुशल पापधर्मों का आवास न बन जाय; अतः वह लोभ द्वेष आदि अकुशल धर्मों से अपनी मन इन्द्रिय को बचाता है, उस पर निग्रह करता है। यह वह भिक्षाचर्या के बाद भोजन कर अरण्य, वृक्षमूल, पर्वत, कन्दरा, गुफा, श्मशान, जंगल में दूर एकान्त, शून्य स्थान में तृणराशि बिछा कर साधना करता है। वह वहाँ अपने शरीर को सीधा कर आसन लगा कर स्मृति के साथ बैठता है। वह लोक में लोभ का त्याग कर ...पूर्ववत्... इन पाँचों नीवरणों को, चित्त के विकारों का जो कि प्रज्ञा को दुर्बल करने वाले हैं, त्याग कर कामभोगों से दूर रहता हुआ ...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधना करता है।

"वह स्वचित्त के परिशुद्ध, पर्यवदात, निर्विकार, निःक्लेश, मृदु, स्थिर एवं अचञ्चल हो

वियूळ्हं सङ्गामं ओतरति, सो तं सङ्गामं अभिविजिनित्वा विजितसङ्गामो तमेव सङ्गामसीसं अज्झावसति; तथूपमाहं भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि। एवरूपो पि, भिक्खवे, इधेकच्चो पुग्गलो होति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो योधाजीवूपमो पुग्गलो सन्तो संविज्जमानो भिक्खूसु। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च योधाजीवूपमा पुग्गला सन्तो संविज्जमाना भिक्खूसू'' ति॥

७. पठमअनागतभयसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, अनागतभयानि सम्पस्समानेन अलमेव आरञ्ञकेन भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन [R.101] विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स [B.89] सच्छिकिरियाय। कतमानि पञ्च? इध, भिक्खवे, आरञ्ञको भिक्खु इति [N.361] पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो एतरहि एकको अरञ्ञे विहरामि। एककं खो पन मं अरञ्ञे विहरन्तं अहि वा मं डंसेय्य, विच्छिको वा मं डंसेय्य, सतपदी वा मं डंसेय्य, तेन मे अस्स कालङ्किरिया, सो ममस्स अन्तरायो; हन्दाहं विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया' ति। इदं, भिक्खवे, पठमं अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव आरञ्ञकेन भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अधिगतस्स अनधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, आरञ्ञको भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो एतरहि एकको अरञ्ञे विहरामि। एकको खो पनाहं अरञ्ञे विहरन्तो उपक्खलित्वा वा

जाने पर उसको आश्रवों के क्षयज्ञान में लगाता है। वह 'यह दुःख है'—ऐसा यथार्थतः जानता है... इससे आगे सम्भव नहीं है—यह भी जानता है।

जैसे, भिक्षुओ! कोई योद्धा ...पूर्ववत्... रणभूमि में ही ठहरा रहता है, भिक्षुओ! वैसा ही मैं इस पुद्गल को मानता हूँ। भिक्षुओ! उस पञ्चम योद्धा के समान कोई पुद्गल यहाँ भी होता है। (५)

''भिक्षुओ! योद्धा के समान ये पाँच पुद्गल भिक्षुओं में उपलब्ध होते हैं॥''

: :

७. प्रथम अनागतभयसूत्र **पाँच अनागत भय**

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच भय देखते हुए आरण्यक भिक्षु द्वारा अप्रमत्त, उद्योगरत, सावधान होकर अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, न देखे हुए के साक्षात्कार के लिये साधना की जाती है। कौन से पाँच?

''यहाँ, भिक्षुओ! कोई आरण्यक भिक्षु यह सोचता है—'मैं इस समय अकेला ही इस अरण्य में साधना कर रहा हूँ। इस प्रकार अकेला रहते हुए कोई साँप बिच्छू या कोई कनखजूरा आकर मुझे न काट ले कि मेरी उस कारण मृत्यु हो जाय, तो क्यों न मैं उससे पूर्व ही, अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर अप्राप्त की प्राप्ति एवं असाक्षात्कृत के साक्षात्कार हेतु अप्रमत्त होकर साधना में लग जाऊँ।' भिक्षुओ! यह **प्रथम अनागत भय** देखते हुए आरण्यक भिक्षु द्वारा अप्रमत्त ...पूर्ववत्... साधना की जाती है। (१)

(2-31) २. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई आरण्यक भिक्षु यह सोचता है—'मैं इस समय अकेला ही इस

पपतेय्यं, भत्तं वा मे भुत्तं ब्यापज्जेय्य, पित्तं वा मे कुप्पेय्य, सेम्हं वा मे कुप्पेय्य, सत्थका वा मे वाता कुप्पेय्युं, तेन मे अस्स कालङ्किरिया, सो ममस्स अन्तरायो; हन्दाहं विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया' ति। इदं, भिक्खवे, अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, आरञ्ञको भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो एतरहि एकको अरञ्ञे विहरामि। एकको खो पनाहं अरञ्ञे विहरन्तो वाळेहि समागच्छेय्यं, सीहेन वा ब्यग्घेन वा दीपिना वा अच्छेन वा तरच्छेन वा, ते मं जीविता वोरोपेय्युं, तेन मे अस्स कालङ्किरिया, सो ममस्स अन्तरायो; हन्दाहं विरियं आरभामि [R.102] अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया' ति। इदं, भिक्खवे, ततियं अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव आरञ्ञकेन भिक्खुना [B.90] अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

[N.362] ४. ''पुन च परं, भिक्खवे, आरञ्ञको भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो एतरहि एकको अरञ्ञे विहरामि। एकको खो पनाहं अरञ्ञे विहरन्तो माणवेहि समागच्छेय्यं कतकम्मेहि वा अकतकम्मेहि वा, ते मं जीविता वोरोपेय्युं, तेन मे अस्स कालङ्किरिया, सो ममस्स अन्तरायो; हन्दाहं विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया' ति। इदं, भिक्खवे, चतुत्थं

अरण्य में साधना कर रहा हूँ। इस प्रकार अकेला वन में रहता हुआ कहीं फिसल कर गिर जाऊँ, या मेरा खाया पीया न पचे, या मेरे वात, पित्त या कफ—इन तीन दोषों में कोई दोष कुपित होने से शरीर में कोई रोग हो जाय, जिससे मुझको मृत्यु अचानक आकर घेर ले, वह मेरी इस साधना में विघ्न ही कहलायगा। तो क्यों न मैं इससे पूर्व ही अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर अप्राप्त की प्राप्ति एवं असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये अप्रमत्त होकर साधना में लग जाऊँ।' भिक्षुओ! यह **द्वितीय अनागत भय** देखते हुए आरण्यक भिक्षु द्वारा अप्रमत्त होकर ...साधना की जाती है। (२)

३. ''पुनः, भिक्षुओ! कोई आरण्यक भिक्षु यह सोचता है—'मैं इस समय अकेला ही इस अरण्य में साधना कर रहा हूँ। इस प्रकार, एकाकी विहरण करते हुए मुझे किसी विकराल सर्प (या भूत प्रेत) का सामना करना पड़ जाय; सिंह, व्याघ्र, चीता, बघेरा, रींछ कहीं मिल जायँ, वे मेरा जीवन ही समाप्त कर दें, उससे मेरी मृत्यु हो जाय, यह मेरी साधना में विघ्न ही होगा; क्यों न मैं इससे पूर्व ही ...साधना में लग जाऊँ।' भिक्षुओ! यह **तृतीय अनागतभय** देखते हुए आरण्यक भिक्षु द्वारा ... साधना की जाती है। (३)

४. ''पुनः, भिक्षुओ! कोई आरण्यक भिक्षु यह सोचता है—'मैं इस समय ...पूर्ववत्... मेरा ऐसे मनुष्यों से सामना हो जाय जो लूटमार कर चुके हों, या करने जा रहे हों, वे मेरा जीवन भी समाप्त कर दें, इससे मेरी मृत्यु हो जाय, यह कर्म मेरी साधना में विघ्न ही होगा; अतः क्यों न मैं ...

अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव आरञ्ञकेन भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

५. "पुन च परं, भिक्खवे, आरञ्ञको भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो एतरहि एकको अरञ्ञे विहरामि। सन्ति खो पनारञ्ञे वाळा अमनुस्सा, ते मं जीविता वोरोपेय्युं, तेन मे अस्स कालङ्किरिया, सो ममस्स अन्तरायो; हन्दाहं विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया' ति। इदं, भिक्खवे, पञ्चमं अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव आरञ्ञकेन भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

६. "इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च अनागतभयानि सम्पस्समानेन अलमेव आरञ्ञकेन भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया" ति॥ ●

८. दुतियअनागतभयसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, अनागत- [R.103] भयानि सम्पस्समानेन अलमेव भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। कतमानि पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो एतरहि दहरो युवा सुसु काळकेसो भद्रेन योब्बनेन समन्नागतो पठमेन वयसा। होति खो पन सो [N.363,B.91] समयो यं इमं कायं जरा फुसति। जिण्णेन खो पन जराय अभिभूतेन न सुकरं बुद्धानं

साधना में लग जाऊँ।' भिक्षुओ! यह **चतुर्थ अनागत भय** देखते हुए आरण्यक भिक्षु द्वारा ... साधना की जाती है। (४)

५. "पुनः, भिक्षुओ! वह आरण्यक भिक्षु यह सोचता है—'मैं इस समय ...पूर्ववत्... विकराल भूत प्रेत भी रहते हैं। वे मेरा जीवन समाप्त कर दें तो मेरी मृत्यु हो जायगी, यह मेरी साधना में विघ्न होगा; अतः क्यों न मैं इससे पूर्व ही ... साधना में लग जाऊँ।' भिक्षुओ! यह **पञ्चम अनागतभय** देखते हुए आरण्यक भिक्षु द्वारा ...पूर्ववत्... साधना की जाती है। (५)

६. "भिक्षुओ! ये पाँच अनागत भय देखते हुए किसी आरण्यक भिक्षु द्वारा अप्रमत्त होकर उद्योगपूर्वक अप्राप्त की प्राप्ति एवं असाक्षात्कृत को साक्षात् करने के लिये अविलम्ब साधना आरम्भ की जाती है॥" ●

पाँच अनागतभय

: :

८. द्वितीय अनागतभयसूत्र

१. "भिक्षुओ! ये पाँच अनागत भय देखते हुए किसी भिक्षु द्वारा अप्राप्त की... अविलम्ब साधना आरम्भ की जाती है। कौन से पाँच?

"यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यह सोचता है—'अभी मैं तरुण हूँ, युवक हूँ, अल्पायु हूँ, मेरे बाल काले हैं, श्रेष्ठ यौवन से युक्त हूँ, मेरी पहली ही अवस्था है। एक समय वह भी आयगा कि मुझ पर बुढ़ापा (जरा) छा जायगा। वह बुढ़ापा आने पर बुद्धों के उपदेश का पालन सहज नहीं होगा,

सासनं मनसि कातुं, न सुकरानि अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं। पुरा मं सो धम्मो आगच्छति अनिट्ठो अकन्तो अमनापो; हन्दाहं पटिकच्चेव विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय, येनाहं धम्मेन समन्नागतो जिण्णको पि फासुं विहरिस्सामी' ति। इदं, भिक्खवे, पठमं अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'अहं खो एतरहि अप्पाबाधो अप्पातङ्को समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय। होति खो पन सो समयो यं इमं कायं ब्याधि फुसति। ब्याधितेन खो पन ब्याधिना अभिभूतेन न सुकरं बुद्धानं सासनं मनसि कातुं, न सुकरानि अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं। पुरा मं सो धम्मो आगच्छति अनिट्ठो अकन्तो अमनापो; हन्दाहं पटिकच्चेव विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स [R.104] अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय, येनाहं धम्मेन समन्नागतो ब्याधितो पि फासुं विहरिस्सामी' ति। इदं, भिक्खवे, दुतियं अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'एतरहि खो सुभिक्खं सुसस्सं सुलभपिण्डं, सुकरं उञ्छेन पग्गहेन यापेतुं। होति खो पन सो समयो यं दुब्भिक्खं

न अरण्य जैसे शून्य स्थानों में रहना सरल होगा। जब तक वह अनिष्ट, अप्रिय बुढ़ापा आकर मुझको स्पर्श करे, उससे पूर्व ही क्यों न मैं अप्राप्त की प्राप्ति एवं असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये अभी से सतत प्रयास में लग जाऊँ, जिससे उन धर्मों से समन्वित होकर, बुढ़ापा आने पर भी सुखपूर्वक साधना में लगा रह सकूँ'। भिक्षुओ! यह **प्रथम अनागतभय** है, जिसे देखते हुए अप्रमत्त रहता हुआ उद्योगपूर्वक अप्राप्त की प्राप्ति एवं असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये कोई भिक्षु अविलम्ब धर्मसाधना में लग जाता है। (१)

२. पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यह सोचता है—'अभी तो मैं नीरोग हूँ, स्वस्थ हूँ, मेरी पाचनशक्ति भी ठीक है, मैं कैसा भी खाया पीया पचा सकता हूँ, न वह अधिक शीतल है, न उष्ण, वह मेरी साधना में सहायक हो सकती है। अन्यथा एक समय वह भी आ सकता है कि मैं रोगाक्रान्त हो जाऊँ। रोगी होने पर बुद्धों के उपदेश का पालन कठिन हो जायगा। और अरण्य जैसे एकान्त स्थानों में एकाकी रहना भी सुगम नहीं होगा। क्यों न मैं उससे पूर्व ही कि वह अनिष्ट अप्रिय रोग मेरे पास आवे, उस साधना में लग जाऊँ जिससे अप्राप्त की प्राप्ति सम्भव है।' भिक्षुओ! यह **द्वितीय अनागतभय** है जिसको देखते हुए भिक्षु समय रहते ... साधना आरम्भ कर देता है। (२)

३. ''पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यह सोचता है—'अभी तो देश में सुभिक्ष है, भोजन भिक्षा सुलभता से मिल रही है। वह भी समय आ सकता है कि देश में अकाल (दुर्भिक्ष) पड़ जाय जब

होति दुस्सस्सं दुल्लभपिण्डं, न सुकरं उञ्छेन पग्गहेन यापेतुं। दुब्भिक्खे खो पन मनुस्सा येन सुभिक्खं तेन सङ्कमन्ति। तत्थ सङ्गणिकविहारो होति आकिण्णविहारो। सङ्गणिकविहारे खो पन सति आकिण्णविहारे न सुकरं बुद्धानं सासनं मनसि कातुं, न [B.92] सुकरानि अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं। पुरा मं सो धम्मो आगच्छति अनिट्ठो अकन्तो अमनापो; हन्दाहं पटिकच्चेव विरियं आरभामि अप्पत्तस्स [N.364] पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय, येनाहं धम्मेन समन्नागतो दुब्भिक्खे पि फासु विहरिस्सामी' ति। इदं, भिक्खवे, ततियं अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकियाय।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'एतरहि खो मनुस्सा समग्गा सम्मोदमाना अविवदमाना खीरोदकीभूता अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ता विहरन्ति। होति खो पन सो समयो यं भयं होति अटविसङ्कोपो, चक्कसमारूळ्हा जानपदा परियायन्ति। भये खो पन सति मनुस्सा येन खेमं तेन सङ्कमन्ति। तत्थ [R.105] सङ्गणिकविहारो होति आकिण्णविहारो। सङ्गणिकविहारे खो पन सति आकिण्णविहारे न सुकरं बुद्धानं सासनं मनसि कातुं, न सुकरानि अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं। पुरा मं सो धम्मो आगच्छति अनिट्ठो अकन्तो अमनापो; हन्दाहं पटिकच्चेव विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छि-

---

भोजन का एक दाना भी मिलना दुर्लभ हो जायगा। दुर्भिक्ष के समय सभी मनुष्य वहाँ पहुँच जाते हैं जहाँ सुभिक्ष हो। उस समय, इसी कारण, साधनाविहारों में मनुष्यों की भीड़ (जनसम्मर्द) हो जायगी। ऐसे विहार में रहकर बुद्धोपदेशों की साधना करना कठिन हो जायगा। न अरण्य आदि एकान्त स्थान ही सहजता से सुलभ होंगे। तो क्यों न मैं, यह अनिष्ट स्थिति मेरे सामने आवे इससे पूर्व ही, साधना में लग जाऊँ जिससे मैं इस धर्म से समन्वित होकर दुर्भिक्ष का समय भी सरलता से बिता ले जाऊँगा।' भिक्षुओ! यह **तृतीय अनागतभय** है जिसे देखते हुए कोई भी भिक्षु अप्राप्त की प्राप्ति के लिये तथा असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये समय से ही साधना आरम्भ कर देता है। (३)

४. ''पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यह सोचता है—'अभी तो सब मनुष्य ऐक्य भाव से सम्पन्न होकर प्रमोदपूर्वक विना किसी विवाद के दूध जल की तरह मिलाकर रहते हुए परस्पर स्नेहमय दृष्टि से देखते हुए जीवन-यापन कर रहे हैं। आगे चलकर ऐसा भी समय आ सकता है यहाँ कोई ऐसा उपद्रव हो जाय कि लोग गाड़ियों में बैठकर जङ्गलों में भागने लगें। ऐसी स्थिति आने पर लोग शान्तिमय स्थान की ओर जाने लगें। वहाँ मनुष्यों की भीड़ अधिक हो जाय। इससे वहाँ भी स्थान की संकीर्णता हो जायगी। संकीर्ण स्थान में बुद्धोपदेश की साधना सरल नहीं है तथा ऐसे समय में एकान्त अरण्य वनप्रदेशों में जाकर साधना करना भी सुगम नहीं है, अतः क्यों न मैं अभी से इस साधना में लग जाऊँ, जिससे मेरे सामने ऐसी प्रतिकूल स्थिति न आवे। इन धर्मों से समन्वित होने

किरियाय, येनाहं धम्मेन समन्नागतो भये पि फासुं विहरिस्सामी' ति। इदं, भिक्खवे, चतुत्थं अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

५. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु इति पटिसञ्चिक्खति—'एतरहि खो सङ्घो समग्गो सम्मोदमानो अविवदमानो एकुद्देसो फासु विहरति। होति खो पन सो समयो यं सङ्घो भिज्जति। सङ्घे खो पन भिन्ने न सुकरं बुद्धानं सासनं मनसि कातुं, न सुकरानि अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं। पुरा मं सो धम्मो आगच्छति अनिट्ठो अकन्तो अमनापो; हन्दाहं पटिकच्चेव विरियं आरभामि अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय, येनाहं धम्मेन समन्नागतो भिन्ने पि सङ्घे फासुं विहरिस्सामी' ति। इदं, भिक्खवे, पञ्चमं अनागतभयं सम्पस्समानेन अलमेव भिक्खुना [N.365,B.93] अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय।

६. "इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च अनागतभयानि सम्पस्समानेन अलमेव भिक्खुना अप्पमत्तेन आतापिना पहितत्तेन विहरितुं अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाया" ति। ●

९. ततियअनागतभयसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, अनागतभयानि एतरहि [R.106] असमुप्पन्नानि आयतिं समुप्पज्जिस्सन्ति। तानि वो पटिबुज्झितब्बानि; पटि-बुज्झित्वा च तेसं पहानाय वायमितब्बं। कतमानि पञ्च? भविस्सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू अनागत-मद्धानं अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। ते अभावितकाया

पर उक्त भयजनक स्थिति में भी साधनारत रह पाऊँगा।' भिक्षुओ! यह **चतुर्थ अनागतभय** है, जिसे देखते हुए कोई भिक्षु ... समय से ही साधना आरम्भ कर देता है। (४)

५. "पुनः, भिक्षुओ! कोई भिक्षु यह सोचता है—'अभी सङ्घ में एकता है, अतः यह एक लक्ष्य होकर साधना कर रहा है। यदि आगे कभी सङ्घ में मतभेद हो गया तो बुद्धोपदेशों का समझना कठिन हो जायगा, तब अरण्य आदि में जाकर साधना करना भी व्यर्थ हो जायगा। इससे पहले कि वह अनिष्ट, अप्रिय समय आये क्यों न मैं साधना में लग जाऊँ कि ... प्राप्त कर सकूँ जिससे मैं सङ्घ में फूट पड़ने पर भी सुखपूर्वक साधना कर सकूँगा।' भिक्षुओ! यह **पाँचवाँ अनागतभय** है, जिसके कारण, कोई भिक्षु ... समय से ही साधना आरम्भ कर देता है। (५)

६. "भिक्षुओ! ये पाँच अनागतभय देखते हुए किसी भिक्षु द्वारा ... अप्राप्त की अविलम्ब साधना आरम्भ कर दी जाती है॥" ●

९. तृतीय अनागतभयसूत्र : : पाँच अनागतभय

१. "भिक्षुओ! ये पाँच अनागतभय, यद्यपि आज नहीं हैं; परन्तु आगे (भविष्य में) उत्पन्न हो सकते हैं, उनको तुम्हें समझ लेना चाहिये। समझकर उनके प्रहाण के लिये प्रयत्न करना चाहिये। कौन से पाँच?

समाना अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा अञ्ञे उपसम्पा-देस्सन्ति। ते पि न सक्खिस्सन्ति विनेतुं अधिसीले अधिचित्ते अधिपञ्ञाय। ते पि भविस्सन्ति अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। ते अभावितकाया समाना अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा अञ्ञे उपसम्पादेस्सन्ति। ते पि न सक्खिस्सन्ति विनेतुं अधिसीले अधिचित्ते अधिपञ्ञाय। ते पि भविस्सन्ति अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। इति खो, भिक्खवे, धम्मसन्दोसा विनयसन्दोसो; विनयसन्दोसा धम्मसन्दोसो। इदं, भिक्खवे, **पठमं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू अनागतमद्धानं अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। ते अभावितकाया समाना अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा अञ्ञेसं निस्सयं दस्सन्ति। ते पि न सक्खिस्सन्ति विनेतुं अधिसीले अधिचित्ते अधिपञ्ञाय। ते पि भविस्सन्ति अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। ते अभावितकाया समाना अभावितसीला [N.366,B.94] अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा अञ्ञेसं निस्सयं दस्सन्ति। ते पि न सक्खिस्सन्ति विनेतुं अधिसीले अधिचित्ते अधिपञ्ञाय। ते पि भविस्सन्ति अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। इति खो, भिक्खवे, धम्मसन्दोसा विनयसन्दोसो; विनय-सन्दोसा धम्मसन्दोसो। इदं, भिक्खवे, **दुतियं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

''भिक्षुओ! भविष्य में ऐसे भी भिक्षु होंगे जो अपनी काया से, सदाचार से, चित्त एवं प्रज्ञा से संयत (अभ्यस्त) नहीं होंगे। वे ऐसे भिक्षु दूसरे भिक्षुओं को भी उपसम्पदा देंगे। वे भिक्षु भी शील, चित्त तथा प्रज्ञा के विषय में विनीत नहीं होंगे, अत: वे भी अपनी काया, चित्त एवं प्रज्ञा से संयत नहीं होंगे। ये ऐसा होते हुए अन्य भिक्षुओं को भी ऐसा ही बना देंगे। तब वे भी शील, चित्त तथा प्रज्ञा के विषय में विनीत न होंगे। अत: वे भी अपनी काया, चित्त एवं प्रज्ञा से संयत नहीं होंगे। इस प्रकार, भिक्षुओ! धर्म में विकृति आने से विनय (अनुशासन) में विकृति आ जायगी, तथा विनय में विकृति आने से धर्म में विकृति आती चली जायगी। भिक्षुओ! यह **प्रथम अनागतभय** है, जो अभी तो उत्पन्न नहीं है, परन्तु भविष्य में इसके उत्पन्न होने की सम्भावना है। उसे तुमको समझना चाहिये, तथा समझकर उसके प्रहाणहेतु प्रयत्न करना चाहिये। (१)

२. ''पुन:, भिक्षुओ! भविष्य में ऐसे भी भिक्षु होंगे जो अपनी काया, सदाचार, चित्त एवं प्रज्ञा से संयत (विनीत) नहीं होंगे। वे ऐसे होते हुए दूसरे भिक्षुओं को निश्रय (संरक्षण) देंगे। वे निश्रयप्राप्त भिक्षु भी शील, चित्त तथा प्रज्ञा के विषय में विनीत नहीं होंगे। वे भी, अपनी काया चित्त एवं प्रज्ञा से विनीत न होते हुए भी, दूसरों को निश्रय देंगे। वे निश्रयप्राप्त भिक्षु भी शील, चित्त तथा शिक्षा के विषय में विनय न प्राप्त कर सकेंगे, क्योंकि वे भी अभावितकाय, अभावितशील, अभावितचित्त एवं अभावितप्रज्ञ ही होंगे। इस प्रकार, भिक्षुओ! धर्मविकार से विनयविकार एवं

[R.107] ३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू अनागतमद्धानं अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। ते अभावितकाया समाना अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा अभिधम्मकथं वेदल्लकथं कथेन्ता कण्हधम्मं ओक्कममाना न बुज्झिस्सन्ति। इति खो, भिक्खवे, धम्मसन्दोसा विनयसन्दोसो; विनयसन्दोसा धम्मसन्दोसो। इदं, भिक्खवे, **ततियं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू अनागतमद्धानं अभावितकाया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। ते अभावितकाया समाना अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा ये ते सुत्तन्ता तथागतभासिता गम्भीरा गम्भीरत्था लोकुत्तरा सुञ्ञताप्पटिसंयुत्ता, तेसु भञ्ञमानेसु न सुस्सूसिस्सन्ति, न सोतं ओदहिस्सन्ति, न अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेस्सन्ति, न च ते धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञिस्सन्ति। ये पन ते सुत्तन्ता कविता कावेय्या चित्तक्खरा चित्तब्यञ्जना बाहिरका सावकभासिता, तेसु भञ्ञमानेसु सुस्सूसिस्सन्ति, सोतं ओदहिस्सन्ति, अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेस्सन्ति, ते च धम्मे उग्गहेतब्बं परियापुणितब्बं मञ्ञिस्सन्ति। इति खो, भिक्खवे, धम्मसन्दोसा विनयसन्दोसो; विनयसन्दोसा धम्मसन्दोसो। इदं, भिक्खवे, **चतुत्थं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं [N.367] आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

विनयविकार से धर्मविकार होने लगेगा। भिक्षुओ! यह **द्वितीय अनागतभय** है ...पूर्ववत्... प्रयत्न करना चाहिये। (२)

३. ''पुनः भिक्षुओ! भविष्य में ऐसे भी ...पूर्ववत्... संयत नहीं होंगे। वे ऐसे अभावितकाय, अभावितशील, अभावितचित्त एवं अभावितप्रज्ञ होते हुए अभिधर्म का प्रवचन प्रश्नोत्तर शैली से प्रवचन करते हुए कृष्णधर्म (मिथ्यादृष्टि) से सम्पृक्त होने के कारण नहीं समझ पायेंगे। इस प्रकार भी भिक्षुओ! धर्मविकार से विनयविकार एवं विनयविकार से धर्मविकार होने लगेगा। भिक्षुओ! यह **तृतीय अनागतभय** है, जो ... प्रयत्न करना चाहिये। (३)

४. ''पुनः भिक्षुओ! भविष्य में ऐसे भिक्षु भी ...पूर्ववत्...। वे ऐसे होते हुए, तथागत द्वारा उपदिष्ट, गम्भीर, गम्भीर अर्थ वाले, लोकोत्तर, शून्यतापूर्ण सूत्रों का उपदेश होने पर, उनको नहीं सुनना चाहेंगे, उन पर ध्यान नहीं देंगे तथा उन सूत्रों को सुनने योग्य तथा ग्रहण करने योग्य नहीं समझेंगे। न उनके समझने के लिये अपनी बुद्धि का ही उपयोग करेंगे। इसके विपरीत, महाकवियों द्वारा रचित, चित्र विचित्र अक्षरों तथा व्यञ्जनों वाले, बाह्य श्रावकों द्वारा प्रोक्त काव्य ग्रन्थों को सुनना चाहेंगे, उधर ध्यान देंगे, मन एवं बुद्धि लगायेंगे, उन काव्यों में कही गयी बातों को ग्रहण करने योग्य मानेंगे। इस प्रकार, भिक्षुओ! धर्मविकार से विनयविकार एवं विनयविकार से धर्मविकार उद्भूत होगा। भिक्षुओ! यह **चतुर्थ अनागतभय** है, जो ...पूर्ववत्... प्रहाणहेतु प्रयत्न करना चाहिये। (४)

५. "पुन च परं, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू अनागतमद्धानं अभावित- [B.95] काया अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा। ते अभावितकाया समाना [R.108] अभावितसीला अभावितचित्ता अभावितपञ्ञा थेरा भिक्खू बाहुलिका भविस्सन्ति साथलिका ओक्कमने पुब्बङ्गमा पविवेके निक्खित्तधुरा, न विरियं आरभिस्सन्ति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। तेसं पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जिस्सति। सापि भविस्सति बाहुलिका साथलिका ओक्कमने पुब्बङ्गमा पविवेके निक्खित्तधुरा, न विरियं आरभिस्सति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। इति खो, भिक्खवे, **पञ्चमं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

६. "इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च अनागतभयानि एतरहि असमुप्पन्नानि आयतिं समुप्पज्जिस्सन्ति। तानि वो पटिबुज्झितब्बानि; पटिबुज्झित्वा च तेसं पहानाय वायमितब्बं" ति॥ ●

१०. चतुत्थअनागतभयसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, अनागतभयानि एतरहि असमुप्पन्नानि आयतिं समुप्पज्जिस्सन्ति। तानि वो पटिबुज्झितब्बानि; पटिबुज्झित्वा च तेसं पहानाय वायमितब्बं। कतमानि पञ्च? भविस्सन्ति, भिक्खवे, भिक्खू अनागतमद्धानं चीवरे कल्याणकामा। ते चीवरे कल्याणकामा समाना रिञ्चिस्सन्ति पंसुकूलिकत्तं, रिञ्चिस्सन्ति अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि; गामनिगमराजधानीसु

---

५. पुनः भिक्षुओ! भविष्य में ऐसे भिक्षु भी ...पूर्ववत्... भावितप्रज्ञ स्थविर भिक्षु भी लौकिक कर्मों में परिग्रही (बाहुलिक) एवं धार्मिक कर्मों में शिथिल, धर्मातिक्रमण में प्रथम तथा एकान्त साधना में जूआ टेके हुए होकर अप्राप्त की प्राप्ति हेतु असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये प्रयास नहीं करेंगे। उनके पीछे आने वाली जनता भी उनका अनुकरण करेगी, वह भी ... प्रयास नहीं करेगी। भिक्षुओ! इस प्रकार धर्मविकार से विनयविकार एवं विनयविकार से धर्मविकार होता है। भिक्षुओ! यह **पञ्चम अनागतभय** है, जो ... प्रहाण के लिये प्रयास करना चाहिये। (५)

६. "भिक्षुओ! ये पाँच अनागतभय होते हैं; जो अभी तो उत्पन्न नहीं हैं, परन्तु अनागत में उत्पन्न होने की सम्भावना है। इनको समझने का तुम्हें प्रयास करना चाहिये। समझकर इनके प्रहाण का प्रयास करना चाहिये"॥ ●

१०. चतुर्थ अनागतभयसूत्र : : पाँच अनागतभय

१. "भिक्षुओ! ये भी पाँच अनागतभय हैं जिनकी वर्तमान में सत्ता न रहने पर भी भविष्य में उनकी उत्पत्ति की आशङ्का रहती है। उनका तुमको ज्ञान रखना चाहिये तथा उनके विषय में जानकर उनके प्रहाण का प्रयास करना चाहिये। कौन से पाँच?

"भिक्षुओ! भविष्य में ऐसे भी भिक्षु भी होंगे जिनकी चीवरप्राप्ति में विशेष उत्कण्ठा रहेगी। वे इसकी प्राप्ति के लिये धार्मिक पांशुकूल की उपेक्षा करेंगे। इसके लिये वे अरण्य, वन एवं एकान्त

ओसरित्वा वासं कप्पेस्सन्ति, चीवरहेतु च अनेकविहितं अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जिस्सन्ति। इदं, भिक्खवे, **पठमं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

[N.368,R.109] २. ''पुन च परं, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू अनागतमद्धानं पिण्डपाते [B.96] कल्याणकामा। ते पिण्डपाते कल्याणकामा समाना रिञ्चिस्सन्ति पिण्डपातिकत्तं, रिञ्चिस्सन्ति अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि; गामनिगमराजधानीसु ओसरित्वा वासं कप्पेस्सन्ति जिव्हग्गेन रसग्गानि परियेसमाना, पिण्डपातहेतु च अनेकविहितं अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जिस्सन्ति। इदं, भिक्खवे, **दुतियं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू अनागतमद्धानं सेनासने कल्याणकामा। ते सेनासने कल्याणकामा समाना रिञ्चिस्सन्ति रुक्खमूलिकत्तं, रिञ्चिस्सन्ति अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि; गामनिगमराजधानीसु ओसरित्वा वासं कप्पेस्सन्ति, सेनासनहेतु च अनेकविहितं अनेसनं अप्पतिरूपं आपज्जिस्सन्ति। इदं, भिक्खवे, **ततियं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू अनागतमद्धानं भिक्खुनीसिक्खमानासमणुद्देसेहि संसट्ठा विहरिस्सन्ति। भिक्खुनीसिक्खमानासमणुद्देसेहि संसग्गे खो पन, भिक्खवे, सति एतं पाटिकङ्खं—'अनभिरता वा ब्रह्मचरियं चरिस्सन्ति, अञ्ञतरं वा

स्थानों को छोड़कर ग्राम निगम एवं राजधानी में जाकर बस जायेंगे। इसके लिये वे अनुचित कार्य करने से भी भय नहीं मानेंगे। भिक्षुओ! यह **प्रथम अनागतभय** है ...पूर्ववत्... प्रयास करना चाहिये। (१)

२. ''भिक्षुओ! अनागत काल में ऐसे भिक्षु भी होंगे जिनकी भोजनप्राप्ति में अधिक उत्कण्ठा रहेगी। वे इसके लिये भिक्षा करना छोड़ देंगे तथा अरण्य आदि एकान्त स्थानों को छोड़कर ग्राम निगम या राजधानी में जा बसेंगे वहाँ नानाप्रकार के भोजन का स्वाद चखेंगे। तथा इसके लिये वे कुछ अनुचित कर्म करने से भी नहीं डरेंगे। भिक्षुओ! यह **द्वितीय अनागत भय** ...पूर्ववत्... इसके प्रहाण हेतु प्रयास करना चाहिये। (२)

३. ''भिक्षुओ! अनागत काल में कुछ भिक्षु विविध शयनासनों में अधिक रुचि रखेंगे। वे इसके लिये वृक्षमूल आदि का त्याग कर ग्राम निगम राजधानी आदि में जा बसेंगे। एतदर्थ कोई अनुचित कर्म भी करना पड़े तो उसमें नहीं हिचकिचायेंगे। भिक्षुओ! यह **तृतीय अनागत भय** ... इसके प्रहाणहेतु प्रयास करना चाहिये। (३)

४. ''भिक्षुओ! अनागत काल में कुछ भिक्षु भिक्षुणी, श्रामणेरी एवं शिक्षमाणाओं के साथ संसर्ग करने में उत्सुक रहेंगे। भिक्षुओ! उन भिक्षुणी आदि से संसर्ग कर वे भिक्षु यह करेंगे कि या

सङ्किलिट्ठं आपत्तिं आपज्जिस्सन्ति, सिक्खं वा पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सन्ति'। इदं, भिक्खवे, **चतुत्थं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिबुज्झितब्बं; पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, भविस्सन्ति भिक्खू अनागतमद्धानं आरामिकसमणुद्देसेहि संसट्ठा विहरिस्सन्ति। आरामिकसमणुद्देसेहि संसग्गे खो पन, भिक्खवे, सति एतं पाटिकङ्खं—'अनेकविहितं सन्निधिकारपरिभोगं अनुयुत्ता विहरिस्सन्ति [R.110] ओळारिकं पि निमित्तं करिस्सन्ति, पथविया पि हरितग्गे पि'। इदं, भिक्खवे, **पञ्चमं अनागतभयं** एतरहि असमुप्पन्नं आयतिं समुप्पज्जिस्सति। तं वो पटिवुज्झितब्बं; [N.369] पटिबुज्झित्वा च तस्स पहानाय वायमितब्बं।

६. ''इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च अनागतभयानि एतरहि असमुप्पन्नानि आयतिं समुप्पज्जिस्सन्ति। तानि वो पटिबुज्झितब्बानि; पटिबुज्झित्वा च तेसं पहानाय [B.97] वायमितब्बं'' ति॥ ●

योधाजीववग्गो अट्ठमो॥

तस्सुद्दानं

द्वे चेतोविमुत्तिफला, द्वे च धम्मविहारिनो।
योधाजीवा च द्वे वुत्ता, चत्तारो च अनागता ति॥ ●

तो धर्मपालन के प्रति वे अरुचि (उपेक्षा) दिखायेंगे या वे यह धर्म छोड़कर पुन: गृहस्थाश्रम में जा मिलेंगे। भिक्षुओ! यह **चतुर्थ अनागतभय** है... इसके प्रहाणहेतु प्रयास करना चाहिये। (४)

५. ''भिक्षुओ! अनागत काल में कुछ भिक्षु विहार में रहने वाले श्रमण-प्रत्याशियों के साथ संसर्ग बढ़ायेंगे। उनके साथ संसर्ग बढ़ाने से उनको यह आशा रहेगी कि वे उनके साथ शरीरस्पर्श सुखों को भोगेंगे, स्थूल सुखों का अनुभव करेंगे—विहार में भी, खेतों में भी। भिक्षुओ! यह **पञ्चम अनागतभय** है ... इसके प्रहाणहेतु प्रयास करना चाहिये।

६. ''भिक्षुओ! ये पाँच अनागत भय है, जो इस समय अनुत्पन्न होते हुए भी जिनके भविष्य में उत्पन्न होने की आशा है। उनके विषय में तुमको ज्ञान रखना चाहिये। तथा उनको जानकर उनके प्रहाण का प्रयास करना चाहिये॥'' ●

योधाजीववर्ग अष्टम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम चेतोविमुक्तिफलसूत्र, २. द्वितीय चेतोविमुक्तिफलसूत्र, ३. प्रथम धर्मविहारीसूत्र, ४. द्वितीय धर्मविहारीसूत्र, ५. प्रथम युद्धाजीवसूत्र, ६. द्वितीय युद्धाजीवसूत्र, ७. प्रथम अनागतभयसूत्र, ८. द्वितीय अनागतभयसूत्र, ९. तृतीय अनागतभय सूत्र एवं १०. चतुर्थ अनागतभयसूत्र॥ ●

९. थेरवग्गो

१. रजनीयसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? रजनीये रज्जति, दुस्सनीये दुस्सति, मोहनीये मुय्हति, कुप्पनीये कुप्पति, मदनीये मज्जति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? रजनीये न रज्जति, दुस्सनीये [R.111] न दुस्सति, मोहनीये न मुय्हति, कुप्पनीये न कुप्पति, मदनीये मज्जति—इमेहि खो, न भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥ ●

२. वीतरागसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु [B.98] सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च। कतमेहि [N.370] पञ्चहि? अवीतरागो होति, अवीतदोसो होति, अवीतमोहो होति, मक्खी च, पळासी च—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च

---

९. स्थविरवर्ग

१. रजनीयसूत्र : : **पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु साथियों का अप्रिय**

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु साथी भिक्षुओं का अप्रिय, अमनाप, अगौरवास्पद एवं अपूजनीय होता है। कौन से पाँच? (१) जो रागमय धर्मों में राग करता है, (२) द्वेषमय धर्मों में द्वेष करता है, (३) मोहमय धर्मों में मोह करता है, (४) क्रोधमय धर्मों में क्रोध करता है, तथा (५) मदयुक्त धर्मों में मद करता है—इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु ... अपूजनीय होता है।

२. ''परन्तु, भिक्षुओ! जो स्थविर भिक्षु इन पाँच धर्मों से युक्त होता है वह अपने साथियों का प्रिय, मनाप, गौरवास्पद एवं पूजनीय होता है। कौन से पाँच? रागमय धर्मों में राग नहीं करने वाला ...पूर्ववत्... मदयुक्त धर्मों में मद न करने वाला स्थविर भिक्षु ... पूजनीय होता है॥'' ●

२. वीतरागसूत्र : : **पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु साथियों का अप्रिय**

१. भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त...। कौन से पाँच? जो रागयुक्त, द्वेषयुक्त, मोहयुक्त, म्रक्षयुक्त एवं प्रदाशयुक्त होता है—इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु साथियों का ... अप्रिय होता है।

होति मनापो च गरु च भावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? वीतरागो होति, वीतदोसो होति, वीतमोहो होति, अमक्खी च, अपळासी च—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥

३. कुहकसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? कुहको च होति, लपको च, नेमित्तिको च, निप्पेसिको च, लाभेन च लाभं निजिगीसिता—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं [R.112] पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? न च कुहको होति, न च लपको, न च नेमित्तिको, न च निप्पेसिको, न च लाभेन लाभं निजिगीसिता—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥

४. अस्सद्धसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो होति, अहिरिको होति, अनोत्तप्पी होति, कुसीतो होति, दुप्पञ्ञो होति— [B.99]

---

२. भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से रहित...। कौन से पाँच? जो राग से, द्वेष से, मोह से, म्रक्ष से एवं प्रदाश से रहित होता है—वह इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु साथियों का प्रिय एवं पूजनीय होता है॥''

: :

भिक्षु साथियों का अप्रिय

३. कुहकसूत्र

१. ''... पाँच धर्मों से युक्त...। कौन से पाँच? जो कुहक (ठग, ढोंगी) होता है, लपक (व्यर्थ बकवाद करने वाला), शरीर के अङ्गों को देख कर भविष्य बताने वाला, निष्पेषिक (बाजीगर) तथा लाभ से लाभ को चाहनेवाला हो—इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु साथियों का अप्रिय एवं अपूजनीय होता है।

२. ''... पाँच धर्मों से युक्त...। कौन से पाँच? जो ढोंगी नहीं होता, बकवादी नहीं होता, हस्तरेखा आदि देखकर जीविका नहीं कमाता, निष्पेषिक (बाजीगर=ऐन्द्रजालिक) तथा लाभ कमाने वाला नहीं होता— ऐसा स्थविर भिक्षु साथियों का प्रिय... पूजनीय होता है''॥

: :

पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपूजनीय

४. अश्रद्धसूत्र

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से समन्वित स्थविर भिक्षु...। कौन से पाँच? जो रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु नहीं होता, निर्लज्ज होता है, उद्योगी नहीं होता, आलसी होता है, दुर्बुद्धि होता है— इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु साथियों का अप्रिय होता है... अपूजनीय होता है।

[N.371] इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? सद्धो होति, हिरीमा होति, ओत्तप्पी होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥ ●

५. अक्खमसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? अक्खमो होति रूपानं, अक्खमो सद्दानं, अक्खमो गन्धानं, अक्खमो रसानं, अक्खमो [R.113] फोट्ठब्बानं—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? खमो होति रूपानं, खमो सद्दानं, खमो गन्धानं, खमो रसानं, खमो फोट्ठब्बानं—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥ ●

६. पटिसम्भिदाप्पत्तसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? अत्थपटिसम्भिदाप्पत्तो होति, धम्मपटिसम्भिदाप्पत्तो होति, निरुत्तिपटि-

---

२. ... जो रत्नत्रय के प्रति श्रद्धालु होता है, लज्जालु होता है, साधना में उद्योगी होता है, आलस्य नहीं करता, प्रज्ञावान् होता है—ऐसा स्थविर भिक्षु साथियों का प्रिय, पूजनीय होता है'॥ ●

५. अक्षमसूत्र : : ... अप्रिय एवं अपूजनीय

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु...। कौन से पाँच? जो रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श विषयों को यथार्थतः समझने में समर्थ नहीं होता—इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अपने साथियों का प्रिय एवं पूजनीय नहीं होता।

२. भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु... कौन से पाँच? जो रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पर्श विषयों को यथार्थतः जानने में समर्थ है वह इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु अपने साथियों का प्रिय... पूजनीय होता है''॥ ●

६. प्रतिसंविदाप्राप्तसूत्र : : ... प्रिय एवं पूजनीय

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु अपने साथियों का प्रिय... पूज्य होता है। कौन से पाँच? (१) जो अर्थविषयक मीमासापूर्ण ज्ञान, (२) धर्मविषयक मीमासापूर्ण ज्ञान, (३)

सम्भिदाप्पत्तो होति, पटिभानपटिसम्भिदाप्पत्तो होति, यानि तानि सब्रह्मचारीनं उच्चावचानि किङ्करणीयानि तत्थ दक्खो होति अनलसो तत्रुपायाय वीमंसाय समन्नागतो अलं कातुं अलं संविधातुं—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो [B.100, N.372] भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥ ●

७. सीलवन्तसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु; बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं [R.114] केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; कल्याणवाचो होति कल्याण-वाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगळाय अत्थस्स विञ्ञापनिया; चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥ ●

निरुक्तिविषयक मीमांसापूर्ण ज्ञान, (४) प्रतिभानविषयक मीमांसापूर्ण ज्ञान, एवं (५) जो भी अपने साथियों के छोटे बड़े कार्य हो उनको पूर्ण करने में चतुर है, आलस्यरहित है, उनकी प्राप्ति के लिये उपाय करता है—''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु अपने साथियों का प्रिय एवं पूजनीय होता है''॥ ●

... प्रिय एवं पूजनीय

: :

७. शीलवत्सूत्र

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु अपने साथियों का प्रिय एवं पूजनीय होता है। किन पाँच से? (१) वह शीलवान् होता है, प्रातिमोक्षसंवर से युक्त होकर आचार एवं गोचर से समन्वित रहना है, छोटे से छोटे वर्जनीय धर्मों के आचरण में भय मानता है, शिक्षापदों को प्राप्त कर उनका अभ्यास करता है। (२) बहुश्रुत होता है, श्रुत को धारण तथा संग्रह करने वाला होता है। जो धर्म आदि मध्य एवं अन्त सब ओर से कल्याणकारी हैं तथा जो अर्थ एवं व्यञ्जन सहित ज्ञानपूर्ण परिशुद्ध धर्मसाधना का ही बोधन करते हैं— ऐसे धर्म उस को बहुश्रुत होते हैं वाणी से अभ्यस्त होते हैं, भली भाँति चिन्तन एवं मनन किये हुए हैं। (३) वह मङ्गलमय वाणी बोलता है, मङ्गलमय वाणी के सहारे कार्य करता है, सभ्य वाणी युक्त होता है, उसकी बोली हुई वाणी (भाषा) स्पष्ट, निर्दोष अर्थ की बोधक होती है। (४) वह आभिचैतसिक एवं इसी जन्म में सुखपूर्वक साधना किये जा सकने योग्य चार ध्यानों का अतिशय लाभी होता है, पूर्णत: लाभी होता है। (५) वह आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेताविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में प्राप्तकर स्वयं जान कर

८. थेरसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु बहुजनअहिताय पटिपन्नो होति बहुजनअसुखाय बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं। कतमेहि पञ्चहि? थेरो होति रत्तञ्ञू चिरपब्बजितो; ञातो होति यसस्सी सगहट्ठपब्बजितानं बहुजनपरिवारो; लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चय- [B.101] भेसज्जपरिक्खारानं; बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं [N.373] ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया अप्पटिविद्धा; मिच्छादिट्ठिको होति विपरीतदस्सनो, सो बहुजनं सद्धम्मा वुट्ठापेत्वा असद्धम्मे पतिट्ठापेति। थेरो भिक्खु रत्तञ्ञू चिरपब्बजितो इति पिस्स [R.115] दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, ञातो थेरो भिक्खु यसस्सी सगहट्ठपब्बजितानं बहुजनपरिवारो इति पिस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, लाभी थेरो भिक्खु चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं इति पिस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, बहुस्सुतो थेरो भिक्खु सुतधरो सुतसन्निचयो इति पिस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु बहुजनअहिताय पटिपन्नो होति बहुजनअसुखाय बहुनो जनस्स अनत्थाय अहिताय दुक्खाय देवमनुस्सानं।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु बहुजनहिताय पटिपन्नो

साक्षात्कर साधना करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु अपने साथियों का प्रिय होता है, स्नेहभाजन तथा पूजनीय होता है॥ ●

८. स्थविरसूत्र **: : पाँच धर्मों से युक्त अप्रिय एवं प्रिय स्थविर**

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त कोई स्थविर भिक्षु देव मनुष्यों सहित बहुत जनों का अहित एवं असुख कारक होता है। किन पाँच धर्मों से? (१) जो स्थविर बहुत समय का प्रव्रजित होने पर भी लोक में विविध आसक्ति रखता है। (२) ज्ञानी होते हुए भी यशस्वी होने की इच्छा से बहुत से गृहस्थों एवं प्रव्रजितों से अत्यधिक परिचय के कारण अपने यहाँ उनकी भीड़ एकत्र किये रखता है। (३) तथा उनसे चीवर, पिण्डपात एवं शयनासन तथा औषधियों का विविध संग्रह करता रहता है। (४) बहुश्रुत, श्रुत को धारण एवं संग्रह करने वाला होता है; जो धर्म आदि मध्य एवं अन्त में ...पूर्ववत्... परन्तु दृष्टि से उनमें अन्तःप्रवेश नहीं कर पाता। (५) वह मिथ्यादृष्टिक होता है, विपरीतद्रष्टा होता है। वह अनेक जिज्ञासुओं की सद्धर्म से च्युत कर असद्धर्म में प्रतिष्ठित कर देता है।' यह स्थविर भिक्षु ही लोक में विविध आसक्ति रखता है'— यह समझ कर दूसरे लोग भी उसका अनुकरण करते हैं। 'यह स्थविर भिक्षु ज्ञानी होते हुए लौकिक यश की कामना करता है'— यह समझ कर..., 'यह स्थविर भिक्षु लाभ की कामना करता है'—यह समझ कर दूसरे लोग भी इसका अनुकरण करने लगते हैं। इस प्रकार, इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु देव मनुष्यों सहित बहुत जनों के लिये अहित एवं असुखकारक हो जाता है। (१)

२. (इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! कोई स्थविर भिक्षु इन पाँच धर्मों से युक्त होकर देव

होति बहुजनसुखाय बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। कतमेहि पञ्चहि? थेरो होति रत्तञ्ञू चिरपब्बजितो; ञातो होति यसस्सी सगहट्ठपब्बजितानं बहुजनपरिवारो; लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं; बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; सम्मादिट्ठिको होति अविपरीतदस्सनो, सो बहुजनं असद्धम्मा वुट्ठापेत्वा सद्धम्मे पतिट्ठापेति। थेरो भिक्खु रत्तञ्ञू चिरपब्बजितो इति पिस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, ञातो थेरो भिक्खु यसस्सी सगहट्ठपब्बजितानं बहुजनपरिवारो इति पिस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, लाभी थेरो भिक्खु चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं इति पिस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति, बहुस्सुतो थेरो भिक्खु सुतधरो सुतसन्निचयो इति पिस्स दिट्ठानुगतिं आपज्जन्ति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु बहुजनहिताय पटिपन्नो होति बहुजनसुखाय बहुनो जनस्स अत्थाय हिताय [B.102,R.116] सुखाय देवमनुस्सानं'' ति। ●

९. पठमसेखसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सेखस्स भिक्खुनो [N.374] परिहानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? कम्मारामता, भस्सारामता, निद्दारामता, सङ्गणिकारामता, यथाविमुत्तं चित्तं न पच्चवेक्खति—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ति।

मनुष्यों सहित बहुत जनों के हित सुख का सम्पादक बन जाता है। किन पाँच धर्मों से? (१) जो स्थविर भिक्षु चिर प्रव्रजित होता हुआ धर्म में आसक्ति रखने लगता है; (२) जो ज्ञानी यशस्वी होकर बहुत से गृहस्थों एवं प्रव्रजितों से धर्मश्रवण हेतु घिरा रहता है; (३) उसको वे चीवर पिण्डपात आदि देने के लिये लालायित रहते हैं; (४) वह बहुश्रुत होता हुआ श्रुत का धारण तथा ग्रहण करने वाला होता है, एवं आदि मध्य तथा अन्त में भी हितकारक धर्मों का... पूर्ववत्... ; (५) वह सम्यग्दृष्टि होता हुआ सद्धर्म के अनुकूल चिन्तन-मनन करता रहता है, इस प्रकार वह स्थविर भिक्षु बहुत जनों को असद्धर्म से हटाकर सद्धर्म-पालन में लगाता है। इस स्थविर भिक्षु के ये ...पूर्ववत्... पाँचों धर्म देखकर बहुत से साधारण लोग भी इसका अनुकरण करने लगते हैं। इन पाँचों धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु देवमनुष्यों सहित बहुत जनों के हित एवं सुख का सम्पादक होता है॥ ●

९. प्रथम शैक्ष्यसूत्र : : पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु के हानिकारक

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु के लिये हानिकारक होते हैं। कौन से पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु (१) कर्म में स्वच्छन्दता, (२) व्यर्थ की बातचीत में स्वच्छन्दता, (३) भीड़ (समूह) में रहने की स्वच्छन्दता, (४) निद्रा में स्वच्छन्दता तथा (५) विमुक्ति की ओर चित्त न लगाना—इन पाँच धर्मों से युक्त होकर कोई शैक्ष्य भिक्षु अपनी हानि ही करता है।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? न कम्मारामता, न भस्सारामता, न निद्दारामता, न सङ्गणिकारामता, यथाविमुत्तं चित्तं पच्चवेक्खति—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ती'' ति॥ •

१०. दुतियसेखसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, सेखो भिक्खु बहुकिच्चो होति बहुकरणीयो वियत्तो किङ्करणीयेसु; रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं, भिक्खवे, पठमो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तति।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, सेखो भिक्खु अप्पमत्तकेन कम्मेन दिवसं अतिनामेति; रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं, भिक्खवे, दुतियो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तति।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, सेखो भिक्खु संसट्ठो विहरति गहट्ठपब्बजितेहि अननुलोमिकेन गिहिसंसग्गेन; रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। [R.117] अयं, भिक्खवे, ततियो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तति।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, सेखो भिक्खु अकालेन गामं पविसति, अतिदिवा पटिक्कमति; रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तति।

---

२. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु की साधना में वृद्धि ही करते हैं। कौन से पाँच? कर्मों में संयम, बातचीत में संयम, भीड़ (जनसम्मर्द) से दूर रहना, निद्रा में संयम तथा विमुक्ति के प्रति चित्त लगाना—भिक्षुओ! ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु की साधना में वृद्धि ही करते हैं॥'' •

१०. द्वितीय शैक्ष्यसूत्र : : शैक्ष्य भिक्षु के पाँच धर्म

१. भिक्षुओ! ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु की साधना में हानिकारक ही सिद्ध हो सकते हैं। कौन से पाँच?

भिक्षुओ! कोई शैक्ष्य (धर्मशिक्षा का प्रत्याशी) भिक्षु बहुत से कर्मजञ्जाल में फँसा रहता है, बहुत से लौकिक कर्मों की पूर्णता में अपनी चतुरता दिखाता है, परन्तु अपनी एकान्त धर्मसाधना त्याग देता है, आध्यात्मिक चेत:समाधि में मन नहीं लगता। भिक्षुओ! यह **पहला धर्म** शैक्ष्य भिक्षु की हानि करता है। (१)

२. ''भिक्षुओ! कोई शैक्ष्य भिक्षु छोटे से कार्य में अपना पूर्ण दिन बिता देता है, और अपनी एकान्त साधना तथा आध्यात्मिक चेत:समाधि में मन नहीं लगाता—भिक्षुओ! यह **द्वितीय धर्म** ...पूर्ववत्... । (२)

३. भिक्षुओ! कोई शैक्ष्य भिक्षु गृहस्थ एवं प्रव्रजितों के लौकिक कार्यों में फँसा हुआ बैठा रहता है, परन्तु अपनी एकान्त साधना में ...पूर्ववत्...। (३)

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, सेखो भिक्खु यायं कथा [N.375,B.103]
अभिसल्लेखिका चेतोविवरणसप्पाया, सेय्यथीदं—अप्पिच्छकथा सन्तुट्ठिकथा पविवेक-
कथा असंसग्गकथा विरियारम्भकथा सीलकथा समाधिकथा पञ्ञाकथा विमुत्तिकथा
विमुत्तिञाणदस्सनकथा, एवरूपिया कथाय न निकामलाभी होति न अकिच्छलाभी न
अकसिरलाभी; रिञ्चति पटिसल्लानं, नानुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं, भिक्खवे,
पञ्चमो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तति।

''इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सेखस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ति। (क)
६. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ति। कतमे
पञ्च? इध, भिक्खवे, सेखो भिक्खु न बहुकिच्चो होति न बहुकरणीयो वियत्तो
किङ्करणीयेसु; न रिञ्चति पटिसल्लानं, अनुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं, भिक्खवे,
पठमो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तति।

७. ''पुन च परं, भिक्खवे, सेखो भिक्खु न अप्पमत्तकेन कम्मेन दिवसं
अतिनामेति; न रिञ्चति पटिसल्लानं, अनुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं, भिक्खवे,
दुतियो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तति।

८. ''पुन च परं, भिक्खवे, सेखो, भिक्खु असंसट्ठो विहरति गहट्ठपब्बजितेहि
अननुलोमिकेन गिहिसंसग्गेन; न रिञ्चति पटिसल्लानं, अनुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं।
अयं, भिक्खवे, ततियो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तति। [R.118]

---

४. ''भिक्षुओ! कोई शैक्ष्य भिक्षु असमय में ग्राम में प्रवेश करता है, दिन बीतने पर पुन: वहाँ
से लौटता है; परन्तु वह अपनी एकान्त साधना में ...पूर्ववत्...। (४)

५. ''भिक्षुओ! कोई शैक्ष्य भिक्षु ऐसी धर्मकथाओं के सुनने में मन नहीं लगाता जो उसके
मन को संसार से मोड़ने वाली हों, सावधान करने वाली हों; जैसे—सन्तोष कथा, अल्पेच्छ कथा,
एकान्तमाहात्म्य कथा, लौकिक कर्मों से सम्बन्ध न रखनेवाली कथा, साधना में प्रयास कथा,
जैसे—शीलकथा, समाधिकथा, प्रज्ञाकथा, विमुक्तिकथा, विमुक्तिज्ञानदर्शनकथा—ऐसी कथाओं के
सुनने में उसका मन नहीं लगता, दिनरात में उनकी ओर कभी नहीं ध्यान देता; तथा अपनी एकान्त
साधना में ...पूर्ववत्...। (५)

''भिक्षुओ! यह पाँचवाँ धर्म है, जिससे सम्पृक्त रहने पर शैक्ष्य भिक्षु की हानि ही होती है।
ये पाँचों ही धर्म शैक्ष्य भिक्षु के लिये हानिकारक ही होते हैं। (क)

...''कोई शैक्ष्य भिक्षु व्यर्थ के कर्मजञ्जाल में नहीं फँसता..., अपितु अपनी साधना में मन
लगाये रहता है ...पूर्ववत्...। यह **पहला धर्म** भिक्षु को साधना वृद्धि करता है। (१)

७. ...''कोई शैक्ष्य भिक्षु किसी छोटे से कार्य में अपना पूरा दिन नहीं बिताता ...पूर्ववत्...।
यह **दूसरा धर्म**...। (२)

८. ...''कोई शैक्ष्य भिक्षु गृहस्थों एवं प्रव्रजितों के लौकिक कार्यों में फँसा हुआ नहीं बैठा
रहता ...पूर्ववत्...। यह **तीसरा धर्म**...। (३)

९. "पुन च परं, भिक्खवे, सेखो भिक्खु न अतिकालेन गामं पविसति, नातिदिवा पटिक्कमति; न रिञ्चति पटिसल्लानं, अनुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ति।

१०. "पुन च परं, भिक्खवे, सेखो भिक्खु यायं कथा अभिसल्लेखिका चेतोविवरणसप्पाया, सेय्यथीदं—अप्पिच्छकथा सन्तुट्ठिकथा पविवेककथा संसग्गकथा [N.376,B.104] विरियारम्भकथा सीलकथा समाधिकथा पञ्ञाकथा विमुत्तिकथा विमुत्तिञाणदस्सनकथा, एवरूपिया कथाय निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; न रिञ्चति पटिसल्लानं, अनुयुञ्जति अज्झत्तं चेतोसमथं। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो धम्मो सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तति। (ख)

"इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सेखस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ती" ति॥

थेरवग्गो नवमो॥

तस्सुद्दानं

रजनीयो वीतरागो, कुहकास्सद्धअक्खमा।
पटिसम्भिदा च सीलेन, थेरो सेखा परे दुवे ति॥

१०. ककुधवग्गो

१. पठमसम्पदासुत्तं : १. "पञ्चिमा, भिक्खवे, सम्पदा। कतमा पञ्च?

---

९. ..."कोई शैक्ष्य भिक्षु असमय में ग्राम में प्रवेश नहीं करता, न दिन बीतने पर वहाँ से लौटता है ...पूर्ववत्...। यह **चतुर्थ धर्म**...। (४)

१०. ..."कोई भिक्षु ऐसी धर्मकथाओं के सुनने में ही अपना मन लगाता है; जैसे—सन्तोष कथा, अल्पेच्छ कथा ...पूर्ववत्... यह **पञ्चम धर्म**...। (५)

भिक्षुओ! ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु की धर्मसाधना में वृद्धि ही करते हैं॥" (ख)

स्थविरवर्ग नवम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. रजनीयसूत्र, २. वीतरागसूत्र, ३. कुहकसूत्र, ४. अश्रद्धसूत्र, ५. अक्षमसूत्र, ६. प्रतिसंविदाप्राप्तसूत्र, ७. शीलवान् सूत्र, ८. स्थविरसूत्र, ९. प्रथम शैक्ष्यसूत्र, एवम् १०. द्वितीय शैक्ष्यसूत्र॥

१०. ककुधवर्ग

१. प्रथम सम्पदासूत्र : : पाँच सम्पदाएँ

१. "भिक्षुओ! ये पाँच सम्पदाएँ होती हैं। कौन सी पाँच? (१) श्रद्धासम्पदा, (२)

सद्धासम्पदा, सीलसम्पदा, सुतसम्पदा, चागसम्पदा, पञ्ञासम्पदा—इमा खो, भिक्खवे, पञ्च सम्पदा'' ति॥

२. दुतियसम्पदासुत्तं : १. ''पञ्चिमा, भिक्खवे, सम्पदा। कतमा पञ्च? [R.119] सीलसम्पदा, समाधिसम्पदा, पञ्ञासम्पदा, विमुत्तिसम्पदा, विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदा—इमा खो, भिक्खवे, पञ्च सम्पदा'' ति॥

३. ब्याकरणसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, अञ्ञाब्याकरणानि। कतमानि पञ्च? मन्दत्ता मोमूहत्ता अञ्ञं ब्याकरोति; पापिच्छो इच्छापकतो अञ्ञं ब्याकरोति; उम्मादा चित्तक्खेपा अञ्ञं ब्याकरोति; अधिमानेन अञ्ञं ब्याकरोति; सम्मदेव अञ्ञं ब्याकरोति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च अञ्ञाब्याकरणानी'' ति॥

४. फासुविहारसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, फासुविहारा। [N.377,B.105] कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु विविच्चेव, कामेहि विवच्च अकुसलेहि धम्मेहि सवितक्कं सविचारं विवेकजं पीतिसुखं पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरति; वितक्कविचारानं वूपसमा ...पे०... दुतियं झानं ... ततियं झानं ... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति; आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च फासुविहारा'' ति॥

शीलसम्पदा, (३) श्रुतसम्पदा, (४) त्यागसम्पदा, (५) प्रज्ञासम्पदा। भिक्षुओ! ये पाँच सम्पदाएँ होती हैं॥''

अपर पाँच सम्पदा

: :

२. द्वितीय सम्पदासूत्र

१. ''भिक्षुओ! ये (भी) पाँच सम्पदा होती हैं। कौन सी पाँच? (१) शीलसम्पदा, (२) समाधिसम्पदा, (३) प्रज्ञासम्पदा, (४) विमुक्तिसम्पदा एवं (५) विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पदा—भिक्षुओ! ये पाँच सम्पदाएँ होती हैं॥''

पाँच ज्ञान-व्याकरण

: :

३. व्याकरणसूत्र

१. ''भिक्षुओ! ज्ञान (शास्त्र) का व्याकरण (व्याख्यान) पाँच प्रकार से होता है। कौन से पाँच? (१) बुद्धि की अल्पता तथा मोह के कारण ज्ञान का व्याख्यान होता है; (२) कोई पापी अपनी इच्छा से ज्ञान का अनुकूल प्रतिकूल (उलटा-सीधा) ज्ञान का अर्थ करने लगे; (३) उन्माद के कारण या चित्तविक्षेप के कारण ज्ञान का विपरीत अर्थ कर दे; (४) अपनी विद्वत्ता के कारण उसका अन्यथा अर्थ करने लगे; तथा (५) कोई उस ज्ञान का उचित (विद्वज्जनसम्मत) अर्थ ही करे। भिक्षुओ! इन पाँच प्रकारों से ज्ञान का व्याकरण होता है॥''

पाँच स्पर्श विहार

: :

४. स्पर्शविहारसूत्र

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच 'स्पर्शविहार' (फासुविहार) कहलाते हैं। कौन से पाँच?

(१) ''यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु कामभोगों से दूर रहकर अकुशल धर्मों से दूर रहकर वितर्क विचारसहित विवेकजन्य प्रीतिसुखमय **प्रथम ध्यान** प्राप्त कर साधना करता है। (२) ...**द्वितीय ध्यान** ... (३) **तृतीय ध्यान** ... (४) **चतुर्थ ध्यान** प्राप्त कर साधना करता है।

५. अकुप्पसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु नचिरस्सेव अकुप्पं पटिविज्झति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अत्थपटिसम्भिदाप्पत्तो [R.120] होति, धम्मपटिसम्भिदाप्पत्तो होति, निरुत्तिपटिसम्भिदाप्पत्तो होति, पटिभान-पटिसम्भिदाप्पत्तो होति, यथाविमुत्तं चित्तं पच्चवेक्खति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु नचिरस्सेव अकुप्पं पटिविज्झती'' ति॥ ●

६. सुतधरसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आनापानस्सतिं आसेवन्तो नचिरस्सेव अकुप्पं पटिविज्झति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अप्पट्ठो होति अप्पकिच्चो सुभरो सुसन्तोसो जीवितपरिक्खारेसु; अप्पाहारो होति अनोदरिकत्तं अनुयुत्तो; अप्पमिद्धो होति जागरियं अनुयुत्तो; बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; यथाविमुत्तं चित्तं पच्चवेक्खति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आनापानस्सतिं आसेवन्तो नचिरस्सेव अकुप्पं पटिविज्झती'' ति॥ ●

[N.378,B.106] **७. कथासुत्तं :** १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आनापानस्सतिं भावेन्तो नचिरस्सेव अकुप्पं पटिविज्झति। कतमेहि पञ्चहि? इध,

---

(५) **आश्रवों के क्षय से अनाश्रव हुई चेतोविमुक्ति** एवं **प्रज्ञाविमुक्ति** को इसी जीवन में स्वयं जानकर, साक्षात् कर, प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! ये पाँच 'स्पर्शविहार' कहलाते हैं॥'' ●

५. अकोप्यसूत्र : : पाँच धर्मों से अकोप्य (स्थिरता) की प्राप्ति

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अकोप्य (मन की स्थिरता) स्थिति को प्राप्त कर लेता है। कौन से पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु (१) अर्थप्रतिसंविदा, (२) धर्मप्रतिसंविदा, (३) निरुक्तिप्रतिसंविदा, (४) प्रतिभानप्रतिसंविदा, एवं (५) यथाविमुक्त चित्त का पर्यवेक्षण— भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु शीघ्र चित्त की स्थिरता को प्राप्त कर लेता है॥'' ●

६. श्रुतधरसूत्र : : अकोप्य की प्राप्ति का अन्य उपाय

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आनापानस्मृति की भावना करता हुआ शीघ्र ही मनःस्थिरता (अकोप्य) को प्राप्त कर लेता है। किन पाँच धर्मों से? (१) भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु थोड़े में ही सन्तुष्ट होनेवाला (अल्पस्थ) होता है, थोड़े ही कर्मों का उत्तरदायित्व वहन करता है, थोड़े में ही पालनीय होता है (सुभर), वह जीवनोपयोगी वस्तुओं में सन्तोषवृत्ति वाला होता है। (२) तथा इतना अल्प आहार लेता है मानो उसके पेट ही न हो। (३) आलस्यरहित होकर सदा जागरणशील रहता है। (४) वह बहुश्रुत, श्रुतधर एवं श्रुत का सञ्चय करने वाला होता है, आदि मध्य अन्त में कल्याण ... दृष्टि से सुप्रतिविद्ध होते हैं। (५) वह विमुक्त हुए चित्त का प्रत्यवेक्षण करता रहता है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आनापानस्मृति की भावना करता हुआ शीघ्र ही अकोप्य की स्थिति में पहुँच जाता है॥'' ●

भिक्खवे, भिक्खु अप्पट्ठो होति अप्पकिच्चो सुभरो सुसन्तोसो जीवित- [R.121]
परिक्खारेसु; अप्पाहारो होति अनोदरिकत्तं अनुयुत्तो; अप्पमिद्धो होति जागरियं अनुयुत्तो;
यायं कथा अभिसल्लेखिका चेतोविवरणसप्पाया, सेय्यथीदं—अप्पिच्छकथा ...पे०...
विमुत्तिञाणदस्सनकथा, एवरूपिया कथा निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिर-
लाभी; यथाविमुत्तं चित्तं पच्चवेक्खति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो
भिक्खु आनापानस्सतिं भावेन्तो नचिरस्सेव अकुप्पं पटिविज्झती'' ति॥ ●

८. आरञ्ञकसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु
आनापानस्सतिं बहुलीकरोन्तो नचिरस्सेव अकुप्पं पटिविज्झति। कतमेहि पञ्चहि? इध,
भिक्खवे, भिक्खु अप्पट्ठो होति अप्पकिच्चो सुभरो सुसन्तोसो जीवितपरिक्खारेसु;
अप्पाहारो होति अनोदरिकत्तं अनुयुत्तो; अप्पमिद्धो होति जागरियं अनुयुत्तो; आरञ्ञको
होति पन्तसेनासनो; यथाविमुत्तं चित्तं पच्चवेक्खति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि
समन्नागतो भिक्खु आनापानस्सतिं बहुलीकरोन्तो नचिरस्सेव अकुप्पं पटिविज्झती'' ति॥

९. सीहसुत्तं : १. ''सीहो, भिक्खवे, मिगराजा सायन्हसमयं आसया निक्खमति;
आसया निक्खमित्वा विजम्भति; विजम्भित्वा समन्ता चतुद्दिसं अनुविलोकेति; समन्ता
चतुद्दिसं अनुविलोकेत्वा तिक्खत्तुं सीहनादं नदति; तिक्खत्तुं सीहनादं नदित्वा गोचराय
पक्कमति। सो हत्थिस्स चे पि पहारं देति सक्कच्चञ्ञेव पहारं देति, नो असक्कच्चं; गवस्स चे पि
महिंसस्स चे पि पहारं देति सक्कच्चञ्ञेव पहारं देति, नो असक्कच्चं;

---

७. कथासूत्र : : **अकोप्य की प्राप्ति का एक अन्य उपाय**

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आनापान स्मृति की भावना करता हुआ
...पूर्वसूत्रवत्... जागरणशील रहता है। (४) चित्त को सांसारिक कर्मों से दूर रखने वाली जो कथाएँ
हैं, जैसे—अल्पेच्छकथा ...पूर्ववत्... १ दिनरात उनमें ध्यान दिये रहता है। (५) विमुक्त हुए चित्त
का यथावसर प्रत्यवेक्षण करता रहता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आनापान स्मृति की
भावना करता हुआ शीघ्र ही अकोप्य की स्थिति में पहुँच जाता है॥'' ●

८. आरण्यकसूत्र : : **पञ्चविध आरण्यक**

१. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... जागरणशील होता है। (४) अरण्य के एकान्त स्थानों पर
जाकर साधना करता है। (५) विमुक्तचित्त का यथावसर प्रत्यवेक्षण करता रहता है। इन पाँच धर्मों
से युक्त भिक्षु ...पूर्ववत्... पहुँच जाता है॥'' ●

९. सिंहसूत्र : : **तथागतोपदेश के पाँच प्रकार**

१. ''भिक्षुओ! मृगराज सिंह सायङ्काल अपनी गुफा से निकलता है; गुफा से निकलकर
जम्हाई लेता है; जम्हाई लेकर अपने चारों ओर देखता है; चारों ओर देखकर तीन बार सिंहनाद
करता है; तीन बार सिंहनाद कर अपने भोजन की खोज में चल देता है। वह सामने आये हाथी पर

---

१. द्र० पीछे इसी निपात के नवम स्थविरवर्ग का **द्वितीय शैक्ष्यसूत्र**।

[N.379,B.107] पहारं देति सक्कच्चञ्ञेव पहारं देति, नो असक्कच्चं; दीपिस्स चे पि पहारं देति सक्कच्चञ्ञेव पहारं देति, नो असक्कच्चं; खुद्दकानं चे पि पाणानं पहारं देति [R.122] अन्तमसो ससबिळारानं पि, सक्कच्चञ्ञेव पहारं देति, नो असक्कच्चं। तं किस्स हेतु? 'मा मे योग्गपथो नस्सा' ति।

२. "सीहो ति खो, भिक्खवे, तथागतस्सेतं अधिवचनं अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स। यं खो, भिक्खवे, तथागतो परिसाय धम्मं देसेति, इदमस्स होति सीहनादस्मिं। भिक्खूनं चे पि, भिक्खवे, तथागतो धम्मं देसेति, सक्कच्चञ्ञेव तथागतो धम्मं देसेति, नो असक्कच्चं; भिक्खुनीनं चे पि, भिक्खवे, तथागतो धम्मं देसेति, सक्कच्चञ्ञेव तथागतो धम्मं देसेति, नो असक्कच्चं; उपासकानं चे पि, भिक्खवे, तथागतो धम्मं देसेति, सक्कच्चञ्ञेव तथागतो धम्मं देसेति, नो असक्कच्चं; उपासिकानं चे पि, भिक्खवे, तथागतो धम्मं देसेति, सक्कच्चञ्ञेव तथागतो धम्मं देसेति, नो असक्कच्चं; पुथुज्जनानं चे पि, भिक्खवे, तथागतो धम्मं देसेति अन्तमसो अन्नभारनेसादानं पि, सक्कच्चञ्ञेव तथागतो धम्मं देसेति, नो असक्कच्चं। तं किस्स हेतु? धम्मगरु, भिक्खवे, तथागतो धम्मगारवो" ति॥ ●

१०. ककुधथेरसुत्तं : १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। तेन खो पन समयेन ककुधो नाम कोळियपुत्तो आयस्मतो महामोग्गल्लानस्स उपट्ठाको अधुनाकालङ्कतो अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो। तस्स एवरूपो अत्तभावपटिलाभो होति—सेय्यथापि नाम द्वे वा तीणि वा मागधकानि गामक्खेत्तानि। सो तेन अत्तभावपटिलाभेन नेव अत्तानं नो परं ब्याबाधेति।

भी प्रहार करता है, एक ही बार प्रहार करता है, बार बार नहीं; भैंसे पर भी प्रहार करता है, वह भी एक ही बार, बार बार नहीं; साँड़ पर भी ... चीते पर भी ... यहाँ तक कि छोटे छोटे प्राणियों पर भी प्रहार करता है, वह भी एक ही बार, बार बार नहीं। वह किसलिये? वह सोचता है कि इस प्रकार बार बार आक्रमण करने से मेरा उचित गौरव तथा परम्परा नष्ट न हो जाय।

२. "भिक्षुओ! उक्त उदाहरण में 'सिंह' शब्द तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का प्रतीक है। भिक्षुओ! तथागत भी परिषद् में जो भी उपदेश करते हैं वह उनका 'सिंहनाद' कहलाता है। वे वहाँ यदि भिक्षुओं को उपदेश करते हैं तो एक ही बार, बार बार नहीं; भिक्षुणियों को ... उपासकों को ... उपासिकाओं को उपदेश करते हैं तो एक ही बार, बार बार नहीं; वे पृथग्जनों को भी उपदेश करते हैं तो एक ही बार, बार बार नहीं। यहाँ तक कि भोजन का अनुमोदन भी वे एक ही बार करते हैं, बार बार नहीं। वह किसलिये? वह इसलिये कि तथागत का यही धर्मगौरव है॥"

१०. ककुधस्थविरसूत्र : : पाँच प्रकार के उपदेशक

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय ककुध नामक कोलियपुत्र, जो कि आयुष्मान् महामौद्गल्यायन का उपस्थापक था, तत्काल ही देह त्याग कर, मरणानन्तर, देवताओं के किसी मनोमय काय में उत्पन्न

२. अथ खो ककुधो देवपुत्तो येनायस्मा महामोग्गल्लानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो ककुधो देवपुत्तो आयस्मन्तं महामोग्गल्लानं एतदवोच—''देवदत्तस्स, भन्ते, [R.123] एवरूपं इच्छागतं उप्पज्जि—'अहं भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सामी' ति। सहचित्तुप्पादा [B.108] च, भन्ते, देवदत्तो तस्सा इद्धिया परिहीनो'' ति। इदमवोच ककुधो देवपुत्तो। इदं [N.380] वत्वा आयस्मन्तं महामोग्गलानं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायि।

३. अथ खो आयस्मा महामोग्गल्लानो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा महामोग्गल्लानो भगवन्तं एतदवोच—

४. ''ककुधो, नाम, भन्ते, कोळियपुत्तो ममं उपट्ठाको अधुनाकालङ्कतो अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो होति। तस्स एवरूपो अत्तभावपटिलाभो—सेय्यथापि नाम द्वे वा तीणि वा मागधकानि गामक्खेत्तानि। सो तेन अत्तभावपटिलाभेन नेव अत्तानं नो परं ब्याबाधेति। अथ खो, भन्ते, ककुधो देवपुत्तो येनाहं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा मं अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठासि। एकमन्तं ठितो खो, भन्ते, ककुधो देवपुत्तो मं एतदवोच— 'देवदत्तस्स, भन्ते, एवरूपं इच्छागतं उप्पज्जि—अहं भिक्खुसङ्घं परिहरिस्सामी ति। सहचित्तुप्पादा च, भन्ते, देवदत्तो तस्सा इद्धिया परिहीनो' ति। इदमवोच, भन्ते, ककुधो देवपुत्तो। इदं वत्वा मं अभिवादेत्वा पदक्खिणं कत्वा तत्थेवन्तरधायी'' ति।

हुआ। उसने वहाँ ऐसा ही शरीर धारण किया जैसे मगध के किसी ग्राम में दो या तीन खेत होते हैं। वह अपने इस शरीर (व्यक्तित्व) से न स्वयं चिन्तित होता था, न किसी अन्य को कोई कष्ट देता था।

२. तब कभी वह ककुध देवपुत्र आयुष्मान् महामौद्गल्यायन के पास आया। तथा उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ककुध देवपुत्र ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से यह कहा—''भन्ते! देवदत्त को यह इच्छा उत्पन्न हुई थी—'मैं नया भिक्षुसङ्घ बनाऊँगा।' परन्तु उसको ऐसी इच्छा उत्पन्न होते ही वह उस ऋद्धि से क्षीण हो गया।'' वह ककुध देवपुत्र आयुष्मान् महामौद्गल्यायन से यह कहकर उनको प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्धान हो गया।

३. तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन भगवान् के सम्मुख गये तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए उनने भगवान् से यों निवेदन किया—

४. ''भन्ते! मेरे एक उपस्थायक ककुध नामक कोलियपुत्र ने अभी यहाँ से देहपात के बाद किसी मनोमय देवकाय में जन्म लिया। वहाँ उसका वह शरीर ऐसा ही है जैसे यहाँ मगध के ग्रामों में किसी के पास दो तीन खेत हुआ करते हैं। वह अपने उस शरीर से न स्वयं चिन्तित है और न किसी अन्य को कोई कष्ट पहुँचाता है। पुनः वह देवपुत्र मेरे पास आया, आकर मुझको प्रणाम कर ... यह बोला—'भन्ते! देवदत्त को यह इच्छा हुई थी—मैं भिक्षुसङ्घ का निर्माण करूँगा, उसको वह इच्छा होते ही साधना से प्राप्त उसकी सभी ऋद्धियाँ क्षीण हो गयीं।' यह कहकर वह ककुध देवपुत्र मुझको प्रणाम प्रदक्षिणा कर वहीं अन्तर्हित हो गया।

५. "किं पन ते, मोग्गल्लान, ककुधो देवपुत्तो चेतसा चेतो परिच्च विदितो— 'यं किञ्चि ककुधो देवपुत्तो भासति सब्बं तं तथेव होति, नो अञ्ञथा''' ति?

"चेतसा चेतो परिच्च विदितो मे, भन्ते, ककुधो देवपुत्तो—'यं किञ्चि ककुधो देवपुत्तो भासति सब्बं तं तथेव होति, नो अञ्ञथा''' ति।

"रक्खस्सेतं, मोग्गल्लान, वाचं! रक्खस्सेतं, मोग्गल्लान, वाचं! इदानि सो मोघपुरिसो अत्तना व अत्तानं पातुकरिस्सति।

६. "पञ्चिमे, मोग्गल्लान, सत्थारो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे [R.124] पञ्च? इध, मोग्गल्लानं, एकच्चो सत्था अपरिसुद्धसीलो समानो 'परिसुद्ध-[N.381,B.109] सीलोम्ही,' ति पटिजानाति 'परिसुद्धं मे सीलं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' ति। तमेनं सावका एवं जानन्ति—'अयं खो भवं सत्था अपरिसुद्धसीलो समानो परिसुद्ध-सीलोम्ही,' ति पटिजानाति 'परिसुद्धं मे सीलं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' ति। मयं चेव खो पन गिहीनं आरोचेय्याम, नास्सस्स मनापं। यं खो पनस्स अमनापं, कथं नं मयं तेन समुदाचरेय्याम—'सम्मन्नति खो पन चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारेन; यं तुमो करिस्सति तुमो व तेन पञ्ञायिस्सती' ति। एवरूपं खो, मोग्गल्लान, सत्थारं सावका सीलतो रक्खन्ति; एवरूपो च पन सत्था सावकेहि सीलतो रक्खं पच्चासीसति।

७. "पुन च परं, मोग्गल्लान, इधेकच्चो सत्था अपरिसुद्धाजीवो समानो

---

५. "क्या, मौद्गल्यायन! तुमने अपने चित्त को ककुध देवपुत्र के चित्त से मिलाकर समझ लिया था कि ककुध देवपुत्र जो कुछ कह रहा है वह सब हृदय से कह रहा है या उपरि भाव से?"

"हाँ, भन्ते! मैंने अपने चित्त को उसके चित्त से मिलाकर समझ लिया था कि वह जो कुछ कह रहा है वह वैसा ही है, अन्यथा नहीं।"

"मौद्गल्यायन! चुप भी रहो, ऐसा न कहो! वह मूर्ख जो कुछ कह रहा है वह अपने आपको स्वयं ही प्रकट कर देगा।

६. "मौद्गल्यायन! यहाँ पाँच प्रकार के उपदेशक (शास्ता) होते हैं। कौन से पाँच? मौद्गल्यायन! यहाँ कोई शास्ता शुद्ध सदाचारवान् न होते हुए भी स्वयं को शुद्ध सदाचारवान् समझता हुआ लोगों के सामने डींग हाँकता है—'मेरा शील (सदाचार) सुपरिशुद्ध है, पर्यवदात है, निष्कलङ्क है।' उसके शिष्यगण उसके चरित्र की इस सत्यता को समझते हैं, परन्तु वे सोचते हैं कि यदि हम इसके चरित्र की यह सत्यता लोगों की बतायेंगे तो यह इसके लिये उचित न होगा। जो इसको अप्रिय लगे वह हम कैसे कर सकते हैं; क्योंकि यह हमको चीवर, पिण्डपात आदि का लाभ देता है। अब तो यह जो करेगा उसका फल यही भोगेगा। मौद्गल्यायन! ऐसे शास्ता के शिष्य उसके शील की रक्षा अपने शील से करते हैं, तथा ऐसा ही शास्ता अपने शील की रक्षा हेतु अपने शिष्यों से आशान्वित रहता है। (१)

७. "मौद्गल्यायन! तब कोई अन्य शास्ता अपरिशुद्ध जीविका वाला होता है। वह ऐसा होते

'परिसुद्धाजीवोम्ही,' ति पटिजानाति 'परिसुद्धो मे आजीवो परियोदातो असङ्किलिट्ठो' ति। तमेनं सावका एवं जानन्ति—'अयं खो भवं सत्था अपरिसुद्धाजीवो समानो परिसुद्धाजीवोम्ही' ति पटिजानाति 'परिसुद्धो मे आजीवो परियोदातो असङ्किलिट्ठ' ति। मयं चेव खो पन गिहीनं आरोचेय्याम, नास्सस्स मनापं। यं खो पनस्स अमनापं, कथं नं मयं तेन समुदाचरेय्याम—'सम्मन्नति खो पन चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन; यं तुमो करिस्सति तुमो व तेन पञ्ञायिस्सती' ति। एवरूपं खो, मोग्गल्लान, सत्थारं सावका आजीवतो रक्खन्ति; एवरूपो च पन सत्था सावकेहि आजीवतो रक्खं पच्चासीसति।

८. "पुन च परं, मोग्गल्लान, इधेकच्चो सत्था अपरिसुद्धधम्मदेसनो समानो 'परिसुद्धधम्मदेसनोम्ही' ति पटिजानाति 'परिसुद्धा मे धम्मदेसना परियोदाता असङ्किलिट्ठा' ति। तमेनं सावका एवं जानन्ति—'अयं खो भवं सत्था अपरिसुद्धधम्मदेसनो [R.125] समानो परिसुद्धधम्मेदेसनोम्ही,' ति पटिजानाति 'परिसुद्धा मे धम्मदेसना परियोदाता असङ्किलिट्ठा' ति। मयं चेव खो पन गिहीनं आरोचेय्याम, नास्सस्स मनापं। यं खो पनस्स अमनापं, कथं नं मयं तेन समुदाचरेय्याम—'सम्मन्नति खो पन चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चभेसज्जपरिक्खारेन; यं तुमो करिस्सति तुमो व तेन पञ्ञायिस्सती' ति। एवरूपं खो, मोग्गल्लान, सत्थारं सावका धम्मदेसनतो रक्खन्ति; एवरूपो च पन [N.382,B.110] सत्था सावकेहि धम्मदेसनतो रक्खं पच्चासीसति।

९. "पुन च परं, मोग्गल्लान, इधेकच्चो सत्था अपरिसुद्धवेय्याकरणो समानो 'परिसुद्धवेय्याकरणोम्ही,' ति पटिजानाति 'परिसुद्धं मे ञाणदस्सनं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' ति। तमेनं सावका एवं जानन्ति—'अयं खो भवं सत्था अपरिसुद्धवेय्याकरणो समानो परिसुद्धवेय्याकरणोम्ही' ति पटिजानाति 'परिसुद्धं मे वेय्याकरणं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' ति। मयं चेव खो पन गिहीनं आरोचेय्याम, नास्सस्स मनापं। यं खो पनस्स अमनापं,

---

हुए भी लोगों के सामने डींग हाँकता है—'मेरी जीविका सर्वथा शुद्ध है, पर्यवदात है, निष्कलङ्क है'। उसके शिष्यगण उसके चरित्र की ...पूर्ववत्...। उसकी जीविका की अपनी जीविका से रक्षा करते हैं, तथा ऐसा ही शास्ता अपनी जीविका की रक्षा हेतु अपने शिष्यों से आशान्वित रहता है। (२)

८. पुनः, मौद्गल्यायन! कोई शास्ता मिथ्याधर्मोपदेश करता हुआ भी जनता के सम्मुख यही कहता है—'मेरा यह धर्मोपदेश ही पूर्णतः परिशुद्ध है, पर्यवदात है, निष्कलङ्क है'। उसकी इस परिशुद्धि के विषय में उसके शिष्य भलीभाँति जानते हैं। पूर्ववत्...। ऐसे शास्ता के शिष्य ही उसके धर्मोपदेश के विषय में उसकी रक्षा करते हैं। तथा वैसा शास्ता ही अपने शिष्यों से अपने धर्मोपदेश की रक्षा हेतु आशान्वित रहता है। (३)

९. "पुनः, मौद्गल्यायन! यहाँ कोई शास्ता मिथ्या व्याख्याता होता हुआ भी स्वयं को धर्म

कथं नं मयं तेन समुदाचरेय्याम—'सम्मन्नति खो पन चीवरपिण्डपात-सेनासन-गिलानप्पच्चभेसज्जपरिक्खारेन; यं तुमो करिस्सति तुमो व तेन पञ्ञायिस्सती' ति। एवरूपं खो, मोग्गल्लान, सत्थारं सावका वेय्याकरणतो रक्खन्ति; एवरूपो च पन सत्था सावकेहि वेय्याकरणतो रक्खं पच्चासीसति।

१०. "पुन च परं, मोग्गल्लान, इधेकच्चो सत्था अपरिसुद्धञाणदस्सनो समानो 'परिसुद्धञाणदस्सनोम्ही' ति पटिजानाति 'परिसुद्धं मे ञाणदस्सनं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' ति। तमेनं सावका एवं जानन्ति—'अयं खो भवं सत्था अपरिसुद्धञाणदस्सनो समानो परिसुद्धञाणदस्सनोम्ही' ति पटिजानाति 'परिसुद्धं मे ञाणदस्सनं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' [R.126] ति। मयं चेव खो पन गिहीनं आरोचेय्याम, नास्सस्स मनापं। यं खो पनस्स अमनापं, कथं नं मयं तेन समुदाचरेय्याम—'सम्मन्नति खो पन चीवरपिण्डपात-सेनासनगिलानप्पच्चभेसज्जपरिक्खारेन; यं तुमो करिस्सति तुमो व तेन पञ्ञायिस्सती' ति। एवरूपं खो, मोग्गल्लान, सत्थारं सावका ञाणदस्सनतो रक्खन्ति; एवरूपो च पन सत्था सावकेहि ञाणदस्सनतो रक्खं पच्चासीसति। इमे खो, मोग्गल्लान, पञ्च सत्थारो सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं।

११. "अहं खो पन, मोग्गल्लान, परिसुद्धसीलो समानो 'परिसुद्धसीलोम्ही,' ति पटिजानामि 'परिसुद्धं मे सीलं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' ति। न च मं सावका सीलतो रक्खन्ति, न चाहं सावकेहि सीलतो रक्खं पच्चासीसामि। परिसुद्धाजीवो समानो 'परिसुद्धाजीवोम्ही' ति पटिजानामि 'परिसुद्धो मे आजीवो परियोदातो असङ्किलिट्ठो' ति। [N.383,B.111] न च मं सावका आजीवतो रक्खन्ति, न चाहं सावकेहि आजीवतो रक्खं पच्चासीसामि। परिसुद्धधम्मदेसनो समानो 'परिसुद्धधम्मदेसनोम्ही,' ति पटिजानामि 'परिसुद्धा मे धम्मदेसना परियोदाता असङ्किलिट्ठा' ति। न च मं सावका धम्मदेसनतो रक्खन्ति, न चाहं सावकेहि धम्मदेसनतो रक्खं पच्चसीसामि। परिसुद्धवेय्याकरणो समानो

का परिशुद्ध वैयाकरण घोषित करता है। उसके विषय में उसके श्रावक ...पूर्ववत्... अपने मिथ्या व्याकरण की रक्षा हेतु अपने शिष्यों से आशान्वित रहते हैं। (४)

१०. "पुनः, मौद्गल्यायन! कोई शास्ता मिथ्या ज्ञानदर्शन वाला होता हुआ भी स्वयं को सुपरिशुद्ध ज्ञानदर्शन वाला शास्ता घोषित करता है। उसके विषय में उसके श्रावक ...पूर्ववत्... अपने मिथ्या ज्ञानदर्शन की रक्षा हेतु अपने शिष्यों से आशान्वित रहते हैं। (५)

११. "परन्तु, मौद्गल्यायन! (१) मैं परिशुद्ध शील होता हुआ 'मैं परिशुद्धशील हूँ, मेरा शील पूर्णतः परिशुद्ध, पर्यवदात एवं निष्कलङ्क है'—ऐसी प्रतिज्ञा श्रोताओं के सम्मुख करता हूँ। यहाँ न मेरे शिष्य मेरे शील की रक्षा करते हैं, न मैं ही उनसे अपने शील की रक्षा हेतु कोई आशा रखता हूँ। (२) मैं परिशुद्धाजीव होता हुआ ... पूर्ववत्...। (३) मैं परिशुद्ध धर्मोपदेशक होता हुआ ...पूर्ववत्। (४) मैं परिशुद्ध धर्मव्याख्याता होता हुआ ...पूर्ववत्...। (५) मैं परिशुद्ध ज्ञानदर्शनवाला

'परिसुद्धवेय्याकरणोम्ही,' ति पटिजानामि 'परिसुद्धं मे वेय्याकरणं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' ति। न च मं सावका वेय्याकरणतो रक्खन्ति, न चाहं सावकेहि वेय्याकरणतो रक्खं पच्चासीसामि। परिसुद्धञाणदस्सनो समानो 'परिसुद्धञाणदस्सनोम्ही,' ति पटिजानामि 'परिसुद्धं मे ञाणदस्सनं परियोदातं असङ्किलिट्ठं' ति। न च मं सावका ञाणदस्सनतो रक्खन्ति, न चाहं सावकेहि ञाणदस्सनतो रक्खं पच्चासीसामी'' ति॥

ककुधवग्गो दसमो॥

तस्सुद्दानं

[R.127]

द्वे सम्पदा ब्याकरणं, फासु अकुप्पपञ्चमं।
सुतं कथा आरञ्ञको, सीहो च ककुधो दसा ति॥

दुतियो पण्णासको समत्तो॥

११. फासुविहारवग्गो

ततियो पण्णासको

१. सारज्जसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, सेखवेसारज्जकरणा धम्मा। [B.112] कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धो होति, सीलवा होति, बहुस्सुतो होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति।

होता हुआ ...पूर्ववत्...। मेरे शिष्य मेरे परिशुद्ध ज्ञानदर्शन की रक्षा नहीं करते और न मैं ही अपने ज्ञानदर्शन की रक्षा की आशा अपने शिष्यों से करता हूँ॥''

ककुधवर्ग दशम सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम सम्पदासूत्र, २. द्वितीय सम्पदासूत्र, ३. व्याकरणसूत्र, ४. स्पर्शविहारसूत्र, ५ अकोप्यसूत्र, ६. श्रुतधरसूत्र, ७. कथासूत्र, ८. आरण्यकसूत्र, ९. सिंहसूत्र, एवं १०. ककुध-स्थविरसूत्र॥

द्वितीय पञ्चाशत्क सम्पन्न॥

११. फासुविहारवर्ग

तृतीय पञ्चाशत्क

१. शारदयसूत्र

पाँच शैक्ष्य वैशारद्यकरण धर्म :

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु में आत्मविश्वास उत्पन्न करने वाले हैं। यहाँ,

२. "यं, भिक्खवे, अस्सद्धस्स सारज्जं होति, सद्धस्स तं सारज्जं न होति। तस्मायं धम्मो सेखवेसारज्जकरणो।

३. "यं, भिक्खवे, दुस्सीलस्स सारज्जं होति, सीलवतो तं सारज्जं न होति। तस्मायं धम्मो सेखवेसारज्जकरणो।

[N.384]४. "यं, भिक्खवे, अप्पस्सुतस्स सारज्जं होति, बहुस्सुतस्स तं सारज्जं न होति। तस्मायं धम्मो सेखवेसारज्जकरणो।

५. "यं, भिक्खवे, कुसीतस्स सारज्जं होति, आरद्धविरियस्स तं सारज्जं न होति। तस्मायं धम्मो सेखवेसारज्जकरणो।

६. "यं, भिक्खवे, दुप्पञ्ञस्स सारज्जं होति, पञ्ञवतो तं सारज्जं न होति। तस्मायं धम्मो सेखवेसारज्जकरणो।

"इमे खो, भिक्खवे, पञ्च सेखवेसारज्जकरणा धम्मा" ति॥ ●

[R.128] **२. उस्सङ्कितसुत्तं** : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु उस्सङ्कितपरिसङ्कितो होति पापभिक्खू ति पि अकुप्पधम्मो पि। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु वेसियागोचरो वा होति, विधवागोचरो वा होन्ति, थुल्लकुमारिकागोचरो वा होन्ति, पण्डकगोचरो वा होति, भिक्खुनीगोचरो वा होति।

भिक्षुओ! कोई भिक्षु श्रद्धालु होता है, शीलवान् होता है, बहुश्रुत होता है, साधना में उद्योगरत होता है, प्रज्ञावान् होता है।

२. "भिक्षुओ! रत्नत्रय के प्रति जिस अश्रद्धालु को लोक में आसक्ति होती है, वह श्रद्धालु को नहीं होती। अत: यह धर्म शैक्ष्य भिक्षु में आत्मविश्वास का उत्पादक है। (१)

३. "भिक्षुओ! दु:शील पुरुष की लोक में जो आसक्ति होती है वह शीलवान् को नहीं होती। अत: यह धर्म ...पूर्ववत्... उत्पादक है। (२)

४. "भिक्षुओ! अल्पश्रुत को लोक में जो आसक्ति होती है, वह बहुश्रुत को नहीं होती, अत: यह धर्म ...पूर्ववत्... विश्वास का उत्पादक है। (३)

५. "भिक्षुओ! आलसी पुरुष को जो लोक में आसक्ति होती है; वह उद्योगी को नहीं होती। अत: यह धर्म भी ...पूर्ववत्... आत्मविश्वास का उत्पादक है। (४)

६. "भिक्षुओ! दुष्प्रज्ञ पुरुष को जो लोक में आसक्ति होती है वह प्रज्ञावान् को नहीं होती। अत: यह धर्म शैक्ष्य भिक्षु को आत्मविश्वास का उत्पादक है। (५)

इस प्रकार, भिक्षुओ! ये पाँच धर्म शैक्ष्य भिक्षु में आत्मविश्वासोत्पादक हैं॥" ●

२. उच्छङ्कितसूत्र : : पापी भिक्षु के पाँच धर्म

१. "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु शङ्कालु, भयभीत, पापी एवं चञ्चलचित्त कहलाता है। किन पाँच धर्मों से? (१) जो वेश्यागामी होता है, (२) जो विधवा के साथ संवास करता है, (३) जो स्थूल कुमारी (मोटी लड़की) के साथ, (४) जो नपुंसक के साथ ..., (५) भिक्षुणी के साथ संवास करता है।

''इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु उस्सङ्कितपरिसङ्कितो [B.113] होति पापभिक्खू ति अपि अकुप्पधम्मो पी'' ति॥ ●

३. महाचोरसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो महाचोरो सन्धिं पि छिन्दति, निल्लोपं पि हरति, एकगारिकं पि करोति, परिपन्थे पि तिट्ठति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, महाचोरो विसमनिस्सितो च होति, गहननिस्सितो च, बलवनिस्सितो च, भोगचागी च, एकचारी च।

२. ''कथं च, भिक्खवे, महाचोरो विसमनिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, महाचोरो नदीविदुग्गं वा निस्सितो होति पब्बतविसमं वा। एवं खो, भिक्खवे, महाचोरो विसमनिस्सितो होति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, महाचोरो गहननिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, महाचोरो तिणगहनं वा निस्सितो होति रुक्खगहनं वा रोधं वा महावनसण्डं वा। एवं खो, [N.385] भिक्खवे, महाचोरो गहननिस्सितो होति।

४. ''कथं च, भिक्खवे, महाचोरो बलवनिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, महाचोरो राजानं वा राजमहामत्तानं वा निस्सितो होति। तस्स एवं होति—'सचे मं कोचि किञ्चि वक्खति, इमे मे राजानो वा राजमहामत्ता वा परियोधाय अत्थं [R.129] भणिस्सन्ती' ति। सचे नं कोचि किञ्चि आह, त्यास्स राजानो वा राजमहामत्ता वा परियोधाय अत्थं भणन्ति। एवं खो, भिक्खवे, महाचोरो बलवनिस्सितो होति।

''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु... चञ्चलचित्त कहलाता है॥'' ●

३. महाचौरसूत्र : : **चौर के पाँच कर्म**

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त कोई प्रसिद्ध चौर सैंध भी लगाता है, घर की पाई पाई उठा ले जाता है, चौरी भी करता है, मार्ग में लूटपाट भी करता है।

किन पाँच धर्मों से? भिक्षुओ! यहाँ कोई चौर (१) विषमनिश्रित भी होता है, (२) गहननिश्रित भी होता है, (३) बलवन्निश्रित भी होता है, (४) भोगत्यागी भी होता है तथा (५) एकाचारी भी होता है।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई महाचौर 'विषमनिश्रित' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई महाचौर नदी नालों की खन्धकों का भी आश्रय लेता है, कोई दुर्गम पर्वतों का आश्रय लेता है, अतः यह **विषमनिश्रित** कहलाता है। (१)

३. ''कैसे भिक्षुओ! कोई महाचौर 'गहननिश्रित' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई महाचौर घास के झुरमुट का, कोई वृक्षों के झुरमुट का, कोई गहन वनप्रदेश का आश्रय लेता है। भिक्षुओ! ऐसा महाचौर **गहननिश्रित** कहलाता है। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई महाचौर 'बलवन्निश्रित' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई महाचौर राजा या उसके महामन्त्री का सहारा लेता है। उसके मन में यह होता है—'यदि कोई मुझे कुछ कहेगा या मेरा विरोध करेगा तो ये राजा या उसके मन्त्री उससे मेरी रक्षा कर लेंगे।' वस्तुतः जब

५. ''कथं च, भिक्खवे, महाचोरो भोगचागी होति? इध, भिक्खवे, महाचोरो अड्ढो होति महद्धनो महाभोगो। तस्स एवं होति—'सचे मं कोचि किञ्चि वक्खति, इतो भोगेन पटिसन्थरिस्सामी' ति। सचे नं कोचि किञ्चि आह, ततो भोगेन पटिसन्थरति। एवं खो, भिक्खवे, महाचोरो भोगचागी होति।

६. ''कथं च, भिक्खवे, महाचोरो एकचारी होति? इध, भिक्खवे, महाचोरो [B.114] एकको व गहणानि कत्ता होति। तं किस्स हेतु? 'मा मे गुय्हमन्ता बहिद्धा सम्भेदं अगमंसू' ति। एवं खो, भिक्खवे, महाचोरो एकचारी होति।

''इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहङ्गेहि समन्नागतो महाचोरो सन्धिं पि छिन्दति निल्लोपं पि हरति एकागारिकं पि करोति परिपन्थे पि तिट्ठति॥

७. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो पापभिक्खु खतं उहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, पापभिक्खु विसमनिस्सितो च होति, गहननिस्सितो च, बलवनिस्सितो च, भोगचागी च, एकचारी च।

८. ''कथं च, भिक्खवे, पापभिक्खु विसमनिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, पापभिक्खु विसमेन कायकम्मेन समन्नागतो होति, विसमेन वचीकम्मेन समन्नागतो होति,

---

उस चौर को कोई कुछ कहता है तो या विरोध करता है वे राजा या उसके मन्त्री उसकी रक्षा हेतु आगे आ जाते हैं। ऐसा महाचौर **बलवन्निश्रित** कहलाता है। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई महाचौर 'भोगत्यागी' कहलाता है? भिक्षुओ! कोई महाचौर स्वयं महान् धनवान् तथा अतुल भोगसम्पत्ति वाला होता है। वह सोचता है—'यदि कोई मुझे कुछ कहेगा या मेरा विरोध करेगा तो मैं अपने इस धन से उसका मुख बन्द कर दूँगा।' तब यदि उसको कोई कुछ कहता है तो वह अपने धन से उनका मुख बन्द कर देता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! ऐसा महाचौर **भोगत्यागी** कहलाता है। (४)

६. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'एकचारी' होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई महाचौर अकेला ही कोई छोटी या बड़ी चौरी करता है। वह अपनी इस चौरी के विषय में इस भय से किसी को कुछ नहीं बतलाता कि कहीं कोई मेरा भेद जानकर किसी अन्य को न बता दे। इस प्रकार, भिक्षुओ! यह महाचौर **एकचारी** कहलाता है। (५)

''भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त महाचौर सैंध भी लगाता है, ...पूर्ववत्... मार्ग में लूटपाट भी करता है॥

७. भिक्षुओ! इसी प्रकार पाँच धर्मों से युक्त कोई पापी भिक्षु अपने को क्षत एवं उपहत समझता है, विद्वान् उसे सदोष एवं अपराधी कहते हैं, तथा वह इन पापकर्मों से अपने लिये बहुत ही अपुण्य राशि सञ्चित करता है। किन पाँच धर्मों से? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु विषमनिश्रित होता है, कोई गहननिश्रित, कोई बलवन्निश्रित, कोई भोगत्यागी तथा कोई एकचारी होता है।

८. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पापी भिक्षु 'विषमनिश्रित' होता है? भिक्षुओ! कोई पापी भिक्षु

विसमेन मनोकम्मेन समन्नागतो होति। एवं खो, भिक्खवे, पापभिक्खु विसमनिस्सितो होति।

९. ''कथं च, भिक्खवे, पापभिक्खु गहननिस्सितो होति? इध, [N.386,R.130] भिक्खवे, पापभिक्खु मिच्छादिट्ठिको होति अन्तग्गाहिकाय दिट्ठिया समन्नागतो। एवं खो, भिक्खवे, पापभिक्खु गहननिस्सितो होति।

१०. ''कथं च, भिक्खवे, पापभिक्खु बलवनिस्सितो होति? इध, भिक्खवे, पापभिक्खु राजानं वा राजमहामत्तानं वा निस्सितो होति। तस्स एवं होति—'सचे मं कोचि किञ्चि वक्खति, इमे मे राजानो वा राजमहामत्ता वा परियोधाय अत्थं भणिस्सन्ती' ति। सचे नं कोचि किञ्चि आह, त्यास्स राजानो वा राजमहामत्ता वा परियोधाय अत्थं भणन्ति। एवं खो, भिक्खवे, पापभिक्खु बलवनिस्सितो होति।

११. ''कथं च, भिक्खवे, पापभिक्खु भोगचागी होति? इध, भिक्खवे, पापभिक्खु लाभी होति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारानं। तस्स एवं होति—'सचे मं कोचि किञ्चि वक्खति, इतो लाभेन पटिसन्थरिस्सामी' ति। सचे नं कोचि किञ्चि आह, ततो लाभेन पटिसन्थरति। एवं खो, भिक्खवे, पापभिक्खु भोगचागी होति।

१२. ''कथं च, भिक्खवे, पापभिक्खु एकचारी होति? इध, भिक्खवे, [B.115] पापभिक्खु एकको व पच्चन्तिमेसु जनपदेसु निवासं कप्पेति। सो तत्थ कुलानि उपसङ्कमन्तो लाभं लभति। एवं खो, भिक्खवे, पापभिक्खु एकचारी होति।

विषम कायकर्म, विषम वाक्कर्म एवं विषम मनःकर्म से युक्त होता है। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु **विषमनिश्रित** कहलाता है। (१)

९. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पापी भिक्षु 'गहननिश्रित' कैसे कहलाता है? भिक्षुओ! कई पापभिक्षु मिथ्यादृष्टि एवं अन्तग्राहिका दृष्टि से युक्त होता है, ऐसा पापभिक्षु **गहननिश्रित** कहलाता है। (२)

१०. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पापी भिक्षु 'बलवन्निश्रित' कहलाता है? कोई पापभिक्षु राजा या उसके महामन्त्री को अपने लिये सहायक बना लेता है। उसके मन में ...पूर्ववत्...। इस प्रकार, भिक्षुओ! वह भिक्षु **बलवन्निश्रित** कहलाता है। (३)

११. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पापभिक्षु 'भोगत्यागी' कहलाता है? भिक्षुओ! यहाँ कोई पापी भिक्षु विविध चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं भेषज का लाभी हो जाता है। तब उसके मन में यह होता है—'यदि कोई मुझको कुछ बोलेगा तो मैं उसको ये चीवर आदि देकर उसको चुप कर दूँगा।' यदि कोई उसको कुछ कहता है या उसका विरोध करता है तो वह उसको उक्त चीवरादि का लाभ दे देता है। भिक्षुओ! इस प्रकार का भिक्षु **भोगत्यागी** कहलाता है। (४)

१२. कैसे, भिक्षुओ! कोई पापी भिक्षु 'एकचारी' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पापभिक्षु अकेले ही सीमान्त जनपदों में अपना वास बनाता है। वह वहाँ गृहस्थों के घरों में जाकर

''इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो पापभिक्खु खतं उपहतं अत्तानं परिहरति, सावज्जो च होति सानुवज्जो विञ्ञूनं, बहुं च अपुञ्ञं पसवती'' ति॥ ●

४. समणसुखुमालसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु समणेसु समणसुखुमालो होति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु याचितो व बहुलं चीवरं परिभुञ्जति, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं पिण्डपातं परिभुञ्जति, [R.131] अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं परिभुञ्जति, [N.387] अप्पं अयाचितो। येहि खो पन सब्रह्मचारीहि सद्धिं विहरति, त्यास्स मनापेनेव बहुलं कायकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन; मनापेनेव बहुलं वचीकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन; मनापंयेव उपहारं उपहरन्ति, अप्पं अमनापं। यानि खो पन तानि वेदयितानि पित्तसमुट्ठानानि वा सेम्हसमुट्ठानानि वा वातसमुट्ठनानि वा सन्निपातिकानि वा उतुपरिणामजानि वा विसमपरिहारजानि वा ओपक्कमिकानि वा कम्मविपाकजानि वा, तानिस्स न बहुदेव उप्पज्जन्ति। अप्पाबाधो होति। चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु समणेसु समणसुखुमालो होति।

२. ''यं हि तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य—'समणेसु समणसुखुमालो' ति,

---

नाना प्रकार के लाभ प्राप्त करता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! वह पापी भिक्षु **एकचारी** कहलाता है। (५)

''इस प्रकार, भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त कोई पापी भिक्षु स्वयं को क्षत उपहत के समान मानने लगता है एवं विद्वान् लोग भी उसको अपराधी एवं निन्दा का पात्र ही मानते हैं तथा वह स्वयं भी अपने लिये बहुत सी अपुण्यराशि का सञ्चय कर लेता है॥'' ●

४. श्रमणसुकुमारसूत्र : : पाँच धर्मयुक्त श्रमण सुकुमार

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु श्रमणों में श्रमणसुकुमार कहलाता है। किन पाँच धर्मों से? (१) यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु माँगे हुए चीवरों का ही अधिक उपयोग करता है, विना माँगे का नहीं; (२) माँगे हुए पिण्डपात का ..., (३) माँगे हुए शयनासन का ही...; (४) माँगे हुए भेषजपरिष्कार का ही अधिक...। (५) जो इसके साथी भिक्षु इसके साथ रहते हैं वे भी इसके साथ कायिक वाचसिक मानसिक व्यवहार प्रिय एवं शुभ ही करते हैं, अप्रिय या अशुभ नहीं; वात पित्त कफ—इस त्रिदोष से जन्य या ऋतुपरिणामजन्य या आहार परिणामजन्य रोग भी इसको बहुत कम, कभी कदाचित् ही होते हैं। यह प्रायः नीरोग रहता है; इसी जन्म में सुखानुभव कराने वाले आध्यात्मिक चारों ध्यानों का भी यह पूर्णतः लाभी होता है; तथा आश्रवों से हुई अनाश्रवा चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु **श्रमणों में श्रमणसुकुमार** कहलाता है।

ममेव तं, भिक्खवे, सम्मावदमानो वदेय्य—'समणेसु समणसुखुमालो' ति। अहं हि, भिक्खवे, याचितो व बहुलं चीवरं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो; याचितो व [B.116] बहुलं पिण्डपातं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं सेनासनं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं सेनासनं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो; याचितो व बहुलं गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं परिभुञ्जामि, अप्पं अयाचितो। येहि खो पन भिक्खूहि सद्धिं विहरामि, ते मं मनापेनेव बहुलं कायकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन; मनापेनेव बहुलं वचीकम्मेन समुदाचरन्ति, अप्पं अमनापेन; मनापंयेव उपहारं उपहरन्ति, अप्पं अमनापं। यानि खो पन तानि वेदयितानि—सन्निपातिकानि वा उतुपरिणा- [R.132] मजानि वा—तानि मे न बहुदेव उप्पज्जन्ति। अप्पाबाधोहमस्मि। चतुन्नं खो पनस्मि झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी अकिच्छलाभी अकसिरलाभी, आसवानं खया ...पे०... सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरामि। [N.388]

"यं हि तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य—'समणेसु समणसुखुमालो'" ति॥●

ति, ममेव तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य—'समणेसु समणसुखुमालो' ति, ममेव तं, भिक्खवे, सम्मा वदमानो वदेय्य—'समणेसु समणसुखुमालो' ... फासुविहारा। कतमे पञ्च ? इध,

५. फासुविहारसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, फासुविहारा। कतमे पञ्च ? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो मेत्तं कायकम्मं पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च। यानि मेत्तं वचीकम्मं ... मेत्तं मनोकम्मं पच्चुपट्ठितं होति सब्रह्मचारीसु आवि चेव रहो च। यानि तानि सीलानि अखण्डानि अच्छिद्दानि असबलानि अकम्मासानि भुजिस्सानि विञ्ञुप्पसत्थानि अपरामट्ठानि समाधिसंवत्तनिकानि, तथारूपेहि सीलेहि सीलसामञ्ञगतो विहरति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च। यायं दिट्ठि अरिया निय्यानिका निय्याति तक्करस्स सम्मा दुक्खक्खयाय, तथारूपाय दिट्ठिया दिट्ठिसामञ्ञगतो विहरति सब्रह्मचारीहि आवि चेव रहो च। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च फासुविहारा" ति॥ ●

---

२. "भिक्षुओ! जो कोई श्रमणों में श्रमणसुकुमार को सही ढंग से बताना चाहे तो वह ऐसा श्रमणसुकुमार मुझको ही बतायगा। क्योंकि, भिक्षुओ! मैं प्रायः माँगे हुए चीवर का ही उपभोग करता हूँ, माँगे हुए का नहीं; माँगे हुए पिण्डपात का... माँगे हुए शयनासन का ..., (रुग्णावस्था में भी) माँगी हुई औषध का ही प्रायः उपभोग करता हूँ। जिन भिक्षुओं के साथ मैं रहता हूँ वे भी ...पूर्ववत्... साक्षात्कार द्वारा प्राप्त कर साधनारत रहता हूँ।

"अतः, भिक्षुओ! जो भी किसी को उचित अर्थ में श्रमणों में श्रमणसुकुमार कहना चाहे तो वह 'श्रमणों में श्रमणसुकुमार' संज्ञा हेतु मेरी ओर ही संकेत करेगा॥" ●

५. फासुविहारसूत्र : पाँच सन्तोषप्रद विहार

१. "भिक्षुओ! ये पाँच सन्तोषप्रदविहार होते हैं। कौन से पाँच ? यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु का साथी भिक्षुओं के साथ जो गुप्त एवं प्रकट मैत्रीकायकर्म, मैत्रीवाक्कर्म एवं मैत्रीमनःकर्म उपस्थित होता है वह अखण्ड, छिद्ररहित, दोषरहित, स्वतन्त्र, विद्वत्प्रशस्त, अपरामृष्ट तथा समाधि की ओर

[B.117] **६. आनन्दसुत्तं :** १. एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—

२. ''कित्तावता नु खो, भन्ते, भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासुं विहरेय्या'' ति?

''यतो खो, आनन्द, भिक्खु अत्तना सीलसम्पन्नो होति, नो परं अधिसीले सम्पवत्ता; एत्तावता पि खो, आनन्द, भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासुं विहरेय्या'' ति।

[R.133] ३. ''सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो यथा भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासुं विहरेय्या'' ति?

[N.389] ''सिया, आनन्द! यतो खो, आनन्द, भिक्खु अत्तना सीलसम्पन्नो होति, नो परं अधिसीले सम्पवत्ता; अत्तानुपेक्खी च होति, नो परानुपेक्खी; एत्तावता पि खो, आनन्द, भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासुं विहरेय्या'' ति।

४. ''सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो यथा भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासुं विहरेय्या'' ति?

''सिया, आनन्द! यतो खो, आनन्द, भिक्खु अत्तना सीलसम्पन्नो होति, नो परं अधिसीले सम्पवत्ता; अत्तानुपेक्खी च होति, नो परानुपेक्खी; अपञ्ञातो च होति, तेन

बढ़ाने वाले शील के साथ शीलश्रामण्यसम्पन्न होकर अपने साथियों के साथ गुप्त या प्रकट व्यवहार करता है। वह आर्य एवं सम्यग् दुःखक्षय कर निर्वाण की ओर ले जाने वाली दृष्टि के साथ दृष्टिश्रामण्यसम्पन्न होकर अपने साथियों के साथ गुप्त या प्रकट व्यवहार करता है। भिक्षुओ! ये पाँच सन्तोषप्रदविहार होते हैं॥'' ●

६. आनन्दसूत्र : : पाँच अन्य स्पर्शविहार

१. एक समय भगवान् कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—

२.''भन्ते! किस उपाय से कोई भिक्षु सङ्घ में रहकर भी सरलता से साधना कर सकता है?''

''यदि, आनन्द! कोई भिक्षु स्वयं ही शीलसम्पन्न रहे, भले ही वह दूसरों को शीलसम्पन्न रहने को न कहे, ऐसा भिक्षु सङ्घ में रहता हुआ भी सरलता से साधना कर सकता है। (१)

३. ''क्या, भन्ते! सङ्घ में रहकर सरलता से साधना का अन्य भी कोई मार्ग है?

''हाँ, आनन्द! है। आनन्द! यदि वह स्वयं शीलसम्पन्न रहे और साथ ही दूसरों को शीलसम्पन्न रहने के लिये न कहे। आत्मप्रत्यवेक्षण करे, परप्रत्यवेक्षण नहीं। इतने से भी, आनन्द! कोई भिक्षु सङ्घ में रहता हुआ भी सरलता से साधना कर सकता है। (२)

४. ''क्या, भन्ते! सङ्घ में रहकर सरलता से साधना का अन्य भी कोई उपाय है?

''हाँ, आनन्द! हो सकता है। यदि कोई भिक्षु स्वयं शीलसम्पन्न रहे, दूसरे को शीलसम्पन्नता के लिये न कहे। आत्मप्रत्यवेक्षण करे, परप्रत्यवेक्षण नहीं। सङ्घ में अपरिचित के समान होकर रहे,

च अपञ्ञातकेन नो परितस्सति; एत्तावता पि खो, आनन्द, भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासुं विहरेय्या'' ति।

५. ''सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो यथा भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासुं विहरेय्या'' ति?

''सिया, आनन्द! यतो खो, आनन्द, भिक्खु अत्तना सीलसम्पन्नो होति, नो परं अधिसीले सम्पवत्ता; अत्तानुपेक्खी च होति, नो परानुपेक्खी; अपञ्ञातो च होति, तेन च अपञ्ञातकेन नो परितस्सति; चतुन्नं च झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; एत्तावता पि खो, आनन्द, भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासुं विहरेय्या'' ति।

६. ''सिया पन, भन्ते, अञ्ञो पि परियायो यथा भिक्खु सङ्घे विहरन्तो [B.118] फासुं विहरेय्या'' ति?

''सिया, आनन्द! यतो खो, आनन्द, भिक्खु अत्तना सीलसम्पन्नो होति, नो परं अधिसीले सम्पवत्ता; अत्तानुपेक्खी च होति, नो परानुपेक्खी; अपञ्ञातो च होति, [R.134] तेन च अपञ्ञातकेन नो परितस्सति; चतुन्नं च झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्म-सुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; आसवानं च खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति; एत्तावता पि खो, आनन्द, भिक्खु सङ्घे विहरन्तो फासु विहरेय्य। [N.390]

''इमम्हा चाहं, आनन्द, फासुविहारा अञ्ञो फासुविहारो उत्तरितरो वा पणीतरो वा नत्थी ति वदामी'' ति॥

तथा इस तरह रहने में किसी प्रकार चिन्तित या उत्तेजित न हो। यह भी एक उपाय है, आनन्द! जिसके सहारे सङ्घ में रहकर भी सरलता से साधना की जा सकती है। (३)

५. ''क्या, भन्ते! कोई अन्य उपाय भी है ...पूर्ववत्...।''

''हाँ, आनन्द! है। आनन्द! यदि कोई भिक्षु स्वयं ...पूर्ववत्... किसी प्रकार चिन्तित या उत्तेजित न हो। तथा आध्यात्मिक एवं दृष्टधर्म सुख विहार वाले चारों ध्यानों का विना किसी कठिनाई के पूर्णतः लाभ करता हो। इतने पर भी, आनन्द! सङ्घ में रहते हुए भी कोई भिक्षु सरलता से साधना कर सकता है। (४)

६. ''क्या, भन्ते! कोई अन्य उपाय भी है ...पूर्ववत्... ?

''हाँ, आनन्द! है। आनन्द! यदि कोई भिक्षु स्वयं ...पूर्ववत्... चारों ध्यानों का किसी कठिनाई के विना पूर्णतः लाभ करता हो। तथा आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को इसी जन्म में स्वयं जानकर, साक्षात्कार से प्राप्त कर साधना करता हो, इतने पर भी, आनन्द! वह भिक्षु सङ्घ में रह कर भी सरलता से साधना कर सकता है। (५)

''आनन्द! इस (अन्तिम) सरल साधना प्रकार की अपेक्षा अन्य कोई सरल साधनाप्रकार नहीं है—ऐसा मेरा मानना है॥''

७. सीलसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलसम्पन्नो होति, समाधिसम्पन्नो होति, पञ्ञासम्पन्नो होति, विमुत्तिसम्पन्नो होति, विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥ ●

८. असेखसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु असेखेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति, असेखेन समाधिक्खन्धेन [B.119] समन्नागतो होति, असेखेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥ ●

[R.135] **९. चातुद्दिससुत्तं :** १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु चातुद्दिसो होति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवर-संवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु; बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झे-कल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभि-[N.391] वदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानु-

---

७. शीलसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु प्रणम्य

१. "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त कोई भी भिक्षु गृहस्थों के घरों में आह्वानीय, आतिथ्ययोग्य, दक्षिणा देने योग्य, प्रणाम करने योग्य तथा लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु **शील**सम्पन्न, **समाधि**सम्पन्न, **प्रज्ञा**सम्पन्न, **विमुक्ति**सम्पन्न एवं **विमुक्तिज्ञानदर्शन**सम्पन्न होता है। ऐसा भिक्षु गृहस्थों के घरों में ...पूर्ववत्... अद्वितीय पुण्यभूमि होता है॥" ●

८. अशैक्ष्यसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु प्रणम्य

१. "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ...पूर्ववत्... लोक के लिये अपूर्व पुण्यक्षेत्र है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से..., अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से..., अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से..., अशैक्ष्य, विमुक्तिस्कन्ध से..., अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त होता है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ...पूर्ववत्... अद्वितीय भूमि होता है॥" ●

९. चातुर्दिशसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सर्वत्र पूज्य

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सभी दिशाओं में (पूज्य) होता है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु (१) शीलवान् होता है प्रातिमोक्षसंवर से संवृत ...पूर्ववत्...। (२) बहुश्रुत एवं श्रुतधर होता है ...पूर्ववत्...। (३) जिस किसी चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं भेषज

पेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; सन्तुट्ठो होति इतरीतरचीवरपिण्डपातसेनासन-गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन; चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इमेहि, खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु चातुद्दिसो होती'' ति॥ ●

१०. अरञ्ञसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलं अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवितुं। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु; बहुस्सुतो होति ...पे०... दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; आरद्धविरियो विहरति थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु; चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इमेहि खो, भिक्खवे, [R.136] पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलं अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि [B.120] पटिसेवितुं'' ति॥ ●

फासुविहारवग्गो एकादसमो॥

तस्सुद्दानं

सारज्जं सङ्कितो चोरो, सुखुमालं फासु पञ्चमं।
आनन्द सीलासेखा च, चातुद्दिसो अरञ्ञेन चा ति॥ ●

की प्राप्ति से सन्तुष्ट रहता है। (४) चार ध्यानों का अकृच्छ्लाभी... होता है। (५) आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति प्रज्ञाविमुक्ति को... प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सभी दिशाओं में पूज्य होता है॥'' ●

१०. अरण्यसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु अरण्यसाधना में समर्थ

१. भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही अरण्य या वनप्रदेशों में जाकर एकान्त साधना करने में समर्थ हो सकता है। किन पाँच से? भिक्षुओ! यहाँ कोई भिक्षु (१) शीलवान् होता है ...पूर्ववत्..., (२) बहुश्रुत होता है..., (३) कुशलधर्मों की प्राप्ति में शक्ति लगता है..., (४) चार ध्यानों का अतिशय लाभी होता है, (५) आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति ...पूर्ववत्... ॥ ●

स्पर्शविहारवर्ग एकादश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. सारद्यसूत्र, २. उच्छङ्कितसूत्र, ३. महाचौरसूत्र, ४. श्रमणसुकुमार सूत्र, ५. फासुविहारसूत्र, ६. आनन्दसूत्र, ७. शीलसूत्र, ८. अशैक्ष्यसूत्र, ९. चातुर्दिशसूत्र एवं १०. अरण्यसूत्र॥ ●

१२. अन्धकविन्दवग्गो

१. कुलूपकसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो कुलूपको भिक्खु कुलेसु अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? [N.392] असन्थवविस्सासी च होति, अनिस्सरविकप्पी च, विस्सट्ठुपसेवी च, उपकण्णकजप्पी च, अतियाचनको च। इमेहिं खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो कुलूपको भिक्खु कुलेसु अप्पियो च होति अमनापो च अगरु च अभावनीयो च।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो कुलूपको भिक्खु कुलेसु पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? न असन्थवविस्सासी च होति, [R.137] न अनिस्सरविकप्पी च, न विस्सट्ठुपसेवी च, न उपकण्णकजप्पी च, न अतियाचनको च। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो कुलूपको भिक्खु कुलेसु पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥ ●

२. पच्छासमणसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पच्छासमणो न आदातब्बो। कतमेहि पञ्चहि? अतिदूरे वा गच्छति अच्चासन्ने वा, न पत्तपरियापन्नं [B.121] गण्हति, आपत्तिसामन्ता भणमानं न निवारेति, भणमानस्स अन्तरन्तरा कथं ओपातेति, दुप्पञ्ञो होति जळो एळमूगो। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो पच्छासमणो न आदातब्बो।

---

१२. अन्धकविन्दवर्ग

१. कुलोपगसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों में अप्रिय

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों के श्रेष्ठकुलों में जाने पर वहाँ अप्रिय होता है, स्नेह गौरव तथा सम्मान का पात्र नहीं हो पाता। किन पाँच धर्मों से? जो शत्रुओं का विश्वासी हो, अनीश्वरविकल्पी हो, समाजबहिष्कृत लोगों के साथ रहने वाला हो, दूसरों की चुगली करने वाला हो तथा बहुत अधिक माँगने वाला हो। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों के श्रेष्ठकुलों में जाने पर उनका प्रिय, स्नेहभाजन तथा गौरव एवं सम्मान का पात्र नहीं बन पाता।

२. ''परन्तु इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों के श्रेष्ठकुलों का प्रिय, स्नेहभाजन, एवं वहाँ गौरव तथा सम्मान का पात्र होता है। किन पाँच धर्मों से? जो शत्रुओं का विश्वस्त न हो, जो नित्य नये लोगों के अधीन न रहता हो, समाजबहिष्कृत लोगों के साथ न रहता हो, जो किसी की चुगली न करता हो, जो न बहुत अधिक याच्ञा करता हो। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु श्रेष्ठ कुलों का प्रिय, स्नेहभाजन तथा उनका सम्मान एवं गौरव प्राप्त करता है॥'' ●

२. पश्चात् श्रमणसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त को अनुगामी नहीं बनाना

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को अपना अनुगामी (पीछे चलने वाला) नहीं बनाना चाहिये। किन पाँच धर्मों से? (१) जो अधिक पीछे चले, या जो बहुत समीप चले, (२) जो पात्र आदि लेने में सङ्कोच करता हो; (३) आपत्ति (दोष) बताने पर जो नहीं मानता,

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो पच्छासमणो आदातब्बो। कतमेहि पञ्चहि? नातिदूरे गच्छति न अच्चासन्ने, पत्तपरियापन्नं गण्हति, आपत्तिसामन्ता भणमानं निवारेति, भणमानस्स न अन्तरन्तरा कथं ओपातेति, पञ्ञवा होति अजळो अनेळमूगो। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो पच्छासमणो आदातब्बो'' ति॥

३. सम्मासमाधिसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अभब्बो सम्मासमाधिं उपसम्पज्ज विहरितुं। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति रूपानं, अक्खमो सद्दानं, अक्खमो गन्धानं, अक्खमो रसानं, अक्खमो फोट्ठब्बानं। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अभब्बो [N.393] सम्मासमाधिं उपसम्पज्ज विहरितुं।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु भब्बो सम्मासमाधिं उप-सम्पज्ज विहरितुं। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति रूपानं, [R.138] खमो सद्दानं, खमो गन्धानं, खमो रसानं, खमो फोट्ठब्बानं। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु भब्बो सम्मासमाधिं उपसम्पज्ज विहरितुं'' ति॥

४. अन्धकविन्दसुत्तं : १. एकं समयं भगवा मगधेसु विहरति अन्धकविन्दे। अथ खो आयस्मा आनन्दो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं आनन्दं भगवा एतदवोच—

---

(४) जो आपत्ति बताते समय अन्य अन्य प्रसङ्ग उठा दे; (५) जो भेड़ बकरी के समान जड़ तथा दुष्प्रज्ञ हो। इन पाँच धर्मों से युक्त को अपना अनुगामी नहीं बनाना चाहिये।

२. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को अपना अनुगामी भिक्षु बनाना चाहिये। किन पाँच से? जो पीछे चलता हुआ न अधिक समीप रहे, न अधिक दूर ही। पात्र आदि के ग्रहण करने में सङ्कोच न करे। आपत्ति बताकर उसको स्वीकार न करे। या आपत्ति की चर्चा चलने पर इधर उधर की बातों पर न घुमावे। प्रज्ञावान् रहे, जड़ नहीं। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को ही अपना अनुगामी बनाना चाहिये॥''

३. सम्यक्समाधिसूत्र : : पाँच धर्मयुक्त भिक्षु ही सम्यक्समाधि में समर्थ

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सम्यक्समाधि प्राप्त कर साधना में समर्थ नहीं हो सकता। किन पाँच धर्मों से? भिक्षुओ! यहाँ जो कोई रूपों का, शब्दों का, गन्धों का, रसों का, तथा स्प्रष्टव्यों ज्ञान करने में असमर्थ हो; ऐसे पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सम्यक्समाधि की साधना में असमर्थ होता है।

२. (परन्तु) ''इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सम्यक्समाधि की साधना में समर्थ होता है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ जो रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्प्रष्टव्य का ज्ञान करने में समर्थ हो। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही सम्यक्समाधि साधना में समर्थ हो सकता है॥''

४. अन्धकविन्दसूत्र : : नव भिक्षु के लिये पाँच धर्म

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) मगध देश के अन्धकविन्द प्रदेश में साधनाहेतु विराजमान

२. "ये ते, आनन्द, भिक्खू नवा अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं, ते वो, आनन्द, भिक्खू पञ्चसु धम्मेसु समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा। कतमेसु [B.122] पञ्चसु? 'एथ तुम्हे, आवुसो, सीलवा, होथ, पातिमोक्खसंवरसंवुता विहरथ आचारगोचरसम्पन्ना अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्साविनो, समादाय सिक्खथ सिक्खापदेसू' ति—इति पातिमोक्खसंवरे समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा।

३. "'एथ तुम्हे, आवुसो, इन्द्रियेसु गुत्तद्वारा विहरथ आरक्खसतिनो निपकसतिनो, सारक्खितमानसा सतारक्खेन चेतसा समन्नागता' ति—इति इन्द्रियसंवरे समादपेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा।

४. "'एथ तुम्हे, आवुसो, अप्पभस्सा होथ, भस्से परियन्तकारिनो' ति—इति भस्सपरियन्ते समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा।

५. "'एथ तुम्हे, आवुसो, आरञ्ञका होथ, अरञ्ञवनपत्थानि पन्तानि सेनासनानि पटिसेवथा' ति—इति कायवूपकासे समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा।

"'एथ तुम्हे, आवुसो, सम्मादिट्ठिका होथ सम्मादस्सनेन समन्नागता' ति—इति सम्मादस्सने समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा। ये ते, आनन्द, भिक्खू नवा [N.394,R.139] अचिरपब्बजिता अधुनागता इमं धम्मविनयं, ते वो, आनन्द, भिक्खू इमेसु पञ्चसु धम्मेसु समादपेतब्बा निवेसेतब्बा पतिट्ठापेतब्बा" ति॥ ●

५. मच्छरिनीसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी

थे। उस समय आयुष्मान् आनन्द भगवान् के सम्मुख आये। तथा भगवान् को प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। तब आयुष्मान् आनन्द से भगवान् ने यह कहा—

२. "आनन्द! जो भिक्षु इस धर्मविनय में कुछ समय पूर्व ही प्रव्रजित हुए हैं, ऐसे नव भिक्षुओं को इन पाँच धर्मों में प्रविष्ट एवं प्रतिष्ठित करना चाहिये। कौन से पाँच? उनको—

" 'तुम शीलवान् बनो, प्रातिमोक्षसंवर से संवृत हो जाओ' ...पूर्ववत्... यह प्रातिमोक्षसंवर की शिक्षा देनी चाहिये। (१)

३. "आओ, भिक्षुओ! तुम इन्द्रियों पर संयम रखते हुए साधना करो ...पूर्ववत्... यह इन्द्रियसंयम की शिक्षा देनी चाहिये। (२)

४. " 'आओ, आयुष्मानो! बात कम, कार्य अधिक करना सीखो, कार्य की ही बात करना सीखो'—इस प्रकार वाक्संयम की शिक्षा देनी चाहिये। (३)

५. " 'आओ, आयुष्मानो! अरण्य के एकान्त स्थानों में बैठकर साधना करना सीखो'—इस प्रकार अरण्यसाधना की शिक्षा देनी चाहिये। (४)

६. " 'आओ, आयुष्मानो! तुम सम्यग्दृष्टि बनो'—इस प्रकार उनको सम्यग्दृष्टि बनने की शिक्षा देनी चाहिये। (५)

"आनन्द! जो भिक्षु इस धर्मविजनय में कुछ समय पूर्व ही प्रव्रजित हुए हैं ऐसे नवभिक्षुओं को इन उपर्युक्त पाँच धर्मों में प्रविष्ट एवं प्रतिष्ठित करना चाहिये॥" ●

यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? आवासमच्छरिनी होति, कुलमच्छरिनी होति, लाभमच्छरिनी होति, वण्णमच्छरिनी होति, धम्ममच्छरिनी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? न आवासमच्छरिनी होति, न कुलमच्छरिनी होति, न [B.123] लाभमच्छरिनी होति, न वण्णमच्छरिनी होति, न धम्ममच्छरिनी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे" ति। ●

६. **वण्णनासुत्तं** : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति, सद्धादेय्यं विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति,

---

५. मत्सरिणीसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी

१. "भिक्षुओ! इन पाँच (पाप) धर्मों से युक्त भिक्षुणी जैसे आयी थी वैसी ही पुनः नरक में जा पहुँचेगी। किन पाँच धर्मों से युक्त? (१) जो अपने भद्र आवास का, (२) जो अपने भद्र कुल का, (३) जो अपने चीवर पिण्डपात आदि के अतिशय लाभ का, (४) जो अपने रूप का, (५) जो अपने धर्मज्ञान का अभिमान करती है। भिक्षुओ इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी ...पूर्ववत्... नरक में जा पहुँचेगी।

२. "भिक्षुओ! इन पाँच (कुशल) धर्मों से युक्त भिक्षुणी, देहपात के बाद स्वर्ग में ही जाती है। किन पाँच धर्मों से युक्त? (१) जो अपने भद्र आवास का, (२) जो अपने भद्रकुल का, (३) जो अपने चीवर पिण्डपात आदि के अतिशय लाभ का, (४) जो अपने रूपसौन्दर्य का, तथा (५) जो अपने धर्मज्ञान का अभिमान नहीं करती, वह अपने इन पवित्र विचारों के कारण, मरणानन्तर, सीधे स्वर्ग में ही जायगी॥" ●

६. वर्णनासूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी

१. "भिक्षुओ! इन पाँच (पाप) धर्मों से युक्त भिक्षुणी, देहपात के बाद, पुनः नरक में चली जाती है। किन पाँच धर्मों से? (१) जो विना सोचे, विना विचारे अप्रशंसनीय की प्रशंसा करती है, (२) या... प्रशंसनीय की निन्दा करती है, (३) ...अश्रद्धेय के प्रति श्रद्धा रखती है, (४) ...श्रद्धेय के प्रति अश्रद्धा प्रकट करती है, तथा (५) श्रद्धा से देय वस्तु को अपमानपूर्वक देती है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी का पुनः नरकपात ही होता है।

२. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी, देहपात के बाद पुनः स्वर्ग में ही जाती है। कौन

[R.140] अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने पसादं [N.395] उपदंसेति, सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे'' ति। ●

७. इस्सुकिनीसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति, इस्सुकिनी च होति, मच्छरिनी च, सद्धादेय्यं विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति, अनिस्सुकिनी च होति, अमच्छरिनी [B.124] च, सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे'' ति। ●

८. मिच्छादिट्ठिकसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति, मिच्छादिट्ठिका च होति, मिच्छासङ्कप्पा च, सद्धादेय्यं विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये।

से पाँच धर्म? (१) वह सोच समझकर प्रशंसनीय की प्रशंसा करती है; (२) ...निन्दनीय की निन्दा करती है; (३) ...श्रद्धेय की प्रति श्रद्धा करती है; (४) ...अश्रद्धेय के प्रति अश्रद्धा रखती है; तथा (५) सोचविचार कर श्रद्धा से देय वस्तु को श्रद्धा से ही देती है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी का, देहपात के बाद, पुनः स्वर्ग में ही गमन होता है॥'' ●

७. ईर्ष्युकीसूत्र : : ईर्ष्यादि पाँच धर्मयुक्त भिक्षुणी

१. ...पूर्ववत्... किन पाँच धर्मों से? जो सोचे विचारे विना ही निन्दनीय की प्रशंसा करती है; ... प्रशंसनीय की निन्दा करती है; ... दूसरों से ईर्ष्या करती है; ... दूसरों से अभिमान करती है; श्रद्धादेय वस्तु को अश्रद्धापूर्वक देती है। इन पाँच पापधर्मों से युक्त किसी पापभिक्षुणी का नरकपात ही होता है।

२. पाँच धर्मों से समन्वित भिक्षुणी, देहपात के बाद, स्वर्ग में जाती है। कौन से पाँच? (१) सोच समझकर निन्दनीय की निन्दा करती है; (२) ... प्रशंसनीय की प्रशंसा करती है; (३) ... ईर्ष्या नहीं करती, (४) ... अभिमान नहीं करती; तथा (५) श्रद्धादेय वस्तु का अपमान नहीं करती ...पूर्ववत्... स्वर्ग में ही जाती है॥'' ●

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं [R.141] निक्खित्ता एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति, सम्मादिट्ठिका च होति, सम्मासङ्कप्पा च, सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे'' ति। ●

९. मिच्छावाचासुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता [N.396] भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति, मिच्छावाचा च होति, मिच्छाकम्मन्ता च, सद्धादेय्यं विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति, सम्मावाचा च होति, सम्माकम्मन्ता च, सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे'' ति॥ ●

१०. मिच्छावायामसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता [B.125] भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा

नरक में पतन करने वाले पाँच धर्म

: :

८. मिथ्यादृष्टिकसूत्र

१. ...पूर्ववत्...। किन पाँच से? (१) ...पूर्ववत्..., (२) ...पूर्ववत्..., (३) मिथ्या-दृष्टियुक्त होती है; (४) ... मिथ्यासङ्कल्प वाली होती है, (५) श्रद्धादेय का अपमान करती है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी नरकगामिनी होती है।

२. ...पूर्ववत्...। (१) ...पूर्ववत्...। (२) ...पूर्ववत्...। (३) सम्यग्दृष्टिक होती है; (४) सम्यक्सङ्कल्प होती है। (५) श्रद्धादेय को श्रद्धापूर्वक देती है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी स्वर्ग में जाती है॥ ●

पूर्ववत्

: :

९. मिथ्यावाक्सूत्र

१. ...पूर्ववत्...। किन पाँच से? (१) ...पूर्ववत्...। (२) ...पूर्ववत्...। (३) मिथ्यावाक् होती है। (४) ...मिथ्याकर्मवाली होती है। (५) श्रद्धादेय को श्रद्धापूर्वक नहीं देती—इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी का नरकपात ही होता है।

२. ...पूर्ववत्...। किन पाँच धर्मों से? (१) ...पूर्ववत्...। (२) ...पूर्ववत्...। (३) सम्यग्वाक् होती है।... (४) सम्यक्कर्मान्त है, (५) श्रद्धादेय को श्रद्धापूर्वक देती है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी स्वर्गगामिनी ही होती है॥'' ●

पूर्ववत्

: :

१०. मिथ्याव्यायामसूत्र

१. ...पूर्ववत्...। किन पाँच से? (१) ...पूर्ववत्...। (२) ...पूर्ववत्...। (३) मिथ्या-

अवण्णारहस्स वण्णं भासति, अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति, [R.142] मिच्छावायामा च होति, मिच्छासतिनी च, सद्धादेय्यं विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति, अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति, सम्मावायामा च होति, सम्मासतिनी च, सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे" ति॥ ●

अन्धकविन्दवग्गो द्वादसमो॥

तस्सुद्दानं

[N.397] कुलूपको पच्छासमणो, समाधिअन्धकविन्दं।
मच्छरी वण्णना इस्सा, दिट्ठिवाचाय वायमा ति॥ ●

१३. गिलानवग्गो

१. गिलानसुत्तं : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन गिलानसाला

व्यायाम होती है। (४) मिथ्यास्मृति होती है। (५) श्रद्धादेय को श्रद्धापूर्वक नहीं देती। इन पाँच धर्मों से युक्त स्त्री नरकगामिनी होती है।

२. ...पूर्ववत्...। किन पाँच से? (१) ...पूर्ववत्...। (२) ...पूर्ववत्...। (३) सम्यग्व्यायाम होती है। (४) सम्यक्समाधि होती है। (५) तथा श्रद्धादेय को श्रद्धापूर्वक देती है। उस पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी, देहपात के बाद, स्वर्ग में ही पहुँचती है॥ ●

अन्धकविन्दवर्ग बारहवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्या सूत्रों) की सूची

१. कुलोपगसूत्र, २. पश्चात्श्रमणसूत्र, ३. सम्यक्समाधिसूत्र, ४. अन्धकविन्दसूत्र, ५. मत्सरिणीसूत्र, ६. वर्णनासूत्र, ७. ईर्ष्युकीसूत्र, ८. मिथ्यादृष्टिकसूत्र, ९. मिथ्यावाक्सूत्र, १०. मिथ्याव्यायामसूत्र॥ ●

१३. ग्लानवर्ग

१. ग्लानसूत्र : : रोगी भिक्षु के पाँच धर्म

१. एक समय भगवान् बुद्ध वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान

तेनुपसङ्कमि। अद्दसा खो भगवा अञ्ञतरं भिक्खुं दुब्बलं गिलानकं; दिस्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—

२. "यं कञ्चि, भिक्खवे, भिक्खुं दुब्बलं गिलानकं पञ्च धम्मा न [B.126] विजहन्ति, तस्सेतं पाटिकङ्खं—'नचिरस्सेव आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सती' ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके अनभिरतसञ्ञी, सब्बसङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी, मरणसञ्ञा खो [R.143] पनस्स अज्झत्तं सूपट्ठिता होति। यं कञ्चि, भिक्खवे, भिक्खुं दुब्बलं गिलानकं इमे पञ्च धम्मा न विजहन्ति, तस्सेतं पाटिकङ्खं—'नचिरस्सेव आसवानं खया ...पे०... सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिस्सती''' ति॥ ●

२. सतिसूपट्ठितसुत्तं : १. "यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु वा भिक्खुनी वा पञ्च धम्मे भावेति पञ्च धम्मे बहुलीकरोति, तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं— दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो अज्झत्तञ्ञेव सति सूपट्ठिता होति धम्मानं उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय, असुभानुपस्सी काये विहरति, आहारे पटिकूलसञ्ञी, सब्बलोके अनभिरतसञ्ञी, सब्ब-

---

थे। तब कभी भगवान् सायङ्कालिक साधनाकर्म पूर्ण कर ग्लानशाला (रोगिशाला) में पधारे। वहाँ भगवान् ने किसी दुर्बल रोगी को देखा। देखकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजते हुए उनने भिक्षुओं को यह उपदेश किया—

२. "भिक्षुओ! जब तक जिस किसी दुर्बल रोगी को पाँच धर्म नहीं छोड़ते तब तक वह यही आशा करता है—'वह शीघ्र ही आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को प्राप्त कर साधना पूर्ण कर लेगा।' कौन से पाँच धर्म? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु अपनी काया में अशुभ का दर्शन करता हुआ साधना करता है। (२) आहार में प्रतिकूल भावना रखता है। (३)समस्त संसार में अनभिरति (अरुचि) मानता है। (४) सांसारिक सभी पदार्थों को अनित्य समझता है। तथा (५) मृत्यु इसके सम्मुख नाचती रहती है। इस प्रकार, भिक्षुओ! जब तक जिस किसी दुर्बल रोगी को ये पाँच धर्म नहीं छोड़ते तब तक उसको यह आशा बनी रहती है कि बहुत शीघ्र ही, आश्रवों के क्षय से अनाश्रव ...पूर्ववत्... साधना पूर्ण कर लेगा"॥ ●

२. स्मृतिसूपस्थितसूत्र : : पाँच धर्मों की साधना एवं अभ्यास

"भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी इन पाँच धर्मों की साधना करते हैं, अभ्यास करते हैं, उनको इन दो फलों में से किसी एक फल की आशा अवश्य करनी चाहिये—इसी जन्म में ज्ञान प्राप्ति, या कुछ प्रारब्ध अवशिष्ट रहने पर अनागामिता (इस लोक में न आना)। कौन से पाँच? (१) यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु को धर्मों के उदय एवं अस्त विषयक ज्ञान की स्मृति भली भाँति उपस्थित रहती है; (२) वह अपनी काया में अशुभानुपश्यना करता है; (३) आहार में प्रतिकूलभावना रखता है; (४) समस्त संसार में अरुचि रखता है; (५) एवं सभी संस्कारों को

[N.398] सङ्खारेसु अनिच्चानुपस्सी। यो हि कोचि, भिक्खवे, भिक्खु वा भिक्खुनी वा इमे पञ्च धम्मे भावेति इमे पञ्च धम्मे बहुलीकरोति, तस्स द्विन्नं फलानं अञ्ञतरं फलं पाटिकङ्खं—दिट्ठेव धम्मे अञ्ञा, सति वा उपादिसेसे अनागामिता'' ति॥ ●

३. पठमउपट्ठाकसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो गिलानो दूपट्ठाको होति। कतमेहि पञ्चहि? असप्पायकारी होति, सप्पाये मत्तं न जानाति, भेसज्जं नप्पटिसेविता होति, अत्थकामस्स गिलानुपट्ठाकस्स न यथाभूतं आबाधं आविकत्ता होति [B.127] अभिक्कमन्तं वा अभिक्कमती ति पटिक्कमन्तं वा पटिक्कमती ति ठितं वा ठितो ति, उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं [R.144] पाणहरानं अनधिवासकजातिको होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो गिलानो दूपट्ठाको होति।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो गिलानो सूपट्ठाको होति। कतमेहि पञ्चहि? सप्पायकारी होति, सप्पाये मत्तं जानाति, भेसज्जं पटिसेविता होति, अत्थ-कामस्स गिलानुपट्ठाकस्स यथाभूतं आबाधं आविकत्ता होति अभिक्कमन्तं वा अभिक्कमती ति पटिक्कमन्तं वा पटिक्कमती ति ठितं वा ठितो ति, उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अनधिवासकजातिको होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो गिलानो सूपट्ठाको होति॥

४. दुतियउपट्ठाकसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो गिलानु-पट्ठाको नालं गिलानं उपट्ठातुं। कतमेहि पञ्चहि? नप्पटिबलो होति भेसज्जं संविधातुं;

अनित्य समझता है। भिक्षुओ! जो भिक्षु या भिक्षुणी इन पाँच धर्मों की साधना करते हैं ...पूर्ववत्... अनागामिता॥'' ●

३. प्रथम उपस्थायकसूत्र : : अपरिचर्यायोग्य रोगी के पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच प्रमादपूर्ण धर्मों से युक्त रोगी की परिचर्या कठिन होती है। किन पाँच धर्मों से? (१) रोगी पथ्य से नहीं रहता; (२) पथ्य की मात्रा नहीं जानता, (३)औषध का समय से उपयोग नहीं करता, (४) हितचिन्तक परिचारक को अपने रोग की वस्तुस्थिति नहीं बतलाता; (५) तीव्र कष्टकारक, अप्रिय, प्राणान्त कष्ट देने वाली वेदनाओं को सहन नहीं कर पाता। इन पाँच प्रमादपूर्ण धर्मों से युक्त रोगी की परिचर्या बहुत कठिन होती है।

२. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त रोगी की परिचर्या सरलता से हो सकती है। किन पाँच धर्मों से? (१) रोगी पथ्य से रहता है; (२) पथ्य का मात्रा से ही उपयोग करता है। (३) समय से भैषज्य का उपयोग करता है। (४) हितकारी परिचारक को अपने रोग की वृद्धि एवं हानि स्पष्ट बताता है। (५) शरीर में होने वाली वेदनाओं का विवरण भलीभाँति देता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त रोगी की परिचर्या सरलता से हो सकती है''॥ ●

४. द्वितीय उपस्थायकसूत्र : : परिचारक के पाँच दोष एवं गुण

१. ''किसी रोगी का पाँच धर्मों से युक्त परिचारक रोगी की परिचर्या के योग्य नहीं होता।

सप्पायासप्पायं न जानाति, असप्पायं उपनामेति, सप्पायं अपनामेति; आमिसन्तरो गिलानं उपट्ठाति, नो मेत्तचित्तो; जेगुच्छी होति उच्चारं वा पस्सावं वा वन्तं वा खेळं वा नीहरितुं; नप्पटिबलो होति गिलानं कालेन कालं धम्मिया कथाय सन्दस्सेतुं समादपेतुं [N.399] समुत्तेजेतुं सम्पहंसेतुं। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो गिलानुपट्ठाको नालं गिलानं उपट्ठातुं।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो गिलानुपट्ठाको अलं गिलानं उपट्ठातुं। कतमेहि पञ्चहि? पटिबलो होति भेसज्जं संविधातुं; सप्पायासप्पायं जानाति, असप्पायं अपनामेति, सप्पायं उपनामेति; मेत्तचित्तो गिलानं उपट्ठाति, नो आमिसन्तरो; अजेगुच्छी होति उच्चारं वा पस्सावं वा वन्तं वा खेळं वा नीहरितुं; पटिबलो होति गिलानं कालेन कालं धम्मिया कथाय सन्दस्सेतुं समादपेतुं समुत्तेजेतुं सम्पहंसेतुं। इमेहि खो, [R.145] भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो गिलानुपट्ठाको अलं गिलानं उपट्ठातुं" ति॥ ●

५. पठमअनायुस्सासुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा अनायुस्सा। [B.128] कतमे पञ्च? असप्पायकारी होति, सप्पाये मत्तं न जानाति, अपरिणतभोजी च होति, अकालचारी च होति, अब्रह्मचारी च। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा अनायुस्सा।

२. "पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा आयुस्सा। कतमे पञ्च? सप्पायकारी होति, सप्पाये मत्तं जानाति, परिणतभोजी च होति, कालचारी च होति, ब्रह्मचारी च। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा आयुस्सा" ति॥ ●

किन पाँच धर्मों से? (१) ओषधि का संयोजन सम्यक् रीति से नहीं जानता; (२) पथ्य अपथ्य के विषय में नहीं जानता; अपथ्य का सेवन कराता है; पथ्य का सेवन नहीं कराता; (३) रोगी की परिचर्या मन में मैल रखकर करता है, मैत्रीपूर्ण चित्त से नहीं; (४) रोगी का मलमूत्र उठाते समय रोगी से घृणा करता है; (५) समय समय पर रोगी को सान्त्वना देने के लिये धार्मिक कथा नहीं सुनाता। इन दुर्गुणों से युक्त परिचारक रोगी की सेवा हेतु अयोग्य है।

२. "किसी रोगी का इन पाँच धर्मों से युक्त परिचारक ही रोगी की सेवा करने योग्य होता है। जो ओषधि का संयोजन ठीक ढंग से जानता है। पथ्य अपथ्य के विषय में जानता है। अपथ्य का सेवन नहीं कराता, पथ्य का ही सेवन कराता है। रोगी की परिचर्या मैत्रीपूर्ण चित्त से कराता है, मन में मैल रखकर नहीं। रोगी का मलमूत्र उठाते समय उससे घृणा नहीं करता। तथा समय समय रोगी को धार्मिक कथाएँ सुनाकर उसको सान्त्वना देता रहता है। इन पाँच धर्मों से युक्त परिचारक ही रोगी की सेवा करने में समर्थ होता है"॥ ●

: :

अनायुष्य कारक पाँच धर्म

५. प्रथम अनायुष्यसूत्र

१. "ये पाँच धर्म अनायुष्य (आयु के हानि) कारक होते हैं। कौन से पाँच? अपथ्य का सेवनकारी होता है, पथ्य की मात्रा नहीं जानता, बासी (पर्युषित) भोजन करता है, समय से भोजन नहीं करता, अधिक मात्रा में मैथुन करता है, ये पाँच धर्म अनायुष्यकारक होते हैं।

२. ये पाँच धर्म आयुष्य (आयु-वृद्धि) कारक होते हैं। कौन पाँच धर्म? अपथ्य का सेवन,

६. दुतियअनायुस्सासुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा अनायुस्सा। कतमे पञ्च ? असप्पायकारी होति, सप्पाये मत्तं न जानाति, अपरिणतभोजी च होति, दुस्सीलो च, पापमित्तो च। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा अनायुस्सा।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा आयुस्सा। कतमे पञ्च ? सप्पायकारी होति, [N.400] सप्पाये मत्तं जानाति, परिणतभोजी च होति, सीलवा च कल्याणमित्तो च। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा आयुस्सा'' ति॥ ●

७. वपकाससुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु नालं सङ्घम्हा वपकासितुं। कतमेहि पञ्चहि ? इध, भिक्खवे, भिक्खु असन्तुट्ठो होति इतरीतरेन चीवरेन, असन्तुट्ठो होति इतरीतरेन पिण्डपातेन, असन्तुट्ठो होति इतरीतरेन सेनासनेन, असन्तुट्ठो होति इतरीतरेन गिलानप्पच्चयभेज्जपरिक्खारेन, कामसङ्कप्पबहुलो च विहरति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु नालं सङ्घम्हा वपकासितुं।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलं सङ्घम्हा वपकासितुं। [R.146] कतमेहि पञ्चहि ? इध, भिक्खवे, भिक्खु सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन चीवरेन, सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन पिण्डपातेन, सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन सेनासनेन, सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन

पथ्य की मात्रा न जानना, पर्युषित (बासी) भोजन न करना, समय से भोजन करना,अतिमात्रा में मैथुन न करना—ये पाँच आयुष्यकारक धर्म होते हैं''॥ ●

६. द्वितीय अनायुष्यसूत्र : : अनायुष्य एवं आयुष्यकारक धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म अनायुष्यकारक हैं। कौन से पाँच ? वह पथ्यसेवी नहीं होता, पथ्य की मात्रा नहीं जानता, पर्युषित (बासी) भोजन करता है, दु:शील होता है एवं उसका पापी मित्रों के साथ सम्पर्क होता है। भिक्षुओ! ये पाँच अनायुष्यकारक धर्म हैं।

२. भिक्षुओ! ये पाँच धर्म आयुष्यकारक होते हैं। कौन से पाँच ? पथ्यसेवी होता है, पथ्य की मात्रा जानता है, पर्युषित भोजन नहीं करता, शीलवान् होता है तथा कल्याण मित्रों के साथ ही रहता है। भिक्षुओ! ये पाँच धर्म आयुष्यकारक हैं॥'' ●

७. व्यवकर्षसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु निष्कासनयोग्य

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों युक्त भिक्षु सङ्घ से निष्कासनयोग्य होता है। कौन से पाँच धर्मो से ? (१) यहाँ कोई भिक्षु अधिक से अधिक चीवर पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होता; (२) अधिक से अधिक अच्छा भोजन पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होता; (३)अधिक से अधिक शयनासन पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होता; (४) अधिक से अधिक भैषज्य पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होता; (५) कामभोगों को पाने के लिये अधिक से अधिक सङ्कल्प विकल्प करता है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सङ्घ से निकालने योग्य होता है।

२. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को सङ्घ से नहीं निकालना चाहिये। किन पाँच धर्मों से ? जो कैसा भी चीवर पाकर सन्तुष्ट रहता हो; कैसा भी भोजन पाकर सन्तुष्ट रहता हो; कैसा भी शयनासन पाकर सन्तुष्ट रहता हो; रोगशमनार्थ कैसी भी ओषधि पाकर सन्तुष्ट रहता हो, तथा

गिलानप्पच्चयभेज्जपरिक्खारेन, नेक्खम्मसङ्कप्पबहुलो च विहरति। इमेहि खो, [B.129] भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलं सङ्घम्हा वपकासितुं'' ति॥

८. समणसुखसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, समणदुक्खानि। कतमानि पञ्च ? इध, भिक्खवे, भिक्खु असन्तुट्ठो होति इतरीतरेन चीवरेन, असन्तुट्ठो होति इतरीतरेन पिण्डपातेन, असन्तुट्ठो होति इतरीतरेन सेनासनेन, असन्तुट्ठो होति इतरीतरेन गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन, अनभिरतो च ब्रह्मचरियं चरति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च समणदुक्खानि।

२. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, समणसुखानि। कतमानि पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन चीवरेन, सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन पिण्डपातेन, सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन सेनासनेन, सन्तुट्ठो होति इतरीतरेन गिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन, अभिरतो च ब्रह्मचरियं चरति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च समणसुखानि'' ति॥ ●

९. परिकुप्पसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आपायिका नेरयिका [N.401] परिकुप्पा अतेकिच्छा। कतमे पञ्च? माता जीविता वोरोपिता होति, पिता जीविता वोरोपितो होति, अरहं जीविता वोरोपितो होति, तथागतस्स दुट्ठेन चित्तेन लोहितं उप्पादितं होति, सङ्घो भिन्नो होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आपायिका नेरयिका परिकुप्पा अतेकिच्छा'' ति॥ ●

१०. ब्यसनसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, ब्यसनानि। कतमानि [R.147] पञ्च ? ञातिब्यसनं, भोगब्यसनं, रोगब्यसनं, सीलब्यसनं, दिट्ठिब्यसनं। न, भिक्खवे, सत्ता

निरन्तर नैष्काम्य के विषय में ही चिन्तन मनन करता रहता है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को सङ्घ से नहीं निकालना चाहिये॥'' ●

८. श्रमणसुखसूत्र : : पाँच श्रमणदुःख एवं श्रमणसुख

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच श्रमणदुःख होते हैं। कौन से पाँच? ...पूर्वसूत्रवत्... भिक्षुओ! ये पाँच श्रमणदुःख होते हैं।

२. ''भिक्षुओ! ये पाँच श्रमणसुख होते हैं। कौन से पाँच? ...पूर्वसूत्रवत्... भिक्षुओ! ये पाँच श्रमणसुख होते हैं। ●

९. परिकोप्यसूत्र : : पाँच नरकपाती पापधर्म

१. भिक्षुओ! ये पाँच पापधर्म दुर्गतिकारक, नरकपाती तथा अचिकित्स्य होते हैं। कौन से पाँच? (१) माता की हत्या, (२) पिता की हत्या, (३) अर्हत् की हत्या, (४) तथागत पर आक्रमण कर उनके शरीर से रक्त बहाना, (५) तथा सङ्घ में फूट डालना। भिक्षुओ! ये पाँच धर्म दुर्गतिकारक, नरकपाती एवं अचिकित्स्य होते हैं॥'' ●

१०. व्यसनसूत्र : : पाँच व्यसन

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म 'व्यसन' (दौर्भाग्यकारक सङ्कट) कहलाते हैं। कौन से पाँच?

[B.130] ञातिब्यसनहेतु वा भोगब्यसनहेतु वा रोगब्यसनहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति। सीलब्यसनहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता दिट्ठिब्यसनहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जन्ति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च ब्यसनानि।

२. "पञ्चिमा, भिक्खवे, सम्पदा। कतमा पञ्च? ञातिसम्पदा, भोगसम्पदा, आरोग्यसम्पदा, सीलसम्पदा, दिट्ठिसम्पदा। न, भिक्खवे, सत्ता ञातिसम्पदाहेतु वा भोगसम्पदाहेतु वा आरोग्यसम्पदाहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। सीलसम्पदाहेतु वा, भिक्खवे, सत्ता दिट्ठिसम्पदाहेतु वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जन्ति। इमा खो, भिक्खवे, पञ्च सम्पदा" ति॥ ●

गिलानवग्गो तेरसमो॥

तस्सुद्दानं

गिलानो सतिसूपट्ठि, द्वे उपट्ठाका दुवायुसा।
वपकाससमणसुखा, परिकुप्पं ब्यसनेन चा ति॥ ●

१४. राजवग्गो

[N.402,R.148] **१. पठमचक्कानुवत्तनसुत्तं** : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो राजा चक्कवत्ती धम्मेनेव चक्कं वत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं केनचि

---

(१) सम्बन्धिजनों का सङ्कट, (२) कामभोगों का सङ्कट, (३) रोगों का सङ्कट, (४) शील का सङ्कट, एवं (५) दृष्टि का सङ्कट। भिक्षुओ! कोई प्राणी ज्ञातिसङ्कट के कारण, भोगसङ्कट के कारण, रोगव्यसन के कारण, नरकपाती नहीं होते; अपितु शीलव्यसन के कारण तथा दृष्टिव्यसन के कारण भी देहपात के बाद, मरणानन्तर, दुर्गत एवं नरकपाती होते हैं। भिक्षुओ! ये पाँच 'सङ्कट' (व्यसन) कहलाते हैं।

२. "भिक्षुओ! ये पाँच (धर्म) 'सम्पत्ति' कहलाते हैं। कौन से पाँच? ज्ञातिसम्पत्ति, भोगसम्पत्ति, आरोग्यसम्पत्ति, शीलसम्पत्ति, एवं दृष्टिसम्पत्ति। भिक्षुओ! कोई प्राणी ज्ञातिसम्पत्ति, भोगसम्पत्ति या आरोग्यसम्पत्ति के कारण स्वर्ग में नहीं पहुँचते; अपितु शीलसम्पत्ति या दृष्टिसम्पत्ति के कारण ही सुगतिमय स्वर्गगामी होते हैं। भिक्षुओ! ये पाँच (धर्म) 'सम्पत्ति' कहलाते हैं॥" ●

ग्लानवर्ग त्रयोदश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. ग्लानसूत्र, २. स्मृतिसूपस्थितसूत्र, ३. प्रथम उपस्थायकसूत्र, ४. द्वितीय उपस्थायकसूत्र, ५. प्रथम अनायुष्यसूत्र, ६. द्वितीय अनायुष्यसूत्र, ७. व्यवकर्षसूत्र, ८. श्रमणसुखसूत्र, ९. परिकोप्यसूत्र एवं १०. व्यसनसूत्र॥ ●

मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पाणिना। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती अत्थञ्ञू च होति, धम्मञ्ञू च, मत्तञ्ञू च, कालञ्ञू च, परिसञ्ञू च। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो राजा चक्कवत्ती धम्मेनेव चक्कं पवत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं केनचि मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पाणिना।

२. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो तथागतो अरहं [B.131] सम्मासम्बुद्धो धम्मेनेव अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो अत्थञ्ञू, धम्मञ्ञू, मत्तञ्ञू, कालञ्ञू, परिसञ्ञू। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मेनेव अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तेति; तं होति धम्मचक्कं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं'' ति॥ ●

२. दुतियचक्कानुवत्तनसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो चक्कवत्तिस्स जेट्ठो पुत्तो पितरा पवत्तितं चक्कं धम्मेनेव अनुप्पवत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं केनचि मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पाणिना। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स जेट्ठो पुत्तो अत्थञ्ञू च होति, धम्मञ्ञू च, मत्तञ्ञू च, कालञ्ञू च, परिसञ्ञू च। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो

---

१४. राजवर्ग

१. प्रथम चक्रानुवर्तनसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त चक्रवर्ती राजा

१. ''भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त चक्रवर्ती राजा धर्मपूर्वक ही अपना शासनचक्र चलाता है, इस शासनचक्र को कोई भी शत्रुराजा रोक नहीं पाता। किन पाँच अङ्गों से? (१) यह चक्रवर्ती राजा शासन की सूक्ष्मताओं को समझता है, (२) धर्म की सूक्ष्मताओं को समझता है; (३) मात्राओं को समझता है; (४) अवसर पहचानता है, तथा (५) मन्त्रि-सभा के मन्तव्यों को समझता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त चक्रवर्ती राजा धर्मपूर्वक अपना शासनचक्र चलाता है, जिसे कोई भी शत्रुराजा रोक नहीं पाता।

२. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध धर्मपूर्वक ही अपना अद्वितीय धर्मचक्र चलाते हैं, यह धर्मचक्र किसी अन्य श्रमण या ब्राह्मण द्वारा किसी देवता या मार द्वारा, ब्रह्मा या किसी अन्य के द्वारा संसार में रोका नहीं जा सकता। किन पाँच धर्मों से? वे तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध अर्थज्ञ, धर्मज्ञ, मात्राज्ञ, कालज्ञ एवं परिषद् के मन्तव्य को समझने वाले होते हैं। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध धर्मपूर्वक ही अपना अद्वितीय धर्मचक्र चलाते हैं ...पूर्ववत्... संसार में रोका नहीं जा सकता॥'' ●

२. द्वितीय चक्रानुवर्तनसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त तथागत सम्यक्सम्बुद्ध

१. ''भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त किसी चक्रवर्ती राजा का ज्येष्ठ पुत्र पिता द्वारा चलाया हुआ राज्य धर्मपूर्वक ही ...पूर्ववत्... जिसको कोई शत्रु राजा रोक नहीं पाता।

चक्कवत्तिस्स जेट्ठो पुत्तो पितरा पवत्तितं चक्कं धम्मेनेव अनुप्पवत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं केनचि मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पाणिना।

[N.403,R.149] २. "एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो सारिपुत्तो तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, सारिपुत्तो अत्थञ्ञू, धम्मञ्ञू, मत्तञ्ञू, कालञ्ञू, परिसञ्ञू। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो सारिपुत्तो तथागतेन अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तितं सम्मदेव अनुप्पवत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं" ति॥ ●

[B.132] **३. धम्मराजासुत्तं :** १. "यो पि सो, भिक्खवे, राजा चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा, सो पि न अराजकं चक्कं वत्तेती" ति। एवं वुत्ते अञ्ञतरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच—"को पन, भन्ते, रञ्ञो चक्कवत्तिस्स धम्मिकस्स धम्मरञ्ञो राजा" ति?

"धम्मो, भिक्खू" ति भगवा अवोच।

२. "इध, भिक्खु राजा चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा धम्मञ्ञेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहति अन्तोजनस्मिं।

३. "पुन च परं, भिक्खु, राजा चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा धम्मञ्ञेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहति खत्तियेसु अनुयन्तेसु बलकायस्मिं ब्राह्मणगहपतिकेसु

---

२. "इसी प्रकार, भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त सारिपुत्र तथागत द्वारा प्रवर्तित अद्वितीय धर्मचक्र को यथापूर्व चलाता रहता है ...पूर्ववत्... संसार में रोका नहीं जा सकता॥" ●

३. धर्मराजसूत्र : : धर्म ही उस धार्मिक राजा का स्वामी

१. "भिक्षुओ! वह धार्मिक चक्रवर्ती राजा जो राज्यशासन चलाता है उसके पीछे भी किसी का हाथ होता है, वह निरङ्कुश नहीं होता।" भगवान् द्वारा ऐसा कहे जाने पर किसी भिक्षु ने पूछा—"भन्ते! उस धार्मिक राजा पर किसका हाथ होता है?" भगवान् ने बताया—"भिक्षु! उस पर धर्म का शासन (अङ्कुश) होता है।

२. "यहाँ, भिक्षुओ! यहाँ कोई धार्मिक चक्रवर्ती धर्मराज, धर्म का ही आश्रय लेकर, धर्म का सत्कार, गौरव एवं पूजा करता हुआ, धर्म की ध्वजा लेकर, धर्मपूर्वक ऐश्वर्य भोग करता हुआ अपने अधीन जनों की रक्षा की व्यवस्था करता है।

३. "पुनः, भिक्षुओ! वह धार्मिक ...पूर्ववत्... सेना में नियुक्त अपने अनुयायी क्षत्रियजनों की, उसके राज्य में रहने वाले ब्राह्मणों की, गृहपतियों की, श्रमण एवं ब्राह्मणों की, यहाँ तक कि पशु

नेगमजानपदेसु समणब्राह्मणेसु मिगपक्खीसु। स खो सो, भिक्खु, राजा चक्कवत्ती [R.150] धम्मिको धम्मराजा धम्मञ्ञेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा अन्तोजनस्मिं धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा खत्तियेसु अनुयन्तेसु बलकायस्मिं ब्राह्मणगहपतिकेसु नेगमजानपेदसु समणब्राह्मणेसु मिगपक्खीसु धम्मेनेव चक्कं [N.404] पवत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं केनचि मनुस्सभूतेन पच्चत्थिकेन पाणिना।

४. ''एवमेव खो, भिक्खु, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिको धम्मराजा धम्मञ्ञेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहति भिक्खूसु—'एवरूपं कायकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं कायकम्मं न सेवितब्बं; एवरूपं वचीकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं वचीकम्मं न सेवितब्बं; एवरूपं मनोकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं मनोकम्मं न सेवितब्बं; एवरूपो आजीवो सेवितब्बो, एवरूपो आजीवो न सेवितब्बो; एवरूपो गामनिगमो सेवितब्बो, एवरूपो गामनिगमो न सेवितब्बो' ति।

५. ''पुन च परं, भिक्खु, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिको [B.133] धम्मराजा धम्मञ्ञेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहति भिक्खुनीसु ...पे०... उपासकेसु ...पे०... उपासिकासु—'एवरूपं कायकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं कायकम्मं न सेवितब्बं; एवरूपं वचीकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं वचीकम्मं न सेवितब्बं; एवरूपं मनोकम्मं सेवितब्बं, एवरूपं मनोकम्मं न सेवितब्बं; एवरूपो आजीवो सेवितब्बो, एवरूपो आजीवो न सेवितब्बो; एवरूपो गामनिगमो सेवितब्बो, एवरूपो गामनिगमो न सेवितब्बो' ति। ''स खो सो, भिक्खु, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो धम्मिको [R.151] धम्मराजा धम्मञ्ञेव निस्साय धम्मं सक्करोन्तो धम्मं गरुं करोन्तो धम्मं अपचायमानो

पक्षियों तक की रक्षा-व्यवस्था करता है। ... ऐसा करता हुआ वह चक्रवर्ती धर्मराज उन सब पर धर्मपूर्वक ही राज्य करता है। इस राज्य को यहाँ इस लोक में उससे कोई छीनने का साहस नहीं करता।

४. ''इसी प्रकार, भिक्षु! धार्मिक धर्मराज अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध धर्म का ही आश्रय लेकर, धर्म का सत्कार गौरव एवं पूजा करते हुए **भिक्षुओं को** इस प्रकार अपनी रक्षा का उपदेश करते हैं—'भिक्षुओ! तुमको अपना कायकर्म, वाक्कर्म एवं मनःकर्म इस प्रकार करना चाहिये, इस प्रकार नहीं करना चाहिये; ऐसी जीवनवृत्ति स्वीकारनी चाहिये, ऐसी नहीं; ग्राम निगम आदि में इस प्रकार प्रवेश करना चाहिये, इस प्रकार नहीं'। ...पूर्ववत्... **भिक्षुणियों को** ... **उपासकों को** ... **उपासिकाओं को** ऐसा उपदेश करते हैं—'उपासिकाओ! तुमको अपने कायकर्म ...पूर्ववत्... प्रवेश करना चाहिये, इस प्रकार नहीं'। भिक्षु! वे धार्मिक धर्मराज तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध

धम्मद्धजो धम्मकेतु धम्माधिपतेय्यो धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा भिक्खूसु, धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा भिक्खुनीसु, धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा उपासकेसु, धम्मिकं रक्खावरणगुत्तिं संविदहित्वा उपासिकासु धम्मेनेव अनुत्तरं धम्मचक्कं पवत्तेति; तं होति चक्कं अप्पटिवत्तियं समणेन वा ब्राह्मणेन वा देवेन वा मारेन वा ब्रह्मुना वा केनचि वा लोकस्मिं'' ति॥ ●

[N.405] **४. यस्संदिसंसुत्तं** : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो यस्सं यस्सं दिसायं विहरति, सकस्मियेव विजिते विहरति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, राजा खत्तियो मुद्धावसित्तो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन; अड्ढो होति महद्धनो महाभोगो परिपुण्णकोसकोट्ठागारो; बलवा खो पन होति चतुरङ्गिनिया सेनाय समन्नागतो अस्सवाय ओवादपटिकराय; परिणायको खो पनस्स होति पण्डितो वियत्तो मेधावी पटिबलो अतीनानागतपच्चुप्पन्ने अत्थे चिन्तेतुं; तस्सिमे चत्तारो धम्मा यसं परिपाचेन्ति। सो इमिना यसपञ्चमेन धम्मेन समन्नागतो यस्सं यस्सं दिसायं विहरति, [B.134] सकस्मियेव विजिते विहरति। तं किस्स हेतु? एवं हेतं, भिक्खवे, होति विजितावीनं।

२. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यस्सं यस्सं दिसायं विहरति, विमुत्तचित्तो व विहरति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु

भिक्षुओं की, भिक्षुणियों की, उपासकों की, उपासिकाओं की ऐसी रक्षाव्यवस्था कर इन सबको धर्मपूर्वक अद्वितीय धर्मोपदेश करते रहते हैं। उनका यह अद्वितीय (अनुपम) धर्मचक्र (धर्मोपदेश) किसी अन्य श्रमण ब्राह्मण द्वारा ... लोक में उलटा नहीं जा सकता॥'' ●

४. 'जिस दिशा में' सूत्र : : लोकविजयी पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त कोई मूर्धाभिषिक्त राजा जिस किसी भी दिशा में जाता है वह मानो अपने जीते हुए प्रदेश में ही जाता है। किन पाँच अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! (१) कोई मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा हो, जो दोनों पक्ष से ही मातृपक्ष से भी और पितृपक्ष से भी शुद्ध हो। (२) अपने शुद्ध कुल की सातवीं पीढ़ी तक जातिवाद से अनाक्षिप्त, तथा आढ्य, धनी, अतुलित भोग, ऐश्वर्य एवं धनधान्य से सम्पन्न हो। (३) स्वामिभक्त एवं आज्ञाकारी चतुरङ्गिणी सेना वाला हो। (४) मार्गदर्शक, पण्डित, चतुर, बुद्धिमान्, भूत भविष्य एवं वर्तमान के चिन्तन में समर्थ हो। (५) उसके ये चार धर्म, यश के साथ फल देने वाले होते हैं। वह इन यश सहित पाँचों धर्मों से युक्त रहता हुआ जिस दिशा में भी जाता है वह दिशा इसकी जीती हुई के समान लगती है। वह क्यों? वह इसलिये कि विजयी पुरुषों का ऐसा ही आनुभाव होता है।

२. इसी प्रकार, भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त कोई भिक्षु जिस दिशा में भी जाता है वहाँ वह विमुक्तचित्त होकर साधनारत रहता है। किन पाँच धर्मों से? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु

भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु—राजा व खत्तियो मुद्धावसित्तो [R.152] जातिसम्पन्नो; बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा—राजा व खत्तियो मुद्धावसित्तो अड्ढो महद्धनो महाभोगो परिपुण्ण-कोसकोट्ठागारो; आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु—राजा व खत्तियो मुद्धावसित्तो बलसम्पन्नो; पञ्ञवा होति उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया—राजा व खत्तियो मुद्धावसित्तो परिणायक-सम्पन्नो; तस्सिमे चत्तारो धम्मा विमुत्तिं परिपाचेन्ति। सो इमिना विमुत्तिपञ्चमेन धम्मेन समन्नागतो यस्सं यस्सं दिसायं विहरति विमुत्तचित्तो व विहरति। तं किस्स हेतु? [N.406] एवं हेतु, भिक्खवे, होति विमुत्तचित्तानं'' ति॥ ●

५. **पठमपत्थनासुत्तं** : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स जेट्ठो पुत्तो रज्जं पत्थेति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स जेट्ठो पुत्तो उभतो पितामहयुगा अक्खित्तो [B.135] अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन; अभिरूपो होति दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो; मातापितूनं पियो होति मनापो; नेगमजानपदस्स पियो होति मनापो; यानि तानि

उच्चकुलोत्पन्न, मूर्धाभिषिक्त किसी राजा के समान, प्रातिमोक्षसंवर से संवृत होकर आचार गोचर सम्पन्न होता हुआ शीलवान् होता है ...पूर्ववत्...। (२) उस मूर्धाभिषिक्त आढ्य, धनवान् परमैश्वर्य सम्पन्न राजा के समान ही वह भिक्षु बहुश्रुत, श्रुतधर एवं श्रुत का संग्रह करने वाला होता है। (३) उस मूर्धाभिषिक्त एवं बलवती सेना वाले राजा के समान वह भिक्षु अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों के उत्पाद हेतु सतत प्रयासरत रहता है। (४) उस मूर्धाभिषिक्त मार्गदर्शक राजा के समान ही प्रज्ञावान् होकर अर्थात् धर्मों के उत्पाद एवं नाश को जाननेवाली प्रज्ञा से युक्त रहकर साधना करता है। उस भिक्षु को ये चारों धर्म विमुक्तिफल देनेवाले होते हैं। इस तरह विमुक्तिपञ्चम इन धर्मों से युक्त वह जिस दिशा में भी जाता है, वहीं वह विमुक्तचित्त होकर साधनारत रहता है। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिये कि विमुक्तचित्त साधकों के कार्य का यही परिणाम हुआ करता है॥'' ●

५. प्रथम प्रार्थनासूत्र : राजा के ज्येष्ठ पुत्र की पाँच इच्छाएँ

१. ''भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त कोई मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का ज्येष्ठ पुत्र अपने मन में यही इच्छा लिये रहता है कि मैं कब राजा बनूँ। किन पाँच अङ्गों से? यहाँ भिक्षुओ! (१) कोई मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का पुत्र माता एवं पिता—दोनों कुलों से शुद्ध हो, स्वच्छ हो; अपने पितामह प्रपितामह की सातवीं पीढ़ी तक जातिवाद के किसी भी आक्षेप से रहित हो; (२) मातापिताओं का प्रिय हो; (३) रूपवान्, दर्शनीय एवं श्रेष्ठ सुन्दरता से युक्त हो; (४) राज्य के ग्रामवासी एवं नगरवासी—सभी नागरिकों का प्रिय हो; (५) राजाओं के सीखने योग्य सभी

रञ्ञं खत्तियानं मुद्धावसित्तानं सिप्पट्ठानानि हत्थिस्मिं वा अस्सस्मिं वा रथस्मिं वा धनुस्मिं वा थरुस्मिं वा तत्थ सिक्खितो होति अनवयो।

[R.153] ''तस्स एवं होति—'अहं खोम्हि उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। कस्माहं रज्जं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो। कस्माहं रज्जं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि मातापितूनं पियो मनापो। कस्माहं रज्जं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि नेगमजानपदस्स पियो मनापो। कस्माहं रज्जं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि यानि तानि रञ्ञं खत्तियानं मुद्धावसित्तानं सिप्पट्ठानानि हत्थिस्मिं वा अस्सस्मिं वा रथस्मिं वा धनुस्मिं वा थरुस्मिं वा, तत्थ सिक्खितो अनवयो। कस्माहं रज्जं न पत्थेय्यं' ति! इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स जेट्ठो पुत्तो रज्जं पत्थेति।

२. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आसवानं खयं पत्थेति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धो होति, सद्दहति तथागतस्स बोधिं—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। अप्पाबाधो होति [N.407] अप्पातङ्को, समवेपाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय; असठो होति अमायावी, यथाभूतं अत्तानं आविकत्ता सत्थरि वा विञ्ञूसु वा सब्रह्मचारीसु; आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु; पञ्ञवा होति उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया।

कलाओं में निपुण हो, जैसे—अश्वारोहण, हस्त्यारोहण, रथारोहण, धनुर्विद्या, खड्गविद्या में पूर्णतः निपुण हो।

''तब उसको यह विचार होता है—'मैं मातृपक्ष एवं पितृपक्ष—दोनों ही कुलों से अपनी सातवीं पीढ़ी तक परिशुद्ध हूँ, जातिवाद से अनाक्षिप्त हूँ, अतः मैं क्यों न राज्य चाहूँ।'' 'मैं रूपवान्, दर्शनीय एवं अनुपम सौन्दर्यसम्पन्न हूँ...।'' 'मैं माता पिता का प्रिय हूँ...।'' 'मैं ग्राम-नगरवासियों का प्रिय हूँ...।'' 'मैं क्षत्रिय मूर्धाभिषिक्त राजा में पायी जानेवाली सभी कलाओं में निपुण हूँ...'। इन पाँच अङ्गों से युक्त वह राजा का ज्येष्ठ पुत्र अपने लिये राज्य चाहता है।

२. ''भिक्षुओ! इसी तरह पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु भी अपने आश्रवों का क्षय चाहता है। किन पाँच अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु श्रद्धालु होकर तथागत के प्रति इस प्रकार **श्रद्धा** रखता है ...पूर्ववत्...; वह स्वस्थ एवं नीरोग होता है, समपाचकाग्नि से युक्त होता है, वह **शठता** एवं धूर्तता से दूर रहता है, वह जैसा है वैसा ही जनता एवं साथियों के सम्मुख स्वयं को प्रकट **करता** है; वह अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये प्रयासरत रहता है; कुशल**धर्मों**

''तस्स एवं होति—'अहं खोम्हि सद्धो, सद्दहामि तथागतस्स बोधिं—[B.136] 'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो ...पे०... सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि अप्पाबाधो अप्पातङ्को समवे- [R.154] पाकिनिया गहणिया समन्नागतो नातिसीताय नाच्चुण्हाय मज्झिमाय पधानक्खमाय। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि असठो अमायावी यथाभूतं अत्तानं आविकत्ता सत्थरि वा विञ्ञूसु वा सब्रह्मचारीसु। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि आरद्धविरियो विहरामि अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि पञ्ञवा उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं' ति! इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आसवानं खयं पत्थेती'' ति॥ ●

६. **दुतियपत्थनासुत्तं** : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स जेट्ठो पुत्तो ओपरज्जं पत्थेति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स जेट्ठो पुत्तो उभतो सुजातो होति मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन; अभिरूपो होति दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो; मातापितूनं पियो होति होति मनापो; बलकायस्स पियो होति मनापो; पण्डितो होति वियत्तो मेधावी [N.408] पटिबलो अतीतानागतपच्चुप्पन्ने अत्थे चिन्तेतुं।

''तस्स एवं होति—'अहं खोम्हि उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। कस्माहं ओपरज्जं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो। कस्माहं ओपरज्जं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि मातापितूनं पियो मनापो। कस्माहं, ओपरज्जं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि बलकायस्स [B.137,R.155]

में उत्साहसम्पन्न एवं पराक्रमी रहता है; धर्मों के उदय-अस्त को जानने वाली तथा दुःखक्षय की ओर ले जानेवाली प्रज्ञा से युक्त होता है।

''उसको यह विचार होता है—'मैं भगवान् को प्रति श्रद्धालु हूँ, अतः क्यों न मैं आश्रवों का क्षय न चाहूँ!'; 'मैं स्वस्थ हूँ, नीरोग हूँ... !'; 'मैं शठता एवं धूर्तता नहीं करता... '; 'मैं अकुशल धर्मों के प्रहाण एवं कुशल धर्मों के उत्पाद के लिये प्रयासरत रहता हूँ... '; 'मैं प्रज्ञावान् हूँ... क्यों न मैं अपने आश्रवों का क्षय न चाहूँ!' भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आश्रवों का क्षय चाहता है॥'' ●

६. द्वितीय प्रार्थनासूत्र : : राजा के ज्येष्ठ पुत्र की पाँच इच्छाएँ

१. ''भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त, किसी मूर्धाभिषिक्त क्षत्रिय राजा का ज्येष्ठ पुत्र अपने

पियो मनापो। कस्माहं ओपरज्जं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि पण्डितो वियत्तो मेधावी पटिबलो अतीतानागतपच्चुप्पन्ने अत्थे चिन्तेतुं। कस्माहं ओपरज्जं न पत्थेय्यं' ति! इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो खत्तियस्स मुद्धावसित्तस्स जेट्ठो पुत्तो ओपरज्जं पत्थेति।

२. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आसवानं खयं पत्थेति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु; बहुस्सुतो होति ...पे०... दिट्ठिया सुप्पटिबिद्धा; चतूसु सतिपट्ठानेसु सुप्पतिट्ठितचित्तो होति; आरद्धविरियो विहरति अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उपसम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु; पञ्ञवा होति, उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बेधिकाय सम्मा दुक्खक्खय-गामिनिया।

''तस्स एवं होति—'अहं खोम्हि सीलवा, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरामि आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खामि सिक्खापदेसु। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि बहुस्सुतो सुतधरो सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपा मे धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि [N.409] चतूसु सतिपट्ठानेसु सुप्पतिट्ठितचित्तो। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि आरद्धविरियो विहरामि अकुसलानं धम्मानं पहानाय, कुसलानं धम्मानं उप-सम्पदाय, थामवा दळ्हपरक्कमो अनिक्खित्तधुरो कुसलेसु धम्मेसु। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं! अहं खोम्हि पञ्ञवा उदयत्थगामिनिया पञ्ञाय समन्नागतो अरियाय निब्बे-[R.156] धिकाय सम्मा दुक्खक्खयगामिनिया। कस्माहं आसवानं खयं न पत्थेय्यं' ति! इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आसवानं खयं पत्थेती'' ति॥●

[B.138] **७. अप्पंसुपतिसुत्तं** : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, अप्पं रत्तिया सुपन्ति, बहुं जग्गन्ति। कतमे पञ्च? इत्थी, भिक्खवे, पुरिसाधिप्पाया अप्पं रत्तिया सुपति, बहुं जग्गति। पुरिसो, भिक्खवे, इत्थाधिप्पायो अप्पं रत्तिया सुपति, बहुं जग्गति। चोरो, भिक्खवे, आदानाधिप्पायो अप्पं रत्तिया सुपति, बहुं जग्गति। राजा, भिक्खवे, राजकरणीयेसु युत्तो

लिये युवराज पद चाहता है। किन पाँच अङ्गों से?...पूर्ववत्...। *[इससे आगे इस सूत्र में पूर्वसूत्र का ही प्राय: अविकल पाठ है, अत: तदनुसार ही इसका अर्थ भी समझ लें।]* ●

७. अल्पशयनसूत्र : : रात्रि में कम सोनेवाले पाँच पुरुष

''भिक्षुओ! ये पाँच प्रकार से पुरुष रात्रि में सोते कम हैं तथा जागते अधिक हैं। कौन से पाँच? (१) कोई स्त्री पुरुष के अभिप्राय से रात्रि में कम सोती हैं, तथा अधिक जागती हैं। (२)

अप्पं रत्तिया सुपति, बहुं जगगति। भिक्खु, भिक्खवे, विसंयोगाधिप्पायो अप्पं रत्तिया
सुपति, बहुं जगगति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च अप्पं रत्तिया सुपत्ति, बहुं जगन्ती''
ति॥

८. भत्तादकसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो
भत्तादको च होति ओकासफरणो च लण्डसारणो च सलाकग्गाही रञ्ञो नागो चेव त्वेव
सङ्खं गच्छति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति रूपानं,
अक्खमो सद्दानं, अक्खमो गन्धानं, अक्खमो रसानं, अक्खमो फोट्ठब्बानं। इमेहि खो,
भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो भत्तादको च ओकासफरणो च
लण्डसारणो च सलाकग्गाही च, रञ्ञो नागो त्वेव सङ्खं गच्छति।

२. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु भत्तादको च
होति, ओकासफरणो च मञ्चपीठमद्दनो च सलाकग्गाही च, भिक्खु त्वेव सङ्खं गच्छति।
कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति रूपानं, [N.410,R.157]
अक्खमो सद्दानं, अक्खमो गन्धानं, अक्खमो रसानं, अक्खमो फोट्ठब्बानं। इमेहि खो,
भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु भत्तादको च होति ओकासफरणो च
मञ्चपीठमद्दनो च सलाकग्गाही च, भिक्खु त्वेव सङ्खं गच्छती'' ति॥

९. अक्खमसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो न
राजारहो होति न राजभोग्गो, न रञ्ञो अङ्गं त्वेव सङ्खं गच्छति। कतमेहि पञ्चहि? [B.139]

कोई पुरुष स्त्री के अभिप्राय से...। (३) कोई चौर किसी के घर में चौरी करने के अभिप्राय से...।
(४) कोई राजा राज्य-कर्मों में व्यस्त रहने के कारण...। (५) तथा, भिक्षुओ! कोई भिक्षु आश्रवों
के वियोजन के अभिप्राय से, (साधना करता हुआ) रात्रि में कम सोता है तथा अधिक जागता है।
इस प्रकार, भिक्षुओ! ये पञ्चविध पुरुष रात्रि में कम सोते हैं तथा जागरण अधिक करते हैं॥''

८. भक्तादकसूत्र : खाकर पड़ा रहने वाला हाथी एवं भिक्षु

१. ''भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त राजा का कोई हाथी केवल खाकर पड़ा रहने वाला,
अवकाश चाहने वाला, गोबर करने वाला, तृण चबाने वाला होता है। किन पाँच अङ्गों से?
''भिक्षुओ! वह राजा का हाथी रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्पष्टव्य विषयों को ग्रहण करने में
असमर्थ होता है। अतः इन पाँच अङ्गों से युक्त होने के कारण वह खाकर पड़ा रहने वाला, अवकाश
चाहने वाला, केवल गोबर (लींड=लीद) करने वाला एवं तृण चबाने वाला कहलाता है।

२. ''इसी तरह, भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु भी केवल खाकर पड़ा रहने वाला,
(साधना से) अवकाश चाहने वाला, पड़े पड़े खाट तोड़ने वाला एवं शलाकाभक्त ग्रहण करने वाला
होता है। किन पाँच धर्मों से? भिक्षुओ! वह भिक्षु रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्प्रष्टव्य विषयों को
वास्तविक रूप में समझने में असमर्थ होता है। अतः, भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु इन पाँच धर्मों से युक्त
होता हुआ—'खाकर पड़ा रहने वाला', 'अवकाश (खाली बैठे रहना) चाहने वाला', 'पड़े पड़े
खाट तोड़ने वाला' और 'शलाकाभक्त ग्रहण करने वाला' ही कहलाता है॥''

इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति रूपानं, अक्खमो सद्दानं, अक्खमो गन्धानं, अक्खमो रसानं, अक्खमो फोट्ठब्बानं।

२. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति रूपानं? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो हत्थिकायं वा दिस्वा अस्सकायं वा दिस्वा रथकायं वा दिस्वा पत्तिकायं वा दिस्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति रूपानं।

३. कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति सद्दानं? इध, भिक्खवे, रञ्ञो रञ्ञो नागो सङ्गामगतो हत्थिसद्दं वा सुत्वा अस्ससद्दं वा सुत्वा रथसद्दं वा सुत्वा पत्तिसद्दं वा सुत्वा भेरिपणवसङ्खतिणवनिन्नादसद्दं वा सुत्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति सद्दानं।

४. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति गन्धानं? इध, भिक्खवे, [R.158] रञ्ञो नागो सङ्गामगतो ये ते रञ्ञो नागा अभिजाता सङ्गामावचरा तेसं मुत्तकरीसस्स गन्धं घायित्वा संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एव खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति गन्धानं।

५. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति रसानं? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो एकिस्सा वा तिणोदकदत्तिया विमानितो द्वीहि वा तीहि वा चतूहि वा

---

९. अक्षमसूत्र : : पाँच धर्मरहित हाथी एवं भिक्षु

१. ''भिक्षुओ! इन पाँचों धर्मों से युक्त हाथी न राजा के योग्य होता है, न राजा के आरोहण (सवारी) के योग्य होता है, न वह 'राज्याङ्ग' ही कहलाता है। किन पाँच अङ्गों से? भिक्षुओ! वह राजा का हाथी रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्प्रष्टव्य विषयों को ग्रहण करने या समझने में असमर्थ होता है।

२. ''यहाँ, भिक्षुओ! वह राजा का हाथी रूपों को ग्रहण करने में कैसे असमर्थ होता है? वह हाथी युद्धभूमि में जाकर हस्तिसेना, अश्वसेना, रथसेना एवं पदातिसेना को देखकर उद्विग्न होता है, दुःखी होता है, अतः वह संग्रामभूमि में उतर भी नहीं पाता, वहाँ टिकना तो उसके लिये बहुत दूर की बात है। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! वह राजा का हाथी शब्दों को ग्रहण करने में असमर्थ होता है? वह हाथी संग्राम में जाकर, दूसरे हाथियों का, घोड़ों का, रथ का या पैदल सेना का शब्द सुनकर शङ्ख, ढोल आदि की ध्वनि सुनकर ...पूर्ववत्... बहुत दूर की बात है। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! वह राजा का हाथी गन्धों को ग्रहण करने में असमर्थ होता है? भिक्षुओ! वह राजा का हाथी वहाँ युद्धभूमि आये हुए युवा हाथियों के मूत्र एवं करीष (लीद) की गन्ध सूँघकर ...पूर्ववत्... बहुत दूर की बात है। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! वह राजा का हाथी रसों को ग्रहण करने में असमर्थ होता है? भिक्षुओ! वह राजा का हाथी संग्राम में जाते समय घास एवं जल से पूर्ण एक, दो, तीन, चार, पाँच

पञ्चहि वा तिणोदकदत्तीहि विमानितो संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति न [N.411] सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति रसानं।

६. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति फोट्ठब्बानं? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो एकेन वा सरवेगेन विद्धो, द्वीहि वा तीहि वा चतूहि वा पञ्चहि वा सरवेगेहि विद्धो संसीदति विसीदति, न सन्थम्भति न सक्कोति सङ्गामं [B.140] ओतरितुं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो अक्खमो होति फोट्ठब्बानं।

''इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो न राजारहो होति न राजभोग्गो न रञ्ञो अङ्गं त्वेव सङ्खं गच्छति।

७. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो भिक्खु न आहुनेय्यो होति न पाहुनेय्यो न दक्खिणेय्यो न अञ्जलिकरणीयो न अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति रूपानं, अक्खमो सद्दानं, अक्खमो गन्धानं, अक्खमो रसानं, अक्खमो फोट्ठब्बानं।

८. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति रूपानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा रजनीये रूपे सारज्जति, न सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति रूपानं।

९. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति सद्दानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु सोतेन सद्दं सुत्वा रजनीये सद्दे सारज्जति, न सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, [R.159] भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति सद्दानं।

नाँद रखे जाने पर भी अपमान अनुभव करता हुआ उद्विग्न होता है, दु:खी होता है ...पूर्ववत्...। इस तरह वह रसों के ग्रहण करने में असमर्थ कहलाता है। (४)

६. ''कैसे भिक्षुओ! वह राजा का हाथी स्प्रष्टव्य विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ होता है? भिक्षुओ! राजा का वह हाथी युद्धभूमि में जाने पर एक, दो, तीन, चार या पाँच बाणों से बिंध कर ही उद्विग्न एवं दु:खी हो जाता है ...पूर्ववत्... युद्ध में डटे रहने की बात तो बहुत दूर! ...। (५) (क)

७. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त भिक्षु भी गृहस्थों के घरों में न आह्वानीय होता है, न आतिथ्य के योग्य, न दान या प्रणाम करने योग्य और न वह लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि ही कहलाता है। किन पाँच अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्प्रष्टव्यों को समझने में असमर्थ होता है।

८. ''कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु रूपों को समझने में असमर्थ होता है? । यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु चक्षु से रूप देखकर आसक्तियोग्य रूप में आसक्त होने लगता है, अपने चित्त को समाहित नहीं कर पाता। इस प्रकार, भिक्षुओ! वह भिक्षु रूपों की वास्तविकता ग्रहण करने में अक्षम होता है। (१)

१० "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति गन्धानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु घानेन गन्धं घायित्वा रजनीये गन्धे सारज्जति, न सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति गन्धानं।

११. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति रसानं? इध, भिक्खवे भिक्खु [N.412] जिव्हाय रसं सायित्वा रजनीये रसे सारज्जति, न सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खुवे, भिक्खु अक्खमो होति रसानं।

१२. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु अक्खमो होति फोट्ठब्बानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा रजनीये फोट्ठब्बे सारज्जति, न सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खु अक्खमो होति फोट्ठब्बानं। इमेहि खो धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु न ...लोकस्स।

[B.141] १३. "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं त्वेव सङ्खं गच्छति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति रूपानं, खमो सद्दानं, खमो गन्धानं, खमो रसानं, खमो फोट्ठब्बानं।

१४. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति रूपानं? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो हत्थिकायं ...पे०... दिस्वा न संसीदति न विसीदति, सन्थम्भति सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवं खो... खमो होति रूपानं।

१५. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति सद्दानं? इध, भिक्खवे, [R.160] रञ्ञो नागो सङ्गामगतो हत्थिसद्दं वा सुत्वा न संसीदति सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति सद्दानं।

---

९. "कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु शब्दों को समझने में असमर्थ होता है? ...पूर्ववत्...। (२)

१०. "कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु गन्धों को समझने में ...पूर्ववत्...। (३)

११. "कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु रसों को समझने में ...पूर्ववत्...। (४)

१२. "कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु स्प्रष्टव्यों को समझने में ...पूर्ववत्...। (५)

"भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु न आह्वनीय होता है ...पूर्ववत्...। (ख)

१३. "भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त राजा का हाथी 'राजा का अङ्ग' कहलाता है। किन पाँच अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! जो राजा का हाथी रूप... स्प्रष्टव्य को समझने में समर्थ होता है।

१४. "कैसे, भिक्षुओ! राजा का कोई हाथी रूपों को समझने में समर्थ होता है? भिक्षुओ! राजा का कोई हाथी युद्धभूमि में हस्तिसेना, अश्वसेना, रथसेना एवं पैदलसेना देखकर न घबराता है, न उद्विग्न होता है; अपितु वहीं स्थिर रहकर संग्रामभूमि में आगे बढ़ने का प्रयास करता है। राजा का ऐसा हाथी रूपों को समझने में समर्थ होता है। (१)

१५. "भिक्षुओ! किस तरह राजा का हाथी शब्द सुनने में समर्थ समझा जाता है। यहाँ, भिक्षुओ! राजा का वह हाथी युद्धभूमि में जाने पर, हाथी, घोड़े, रथ या पैदल सेना का कोलाहल सुनकर उद्विग्न नहीं होता ...पूर्ववत्...। (२)

१६. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति गन्धानं? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो ये ते रञ्ञो नागा अभिजाता सङ्गामावचरा तेसं मुत्तकरीसस्स गन्धं घायित्वा न संसीदति न विसीदति, सन्थम्भति सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति गन्धानं।

१७. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति रसानं? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो एकिस्सा वा तिणोदकदत्तिया विमानितो द्वीहि वा तीहि वा चतूहि वा पञ्चहि वा तिणोदकदत्तीहि विमानितो न संसीदति न विसीदति, सन्थम्भति [N.413] सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति रसानं।

१८. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति फोट्ठब्बानं? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो एकेन वा सरवेगेन विद्धो, द्वीहि वा तीहि वा चतूहि वा पञ्चहि वा सरवेगेहि विद्धो न संसीदति न विसीदति, सन्थम्भति सक्कोति सङ्गामं ओतरितुं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खमो होति फोट्ठब्बानं।

''इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो राजारहो [B.142] होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं त्वेव सङ्खं गच्छति।

१९. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति रूपानं, खमो सद्दानं, खमो गन्धानं, खमो [R.161] रसानं, खमो फोट्ठब्बानं।

२०. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति रूपानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु

---

१६. ''भिक्षुओ! किस तरह राजा का हाथी गन्ध सूँघने में समर्थ होता है? यहाँ भिक्षुओ! राजा का हाथी युद्धभूमि में उपस्थित हाथियों के मलमूत्र की गन्ध से न उद्विग्न होता है ...पूर्ववत्...। (३)

१७. ''भिक्षुओ! किस तरह राजा का हाथी रस को समझने में समर्थ होता है? यहाँ, भिक्षुओ! राजा का हाथी युद्धभूमि में एक दो तीन चार या पाँच तृण एवं जल भरी नाद मिलने पर अपमान अनुभव नहीं करता, दुःख नहीं मानता ...पूर्ववत्...। (४)

१८. ''कैसे, भिक्षुओ! राजा का हाथी स्पष्टव्य विषय को समझने में समर्थ होता है? यहीं, भिक्षुओ! राजा का हाथी युद्धभूमि में उतरकर एक दो तीन चार या पाँच बाणों से विंध कर उद्विग्न नहीं होता ...पूर्ववत्...। (५)

''भिक्षुओ! इन पाँच अङ्गों से युक्त राजा का हाथी, राजयोग्य... ही कहलाता है। (ग)

१९. इसी प्रकार, भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु भी गृहस्थ कुलों में आह्वानीय ... लोक में अद्वितीय पुण्यभूमि कहलाने योग्य होता है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु रूप, शब्द, गन्ध, रस एवं स्प्रष्टव्य की वास्तविकता समझने में समर्थ होता है।

चक्खुना रूपं दिस्वा रजनीये रूपे न सारज्जति, सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति रूपानं।

२१. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति सद्दानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु सोतेन सद्दं सुत्वा रजनीये सद्दे न सारज्जति, सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति सद्दानं।

२२. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति गन्धानं। इध, भिक्खवे, भिक्खु घानेन गन्धं घायित्वा रजनीये गन्धे न सारज्जति, सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति गन्धानं।

२३. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति रसानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु जिव्हाय रसं सायित्वा रजनीये रसे न सारज्जति, सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति रसानं।

[N.414] २४. "कथं च, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति फोट्ठब्बानं? इध, भिक्खवे, भिक्खु कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा रजनीये फोट्ठब्बे न सारज्जति, सक्कोति चित्तं समादहितुं। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति फोट्ठब्बानं।

"इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥ ●

१०. सोतसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो न

---

२०. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु रूपों को समझने में समर्थ होता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह भिक्षु चक्षु से रूपों को देखकर उनमें आसक्त नहीं होता, वहाँ अपने चित्त को समाहित (निगृहीत) रखता है। ऐसा भिक्षु 'रूपों को समझने में समर्थ' कहलाता है। (१)

२१. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शब्दों को समझने में समर्थ होता है? यहाँ भिक्षुओ! वह श्रोत्र से शब्द सुनकर ...पूर्ववत्...। (२)

२२. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु गन्धों को समझने में समर्थ होता है? यहाँ भिक्षुओ! भिक्षु गन्धों को सूँघकर भी ...पूर्ववत्...। (३)

२३. "कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु रसों को समझने में समर्थ होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु रसों को चख (स्वाद ले) कर भी ...पूर्ववत्...। (४)

२४. कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु स्प्रष्टव्य विषयों को समझने में समर्थ होता है? यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु काया से स्प्रष्टव्य विषय का स्पर्श करके भी उसमें आसक्त नहीं होता, वहाँ चित्त को समाहित (निगृहीत) रखता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु स्प्रष्टव्य विषयों को समझने में समर्थ माना जाता है। (५) (घ)

"भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थ कुलों में आह्वानीय, आतिथ्य योग्य, दान दक्षिणा के योग्य, प्रणाम करने योग्य तथा लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि कहलाता है॥" ●

राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं त्वेव सङ्ख्यं गच्छति। कतमेहि पञ्चहि? [B.143] इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सोता च होति, हन्ता च, रक्खिता च, खन्ता च, गन्ता च।

२. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सोता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो यमेनं हत्थिदम्मसारथि कारणं कारेति—यदि वा कतपुब्बं यदि वा अकतपुब्बं—तं अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बं चेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोतो सुणाति। एवं खो, [R.162] भिक्खवे, रञ्ञो नागो सोता होति।

३. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो हन्ता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो हत्थिं पि हनति, हत्थारुहं पि हनति, अस्सं पि हनति, अस्सारुहं पि हनति, रथं पि हनति, रथिकं पि हनति, पत्तिकं पि हनति। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो हन्ता होति।

४. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो रक्खिता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो सङ्गामगतो रक्खति पुरिमं कायं, रक्खति पच्छिमं कायं, रक्खति पुरिमे पादे, रक्खति पच्छिमे पादे, रक्खति सीसं, रक्खति कण्णे, रक्खति दन्ते, रक्खति सोण्डं, रक्खति वालधिं, रक्खति हत्थारुहं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो रक्खिता होति।

५. "कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खन्ता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो [N.415] नागो सङ्गामगतो खमो होति सत्तिप्पहारानं असिप्पहारानं उसुप्पहारानं फरसुप्पहारानं भेरिपणवसङ्खतिणवनिन्नादसद्दानं। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो खन्ता होति।

---

१०. श्रोतृसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त श्रोता, हन्ता आदि

१. "भिक्षुओ! पाँच अङ्गों से युक्त राजा का हाथी राजा के योग्य, राजा का भोग्य एवं 'राजा का अङ्ग' कहलाता है। किन पाँच अङ्गों से? यहाँ, भिक्षुओ! राजा का वह हाथी 'श्रोता' भी होता है, 'हन्ता' भी होता है, 'रक्षयिता', 'क्षन्ता' एवं 'गन्ता' भी होता है।

२. "कैसे, भिक्षुओ! वह हाथी 'श्रोता' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! उसका शिक्षक जो भी उसको सिखाता है, भले ही वह पहले सिखाया गया हो या न सिखाया गया हो, उसको ध्यान में रखता हुआ, मन में बैठता हुआ, उसको कान देकर सुनता है। ऐसा वह (हाथी) **श्रोता** कहलाता है। (१)

३. "कैसे, भिक्षुओ! वह हाथी 'हन्ता' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह राजा का हाथी युद्धभूमि में जाकर शत्रुओं के हाथी, महावत, घोड़े, घुड़सवार, रथ, रथिक तथा पैदल सैनिकों को मारता है। भिक्षुओ! ऐसा वह हाथी **हन्ता** भी कहलाता है। (२)

४. "कैसे, भिक्षुओ! वह हाथी 'रक्षयिता' (रक्षक) होता है? यहाँ, भिक्षुओ! वह राजा का हाथी युद्धभूमि में अपने शरीर के अग्रभाग की, पृष्ठभाग की, अगले पैरों की, पिछले पैरों की, शिर की, कान की, दाँतों की, सूँड़ की, पूँछ की, महावत की रक्षा करता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! राजा का वह हाथी **रक्षक** कहलाता है।

६. ''कथं च, भिक्खवे, रञ्ञो नागो गन्ता होति? इध, भिक्खवे, रञ्ञो नागो यमेनं हत्थिदम्मसारथि दिसं पेसेति—यदि वा गतपुब्बं यदि वा अगतपुब्बं—तं खिप्पमेव गन्ता होति। एवं खो, भिक्खवे, रञ्ञो नागो गन्ता होति।

''इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो नागो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं त्वेव सङ्खं गच्छति।

[B.144] ७. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि [R.163] पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सोता च होति, हन्ता च, रक्खिता च, खन्ता च, गन्ता च।

८. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु सोता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु तथागतप्पवेदिते धम्मविनये देसियमाने अट्ठिं कत्वा मनसि कत्वा सब्बं चेतसा समन्नाहरित्वा ओहितसोतो धम्मं सुणाति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु सोता होति।

९. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु हन्ता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु उप्पन्नं कामवितक्कं नाधिवासेति, पजहति विनोदेति हनति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति; उप्पन्नं ब्यापादवितक्कं ...पे०... उप्पन्नं विहिंसावितक्कं ...पे०... उप्पन्नुप्पन्ने पापके अकुसले धम्मे नाधिवासेति, पजहति विनोदेति हनति ब्यन्तीकरोति अनभावं गमेति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु हन्ता होति।

---

५. ''कैसे, भिक्षुओ! राजा का हाथी 'क्षन्ता' (सहन करने वाला) होता है? भिक्षुओ! वह राजा का हाथी युद्धभूमि में, भालों के, तलवार के, धनुष् से निकले वाण के, फरसे के प्रहारों को सहन करने की तथा ढोल, दमामा, शङ्ख आदि के कर्णकटु शब्दों को सुनने की क्षमता रखता है, भिक्षुओ! ऐसा वह राजा का हाथी **क्षन्ता** कहलाता है। (४)

६. ''कैसे, भिक्षुओ! राजा का वह हाथी 'गन्ता' कहलाता है? भिक्षुओ! इस हाथी को महावत जिस दिशा में भी जाने का सङ्केत करता है, भले ही वह (हाथी) पहले वहाँ गया हो या न गया हो, वह शीघ्र ही उधर चल देता है। ऐसा हाथी **गन्ता** कहलाता है। इन पाँच अङ्गों से युक्त राजा का हाथी राजा के योग्य, राजा का भोग्य एवं राजा का अङ्ग कहलाता है। (५) (क)

७. ''इसी प्रकार, भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु भी (गृहस्थों द्वारा) आह्वानीय, आतिथ्ययोग्य, दान दक्षिणा के योग्य, प्रणम्य, एवं लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! यह भिक्षु श्रोता, हन्ता, रक्षयिता (रक्षक), क्षन्ता एवं गन्ता कहलाता है।

८. कैसे, भिक्षुओ! यह भिक्षु 'श्रोता' कहलाता है? भिक्षुओ! यह भिक्षु तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्मविनय का उपदेश किये जाते समय ध्यान लगाकर, मन लगाकर चित्त में बैठाकर, कान लगाकर धर्म का श्रवण करता है। ऐसा, भिक्षुओ! भिक्षु **श्रोता** कहलाता है। (१)

९. ''कैसे, भिक्षुओ! वह 'हन्ता' कहलाता है? भिक्षुओ! वह भिक्षु उत्पन्न कामवितर्क को स्वीकार नहीं करता, त्याग देता है, दूर कर देता है, मार देता है, नष्ट कर देता है; उत्पन्न व्यापादवितर्क

१०. ''कथं च, भिक्खवे, रक्खिता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु चक्खुना रूपं दिस्वा न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं चक्खुन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सवेय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति चक्खुन्द्रियं; चक्खुन्द्रिये संवरं आपज्जति। सोतेन सद्दं सुत्वा... घानेन गन्धं घायित्वा... जिव्हाय रसं सायित्वा... कायेन फोट्ठब्बं फुसित्वा... मनसा धम्मं [N.416] विञ्ञाय न निमित्तग्गाही होति नानुब्यञ्जनग्गाही। यत्वाधिकरणमेनं मनिन्द्रियं असंवुतं विहरन्तं अभिज्झादोमनस्सा पापका अकुसला धम्मा अन्वास्सेवय्युं, तस्स संवराय पटिपज्जति; रक्खति मनिन्द्रियं; मनिन्द्रिये संवरं आपज्जति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु रक्खिता होति।

११. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु खन्ता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु खमो होति सीतस्स उण्हस्स जिघच्छाय पिपासाय डंसमकसवातातपसिरिंसपसम्फस्सानं; दुरुत्तानं दुरागतानं वचनपथानं उप्पन्नानं सारीरिकानं वेदनानं दुक्खानं तिब्बानं खरानं कटुकानं असातानं अमनापानं पाणहरानं अधिवासकजातिको होति। एवं खो, भिक्खवे, [B.145] भिक्खु खन्ता होति।

१२. ''कथं च, भिक्खवे, भिक्खु गन्ता होति? इध, भिक्खवे, भिक्खु [R.164] या सा दिसा अगतपुब्बा इमिना दीघेन अद्धुना, यदिदं सब्बसङ्खारसमथो सब्बूपधि-पटिनिस्सग्गो तण्हाक्खयो विरागो निरोधो निब्बानं, तं खिप्पञ्ञेव गन्ता होति। एवं खो, भिक्खवे, भिक्खु गन्ता होति।

को ...पूर्ववत्... उत्पन्न विहिंसावितर्क को... उत्पन्न होते हुए अन्य पापमय अकुशल धर्मों को स्वीकार नहीं करता ...पूर्ववत्... नष्ट कर देता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु **हन्ता** कहलाता है। (२)

१०. ''कैसे, भिक्षुओ! वह 'रक्षक' कहलाता है? यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु चक्षु से रूप (विषय) को देखकर भी न उसके कारण से आकृष्ट होता है, न उसके आकार से कि कहीं यह मेरी अनिगृहीत चक्षुरिन्द्रिय के कारण अकुशल पापधर्मों का आवास न बन जाय; अत: वह अपनी चक्षुरिन्द्रिय को ऐसे पापमय धर्मों से बचाता है, उस चक्षुरिन्द्रिय पर निग्रह करता है। श्रोत्र से शब्द सुनकर ... घ्राण से गन्ध सूँघकर ... जिह्वा से रस चखकर ... शरीर से स्प्रष्टव्य का स्पर्श कर ... मन से धर्म को जानकर ...पूर्ववत्... वह अपनी अनिगृहीत मन इन्द्रिय को बचाता है, उसपर निग्रह करता है। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु **रक्षक** कहलाता है। (३)

११. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई भिक्षु 'क्षन्ता' (सहनशील) होता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु सरदी, गर्मी, भूख प्यास, मच्छर मक्खी, साँप बिच्छु आदि का काटना, दूसरों द्वारा कहे गये दुर्वचन तथा शरीर में उत्पन्न कटु अप्रिय एवं प्राणहर वेदनाओं को सहन करता है, ऐसा भिक्षु **क्षन्ता** कहलाता है। (४)

१२. ''कैसे, भिक्षुओ! वह भिक्षु 'गन्ता' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु जिस दिशा की ओर अपनी इस जन्म मरण की लम्बी परम्परा में कभी नहीं गया था, जो कि सभी

"इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति ...पे०... अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥

राजवग्गो चतुद्दसमो॥

तस्सुद्दानं

चक्कानुवत्तना राजा, यस्संदिसं द्वे चेव पत्थना।
अप्पंसुपति भत्तादो, अक्खमो च सोतेन चा ति॥

१५. तिकण्डकीवग्गो

१. अवजानातिसुत्तं १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे पञ्च? दत्वा अवजानाति संवासेन अवजानाति, आधेय्यमुखो होति, लोलो होति, मन्दो मोमूहो होति।

[N.417] २. "कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो दत्वा अवजानाति? इध, भिक्खवे, पुग्गलो

मनोविकारों का त्याग, तृष्णाक्षय, विराग, निरोध एवं निर्वाण कहलाती है, उस दिशा की ओर शीघ्र ही जाने वाला हो जाता है। ऐसा भिक्षु, भिक्षुओ! **गन्ता** कहलाता है। (५) (ख)

"भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आह्वानीय ... पूर्ववत्... लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि कहलाता है॥"

राजवर्ग चतुर्दश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम चक्रानुवर्तनसूत्र, २. द्वितीय चक्रानुवर्तनसूत्र, ३. धर्मराजसूत्र, ४. 'जिस दिशा में' सूत्र, ५. प्रथम प्रार्थनासूत्र, ६. द्वितीय प्रार्थनासूत्र, ७. अल्पशयनसूत्र, ८. भक्तादकसूत्र, ९. अक्षमसूत्र, १०. श्रोतृसूत्र॥

१५. त्रिकण्टकीवर्ग

१. अवजानातिसूत्र : : **पाँच अवज्ञाएँ**

१. भिक्षुओ! ये पञ्चविध पुद्गल लोक में दिखायी देते हैं। कौन से पाँच? (१) जो देकर तिरस्कार करता है, (२) जो आवास देकर तिरस्कार करता है; (३) जो प्रत्येक बात को धारण करने योग्य समझता है; (४) जो लोभी (या चञ्चल) होता है, (४) जो मन्द (मूर्ख) तथा मुग्ध (मोहयुक्त) होता है।

२. कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल देकर तिरस्कार करता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी

पुग्गलस्स देति चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारं। तस्स एवं होति— 'अहं देमि; अयं पटिग्गण्हाती' ति। तमेनं दत्वा अवजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो दत्वा अवजानाति।

३. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो संवासेन अवजानाति? इध, भिक्खवे, [B.146] पुग्गलो पुग्गलेन सद्धिं संवसति द्वे वा तीणि वा वस्सानि। तमेनं संवासेन [R.165] अवजानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो संवासेन अवजानाति।

४. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो आधेय्यमुखो होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो परस्स वण्णे वा अवण्णे वा भासियमाने तं खिप्पञ्ञेव अधिमुच्चिता होति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो आधेय्यमुखो होति।

५. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो लोलो होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो इत्तरसद्धो होति इत्तरभत्ती इत्तरपेमो इत्तरप्पसादो। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो लोलो होति।

६. ''कथं च, भिक्खवे, पुग्गलो मन्दो मोमूहो होति? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो कुसलाकुसले धम्मे न जानाति, सावज्जानवज्जे धम्मे न जानाति, हीनप्पणीते धम्मे न जानाति, कण्हसुक्कसप्पटिभागे धम्मे न जानाति। एवं खो, भिक्खवे, पुग्गलो मन्दो मोमूहो होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं'' ति॥●

२. आरभतिसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना

पुद्गल को चीवर, पिण्डपात आदि देता है। ऐसे दान के बाद उसको यह विचार हो—'मैं दे रहा हूँ, यह लेता है'। यह देकर तिरस्कार करना है। इस तरह, भिक्षुओ! कोई पुद्गल **देकर तिरस्कार** करता है। (१)

३. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी को संवास (साथ रखना) देकर तिरस्कार करता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी पुद्गल के साथ दो तीन वर्ष रहता है। उसको वह इस संवास के कारण अपमानित करता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! **'संवास से तिरस्कार'** कहलाता है। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई प्रत्येक बात को धारण करने योग्य मानता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल दूसरे के द्वारा किसी की निन्दा या स्तुति करने पर तत्काल स्वीकार कर लेता है, उसे कहते हैं—**प्रत्येक बात को धारण करने योग्य मानने वाला**। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई लोल (चपल) कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी के प्रति श्रद्धा रखता है, किसी दूसरे के प्रति प्रेम रखता है, किसी तीसरे को खिलाता है, वह किसी अन्य पर श्रद्धा रखता है। ऐसा, भिक्षुओ! पुद्गल **लोल** कहलाता है। (४)

६. ''कैसे, भिक्षुओ! कोई पुद्गल 'मन्द' एवं 'मुग्ध' कहलाता है? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल कुशल अकुशल धर्मों को नहीं जानता, सदोष निर्दोष धर्मों को नहीं जानता, उत्तम एवं हीन स्तर के धर्मों को नहीं जानता, कृष्ण एवं शुक्ल धर्मों को नहीं जानता। भिक्षुओ! ऐसा पुद्गल **मन्द** एवं **मुग्ध** कहलाता है। (५)

''भिक्षुओ! लोक में ये पाँच पुद्गल देखे जाते हैं॥'' ●

लोकस्मिं। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो आरभति च विप्पटिसारी च होति; तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

२. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो आरभति, न विप्पटिसारी होति; तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

[N.418,166] ३. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न आरभति, विप्पटिसारी होति; तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

[B.147] ४. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न आरभति, न विप्पटिसारी होति; तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

५. ''इध पन, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो न आरभति, न विप्पटिसारी होति; तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति।

६. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो आरभति च विप्पटिसारी च होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा

---

२. आरभतिसूत्र : : **पाँच प्रकार के आरम्भ**

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच पुद्गल लोक में देखे जाते हैं। कौन से पाँच? यहाँ भिक्षुओ! कोई पुद्गल किसी कार्य को आरम्भ कर, बाद में उसके लिये पश्चात्ताप करता है; और वह उस चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को यथार्थतः नहीं जान पाता जहाँ इसके ये समस्त पापमय अकुशल धर्म निरुद्ध हो पाते हैं। (१)

२. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल किसी कार्य को आरम्भ कर उसके लिये बाद में पश्चात्ताप नहीं करता; और वह उस चेतोविमुक्ति ...पूर्ववत्... धर्म निरुद्ध हो पाते हैं। (२)

३. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई पुद्गल किसी कार्य को आरम्भ न कर भी पश्चात्ताप करता है: और उस चेतोविमुक्ति ...पूर्ववत्... धर्मनिरुद्ध हो पाते हैं। (३)

४. ''भिक्षुओ! यहाँ कोई अन्य पुद्गल न कोई कार्य आरम्भ करता है, न उसके लिये पश्चात्ताप ही करता है, और उस चेतोविमुक्ति ...पूर्ववत्... समस्त धर्मनिरुद्ध हो पाते हैं। (४)

५. ''यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल न कोई कार्य आरम्भ करता है, न तदर्थ कोई पश्चात्ताप ही करता हैं; तथा उस चेतोविमुक्ति एवं प्रज्ञाविमुक्ति को भी यथार्थतः जानता है जहाँ इसके वे उत्पन्न पापमय अकुशल धर्म सर्वांशतः निरुद्ध हो पाते हैं। (५)

६. ''वहाँ, भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... (प्रथम पुद्गल को) यह समझाना चाहिये—'आयुष्मान् के आरम्भजन्य आश्रव अभी विद्यमान हैं, पश्चात्तापजन्य आश्रव बढते जा रहे हैं। अतः अच्छा हो

अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सो एवमस्स वचनीयो—'आयस्मतो खो आरम्भजा आसवा संविज्जन्ति, विप्पटिसारजा आसवा पवड्ढन्ति, साधु वतायस्मा आरम्भजे आसवे पहाय विप्पटिसारजे आसवे पटिविनोदेत्वा चित्तं पञ्ञं च भावेतु; एवमायस्मा अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन समसमो भविस्सती' ति।

७. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो आरभति च विप्पटिसारी च होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सो एवमस्स वचनीयो—'आयस्मतो खो आरम्भजा आसवा संविज्जन्ति, विप्पटिसारजा आसवा न पवड्ढन्ति, साधु वतायस्मा आरम्भजे आसवे पहाय चित्तं पञ्ञं च भावेतु; एवमायस्मा अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन समसमो भविस्सती' ति।

८. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो न आरभति विप्पटिसारी च होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सो एवमस्स वचनीयो—'आयस्मतो खो आरम्भजा [R.167] आसवा न संविज्जन्ति, विप्पटिसारजा आसवा पवड्ढन्ति, साधु वतायस्मा विप्पटिसारजे आसवे पटिविनोदेत्वा चित्तं पञ्ञं च भावेतु; एवमायस्मा अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन [N.419] समसमो भविस्सती' ति।

९. ''तत्र, भिक्खवे, य्वायं पुग्गलो न आरभति न विप्पटिसारी होति, तं च चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं यथाभूतं नप्पजानाति यत्थस्स ते उप्पन्ना पापका अकुसला धम्मा अपरिसेसा निरुज्झन्ति, सो एवमस्स वचनीयो—'आयस्मतो खो आरम्भजा [B.148] आसवा न संविज्जन्ति, विप्पटिसारजा आसवा न पवड्ढन्ति, साधु वतायस्मा चित्तं पञ्ञं च भावेतु; एवमायस्मा अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन समसमो भविस्सती' ति।

कि तुम आरम्भज आश्रवों का प्रहाण कर तथा विप्रतिसार (पश्चात्ताप) जन्य आश्रवों को दूर कर चित्त एवं प्रज्ञा की भावना करो। इस प्रकार की भावना से तुम भी उक्त पञ्चम पुद्गल के समान हो जाओगे।' (१)

७. ''वहाँ, भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... (द्वितीय पुद्गल को) यह समझाना चाहिये—'यद्यपि तुम्हारे आरम्भज आश्रव बढ रहे हैं; परन्तु पश्चात्तापजन्य आश्रव नहीं बढ रहे हैं। अत: अच्छा हो कि तुम आरम्भज आश्रवों का प्रहाण कर चित्त और प्रज्ञा की भावना करो। इस प्रकार की भावना के बल से तुम भी उक्त पञ्चम पुद्गल के समान बन जाओगे।' (२)

८. ''वहाँ, भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... (तृतीय पुद्गल को) यह समझाना चाहिये—'तुममें आरम्भज आश्रव नहीं रह गये हैं, परन्तु तुम्हारे पश्चात्तापज आश्रव बढ रहे हैं। अत: अच्छा हो कि तुम अपने पश्चात्तापज आश्रवों को दूर हटाकर चित्त एवं प्रज्ञा की भावना करो। इस प्रकार की भावना के बल पर तुम भी उक्त पञ्चम पुद्गल के समान हो जाओगे।' (३)

९. ''वहाँ, भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... (चतुर्थ पुद्गल को) यह समझाना चाहिये—'तुम्हारे आरम्भज आश्रव नहीं रह गये हैं और न विप्रतिसारज आश्रव बढ रहे हैं। अत: अच्छा हो कि तुम

"इति खो, भिक्खवे, इमे चत्तारो पुग्गला अमुना पञ्चमेन पुग्गलेन एवं ओवदियमाना एवं अनुसासियमाना अनुपुब्बेन आसवानं खयं पापुणन्ती" ति॥ ●

३. सारन्ददसुत्तं : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। अथ खो भगवा पुब्बण्हसमयं निवासेत्वा पत्तचीवरमादाय वेसालिं पिण्डाय पाविसि। तेन खो पन समयेन पञ्चमत्तानं लिच्छविसतानं सारन्ददे चेतिये सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—"पञ्चन्नं रतनानं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। कतमेसं पञ्चन्नं? हत्थिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, अस्सरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, मणिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, इत्थिरतनस्स पातुभावो लोकस्मिं, मणिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, इत्थिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, गहपतिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। इमेसं पञ्चन्नं रतनानं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं" ति।

[R.168] २. अथ खो ते लिच्छवी मग्गे पुरिसं ठपेसुं—"यदा त्वं, अम्भो पुरिस, पस्सेय्यासि भगवन्तं, अथ अम्हाकं ओरोचेय्यासी" ति। अद्दसा खो सो पुरिसो भगवन्तं दूरतो व आगच्छन्तं; दिस्वान येन ते लिच्छवी तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा ते लिच्छवी एतदवोच—"अयं सो, भन्ते, भगवा गच्छति अरहं सम्मासम्बुद्धो; यस्सदानि कालं मञ्ञथा" ति।

[N.420] ३. अथ खो ते लिच्छवी येन भगवा तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं

चित्त एवं प्रज्ञा की भावना करो। ऐसा करने से तुम भी पञ्चम पुद्गल के समान सफल साधक बन जाओगे।' (४)

"इस प्रकार, भिक्षुओ! इन पूर्व चार पुद्गलों को पञ्चम पुद्गल द्वारा अपने समान बनाने के लिये उपदेश एवं अनुशासन करना चाहिये। इस प्रकार उपदेश एवं अनुशासन पर आचरण करने से इन चारों पुद्गलों के आश्रव भी क्रमशः क्षीण होते चले जायेंगे॥" ●

३. सारन्ददसूत्र : : पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने प्रातःकाल शरीर के वस्त्र सुव्यवस्थित कर, पात्रचीवर साथ लेकर, वैशाली में भिक्षा के लिये प्रवेश किया। वहाँ सारन्दद चैत्य में बैठे हुए पाँच सौ लिच्छवियों में यह बात (अन्तराकथा) चल पड़ी—"लोक में पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। कौन से पाँच का? लोक में (१) हस्तिरत्न का, (२) अश्वरत्न का, (३) मणिरत्न का, (४) स्त्रीरत्न का, तथा (५) गृहपति (परिणायक) रत्न का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। इन पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव लोक में दुर्लभ है।"

२. तब उन लिच्छवियों ने मार्ग में एक पुरुष को बैठाकर उसको यह आदेश दिया—"जब तुम भगवान् को इधर आते हुए देखो तो हमको सूचित करना।" कुछ समय बाद, उस पुरुष ने भगवान् को आते हुए दूर से ही देखा। तब उसने लिच्छवियों को भगवान् का आगमन सूचित किया कि तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध इधर ही पधार रहे हैं, अब आप जैसा उचित समझें।

अभिवादेत्वा एकमन्तं अट्ठंसु। एकमन्तं ठिता खो ते लिच्छवी भगवन्तं एतदवोचुं—"साधु, भन्ते, येन सारन्ददं चेतियं तेनुपसङ्कमतु अनुकम्पं उपादाया" ति। अधिवासेसि [B.149] भगवा तुण्हीभावेन। अथ खो भगवा येन सारन्ददं चेतियं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा ते लिच्छवी एतदवोच—"काय नुत्थ, लिच्छवी, एतरहि कथाय सन्निसिन्ना, का च पन वो अन्तराकथा विप्पकता" ति?

"इध, भन्ते, अम्हाकं सन्निसिन्नानं सन्निपतितानं अयमन्तराकथा उदपादि—'पञ्चन्नं रतनानं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। कतमेसं पञ्चन्नं? हत्थिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, अस्सरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, मणिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, इत्थिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, गहपतिरतनस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। इमेसं पञ्चन्नं रतनानं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं'" ति।

४. "कामाधिमुत्तानं वत, भो लिच्छवीनं कामंयेव आरब्भ अन्तराकथा उदपादि। पञ्चन्नं, लिच्छवी, रतनानं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। कतमेसं पञ्चन्नं? तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं, तथागतप्पवेदितस्स [R.169] धम्मविनयस्स देसेता पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं, तथागतप्पवेदितस्स धम्मविनयस्स देसितस्स विञ्ञाता पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं, तथागतप्पवेदितस्स धम्मविनयस्स देसितस्स विञ्ञाता धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं, कतञ्ञू कतवेदी पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं। इमेसं खो, लिच्छवी, पञ्चन्नं रतनानं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं" ति॥

४. तिकण्डकीसुत्तं : १. एकं समयं भगवा साकेते विहरति तिकण्डकीवने।

---

३. तब वे सब लिच्छवि भगवान् के सम्मुख उपस्थित हुए। उनको प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये। तथा यह निवेदन किया—"अच्छा हो, भन्ते! यदि भगवान् हम पर कृपा कर सारन्दद चैत्य में पधारे।" भगवान् ने मौन भाव से स्वीकार किया। तब भगवान् सारन्दद चैत्य में पधारे। वहाँ जाकर प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए। विराज कर भगवान् ने उन लिच्छवियों को पूछा—"लिच्छवियो! तुममें अभी क्या बात चल रही थी? और वहाँ बीच में ही क्यों रुक गये?"

"यहाँ एकत्र बैठे हम लोगों में यही चर्चा चल रही थी—'लोक में पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। ...पूर्ववत्...।

४. "कामभोगों में लिप्त लिच्छवि कामभोगों से सम्बद्ध चर्चा ही करेंगे! लिच्छवियो! लोक में इन पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ है। किन पाँच रत्नों का? (१) तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का लोक में प्रादुर्भाव दुर्लभ है। (२) तथागतोपदिष्ट धर्म का उपदेशक लोक में दुर्लभ है। (३) तथागत उपदिष्ट धर्म विनय का ज्ञाता लोक में दुर्लभ है। एवं (४) तथागतोपदिष्ट धर्मविनय का ज्ञान प्राप्त कर तदनुसार धर्म एवं अनुधर्म पर आचरण एवं अभ्यास करनेवाला, एवं (५) कृतज्ञ पुद्गल लोक में दुर्लभ हैं। लिच्छवियो! लोक में इन पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ है॥"

तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

[N.421] २. ''साधु, भिक्खवे, भिक्खु कालेन कालं अप्पटिकूले पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य। साधु, भिक्खवे, भिक्खु कालेन कालं पटिकूले अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य। साधु, भिक्खवे, भिक्खु कालेन कालं अप्पटिकूले च पटिकूले च पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य। [B.150] साधु, भिक्खवे, भिक्खु कालेन कालं पटिकूले च अप्पटिकूले च अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य। साधु, भिक्खवे, भिक्खु कालेन कालं पटिकूलं च अप्पटिकूलं च तदुभयं अभिनिवज्जेत्वा उपेक्खको विहरेय्य सतो सम्पजानो।

३. ''किञ्च, भिक्खवे, भिक्खु अत्थवसं पटिच्च अप्पटिकूले पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य? 'मा मे रजनीयेसु धम्मेसु रागो उदपादी' ति—इध खो, भिक्खवे, भिक्खु अत्थवसं पटिच्च अप्पटिकूले पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य।

४. ''किञ्च, भिक्खवे, भिक्खु अत्थवसं पटिच्च पटिकूले अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य? 'मा मे दोसनीयेसु धम्मेसु दोसो उदपादी' ति—इध खो, भिक्खवे, भिक्खु अत्थवसं पटिच्च पटिकूले अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य।

[R.170] ५. ''किञ्च, भिक्खवे, भिक्खु अत्थवसं पटिच्च अप्पटिकूले च पटिकूले च पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य? 'मा मे रजनीयेसु धम्मेसु रागो उदपादि, मा मे दोसनीयेसु धम्मेसु

---

४. त्रिकण्टकीसूत्र

: :

साधना के पाँच क्रम

१. एक समय भगवान् बुद्ध साकेत प्रदेश के त्रिकण्टकीवन में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ भगवान् ने भिक्षुओं को ''भिक्षुओ!'' सम्बोधन से अपने पास बुलाया। भिक्षुओं ने ''हाँ, भन्ते!'' कहकर भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् ने उनको यह देशना की—

२. ''भिक्षुओ! (१) अच्छा हो कि कोई साधक भिक्षु समय समय पर अप्रतिकूल में प्रतिकूलसंज्ञा से साधना करे; (२) कोई साधक भिक्षु समय समय पर प्रतिकूल में अप्रतिकूल की साधना करे; (३) कोई साधक समय समय पर अप्रतिकूल एवं प्रतिकूल में प्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करे; (४) भिक्षुओ! कोई साधक प्रतिकूल एवं अप्रतिकूल में अप्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करे; (५) तथा, भिक्षुओ! कोई भिक्षु प्रतिकूल तथा अप्रतिकूल—दोनों में अनासक्त होकर उनकी उपेक्षा करता हुआ स्मृतिपूर्वक साधना करे।

३. ''भिक्षुओ! किस प्रयोजन से वह भिक्षु अप्रतिकूल में प्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करे? 'मुझे राग उत्पन्न करने योग्य धर्मों में राग न उत्पन्न हो'—इस प्रयोजन से भिक्षुओ! उस भिक्षु को अप्रतिकूल में प्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करनी चाहिये। (१)

४. ''भिक्षुओ! किस प्रयोजन से वह भिक्षु प्रतिकूल में अप्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करे? 'मुझे द्वेष्य धर्मों में द्वेष न उत्पन्न हो'—भिक्षुओ! इस प्रयोजन से भिक्षु को प्रतिकूल में अप्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करनी चाहिये। (२)

५. ''भिक्षुओ! किस प्रयोजन से वह भिक्षु अप्रतिकूल एवं प्रतिकूल में प्रतिकूलसंज्ञी होकर

दोसो उदपादी' ति—इदं खो, भिक्खवे, भिक्खू अत्थवसं पटिच्च अप्पटिकूले च पटिकूले च पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य।

६. ''किञ्च, भिक्खवे, भिक्खु अत्थवसं पटिच्च पटिकूले च अप्पटिकूले च अप्पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य? 'मा मे दोसनीयेसु धम्मेसु दोसो उदपादि, मा मे रजनीयेसु धम्मेसु रागो उदपादी' ति—इदं खो, भिक्खवे, भिक्खू अत्थवसं पटिच्च पटिकूले च अप्पटिकूले च पटिकूलसञ्ञी विहरेय्य।

७. ''किञ्च, भिक्खवे, भिक्खु अत्थवसं पटिच्च पटिकूलं च अप्पटिकूलं च तदुभयं अभिनिवज्जेत्वा उपेक्खको विहरेय्य? 'सतो सम्पजानो मा मे क्वचनि कत्थचि किञ्चनं रजनीयेसु धम्मेसु रागो उदपादि, मा मे क्वचनि कत्थचि किञ्चनं दोसनीयेसु धम्मेसु दोसो उदपादि, मा मे क्वचनि कत्थचि किञ्चनं मोहनीयेसु धम्मेसु मोहो [N.422] पदपादी' ति—इदं खो, भिक्खवे, भिक्खु अत्थवसं पटिच्च पटिकूलं च अप्पटिकूलं च तदुभयं अभिनिवज्जेत्वा उपेक्खको विहरेय्य सतो सम्पजानो'' ति॥ ●

५. निरयसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, [B.151] पञ्चहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

साधना करे? 'मुझे रजनीय धर्मों में राग न उत्पन्न हो', 'मुझे द्वेष्य धर्मों में द्वेष न उत्पन्न हो'—इन दो प्रयोजनों से, भिक्षुओ! वह भिक्षु अप्रतिकूल एवं प्रतिकूल में प्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करे। (३)

६. ''भिक्षुओ! किस प्रयोजन से वह भिक्षु प्रतिकूल एवं अप्रतिकूल में अप्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करे? 'मुझे द्वेषणीय धर्मों में द्वेष उत्पन्न न हो', तथा 'रागयोग्य धर्मों में राग न उत्पन्न हो'—इन दो प्रयोजनों से, भिक्षुओ! वह प्रतिकूल तथा अप्रतिकूल में अप्रतिकूलसंज्ञी होकर साधना करे। (४)

७. ''और, भिक्षुओ! किस प्रयोजन से वह भिक्षु प्रतिकूल एवं अप्रतिकूल—दोनों को छोड़कर उपेक्षक होकर स्मृतिपूर्वक साधना करे? 'स्मृति एवं सम्प्रजन्य युक्त मुझको कहीं से भी, किसी से भी, रजनीय धर्मों में राग, द्वेषणीय धर्मों में द्वेष, तथा मोहनीय धर्मों में कुछ भी मोह न उत्पन्न हो'— इन प्रयोजनों से, भिक्षुओ! वह भिक्षु प्रतिकूल एवं अप्रतिकूल—दोनों को छोड़कर, उपेक्षा करता हुआ स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक साधना करे॥'' (५) ●

: :

पाँच धर्मों से नरकगामिता

५. निरयसूत्र

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त पुरुष जैसे वहाँ से आया था वैसे ही पुनः नरक में जा गिरेगा। कौन से पाँच धर्मों से? (१) जो प्राणातिपाती होता है; (२) जो चौर होता है, (३) जो व्यभिचारी होता है, (४) जो असत्यभाषी होता है; (५) जो मद्यपायी होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त पुरुष जैसे आया था वैसे ही पुनः नरक में जा गिरता है।

[R.171] २. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसु-मिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

६. मित्तसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु मित्तो न सेवितब्बो। कतमेहि पञ्चहि? कम्मन्तं कारेति, अधिकरणं आदियति, पामोक्खेसु भिक्खूसु पटिविरुद्धो होति, दीघचारिकं अनवत्थचारिकं अनुयुत्तो विहरति, नप्पटिबलो होति कालेन कालं धम्मिया कथाय सन्दस्सेतुं समादपेतुं समुत्तेजेतुं सम्पहंसेतुं। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु मित्तो न सेवितब्बो।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु मित्तो सेवितब्बो। कतमेहि पञ्चहि? न कम्मन्तं कारेति, न अधिकरणं आदियति, न पामोक्खेसु भिक्खूसु पटिविरुद्धो [N.423] होति, न दीघचारिकं अनवत्थचारिकं अनुयुत्तो विहरति, पटिबलो होति कालेन कालं धम्मिया कथाय सन्दस्सेतुं समादपेतुं समुत्तजेतुं सम्पहंसेतुं। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु मित्तो न सेवितब्बो'' ति॥ ●

७. असप्पुरिसदानसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, असप्पुरिसदानानि।

---

२. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त पुरुष, जैसे आया था वैसे ही पुनः स्वर्ग में पहुँच जाता है। किन पाँच धर्मों से? (१) प्राणातिपात से, (२) चौरी से, (३) व्यभिचार से, (४) असत्यभाषण से, तथा (५) मद्यपान से दूर रहता है। इन पाँच धर्मों से युक्त पुरुष, जैसे आया था वैसे ही, पुनः स्वर्ग में पहुँच जाता है॥ ●

६. मित्रसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त मित्र

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को मित्र नहीं बनाना चाहिये। कौन से पाँच? (१) व्यापार (वाणिज्य) कराता हो; (२) न्यायिक कलह (मुकद्दमा) करता हो; (३) धर्माचारी भिक्षुओं से विरोध रखता हो; (४) विलम्ब से सिद्ध होने वाली या अव्यवस्थित साधना में निरत हो; (५) या जो समय समय पर धार्मिक कथा द्वारा उत्तेजित तथा सम्प्रहृष्ट करने में समर्थ न हो। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को मित्र नहीं बनाना चाहिये।

२. ''तथा, भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को मित्र बनाया जा सकता है। किन पाँच से? (१) जो व्यापार न करता हो, (२) न्यायिक कलह न करता हो; (३) धर्माचारी भिक्षुओं से मिलकर रहता हो; (४) शीघ्र सिद्ध होने वाली एवं व्यवस्थित साधना में रत रहता हो; (५) या जो समय समय धार्मिक कथा सुनाकर दूसरे साथी भिक्षुओं को धर्म के प्रति समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट करने में समर्थ हो। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु को अपना मित्र बनाया जा सकता है॥''●

७. असत्पुरुषदानसूत्र : : असत्पुरुष के पाँच दान

१. भिक्षुओ! ये पाँच दान असत्पुरुष द्वारा किये जाते हैं। कौन से पाँच? (१)

कतमानि पञ्च? असक्कच्चं देति, अचित्तीकत्वा देति, असहत्था देति, अपविद्धं देति, अनागमनदिट्ठिको देति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च असप्पुरिसदानानि।

२. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, सप्पुरिसदानानि। कतमानि पञ्च? [B.152,R.172] सक्कच्चं देति, चित्तीकत्वा देति, सहत्था देति, अनपविद्धं देति, आगमनदिट्ठिको देति। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च सप्पुरिसदानानी'' ति॥ ●

८. सप्पुरिसदानसुत्तं : १. ''पञ्चिमानि, भिक्खवे, सप्पुरिसदानानि। कतमानि पञ्च? सद्धाय दानं देति, सक्कच्चं दानं देति, कालेन दानं देति, अनुग्गहितचित्तो दानं देति, अत्तानं च परं च अनुपहच्च दानं देति।

२. ''सद्धाय खो पन, भिक्खवे, दानं दत्वा यत्थ यत्थ तस्स दानस्स विपाको निब्बत्तति, अड्ढो च होति महद्धनो महाभोगो, अभिरूपो च होति दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो।

३. ''सक्कच्चं खो पन, भिक्खवे, दानं दत्वा यत्थ यत्थ तस्स दानस्स विपाको निब्बत्तति, अड्ढो च होति महद्धनो महाभोगो। ये पिस्स ते होन्ति पुत्ता ति वा दारा ति वा दासा ति पेस्सा ति वा कम्मकरा ति वा, ते पि सुस्सूसन्ति सोतं ओदहन्ति अञ्ञा चित्तं उपट्ठपेन्ति।

असत्कारपूर्वक देता है; (२) मन न लगाकर (अश्रद्धापूर्वक) देता है; (३) अपने हाथ से नहीं देता; (४) त्यागी हुई (व्यवहृत) वस्तु देता है; (५) याचक फिर कभी न आवे—इस दृष्टि से दान करता है। भिक्षुओ! ये पाँच दान असत्पुरुष द्वारा कृत कहलाते हैं।

२. (तथा) भिक्षुओ! ये पाँच दान सत्पुरुष द्वारा कृत कहलाते हैं। कौन से पाँच? (१) सत्कारपूर्वक दान, (२) मन लगाकर (श्रद्धापूर्वक) दान, (३) अपने हाथ से दान, (४) अव्यवहृत वस्तु का दान, तथा (५) ''याचक पुनः पुनः आवे'—इस दृष्टि से दान करता है। भिक्षुओ! यह पञ्चविध दान सत्पुरुषकृत कहलाते हैं॥ ●

८. सत्पुरुषदानसूत्र : : सत्पुरुषकृत पाँच दान

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच दान सत्पुरुषकृत दान कहलाते हैं। कौन से पाँच? (१) श्रद्धा से दान; (२) सत्कारपूर्वक दान; (३) समय पर दान; (४) अनुग्रहचित्त से कृत दान; एवं (५) स्व एवं पर को कोई कष्ट या हानि पहुँचाये बिना दान करता है।

२. ''भिक्षुओ! 'श्रद्धापूर्वक किये गये दान' का जब और जहाँ फल मिलने लगता है तब वह दानी पुरुष वहाँ आढ्य, अतिशय धनी, विपुल ऐश्वर्य भोग वाला, सुरूप, दर्शनीय, नयनाभिराम एवं उत्तम रूप वर्ण से सम्पन्न होता है। (१)

३. ''भिक्षुओ! 'सत्कारपूर्वक किये गये दान' का जब और जहाँ फल मिलने लगता है तब वह दानी पुरुष वहाँ स्वयं तो आढ्य, अतिशय धनी एवं विपुल ऐश्वर्यभोगवाला होता ही है; साथ ही उसके पुत्र, स्त्री, दास, दूत, कर्मकर आदि भी उसकी सतत सेवा करते हैं, उसकी बात ध्यान से सुनते हैं, तथा उसकी आज्ञा का निरन्तर पालन करने हेतु सन्नद्ध रहते हैं। (२)

४. ''कालेन खो पन, भिक्खवे, दानं दत्वा यत्थ यत्थ तस्स दानस्स विपाको निब्बत्तति, अड्ढो च होति महद्धनो महाभोगो; कालागता चस्स अत्था पचुरा होन्ति।

[N.424] ५. ''अनुग्गहितचित्तो खो पन, भिक्खवे, दानं दत्वा यत्थ यत्थ तस्स दानस्स विपाको निब्बत्तति, अड्ढो च होति महद्धनो महाभोगो; उळारेसु च पञ्चसु कामगुणेसु भोगाय चित्तं नमति।

[R.173] ६. अत्तानं च परं च अनुपहच्च खो पन, भिक्खवे, दानं दत्वा यत्थ यत्थ तस्स दानस्स विपाको निब्बत्तति, अड्ढो च होति महद्धनो महाभोगो; न चस्स कुतोचि भोगानं उपघातो आगच्छति अग्गितो वा उदकतो वा राजतो वा चोरतो वा अप्पियतो वा दायादतो वा। इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च सप्पुरिसदानानी'' ति॥ ●

[B.153] ९. **पठमसमयविमुत्तसुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा समयविमुत्तस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? कम्मारामता, भस्सारामता, निद्दारामता, सङ्गणिकारामता, यथाविमुत्तं चित्तं न पच्चवेक्खति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा समयविमुत्तस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ति।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा समयविमुत्तस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? न कम्मारामता, न भस्सारामता, न निद्दारामता, न सङ्गणिकारामता,

---

४. ''भिक्षुओ! 'अनुग्रहपूर्वक किये गये दान' का जब और जहाँ फल मिलने लगता है तब वह दानी पुरुष स्वयं तो आढ्य, धनी एवं अतिशय भोगैश्वर्य सम्पन्न होता ही है, साथ ही उसको अत्यधिक आकस्मिक धन सम्पत्ति का लाभ भी समय समय पर (कालागत) होता रहता है। (३)

५. ''भिक्षुओ! 'अनुग्रहपूर्वक किये गये दान' का जब और जहाँ फल मिलने लगता है तब वह दानी पुरुष स्वयं तो धनी एवं विपुल ऐश्वर्यशाली होता ही है, साथ ही उसको अच्छे से अच्छे पाँचों कामभोग भी यथेच्छ उपलब्ध होते रहते हैं। (४)

६. ''भिक्षुओ! स्वयं तथा पर को कोई कष्ट या हानि पहुँचाये विना किये गये दान का जब और जहाँ फल मिलने लगता है तब वह दानी पुरुष स्वयं तो धनी एवं विपुल ऐश्वर्यशाली होता ही है, साथ ही इसके भोग या ऐश्वर्य की अग्नि, उदक, राजा, चौर, शत्रु या उत्तराधिकारी आदि कोई हानि भी नहीं कर सकता। भिक्षुओ! ये पाँच सत्पुरुषकृत दान कहलाते हैं॥'' ●

९. प्रथम समयविमुक्तसूत्र : : भिक्षु की हानि करने, न करने वाले पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म समयविमुक्त (अवसर चूके) भिक्षु की हानि ही करते हैं। कौन से पाँच धर्म? (१) सांसारिक कृत्यों में अत्यधिक रुचि दिखाना; (२) अतिशय संवाद (बकवाद) में रुचि दिखाना; (३) अत्यधिक निद्रा के वश होना; (४) भीड़ (जनसम्मर्द) में रहने के लिये उत्सुक रहना; (५) जिस प्रकार चित्त विमुक्त हो उन बातों में रुचि न लेना। भिक्षुओ! ये पाँच धर्म समयविमुक्त भिक्षु के लिये हानिकर होते हैं।

२. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म समयविमुक्त (अवसर चूके) भिक्षु की कोई हानि नहीं होने देते। कौन से पाँच? (१) सांसारिक कृत्यों में रुचि न दिखाना; (२) व्यर्थ संवाद में रुचि न

यथाविमुत्तं चित्तं पच्चवेक्खति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा समयविमुत्तस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ती'' ति॥

१०. **दुतियसमयविमुत्तसुत्तं** : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा समयविमुत्तस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? कम्मारामता, भस्सारामता, निद्दारामता, इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारता, भोजने अमत्तञ्ञुता। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा समयविमुत्तस्स भिक्खुनो परिहानाय संवत्तन्ति।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा समयविमुत्तस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? न कम्मारामता, न भस्सारामता, न निद्दारामता, न इन्द्रियेसु गुत्तद्वारता, [R.174] भोजने मत्तञ्ञुता। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा समयविमुत्तस्स भिक्खुनो अपरिहानाय संवत्तन्ती'' ति॥

तिकण्डकीवग्गो पञ्चदसमो॥

तस्सुद्दानं

दत्वा अवजानाति आरभति च, सारन्दद तिकण्ड निरयेन च।
मित्तो असप्पुरिससप्पुरिसेन, समयविमुत्तं अपरे द्वे ति॥

ततियो पण्णासको समत्तो॥

दिखाना; (३) अतिनिद्रा के वश में न होना; (४) भीड़ (जनसम्मर्द) से दूर रहना; (५) जिन बातों से चित्तविमुक्त हो उनका प्रत्यवेक्षण करना। भिक्षुओ! ये पाँच धर्म समयविमुक्त भिक्षु के लिये हानिकर नहीं होने देते॥''

१०. द्वितीय समयविमुक्तसूत्र : : भिक्षु की हानि करने, न करने वाले पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! ...पूर्वसूत्रवत्... (३) अत्यधिक निद्रा के वश में रहना, (४) इन्द्रियों पर संयम न रखना; (५) भोजन की मात्रा न जानना। भिक्षुओ! ये पाँच धर्म समयविमुक्त भिक्षु के लिये हानिकर होते हैं।

२. भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... (३) निद्रा के वश में न होना; (४) इन्द्रियों पर संयम; तथा (५) भोजन की मात्रा का ज्ञान। भिक्षुओ! ये पाँच धर्म समयविमुक्त भिक्षु की भी कोई हानि नहीं होने देते॥''

त्रिकण्टकीवर्ग पञ्चदश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. अवजानातिसूत्र, २. आरभतिसूत्र, ३. सारन्ददसूत्र, ४. त्रिकण्टकीसूत्र, ५. निरयसूत्र, ६. मित्रसूत्र, ७. असत्पुरुषदानसूत्र, ८. सत्पुरुषदानसूत्र, ९. प्रथम समयविमुक्तसूत्र, १०. द्वितीय समयविमुक्तसूत्र॥

तृतीय पञ्चाशत्क समाप्त॥

१६. सद्धम्मवग्गो

चतुत्थो पण्णासको

[B.154] **१. पठमसम्मत्तनियामसुत्तं** : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो पि सद्धम्मं अभब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं। कतमेहि पञ्चहि? कथं परिभोति, कथिकं परिभोति, अत्तानं परिभोति, विक्खित्तचित्तो धम्मं सुणाति, अनेकग्गचित्तो अयोनिसो च मनसि करोति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो पि सद्धम्मं अभब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

[R.175] २. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो सद्धम्मं भब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं। कतमेहि पञ्चहि? न कथं परिभोति, न कथिकं परिभोति, न अत्तानं परिभोति, अविक्खित्तचित्तो धम्मं सुणाति, एकग्गचित्तो योनिसो च मनसि करोति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो सद्धम्मं भब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं" ति॥ ●

२. दुतियसम्मत्तनियामसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो पि सद्धम्मं अभब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं। कतमेहि पञ्चहि? कथं परिभोति, कथिकं परिभोति, अत्तानं परिभोति, दुप्पञ्ञो होति जळो एळमूगो,

---

१६. सद्धर्मवर्ग

चतुर्थ पञ्चाशत्क

१. प्रथम सम्यक्त्वनियामसूत्र : : पाँच धर्म सम्यक्त्वनियामक

१. "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल सद्धर्म को सुनकर भी कुशल धर्मों के सम्यक्त्वनियम (उचित साधना) में प्रवेश करने में समर्थ नहीं होता। कौन से पाँच? (१) कथा में विघ्न डालता है; (२) कथावाचक को विघ्न करता है; (३) स्वयं को विघ्न में डाल लेता है; (४) विक्षिप्त चित्त से कथा सुनता है; (५) चञ्चल चित्त होकर धर्म को मन में बैठाता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल धर्म सुनकर भी कुशल धर्मों के सम्यक्त्वनियम में प्रवेश नहीं कर पाता।

२. (परन्तु) "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल सद्धर्म सुनकर, कुशल धर्मों के सम्यक्त्वनियम में प्रवेश करने में समर्थ हो जाता है। कौन से पाँच? (१) कथा में विघ्न नहीं डालता; (२) कथावाचक को विघ्न नहीं करता; (३) स्वयं को भी विघ्न में नहीं डालता; (४) एकाग्रचित्त से कथा सुनता है; तथा (५) स्थिरचित्त होकर उन धर्मों का अन्वीक्षण करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से ...पूर्ववत्... समर्थ हो जाता है॥" ●

२. द्वितीय सम्यक्त्वनियामसूत्र : : अन्य पाँच धर्म सम्यक्त्वनियामक

१. "भिक्षुओ! ...पूर्वसूत्रवत्... (३) स्वयं को विघ्न में डालता है; (४) दुर्बुद्धि एवं जड़ होता है; (५) अज्ञात को ज्ञात समझने का अभिमान करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त

अनञ्ञाते अञ्ञातमानी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो [N.426] सुणन्तो पि सद्धम्मं अभब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो सद्धम्मं भब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं। कतमेहि पञ्चहि? न कथं परिभोति, न कथिकं परिभोति, न अत्तानं परिभोति, पञ्ञवा होति अजळो अनेळमूगो, न अनञ्ञाते [B.155] अञ्ञातमानी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो सद्धम्मं भब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं" ति॥ ●

३. ततियसम्मत्तनियामसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो पि सद्धम्मं अभब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं। कतमेहि पञ्चहि? मक्खी धम्मं सुणाति मक्खपरियुट्ठितो, उपारम्भचित्तो धम्मं सुणाति [R.176] रन्धगवेसी, धम्मदेसके आहतचित्तो होति खिलजातो, दुप्पञ्ञो होति जळो एळमूगो, अनञ्ञाते अञ्ञातमानी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो पि सद्धम्मं अभब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो सद्धम्मं भब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं। कतमेहि पञ्चहि? अमक्खी धम्मं सुणाति न मक्खपरियुट्ठितो, अनुपारम्भचित्तो धम्मं सुणाति न रन्धगवेसी, धम्मदेसके अनाहतचित्तो होति अखिलजातो, पञ्ञवा होति अजळो अनेळमूगो, न अनञ्ञाते अञ्ञातमानी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो सुणन्तो सद्धम्मं भब्बो नियामं ओक्कमितुं कुसलेसु धम्मेसु सम्मत्तं" ति॥ ●

पुद्गल सद्धर्म (का उपदेश) सुनकर भी कुशल धर्मों के सम्यक्त्वनियम में प्रवेश पाने में समर्थ नहीं हो सकता।

२. "भिक्षुओ! ...पूर्वसूत्रवत्...। ... (३) न स्वयं को विघ्न में डालता है; (४) प्रज्ञावान् होता है, जड़ नहीं होता। और (५) न वह अज्ञात को ज्ञात समझने का अभिमान करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से ...पूर्ववत्... प्रवेश पाने में समर्थ हो सकता है॥" ●

३. तृतीय सम्यक्त्वनियामसूत्र : : अन्य पाँच धर्म सम्यक्त्व नियामक

१. भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल सद्धर्म सुनकर भी कुशल धर्मों के सम्यक्त्वनियम में प्रविष्ट होने में समर्थ नहीं होता। किन पाँच धर्मों से? (१) अपने गुणों के अभिमान में मत्त होकर धर्मोपदेश सुनता है; (२) मन में निन्दा (उपालम्भ) करता हुआ, तथा उसमें छिद्र (कमी) खोजता हुआ धर्म सुनता है; (३) धर्मोपदेशक में द्वेष रखता हुआ धर्म सुनता है; (४) जड़ एवं दुर्बुद्धि होता है; (५) अज्ञात में ज्ञात का अभिमान करता है। इन पाँच धर्मों के कारण ...प्रवेश नहीं कर पाता।

२. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त पुरुष सद्धर्म सुनकर... प्रवेश कर पाता है। किन पाँच धर्मों से? (१) अपने गुणों का अभिमान न करता हुआ, (२) मन में धर्म की निन्दा न करता हुआ तथा उसमें कमी न खोजता हुआ उसको सुनता है; (३) धर्मोपदेशक में द्वेष न रखता हुआ धर्म सनता

४. पठमसद्धम्मसम्मोससुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खू न सक्कच्चं धम्मं [N.427] सुणन्ति, न सक्कच्चं धम्मं परियापुणन्ति, न सक्कच्चं धम्मं धारेन्ति, न सक्कच्चं धातानं धम्मानं अत्थं उपपरिक्खन्ति, न सक्कच्चं अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मं पटिपज्जन्ति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवें, भिक्खू सक्कच्चं धम्मं सुणन्ति, सक्कच्चं धम्मं [B.156] परियापुणन्ति, सक्कच्चं धम्मं धारेन्ति, सक्कच्चं धातानं धम्मानं अत्थं [R.177] उपपरिक्खन्ति, सक्कच्चं अत्थमञ्ञाय धम्ममञ्ञाय धम्मानुधम्मं पटिपज्जन्ति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ती'' ति॥ ●

५. दुतियसद्धम्मसम्मोससुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खू धम्मं न परियापुणन्ति—सुत्तं, गेय्यं, वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। अयं, भिक्खवे, पठमो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं न वित्थारेन परेसं देसेन्ति। अयं, भिक्खवे, दुतियो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

है; (४) प्रज्ञावान् होता हुआ विवेकपूर्वक धर्म सुनता है। (१) अज्ञात में ज्ञात का अभिमान नहीं करता। इन पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल कुशल धर्मों के सम्यक्त्वनियम में प्रवेश कर पाता है॥''●

४. प्रथम सद्धर्मसम्मोषसूत्र : : पाँच धर्म सद्धर्म के नाशक

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म का नाश एवं लोप करने वाले होते हैं। कौन से पाँच? (१) भिक्षुओ! कुछ भिक्षु सत्कारपूर्वक धर्मोपदेश नहीं सुनते, (२) न सत्कारपूर्वक पढ़ते हैं; (३) न उसको धारण करते हैं; (४) न धारण किये हुए धर्म का अर्थ ही जानते हैं; (५) न उसका अर्थ जानकर, धर्म-अनुधर्म के अनुसार उसका आचरण करते हैं। भिक्षुओ! उनके ये पाँच धर्म सद्धर्म का नाश एवं लोप करने वाले होते हैं।

२. (परन्तु) ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म के स्थितिस्थापक एवं चिरायुष्कारक होते हैं। कौन पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु (१) सत्कारपूर्वक धर्म को सुनते हैं; (२) सत्कारपूर्वक उसको पढ़ते हैं; (३) सत्कारपूर्वक उसको धारण करते हैं; (४) सत्कारपूर्वक धारण किये धर्म का अर्थ भी जानते हैं; तथा (५) उसका अर्थ जानकर धर्मानुधर्मपूर्वक उसका आचरण करते हैं। इस प्रकार, भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म के स्थितिस्थापक एवं आयुर्वर्धक होते हैं॥'' ●

५. द्वितीय सद्धर्मसम्मोषसूत्र : : पाँच धर्म सद्धर्म के नाशक

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म के नाश एवं लोप के हेतु बनते हैं। कौन पाँच? यहाँ,

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू यथासुत्तं यथापरियत्तं धम्मं न वित्थारेन परं वाचेन्ति। अयं, भिक्खवे, ततियो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं न वित्थारेन सज्झायं करोन्ति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं न चेतसा अनुवितक्केन्ति अनुविचारेन्ति मनसानुपेक्खन्ति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो धम्मो [N.428] सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति॥

६. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खू धम्मं परियापुणन्ति—सुत्तं, गेय्यं, [R.178] वेय्याकरणं, गाथं, उदानं, इतिवुत्तकं, जातकं, अब्भुतधम्मं, वेदल्लं। अयं, भिक्खवे, पठमो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

७. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन [B.157] परेसं देसेन्ति। अयं, भिक्खवे, दुतियो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

८. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन परं

भिक्षुओ! कुछ भिक्षु—सूत्र, गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इत्युक्तक, जातक, अद्भुतधर्म एवं वेदल्ल—इस धर्म को नहीं पढ़ते—यह, भिक्षुओ! सद्धर्म के लोप एवं नाश का प्रथम कारण है। (१)

२. ''पुनः, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु अपने यथाश्रुत, यथाधीत धर्म का दूसरों को उपदेश नहीं करते—यह सद्धर्म के नाश एवं लोप का द्वितीय कारण है। (२)

३. ''पुनः, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु अपने यथाश्रुत, यथाधीत धर्म का दूसरों को अभ्यास नहीं कराते—यह सद्धर्म के नाश एवं लोप का तृतीय कारण है। (३)

४. ''पुनः, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु अपने यथाश्रुत, यथाधीत धर्म का स्वयं स्वाध्याय नहीं करते—यह सद्धर्म के नाश एवं लोप का चतुर्थ कारण है। (४)

५. ''पुनः, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु अपने यथाश्रुत, यथाधीत धर्म का स्वचित्त से समीक्षण नहीं करते, विचार नहीं करते, मनन नहीं करते—यह इस सद्धर्म के नाश एवं लोप का पञ्चम कारण है। (५)

''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म के नाश एवं लोप के कारण बनते हैं। (क)

६. ''पुनः, भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म की स्थिति, स्थायिता एवं लम्बी आयु के कारण होते हैं। कौन पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु—सूत्र ...पूर्ववत्...—इस धर्म को पढ़ते हैं। भिक्षुओ! यह प्रथम धर्म या सद्धर्म की स्थिति ... का कारण है। (१)

७. ''पुनः ... इस सद्धर्म का दूसरों को विस्तार से उपदेश करते हैं ...पूर्ववत्...। (२)

वाचेन्ति। अयं, भिक्खवे, ततियो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

९. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं वित्थारेन सज्झायं करोन्ति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

१०. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू यथासुतं यथापरियत्तं धम्मं चेतसा अनुवितक्केन्ति अनुविचारेन्ति मनसानुपेक्खन्ति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ती" ति॥ ●

६. ततियसद्धम्मसम्मोससुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खू दुग्गहितं सुत्तन्तं परियापुणन्ति दुन्निक्खित्तेहि पदब्यञ्जनेहि। दुन्निक्खित्तस्स, भिक्खवे, पदब्यञ्जनस्स अत्थो पि दुन्नयो होति। अयं, भिक्खवे, पठमो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

[N.429] २. "पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू दुब्बचा होन्ति, दोवचस्सकरणेहि धम्मेहि समन्नागता, अक्खमा अप्पदक्खिणग्गाहिनो अनुसासनिं। अयं, भिक्खवे, दुतियो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

[R.179] ३. "पुन च परं, भिक्खवे, ये ते भिक्खू बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा

---

८. "पुनः ... इस सद्धर्म का दूसरों को अभ्यास कराते हैं ...पूर्ववत्...। (३)

९. "पुनः ... इस सद्धर्म का स्वयं स्वाध्याय करते हैं ...पूर्ववत्...। (४)

१०. "पुनः ... इस सद्धर्म का स्वचित्त से समीक्षण, विचार एवं मनन करते हैं—यह, भिक्षुओ! इस सद्धर्म की स्थिति का, स्थायिता का, आयुवृद्धि का पाँचवाँ कारण है। (५)

"भिक्षुओ! ये पाँच धर्म हैं जिनसे इस सद्धर्म की स्थिरता, स्थायिता एवं चिरायुष्कता (लम्बी आयु) होती है॥" ●

६. तृतीय सद्धर्मसम्मोषसूत्र : : सद्धर्म के नाशक एवं लोपकर्ता पाँच धर्म

१. "भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म के नाश एवं लोप के कारण होते हैं। कौन पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु पद एवं व्यञ्जनों से दुर्गृहीत (अशुद्ध) धर्म का अध्ययन करते हैं, ऐसे अशुद्ध अधीत धर्म के पद एवं व्यञ्जनों का अर्थ कठिनता से समझ में आता है। यह, भिक्षुओ! प्रथम धर्म है जो सद्धर्म के लोप एवं नाश का कारण होता है। (१)

२. "भिक्षुओ! कुछ भिक्षु यहाँ दुर्वच (अनाज्ञाकारी) होते हैं, जो अपने इस दौर्वचस्य दोष के कारण गुरु के उपदेश एवं अनुशासन को मानने में असमर्थ होते हैं। भिक्षुओ! सद्धर्म के नाश एवं लोप का यह दूसरा कारण है। (२)

विनयधरा मातिकाधरा, ते न सक्कच्चं सुत्तन्तं परं वाचेन्ति; तेसं अच्चयेन छिन्नमूलको सुत्तन्तो होति अप्पटिसरणो। अयं, भिक्खवे, ततियो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

४. "पुन च परं, भिक्खवे, थेरा भिक्खू बाहुलिका होन्ति साथलिका ओक्कमने पुब्बङ्गमा पविवेके निक्खित्तधुरा, न विरियं आरभन्ति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। तेसं पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं [B.158] आपज्जति। सा पि होति बाहुलिका साथलिका ओक्कमने पुब्बङ्गमा पविवेके निक्खित्तधुरा, न विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति।

५. "पुन च परं, भिक्खवे, सङ्घो भिन्नो होति। सङ्घे खो पन, भिक्खवे, भिन्ने अञ्ञमञ्ञं अक्कोसा च होन्ति, अञ्ञमञ्ञं परिभासा च होन्ति, अञ्ञमञ्ञं परिक्खेपा च होन्ति, अञ्ञमञ्ञं परिच्चजना च होन्ति। तत्थ अप्पसन्ना चेव नप्पसीदन्ति, पसन्नानं च एकच्चानं अञ्ञथत्तं होति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो धम्मो सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सद्धम्मस्स सम्मोसाय अन्तरधानाय संवत्तन्ति॥

६. "पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ति। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खू सुग्गहितं सुत्तन्तं परियापुणन्ति

---

३. "पुनः, भिक्षुओ! यहाँ कुछ ऐसे भी बहुश्रुत, शास्त्र के ज्ञाता, धर्मधर, विनयधर एवं मातृकाधर भिक्षु हैं जो दूसरों को सत्कारपूर्वक सूत्रान्त नहीं पढ़ाते। उनके समाप्त होने पर, यह सूत्रान्त छिन्नमूल हो जाता है। भिक्षुओ! सद्धर्म के नाश एवं लोप का यह तीसरा कारण है। (३)

४. "पुनः, भिक्षुओ! कुछ स्थविर भिक्षु परिग्रहों, धर्मसाधना में शिथिल एवं जूआ टेके हुए के समान होते हैं, वे अप्राप्त की प्राप्ति के लिये, अनधिगत के अधिगम के लिये तथा असाक्षात्कृत के साक्षात्कार के लिये कोई प्रयास नहीं करते। आगे आनेवाली जनता भी उनका ही अनुकरण करने लगती है। वह भी उन स्थविरों के उक्त आचरण वाली हो जाती है। भिक्षुओ! यह चतुर्थ धर्म सद्धर्म के लोप एवं नाश का कारण होता है। (४)

५. "पुनः, भिक्षुओ! कभी सङ्घ में मतभेद हो जाता है। यह मतभेद होने पर, भिक्षुओ! भिक्षुजन परस्पर निन्दात्मक वचन बोलते हैं, कटु वचन बोलते हैं, परस्पर आरोप लगाते हैं, एक दूसरे का साथ छोड़ने को सन्नद्ध होते हैं। वहाँ अश्रद्धालुओं की श्रद्धा होना तो दूर की बात है, वे साथ रहने वाले भी परस्पर एक दूसरे के लिये अन्यथा बोलने लगते हैं। यह, भिक्षुओ! पाँचवाँ धर्म है जो सद्धर्म के नाश एवं लोप का कारण होता है। (५)

"भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म के नाश एवं लोप के कारण होते हैं। (क)

६. "भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म की स्थिरता, स्थायिता एवं अभ्युर्वर्धन में कारण होते हैं।

सुनिक्खित्तेहि पदब्यञ्जनेहि। सुनिक्खित्तस्स, भिक्खवे, पदब्यञ्जनस्स अत्थो पि सुनयो होति। अयं, भिक्खवे, पठमो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

[N.430,R.180] ७. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खू सुवचा होन्ति सोवचस्सकरणेहि धम्मेहि समन्नागता, खमा पदक्खिणग्गाहिनो अनुसासनिं। अयं, भिक्खवे, दुतियो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

८. ''पुन च परं, भिक्खवे, ये ते भिक्खू बहुस्सुता आगतागमा धम्मधरा विनयधरा मातिकाधरा, ते सक्कच्चं सुत्तन्तं परं वाचेन्ति। तेसं अच्चयेन न छिन्नमूलको सुत्तन्तो होति सप्पटिसरणो। अयं, भिक्खवे, ततियो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

९. ''पुन च परं, भिक्खवे, थेरा भिक्खू न बाहुलिका होन्ति न साथलिका, [B.159] ओक्कमने निक्खित्तधुरा पविवेके पुब्बङ्गमा; विरियं आरभन्ति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। तेसं पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति। सा पि होति न बाहुलिका न साथलिका, ओक्कमने निक्खित्तधुरा पविवेके पुब्बङ्गमा, विरियं आरभति अप्पत्तस्स पत्तिया अनधिगतस्स अधिगमाय असच्छिकतस्स सच्छिकिरियाय। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति।

१०. ''पुन च परं, भिक्खवे, सङ्घो समग्गो सम्मोदमानो अविवदमानो एकुद्देसो फासुं विहरति। सङ्घे खो पन, भिक्खवे, समग्गे न चेव अञ्ञमञ्ञं अक्कोसा होन्ति,

---

कौन से पाँच ? (१) यहाँ, भिक्षुओ ! कुछ भिक्षु पद एवं व्यञ्जन से सुगृहीत (शुद्ध) एवं स्पष्ट सूत्रान्त का अध्ययन करते हैं। ऐसे शुद्ध एवं स्पष्ट सूत्रान्त के अध्ययन से उसका अर्थ भी सरलता से समझ में आ जाता है। भिक्षुओ! यह प्रथम धर्म है जो सद्धर्म की स्थिरता, स्थायिता आदि का कारण है। (१)

७. ''पुनः, भिक्षुओ! कुछ भिक्षु आज्ञाकारी, स्थविरों की आज्ञा को अनुशासन को ग्रहण करने एवं मानने वाले होते हैं। भिक्षुओ ! यह दूसरा धर्म है जो सद्धर्म की स्थिरता आदि का कारण है। (२)

८. ''पुनः, भिक्षुओ ! जो भिक्षु बहुश्रुत, धर्मधर, आगममर्मज्ञ, विनयधर एवं मातृकाधर हों वे सत्कारपूर्वक दूसरों को सूत्रान्त पढ़ाते हैं। इस प्रकार सूत्रान्त छिन्नमूल नहीं हो पाता। भिक्षुओ ! यह तीसरा धर्म है, जो सद्धर्म की स्थिरता आदि का कारण है। (३)

९. ''पुनः, भिक्षुओ ! ऐसे भी स्थविर भिक्षु हैं जो न परिग्रही हैं, न साधना में शिथिल, अपितु सदैव उत्साहित रहते हैं, तथा अनधिगत की ...पूर्ववत्... साक्षात्कार के लिये प्रयास करते हैं। उनकी अनुयायी जनता भी उनका उसी प्रकार अनुकरण करती है। भिक्षुओ ! यह चौथा धर्म है जो सद्धर्म की स्थिरता आदि का कारण है। (४)

न च अञ्ञमञ्ञं परिभासा होन्ति, न च अञ्ञमञ्ञं परिक्खेपा होन्ति, न च अञ्ञमञ्ञं परिच्चजना होन्ति। तत्थ अप्पसन्ना चेव पसीदन्ति, पसन्नानं च भिय्योभावो होति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो धम्मो सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मा सद्धम्मस्स ठितिया असम्मोसाय अनन्तरधानाय संवत्तन्ती'' ति॥ ●

७. दुक्कथासुत्तं : १. ''पञ्चन्नं, भिक्खवे, पुग्गलानं कथा दुक्कथा [R.181] पुग्गले पुग्गलं उपनिधाय। कतमेसं पञ्चन्नं? अस्सद्धस्स, भिक्खवे, सद्धाकथा दुक्कथा; दुस्सीलस्स सीलकथा दुक्कथा; अप्पस्सुतस्स बाहुसच्चकथा दुक्कथा; मच्छरिस्स [N.431] चागकथा दुक्कथा; दुप्पञ्ञस्स पञ्ञाकथा दुक्कथा।

२. ''कस्मा च, भिक्खवे, अस्सद्धस्स सद्धाकथा दुक्कथा? अस्सद्धो, भिक्खवे, सद्धाकथाय कच्छमानाय अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, सद्धासम्पदं अत्तनि न समनुपस्सति, न च लभति ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्स अस्सद्धस्स सद्धाकथा दुक्कथा।

---

१०. ''पुनः, भिक्षुओ! सङ्घ भी अपने में एकता के कारण प्रमुदित एवं एकत्र होकर समान उद्देश्य की पूर्ति करता हुआ सुखपूर्वक रहता है। ऐसी स्थिति में वहाँ न कोई किसी को कटुवचन कहता है, न कोई किसी की निन्दा करता है, न एक दूसरे से कोई पृथक् रहने की सोचता है। इस सौमनस्य के कारण अश्रद्धालु भी वहाँ श्रद्धा करने लगते हैं तथा श्रद्धालुओं की श्रद्धा अधिक बढ़ जाती है। भिक्षुओ! यह पाँचवाँ धर्म सद्धर्म की स्थिरता, स्थायिता तथा उसकी आयुर्वृद्धि में कारण है। (५)

''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म सद्धर्म की स्थिरता, स्थायिता एवं उसकी आयुर्वृद्धि में कारण होते हैं॥'' ●

७. दुःकथासूत्र : : पाँच दुःकथा, पाँच सुकथा

१. ''भिक्षुओ! पुद्गल से पुद्गल की तुलना कर पुद्गलों में होने वाली ये पाँच कथाएँ दुष्कथा कहलाती हैं। किन पाँच की? (१) अश्रद्धालु की श्रद्धाकथा 'दुष्कथा' कहलाती है; (२) दुःशील की शीलकथा... (३) अल्पश्रुत की बहुश्रुतकथा... (४) अभिमानी की त्यागकथा... एवं (५) दुष्प्रज्ञ की प्रज्ञाकथा दुष्कथा कहलाती है।

२. ''कैसे, भिक्षुओ! अश्रद्धालु की श्रद्धाकथा 'दुष्कथा' कहलाती है? भिक्षुओ! कोई अश्रद्धालु श्रद्धाकथा कहता हुआ क्रुद्ध होता है, कुपित होता है, द्वेष करता है, विरोध (शत्रुता) दिखाता है, और कथा के बीच में क्रोध एवं द्वेष तथा अविश्वास प्रकट करता है। वह क्यों? वह इसलिये, भिक्षुओ! कि वह (अश्रद्धालु) अपने में वैसी श्रद्धा नहीं देखता, (अतः वह उसे प्रकट नहीं कर पाता) न उस (श्रद्धा) के कारण उत्पन्न होने वाला प्रीतिप्रामोदय ही प्रकट कर पाता है। अतः ऐसे अश्रद्धालु की कही गयी कथा 'दुष्कथा' ही कहलाती है। (१)

३. ''कस्मा च, भिक्खवे, दुस्सीलस्स सीलकथा दुक्कथा? दुस्सीलो, भिक्खवे, सीलकथाय कच्छमानाय अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति कोपं च दोसं च [B.160] अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, सीलसम्पदं अत्तनि न समनुपस्सति न च लभति ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा दुस्सीलस्स सीलकथा दुक्कथा।

४. ''कस्मा च, भिक्खवे, अप्पस्सुतस्स बाहुसच्चकथा दुक्कथा? अप्पस्सुतो, भिक्खवे, बाहुसच्चकथाय कच्छमानाय अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति कोपं दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, सुतसम्पदं अत्तनि न समनुपस्सति, न च लभति ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा अप्पस्सुतस्स बाहुसच्चकथा दुक्कथा।

५. ''कस्मा, च, भिक्खवे, मच्छरिस्स चागकथा दुक्कथा? मच्छरी, भिक्खवे, चागकथाय कच्छमानाय अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, चागसम्पदं अत्तनि न [R.182] समनुपस्सति न च लभति ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा मच्छरिस्स चागकथा दुक्कथा।

६. ''कस्मा च, भिक्खवे, दुप्पञ्ञस्स पञ्ञाकथा दुक्कथा? दुप्पञ्ञो, भिक्खवे, पञ्ञाकथाय कच्छमानाय अभिसज्जति कुप्पति ब्यापज्जति पतित्थीयति कोपं च दोसं [N.432] च अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, पञ्ञासम्पदं अत्तनि न समनुपस्सति, न च लभति ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा दुप्पञ्ञस्स पञ्ञाकथा दुक्कथा। इमेसं खो, भिक्खवे, पञ्चन्नं पुग्गलानं कथा दुक्कथा पुग्गले पुग्गलं उपनिधाय॥

७. ''पञ्चन्नं, भिक्खवे, पुग्गलानं कथा सुकथा पुग्गले पुग्गलं उपनिधाय। कतमेसं पञ्चन्नं? सद्धस्स, भिक्खवे, सद्धाकथा सुकथा; सीलवतो सीलकथा सुकथा;

---

३. ''क्यों, भिक्षुओ! दुःशील की शीलकथा भी 'दुष्कथा' कहलाती है? भिक्षुओ! कोई दुःशील शीलकथा कहता हुआ ...पूर्ववत्... 'दुष्कथा' ही कहलाती है। (२)

४. ''कैसे, भिक्षुओ! अल्पश्रुत की बहुश्रुत कथा 'दुष्कथा' कहलाती है? भिक्षुओ! कोई अल्पश्रुत बहुश्रुत कथा कहता हुआ ...पूर्ववत्... 'दुष्कथा' कहलाती है। (३)

५. ''कैसे, भिक्षुओ! अभिमानी की त्यागकथा 'दुष्कथा' कहलाती है? भिक्षुओ! कोई अभिमानी (मत्सरी) त्यागकथा कहता हुआ ...पूर्ववत्... 'दुष्कथा' कहलाती है। (४)

६. ''कैसे, भिक्षुओ! दुष्प्रज्ञ की प्रज्ञाकथा 'दुष्कथा' कहलाती है? भिक्षुओ! कोई दुष्प्रज्ञ (जड़मति) प्रज्ञाकथा कहता हुआ ...पूर्ववत्... 'दुष्कथा' कहलाती है। (५) (क)

७. ''भिक्षुओ! पुद्गल से पुद्गल की तुलना कर, पुद्गलों में होने वाली ये पाँच कथाएँ 'सुकथा'

बहुस्सुतस्स बाहुसच्चकथा सुकथा; चागवतो चागकथा सुकथा; पञ्ञवतो पञ्ञाकथा सुकथा।

८. "कस्मा च, भिक्खवे, सद्धस्स सद्धाकथा सुकथा? सद्धो, भिक्खवे, सद्धाकथाय कच्छमानाय नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न पतित्थीयति न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, सद्धासम्पदं अत्तनि समनुपस्सति लभति च ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा सद्धस्स सद्धाकथा सुकथा।

९. "कस्मा च, भिक्खवे, सीलवतो सीलकथा सुकथा? सीलवा, भिक्खवे, सीलकथाय कच्छमानाय नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न पतित्थीयति न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, [B.161] सीलसम्पदं अत्तनि समनुपस्सति, लभति च ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा सीलवतो सीलकथा सुकथा।

१०. "कस्मा च, भिक्खवे, बहुस्सुतस्स बाहुसच्चकथा सुकथा? बहुस्सुतो, भिक्खवे, बाहुसच्चकथाय कच्छमानाय नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न [R.183] पतित्थीयति न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि खो, भिक्खवे, सुतसम्पदं अत्तनि समनुपस्सति, लभति च ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा बहुस्सुतस्स बाहुसच्चकथा सुकथा।

११. "कस्मा च, भिक्खवे, चागवतो चागकथा सुकथा? चागवा, भिक्खवे, चागकथाय कच्छमानाय नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न पतित्थीयति न कोपं

कहलाती हैं? किन पाँच की? (१) श्रद्धालु की श्रद्धाकथा 'सुकथा' कहलाती है, (२) सुशील की शीलकथा..., (३) बहुश्रुत की बहुश्रुतकथा..., (४) त्यागी की त्यागकथा..., (५) प्रज्ञावान् की प्रज्ञाकथा 'सुकथा' कहलाती है।

८. "कैसे, भिक्षुओ! श्रद्धालु की श्रद्धाकथा 'सुकथा' कहलाती है? भिक्षुओ! कोई शीलवान् शीलकथा कहता हुआ क्रुद्ध एवं कुपित नहीं होता, द्वेष नहीं करता; वैर नहीं करता, तथा कथा के बीच बीच में क्रोध द्वेष एवं संशय नहीं प्रकट करता। वह क्यों? भिक्षुओ! वह इसलिये कि वह (श्रद्धालु) स्वयं में भी वैसी श्रद्धा देखता है, तथा उसके कारण प्रीति एवं प्रमोद अनुभव करता है। अत: ऐसे श्रद्धालु की श्रद्धाकथा 'सुकथा' कहलाती है। (१)

९. "कैसे, भिक्षुओ! शीलवान् की शीलकथा 'सुकथा' कहलाती है? भिक्षुओ! वह शीलवान् शीलकथा कहता हुआ ...पूर्ववत्... 'सुकथा' कहलाती है। (२)

१०. "कैसे, भिक्षुओ! बहुश्रुत की बहुश्रुतकथा 'सुकथा' कहलाती है? भिक्षुओ! बहुश्रुत द्वारा बहुश्रुत कथा कहे जाते समय ...पूर्ववत्... 'सुकथा' कहलाती है। (३)

११. "कैसे, भिक्षुओ! त्यागवान् की त्यागकथा 'सुकथा' कहलाती है? भिक्षुओ! त्यागवान् द्वारा त्यागकथा कहते समय ...पूर्ववत्... 'सुकथा' कहलाती है। (४)

[N.433] च दोसं च अप्पच्चयं पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, चागसम्पदं अत्तनि समनुपस्सति, लभति च ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा चागवतो चागकथा सुकथा।

१२. ''कस्मा च, भिक्खवे, पञ्ञवतो पञ्ञाकथा सुकथा? पञ्ञवा, भिक्खवे, पञ्ञाकथाय कच्छमानाय नाभिसज्जति न कुप्पति न ब्यापज्जति न पतित्थीयति न कोपं च दोसं च अप्पच्चयं च पातुकरोति। तं किस्स हेतु? तं हि सो, भिक्खवे, पञ्ञासम्पदं अत्तनि समनुपस्सति लभति च ततोनिदानं पीतिपामोज्जं। तस्मा पञ्ञवतो पञ्ञाकथा सुकथा। इमेसं खो, भिक्खवे, पञ्चन्नं पुग्गलानं कथा सुकथा पुग्गले पुग्गलं उपनिधाया'' ति॥ ●

८. सारज्जसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु सारज्जं ओक्कन्तो होति। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु अस्सद्धो होति, दुस्सीलो होति, अप्पस्सुतो होति, कुसीतो होति, दुपञ्ञो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु सारज्जं ओक्कन्तो होति।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु विसारदो होति। कतमेहि [B.162] पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सद्धो होति, सीलवा होति, बहुस्सुतो होति, आरद्धविरियो होति, पञ्ञवा होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो [R.184] भिक्खु विसारदो होती'' ति॥ ●

९. उदायीसुत्तं : १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा कोसम्बियं विहरति घोसितारामे। तेन खो, पन समयेन आयस्मा उदायी महतिया गिहिपरिसाय परिवुतो धम्मं

---

१२. ''कैसे, भिक्षुओ! प्रज्ञाकथा 'सुकथा' कहलाती है? भिक्षुओ! प्रज्ञावान् द्वारा प्रज्ञाकथा कहे जाते समय ...पूर्ववत्... 'सुकथा' कहलाती है। (५)

''भिक्षुओ! पुद्गल से पुद्गल की तुलना कर पाँच पुद्गलों की कथा 'सुकथा' कहलाती है॥'' ●

८. सारद्यसूत्र : : पाँच धर्मों से आसक्त एवं अनासक्त

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु (किसी भी वस्तु में) आसक्त होने लगता है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु (रत्नत्रय आदि के प्रति) अश्रद्धालु होता है, दुःशील होता है, अल्पश्रुत होता है, आलसी होता है, एवं दुष्प्रज्ञ (जड़) होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु आसक्त होने लगता है।

२. ''(तथा) भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु विशारद (आसक्तिरहित) होता है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु (रत्नत्रय आदि के प्रति) श्रद्धालु होता है, शीलवान् होता है, बहुश्रुत होता है, (साधना के प्रति) प्रयासरत रहता है, तथा प्रज्ञावान् होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु 'विशारद' कहलाता है॥'' ●

९. उदायिसूत्र : : पाँच धर्मों से दूसरों को उपदेश देने की योग्यता

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु

देसेन्तो निसिन्नो होति। अद्दसा खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं उदायिं महतिया गिहिपरिसाय परिवुतं धम्मं देसेन्तं निसिन्नं। दिस्वा येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—''आयस्मा, भन्ते, उदायी महतिया गिहिपरिसाय परिवुतो धम्मं देसेती'' ति।

२. ''न खो, आनन्द, सुकरं परेसं धम्मं देसेतुं। परेसं, आनन्द, धम्मं [N.434] देसेन्तेन पञ्च धम्मे अज्झत्तं उपट्ठापेत्वा परेसं धम्मो देसेतब्बो। कतमे पञ्च? 'अनुपुब्बिं कथं कथेस्सामी' ति परेसं धम्मो देसेतब्बो; 'परियायदस्सावी कथं कथेस्सामी' ति परेसं धम्मो देसेतब्बो; 'अनुद्दयतं पटिच्च कथं कथेस्सामी' ति परेसं धम्मो देसेतब्बो; 'न आमिसन्तरो कथं कथेस्सामी' ति परेसं धम्मो देसेतब्बो; 'अत्तानं च परं च अनुपहच्च कथं कथेस्सामी' ति परेसं धम्मो देसेतब्बो। न खो, आनन्द, सुकरं परेसं धम्मं देसेतुं। परेसं, आनन्द, धम्मं देसेन्तेन इमे पञ्च धम्मे अज्झत्तं उपट्ठापेत्वा परेसं धम्मो देसेतब्बो'' ति॥●

१०. दुप्पटिविनोदयसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, उप्पन्ना दुप्पटिविनोदया। कतमे पञ्च? उप्पन्नो रागो दुप्पटिविनोदयो, उप्पन्नो दोसो दुप्पटिविनोदयो, उप्पन्नो [R.185] मोहो दुप्पटिविनोदयो, उप्पन्नं पटिभानं दुप्पटिविनोदयं, उप्पन्नं गमिकचित्तं [B.163] दुप्पटिविनोदयं। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च उप्पन्ना दुप्पटिविनोदया'' ति॥

सद्धम्मवग्गो सोळसमो।

तस्सुद्दानं

तयो सम्मत्तनियामा, तयो सद्धम्मसम्मोसा।
दुक्कथा चेव सारज्जं, उदायिदुब्बिनोदया ति॥ ●

विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् उदायी गृहस्थजनों की एक विशाल सभा में धर्मोपदेश करते हुए बैठे थे। आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् उदायी को इस स्थिति में देखा। देखकर वे भगवान् के सम्मुख गये... जाकर यों बोले—''भन्ते! आयुष्मान् उदायी विशाल गृहस्थ उपासक सङ्घ को धर्मोपदेश कर रहे हैं।''

२. ''दूसरों को धर्मोपदेश करना सरल नहीं है। आनन्द! दूसरों को धर्मोपदेश करने वाले को पहले स्वयं में ये पाँच धर्म मन में बैठा लेने चाहिये। कौन पाँच? (१) 'आनुपूर्वी कथा कहूँगा'—यह सोचकर दूसरों को धर्मोपदेश आरम्भ करना चाहिये। (२) 'अर्थ बताता हुआ कथा करूँगा'...; (३) 'अनुकम्पा करता हुआ कथा करूँगा'...; (४) 'भोग्य पदार्थों को उपहार में न लेता हुआ उपदेश करूँगा'... (५) 'स्व तथा पर को हानि न पहुँचाता हुआ उपदेश करूँगा'— यह निश्चय कर दूसरों को उपदेश करना चाहिये। अतः आनन्द! दूसरों को उपदेश करना सरल नहीं है। आनन्द! दूसरों को धर्मोपदेश से पूर्व ये पाँच धर्म अपने मन में बैठा लेने चाहिये''॥ ●

१०. दुष्प्रतिविनोदयसूत्र : : कठिनता से दूर हटाने योग्य धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म कठिनता से दूर हटाने योग्य होते हैं। कौन पाँच? (१) उत्पन्न राग, (२) उत्पन्न द्वेष, (३) उत्पन्न मोह, (४) उत्पन्न प्रतिभान एवं (५) उत्पन्न चञ्चल चित्त

१७. आघातवग्गो

१. पठमआघातपटिविनयसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आघातपटिविनया यत्थ भिक्खुनो उप्पन्नो आघातो सब्बसो पटिविनेतब्बो। कतमे पञ्च? यस्मिं, भिक्खवे, [N.435] पुग्गले आघातो जायेथ, मेत्ता तस्मिं पुग्गले भावेतब्बा; एवं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। यस्मिं, भिक्खवे, पुग्गले आघातो जायेथ, करुणा तस्मिं पुग्गले भावेतब्बा; एवं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। यस्मिं, भिक्खवे, पुग्गले आघातो जायेथ; उपेक्खा तस्मिं पुग्गले भावेतब्बा; एवं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। यस्मिं, भिक्खवे, पुग्गले आघातो जायेथ, असतिअमनसिकारो तस्मिं पुग्गले आपज्जितब्बो; एवं [R.186] तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। यस्मिं, भिक्खवे, पुग्गले आघातो जायेथ, कम्मस्सकता तस्मिं पुग्गले अधिट्ठातब्बा—'कम्मस्सको अयमायस्मा कम्मदायादो कम्मयोनि कम्मबन्धु कम्मप्पटिसरणो, यं कम्मं करिस्सति कल्याणं वा पापकं वा तस्स दायादो भविस्सती' ति; एवं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आघातपटिविनया, यत्थ भिक्खुनो उप्पन्नो आघातो सब्बसो पटिविनेतब्बो'' ति॥ ●

कठिनता से दूर हटाने योग्य होता है। भिक्षुओं! ये पाँच उत्पन्न धर्म कठिनता से दूर हटाने योग्य होते हैं''॥ ●

सद्धर्मवर्ग षोडश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम सम्यक्त्वनियामसूत्र, २. द्वितीय सम्यक्त्वनियामसूत्र, ३. तृतीय सम्यक्त्वनियामसूत्र, ४. प्रथम सद्धर्मसम्मोषसूत्र, ५. द्वितीय सद्धर्मसम्मोषसूत्र, ६. तृतीय सद्धर्मसम्मोषसूत्र, ७. दुःकथासूत्र, ८. सारद्यसूत्र, ९. उदायिसूत्र एवं १०. दुष्प्रविनोद्यसूत्र॥ ●

१७. आघातवर्ग

१. प्रथम आघातप्रतिविनयसूत्र : : पाँच आघातशामक धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच आघातप्रतिविनय होते हैं, जहाँ, भिक्षुओ! उत्पन्न आघात (द्वेष) का प्रतिविनय (शमन) सर्वप्रथम आवश्यक है। कौन से पाँच? (१) भिक्षुओ! जिस पुद्गल में द्वेष हो उसके प्रति मैत्री भावना करनी चाहिये। इस प्रकार उस पुद्गलविषयक द्वेष का शमन करना चाहिये। (२) या जिस पुद्गल में द्वेष उत्पन्न हुआ हो उसके प्रति करुणा भावना करनी चाहिये। ...। (३) या जिस पुद्गल में द्वेष उत्पन्न हुआ हो, उसके प्रति उपेक्षा भावना करनी चाहिये। ...। (४) या जिस पुद्गल में द्वेष उत्पन्न हुआ हो, उसके प्रति अपना मन हटा लेना चाहिये। ...। (५) या जिस पुद्गल में द्वेष उत्पन्न हुआ हो, उसके प्रति उसके कर्मों को उत्तरदायी मानना चाहिये—'वह जो शुभ अशुभ कर्म करेगा उसका फल उसी को मिलेगा'। इस प्रकार, भिक्षुओ! उसके प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये।

२. दुतियआघातपटिविनयसुत्तं : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो [B.164] भिक्खू आमन्तेसि—''आवुसो भिक्खवे'' ति। ''आवुसो'' ति खो ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

२. ''पञ्चिमे, आवुसो, आघातपटिविनया यत्थ भिक्खुनो उप्पन्नो आघातो सब्बसो पटिविनेतब्बो। कतमे पञ्च? इधावुसो, एकच्चो पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो होति परिसुद्धवचीसमाचारो; एवरूपे पि, आवुसो, पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। इध पनावुसो, एकच्चो पुग्गलो अपरिसुद्धवचीसमाचारो होति परिसुद्धकायसमाचारो; एवरूपे पि, आवुसो, पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। इध, पनावुसो, एकच्चो पुग्गलो अपरि-सुद्धकायसमाचारो होति अपरिसुद्धवचीसमाचारो, लभति च कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं; एवरूपे पि, आवुसो, पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। इध पनावुसो, एकच्चो पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो होति अपरिसुद्धवचीसमाचारो, न च लभति कालेनकालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं; एवरूपे पि, आवुसो, पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। [R.187] इध पनावुसो, एकच्चो पुग्गलो परिसुद्धकायसमाचारो परिसुद्धवचीसमाचारो, [N.436] लभति च कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं; एवरूपे पि, आवुसो, पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो।

३. ''तत्रावुसो, य्वायं पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो परिसुद्धवचीसमाचारो,

---

''भिक्षुओ! ये पाँच आघातप्रतिविनय कहलाते हैं, जहाँ भिक्षु का उत्पन्न द्वेष का सर्वथा शमन करना चाहिये॥''

२. द्वितीय आघातप्रतिविनयसूत्र : : पाँच आघातप्रतिविनय धर्म

१. वहाँ, आयुष्मान् सारिपुत्र ने ''भिक्षुओ'' सम्बोधन कर भिक्षुओं को आमन्त्रित किया। ''आयुष्मन्'' कहकर भिक्षुओं ने उत्तर दिया। आयुष्मान् सारिपुत्र ने यह कहा—

२. आयुष्मानो! ये पाँच आघातप्रतिविनय होते हैं, जहाँ भिक्षु को अपना द्वेष सर्वथा शान्त करना चाहिये। कौन पाँच? (१) यहाँ, आयुष्मानो! कोई पुद्गल काया से शुद्ध व्यवहार वाला न होकर केवल वाणी से शुद्ध व्यवहार वाला होता है, ऐसे पुद्गल के प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये। (२) यहाँ, आयुष्मानो! कोई दूसरा पुद्गल वाणी से शुद्ध व्यवहार वाला न होकर केवल काया से शुद्ध व्यवहार वाला होता है, ऐसे पुद्गल के प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये। (३) यहाँ, आयुष्मानो! तीसरा पुद्गल काया एवं वाणी—दोनों से ही शुद्ध व्यवहार वाला न होकर समय समय पर चित्त से श्रद्धा रखता है, ऐसे पुद्गल के प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये। (४) यहाँ, आयुष्मानो! कोई चतुर्थ पुद्गल—शरीर, वाणी एवं मन—तीनों से ही शुद्ध व्यवहार वाला न हो... उसके प्रति भी द्वेष का शमन करना चाहिये। (५) यहाँ, आयुष्मानो! पाँचवाँ पुद्गल, जो शरीर वाणी एवं मन—तीनों से परिशुद्ध व्यवहार वाला हो... उसके प्रति उत्पन्न द्वेष का भी शमन करना चाहिये।

३. ''आयुष्मानो! यहाँ जो प्रथम पुद्गल हैजो काया से शुद्ध न होते हुए भी वाणी से शुद्ध

कथं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो? सेय्यथापि, आवुसो, भिक्खु पंसकूलिको रथियाय नन्तकं दिस्वा वामेन पादेन निग्गण्हित्वा दक्खिणेन पादेन पत्थरित्वा, यो तत्थ [B.165] सारो तं परिपातेत्वा आदाय पक्कमेय्य; एवमेव ख्वावुसो, य्वायं पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो परिसुद्धवचीसमाचारो, यास्स अपरिसुद्धकायसमाचारता न सास्स तस्मिं समये मनसि कातब्बा, या च ख्वास्स परिसुद्धवचीसमाचारता सास्स तस्मिं समये मनसि कातब्बा। एवं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो।

४. ''तत्रावुसो, य्वायं पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो परिसुद्धकायसमाचारो, कथं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो? सेय्यथापि, आवुसो, पोक्खरणी सेवालपणकपरियोनद्धा। अथ पुरिसो आगच्छेय्य घम्माभितत्तो घम्मपरेतो किलन्तो तसितो पिपासितो। सो तं पोक्खरणिं ओगाहेत्वा उभोहि हत्थेहि इति चिति च सेवालपणकं अपवियूहित्वा [R.188] अञ्जलिना पिवित्वा पक्कमेय्य। एवमेव खो, आवुसो, य्वायं पुग्गलो अपरिसुद्धवचीसमाचारो परिसुद्धकायसमाचारो, यास्स अपरिसुद्धवचीसमाचारता न सास्स तस्मिं समये मनसि कातब्बा, या च ख्वास्स परिसुद्धकायसमाचारता सास्स तस्मिं समये मनसि कातब्बा। एवं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो।

५. ''तत्रावुसो, य्वायं पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो अपरिसुद्धवचीसमाचारो लभति च कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं, कथं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो? सेय्यथापि, आवुसो, परित्तं गोपदे उदकं। अथ पुरिसो आगच्छेय्य

व्यवहार वाला था, उसके प्रति द्वेष का शमन कैसे करना चाहिये? जैसे, भिक्षुओ! कोई पांशुकूलिक भिक्षु गली में जीर्ण वस्त्र पड़ा हुआ देखकर, उसको बाएँ पैर से दबाकर, दाहिने पैर से फैलाकर उसे फाड़कर उसमें से उपयोगी वस्त्र लेकर आगे बढ़ जाता है; उसी प्रकार, आयुष्मानो! उक्त पुद्गल के काया के अशुद्ध व्यवहार की उपेक्षा (अनदेखी) करता हुआ वाणी के शुद्ध व्यवहार पर ही ध्यान दे। इस प्रकार, आयुष्मानो! उसके प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये। (१)

४. ''आयुष्मानो! यहाँ जो द्वितीय पुद्गल है, जो वाणी से शुद्ध न होते हुए भी काया से शुद्ध व्यवहार है, उसके प्रति द्वेष का शमन कैसे करना चाहिये? जैसे, आयुष्मानो! कोई शुद्ध जलवाली पुष्करिणी सेवाल से ढकी हुई हो, कोई पुरुष गर्मी से तपा हुआ, प्यासा वहाँ आवे, वह उस पुष्करिणी में उतर कर, दोनों हाथों से सेवाल पूर्णतः हटाकर अञ्जलि भर भर कर जल पीता हुआ अपनी प्यास मिटाकर आगे बढ़ जाय; उसी प्रकार, आयुष्मानो! जो पुद्गल वाणी से शुद्ध न होते हुए भी काया से शुद्धव्यवहार हो, उसकी वाणी की अशुद्धि पर ध्यान न देते हुए उसकी काया की शुद्धि ही देखते हुए उसके प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये। (२)

५. ''और, आयुष्मानो! जो तृतीय पुद्गल काया एवं वाणी—दोनों से अपरिशुद्ध होते हुए भी मन से शुद्ध है, उसके प्रति द्वेष का शमन कैसे करना चाहिये? जैसे, आयुष्मानो! किसी गोष्पद (गौ के खुरों से बने गर्त) में जल भरा हो। वहाँ कोई गर्मी से तपा हुआ, प्यास से व्याकुल पुरुष आवे

घम्माभितत्तो घम्मपरेतो किलन्तो तसितो पिपासितो। तस्स एवमस्स—'इदं खो परित्तं गोपदे उदकं। सचाहं अञ्जलिना वा पिविस्सामि भाजनेन वा खोभेस्सामि पि तं लोळेस्सामि पि तं अपेय्यं पि तं करिस्सामि। यन्नूनाहं चतुक्कुण्डिको निपतित्वा गोपीतकं पिवित्वा पक्कमेय्यं' ति। सो चतुक्कुण्डिको निपतित्वा गोपीतकं पिवित्वा [N.437] पक्कमेय्य। एवमेव खो, आवुसो, य्वायं पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो अपरिसुद्ध-वचीसमाचारो लभति च कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं, यास्स अपरिसुद्ध-कायसमाचारता न सास्स तस्मिं समये मनसि कातब्बा; या पिस्स अपरिसुद्ध-वचीसमाचारता न सा पिस्स तस्मिं समये मनसि कातब्बा। यं च खो सो लभति कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं, तमेवस्स तस्मिं समये मनसि कातब्बं। एवं [R.189] तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो।

६. ''तत्रावुसो, य्वायं पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो अपरिसुद्ध- [B.166] वचीसमाचारो न च लभति कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं, कथं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो? सेय्यथापि, आवुसो, पुरिसो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो अद्धानमग्गप्पटिपन्नो। तस्स पुरतो पिस्स दूरे गामो पच्छतो पिस्स दूरे गामो। सो न लभेय्य सप्पायानि भोजनानि, न लभेय्य सप्पायानि भेसज्जानि, न लभेय्य पतिरूपं उपट्ठाकं, न लभेय्य गामन्तनायकं। तमेनं अञ्ञतरो पुरिसो पस्सेय्य अद्धानमग्गप्पटिपन्नो। सो तस्मिं पुरिसे कारुञ्ञंयेव उपट्ठापेय्य, अनुद्दयंयेव उपट्ठापेय्य, अनुकम्पंयेव उपट्ठापेय्य—'अहो वतायं पुरिसो लभेय्य सप्पायानि भोजनानि, लभेय्य सप्पायानि भेसज्जानि, लभेय्य पतिरूपं उपट्ठाकं, लभेय्य गामन्तनायकं! तं किस्स हेतु? मायं पुरिसो इधेव अनयब्यसनं आपज्जी'

और उस जल को देखकर यों विचारे—'इस गोष्पद में थोड़ा सा जल है, इसको यदि मैं अञ्जलि से पीऊँ या पात्र में भरूँ, या अन्यथा लेने का प्रयास करूँ तो सम्भव है यह जल मलिन हो जाय; अत: मैं दोनों हाथों तथा पैरों से झुककर, गौ के समान अपने शरीर का आकार बनाकर यह जल पीकर आगे बढ़ चलूँ'। और वह ऐसा करता हुआ आगे बढ़ जाता है; इसी प्रकार, भिक्षुओ! उस पुद्गल की कायिक एवं वाचिक अशुद्धि पर ध्यान न देकर मानसिक व्यवहार की शुद्धता देखते हुए उसके प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये। (३)

६. ''तथा, आयुष्मानो! जो चतुर्थ पुद्गल—काय, वाक्, मन—तीनों से ही अपरिशुद्ध है उसके प्रति द्वेष का शमन कैसे करना चाहिये? आयुष्मानो! कोई रोगी पुरुष शरीर से अतिशय खिन्न होकर ऐसे मार्ग में पड़ा हो, जहाँ से पिछला एवं आगेवाला—दोनों ही ग्राम दूर हों, अत: उसको न रोगानुकूल पथ्य मिल सकता है, न औषध, न कोई अनुकूल परिचारक, न कोई ग्रामप्रधान पुरुष। उस स्थिति में उसको कोई पुरुष देखे, वह उसके प्रति अपने मन में करुणा लाकर यह सोचे—'अरे यह पुरुष किसी प्रकार रोगशमनहेतु औषध, पथ्य, उपचारक तथा उत्तरदायी रक्षक पुरुष पा जाय'। वह किसलिये? वह इसलिये कि कहीं यह पुरुष इस एकान्त में मृत्युसङ्कट को प्राप्त न हो जाय।

ति!! एवमेव खो, आवुसो, य्वायं पुग्गलो अपरिसुद्धकायसमाचारो अपरिसुद्धवीच-समाचारो न च लभति कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं, एवरूपे पि, आवुसो, पुग्गले कारुञ्ञंयेव उपट्ठापेतब्बं अनुद्दयायेव उपट्ठापेतब्बा अनुकम्पायेव उपट्ठापेतब्बा— 'अहो वत अयमायस्मा कायदुच्चरितं पहाय कायसुचरितं भावेय्य, वचीदुच्चरितं पहाय वचीसुचरितं भावेय्य, मनोदुच्चरितं पहाय मनोसुचरितं भावेय्य! तं किस्स हेतु? मायं आयस्मा कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जी' ति! एवं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो।

[N.438,R.190] ७. ''तत्रावुसो, य्वायं पुग्गलो परिसुद्धकायसमाचारो परिसुद्धवची-समाचारो लभति कालने कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं, कथं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो? सेय्यथापि, आवुसो, पोक्खरणी अच्छोदका सातोदका सीतोदका सेतका [B.167] सुपतित्था रमणीया नानारुक्खेहि सञ्छन्ना। अथ पुरिसो आगच्छेय्य घम्माभितत्तो घम्मपरेतो किलन्तो तसितो पिपासितो। सो तं पोक्खरणिं ओगाहेत्वा न्हात्वा च पिवित्वा च पच्चुत्तरित्वा तत्थेव रुक्खच्छायाय निसीदेय्य वा निपज्जेय्य वा। एवमेव खो, आवुसो, य्वायं पुग्गलो परिसुद्धकायसमाचारो परिसुद्धवचीसमाचारो लभति च कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं, या पिस्स परिसुद्धकायसमाचारता सा पिस्स तस्मिं समये मनसि कातब्बा; या पिस्स परिसुद्धवचीसमाचारता सा पिस्स तस्मिं समये मनसि कातब्बा; यं पि लभति कालेन कालं चेतसो विवरं चेतसो पसादं, तं पिस्स तस्मिं समये मनसि कातब्बं। एवं तस्मिं पुग्गले आघातो पटिविनेतब्बो। समन्तपासादिकं, आवुसो, पुग्गलं आगम्म चित्तं पसीदति।

इसी प्रकार, आयुष्मानो! इस तीनों प्रकार से अपरिशुद्ध पुद्गल के प्रति भी काय वाक् मनोदुश्चरित छोड़कर काय, वाक् एवं मन के सुचरित की भावना करनी चाहिये। वह क्यों? वह इसलिये कि कहीं यह पुद्गल, इस देहपात के बाद, दुर्गतिमय नरक में न जा गिरे। इस प्रकार उस पुद्गल के प्रति द्वेष का शमन करना चाहिये। (४)

७. ''वहाँ, आयुष्मानो! कोई पुद्गल काय, वाक् एवं मन—तीनों से ही शुद्ध व्यवहार वाला हो, उस पुद्गल के प्रति द्वेष का शमन कैसे करना चाहिये? जैसे, आयुष्मानो! स्वच्छ, शीत एवं श्वेत जल वाली, अच्छे घाटों वाली, छाया वाले विविध वृक्षों से घिरी हुई कोई मनोरम पुष्करिणी हो। वहाँ कोई ताप (घर्म) से अभितप्त, पिपासा से क्लान्त (दुःखी), पुरुष आवे। वह उस पुष्करिणी में उतर कर, स्नान कर, यथेच्छ जल पीकर, पुनः वहाँ से निकल कर उन सघन वृक्षों की छाया में लेट जाय, या बैठ जाय। इसी प्रकार, आयुष्मानो! जो पुद्गल काय आदि तीनों से ही परिशुद्ध है, उसकी उस परिशुद्धि पर ध्यान देना चाहिये। इस प्रकार उस पुद्गल के प्रति उत्पन्न द्वेष का शमन करना चाहिये। इस प्रकार सर्वतः परिशुद्ध अतएव सर्वथा श्रद्धेय (समन्तपासादिक) मान कर इस पुद्गल के प्रति उत्पन्न द्वेष का शमन करना चाहिये। (५)

"इमे खो, आवुसो, पञ्च आघातपटिविनया, यत्थ भिक्खुनो उप्पन्नो आघातो सब्बसो पटिविनेतब्बो" ति॥ ●

३. साकच्छसुत्तं : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—"आवुसो भिक्खवे" ति। "आवुसो" ति खो ते भिक्खू आयस्मतो सारिपुत्तस्स पच्चस्सोसुं। आयस्मा सारिपुत्तो एतदवोच—

२. "पञ्चहावुसो, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलं साकच्छो सब्रह्म- [R.191] चारीनं। कतमेहि पञ्चहि? इधावुसो, भिक्खु अत्तना च सीलसम्पन्नो होति, सील-सम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च समाधिसम्पन्नो होति, समाधि-सम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च पञ्ञासम्पन्नो होति, पञ्ञा-सम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च विमुत्तिसम्पन्नो होति, विमुत्ति-सम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च विमुत्तिञाण दस्सन- [N.439] सम्पन्नो होति, विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति। इमेहि खो, आवुसो, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलं साकच्छो सब्रह्मचारीनं" ति॥ ●

४. साजीवसुत्तं : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि [B.168] ...पे०... एतदवोच—"पञ्चहि, आवुसो, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलंसाजीवो सब्रह्मचारीनं। कतमेहि पञ्चहि? इधावुसो, भिक्खु अत्तना च सीलसम्पन्नो होति,

---

"आयुष्मानो! ये पाँच आघातप्रतिविनय हैं। जहाँ सावधान भिक्षु को अपना उत्पन्न द्वेष (उपर्युक्त विधि से) सर्वथा शान्त कर देना चाहिये॥" ●

३. साकच्छ (धर्मचर्चा) सूत्र : : पाँच प्रकार से धर्मचर्चा

१. वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को "आयुष्मन् भिक्षुओ!" कहकर आमन्त्रित किया। भिक्षु भी "हाँ, आयुष्मन्" कहकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए। आयुष्मान् सारिपुत्र ने उनसे यह कहा—

२. "आयुष्मानो! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही साथी भिक्षुओं के साथ धर्मचर्चा करने में समर्थ होता है। कौन से पाँच? (१) यहाँ, आयुष्मानो! कोई भिक्षु स्वयं शीलसम्पन्न हो सकता है, तथा शीलसम्पत्ति के विषय में पूछे गये दूसरों के प्रश्नों का उत्तर देता है; (२) स्वयं समाधिसम्पन्न होता है तथा समाधिसम्पत्ति के विषय में पूछे गये दूसरों के प्रश्नों का उत्तर देता है; (३) स्वयं प्रज्ञासम्पन्न होता है, तथा प्रज्ञासम्पत्ति के विषय में पूछे गये दूसरे भिक्षुओं के प्रश्नों का उत्तर देता है। (४) स्वयं विमुक्तिसम्पन्न होता है, तथा विमुक्ति से सम्बद्ध प्रश्नों का उत्तर भी देता है; (५) स्वयं विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न होता है तथा विमुक्तिज्ञानदर्शन के विषय में उठे प्रश्नों का उत्तर देता है। आयुष्मानो! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही अपने साथी भिक्षुओं के साथ धर्मचर्चा करने में समर्थ होता है॥" ●

४. साजीवसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त ही शिक्षण में समर्थ

१. "वहाँ, आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—...पूर्ववत्... यह बोले—

सीलसम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च समाधिसम्पन्नो होति, समाधिसम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च पञ्ञासम्पन्नो होति, पञ्ञासम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च विमुत्तिसम्पन्नो होति, विमुत्तिसम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति; अत्तना च विमुत्तिञाणदस्सनसम्पन्नो होति, विमुत्तिञाणदस्सनसम्पदाकथाय च आगतं पञ्हं ब्याकत्ता होति। इमेहि खो, आवुसो, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु अलंसाजीवो सब्रह्मचारीनं'' ति॥ ●

५. पञ्हपुच्छासुत्तं : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि ...पे०... एतदवोच—''यो हि कोचि, आवुसो, परं पञ्हं पुच्छति, सब्बो सो पञ्चहि ठानेहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन। कतमेहि पञ्चहि? मन्दत्ता मोमूहत्ता परं पञ्हं पुच्छति, पापिच्छो इच्छा- [R.192] पकतो परं पञ्हं पुच्छति, परिभवं परं पञ्हं पुच्छति, अञ्ञातुकामो परं पञ्हं पुच्छति, अथ वा पनेवंचित्तो परं पञ्हं पुच्छति—'सचे मे पञ्हं पुट्ठो सम्मदेव ब्याकरिस्सति इच्चेतं कुसलं, नो चे मे पञ्हं पुट्ठो सम्मदेव ब्याकरिस्सति अहमस्स सम्मदेव ब्याकरिस्सामी' ति। यो हि कोचि, आवुसो, परं पञ्हं पुच्छति, सब्बो सो इमेहि पञ्चहि [N.440] ठानेहि, एतेसं वा अञ्ञतरेन। अहं खो पनावुसो, एवंचित्तो परं पञ्हं पुच्छामि— 'सचे मे पञ्हं पुट्ठो सम्मदेव ब्याकरिस्सति इच्चेतं कुसलं, नो चे मे पञ्हं पुट्ठो सम्मदेव ब्याकरिस्सति, अहमस्स सम्मदेव ब्याकरिस्सामी''' ति॥ ●

''आयुष्मानो! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही भिक्षुओं को विनय का शिक्षण देने में समर्थ हो सकता है। किन पाँच धर्मों से? आयुष्मानो! यहाँ जो भिक्षु (१) स्वयं शीलसम्पन्न होता है, ...पूर्ववत्...; (२) जो स्वयं समाधिसम्पन्न होता है...; (३) जो स्वयं प्रज्ञासम्पन्न होता है...; (४) स्वयं विमुक्तिसम्पन्न होता है...; (५) विमुक्तिज्ञानदर्शनसम्पन्न होता है, तथा विमुक्तिज्ञानदर्शन से सम्बद्ध प्रश्नों का उत्तर देता है। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ही अपने साथी भिक्षुओं को विनय का शिक्षण देने में समर्थ हो सकता है॥'' ●

५. प्रश्नपृच्छासूत्र : : पाँच स्थानों से प्रश्न का पूछा जाना

१. वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया—...पूर्ववत्...। यह बोले— ''आयुष्मानो! जो कोई भी प्रश्न पूछता है, वह इन पाँच बातों के कारण या इनमें से किसी एक के कारण ही पूछता है। किन पाँच के कारण? (१) अपनी मन्दता (न जानना) एवं मोह के कारण दूसरे से प्रश्न पूछता है। (२) कोई पापी अपनी इच्छापूर्ति के लिये दूसरे से प्रश्न पूछता है। (३) दूसरे की पराजय के लिये प्रश्न पूछता है। (४) जानने के लिये दूसरे से प्रश्न पूछता है; (५) या फिर वह इस दृष्टि से प्रश्न पूछता है कि यदि यह मेरे प्रश्न का तत्काल उत्तर देगा तो ठीक है, अन्यथा मैं तत्काल उत्तर देकर अपने वैदुष्य की प्रभुता (धौंस) सिद्ध करूँगा।' आयुष्मानो! जो भी कोई दूसरे से प्रश्न करता है, वह इन पाँच बातों के या इनमें से किसी एक के कारण ही प्रश्न करता है। मैं भी, आयुष्मानो! किसी से, इसी बात को मन में रखकर, प्रश्न करता हूँ कि यदि यह तत्काल उत्तर दे देगा तो ठीक है, अन्यथा मैं ही इसको तत्काल उत्तर दे दूँगा॥'' ●

६. निरोधसुत्तं : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि ...पे०... एतदवोच—''इधावुसो, भिक्खु सीलसम्पन्नो समाधिसम्पन्नो पञ्ञासम्पन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं। नो चे दिट्ठेव धम्मे अञ्ञं [B.169] आराधेय्य, अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं'' ति।

२. एवं वुत्ते आयस्मा उदायी आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—''अट्ठानं खो एतं, आवुसो सारिपुत्त, अनवकासो यं सो भिक्खु अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—नत्थेतं ठानं'' ति।

दुतियं पि खो ...पे०... ततियं पि खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू [R.193] आमन्तेसि—''इधावुसो, भिक्खु सीलसम्पन्नो समाधिसम्पन्नो पञ्ञासम्पन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं। नो चे दिट्ठेव धम्मे अञ्ञं आराधेय्य, अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं'' ति।

ततियं पि खो आयस्मा उदायी आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—''अट्ठानं खो एतं, आवुसो सारिपुत्त, अनवकासो यं सो भिक्खु अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—नत्थेतं ठानं'' ति।

---

६. निरोधसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु पूजनीय

१. वहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को आमन्त्रित किया ...पूर्ववत्... यह कहा—''आयुष्मानो! यहाँ कोई भिक्षु शीलसम्पन्न, समाधिसम्पन्न, प्रज्ञासम्पन्न होकर संज्ञावेदितनिरोध को प्राप्त करे और उससे निवृत्त भी हो—यह सम्भव है। यदि वह इस जन्म में किसी दूसरे की आराधना न करे तो वह ग्रास ग्रास खानेवाले देवताओं का साथ छोड़कर अन्य किसी मनोमयकाय देवता की काया में उत्पन्न होता हुआ भी संज्ञावेदितनिरोध को प्राप्त करे और उससे मुक्त भी हो—यह सम्भव है''।

२. आयुष्मान् सारिपुत्र द्वारा ऐसा कहे जाने पर आयुष्मान् उदायी उनसे यों बोले—''आयुष्मन् सारिपुत्र! यह सम्भव नहीं है और न उचित ही है कि वह भिक्षु ग्रास ग्रास खाने वाले देवताओं का साथ छोड़कर अन्य किसी मनोमय काया में उत्पन्न होता हुआ भी संज्ञावेदितनिरोध को प्राप्त करे और उससे मुक्त भी हो। यह उचित नहीं है।''

दूसरी बार भी ...पूर्ववत्... तीसरी बार भी आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को यही कहा—''आयुष्मानो! ...पूर्ववत्... उससे मुक्त भी हो—यह सम्भव है''।

तीसरी बार भी आयुष्मान् सारिपुत्र को आयुष्मान् उदायी ने यही कहा—''आयुष्मान् सारिपुत्र! यह सम्भव नहीं है ...पूर्ववत्... उससे मुक्त भी हो—यह उचित नहीं है।''

३. अथ खो आयस्मतो सारिपुत्तस्स एतदहोसि—''यावततियकं पि खो मे [N.441] आयस्मा उदायी पटिक्कोसति, न च मे कोचि भिक्खु अनुमोदति। यन्नूनाहं येन भगवा तेनुपसङ्कमेय्यं'' ति। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—''इधावुसो, भिक्खु सीलसम्पन्नो समाधिसम्पन्नो पञ्ञा-सम्पन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं। नो चे दिट्ठेव [B.170] धम्मे अञ्ञं आराधेय्य, अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं'' ति।

४. एवं वुत्ते आयस्मा उदायी आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—''अट्ठानं खो एतं आवुसो सारिपुत्त, अनवकासो यं सो भिक्खु अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—नत्थेतं ठानं'' ति।

दुतियं पि खो ...पे०... ततियं पि खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—''इधावुसो, भिक्खु सीलसम्पन्नो समाधिसम्पन्नो पञ्ञासम्पन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं [R.194] समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं। नो चे दिट्ठेव धम्मे अञ्ञं आराधेय्य, अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं'' ति।

ततियं पि खो, आयस्मा उदायी आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—''अट्ठानं खो एतं, आवुसो सारिपुत्त, अनवकासो यं सो भिक्खु अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—नत्थेतं ठानं'' ति।

५. अथ खो आयस्मतो सारिपुत्तस्स एतदहोसि—''भगवतो पि खो मे सम्मुखा

---

३. तब आयुष्मान् सारिपुत्र को यह विचार हुआ—''तीसरी बार भी ये आयुष्मान् उदायी मेरे कथन का विरोध कर रहे हैं, तथा कोई भी भिक्षु मेरा समर्थन नहीं कर रहा है, तो क्यों न मैं भगवान् के सम्मुख चलूँ!'' तब आयुष्मान् सारिपुत्र भगवान् के सम्मुख गये, तथा उनको प्रणाम कर एक ओर बैठे हुए उनने वहाँ बैठे भिक्षुओं से यह कहा—'' 'यहाँ, आयुष्मानो! ...पूर्ववत्... उससे मुक्त भी हो—यह सम्भव है।'

४. आयुष्मान् सारिपुत्र के इस कथन पर आयुष्मान् उदायी ने कहा—'आयुष्मन् सारिपुत्र! यह सम्भव नहीं है ...पूर्ववत्... उससे मुक्त भी हो—यह उचित नहीं है।'

दूसरी बार भी ...पूर्ववत्...। तीसरी बार भी ...पूर्ववत्...।

५. तब आयुष्मान् सारिपुत्र को यह विचार हुआ—''भगवान् के सम्मुख भी आयुष्मान्

आयस्मा उदायी यावततियकं पटिक्कोसति, न च मे कोचि भिक्खु अनुमोदति। यन्नूनाहं तुण्ही अस्सं'' ति। अथ खो आयस्मा सारिपुत्तो तुण्ही अहोसि।

६. अथ खो भगवा आयस्मन्तं उदायिं आमन्तेसि—''कं पन त्वं, उदायि, मनोमयं कायं पच्चेसी'' ति?

''ये ते, भन्ते, देवा अरूपिनो सञ्ञामया'' ति। [N.442]

''किं नु खो तुय्हं, उदायि, बालस्स अब्यत्तस्स भणितेन! त्वं पि नाम भणितब्बं मञ्ञसी'' ति! अथ खो भगवा आयस्मन्तं आनन्दं आमन्तेसि—''अत्थि नाम, आनन्द, थेरं भिक्खुं विहेसियमानं अज्झुपेक्खिस्सथ। न हि नाम, आनन्द, कारुञ्ञं पि [B.171] भविस्सति थेरम्हि भिक्खुम्हि विहेसियमानम्ही'' ति!

७. अथ खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''इध, भिक्खवे, भिक्खु सीलसम्पन्नो समाधिसम्पन्नो पञ्ञासम्पन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं। नो चे दिट्ठेव धम्मे अञ्ञं आराधेय्य, अतिक्कम्मेव कबळीकाराहारभक्खानं देवानं सहब्यतं अञ्ञतरं मनोमयं कायं उपपन्नो सञ्ञावेदयितनिरोधं समापज्जेय्या पि वुट्ठहेय्या पि—अत्थेतं ठानं'' ति। इदमवोच भगवा। इदं वत्वान सुगतो उट्ठायासना विहारं पाविसि।

८. अथ खो आयस्मा आनन्दो अचिरपक्कन्तस्स भगवतो येनायस्मा [R.195] उपवानो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मन्तं उपवानं एतदवोच—''इधावुसो उपवान, अञ्ञे थेरे भिक्खू विहेसेन्ति। मयं तेन न मुच्चाम। अनच्छरियं खो, पनेतं आवुसो उपवान,

---

उदायी मेरी बात का प्रत्याख्यान ही कर रहे हैं, तथा कोई भिक्षु यहाँ भी मेरा अनुमोदन नहीं कर रहा है, अत: अच्छा हो कि मैं इस विषय में मौन ही ग्रहण कर लूँ''। यह सोचकर आयुष्मान् सारिपुत्र चुप हो गये।

६. तब भगवान् ने आयुष्मान् उदायी से पूछा—''उदायि! 'मनोमय काय' से तुम क्या समझ रहे हो?

''भन्ते! जो अरूपी संज्ञामय देव हैं।''

''उदायि! तुझ मूर्ख के कथन का क्या महत्त्व है! तूँ भी अपने को 'सिद्धान्तवक्ता' मानता है!'' तब भगवान् ने आयुष्मान् आनन्द की ओर संकेत करते हुए पूछा—'आनन्द! स्थविर भिक्षु को अपमानित किये जाते हुए भी तुम उपेक्षा कर रहे हो! तुमको सङ्कोच नहीं हुआ कि एक स्थविर भिक्षु अपमानित हो रहा है और तुम चुपचाप बैठे हो!'

७. तब भगवान् ने भिक्षुओं को बताया—''यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शीलसम्पन्न ...पूर्ववत्... यह सम्भव है।'' भगवान् ने यह कहा। यह कहकर सुगत आसन से उठकर गन्धकुटी में प्रविष्ट हो गये।

८. भगवान् के गन्धकुटी में प्रवेश के कुछ समय बाद ही, आयुष्मान् आनन्द आयुष्मान् उपवाण के पास गये। जाकर उनसे यों बोले—''आयुष्मान् उपवाण! 'दूसरों ने स्थविर भिक्षु का

यं भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो एतदेव आरब्भ उदाहरेय्य यथा आयस्मन्तं-येवेत्थ उपवानं पटिभासेय्य। इदानेव अम्हाकं सारज्जं ओक्कन्तं'' ति।

९. अथ खो भगवा सायन्हसमयं पटिसल्लाना वुट्ठितो येन उपट्ठानसाला तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा पञ्ञत्ते आसने निसीदि। निसज्ज खो भगवा आयस्मन्तं उपवानं एतदवोच—

''कतीहि नु खो, उपवान, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति?

''पञ्चहि, भन्ते, धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? इध, भन्ते, थेरो भिक्खु सीलवा होति [N.443] ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु; बहुस्सुतो होति ...पे०... दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; कल्याणवाचो होति कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया; चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी; आसवानं खया ...पे०... सच्छिकत्वा [B.172] उपसम्पज्ज विहरति। इमेहि खो, भन्ते, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति।

[R.196] १०. ''साधु साधु, उपवान! इमेहि खो, उपवान, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो थेरो भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो च। इमे चे, उपवान, पञ्च धम्मा थेरस्स भिक्खुनो न संविज्जेय्युं, तं सब्रह्मचारी न सक्करेय्युं न गरुं करेय्युं

अपमान किया है'—इतना कह देने से हम दोषमुक्त नहीं होते। इसमें कोई आश्चर्य न समझना कि आज भगवान् सायङ्कालिक समाधि से उठने के बाद यही प्रसङ्ग उठावें, तथा आपको ही सम्बोधन करें। हमें अभी से इसका अनुमान हो रहा है!''

९. तब भगवान् सायङ्काल में दिवाविहार समाप्त कर उपस्थानशाला (सभाभवन) में पधारे, तथा वहाँ प्रज्ञप्त आसन पर विराजमान हुए और आयुष्मान् उपवाण से यह पूछा—

''उपवाण! किन धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का प्रिय, आकर्षक, गौरवभाजन एवं पूजनीय हो पाता है?''

''भन्ते! पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु ...पूर्ववत्... पूजनीय हो पाता है। किन पाँच धर्मों से? यहाँ भन्ते! स्थविर भिक्षु (१) शीलवान् होता है...; (२) बहुश्रुत होता है...; (३) शुभवाणी बोलता है...; (४) आध्यात्मिक चार ध्यानों का लाभी होता है...; (३) आश्रवों के क्षय से अनाश्रव चेतोविमुक्ति ...पूर्ववत्... प्राप्त कर साधना करता है। भन्ते! इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु अपने साथी भिक्षुओं का प्रिय, आकर्षक, गौरवभाजन एवं पूजनीय हो जाता है।''

१०. ''ठीक है, उपवाण! बहुत ठीक है। उपवाण! इन पाँच धर्मों से युक्त स्थविर भिक्षु ही साथी भिक्षुओं का प्रिय ... पूजनीय होता है। उपवाण! यदि उस स्थविर भिक्षु में ये पाँच धर्म नहीं होते तो साथी भिक्षु उसके श्वेत बालों या झुर्रियों भरे मुख के कारण उसकी पूजा या सम्मान नहीं

न मानेय्युं न पूजेय्युं खण्डिच्चेन पालिच्चेन वलित्तचताय। यस्मा च खो, उपवान, इमे पञ्च धम्मा थेरस्स भिक्खुनो संविज्जन्ति, तस्मा तं सब्रह्मचारी सक्करोन्ति गरुं करोन्ति मानेन्ति पूजेन्ती'' ति॥ ●

७. चोदनासुत्तं : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—''चोदकेन, आवुसो, भिक्खुना परं चोदेतुकामेन पञ्च धम्मे अज्झत्तं उपट्ठापेत्वा परो चोदेतब्बो। कतमे पञ्च? कालेन वक्खामि, नो अकालेन; भूतेन वक्खामि, नो अभूतेन; सण्हेन वक्खामि, नो फरुसेन; अत्थसंहितेन वक्खामि, नो अनत्थसंहितेन; मेत्तचित्तो वक्खामि, नो दोसन्तरो। चोदकेन, आवुसो, भिक्खुना परं चोदेतुकामेन इमे पञ्च धम्मे अज्झत्तं उपट्ठापेत्वा परो चोदेतब्बो।

२. ''इधाहं, आवुसो, एकच्चं पुग्गलं पस्सामि अकालेन चोदियमानं नो कालेन कुपितं, अभूतेन चोदियमानं नो भूतेन कुपितं, फरुसेन चोदियमानं नो सण्हेन कुपितं, अनत्थसंहितेन चोदियमानं नो अत्थसंहितेन कुपितं, दोसन्तरेन चोदियमानं नो मेत्तचित्तेन कुपितं।

३. ''अधम्मचुदितस्स, आवुसो, भिक्खुनो पञ्चहाकारेहि अविप्पटिसारो [N.444] उपदहातब्बो—'अकालेनायस्मा चुदितो न कालेन, अलं ते अविप्पटिसाराय; [R.197] अभूतेनायस्मा चुदितो नो भूतेन, अलं ते अविप्पटिसाराय; फरुसेनायस्मा चुदितो नो सण्हेन, अलं ते अविप्पटिसाराय; अनत्थसंहितेनायस्मा चुदितो नो अत्थसंहितेन, अलं [B.173]

करते। क्योंकि, उपवाण! ये पाँच धर्म उस स्थविर भिक्षु में होते हैं, अत: वे बूढ़े साथी भिक्षु भी उसका गौरव, सम्मान एवं पूजा करते हैं॥'' ●

७. चोदनासूत्र : : परोपदेश से पूर्व पाँच धर्मों का मनन

१. आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को यह कहा—''आयुष्मानो! प्रेरक या उपदेशक भिक्षु को दूसरों को प्रेरणा या उपदेश देने से पूर्व अपने में इन पाँच धर्मों का उद्भव कर लेना चाहिये। कौन से पाँच? (१) 'अवसर आने पर ही बोलूँगा, अवसर के विना नहीं'; (२) 'सत्य ही बोलूँगा, असत्य नहीं'; (३) 'मृदुता से बोलूँगा, कठोरता से नहीं'; (४) 'सार्थक बात ही बोलूँगा, निरर्थक नहीं'; (५) 'मैत्रीपूर्ण संवाद ही करूँगा, शत्रुतापूर्ण नहीं'। प्रेरक एवं उपदेशक भिक्षु को ... उद्भव कर लेना चाहिये, तभी दूसरों को उपदेश करना चाहिये।

२. ''आयुष्मानो! मैंने ऐसे पुद्गलों को क्रुद्ध होते हुए देखा है, जिनमें से किसी को असमय से कुछ कहा गया था, समय से नहीं; किसी पर असत्य आरोप लगाया गया था, सत्य नहीं; किसी से कठोरता से बोला गया था, मृदुता से नहीं; निरर्थक बोला गया था, सार्थक नहीं; द्वेषभाव से कहा गया था, मैत्रीभाव से नहीं। (अत: ऐसे पुद्गलों का क्रुद्ध होना उचित ही था।)

३. ''आयुष्मानो! इस अनुचित रूप से प्रेरित या उपदिष्ट भिक्षु को जब इसके लिये पश्चात्ताप होने लगे तो उसको यों कारण समझाना चाहिये—'आयुष्मान् को असमय से कुछ कहा गया है समय से नहीं; असत्य आरोप लगाया गया है, सत्य नहीं; कठोरता से बोला गया है, मृदुता

ते अविप्पटिसाराय; दोसन्तरेनायस्मा चुदितो नो मेत्तचित्तेन, अलं ते अविप्पटिसाराया' ति। अधम्मचुदितस्स, आवुसो, भिक्खुनो इमेहि पञ्चहाकारेहि अविप्पटिसारो उपदहातब्बो।

४. ''अधम्मचोदकस्स, आवुसो, भिक्खुनो पञ्चहाकारेहि विप्पटिसारो उपदहातब्बो—'अकालेन ते, आवुसो, चोदितो नो कालेन, अलं ते विप्पटिसाराय; अभूतेन ते, आवुसो, चोदितो नो भूतेन, अलं ते विप्पटिसाराय; फरुसेन ते, आवुसो, चोदितो नो सण्हेन, अलं ते विप्पटिसाराय; अनत्थसंहितेन ते, आवुसो, चोदितो नो अत्थसंहितेन, अलं ते विप्पटिसाराय; दोसन्तरेन ते, आवुसो, चोदितो नो मेत्तचित्तेन, अलं ते विप्पटिसाराया' ति। अधम्मचोदकस्स, आवुसो, भिक्खुनो इमेहि पञ्चहाकारेहि विप्पटिसारो उपदहातब्बो। तं किस्स हेतु? यथा न अञ्ञो पि भिक्खु अभूतेन चोदेतब्बं मञ्ञेय्या ति।

५. ''इध पनाहं, आवुसो, एकच्चं पुग्गलं पस्सामि कालेन चोदियमानं नो अकालेन कुपितं, भूतेन चोदियमानं नो अभूतेन कुपितं, सण्हेन चोदियमानं नो फरुसेन कुपितं, अत्थसंहितेन चोदियमानं नो अनत्थसंहितेन कुपितं, मेत्ताचित्तेन चोदियमानं नो दोसन्तरेन कुपितं।

६. ''धम्मचुदितस्स, आवुसो, भिक्खुनो पञ्चहाकारेहि विप्पटिसारो उपदहातब्बो—'कालेनायस्मा चुदितो नो अकालेन, अलं ते विप्पटिसाराय; भूतेनायस्मा चुदितो नो अभूतेन, अलं ते विप्पटिसाराय; सण्हेनायस्मा चुदितो नो फरुसेन, अलं ते विप्पटि-

---

से नहीं; निरर्थक बोला गया है, सार्थक नहीं; द्वेष से बोला गया है, मैत्रीचित्त से नहीं।' आयुष्मानो! अनुचित रूप से प्रेरित भिक्षु को पश्चात्ताप न करने के ये कारण बताने चाहिये।

४. ''आयुष्मानो! अनुचित रूप से प्रेरक या उपदेष्टा भिक्षु को पश्चात्ताप पाँच कारणों से समझाना चाहिये—'आयुष्मन्! आपने असमय में यह उपदेश किया, समय देखकर नहीं। असत्यपूर्ण उपदेश किया, सत्यपूर्ण नहीं। कठोर वचनों से उपदेश किया, मृदुवचनों से नहीं। मन में द्वेष रखकर यह उपदेश किया, मैत्रीभाव से नहीं। निरर्थक शब्दों से उपदेश किया, सार्थक शब्दों से नहीं।' अनुचित रूप से उपदेशक भिक्षु को इस प्रकार पश्चात्ताप कराना चाहिये। वह किसलिये? वह इसलिये कि कहीं यह अन्य भिक्षु को भी असत्यपूर्ण आरोप से न प्रेरित करने लगे।

५. ''और, आयुष्मानो! मैं ऐसे पुद्गल को भी जानता हूँ, जिसको अवसर देखकर प्रेरणा तथा उपदेश किया गया, असमय में नहीं; अतः वह कुपित नहीं हुआ। सत्य लाञ्छन से उसको लाञ्छित किया गया, अतः...। मृदुता से समझाया गया, कठोरता से नहीं; अतः...। सार्थक बातों से उसको उपदेश किया गया था, निरर्थक बातों से उपदेश नहीं, अतः...। मैत्रीभाव से उपदेश किया गया था, द्वेषभाव से नहीं; अतः वह कुपित नहीं हुआ।

६. ''और, आयुष्मानो! धर्मपूर्वक प्रेरित किसी भिक्षु के मन का पश्चात्ताप इस प्रकार शान्त करना चाहिये—'आपको अवसर देखकर ही प्रेरणा और उपदेश किया गया है, असमय में नहीं;

साराय; अत्थसंहितेनायस्मा चुदितो नो अनत्थसंहितेन, अलं ते विप्पटिसाराय; मेत्तचित्तेनायस्मा चुदितो नो दोसन्तरेन, अलं ते विप्पटिसाराया' ति। [R.198] धम्मचुदितस्स, आवुसो, भिक्खुनो इमेहि पञ्चहाकारेहि विप्पटिसारो उपदहातब्बो।

७. ''धम्मचोदकस्स, आवुसो, भिक्खुनो पञ्चहाकारेहि अविप्पटिसारो [N.445] उपदहातब्बो—'कालेन ते, आवुसो, चोदितो नो अकालेन, अलं ते अविप्पटिसाराय; भूतेन ते, आवुसो, चोदितो नो अभूतेन, अलं ते अविप्पटिसाराय; सण्हेन ते, आवुसो, [B.174] चोदितो नो फरुसेन, अलं ते अविप्पटिसाराय; अत्थसंहितेन ते, आवुसो, चोदितो नो अनत्थसंहितेन, अलं ते अविप्पटिसाराय; मेत्तचित्तेन ते, आवुसो, चोदितो नो दोसन्तरेन, अलं ते अविप्पटिसाराया' ति। धम्मचोदकस्स, आवुसो, भिक्खुनो, इमेहि पञ्चहाकारेहि अविप्पटिसारो उपदहातब्बो। तं किस्स हेतु? यथा अञ्ञो पि भिक्खु भूतेन चोदितब्बं मञ्ञेय्या ति।

८. ''चुदितेन, आवुसो, पुग्गलेन, द्वीसु धम्मेसु पतिट्ठातब्बं—सच्चे च, अकुप्पे च। मं चे पि, आवुसो, परे चोदेय्युं कालेन वा अकालेन वा भूतेन वा अभूतेन वा सण्हेन वा फरुसेन वा अत्थसंहितेन वा अनत्थसंहितेन वा मेत्तचित्ता वा दोसन्तरा वा, अहं पि द्वीसुयेव धम्मेसु पतिट्ठहेय्यं—सच्चे च, अकुप्पे च। सचे जानेय्यं—'अत्थेसो मयि धम्मो' ति, 'अत्थी' ति नं वदेय्यं—'संविज्जतेसो मयि धम्मो' ति। सचे जानेय्यं—'नत्थेसो मयि धम्मो' ति, 'नत्थी' ति नं वदेय्यं—'नेसो धम्मो मयि संविज्जती''' ति।

''एवं पि खो ते, सारिपुत्त, वुच्चमाना अथ च पनिधेकच्चे मोघपुरिसा न पदक्खिणं गण्हन्ती'' ति।

अत: आप इसे अन्यथा न लें। ...पूर्ववत्... मैत्रीभाव से ही उपदेश किया गया है, द्वेषभाव से नहीं; अत: आप इसको अन्यथा न ग्रहण करें।' आयुष्मानो! धर्मपूर्वक प्रेरित उस भिक्षु का पश्चात्ताप यह कहकर निवृत्त करना चाहिये।

७. ''उस धर्मप्रेरक भिक्षु को भी इस प्रकार कारण बता कर सान्त्वना देनी चाहिये—'आयुष्मन्! आपने अवसर देखकर ही यह उपदेश किया है, असमय में नहीं...। मैत्रीभाव से ही यह उपदेश किया है, द्वेषभाव से नहीं, अत: आपको उद्विग्न नहीं होना चाहिये'। इन वाक्यों से उस धर्मप्रेरक भिक्षु को सान्त्वना देनी चाहिये। वह क्यों? वह इसलिये कि अन्य कोई भिक्षु भी दूसरों को इसी प्रकार समय पर तथा सत्यभाषण से ही उपदेश देने की प्रेरणा ले सके।

८. ''उस प्रेरित पुद्गल को भी इन दो बातों में किसी एक पर टिकना चाहिये—१. सत्य पर या २. स्थिरता पर। आयुष्मानो! मुझको भी दूसरे लोग किसी बात पर समझावें; फिर भले ही वह अवसर हो या अनवसर, सत्य हो या असत्य, मृदु हो या कठोर, सार्थक हो या निरर्थक, द्वेषभाव हो मैत्रीभाव; तो मैं भी इन दो बातों में एक ही पर टिकूँगा—१. सत्य या २. स्थिरता। यदि मैं जानूँगा कि यह दोष मुझमें है, तो मैं उसे स्वीकार कर लूँगा—'हाँ, यह दोष मुझमें है'। और वह दोष यदि मुझमें नहीं है तो मैं स्पष्ट कह दूँगा—'नहीं, यह दोष मुझमें नहीं है।' ''

[R.199] ९. ''ये ते, भन्ते, पुग्गला अस्सद्धा जीविकत्था न सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता सठा मायाविनो केतबिनो उद्धता उन्नळा चपला मुखरा विकिण्णवाचा इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारा भोजने अमत्तञ्ञुनो जागरियं अननुयुत्ता सामञ्ञे अनपेक्खवन्तो सिक्खाय न तिब्बगारवा बाहुलिका साथलिका ओक्कमने पुब्बङ्गमा पविवेके निक्खित्तधुरा कुसीता हीनविरिया मुट्ठस्सतिनो असम्पजाना असमाहिता विब्भन्तचित्ता दुप्पञ्ञा एळमूगा, ते मया एवं वुच्चमाना न पदक्खिणं गण्हन्ति।

१०. ''ये पन ते, भन्ते, कुलपुत्ता सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता असठा अमायाविनो अकेतबिनो अनुद्धता अनुन्नळा अचपला अमुखरा अविकिण्णवाचा इन्द्रियेसु [B.175, N.446] गुत्तद्वारा भोजने मत्तञ्ञूनो जागरियं अनुयुत्ता सामञ्ञे अपेक्खवन्तो सिक्खाय तिब्बगारवा न बाहुलिका न साथलिका ओक्कमने निक्खित्तधुरा पविवेके पुब्बङ्गमा आरद्धविरिया पहितत्ता उपट्ठितस्सतिनो सम्पजाना समाहिता एकग्गचित्ता पञ्ञवन्तो अनेळमूगा, ते मया एवं वुच्चमाना पदक्खिणं गण्हन्ती'' ति।

११. ''ये ते, सारिपुत्त, पुग्गला अस्सद्धा जीविकत्था न सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता सठा मायाविनो केतबिनो उद्धता उन्नळा चपला मुखरा विकिण्णवाचा इन्द्रियेसु अगुत्तद्वारा भोजने अमत्तञ्ञुनो जागरियं अननुयुत्ता सामञ्ञे अनपेक्खवन्तो सिक्खाय न

(भगवान् बोले—) ''सारिपुत्र! तुम्हारे द्वारा इतना स्पष्ट समझाये जाने पर भी यहाँ कुछ मूर्ख पुरुष ऐसे भी हैं जो तुम्हारे उपदेश पर कान नहीं धरेंगे।''

९. ''भन्ते! जो पुद्गल (रत्नत्रय के प्रति) अश्रद्धालु, जीवनयापन के लिये भिक्षुभाव ग्रहण करनेवाले, श्रद्धा के विना घर से बेघर होकर प्रव्रज्या लेने वाले, शठ, धूर्त, काव्यरसिक, उद्धत, अभिमानी, चञ्चलमति, मुखर, विखरी विखरी बातें बोलने वाले, इन्द्रियों से असंयत, भोजन की मात्रा न जानने वाले, जागरण में असावधान, श्रामण्य की अपेक्षा न करनेवाले, धर्मशिक्षा में तीव्र गौरव न रखने वाले, परिग्रही, साधना में शिथिल, सांसारिक बातों में आगे रहने वाले, एकान्त साधना में जूआ टेकनेवाले, आलसी, धर्मसाधना में अल्पशक्ति लगाने वाले, भ्रष्ट स्मृति वाले, नासमझ, असमाहित, सर्वथा भ्रान्तचित्त एवं जड़मति हैं वे ही मेरे उपदेशों पर ध्यान नहीं देते।

१०. ''परन्तु, भन्ते! जो कुलपुत्र श्रद्धालु, श्रद्धासहित घर से बेघर होकर प्रव्रजित होनेवाले, शठता एवं धूर्तता से रहित, काव्यरस के उपेक्षक, सरल, निरभिमान, स्थिरमति, वाक्संयमी, सार्थक वक्ता, इन्द्रियसंयमी, भोजन को मात्रा से ही लेनेवाले, जागरणपूर्वक साधनारत, श्रामण्य को महत्त्व देने वाले, शिक्षा के प्रति तीव्र सम्मान रखने वाले, अपरिग्रही, धर्मसाधना में उत्साही, सांसारिक बातों से निरपेक्ष, एकान्त साधना में उद्योगी, उत्साहसम्पन्न, साधना में पूर्ण शक्ति लगाने वाले, सम्यक्स्मृति, सम्प्रजन्ययुक्त, समाहित एवं अभ्रान्त चित्तवाले तथा प्रज्ञावान् हैं वे ... मेरे उपदेशों पर ध्यान देते हैं।''

११. ''सारिपुत्र! यहाँ जो पुद्गल अश्रद्धालु, जीवनयापन के लिये भिक्षुभाव ग्रहण करने वाले... पूर्ववत्... एवं जड़मति हैं, उनकी ओर तुम ध्यान न दो (तिट्ठन्तु ते)। अपितु, सारिपुत्र! जो

तिब्बगारवा बाहुलिका साथलिका ओक्कमने पुब्बङ्गमा पविवेके निक्खित्तधुरा कुसीता हीनविरिया मुट्ठस्सतिनो असम्पजाना असमाहिता विब्भन्तचित्ता दुप्पञ्ञा एळमूगा, तिट्ठन्तु ते। ये पन, ते सारिपुत्त, कुलपुत्ता सद्धा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिता असठा अमायाविनो अकेतबिनो अनुद्धता अनुन्नळा अचपला अमुखरा अविकिण्णवाचा इन्द्रियेसु गुत्तद्वारा भोजने मत्तञ्ञुनो जागरियं अनुयुत्ता सामञ्ञे अपेक्खवन्तो सिक्खाय तिब्बगारवा न बाहुलिका न साथलिका ओक्कमने निक्खित्तधुरा पविवेके पुब्बङ्गमा आरद्धविरिया पहितत्ता उपट्ठितस्सतिनो सम्पजाना समाहिता एकग्गचित्ता पञ्ञवन्तो अनेळमूगा, [R.200] ते त्वं, सारिपुत्त, वदेय्यासि। ओवद, सारिपुत्त, सब्रह्मचारी; अनुसास, सारिपुत्त, सब्रह्मचारी—'असद्धम्मा वुट्ठापेत्वा सद्धम्मे पतिट्ठापेस्सामि सब्रह्मचारी' ति। एवं हि ते, सारिपुत्त, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

८. **सीलसुत्तं** : १. तत्र खो आयस्मा सारिपुत्तो भिक्खू आमन्तेसि—''दुस्सीलस्स, आवुसो, सीलविपन्नस्स हतूपनिसो होति सम्मासमाधि; सम्मासमाधिम्हि असति सम्मासमाधिविपन्नस्स हतूपनिसं होति यथाभूतञाणदस्सनं; यथाभूतञाणदस्सने असति यथाभूतञाणदस्सनविपन्नस्स हतूपनिसो होति निब्बिदाविरागो; निब्बिदाविरागे असति निब्बिदाविरागविपन्नस्स हतूपनिसं होति विमुत्तिञाणदस्सनं। सेय्यथापि, आवुसो, रुक्खो साखापलासविपन्नो। तस्स पपटिका पि न पारिपूरिं गच्छति, तचो पि... [B.176] फेग्गु पि... सारो पि न पारिपूरिं गच्छति। एवमेव खो, आवुसो, दुस्सीलस्स सीलविपन्नस्स हतूपनिसो होति सम्मासमाधि; सम्मासमाधिम्हि असति सम्मासमाधिविपन्नस्स [N.447] हतूपनिसं होति यथाभूतञाणदस्सनं; यथाभूतञाणदस्सने असति यथाभूतञाणदस्सन-विपन्नस्स हतूपनिसो होति निब्बिदाविरागो; निब्बिदाविरागे असति निब्बिदाविराग-विपन्नस्स हतूपनिसं होति विमुत्तिञाणदस्सनं।

कुलपुत्र श्रद्धालु, श्रद्धापूर्वक घर से बेघर होकर प्रव्रजित होने वाले, शठता एवं धूर्तता से रहित ...पूर्ववत्... एकाग्रचित्त एवं प्रज्ञावान् हैं उनको तुम उपदेश करो। सारिपुत्र! अपने ऐसे साथी भिक्षुओं को उपदेश करो। सारिपुत्र! तुम अपने इन साथियों को यह सोचकर उपदेश करो कि मैं अपने इन साथियों को असद्धर्म से निकालकर सद्धर्म में प्रतिष्ठित करूँगा। सारिपुत्र! यह बात तुम्हें निरन्तर अपने ध्यान में रखनी चाहिये॥'' ●

८. शीलसूत्र : : भिक्षु की पाँच धर्मों से हानि

१. वहाँ, आयुष्मान् सारिपुत्र ने भिक्षुओं को यह उपदेश किया—''आयुष्मानो! विनष्ट शील वाले दु:शील को सम्यक्समाधि प्राप्त करना असम्भव ही समझो। इसी प्रकार, सम्यक्समाधिरहित को यथाभूत ज्ञानदर्शन होना असम्भव ही है। इस यथाभूत ज्ञानदर्शन के न होने पर उसको संसार के प्रति निर्विदा एवं विराग होना असम्भव है। निर्विदा एवं विराग रहित को विमुक्तिज्ञानदर्शन असम्भव समझो। आयुष्मानो! जैसे कोई शाखापत्र रहित वृक्ष हो तब उसकी न बाह्य त्वचा (छाल), न

२. ''सीलवतो, आवुसो, सीलसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नो होति सम्मासमाधि; सम्मासमाधिम्हि सति सम्मासमाधिसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नं होति यथाभूतञाणदस्सनं; यथाभूतञाणदस्सने सति यथाभूतञाणदस्सनसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नो होति निब्बिदा-विरागो; निब्बिदाविरागे सति निब्बिदाविरागसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नं होति विमुत्तिञाण-दस्सनं। सेय्यथापि, आवुसो, रुक्खो, साखापलाससम्पन्नो। तस्स पपटिका पि पारिपूरिं [R.201] गच्छति, तचो पि... फेग्गु पि... सारो पि पारिपूरिं गच्छति। एवमेव खो, आवुसो, सीलवतो सीलसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नो होति सम्मासमाधि; सम्मासमाधिम्हि सति सम्मासमाधिसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नं होति यथाभूतञाणदस्सनं; यथाभूतञाणदस्सने सति यथाभूतञाणदस्सनसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नो होति निब्बिदाविरागो; निब्बिदाविरागे सति निब्बिदाविरागसम्पन्नस्स उपनिससम्पन्नं होति विमुत्तिञाणदस्सनं'' ति॥ ●

९. **खिप्पनिसन्तिसुत्तं** : १. अथ खो आयस्मा आनन्दो येनायस्मा सारिपुत्तो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता सारिपुत्तेन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा आनन्दो आयस्मन्तं सारिपुत्तं एतदवोच—

२. ''कित्तावता नु खो, आवुसो सारिपुत्त, भिक्खु खिप्पनिसन्ति च होति, कुसलेसु धम्मेसु सुग्गहितग्गाही च, बहुं च गण्हाति, गहितं चस्स नप्पमुस्सती'' ति?

''आयस्मा खो आनन्दो बहुस्सुतो। पटिभातु आयस्मन्तंयेव आनन्दं'' ति।

[B.177] ''तेनहावुसो सारिपुत्त, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी'' ति। [N.448] ''एवमावुसो'' ति खो आयस्मा सारिपुत्तो आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसि। आयस्मा आनन्दो एतदवोच—

आन्तरिक त्वचा, न उसकी मजबूत (दृढ़) लकड़ी ही सुरक्षित रह पाती है; इसी प्रकार आयुष्मानो! विनष्ट शील वाले दु:शील को ...पूर्ववत्... विमुक्तिज्ञानदर्शन असम्भव ही है।

२. (परन्तु) ''आयुष्मानो! शीलसम्पन्न शीलवान् के लिये सम्यक्समाधि की प्राप्ति समीप (सरल) ही समझो। ...पूर्ववत्... *[ऊपर के पाठ का प्रतिलोमक्रम से विस्तार कर लें।]* ●

९. क्षिप्रनिशान्तिसूत्र : : तीव्र धर्म चिन्तन के पाँच प्रकार

१. तब आयुष्मान् आनन्द, आयुष्मान् सारिपुत्र के पास गये। जाकर कुशल मङ्गल प्रश्नानन्तर आयुष्मान् आनन्द ने आयुष्मान् सारिपुत्र से यह पूछा—

२. ''आयुष्मन् सारिपुत्र! कैसे कोई भिक्षु तीव्र धर्मचिन्तक हो पाता है? कुशल धर्मों में कैसे अधिक से अधिक बहुत कुछ ग्रहण कर पाता है? तथा उसका यह गृहीत किया हुआ कैसे नष्ट नहीं हो पाता?''

''आयुष्मान् आनन्द इस विषय में बहुश्रुत हैं। अच्छा हो कि आप ही इस विषय का विस्तार करें।''

''तो, आयुष्मन् सारिपुत्र! सुनो, सुनकर भलीभाँति मन में बैठा लो, मैं बताता हूँ।

३. "इधावुसो, सारिपुत्त, भिक्खु अत्थकुसलो च होति, धम्मकुसलो च, ब्यञ्जनकुसलो च, निरुत्तिकुसलो च, पुब्बापरकुसलो च। एत्तावता खो, आवुसो सारिपुत्त, भिक्खु खिप्पनिसन्ति च होति कुसलेसु धम्मेसु, सुग्गहितग्गाही च, बहुं च गण्हाति, गहितं चस्स नप्पमुस्सती'' ति।

४. "अच्छरियं, आवुसो! अब्भुतं, आवुसो!! याव सुभासितं चिदं आयस्मता आनन्देन। इमेहि च मयं पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतं आयस्मन्तं आनन्दं धारेम—'आयस्मा आनन्दो अत्थकुसलो धम्मकुसलो ब्यञ्जनकुसलो निरुत्तिकुसलो पुब्बापरकुसलो''' ति॥

१०. भद्दजिसुत्तं : १. एकं समयं आयस्मा आनन्दो कोसम्बियं विहरति [R.202] घोसितारामे। अथ खो आयस्मा भद्दजि येनायस्मा आनन्दो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा आयस्मता आनन्देन सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं भद्दजिं आयस्मा आनन्दो एतदवोच—

२. "किं नु खो, आवुसो भद्दजि, दस्सनानं अग्गं, किं सवनानं अग्गं, किं सुखानं अग्गं, किं सञ्ञानं अग्गं, किं भवानं अग्गं'' ति?

"अत्थावुसो, ब्रह्मा अभिभू अनभिभूतो अञ्ञदत्थुदसो वसवत्ती, यो तं ब्रह्मानं पस्सति, इदं दस्सनानं अग्गं। अत्थावुसो, आभस्सरा नाम देवा सुखेन अभिसन्ना परिसन्ना।

---

३. "आयुष्मन् सारिपुत्र! यहाँ जो साधक (१) (बुद्धवचनों में) अर्थकुशल होता है, (२) (बुद्ध वचनों में) धर्मकुशल होता है; (३) व्यञ्जन (संकेत) के ज्ञान में कुशल होता है; (४) (शब्दों के) निर्वचन में कुशल होता है; तथा (५) वहाँ पूर्वापर के अर्थज्ञान में कुशल होता है। इतने धर्मों से युक्त साधक भिक्षु धर्मचिन्तन में तीव्रता प्राप्त कर सकता है, कुशल धर्मों से अधिकतम और बहुत कुछ ग्रहण कर पाता है तथा उसके द्वारा यह गृहीत किया हुआ कभी नष्ट नहीं हो पाता।''

४. "आश्चर्य है, आयुष्मन्! अद्भुत है! आपने एक अच्छी बात कितनी सरलता से समझा दी। आयुष्मन् आनन्द! हम तो आपको ही इन पाँचों धर्मों से पूर्णतः युक्त समझते हैं। आप ही आनन्द! अर्थकुशल भी है, धर्मकुशल भी हैं, व्यञ्जनकुशल भी हैं, निरुक्तिकुशल भी हैं, तथा (धर्मविषयक) पूर्वापर के चिन्तन में भी कुशल हैं॥''

१०. भद्रजित्सूत्र : : पाँच धर्मों की श्रेष्ठता

१. एक समय आयुष्मान् आनन्द कौशाम्बी के घोषिताराम में साधनाहेतु ठहरे हुए थे। तभी आयुष्मान् भद्रजित् आयुष्मान् आनन्द के पास आये। कुशल-मङ्गल के बाद एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् भद्रजित् को आयुष्मान् आनन्द ने यह पूछा—

२. "आयुष्मन् भद्रजित्! (१) दर्शन (देखना) में श्रेष्ठ क्या है?; (२) श्रवण (सुनना) में श्रेष्ठ क्या है?; (३) सुखों में श्रेष्ठ क्या है?; (४) संज्ञाओं में श्रेष्ठ क्या है? तथा (५) भवों में श्रेष्ठ क्या है?''

(१) "आयुष्मन्! एक अभिभू ब्रह्मा हैं, जो किसी से पराजित नहीं हो सकते, जिनकी दृष्टि

ते कदाचि करहचि उदानं उदानेन्ति—'अहो सुखं, अहो सुखं' ति! यो तं सद्दं सुणाति, इदं सवनानं अग्गं। अत्थावुसो, सुभकिण्हा ना देवा। ते सन्तंयेव तुसिता सुखं पटिवेदेन्ति, इदं सुखानं अग्गं। अत्थावुसो, आकिञ्चञ्ञायतनूपगा देवा, इदं सञ्ञानं अग्गं। अत्थावुसो, नेवसञ्ञानासञ्ञायतनूपगा देवा, इदं भवानं अग्गं'' ति।

३. ''समेति खो इदं आयस्मतो भद्दजिस्स, यदिदं बहुना जनेना'' ति? [N.449,B.178] ''आयस्मा खो, आनन्दो, बहुस्सुतो। पटिभातु आयस्मन्तंयेव आनन्दं'' ति।

''तेनहावुसो भद्दजि, सुणाहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी'' ति। ''एवमावुसो'' ति खो आयस्मा भद्दजि आयस्मतो आनन्दस्स पच्चस्सोसि। आयस्मा आनन्दो एतदवोच—

४. ''यथा पस्सतो खो, आवुसो, अनन्तरा आसवानं खयो होति, इदं दस्सनानं अग्गं। यथा सुणतो अनन्तरा आसवानं खयो होति, इदं सवनानं अग्गं। यथा सुखितस्स अनन्तरा आसवानं खयो होति, इदं सुखानं अग्गं। यथा सञ्ञिस्स अनन्तरा आसवानं खयो होति, इदं सञ्ञानं अग्गं। यथा भूतस्स अनन्तरा आसवानं खयो होति, इदं भवानं अग्गं'' ति॥

आघातवग्गो सत्तरसमो॥ ●

निश्चयात्मक है तथा स्वाधीन (वशवर्ती) हैं, जिनका दर्शन ही प्रमुख कहा जा सकता है। (२) आयुष्मन्! आभास्वर नामक देव हैं, जो सुख से परिप्लुत हैं, जो कभी कभी अपना यह हर्षोद्गार प्रकट करते हैं—'अरे इस सुख में इतनी अच्छाई! अरे इस सुख में इतनी अच्छाई!'; उनका यह शब्द सुन पाना सर्वश्रेष्ठ है। (३) आयुष्मन्! कुछ शुभकृत्स्न नामक देव हैं, जो स्वयं सन्तुष्ट रहते हुए शान्तसुख का अनुभव करते हैं, यही सुख सर्वश्रेष्ठ हैं। (४) आयुष्मन्! कुछ आकिञ्चन्यायतनोपग देव हैं इनकी संज्ञा (जानने का संकेत) ही सर्वश्रेष्ठ है। (५) आयुष्मन्! नैवसंज्ञानासंज्ञायतनोपग देव हैं, इनका अस्तित्व सर्वश्रेष्ठ है।''

''आयुष्मन् भद्रजित्! क्या आपका यह कथन जनता के बहुमत को स्वीकार है?''

''आयुष्मन् आनन्द! आप बहुश्रुत हैं, आप ही बताइये कि उपर्युक्त पाँचों धर्मों में कौन श्रेष्ठ है?'' तो आयुष्मन् भद्रजित्! सुनो! सुनकर मन में भली भाँति बैठा लो। बताता हूँ।'' तब ''अच्छा, आयुष्मन्'' कहते हुए आयुष्मान् भद्रजित् ने उत्तर दिया। आयुष्मान् आनन्द ने तब यह बताया—

४. (१) ''आयुष्मन्! जिस दर्शन (साक्षात्कार) के बाद आश्रवों का क्षय सम्भव हो, वह दर्शन ही सर्वश्रेष्ठ है। (२) जिस श्रवण के बाद आश्रवों का क्षय सम्भव हो, वही श्रवण सर्वश्रेष्ठ है। (३) जिस सुखानुभव के बाद आश्रवों का क्षय सम्भव हो, वही सुख सर्वश्रेष्ठ है। (४) जिस सङ्केत (संज्ञा) के बाद आश्रवों का क्षय सम्भव हो, वही सङ्केत सर्वश्रेष्ठ है। (५) जिस भव (सत्ता) के बाद आश्रवों का क्षय हो पाता हो, वही सत्ता (होना) सर्वश्रेष्ठ है॥'' ●

आघातवर्ग सप्तदश सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

द्वे आघातविनया, साकच्छा साजीवतो पञ्हं। [R.203]
पुच्छा निरोधो चोदना, सीलं निसन्ति भद्दजी ति॥ ●

१८. उपासकवग्गो

१. सारज्जसुत्तं : १. एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खू आमन्तेसि—''भिक्खवो'' ति। ''भदन्ते'' ति ते भिक्खू भगवतो पच्चस्सोसुं। भगवा एतदवोच—

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो उपासको सारज्जं ओक्कन्तो होति। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, कामेसुमिच्छाचारी होति, मुसावादी होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो उपासको सारज्जं ओक्कन्तो होति।

३. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो उपासको विसारदो होति। [B.179]
कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, [N.450]
कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम आघातप्रतिविनयसूत्र, २. द्वितीय आघातप्रतिविनयसूत्र, ३. साकच्छ (धर्मचर्चा) सूत्र, ४. साजीवसूत्र, ५. प्रश्नपृच्छासूत्र, ६. निरोधसूत्र, ७. चोदनासूत्र, ८. शीलसूत्र, ९. क्षिप्र-निशान्तिसूत्र, एवं १०. भद्रजित्सूत्र॥ ●

१८. उपासकवर्ग

१. सारद्यसूत्र : : पाँच आसक्तियाँ

१. ऐसा मैंने सुना है। एक समय भगवान् (बुद्ध) श्रावस्ती के अनाथपिण्डिक श्रेष्ठी द्वारा निर्मापित जेतवनाराम में साधनाहेतु विराजमान थे। वहाँ, भगवान् ने भिक्षुओं को ...पूर्ववत्... यह उपदेश किया—

२. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक आसक्ति में फँस जाता है। कौन से पाँच? (१) प्राणातिपाती होता है, (२) चौर होता है, (३) व्यभिचारी होता है, (४) असत्यभाषी होता है? (५) मद्यपायी होता है। इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक सांसारिक जन्धनों में फँस जाता है।

३. (इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक विशारद होता है, सांसारिक आसक्तियों (बन्धनों) में नहीं फँसता। कौन से पाँच? (१) जो प्राणातिपात से दूर,

पटिविरतो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो उपासको विसारदो होती'' ति॥ ●

२. विसारदसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो उपासको अविसारदो अगारं अज्झावसति। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाती होति ...पे०... [R.204] सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो उपासको अविसारदो अगारं अज्झावसति।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो उपासको विसारदो अगारं अज्झावसति। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो उपासको विसारदो अगारं अज्झावसति'' ति॥ ●

३. निरयसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो उपासको यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाती होति ...पे०... सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो उपासको यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो उपासको यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाता पटिविरतो होति ...पे०... सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो उपासको यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

---

(२) चौरी से दूर, (३) व्यभिचार से दूर, (४) असत्यभाषण से दूर, एवं (५) मद्यपान से दूर होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक सांसारिक आसक्तियों में नहीं फँसता। अत: वह 'विशारद' कहलाता है॥ ●

२. विशारदसूत्र : : पाँच धर्मों से विशारद

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक गृहस्थ के जञ्जाल में फँसा हुआ आध्यात्मिक दृष्टि से मूर्ख ही बना रहता है। किन पाँच से? (१) वह प्राणातिपाती होता है ...पूर्ववत्... (५) मद्यपायी होता है। इन पाँच धर्मों से ...पूर्ववत्...।

२. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक...। किन पाँच से? (१) वह प्राणातिपात से दूर ...पूर्ववत्... (५) मद्यपान से दूर रहता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक गृहस्थ के जञ्जाल में न फँसता हुआ आध्यात्मिक दृष्टि से विशारद (बुद्धिमान्=प्रज्ञावान्) कहलाता है॥ ●

३. निरयसूत्र : : नरकपात कराने वाले पाँच धर्म

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त कोई उपासक जैसे आया था वैसे ही नरक में जा गिरता है। किन पाँच धर्मों से? (१) प्राणातिपाती, (२) ..पूर्ववत्... (५) मद्यपायी होता है। इन पाँच धर्मों से युक्त ... नरक में जा गिरता है।

२. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त कोई पुण्यात्मा उपासक सीधा स्वर्ग में जाता है। किन

४. **वेरसुत्तं** : १. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति येन भगवा [B.180] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—

२. ''पञ्च, गहपति, भयानि वेरानि अप्पहाय 'दुस्सीलो' इति वुच्चति, [N.451] निरयं च उपपज्जति। कतमानि पञ्च? पाणातिपातं, अदिन्नादानं, कामेसुमिच्छाचारं, मुसावादं, सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं—इमानि खो, गहपति, पञ्च भयानि वेरानि [R.205] अप्पहाय 'दुस्सीलो' इति वुच्चति, निरयं च उपपज्जति।

३. ''पञ्च, गहपति, भयानि वेरानि पहाय 'सीलवा' इति वुच्चति, सुगतिं च उपपज्जति। कतमानि पञ्च? पाणातिपातं, अदिन्नादानं, कामेसुमिच्छाचारं, मुसावादं, सुरामेयमज्जपमादट्ठानं—इमानि खो, गहपति, पञ्च भयानि वेरानि पहाय 'सीलवा' इति वुच्चति, सुगतिं च उपपज्जति।

४. ''यं, गहपति, पाणातिपाती पाणातिपातपच्चया दिट्ठधम्मिकं पि भयं वेरं पसवति, सम्परायिकं पि भयं वेरं पसवति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति; पाणातिपाता पटिविरतो नेव दिट्ठधम्मिकं भयं वेरं पसवति, न सम्परायिकं भयं वेरं पसवति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। पाणातिपाता पटिविरतस्स एवं तं भयं वेरं वूपसन्तं होति।

पाँच धर्मों से? (१) प्राणातिपात से दूर ...पूर्ववत्... (५) मद्यपान से दूर रहता है। इन पाँच धर्मों से युक्त कोई उपासक सीधा स्वर्ग में ही जाता है॥'' ●

४. वैरसूत्र : : पाँच वैरों का त्याग

१. ...तब कभी अनाथपिण्डिक गृहपति भगवान् के सम्मुख गये...। गृहपति को भगवान् ने यह उपदेश किया—

२. ''गृहपति! इन पाँच भयजनक वैरों (द्वेषों) को छोड़े विना कोई भी पुरुष 'दुःशील' कहलाता है, तथा मरणानन्तर वह नरक में उत्पन्न होता है। कौन पाँच? (१) प्राणातिपात (हिंसा), (२) अदत्तादान (चौरी), (३) कामभोगों में मिथ्याचार (व्यभिचार), (४) मृषावाद (असत्यभाषण), एवं (५) मद्यपान। गृहपति! इन पाँच भयजनक शत्रुभूत धर्मों को छोड़े विना पुरुष 'दुःशील' कहलाता है, तथा मरणानन्तर नरक में उत्पन्न होता है।

३. (तथा) गृहपति! इन पाँच भयजनक वैर कराने वाले धर्मों को छोड़कर कोई भी पुरुष 'शीलवान्' कहलाता है तथा मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग में उत्पन्न होता है। ...पूर्ववत्...।

४. गृहपति! प्राणातिपाती पुरुष प्राणातिपात के कारण इस जन्म में अपने लिये जिस भयजनक वैर को उत्पन्न कर लेता है, मानसिक चिन्ता एवं दुःख उत्पन्न कर लेता है; प्राणातिपात से रहित पुरुष न इस जन्म में अपने लिये कोई दुःखराशि एकत्र करता है, न उसको, उसके कारण कोई मानसिक चिन्ता या क्लेश ही उत्पन्न हो पाते हैं। इस प्रकार, प्राणातिपात से रहित पुरुष के ये भयोत्पादक वैर शान्त हुए रहते हैं। (१)

५. "यं, गहपति, अदिन्नादायी ...पे०... यं, गहपति, कामेसुमिच्छाचारी ...पे०... यं, गहपति, मुसावादी ...पे०... यं, गहपति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी सुरामेरयमज्ज-पमादट्ठानपच्चया दिट्ठधम्मिकं पि भयं वेरं पसवति, सम्परायिकं पि भयं वेरं पसवति, चेतसिकं पि दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति; सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो नेव दिट्ठधम्मिकं भयं वेरं पसवति, न सम्परायिकं भयं वेरं पसवति, न चेतसिकं दुक्खं दोमनस्सं पटिसंवेदेति। सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतस्स एवं तं भयं वेरं वूपसन्तं होती ति।

[B.181] "यो पाणमतिपातेति, मुसावादं च भासति।
लोके अदिन्नं आदियति, परदारं च गच्छति॥
"सुरामेरयपानं च, यो नरो अनुयुञ्जति।
अप्पहाय पञ्च वेरानि, **दुस्सीलो** ति वुच्चति॥
"कायस्स भेदा दुप्पञ्ञो, निरयं सोपपज्जति।
यो पाणं नातिपातेति, मुसावादं न भासति॥
[N.452] "लोके अदिन्नं नादियति, परदारं न गच्छति।
[R.206] सुरामेरयपानं च, यो नरो नानुयुञ्वति॥
"पहाय पञ्च वेरानि, **सीलवा** इति वुच्चति।
कायस्स भेदा सप्पञ्ञो, सुगतिं सोपपज्जती" ति॥ ●

५. चण्डालसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो उपासको

---

५. "गृहपति! अदत्तादायी (चौर) पुरुष चौरी के कारण ...पूर्ववत्...। (२) गृहपति! कामभोगों में मिथ्याचार वाला पुरुष व्यभिचार के कारण ...पूर्ववत्...। (३) गृहपति! असत्यभाषी पुरुष असत्यभाषण के कारण ...पूर्ववत्...। (४) गृहपति! मद्यपायी पुरुष मद्यपान के कारण ...पूर्ववत्...। मद्यपान से विरत पुरुष के ये भयजनक वैर स्वयं शान्त हुए रहते हैं।

"जो दूसरों के प्राण हर लेता है तथा असत्यभाषण करता है। जो लोक में विना दिया लेता है, दूसरों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करता है॥

"जो पुरुष मद्यपान का निरन्तर सेवन करता है। इन पाँच भयोत्पादक वैरों को न छोड़नेवाला **दु:शील** कहलाता है॥

"देहपात के बाद, ऐसे जड़मति पुरुष का नरक में ही पात होता है। परन्तु जो प्राणिहत्या नहीं करता, असत्यभाषण नहीं करता॥

"लोक में दिये विना किसी की वस्तु नहीं लेता (चौरी नहीं करता)। मद्य आदि का पान नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता॥

"इन पाँच भयोत्पादक वैरों को त्यागने वाला **शीलवान्** कहलाता है। तथा इस देहपात के बाद वह सुगतिमय स्वर्गलोक में जाता है॥ ●

५. चाण्डालसूत्र : : पाँच धर्मों वाला उपासक चाण्डाल

१. भिक्षुओ! जो उपासक इन पाँच धर्मों से युक्त होता है वह घृणित उपासक तथा

उपासकचण्डालो च होति उपासकमलं च उपासकपतिकुट्ठो च। कतमेहि पञ्चहि? अस्सद्धो होति; दुस्सीलो होति; कोतूहलमङ्गलिको होति, मङ्गलं पच्चेति नो कम्मं; इतो च बहिद्धा दक्खिणेय्यं गवेसति; तत्थ च पुब्बकारं करोति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो उपासको उपासकचण्डालो च होति उपासकमलं च उपासकपतिकुट्ठो च।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो उपासको उपासकरतनं च होति उपासकपदुमं च उपासकपुण्डरीकं च। कतमेहि पञ्चहि? सद्धो होति; सीलवा होति; अकोतूहलमङ्गलिको होति, कम्मं पच्चेति नो मङ्गलं; न इतो बहिद्धा दक्खिणेय्यं गवेसति; इध च पुब्बकारं करोति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो उपासको उपासकरतनं च होति उपासकपदुमं च उपासकपुण्डरीकं चा" ति॥ ●

६. पीतिसुत्तं : १. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति पञ्चमत्तेहि [B.182] उपासकसतेहि परिवुतो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो अनाथपिण्डिकं गहपतिं भगवा एतदवोच—

२. "तुम्हे खो गहपति, भिक्खुसङ्घं पच्चुपट्ठिता चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन। न खो, गहपति, तावतकेनेव तुट्ठि करणीया—'मयं भिक्खुसङ्घं पच्चुपट्ठिता चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेना' ति। [N.453] तस्मातिह, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—'किन्ति मयं कालेन कालं पविवेकं पीतिं [R.207] उपसम्पज्ज विहरेय्यामा' ति! एवं हि वो, गहपति, सिक्खितब्बं" ति।

'उपासकचाण्डाल' या उपासकमल कहलाता है। किन पाँच धर्मों से? (१) जो अश्रद्धालु होता है, (२) दु:शील होता है, (३) खेल तमाशों में रुचि रखता है, (४) सांसारिक कृत्यों का ही ध्यान रखता है, धर्मसाधना का नहीं, (५) धर्मसाधना से बाह्य कृत्यों की प्राप्ति का प्रयास करता है। इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक घृणित एवं चाण्डाल कहलाता है।

२. (तथा) "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक 'उपासकरत्न', 'उपासकपद्म' एवं 'उपासकपुण्डरीक' कहलाता है। किन पाँच धर्मों से? (१) श्रद्धालु होता है; (२) शीलवान् होता है; (३) खेल तमाशों में रुचि नहीं रखता; (४) सांसारिक कृत्यों का ध्यान नहीं रखता, धर्मसाधना की ध्यान रखता है; (५) धर्मसाधना से अतिरिक्त बाह्य कृत्यों की प्राप्ति का प्रयास नहीं करता। इन पाँच धर्मों से युक्त उपासक 'उपासकरत्न', 'उपासकपुण्डरीक' एवं 'उपासकपद्म' कहलाता है॥"

६. प्रीतिसूत्र : : साधना के समय पाँच स्थान

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) पाँच सौ भिक्षुओं से घिरे हुए विराजमान थे। उसी समय अनाथपिण्डिक गृहपति उनके दर्शनार्थ आये...। भगवान् यों बोले—

२. "गृहपति! तुम चीवर, पिण्डपात, शयनासन एवं विविध ओषधियों के दान द्वारा भिक्षुसङ्घ की सेवा करते हो। इतने से ही तुमको सन्तोष नहीं कर लेना चाहिये कि हम इतने दान द्वारा सङ्घ की सेवा करते हैं; अपितु तुमको यह भी सीखना चाहिये—'हमें किस तरह समय समय पर

३. एवं वुत्ते आयस्मा सारिपुत्तो भगवन्तं एतदवोच—''अच्छरियं, भन्ते, अब्भुतं भन्ते! याव सुभासितं चिदं, भन्ते, भगवता—'तुम्हे खो, गहपति, भिक्खुसङ्घं पच्चुपट्ठिता चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्जपरिक्खारेन। न खो, गहपति, तावतकेनेव तुट्ठि करणीया—मयं भिक्खुसङ्घं पच्चुपट्ठिता चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चयभेसज्ज-परिक्खारेना ति। तस्मातिह, गहपति, एवं सिक्खितब्बं—किन्ति मयं कालेन कालं पविवेकं पीतिं उपसम्पज्ज विहरेय्यामा ति! एवं हि वो, गहपति, सिक्खितब्बं' ति। यस्मिं भन्ते, समये अरियसावको पविवेकं पीतिं उपसम्पज्ज विहरति, पञ्चस्स ठानानि तस्मिं समये न होन्ति। यं पिस्स कामूपसंहितं दुक्खं दोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यं पिस्स कामूपसंहितं सुखं सोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यं पिस्स अकुसलूपसंहितं दुक्खं दोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यं पिस्स अकुसलूप-संहित सुखं सोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यं पिस्स कुसलूपसंहितं दुक्खं दोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यस्मिं, भन्ते, समये अरियसावको पविवेकं पीतिं उपसम्पज्जं विहरति, इमानिस्स पञ्च ठानानि तस्मिं समये न होन्ती'' ति।

४. ''साधु साधु, सारिपुत्त! यस्मिं, सारिपुत्त, समये अरियसावको पविवेकं पीतिं [B.183] उपसम्पज्ज विहरति, पञ्चस्स ठानानि तस्मिं समये न होन्ति। यं पिस्स कामूप-[R.208] संहितं दुक्खं दोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यं पिस्स कामूपसंहितं सुखं सोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यं पस्सि अकुसलूपसंहितं दुक्खं दोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यं पिस्स अकुसलूपसंहितं सुखं सोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये न होति। यं पिस्स कुसलूपसंहितं दुक्खं दोमनस्सं, तं पिस्स तस्मिं समये [N.454] न होति। यस्मिं, सारिपुत्त, समये अरियसावको पविवेकं पीतिं उपसम्पज्ज विहरति, इमानिस्स पञ्च ठानानि तस्मिं समये न होन्ती'' ति॥ ●

७. वणिज्जासुत्तं : १. ''पञ्चिमा, भिक्खवे, वणिज्जा उपासकेन अकरणीया।

एकान्त साधना में रुचि उत्पन्न कर उस साधना में मन लगाना चाहिये।' ऐसे, गृहपति! तुमको यह सीखना चाहिये।

३. भगवान् द्वारा गृहपति को ऐसी शिक्षा दी जाने पर वहाँ उपस्थित आयुष्मान् सारिपुत्र ने भगवान् की शिक्षा का अनुमोदन करते हुए कहा—''आश्चर्य है, भन्ते! ...पूर्ववत्...। जिस समय कोई आर्यश्रावक साधना में मन लगाता है उस समय ये पाँच बातें उसको नहीं होतीं। (१) उसका कामभोगविषयक दु:ख दौर्मनस्य उसको उद्विग्न नहीं करता; (२) कामभोगविषयक सुख-सौमनस्य उसको उद्विग्न नहीं करता; (३) अकुशलधर्मविषयक दु:ख दौर्मनस्य उसको उद्विग्न नहीं करता; (४) अकुशलधर्मविषयक सुखसौमनस्य नहीं सताता; (५) कुशलधर्मविषयक सुख-सौमनस्य...; इस प्रकार, भन्ते! जब वह आर्यश्रावक एकान्त साधना में लीन रहता है उस समय ये पाँच बातें उसको उद्विग्न नहीं करतीं।''

कतमा पञ्च? सत्थवणिज्जा, सत्तवणिज्जा, मंसवणिज्जा, मज्जवणिज्जा, विसवणिज्जा— इमा खो, भिक्खवे, पञ्च वणिज्जा उपासकेन अकरणीया'' ति॥ ●

८. राजासुत्तं : १. ''तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु तुम्हेहि दिट्ठं वा सुतं वा—'अयं पुरिसो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो ति। तमेनं राजानो गहेत्वा पाणातिपाता वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती''' ति?

''नो हेतं, भन्ते!''

''साधु, भिक्खवे, मया पि खो एतं, भिक्खवे, नेव दिट्ठं न सुतं—'अयं पुरिसो पाणातिपातं पहाय पाणातिपाता पटिविरतो ति, तमेनं राजानो गहेत्वा पाणातिपाता वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती''' ति। अपि च, ख्वास्स तमेव पापकम्मं पवेदेन्ति—'अयं पुरिसो इत्थिं वा पुरिसं वा जीविता [R.209] वोरोपेसी ति, तमेनं राजानो गहेत्वा पाणातिपातहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा [B.184] पब्बाजेन्ति, वा यथापच्चयं वा करोन्ति। अपि नु तुम्हेहि एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा''' ति?

''दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं च सुय्यिस्सति चा'' ति।

२. ''तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु तुम्हेहि दिट्ठं वा सुतं वा—'अयं पुरिसो

''साधु सारिपुत्र! साधु! जिस समय आर्यश्रावक एकान्तसाधना में लीन रहता है, तब उसको ये पाँच बातें नहीं सतातीं। ...पूर्ववत्... ॥ ●

७. वाणिज्यसूत्र : : पाँच वाणिज्यों (व्यापारों) का निषेध

''भिक्षुओ! ये पाँच व्यापार (क्रयविक्रय) उपासक को नहीं करने चाहिये। कौन से पाँच? (१) शस्त्र का व्यापार, (२) प्राणियों का व्यापार, (३) मांस का व्यापार, (४) मद्य का व्यापार, (५) विष (या विषमिश्रित वस्तुओं) का व्यापार। भिक्षुओ! ये पाँच व्यापार उपासक को नहीं करने चाहिये॥ ●

८. राजासूत्र : : पाँच धर्म त्याज्य

१. ''तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! कि क्या तुमने कभी देखा या सुना है कि जो पुरुष प्राणातिपात को छोड़कर उससे दूर रहता है, उसको राजा पकड़वा कर मँगवा ले और उसको, प्राणातिपात से दूर रहने के कारण, मार दे, कारागार में डाल दे या देशनिकाला दे दें, या उसके साथ कारणानुसार व्यवहार करें?'' ''नहीं, भन्ते!''

''बहुत ठीक कहा, भिक्षुओ! मैंने भी ऐसा न कभी देखा न सुना कि ...पूर्ववत्...। अपितु उसी को ऐसा दण्ड देते हैं जिसने प्राणातिपात किया हो। उसको राजा लोग पकड़कर, उस हत्या के कारण, मार देते हैं, कारागार में डाल देते हैं या देशनिकाला दे देते हैं। क्या तुमने भी ऐसा सुना है, या देखा है?''

''हाँ, भन्ते! हमने देखा है, सुना है, तथा आगे भी सुना जायगा।'' (१)

२. ''तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या तुमने कभी यह देखा या सुना है कि जो अदत्तादान

अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो ति, तमेनं राजानो गहेत्वा अदिन्नादाना वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती''' ति?

[N.455] ''नो हेतं भन्ते''।

''साधु, भिक्खवे,! मया पि खो एतं, भिक्खवे, नेव दिट्ठं न सुतं—'अयं पुरिसो अदिन्नादानं पहाय अदिन्नादाना पटिविरतो ति, तमेनं राजानो गहेत्वा अदिन्नादाना वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती' ति। अपि च ख्वास्स तमेव पापकम्मं पवेदेन्ति—'अयं पुरिसो गामा वा अरञ्ञा वा अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदियी ति। तमेनं राजानो गहेत्वा अदिन्नादानहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ति। अपि नु तुम्हेहि एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा''' ति?

''दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं च सुय्यिस्सति चा'' ति।

३. ''तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु तुम्हेहि दिट्ठं वा सुतं वा—'अयं पुरिसो कामेसुमिच्छाचारं पहाय कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो ति, तमेनं राजानो गहेत्वा कामेसुमिच्छाचारा वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु, भिक्खवे,! मया पि खो एतं, भिक्खवे, नेव दिट्ठं न सुतं—'अयं पुरिसो कामेसुमिच्छाचारं पहाय कामेसुमिच्छाचारा पटिविरतो ति, तमेनं राजानो गहेत्वा कामेसु-[R.210] मिच्छाचारा वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती' ति। अपि च ख्वास्स तमेव पापकम्मं पवेदेन्ति—'अयं पुरिसो परित्थीसु परकुमारीसु चारित्तं आपज्जी ति। तमेनं राजानो गहेत्वा कामेसुमिच्छाचारहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ति। अपि नु तुम्हेहि एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा''' ति?

''दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं सुय्यिस्सति चा'' ति।

४. ''तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु तुम्हेहि दिट्ठं वा सुतं वा—'अयं पुरिसो

(चौरी) छोड़कर उससे दूर रहता है उसको राजा लोग पकड़कर ...पूर्ववत्... या देशनिकाला दे देते हैं। क्या तुमने ऐसा कभी देखा या सुना है?''

''हाँ, भन्ते! हमने देखा भी है, सुना भी है, आगे भी सुना जायगा।'' (२)

३. ''तो क्या मानते हो, भिक्षुओ!, तुमने भी कभी देखा या सुना है कि जो कोई पुरुष कामभोगों में मिथ्याचार (व्यभिचार) से दूर रहता हो उसको राजा लोग पकड़कर ...पूर्ववत्...। अपितु उसको ही ऐसा दण्ड देते हैं जो दूसरों की स्त्रियों या कुमारियों के साथ व्यभिचार करता पाया जाता है; उसी को राजा लोग ... यथानुकूल दण्ड देते हैं। क्या तुमने भी ऐसा सुना है या देखा है?''

''हाँ, भन्ते! हमने भी ऐसा देखा है, सुना है, तथा आगे भी सुनेंगे॥'' (३)

४. ''तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या तुमने भी कभी देखा या सुना है कि जो पुरुष

मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो ति, तमेनं राजानो गहेत्वा मुसावादा [B.185]
वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती''' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु, भिक्खवे! मया पि खो एतं, भिक्खवे, नेव दिट्ठं न सुतं—'अयं [N.456]
पुरिसो मुसावादं पहाय मुसावादा पटिविरतो ति, तमेनं राजानो गहेत्वा मुसावादा वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती' ति। अपि च ख्वास्स तमेव पापकम्मं पवेदेन्ति—'अयं पुरिसो गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा मुसावादेन अत्थं पभञ्जी ति। तमेनं राजानो गहेत्वा मुसावादहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ति। अपि नु तुम्हेहि एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा''' ति?

''दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं च सुय्यिस्सति चा'' ति।

५. ''तं किं मञ्ञथ, भिक्खवे, अपि नु तुम्हेहि दिट्ठं वा सुतं वा—'अयं पुरिसो सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं पहाय सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिवरतो ति। तमेनं राजानो गहेत्वा सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती' ति?

''नो हेतं, भन्ते''।

''साधु, भिक्खवे! मया पि खो एतं, भिक्खवे, नेव दिट्ठं न सुतं—'अयं पुरिसो सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं पहाय सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो ति, तमेनं [R.211]
राजानो गहेत्वा सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना वेरमणिहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ती' ति। अपि च ख्वास्स तमेव पापकम्मं पवेदेन्ति—'अयं पुरिसो सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं अनुयुत्तो इत्थिं वा पुरिसं वा जीविता वोरोपेसि; अयं पुरिसो सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं अनुयुत्तो गामा वा अरञ्ञा वा अदिन्नं थेय्यसङ्खातं आदियि; अयं पुरिसो सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं अनुयुत्तो परित्थीसु परकुमारीसु चारित्तं आपज्जि; अयं

असत्यभाषण को छोड़कर उससे दूर रहता है, उसे राजा लोग पकड़कर ...पूर्ववत्... अपितु उसी को यह दण्ड देते हैं जो असत्यभाषण का आश्रय लेकर किसी गृहपति या गृहपतिपुत्र का कार्य नष्ट कर देता है; उसी को ...पूर्ववत्... क्या तुमने भी ऐसा कभी देखा या सुना है कि नहीं''?

''हाँ, भन्ते! हमने भी ऐसा देखा है, सुना है, आगे भी देखने का अवसर मिलेगा।'' (४)

५. ''तो क्या मानते हो, भिक्षुओ! क्या तुमने कभी देखा या सुना है कि जो पुरुष मदयपान छोड़कर उससे दूर रहता है उसको राजा लोग पकड़कर वध कर देते हैं, या कारागार में डाल देते हैं, देशनिकाला दे देते हैं, या यथानुकूल अन्य दण्ड देते हैं?''

''नहीं, भन्ते!''

''ठीक ही कह रहे हो, भिक्षुओ! मैंने भी ऐसा कहीं न देखा न सुना कि किसी मदयपानत्यागी को राजा लोगों ने कभी दण्ड दिया हो। अपितु राजा लोग भी, जो पुरुष मदयपान करता है, उसको पकड़कर उस पर दोष लगाते हैं—'इसने मदयपान कर स्त्री या पुरुष की हत्या की है', 'इसने मदयपान कर ग्राम या अरण्य से चौरी की हैं', 'इसने मदयपान कर स्त्री या कुमारी के साथ

पुरिसो सुरामेरयमज्जपमादट्ठानं अनुयुत्तो गहपतिस्स वा गहपतिपुत्तस्स वा मुसावादेन अत्थं पभञ्जी ति। तमेनं राजानो गहेत्वा सुरामेरयमज्जपमादट्ठानहेतु हनन्ति वा बन्धन्ति वा पब्बाजेन्ति वा यथापच्चयं वा करोन्ति। अपि नु तुम्हेहि एवरूपं दिट्ठं वा सुतं वा''' ति?

''दिट्ठं च नो, भन्ते, सुतं वा सुय्यिस्सति चा'' ति॥ ●

[N.457,B.186] **९. गिहिसुत्तं** : १. अथ खो अनाथपिण्डिको गहपति पञ्चमत्तेहि उपासकसतेहि परिवुतो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। अथ खो भगवा आयस्मन्तं सारिपुत्तं आमन्तेसि—''यं कञ्चि, सारिपुत्त, जानेय्याथ गिहिं ओदातवसनं पञ्चसु सिक्खापदेसु संवुतकम्मन्तं चतुन्नं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभिं अकिच्छलाभिं अकसिरलाभिं, सो आकङ्खमानो अत्तना व अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीणनिरयोम्हि खीणतिरच्छानयोनि खीणपेत्तिविसयो खीणापायदुग्गतिविनिपातो, सोतापन्नोहमस्मि अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो' ति।

२. ''कतमेसु पञ्चसु सिक्खापादेसु संवुतकम्मन्तो होति? इध, सारिपुत्त, अरिय-
[R.212] सावको पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, कामेसु-मिच्छाचारा पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटि-विरतो होति। इमेसु पञ्चसु सिक्खापदेसु संवुतकम्मन्तो होति।

व्यभिचार किया है' या 'इसने मद्यपान कर असत्यभाषण द्वारा किसी गृहपति या गृहपतिपुत्र का कार्य नष्ट किया है'—तब उसको पकड़कर या तो दण्डस्वरूप उसका वध कर देते हैं, या उसको कारागार में डाल देते हैं या देशनिकाला दे देते हैं या यथानुकूल अन्य दण्ड देते हैं। क्या तुमने भी ऐसा देखा है, या सुना है?''

''हाँ, भन्ते! देखा भी है, सुना भी है, आगे भी हमें सुनने को मिल सकता है॥'' ●

९. गृहिसूत्र : : पञ्चविध सिद्ध गृहस्थजन

१. तब अनाथपिण्डिक गृहपति वहाँ आया जहाँ भगवान् (बुद्ध) पाँच सौ भिक्षुओं से घिरे हुए विराजमान थे। आकर, भगवान् को प्रणाम कर वह एक ओर बैठ गया। तब भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्र से यह कहा—''सारिपुत्र! तुम ऐसे जिस किसी श्वेतवस्त्रधारी गृहस्थजन को देखो जो पाँचों शिक्षापदों को अपने आचरण में सँजोये हुए निगृहीतकर्मा हो, चारों आध्यात्मिक भावनाओं का पूर्ण अभ्यास कर चुका हो, वह यदि चाहे तो स्वयं के विषय में यह घोषणा कर सकता है—'मेरा अब न कभी नरकपात होगा, न मैं पशुपक्षी योनि में ही जन्म लूँगा, न प्रेतयोनि में ही मुझे जाना है, अब मेरे सभी अपाय एवं दुर्गतिकारक कर्म क्षीण हो चुके हैं, मैं अब स्रोतापन्न हो चुका हूँ, अतः मैं सद्धर्म से कभी च्युत न होऊँगा। मेरा अब (कभी न कभी) सम्बोधि प्राप्त करना निश्चित है'।

२. ''किन पाँच शिक्षापदों को वह आर्यश्रावक अपने में संजोये रखता है? सारिपुत्र! वह १. प्राणातिपात से, २. अदत्तादान (चौरी) से, ३. कामभोगों के मिथ्याचार से, ४. असत्यभाषण से तथा

३. ''कतमेसं चतुन्नं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी? इध, सारिपुत्त, अरियसावको बुद्धे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'इति पि सो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो विज्जाचरणसम्पन्नो सुगतो लोकविदू अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि, सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवा' ति। अयमस्स पठमो आभिचेतसिको दिट्ठधम्मसुखविहारो अधिगतो होति अविसुद्धस्स चित्तस्स विसुद्धिया अपरियोदातस्स चित्तस्स परियोदपनाय।

४. ''पुन च परं, सारिपुत्त, अरियसावको धम्मे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो होति—'स्वाक्खातो भगवता धम्मो सन्दिट्ठिको अकालिको एहिपस्सिको ओपनेय्यिको पच्चत्तं वेदितब्बो विञ्ञूही' ति। अयमस्स दुतियो आभिचेतसिको दिट्ठधम्मसुखविहारो अधिगतो होति अविसुद्धस्स चित्तस्स विसुद्धिया अपरियोदातस्स चित्तस्स परियोदपनाय।

५. ''पुन च परं, सारिपुत्तं अरियसावको सङ्घे अवेच्चप्पसादेन समन्नागतो [B.187] होति—'सुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो उजुप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो [N.458] ञायप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो सामीचिप्पटिपन्नो भगवतो सावकसङ्घो, यदिदं चत्तारि पुरिसयुगानि अट्ठ पुरिसपुग्गला एस भगवतो सावकसङ्घो आहुनेय्यो पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा' ति। अयमस्स ततियो आभिचेतसिको दिट्ठधम्मसुखविहारो अधिगतो होति अविसुद्धस्स चित्तस्स विसुद्धिया अपरियो- [R.213] दातस्स चित्तस्स परियोदपनाय।

६. ''पुन च परं, सारिपुत्त, अरियसावको अरियकन्तेहि सीलेहि समन्नागतो होति

---

५. मद्यपान से दूर रहता है। इन पाँच शिक्षापदों को अपने में संजोये रहने के कारण वह आर्यश्रावक 'संवृतकर्मान्त' कहलाता है।

३. वह इसी जन्म में सुखदायी साधना वाली किन आध्यात्मिक चार भावनाओं का पूर्ण लाभी कहलाता है? वह आर्यश्रावक बुद्ध में श्रद्धायुक्त होकर यह चिन्तन करता है—'वे भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध... बुद्ध भगवान् हैं।' यह उसको प्रथम आध्यात्मिक भावना अधिगत होती है जो उसके अविशुद्ध चित्त को शुद्ध करने में सहायक होती है।

४. ''पुनः, सारिपुत्र! वह आर्यश्रावक धर्म में श्रद्धालु होकर यह चिन्तन करता है—'भगवान् ने अपने धर्म का व्याख्यान बहुत सुव्यवस्थित रूप से किया है ...पूर्ववत्... विद्वानों द्वारा प्रशंसित है'। यह उसको द्वितीय आध्यात्मिक भावना अधिगत होती है जो उसके अविशुद्ध चित्त को शुद्ध करने में सहायक होती है।

५. ''पुनः, सारिपुत्र! वह आर्यश्रावक सङ्घ के प्रति श्रद्धालु होकर यह चिन्तन करता है—'भगवान् का यह श्रावकसङ्घ मार्गारूढ़ है ...पूर्ववत्... लोक के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि है।' उसको यह तृतीय आध्यात्मिक भावना अधिगत होती है जो उसके अविशुद्ध चित्त को शुद्ध करने में सहायक होती है।

६. ''पुनः, सारिपुत्र! वह आर्यश्रावक आर्यों को प्रिय, अखण्ड, अछिद्र, पूर्ण, स्वतन्त्र,

अखण्डेहि अच्छिद्देहि असबलेहि अकम्मासेहि भुजिस्सेहि विञ्ञुप्पसत्थेहि अपरामट्ठेहि समाधिसंवत्तनिकेहि। अयमस्स चतुत्थो आभिचेतसिको दिट्ठधम्मसुखविहारो अधिगतो होति अविसुद्धस्स चित्तस्स विसुद्धिया अपरियोदातस्स चित्तस्स परियोदपनाय। इमेसं चतुन्नं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी।

७. "यं कञ्चि, सारिपुत्त, जानेय्याथ गिहिं ओदातवसनं—इमेसु पञ्चसु सिक्खापदेसु संवुतकम्मन्तं, इमेसं च चतुन्नं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभिं अकिच्छलाभिं अकसिरलाभिं, सो आकङ्खमानो अत्तना व अत्तानं ब्याकरेय्य—'खीणनिरयोम्हि खीणतिरच्छानयोनि खीणपेत्तिविसयो खीणापायदुग्गतिविनिपातो, सोतापन्नोहमस्मि अविनिपातधम्मो नियतो सम्बोधिपरायणो' ति।

"निरयेसु भयं दिस्वा, पापानि परिवज्जये।
अरियधम्मं समादाय, पण्डितो परिवज्जये॥
"न हिंसे पाणभूतानि, विज्जमाने परक्कमे।
मुसा च न भणे जानं, अदिन्नं न परामसे॥
"सेहि दारेहि सन्तुट्ठो, परदारं च नारमे।
मेरयं वारुणिं जन्तु, न पिवे चित्तमोहनिं॥
[B.188] "अनुस्सरेय्य सम्बुद्धं, धम्मं चानुवितक्कये।
अब्यापज्झं हि तं चित्तं, देवलोकाय भावये॥
"उपट्ठिते देय्यधम्मे, पुञ्ञत्थस्स जिगीसतो।
सन्तेसु पठमं दिन्ना, विपुला होति दक्खिणा॥

समाधि भावना में उपयोगी शील से समन्वित रहता है। यह उसको चतुर्थ आध्यात्मिक भावना अधिगत होती है, जो उसके अविशुद्ध चित्त को शुद्ध करने में सहायक होती है। इन चारों भावनाओं की पूर्ति से वह आध्यात्मिक साधना का पूर्ण लाभी हो जाता है।

७. "अतः, सारिपुत्र! तुम जब कभी ऐसे श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थ जन को देखो ...पूर्ववत्... मेरा अब (कभी न कभी) सम्बोधि प्राप्त करना निश्चित ही है।

"नरकपात का भय देखकर पाप कर्मों से दूर रहे। बुद्धिमान् पुरुष आर्यधर्म स्वीकार कर इन पापकर्मों को त्याग दे॥

"बल का प्रयोग कर किसी प्राणी की हत्या न करे। जानबूझकर असत्य न बोले, न दूसरे की चौरी करे॥

"अपनी स्त्री से ही सन्तुष्ट रहे, दूसरों की स्त्री में राग न करे। चित्त को उन्मत्त करने वाली सुरा का पान न करे॥

"सम्यक्सम्बुद्ध का अनुस्मरण करे, धर्म का चिन्तन करे। चित्त में किसी के प्रति द्वेष न करते हुए देवलोक की भावना करे॥

"सन्तो हवे पवक्खामि, सारिपुत्त सुणोहि मे। [N.459]
इति कण्हासु सेतासु, रोहिणीसु हरीसु वा॥ [R.214]
"कम्मासासु सरूपासु, गोसु पारेवतासु वा।
यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति पुङ्गवो॥
"धोरय्हो बलसम्पन्नो, कल्याणजवनिक्कमो।
तमेव भारे युञ्जन्ति, नास्स वण्णं परिक्खरे॥
"एवमेव मनुस्सेसु, यस्मिं किस्मिञ्चि जातिये।
खत्तिये ब्राह्मणे वेस्से, सुद्दे चण्डालपुक्कुसे॥
"यासु कासुचि एतासु, दन्तो जायति सुब्बतो।
धम्मट्ठो सीलसम्पन्नो, सच्चवादी हिरीमनो॥
"पहीनजातिमरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली।
पन्नभारो विसंयुत्तो, कतकिच्चो अनासवो॥
"पारगू सब्बधम्मानं, अनुपादाय निब्बुतो।
तस्मिं च विरजे खेत्ते, विपुला होति दक्खिणा॥
"बाला च अविजानन्ता, दुम्मेधा अस्सुताविनो।
बहिद्धा ददन्ति दानानि, न हि सन्ते उपासरे॥

"पुण्य चाहने वाले दाता द्वारा दान के योग्य वस्तु सन्तों को दिये जाने पर, उस दान का फल अतिशय विशाल हो जाता है॥

सन्त के लक्षण—"सारिपुत्र! ये सन्त कौन है?—यह तुम्हें बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। वे हैं—काली, सफेद, रोहिणी (चितकबरी)॥

"कल्माष (धूसर रंग की) या ऐसी ही किसी अन्य रंग की गौएँ, कबूतर—या ऐसे ही कोई अन्य निरीह प्राणी—इनको दान करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ कहलाता है॥

"लोग ऐसे ही बैल को गाड़ी में जोतते हैं जो बलवान् हो, जिसका स्वभाव तथा उत्साह कल्याणमय हो। उसका उस समय वर्ण नहीं देखा जाता॥

"इसी प्रकार, मनुष्य जातियों में—क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, चाण्डाल, पुल्कस—

"किसी भी जाति में सुव्रत एवं दानी पुरुष हो सकता है या धर्मपालक, शीलवान्, सत्यवादी, लज्जालु हो सकता है।

"जिसका जन्म-मरण प्रहीण हो चुका है, धर्मसाधना पूर्ण हो चुकी है, ज्ञानवान् है, जिसने सांसारिक भार कन्धों से उतार फेंका है, संसार से पृथक् हो चुका है, कृतकृत्य एवं निर्विकार हैं॥

"सभी धर्मों से पार जा चुका है, अपरिग्रही है, निर्वाण प्राप्त है—ऐसे पुरुष को दिया गया दान भी अतिशय फलदायी होता है॥

"परन्तु यहाँ शास्त्र को न जानने वाले मूर्ख लोग चाहे जिसको दान देते रहते हैं, वे इन उपर्युक्त सन्तों की उपासना नहीं करते॥

"ये च सन्ते उपासन्ति, सप्पञ्ञे धीरसम्मते।
सद्धा च नेसं सुगते, मूलजाता पतिट्ठिता॥
"देवलोकं च ते यन्ति, कुले वा इध जायरे।
अनुपुब्बेन निब्बानं, अधिगच्छन्ति पण्डिता" ति॥

[B.189] **१०. गवेसीसुत्तं** : १. एकं समयं भगवा कोसलेसु चारिकं चरति महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं। अद्दसा खो भगवा अद्धानमग्गप्पटिपन्नो अञ्ञतरस्मिं पदेसे महन्तं सालवनं; दिस्वान मग्गा ओक्कम्म येन तं सालवनं तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तं सालवनं अज्झोगाहेत्वा अञ्ञतरस्मिं पदेसे सितं पात्वाकासि।

[N.460] २. अथ खो आयस्मतो आनन्दस्स एतदहोसि—"को नु खो हेतु को पच्चयो भगवतो सितस्स पातुकम्माय? न अकारणेन तथागता सितं पातुकरोन्ती" ति! [R.215] अथ खो आयस्मा आनन्दो भगवन्तं एतदवोच—"को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो भगवतो सितस्स पातुकम्माय? न अकारणेन तथागता सितं पातुकरोन्ती" ति!

३. "भूतपुब्बं, आनन्द, इमस्मिं पदेसे नगरं अहोसि इद्धं चेव फीतं च बहुजनं आकिण्णमनुस्सं। तं खो पनानन्द, नगरं कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो उपनिस्साय विहासि। कस्सपस्स खो पनानन्द, भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स गवेसी नाम उपासको अहोसि सीलेसु अपरिपूरकारी। गवेसिना खो, आनन्द, उपासकेन पञ्चमत्तानि उपासक-सतानि पटिदेसितानि समादपितानि अहेसुं सीलेसु अपरिपूरकारिनो। अथ खो, आनन्द,

---

"जो पुरुष इन प्रज्ञासम्पन्न, धीर सन्तों की उपासना करते हैं, जिनकी सुगत में अविचल श्रद्धा है॥

वे इस सत्कर्म के फलस्वरूप देवलोक में सुख भोगते हैं, या इस संसार में धनधान्यसम्पन्न उच्चकुल में उत्पन्न होते हैं। और वे बुद्धिमान् लोग निर्वाण ही प्राप्त कर लेते हैं॥"

१०. गवेषीसूत्र : : पाँच सौ उपासकों का साधना में उत्तरोत्तर प्रयास

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) कौसल देश में विशाल भिक्षुसङ्घ के साथ चारिका कर रहे थे। इसी बीच भगवान् ने मार्ग में किसी प्रदेश में एक बहुत बड़ा सालवन देखा। उसे देखकर, मार्ग छोड़कर, भगवान् उस सालवन में गये। जाकर उस सालवन में प्रविष्ट होकर किसी प्रदेश में विराजमान होकर स्मित हास्य करने लगे।

२. तब आयुष्मान् आनन्द को यह विचार हुआ—"भगवान् के इस स्मित हास्य के पीछे अवश्य कोई कारण होगा; क्योंकि तथागत अकारण नहीं मुस्कराते!" अत: आयुष्मान् आनन्द ने भगवान् से अपनी जिज्ञासा प्रकट की—"भन्ते! आपके इस समय इस मुस्कराने का क्या कारण है? तथागत तो अकारण नहीं मुस्कराया करते?"

३. "आनन्द! पहले कभी इस प्रदेश में बहुत बड़ा नगर था, जो धनधान्यसम्पन्न एवं बहुजनाकीर्ण था। इसी नगर के पास भगवान् काश्यप अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध ने साधना की थी। उन भगवान् काश्यप अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का गवेषी नामक उपासक था जो शीलपालन में दुर्बल था।

गवेसिस्स उपासकस्स एतदहोसि—'अहं खो इमेसं पञ्चन्नं उपासकसतानं बहूपकारो पुब्बङ्गमो समादपेता, अहं चम्हि सीलेसु अपरिपूरकारी, इमानि च पञ्च उपासकसतानि सीलेसु अपरिपूरकारिनो। इच्चेतं समसमं, नत्थि किञ्चि अतिरेकं; हन्दाहं अतिरेकाया' ति।

४. ''अथ खो, आनन्द, गवेसी उपासको येन तानि पञ्च उपासकसतानि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तानि पञ्च उपासकसतानि एतदवोच—'अज्जतग्गे मं आयस्मन्तो सीलेसु परिपूरकारिं धारेथा' ति! अथ खो, आनन्द तेसं पञ्चन्नं [B.190] उपासकसतानं एतदहोसि—'अय्यो खो गवेसी अम्हाकं बहूपकारो समादपेता। अय्यो हि नाम गवेसी सीलेसु परिपूरकारी भविस्सति। किमङ्गं पन मयं' ति! अथ खो, आनन्द, तानि पञ्च उपासकसतानि येन गवेसी उपासको तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा गवेसिं उपासकं एतदवोचुं—'अज्जतग्गे अय्यो गवेसी इमानि पि पञ्च उपासकसतानि सीलेसु परिपूरकारिनो धारेतू' ति। अथ खो, आनन्द, गवेसिस्स उपासकस्स एतदहोसि—'अहं खो इमेसं पञ्चन्नं उपासकसतानं बहूपकारो पुब्बङ्गमो समादपेता, अहं चम्हि सीलेसु परिपूरकारी, इमानि पि पञ्च उपासकसतानि सीलेसु परिपूरकारिनो। इच्चेतं समसमं, नत्थि किञ्चि अतिरेकं; हन्दाहं अतिरेकाया' ति! [R.216]

५. ''अथ खो, आनन्द, गवेसी उपासको येन तानि पञ्च उपासकसतानि [N.461] तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तानि पञ्च उपासकसतानि एतदवोच—'अज्जतग्गे मं आयस्मन्तो ब्रह्मचारिं धारेथ आराचारिं विरतं मेथुना गामधम्मा' ति। अथ खो, आनन्द,

---

गवेषी ने अपने पाँच सौ साथी उपासक तय्यार कर रखे थे, परन्तु वे भी शील की पूर्ति में दुर्बल ही थे। आनन्द! तब गवेषी उपासक को यह विचार हुआ—'मैंने इन पाँच सौ उपासकों का बहुत उपकार किया है, मैं इनका मुखिया और मार्गदर्शक भी हूँ; परन्तु मैं भी शील की पूर्ति में दुर्बल हूँ, और ये पाँच सौ उपासक भी दुर्बल है। इस तरह दोनों में समानता है, कोई विशेषता नहीं है; क्यों न मैं अपने में कुछ विशेषता अर्जित करूँ!'

४. ''तब, आनन्द! गवेषी उपासक अपने उन पाँच सौ साथियों के पास गया और बोला—'आयुष्मानो! आज से तुम मुझको शील का पूर्तिकारी समझना।' तब, आनन्द! उन पाँच सौ उपासकों के मन में यह विचार हुआ—'ये आर्यगवेषी हमारे बहुत उपकारक रहे हैं, हमारे मुखिया एवं मार्गदर्शक भी हैं। आर्य यदि शील के पूर्तिकर्ता हो रहे हैं तो हम भी ऐसा क्यों न करें!' तब, आनन्द! वे पाँच सौ उपासक गवेषी उपासक के पास जाकर यह बोले—'आर्य गवेषिन्! आज से हम पाँच सौ उपासकों को भी आप शील के पूर्तिकर्ता समझें।' तब आनन्द! उस गवेषी उपासक को यह विचार हुआ—'मैंने इन पाँच सौ उपासकों का ...पूर्ववत्... अब दोनों ही पक्ष शील के पूरक बन गये। अब हम दोनों में कोई विशेषता नहीं रही। अतः मुझे अपने में इनसे कुछ विशेषता लानी चाहिये!'

५. ''तब, आनन्द! वह गवेषी उपासक अपने... पास गया और बोला—'आयुष्मानो! आज से आप मुझको ब्रह्मचारी अर्थात् स्त्रियों के साथ मैथुन धर्म से दूर रहने वाला समझें।' तब

तेसं पञ्चन्नं उपासकसतानं एतदहोसि—'अय्यो खो गवेसी अम्हाकं बहूपकारो पुब्बङ्गमो समादपेता। अय्यो हि नाम गवेसी ब्रह्मचारी भविस्सति आराचारी विरतो मेथुना गामधम्मा। किमङ्गं पन मयं' ति! अथ खो, आनन्द तानि पञ्च उपासकसतानि येन गवेसी उपासको तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा गवेसिं उपासकं एतदवोचुं—'अज्जतग्गे अय्यो गवेसी इमानि पि पञ्च उपासकसतानि ब्रह्मचारिनो धारेतु आराचारिनो विरते मेथुना गामधम्मा' ति। अथ खो, आनन्द, गवेसिस्स उपासकस्स एतदहोसि—'अहं खो इमेसं पञ्चन्नं उपासकसतानं बहूपकारो पुब्बङ्गमो समादपेता। अहं चम्हि सीलेसु परिपूरकारी। इमानि पि पञ्च उपासकसतानि ब्रह्मचारिनो आराचारिनो विरता मेथुना गामधम्मा। इच्चेतं समसमं, नत्थि किञ्चि अतिरेकं; हन्दाहं अतिरेकाया' ति।

६. "अथ खो, आनन्द, गवेसी उपासको येन तानि पञ्च उपासकसतानि तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा तानि पञ्च उपासकसतानि एतदवोच—'अज्जतग्गे मं [B.191] आयस्मन्तो एकभत्तिकं धारेथ रत्तूपरतं विरतं निकालभोजना' ति। अथ खो, आनन्द, तेसं पञ्चन्नं उपासकसतानं एतदहोसि—'अय्यो खो गवेसी अम्हाकं बहूपकारो पुब्बङ्गमो समादपेता। अय्यो हि नाम गवेसी एकभत्तिको भविस्सति रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना। किमङ्गं पन मयं' ति! अथ खो, आनन्द, तानि पञ्च उपासकसतानि येन गवेसी उपासको तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा गवेसिं उपासकं एतदवोचुं—[R.217] 'अज्जतग्गे अय्यो गवेसी इमानि पि पञ्च उपासकसतानि एकभत्तिके धारेतु रत्तूपरते विरते विकालभोजना' ति। अथ खो, आनन्द, गवेसिस्स उपासकस्स एतदहोसि—'अहं खो इमेसं पञ्चन्नं उपासकसतानं बहूपकारो पुब्बङ्गमो समादपेता। अहं चम्हि सीलेसु [N.462] परिपूरकारी। इमानि पि पञ्च उपासकसतानि सीलेसु परिपूरकारिनो। अहं चम्हि ब्रह्मचारी आराचारी विरतो मेथुना गामधम्मा। इमानि पि पञ्च उपासकसतानि ब्रह्मचारिनो

आनन्द! उन पाँच सौ उपासकों को यह विचार हुआ—'आर्यगवेषी... आज से ब्रह्मचारी अर्थात् स्त्रियों के साथ मैथुन धर्म से दूर रहने वाले हो गये, तो हम भी क्यों न इस व्रत का पालन करें।' तब आनन्द! वे पाँच सौ उपासक... पूर्ववत्... 'हम पाँच सौ उपासकों को भी आप ब्रह्मचर्य व्रत का पालक समझें'। तब, आनन्द! गवेषी उपासक को यह विचार हुआ—'मैंने इन पाँच सौ उपासकों का बहुत उपकार किया है ...पूर्ववत्... तो क्यों न मैं इनसे कुछ अतिरिक्त विशेषता प्राप्त करूँ।'

६. "तब, आनन्द! वह गवेषी उपासक अपने उन पाँच सौ साथी गवेषकों के पास गया, तथा यह बोला—'आज से आप लोग मुझको एक समय भोजन करने वाला समझें; अब मैं न रात्रि में कुछ खाऊँगा और न असमय (विकाल) में ही।' ...तब, आनन्द! वे पाँच सौ उपासक उस गवेषी के पास गये और यह बोले—'आर्य! आज से हम लोगों को भी एक समय भोजनव्रतधारी समझें।' तब, आनन्द! उस गवेषी को यह विचार हुआ—'मैंने इन पाँच सौ उपासकों का बहुत उपकार किया है ...पूर्ववत्... तो क्यों न मैं इनसे कुछ विशेषता प्राप्त करूँ।'

आराचारिनो विरता मेथुना गामधम्मा। अहं चम्हि एकभत्तिको रत्तूपरतो विरतो विकालभोजना। इमानि पि पञ्च उपासकसतानि एकभत्तिका रत्तूपरता विरता विकालभोजना। इच्चेतं समसमं, नत्थि किञ्चि अतिरेकं; हन्दाहं अतिरेकाया' ति।

७. ''अथ खो, आनन्द, गवेसी उपासको येन कस्सपो भगवा अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोच—'लभेय्याहं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं लभेय्यं उपसम्पदं' ति। अलत्थ खो, आनन्द, गवेसी उपासको कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सन्तिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्पन्नो खो पनानन्द, गवेसी भिक्खु एको वूपकट्ठो अप्पमत्तो आतापी पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहासि। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञासि। अञ्ञतरो च पनानन्द, गवेसी भिक्खु अरहतं अहोसि।

८. ''अथ खो, आनन्द, तेस पञ्चन्नं उपासकसतानं एतदहोसि—'अय्यो खो गवेसी अम्हाकं बहूपकारो पुब्बङ्गमो समादपेता। अय्यो हि नाम गवेसी केसमस्सुं [B.192] ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजिस्सति। किमङ्गं पन मयं' ति! अथ खो, आनन्द, तानि पञ्च उपासकसतानि येन कस्सपो भगवा [R.218] अरहं सम्मासम्बुद्धो तेनुपसङ्कमिंसु; उपसङ्कमित्वा कस्सपं भगवन्तं अरहन्तं सम्मासम्बुद्धं एतदवोचुं—'लभेय्याम मयं, भन्ते, भगवतो सन्तिके पब्बज्जं, लभेय्याम उपसम्पदं' ति। अलभिंसु खो, आनन्द, तानि पञ्च उपासकसतानि कस्सपस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स सन्तिके पब्बज्जं, अलभिंसु उपसम्पदं।

९. ''अथ खो, आनन्द, गवेसिस्स भिक्खुनो एतदहोसि—'अहं खो इमस्स

---

७. ''तब, आनन्द! वह गवेषी उपासक, जहाँ भगवान् काश्यप अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध विराजमान थे वहाँ गया, तथा यह निवेदन किया—'अच्छा हो, भन्ते! मैं आपसे प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त करूँ।' तब, आनन्द! उस गवेषी उपासक ने भगवान् काश्यप ... से प्रव्रज्या उपसम्पदा प्राप्त की। तथा प्रव्रज्या, उपसम्पदा प्राप्त कर वह गवेषी उपासक एकान्त साधना करता हुआ ...पूर्ववत्...। तब, आनन्द! वह गवेषी भिक्षु उस समय के अर्हतों में एक गिना जाने लगा।

८. ''तब, आनन्द! उन पाँच सौ उपासकों को भी यह विचार हुआ—'आर्य गवेषी हमारे बहूपकारक एवं मार्गद्रष्टा रहे, परन्तु वे अब दाढ़ी मूँछ मुँड़वाकर, काषाय वस्त्र पहनकर घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो गये। तो हम भी क्यों न उनके समान प्रव्रज्या ग्रहण कर लें।' तब आनन्द! वे पाँच सौ उपासक भी भगवान् काश्यप अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध की सेवा में पहुँचे तथा उनसे प्रव्रज्या देने के लिये निवेदन किया। तब आनन्द! उन पाँच सौ उपासकों ने भी भगवान् काश्यप से प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा प्राप्त की।

अनुत्तरस्स विमुत्तिसुखस्स निकामलाभी होमि अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। अहो [N.463] वतिमानि पि पञ्च भिक्खुसतानि इमस्स अनुत्तरस्स विमुत्तिसुखस्स निकामलाभिनो अस्सु अकिच्छलाभिनो अकसिरलाभिनो ति। अथ खो, आनन्द, तानि पञ्च भिक्खुसतानि वूपकट्ठा अप्पमत्ता आतापिनो पहितत्ता विहरन्ता नचिरस्सेव—यस्सत्थाय कुलपुत्ता सम्मदेव अगारस्मा अनगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं—ब्रह्मचरियपरियोसानं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरिंसु। 'खीणा जाति, वुसितं ब्रह्मचरियं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया' ति अब्भञ्ञिंसु।

१०. ''इति खो, आनन्द, तानि पञ्च भिक्खुसतानि गवेसीपमुखानि उत्तरुत्तरि पणीतपणीतं वायममाना अनुत्तरं विमुत्तिं सच्छाकंसु। तस्मातिह, आनन्द, एवं सिक्खितब्बं—'उत्तरुत्तरि पणीतपणीतं वायममाना अनुत्तरं विमुत्तिं सच्छिकरिस्सामा' ति। एवं हि वो, आनन्द, सिक्खितब्बं'' ति॥ ●

उपासकवग्गो अट्ठारसमो॥

तस्सुद्दानं

सारज्जं विसारदो निरयं, वेरं चण्डालपञ्चमं। [R.219]
पीति वणिज्जा राजानो, गिही चेव गवेसिना ति॥ ●

---

९. ''तब, आनन्द! गवेषी भिक्षु को यह विचार हुआ—'मैं इस अद्वितीय विमुक्तिसुख का लाभकर्ता हो चुका हूँ। क्या ही अच्छा हो कि ये पाँच सौ भिक्षु भी मेरे ही समान इस अद्वितीय विमुक्तिसुख के लाभकर्ता हो जायँ।' तब, आनन्द! वे पाँच सौ भिक्षु एकान्त साधना करते हुए ...पूर्ववत्... यह विमुक्तिज्ञान कर सके।

१०. ''इस प्रकार, आनन्द! गवेषी सहित वे पाँचसौ भिक्षु प्रतिदिन उत्तम से उत्तम प्रयास करते हुए अद्वितीय विमुक्तिसुख का साक्षात्कार (अनुभव) कर सके। अत: आनन्द! तुम लोगों को भी (इस उदाहरण से) यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—'हम प्रतिदिन उत्तम से उत्तम प्रयास करते हुए एक दिन अवश्य उस अद्वितीय विमुक्तिसुख का साक्षात्कार कर सकेंगे।' आनन्द! तुम लोगों को यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये॥'' ●

उपासकवर्ग अष्टादश सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. सारद्यसूत्र, २. विशारदसूत्र, ३. निरयसूत्र, ४. वैरसूत्र, ५. चाण्डालसूत्र, ६. प्रीतिसूत्र, ७. वाणिज्यसूत्र, ८. राजासूत्र, ९. गृहिसूत्र, एवं १०. गवेषीसूत्र॥ ●

१९. अरञ्ञवग्गो

१. आरञ्ञिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आरञ्ञिका। कतमे [B.193] पञ्च? मन्दत्ता मोमूहत्ता आरञ्ञिको होति, पापिच्छो इच्छापकतो आरञ्ञिको होति, उम्मादा चित्तक्खेपा आरञ्ञिको होति, वण्णितं बुद्धेहि बुद्धसावकेही ति आरञ्ञिको होति, अप्पिच्छतंयेव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय पविवेकंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय आरञ्ञिको होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आरञ्ञिका। इमेसं खो, भिक्खवे, पञ्चन्नं आरञ्ञिकानं य्वायं आरञ्ञिको अपिच्छतं येव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय पविवेकंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय [N.464] आरञ्ञिको होति, अयं इमेसं पञ्चन्नं आरञ्ञिकानं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च।

२. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो तत्थ अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं आरञ्ञिकानं य्वायं आरञ्ञिको अप्पिच्छतंयेव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय पविवेकंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय आरञ्ञिको होति, अयं इमेसं पञ्चन्नं आरञ्ञिकानं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो चा'' ति॥ ●

---

१९. अरण्यवर्ग [1]

पाँच आरण्यक धर्म

: :

१. आरण्यकसूत्र

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच आरण्यक (अरण्य=वन में वास करने वाले) होते हैं। कौन से पाँच? (१) कोई मूर्खता और मोह के कारण अरण्यवास करता है, (२) कोई मन में अपनी किसी पापवासना के कारण अरण्यवास करता है, (३) कोई उन्माद एवं चित्तविक्षेप के कारण वन में घूमता है, (४) कोई बुद्ध एवं बुद्धश्रावकों ने इसकी प्रशंसा की है—इसलिये अरण्यवास करता है, तथा (५) कोई (क) अल्पेच्छता, (ख) सन्तोष, (ग) सल्लेख, (घ) प्रविवेक (एकान्त), एवं (ङ) इदमर्थिता (इस प्रयोजन) के कारण अरण्यवास करता है। भिक्षुओ! ये पाँच आरण्यक होते हैं। इन पाँचों आरण्यकों में से जो आरण्यक अल्पेच्छता, सन्तोष, सल्लेख, प्रविवेक एवं इदमर्थिता के कारण अरण्यवास करता है वही इनमें अग्र, प्रमुख, उत्तम एवं प्रवर (श्रेष्ठ) कहलाता है।

२. भिक्षुओ! जैसे गौ से दूध, दूध से दही, दही से नवनीत (मक्खन), नवनीत से सर्पि (घी) तथा सर्पि से सर्पिमण्ड (अग्नि पर तपाया हुआ घी) उत्तरोत्तर क्रमशः उत्तम कहलाते हैं; उसी तरह, भिक्षुओ! इन पाँचों आरण्यकों में से जो आरण्यक अल्पेच्छता आदि पाँच गुणों के कारण आरण्यक बनता है, वही इन पाँचों आरण्यकों में अग्र, प्रमुख, उत्तम एवं प्रवर कहलाता है॥'' ●

---

१. इस समस्त अरण्यवर्ग का विस्तृत व्याख्यान आचार्य बुद्धघोषरचित **विसुद्धिमग्ग** के **२. धुतङ्गपरिच्छेद** प्रकरण (बौ०भा० ग्रन्थमाला-११) में देखें।—स०

२. चीवरसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, पंसुकूलिका। कतमे पञ्च? मन्दत्ता मोमूहत्ता पंसुकूलिको होति ...पे०.. इदमत्थितंयेव निस्साय पंसुकूलिको होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पंसुकूलिका'' ति॥

●

३. रुक्खमूलिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, रुक्खमूलिका। कतमे पञ्च? मन्दत्ता मोमूहत्ता रुक्खमूलिको होति ...पे०.. इदमत्थितंयेव निस्साय रुक्खमूलिको होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च रुक्खमूलिका'' ति॥

●

[B.194,R.220] **४. सोसानिकसुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, सोसानिका। कतमे पञ्च? मन्दत्ता मोमूहत्ता सोसानिको होति ...पे०.. इदमत्थितंयेव निस्साय सोसानिको होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च सोसानिका'' ति॥

●

५. अब्भोकासिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, अब्भोकासिका ...पे०... इमे खो, भिक्खवे, पञ्च अब्भोकासिका'' ति॥

●

[N.465] **६. नेसज्जिकसुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, नेसज्जिका ...पे०... नेसज्जिका'' ति॥

●

७. यथासन्थतिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, यथासन्थतिका ...पे०... यथासन्थतिका'' ति॥

●

---

२. चीवरसूत्र : : पञ्चविध पाँशुकूलिक धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच 'पांशुकूलिक' साधक कहलाते हैं। कौन से पाँच? (१) कोई मूर्खता एवं मोह के कारण पांशुकूलिक बनता है ...पूर्ववत्... (५) इदमर्थिता (कोई एक विशेष प्रयोजन) के कारण पांशुकूलिक बनता है। भिक्षुओ! ये पांशुकूलिक होते हैं॥''

●

३. वृक्षमूलिकसूत्र : : पाँच वृक्षमूलिक घर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच 'वृक्षमूलिक' साधक कहलाते हैं। कौन से पाँच? (१) कोई मूर्खता एवं मोह के कारण वृक्षमूलिक बनता है ...पूर्ववत्... (५) इदमर्थिता के कारण वृक्षमूलिक बनता है। भिक्षुओ! ये पाँच वृक्षमूलिक होते हैं।

●

४. श्माशानिकसूत्र : : पाँच श्माशानिक धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच 'श्माशानिक' (श्मशान में साधना करने वाले) साधक कहलाते हैं। कौन से पाँच? (१) मन्दता एवं मोह के कारण कोई श्माशानिक बनता है ... (५) इदमर्थिता के कारण 'श्माशानिक' बनता है। भिक्षुओ! ये पाँच श्माशानिक होते हैं॥''

●

५. आभ्यवकाशिकसूत्र : : पाँच आभ्यवकाशिक धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच 'आभ्यवकाशिक' (खुले आकाश के नीचे साधना करने वाले) ...पूर्ववत्...। भिक्षुओ! ये पाँच आभ्यवकाशिक कहलाते हैं॥''

●

६. नैषदियकसूत्र : : पाँच नैषदियक धर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच नैषदियक (निरन्तर बैठे रहकर साधना करने वाले) ...पूर्ववत्... नैषदियक कहलाते हैं॥''

●

८. एकासनिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, एकासनिका ...पे०... एकासनिका'' ति॥ ●

९. खलुपच्छाभत्तिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, खलुपच्छाभत्तिका ...पे०... खलुपच्छाभत्तिका'' ति॥ ●

१०. पत्तपिण्डिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, पत्तपिण्डिका। कतमे पञ्च? मन्दत्ता मोमूहत्ता पत्तपिण्डिको होति, पापिच्छो इच्छापकतो पत्तपिण्डिको होति, उम्मादा चित्तक्खेपा पत्तपिण्डिको होति, 'वण्णितं बुद्धेहि बुद्धसावकेही' ति पत्तपिण्डिको होति, अप्पिच्छतंयेव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय पविकंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय पत्तपिण्डिको होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पत्तपिण्डिका इमेसं खो, भिक्खवे, पञ्चन्नं पत्तपिण्डिकानं य्वायं पत्तपिण्डिको अप्पिच्छतं येव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय सल्लेखंयेव निस्साय पविवेकंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव [B.195] निस्साय पत्तपिण्डिको होति, अयं इमेसं पञ्चन्नं पत्तपिण्डिकानं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो च।

२. ''सेय्यथापि, भिक्खवे, गवा खीरं, खीरम्हा दधि, दधिम्हा नवनीतं, नवनीतम्हा सप्पि, सप्पिम्हा सप्पिमण्डो तत्थ अग्गमक्खायति; एवमेव खो, भिक्खवे, इमेसं पञ्चन्नं पत्तपिण्डिकानं य्वायं पत्तपिण्डिको अप्पिच्छतंयेव निस्साय सन्तुट्ठिंयेव निस्साय [R.221] सल्लेखंयेव निस्साय पविवेकंयेव निस्साय इदमत्थितंयेव निस्साय पत्तपिण्डिको [N.466]

पाँच यथाश्रन्थतिक धर्म

७. यथाश्रन्थतिकसूत्र : :

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच भिक्षु यथाश्रन्थतिक ...पूर्ववत्... यथाश्रन्थतिक... ॥'' ●

पाँच ऐकासनिक धर्म

८. ऐकासनिकसूत्र : :

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच ऐकासनिक ...पूर्ववत्... ऐकासनिक... ॥'' ●

पाँच खलुपश्चाद्भक्तिक धर्म

९. खलुपश्चाद्भक्तिकसूत्र : :

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच खलुपश्चाद्भक्तिक ...पूर्ववत्... खलुपश्चाद्भक्तिक... ॥'' ●

पाँच पात्रपिण्डिक धर्म

१०. पात्रपिण्डिकसूत्र : :

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच पात्रपिण्डिक भिक्षु कहलाते हैं। कौन से पाँच? (१) कोई मन्दता एवं मोह के कारण पात्रपिण्डिक होता है। (२) कोई मन से छिपी किसी पापवासना के कारण पात्रपिण्डिक होता है। (३) कोई उन्माद एवं चित्तविक्षेप के कारण ...। (४) कोई 'बुद्ध या बुद्धश्रावक ने इसके माहात्म्य का वर्णन किया है'—इसलिये पात्रपिण्डिक होता है। (५) या कोई अल्पेच्छता, सन्तुष्टि, सल्लेख, प्रविवेक एवं इदमर्थिता (किसी एक विशेष प्रयोजन) के कारण पात्रपिण्डिक बनता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! ये पाँच 'पात्रपिण्डिक' होते हैं। इनमें जो अल्पेच्छता आदि के कारण बना पञ्चम पिण्डपातिक भिक्षु है वही इन सबमें अग्र, प्रमुख, उत्तम एवं श्रेष्ठ होता है।

होति, अयं इमेसं पञ्चन्नं पत्तपिण्डिकानं अग्गो च सेट्ठो च मोक्खो च उत्तमो च पवरो चा'' ति॥

अरञ्ञवग्गो एकनवीसमो॥

तस्सुद्दानं

अरञ्ञं चीवरं रुक्खं, सुसानं अब्भोकासिकं।
नेसज्जं सन्थतं एकासनिकं, खलुपच्छापिण्डिकेन चा ति॥

२०. ब्राह्मणवग्गो

१. सोणसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, पोराणा ब्राह्मणधम्मा एतरहि सुनखेसु सन्दिस्सन्ति, नो ब्राह्मणेसु। कतमे पञ्च? पुब्बे सुदं, भिक्खवे, ब्राह्मणा ब्राह्मणिंयेव गच्छन्ति, नो अब्राह्मणिं। एतरहि, भिक्खवे, ब्राह्मणा ब्राह्मणिं पि गच्छन्ति, अब्राह्मणिं पि गच्छन्ति। एतरहि, भिक्खवे, सुनखा सुनखिंयेव गच्छन्ति, नो असुनखिं। अयं, भिक्खवे, पठमो पोराणो ब्राह्मणधम्मो एतरहि सुनखेसु सन्दिस्सन्ति, नो ब्राह्मणेसु।

---

२. जैसे भिक्षुओ! गौ से दूध, दूध से दही ...पूर्ववत्... श्रेष्ठ कहलाते हैं॥''

अरण्यवर्ग उन्नीसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आरण्यकसूत्र, २. चीवर (पांसुकूलिक) सूत्र, ३. वृक्षमूलिक सूत्र, ४. श्मशानिकसूत्र, ५. आभ्यवकाशिक सूत्र, ६. नैषद्यिकसूत्र, ७. यथाश्रन्थतिकसूत्र, ८. ऐकासनिकसूत्र, ९. खलुपश्चाद्भक्तिकसूत्र एवं १०. पात्रपिण्डकसूत्र॥

२०. ब्राह्मणवर्ग

१. सोण (श्वन्=कुत्ता) सूत्र : : पाँच ब्राह्मणधर्म

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच पुराने ब्राह्मणधर्म अब केवल कुत्तों में पाये जाते हैं, ब्राह्मणों में नहीं। कौन से पाँच? भिक्षुओ! पहले ब्राह्मण लोग ब्राह्मणी के साथ ही संवास (मैथुन) करते थे, किसी अब्राह्मणी के साथ नहीं। आज ये ब्राह्मण ब्राह्मणी के साथ भी संवास करते हैं, अब्राह्मणी के साथ भी। (परन्तु) कुत्ते आज भी कुतिया के साथ ही संवास करते हैं, अन्य पशुजाति की किसी नारी (असुनखी) के साथ नहीं। इस प्रकार, भिक्षुओ! ब्राह्मणों का यह प्राचीन प्रथम धर्म अब कुत्तों में ही पाया जाता है, कुत्तों में नहीं। (१)

२. ''पुब्बे सुदं, भिक्खवे, ब्राह्मणा ब्राह्मणिं उतुनिंयेव गच्छन्ति, नो अनुतुनिं। एतरहि, भिक्खवे, ब्राह्मणा ब्राह्मणिं उतुनिं पि गच्छन्ति, अनुतुनिं पि गच्छन्ति। [R.222] एतरहि, भिक्खवे, सुनखा सुनखिं उतुनिंयेव गच्छन्ति, नो अनुतुनिं। अयं, भिक्खवे, दुतियो पोराणो ब्राह्मणधम्मो एतरहि सुनखेसु सन्दिस्सति, नो ब्राह्मणेसु। [B.196]

३. ''पुब्बे सुदं, भिक्खवे, ब्राह्मणा ब्राह्मणिं नेव किणन्ति नो विक्किणन्ति, सम्पियेनेव संवासं संबन्धाय सम्पवत्तेन्ति। एतरहि, भिक्खवे, ब्राह्मणा ब्राह्मणिं किणन्ति पि विक्किणन्ति पि, सम्पियेन पि संवासं संबन्धाय सम्पवत्तेन्ति। एतरहि, भिक्खवे, सुनखा सुनखिं नेव किणन्ति नो विक्किणन्ति, सम्पियेनेव संवासं संबन्धाय सम्पवत्तेन्ति। अयं, भिक्खवे, ततियो पोराणो ब्राह्मणधम्मो एतरहि सुनखेसु सन्दिस्सति, नो ब्राह्मणेसु। [N.467]

४. ''पुब्बे सुदं, भिक्खवे, ब्राह्मणा न सन्निधिं करोन्ति धनस्स पि धञ्ञस्स पि रजतस्स पि जातरूपस्स पि। एतरहि, भिक्खवे, ब्राह्मणा सन्निधिं करोन्ति धनस्स पि धञ्ञस्स पि रजतस्स पि जातरूपस्स पि। एतरहि, भिक्खवे, सुनखा न सन्निधिं करोन्ति धनस्स पि धञ्ञस्स पि रजतस्स पि जातरूपस्स पि। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो पोराणो ब्राह्मणधम्मो एतरहि सुनखेसु सन्दिस्सति, नो ब्राह्मणेसु।

५. ''पुब्बे सुदं, भिक्खवे, ब्राह्मणा सायं सायमासाय पातो पातरासाय भिक्खं परियेसन्ति। एतरहि, भिक्खवे, ब्राह्मणा यावदत्थं उदरावदेहकं भुञ्जित्वा अवसेसं आदाय

---

२. ''भिक्षुओ! पहले कभी ब्राह्मण लोग ऋतुमती ब्राह्मणी से ही संवास करते थे, ऋतुविहीन से नहीं। आज ब्राह्मण ऋतुमती एवं ऋतुविहीन—दोनों ही प्रकार की ब्राह्मणियों से संवास करने में कोई सङ्कोच नहीं करते। परन्तु कुत्ते आज भी ऋतुमती कुतिया के साथ ही संवास करते हैं, ऋतुविहीन से नहीं। भिक्षुओ! यह दूसरा ब्राह्मणधर्म भी आज कुत्तों में ही प्राप्त होता है, ब्राह्मणों में नहीं। (२)

३. ''भिक्षुओ! पहले कभी ब्राह्मण लोग किसी ब्राह्मणी को न खरीदते थे, न बेचते थे; अपितु जिसके साथ निकट सम्बन्ध (प्रेम) हो जाता था उसी से संवास करते थे। आज ब्राह्मण ब्राह्मणी को खरीदते भी बेचते भी हैं, तथा जिसके साथ निकट सम्बन्ध हो जाता है उससे भी संवास करते हैं। परन्तु भिक्षुओ! कुत्ते आज भी न किसी कुतिया को बेचते हैं, न खरीदते हैं, अपितु जिस कुतिया के साथ निकट सम्बन्ध (प्रेम) हो जाता है उसी से संवास करते हैं। भिक्षुओ! यह तीसरा ब्राह्मणधर्म भी आज कुत्तों में ही पाया जाता है, ब्राह्मणों में नहीं। (३)

४. भिक्षुओ! पहले कभी ब्राह्मण लोग न धन का, न धान्य का, न चाँदी का, न सोने का संग्रह करते थे। आज ब्राह्मण लोग सब तरह का संग्रह करते हैं—धन का भी, धान्य का भी, चाँदी का भी, सोने का भी। परन्तु, भिक्षुओ! कुत्ते आज भी इन धन, धान्य आदि का कोई संग्रह नहीं करते। भिक्षुओ! यह चतुर्थ ब्राह्मणधर्म भी कुत्तों में ही पाया जाता है, ब्राह्मणों में नहीं। (४)

५. ''भिक्षुओ! पहले कभी ब्राह्मण लोग सायङ्काल के भोजन के लिये सायङ्काल में तथा प्रातःकाल के भोजन के लिये प्रातःकाल में भिक्षा करते थे। आज के ब्राह्मण लोग भरपेट खाने के

पक्कमन्ति। एतरहि, भिक्खवे, सुनखा सायं सायमासाय पातो पातरासाय भिक्खं परियेसन्ति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो पोराणो ब्राह्मणधम्मो एतरहि सुनखेसु सन्दिस्सति, नो ब्राह्मणेसु। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च पोराणा ब्राह्मणधम्मा एतरहि सुनखेसु सन्दिस्सन्ति, नो ब्राह्मणेसू'' ति॥

[R.223] **२. दोणब्राह्मणसुत्तं :** १. अथ खो दोणो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो दोणो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—

[B.197] २. ''सुतं मेतं, भो गोतम—'न समणो गोतमो ब्राह्मणे जिण्णे वुद्धे महल्लके अद्धगते वयोअनुप्पत्ते अभिवादेति वा पच्चुट्ठेति वा आसनेन वा निमन्तेती' ति। तयिदं, भो गोतम, तथेव? न हि भवं गोतमो ब्राह्मणे जिण्णे वुद्धे महल्लके अद्धगते वयोअनुप्पत्ते अभिवादेति वा पच्चुट्ठेति वा आसनेन वा निमन्तेति? तयिदं, भो गोतम, न सम्पन्नमेवा'' ति।

''त्वं पि नो, दोण, ब्राह्मणो पटिजानासी'' ति?

''यं हि तं, भो गोतम, सम्मा वदमानो वदेय्य—'ब्राह्मणो उभतो सुजातो—मातितो [N.468] च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, अज्झायको मन्तधरो, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं

बाद बचा हुआ भोजन बाँधकर अपने साथ ले जाते हैं। भिक्षुओ! आज भी कुत्ते अपना सायङ्काल का भोजन सायङ्काल तथा प्रातःकाल का भोजन प्रातःकाल खोजते हैं। भिक्षुओ! यह पाँचवाँ पुराना ब्राह्मणधर्म इस समय भी कुत्तों में ही दिखायी देता है, ब्राह्मणों में नहीं। (५)

''भिक्षुओ! ये पाँच पुराने ब्राह्मणधर्म आज भी कुत्तों में ही दिखायी देते हैं, ब्राह्मणों में नहीं॥''

२. द्रोणब्राह्मणसूत्र

: :

पञ्चविध ब्राह्मण

१. कभी द्रोण ब्राह्मण जहाँ भगवान् विराजमान थे वहाँ आया। आकर भगवान् से कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस द्रोण ब्राह्मण ने भगवान् से यह कहा—

२. ''भो गौतम! मैंने सुना है, 'आप पुराने बूढ़े, अवस्थाप्राप्त, जीवनयात्रा के किनारे पहुँचे, लम्बी आयु वाले ब्राह्मणों को भी अभिवादन, प्रत्युत्थान नहीं करते, न आने पर उनको बैठने के लिए आसन ही देते हैं।' भो गौतम! यह बात ऐसी ही है? क्या आप इन वृद्ध ब्राह्मणों के आने पर इनका अभिवादन, प्रत्युत्थान आदि नहीं करते? न इनको आसन ही देते हैं? यदि ऐसा है तो, भो गौतम! यह तो उचित नहीं है।''

''द्रोण! तुम भी अपने को ब्राह्मण मानते हो?''

''हाँ, भो गौतम! यदि कोई किसी के लिये यह बात ठीक से कहना चाहें—'यह ब्राह्मण दोनों पक्षों से—मातृपक्ष और पितृपक्ष से भी शुद्ध है, इसकी पत्नी भी दोनों पक्षों से शुद्ध है, पिता, पितामह आदि इसकी सात पीढ़ी तक हुए लोग भी जातिदोष से अकलङ्कित, आक्षेपरहित, एवं

इतिहासपञ्चमानं, पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो' ति, ममेव तं, भो गोतम, सम्मा वदमानो वदेय्य। अहं, हि, भो गोतम, ब्राह्मणो उभतो सुजातो—मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, अज्झायको मन्तधरो, तिण्णं वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं, पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो'' ति।

''ये खो, ते दोण, ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं [R.224] पवत्तारो, येसमिदं एतरहि ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समीहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति सज्झायितमनुसज्झायन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथीदं—अट्ठको, वामको, वामदेवो, वेस्सामित्तो, यमदग्गि, अङ्गीरसो, भारद्वाजो, वासेट्ठो, कस्सपो, भगु; त्यास्सु मे पञ्च ब्राह्मणे पञ्ञापेन्ति—ब्रह्मसमं, देवसमं, मरियादं, सम्भिन्नमरियादं, ब्राह्मणचण्डालंयेव पञ्चमं। तेसं त्वं दोण, कतमो'' ति ?

''न खो मयं, भो गोतम, पञ्च ब्राह्मणे जानाम, अथ खो मयं ब्राह्मणा त्वेव जानाम। साधु मे भवं गोतमो तथा धम्मं देसेतु यथा अहं इमे पञ्च ब्राह्मणे जानेय्यं'' ति।

''तेन हि, ब्राह्मण, सुणोहि, साधुकं मनसि करोहि; भासिस्सामी'' ति। [B.198]
''एवं भो'' ति खो दोणो ब्राह्मणो भगवतो पच्चस्सोसि। भगवा एतदवोच—

३. ''कथं च, दोण, **ब्राह्मणो ब्रह्मसमो** होति ? इध, दोण, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति—मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो

सर्वथा अनिन्दित रहे, स्वाध्यायी, मन्त्रधर, निघण्टु एवं काव्य, कला तथा इतिहास सहित तीनों वेदों में पारङ्गत, वैयाकरण, लोकायत एवं महापुरुष लक्षणों से युक्त है', तो वह यह बात मेरे लिये ही ठीक से कह सकता है; क्योंकि मैं दोनों पक्षों से... पूर्ववत्... लक्षणों से युक्त हूँ।''

''द्रोण! ये जो ब्राह्मणों के पूर्वज मन्त्रों के कर्ता एवं प्रवक्ता ऋषि हुए हैं, जिनके गाये हुए, बोले हुए, समर्थन किये हुए मन्त्रपद को आज के ब्राह्मण भी बोलते हैं, स्वाध्याय करते हैं, अभ्यास करते हैं; जैसे—अष्टक, वामदेव, वामक, विश्वामित्र, यमदग्नि, अङ्गिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु। ये सब भी इन पाँच प्रकारों में सम्मिलित हैं—(१) ब्रह्मसम, (२) देवसम, (३) मर्याद, (४) सम्भिन्नमर्याद, एवं (५) ब्राह्मणचाण्डाल। द्रोण! उनमें तुम कौन से हो ?

''भो गौतम! मैं इन पाँचों ब्राह्मणों के विषय में कुछ नहीं जानता। मैं तो केवल 'ब्राह्मण' को ही जानता हूँ। अच्छा हो, भो गौतम! आप ऐसा उपदेश करें कि मैं भी इन पञ्चविध ब्राह्मणों के विषय में जान जाऊँ।''

''तो ब्राह्मण! सुनो। ठीक से मन बना लो। मैं बताता हूँ।''

''अच्छा, भो!'' भगवान् ने यह बताया—

ब्रह्मसम : ''द्रोण! कोई ब्राह्मण 'ब्रह्मसम' कैसे होता है ? द्रोण! यहाँ कोई ब्राह्मण मातृपक्ष

अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। सो अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरति मन्ते अधीयमानो। अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरित्वा मन्ते अधीयित्वा [R.225] आचरियस्स आचरियधनं परियेसति धम्मेनेव, नो अधम्मेन। तत्थ च, दोण, को [N.469] धम्मो? नेव कसिया न वणिज्जाय न गोरक्खेन न इस्सत्थेन न राजपोरिसेन न सिप्पञ्ञतरेन, केवलं भिक्खाचरियाय कपालं अनतिमञ्ञमानो। सो आचरियस्स आचरियधनं निय्यादेत्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। सो एवं पब्बजितो समानो मेत्तासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं मेत्तासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्झेन फरित्वा विहरति। करुणा ...पे०... मुदिता... उपेक्खासहगतेन चेतसा एकं दिसं फरित्वा विहरति, तथा दुतियं तथा ततियं तथा चतुत्थं, इति उद्धमधो तिरियं सब्बधि सब्बत्तताय सब्बावन्तं लोकं उपेक्खासहगतेन चेतसा विपुलेन महग्गतेन अप्पमाणेन अवेरेन अब्यापज्झेन फरित्वा विहरति। सो इमे चत्तारो ब्रह्मविहारे भावेत्वा कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं ब्रह्मलोकं उपपज्जति। एवं खो, दोण, ब्राह्मणो ब्रह्मसमो होति।

४. ''कथं च, दोण, **ब्राह्मणो देवसमो** होति? इध, दोण, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति—मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो [B.199] अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। सो अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरति मन्ते अधीयमानो। अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरित्वा मन्ते अधीयित्वा

एवं पितृपक्ष—दोनों पक्षों से शुद्ध हो, उसकी पत्नी भी इसी प्रकार हो। तथा उसकी पिता, पितामह आदि सात पीढ़ियों पर हीन जाति का कोई कलङ्क या निन्दाप्रवाद न आया हो। ऐसा ब्राह्मण अड़तालीस (४८) वर्ष तक कुमारावस्था में ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर मन्त्रों का अध्ययन करें। इतने काल तक ब्रह्मचारी रहकर मन्त्र (विद्या) पढ़कर, आचार्य को आचार्यधन (गुरुऋण) लौटाये, वह भी धर्म से, न कि अधर्म से। द्रोण! यहाँ 'धर्म' क्या है? न खेती से, न व्यापार से, न गोपालन से, न धनुर्विद्या से, न किसी अन्य शिल्प से; अपितु केवल भिक्षाचर्या करे भिक्षापात्र के सहारे से। वह (ब्राह्मण) आचार्य का आचार्य-धन लौटाकर (गुरुऋण से उऋण होकर), दाढ़ी मूँछ मुँड़वा कर, काषाय वस्त्र पहन कर, घर से बेघर होकर प्रव्रजित हो जाता है। वह इस प्रकार प्रव्रजित होकर, मैत्रीसहगत चित्त से एक दिशा को व्याप्त करता है, तब दूसरी को, पुन: तीसरी को, तदनन्तर चौथी दिशा को व्याप्त करता है। इसी प्रकार ऊपर नीचे, आड़े तिरछे, सब तरफ समस्त लोक को विपुल, महान्, अप्रमाण, वैर तथा द्वेषरहित मैत्रीसहगत चित्त से व्याप्त करता है। ... करुणा ... मुदिता ... उपेक्षा सहगत चित्त से व्याप्त करता है। इस प्रकार वह इन चारों ब्रह्मविहारों की भावना कर, देहपात के बाद, मरणानन्तर, सुगतिमय ब्रह्मलोक में उत्पन्न होता है। द्रोण! ऐसा ब्राह्मण 'ब्रह्मसम' कहलाता है। (१)

देवसम : ''द्रोण! कैसे कोई ब्राह्मण 'देवसम' होता है? द्रोण! यहाँ कोई ब्राह्मण मातृपक्ष

आचरियस्स आचरियधनं परियेसति धम्मेनेव, नो अधम्मेन। तत्थ च, दोण, को धम्मो? नेव कसिया न वणिज्जाय न गोरक्खेन न इस्सत्थेन न राजपोरिसेन न सिप्पञ्ञ-[R.226] तरेन, केवलं भिक्खाचरियाय कपालं अनतिमञ्ञमानो। सो आचरियस्स आचरियधनं निय्यादेत्वा दारं परियेसति धम्मेनेव, नो अधम्मेन।

"तत्थ च, दोण, को धम्मो? नेव कयेन न विक्कयेन, ब्राह्मणिंयेव उदकूपस्सट्ठं। सो ब्राह्मणिंयेव गच्छति, न खत्तियिं न वेस्सिं न सुद्दिं न चण्डालिं न नेसादिं वेनिं न रथकारिं न पुक्कुसिं गच्छति, न गब्भिनिं गच्छति, न पायमानं गच्छति, न अनुतुनिं गच्छति। कस्मा च, दोण, ब्राह्मणो न गब्भिनिं गच्छति? सचे, दोण, ब्राह्मणो गब्भिनिं गच्छति, अतिमीळ्हजो नाम सो होति माणवको वा माणविका वा। तस्मा, दोण, ब्राह्मणो [N.470] न गब्भिनिं गच्छति। कस्मा च, दोण, ब्राह्मणो न पायमानं गच्छति? सचे, दोण, ब्राह्मणो पायमानं गच्छति, असुचिपटिपीळितो नाम सो होति माणवको वा माणविका वा। तस्मा, दोण, ब्राह्मणो न पायमानं गच्छति। कस्मा च दोण, ब्राह्मणो न अनुतुनिं गच्छति? सचे, दोण, ब्राह्मणो अनुतुनिं गच्छति तस्स सा होति ब्राह्मणी नेव कामत्था न दवत्था न रतत्था, पजत्था व ब्राह्मणस्स ब्राह्मणी होति। सो मेथुनं उप्पादेत्वा केसमस्सुं ओहारेत्वा कासायानि वत्थानि अच्छादेत्वा अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। सो एवं पब्बजितो समानो विविच्चेव कामेहि ...पे०... चतुत्थं झानं उपसम्पज्ज विहरति। सो इमे चत्तारो झाने भावेत्वा [R.227] कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। एवं खो, दोण, ब्राह्मणो देवसमो होति।

एवं पितृपक्ष—दोनों से ...पूर्ववत्... आचार्यधन लौटाकर गृहस्थधर्म पालन के लिये अपने लिये कोई सहधर्मिणी नारी खोजता है। वह भी केवल धर्म से, न कि अधर्म से।

"यहाँ भी, द्रोण! धर्म क्या है? अञ्जलि में जल लेकर सङ्कल्पित दान द्वारा दी गयी स्त्री का ही ग्रहण करे, न उसका क्रय करे, न विक्रय। इस प्रकार वह उस ब्राह्मणी के साथ ही संवास करे, न कि किसी क्षत्रिय, या वैश्य, या शूद्र, या चाण्डाल या निषाद (मल्लाह) या वेन, या रथकार या पुल्कस जाति की स्त्री के साथ। न वह कभी गर्भिणी स्त्री के साथ संवास करे, न दूध पिलाती (बच्चेवाली) स्त्री और न ऋतुविहीन स्त्री के साथ संवास करे। द्रोण! गर्भिणी के साथ संवास क्यों न करे? गर्भिणी के साथ संवास करने से जिस पुत्र या पुत्री की उत्पत्ति होगी वह बहुत ही आलसी होगा। अतः, द्रोण! गर्भिणी स्त्री के साथ सम्भोग नहीं करना चाहिये। पुनः द्रोण! दूध पिलाती स्त्री के साथ सम्भोग क्यों न करे? ऐसी स्त्री का पुत्र 'अशुचि पीनेवाला' कहलायगा। तथा, द्रोण! ऋतुविहीन स्त्री के साथ सम्भोग क्यों न करे? क्योंकि उस समय उस स्त्री में न कामभोग की, न कामक्रीड़ा की, न कामरति की ही इच्छा होती है, अपितु वह पुत्रेच्छा से ही संवास चाहा करती है, यह इच्छा उस समय इसको होती नहीं। इस प्रकार यह ब्राह्मण ब्राह्मणी से मैथुन करता हुआ समय आने पर दाढ़ी मूँछ मुँड़वाकर, काषायवस्त्र पहनकर घर छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ले। वह प्रव्रजित होकर कामभोगों से दूर रहकर ...पूर्ववत्... चतुर्थ ध्यान को प्राप्त कर साधनारत हो जाय। इस प्रकार

५. ''कथं च, दोण, ब्राह्मणो मरियादो होति? इध, दोण, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति—मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। सो अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरति मन्ते अधीयमानो। अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरित्वा मन्ते अधीयित्वा आचरियस्स आचरिय-
[B.200] धनं परियेसति धम्मेनेव, नो अधम्मेन। तत्थ च, दोण, को धम्मो? नेव कसिया न वणिज्जाय न गोरक्खेन न इस्सत्थेन न राजपोरिसेन न सिप्पञ्ञतरेन, केवलं भिक्खाचरियाय कपालं अनतिमञ्ञमानो। सो आचरियस्स आचरियधनं निय्यादेत्वा दारं परियेसति धम्मेनेव, नो अधम्मेन।

''तत्थ च, दोण, को धम्मो? नेव कयेन न विक्कयेन, ब्राह्मणिंयेव उदकूपस्सट्ठं। सो ब्राह्मणिंयेव गच्छति, न खत्तियिं न वेस्सिं न सुद्दिं न चण्डालिं न नेसादिं न वेनिं न रथकारिं न पुक्कुसिं गच्छति, न गब्भिनिं गच्छति, न पायमानं गच्छति, न अनुतुनिं गच्छति। कस्मा च, दोण, ब्राह्मणो न गब्भिनिं गच्छति? सचे, दोण, ब्राह्मणो गब्भिनिं गच्छति, अतिमीळ्हजो नाम सो होति माणवको वा माणविका वा। तस्मा, दोण, ब्राह्मणो न गब्भिनिं गच्छति। कस्मा च, दोण, ब्राह्मणो न पायमानं गच्छति? सचे, दोण, ब्राह्मणो पायमानं गच्छति, असुचिपटिपीळितो नाम सो होति माणवको वा माणविका वा। तस्मा,
[N.471] दोण, ब्राह्मणो न पायमानं गच्छति। कस्मा च, दोण, ब्राह्मणो न अनुतुनिं गच्छति? सचे, दोण, ब्राह्मणो अनुतुनिं गच्छति तस्स सा होति ब्राह्मणी नेव कामत्था न दवत्था न रतत्था, पजत्था व ब्राह्मणस्स ब्राह्मणी होति। सो मेथुनं उप्पादेत्वा तमेव पुत्तस्सादं निकामयमानो कुटुम्बं अज्झावसति, न अगारस्मा अनगारियं पब्बजति। याव पोराणानं ब्राह्मणानं मरियादो तत्थ तिट्ठति, तं न वीतिक्कमति। 'याव पोराणानं ब्राह्मणानं मरियादो तत्थ ब्राह्मणो ठितो तं न वीतिक्कमती' ति, खो, दोण, तस्मा ब्राह्मणो मरियादो ति वुच्चति। एवं खो, दोण, ब्राह्मणो मरियादो होति।

वह चारों ध्यानों की भावना करता हुआ देहपात के बाद, मरणोत्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में पहुँच जाता है। द्रोण! ऐसा ब्राह्मण 'देवसम' कहलाता है। (२)

मर्याद : ५. ''द्रोण! कैसे कोई ब्राह्मण 'मर्याद' कहलाता है? द्रोण! यहाँ कोई ब्राह्मण मातृपक्ष एवं पितृपक्ष—दोनों से ...पूर्ववत्... आचार्यधन लौटाकर गृहस्थ धर्म पालन के लिये अपने लिये कोई सहधर्मिणी नारी खोजता है, वह भी केवल धर्म से, न कि अधर्म से।

''वहाँ भी, द्रोण! धर्म क्या है? ...पूर्ववत्... अपितु वह ब्राह्मणी पुत्रेच्छा से ही संवास चाहा करती है, यह इच्छा उस समय उसको होती नहीं। इस प्रकार यह ब्राह्मण ब्राह्मणी से मैथुन धर्म द्वारा पुत्र उत्पन्न कर गृहस्थ धर्म में रस लेता हुआ कुटुम्ब में ही रम जाता है, प्रव्रज्या नहीं ग्रहण करता। परन्तु पुराने ब्राह्मणों की मर्यादा का पालन ही करता है, उसका उल्लङ्घन नहीं करता। अतः द्रोण! यह ब्राह्मण 'मर्याद' (मर्यादापालक) कहलाता है। (३)

६. ''कथं च, दोण, **ब्राह्मणो सम्भिन्नमरियादो** होति? इध, दोण, [R.228] ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति—मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। सो अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरति मन्ते अधीयमानो। अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरित्वा मन्ते अधीयित्वा आचरियस्स आचरियधनं परियेसति धम्मेनेव, नो अधम्मेन।

''तत्थ च, दोण, को धम्मो? नेव कसिया न वणिज्जाय न गोरक्खेन इस्सत्थेन न राजपोरिसेन न सिप्पञ्ञतरेन, केवलं भिक्खाचरियाय कपालं अनतिमञ्ञमानो। सो आचरियस्स आचरियधनं निय्यादेत्वा दारं परियेसति धम्मेन पि अधम्मेन पि कयेन पि विक्कयेन पि ब्राह्मणिं पि उदकूपस्सट्ठं। सो ब्राह्मणिं पि गच्छति खत्तियिं पि [B.201] गच्छति वेस्सिं पि गच्छति सुद्दिं पि गच्छति चण्डालिं पि गच्छति नेसादिं पि गच्छति वेनिं पि गच्छति रथकारिं पि गच्छति पुक्कुसिं पि गच्छति गब्भिनिं पि गच्छति पायमानं पि गच्छति उतुनिं पि गच्छति अनुतुनिं पि गच्छति। तस्स सा होति ब्राह्मणी कामत्था पि दवत्था पि रतत्था पि पजत्था पि ब्राह्मणस्स ब्राह्मणी होति। याव पोराणानं ब्राह्मणानं मरियादो तत्थ न तिट्ठति, तं वीतिक्कमति। 'याव पोराणानं ब्राह्मणानं मरियादो तत्थ ब्राह्मणो न ठितो तं वीतिक्कमती' ति खो, दोण, तस्मा ब्राह्मणो सम्भिन्नमरियादो ति वुच्चति। एवं खो, दोण, ब्राह्मणो सम्भिन्नमरियादो होति।

७. ''कथं च, दोण, **ब्राह्मणो ब्राह्मणचण्डालो** होति? इध, दोण, ब्राह्मणो उभतो सुजातो होति—मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको, याव सत्तमा पितामहयुगा अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन। सो अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं [N.472] चरति मन्ते अधीयमानो। अट्ठचत्तालीसवस्सानि कोमारं ब्रह्मचरियं चरित्वा मन्ते [R.229]

सम्भिन्नमर्याद : ६. ''द्रोण! कैसे कोई ब्राह्मण 'सम्भिन्नमर्याद' (मर्यादा का उल्लङ्घन करनेवाला) कहलाता है? द्रोण! यहाँ कोई ब्राह्मण मातृपक्ष एवं पितृपक्ष—दोनों से ...पूर्ववत्...।

''द्रोण! यह धर्म क्या है? न कृषि से, न व्यापार से, न गोपालन से, न धनुर्विद्या से, न राजसेवा से, न किसी अन्य शिल्प से; केवल भिक्षापात्र के सहारे भिक्षाचर्या से। वह आचार्य का आचार्यधन लौटाकर अपने लिये स्त्री खोजता है धर्म से भी, अधर्म से भी, क्रय विक्रय से भी, या अञ्जलि में जल लेकर सङ्कल्पित दान से भी। वह ब्राह्मणी के साथ भी, क्षत्रिया के साथ, भी वैश्य स्त्री के साथ भी ...पूर्ववत्... ऋतुविहीन स्त्री के साथ भी संवास करता है। उसकी ब्राह्मणी भी कामभोग, कामक्रीड़ा एवं कामरति हेतु सन्नद्ध रहती है, पुत्रोत्पत्ति तो वह चाहती ही रहती है। इस तरह वह ब्राह्मण प्राचीन ब्राह्मणों की मर्यादा का पालन नहीं करता, अपितु उसका उल्लङ्घन करता रहता है। अत: द्रोण! ऐसा ब्राह्मण 'सम्भिन्नमर्याद' कहलाता है। (४)

ब्राह्मणचाण्डाल : ७. ''द्रोण! कैसे कोई ब्राह्मण 'ब्राह्मणचाण्डाल' कहलाता है? यहाँ, द्रोण! कोई ब्राह्मण मातृपक्ष एवं पितृपक्ष—दोनों से ...पूर्ववत्...।

अधीयित्वा आचरियस्स आचरियधनं परियेसति धम्मेन पि अधम्मेन पि कसिया पि वणिज्जाय पि गोरक्खेन पि इस्सत्थेन पि राजपोरिसेन पि सिप्पञ्ञतरेन पि, केवलं पि भिक्खाचरियाय, कपालं अनतिमञ्ञमानो।

"सो आचरियस्स आचरियधनं निय्यादेत्वा दारं परियेसति धम्मेन पि अधम्मेन पि कयेन पि विक्कयेन पि ब्राह्मणिं पि उदकूपस्सट्ठं। सो ब्राह्मणिं पि गच्छति खत्तियिं पि गच्छति वेस्सिं पि गच्छति सुद्दिं पि गच्छति चण्डालिं पि गच्छति नेसादिं पि गच्छति वेनिं पि गच्छति रथकारिं पि गच्छति पुक्कुसिं पि गच्छति गब्भिनिं पि गच्छति पायमानं पि गच्छति उतुनिं पि गच्छति अनुतुनिं पि गच्छति। तस्स सा होति ब्राह्मणी कामत्था पि दवत्था पि रतत्था पि पजत्था पि ब्राह्मणस्स ब्राह्मणी होति। सो सब्बकम्मेहि जीवितं कप्पेति। तमेनं ब्राह्मणा एवमाहंसु—'कस्मा भवं ब्राह्मणो पटिजानमानो सब्बकम्मेहि जीवितं कप्पेती' ति? सो एवमाह—'सेय्यथापि, भो अग्गि सुचिं पि डहति असुचिं पि डहति, न तेन अग्गि उपलिप्पति; एवमेव खो, भो, सब्बकम्मेहि चे पि ब्राह्मणो जीवितं [B.202] कप्पेति, न च तेन ब्राह्मणो उपलिप्पति'। 'सब्बकम्मेहि जीवितं कप्पेती' ति खो, दोण, तस्मा ब्राह्मणो ब्राह्मणचण्डालो ति वुच्चति। एवं खो, दोण, ब्राह्मणो ब्राह्मणचण्डालो होति।

८. "ये खो ते, दोण, ब्राह्मणानं पुब्बका इसयो मन्तानं कत्तारो मन्तानं पवत्तारो येसमिदं एतरहि ब्राह्मणा पोराणं मन्तपदं गीतं पवुत्तं समीहितं तदनुगायन्ति तदनुभासन्ति भासितमनुभासन्ति सज्झायितमनुसज्झायन्ति वाचितमनुवाचेन्ति, सेय्यथीदं—अट्ठको, [R.230] वामको, वामदेवो, वेस्सामित्तो, यमदग्गि, अङ्गीरसो, भारद्वाजो, वासेट्ठो, कस्सपो, भगु; त्यास्सु मे पञ्च ब्राह्मणे पञ्ञापेन्ति—ब्रह्मसमं, देवसमं, मरियादं, सम्भिन्नमरियादं, ब्राह्मणचण्डालंयेव पञ्चमं। तेसं त्वं, दोण, कतमो" ति?

"वह आचार्य का आचार्यधन देकर ...पूर्ववत्... । उसकी ब्राह्मणी भी कामभोग, कामक्रीड़ा एवं कामरति एवं पुत्रोत्पत्ति—सबके लिये सन्नद्ध रहती है। इस प्रकार वह ब्राह्मण सभी ऊँच नीच कर्मों से अपना जीवनयापन करता है। तब उसको अन्य ब्राह्मण यह कहते हैं—'तुम सभी ऊँच नीच कर्मों के सहारे से क्यों जीविका चला रहे हो?' वह कहता है—'जैसे अग्नि सब कुछ जला देती है—शुद्ध को भी और अशुद्ध को भी; परन्तु उससे अग्नि का कुछ नहीं बनता बिगड़ता। इसी प्रकार ब्राह्मण भी सब ऊँच नीच कर्मों के सहारे अपनी जीविका चला सकता है, उससे ब्राह्मण का कुछ नहीं बनता बिगड़ता।' द्रोण! क्योंकि वह ब्राह्मण सब ऊँच नीच कर्मों से अपनी जीविका चलाता है, अत: वह ब्राह्मण 'ब्राह्मणचाण्डाल' कहलाता है। (५)

८. "द्रोण! ब्राह्मणों के जो पूर्वज ऋषि हुए हैं ...पूर्ववत्... वे सब भी इन पाँच प्रकार के ब्राह्मणों में परिगणित हो जाते हैं—ब्रह्मसम, देवसम, मर्याद, सम्भिन्नमर्याद एवं पाँचवाँ ब्राह्मणचाण्डाल। द्रोण! इनमें तुम कौन से हो?"

९. ''एवं सन्ते मयं, भो गोतम, ब्राह्मणचण्डालं पि न पूरेम। अभिक्कन्तं भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' [N.473] ति॥

३. सङ्गारवसुत्तं : १. अथ खो सङ्गारवो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवता सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनीयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो सङ्गारवो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच—''को नु खो, भो गोतम, हेतु को पच्चयो, येन कदाचि दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता? को पन, भो गोतम, हेतु को पच्चयो, येन कदाचि दीघरत्तं असज्झायकता पि मन्ता पटिभन्ति, पगेव सज्झायकता'' ति?

२. ''यस्मिं, ब्राह्मण, समये कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति कामरागपरेतेन, उप्पन्नस्स च कामरागस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता। सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो संसट्ठो लाखाय वा हलिद्दिया वा नीलिया वा मञ्जिट्ठाय वा। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं नप्पजानेय्य न पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, [B.203,R.231] यस्मिं समये कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति कामरागपरेतेन, उप्पन्नस्स च कामरागस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति,

---

९. ''भो गोतम! आपका इतना व्याख्यान सुनने के बाद मैं 'ब्राह्मणचाण्डाल' की गणना में भी नहीं आता। आश्चर्य है भो गौतम ...पूर्ववत्... आज से आप मुझको, मेरे जीवनपर्यन्त, अपना उपासक समझें॥''

३. सङ्गारवसूत्र : : पाँच धर्मों से अज्ञान

१. तब सङ्गारव ब्राह्मण भगवान् के पास आया। आकर उनसे कुशल मङ्गल पूछकर एक ओर बैठ गया। तब उसने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—(क) ''भो गौतम! क्या हेतु या क्या कारण होता है कि कभी किसी को बहुत समय तक स्वाध्याय करने पर भी मन्त्रों का ज्ञान नहीं होता, स्वाध्याय न करने पर तो कहना ही क्या है?'' (ख) तथा भो गौतम! क्या हेतु, क्या कारण है कि कभी किसी को बहुत समय तक स्वाध्याय न करने पर भी मन्त्रों का ज्ञान हो जाता है, स्वाध्याय करने पर तो बात ही क्या है?

२. ''ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त किसी **काम**भोग से आसक्त हो, और वह उस कामभोग की आसक्ति के निराकरण का उपाय भी न जानता हो, तथा उसको न स्वहित की यथार्थत: पहचान हो, न परहित की, न दोनों के हित की; उस समय उसको अत्यधिक स्वाध्याय के बाद भी मन्त्रज्ञान नहीं हो पाता, अस्वाध्याय होने पर तो कहना ही क्या है! जैसे, ब्राह्मण! किसी जलपूर्ण पात्र में लाख, हलदी, नीली या मंजीठ का रंग पड़ा हो, वहाँ किसी नेत्रों वाले पुरुष को

परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता।

३. ''पुन च परं, ब्राह्मण, यस्मिं समये ब्यापादपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ब्यापादपरेतेन, उप्पन्नस्स च ब्यापादस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता। [N.474] सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो अग्गिना सन्तत्तो उक्कुधितो उसुमकजातो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं नप्पजानेय्य न पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये ब्यापादपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ब्यापादपरेतेन, उप्पन्नस्स च ब्यापादस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता।

४. ''पुन च परं, ब्राह्मण, यस्मिं समये थीनमिद्धपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति थीनमिद्धपरेतेन, उप्पन्नस्स च थीनमिद्धस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि [R.232] तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता। सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो सेवालपणकपरियोनद्धो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं नप्पजानेय्य न पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये थीनमिद्धपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति थीनमिद्धपरेतेन, उप्पन्नस्स च [B.204] थीनमिद्धस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति। दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता।

५. ''पुन च परं, ब्राह्मण, यस्मिं समये उद्धच्चकुक्कुच्चपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति

अपनी मुखाकृति नहीं दिखायी देती; वैसे ही, ब्राह्मण! किसी पुरुष का चित्त कामभोग में आसक्त हो ...पूर्ववत्... अस्वाध्याय होने पर तो बात ही क्या! (१)

३. ''पुनः ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त किसी के प्रति **द्वेष** से पूर्ण हो, तथा वह उस उत्पन्न द्वेष का निराकरण भी न जानता हो ..पूर्ववत्... अस्वाध्याय होने पर तो बात ही क्या! (२)

४. ''पुनः ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त **स्त्यानमृद्ध** (आलस्य) से पूर्ण हो, तथा वह उस उत्पन्न स्त्यानमृद्ध का निराकरण भी न जानता हो ...पूर्ववत्... अस्वाध्याय होने पर तो बात ही क्या! (३)

५. ''पुनः, ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त **औद्धत्य कौकृत्य** से सम्पृक्त हो,

उद्धच्चकुक्कुच्चपरेतेन, उप्पन्नस्स च उद्धच्चकुक्कुच्चस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता। सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो वातेरितो चलितो भन्तो ऊमिजातो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं [N.475] नप्पजानेय्य न पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये उद्धच्चकुक्कुच्चपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति उद्धच्चकुक्कुच्चपरेतेन, उप्पन्नस्स च उद्धच्चकुक्कुच्चस्स निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता। [R.233]

६. ''पुन च परं, ब्राह्मण, यस्मिं समये विचिकिच्छापरियुट्ठितेन चेतसा विहरति विचिकिच्छापरेतेन, उप्पन्नाय च विचिकिच्छाय निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता। सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो आविलो लुळितो कललीभूतो अन्धकारे निक्खित्तो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं नप्पजानेय्य न पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये विचिकिच्छापरियुट्ठितेन चेतसा विहरति विचिकिच्छापरेतेन, उप्पन्नाय च विचिकिच्छाय निस्सरणं यथाभूतं नप्पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं नप्पजानाति न पस्सति, दीघरत्तं सज्झायकता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता।

७. ''यस्मिं च खो, ब्राह्मण समये न कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति [B.205] न कामरागपरेतेन, उप्पन्नस्स च कामरागस्स निस्सरणं यथाभूतं पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं पजानाति पस्सति, परत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं पजानाति पस्सति,

---

तथा वह उस उत्पन्न औद्धत्य कौकृत्य से बचने का उपाय भी न जानता हो ...पूर्ववत्... अस्वाध्याय होने पर तो बात ही क्या! (४)

६. पुनः, ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त किसी कारण **विचिकित्सा** (सन्देह) से युक्त हो, तथा वह उसका निराकरण भी न जानता हो ...पूर्ववत्... मन्त्रज्ञान नहीं होता, स्वाध्याय न करने पर तो बात ही क्या! (५) (क)

७. (परन्तु) ''ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त किसी कामभोग में आसक्त न हो, तथा वह वहाँ उत्पन्न कामासक्ति के निराकरण का उपाय भी यथार्थतः जानता हो, और वह आत्महित, परहित एवं उभयहित को भी जानता हो; ऐसे पुरुष को दीर्घकाल तक अस्वाध्याय करने

उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं पजानाति पस्सति, दीघरत्तं असज्झायकता पि मन्ता पटिभन्ति, पगेव सज्झायकता। सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो असंसट्ठो लाखाय वा हलिद्दिया [R.234] वा नीलिया वा मञ्जिट्ठाय वा। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं पजानेय्य पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये न कामरागपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ...पे०...।

[N.476] ८. "पुन च परं, ब्राह्मण, यस्मिं समये न ब्यापादपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ...पे०... सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो अग्गिना असन्तत्तो अनुक्कुधितो अनुसुमकजातो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं पजानेय्य पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये न ब्यापादपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ...पे०...।

९. "पुन च परं, ब्राह्मण, यस्मिं समये न थीनमिद्धपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति [R.235] ...पे०... सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो न सेवालपणकपरियोनद्धो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं पजानेय्य पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये न थीनमिद्धपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ...पे०...।

१०. "पुन च परं, ब्राह्मण, यस्मिं समये न उद्धच्चकुक्कुच्चपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ...पे०... सेय्यथापि, ब्राह्मण, उदपत्तो न वातेरितो न चलितो न भन्तो न ऊमिजातो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं पजानेय्य पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये न उद्धच्चकुक्कुच्चपरियुट्ठितेन चेतसा विहरति ...पे०...।

पर भी मन्त्रज्ञान रहता है, स्वाध्याय करने पर तो उस विषय में कहना ही क्या! ब्राह्मण !जैसे किसी पात्र में स्वच्छ जल भरा हो, तथा उसमें लाख, हल्दी, नीली या मंजीठ आदि का सम्पर्क भी न हो, वहाँ आँख वाला पुरुष अपनी मुखाकृति स्पष्ट देख सकता है, उसी प्रकार, ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त ...पूर्ववत्...। (१)

८. "ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त किसी के प्रति द्वेष से युक्त न हो, तथा वह उस द्वेष के निराकरण का उपाय भी जानता हो ...पूर्ववत्... जैसे कोई जलपूर्ण पात्र अग्नि पर न चढ़ा हुआ हो, तथा उसका जल भी क्वथित न होकर शान्त एवं स्थिर हो तो मनुष्य उसमें अपनी आकृति स्पष्ट देख सकता है; वैसे ही ब्राह्मण! जिस समय ...पूर्ववत्...। (२)

९. "ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त स्त्यानमृद्ध से युक्त न हो, तथा वह उस स्त्यानमृद्ध का निराकरण भी जानता हो ...पूर्ववत्... जैसे किसी सरोवर के जल पर शैवाल (काई) न जमी हो तो मनुष्य उसमें अपनी मुखाकृति स्पष्ट देख सकता है; वैसे ही ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त ...पूर्ववत्...। (३)

१०. "पुनः, ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त औद्धत्य कौकृत्य से युक्त न हो, तथा उसका वह निराकरण भी जानता हो ...पूर्ववत्... किसी पात्र का जल, वायु न चलने के कारण शान्त एवं स्थिर हो तो उसमें मनुष्य अपनी आकृति स्पष्ट देख सकता है; उसी प्रकार, ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त ...पूर्ववत्...। (४)

११. ''पुन च परं, ब्राह्मण, यस्मिं समये न विचिकिच्छापरियुट्ठितेन चेतसा विहरति न विचिकिच्छापरेतेन, उप्पन्नाय च विचिकिच्छाय निस्सरणं यथाभूतं पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं पजानाति पस्सति, परत्थं पि तस्मिं समये [R.236] यथाभूतं पजानाति पस्सति, उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं पजानाति पस्सति, दीघरत्तं असज्झायकता पि मन्ता पटिभन्ति, पगेव सज्झायकता। सेय्यथापि, ब्राह्मण, [B.206] उदपत्तो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो आलोके निक्खित्तो। तत्थ चक्खुमा पुरिसो सकं मुखनिमित्तं पच्चवेक्खमानो यथाभूतं पजानेय्य पस्सेय्य। एवमेव खो, ब्राह्मण, यस्मिं समये न विचिकिच्छापरियुट्ठितेन चेतसा विहरति न विचिकिच्छापरेतेन, उप्पन्नाय च विचिकिच्छाय निस्सरणं यथाभूतं पजानाति, अत्तत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं पजानाति पस्सति, परत्थं पि ...पे०... उभयत्थं पि तस्मिं समये यथाभूतं पजानाति पस्सति, दीघरत्तं असज्झायकता पि मन्ता पटिभन्ति, पगेव सज्झायकता।

१२. ''अयं खो, ब्राह्मण, हेतु अयं पच्चयो, येन कदाचि दीघरत्तं सज्झाय- [N.477] कता पि मन्ता नप्पटिभन्ति, पगेव असज्झायकता। अयं पन ब्राह्मण, हेतु अयं पच्चयो, येन कदाचि दीघरत्तं असज्झायकता पि मन्ता पटिभन्ति, पगेव सज्झायकता'' ति॥

१३. ''अभिक्कन्तं, भो गोतम ...पे०... उपासकं मं भवं गोतमो धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

४. कारणपालीसुत्तं : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। तेन खो पन समयेन कारणपाली ब्राह्मणो लिच्छवीनं कम्मन्तं कारेति। अद्दसा खो कारणपाली ब्राह्मणो पिङ्गियानिं ब्राह्मणं दूरतो व आगच्छन्तं; दिस्वा [R.237] पिङ्गियानिं ब्राह्मणं एतदवोच—

---

११. ''पुनः, ब्राह्मण! जिस समय किसी पुरुष का चित्त विचिकित्सा से युक्त न हो, तथा उसका वह निराकरण भी जानता हो ...पूर्ववत्... किसी पात्र का जल मटमैला न हो, स्वच्छ हो तो उसमें कोई भी पुरुष अपनी मुखाकृति देख सकता है; उसी प्रकार, ब्राह्मण! किसी पुरुष का चित्त ...पूर्ववत्... स्वाध्याय करने पर तो कहना ही क्या! (५) (ख)

१२. ''ब्राह्मण! यह हेतु या यह कारण होता है कि (क) कभी किसी को बहुत समय तक स्वाध्याय करने पर भी मन्त्रों का ज्ञान नहीं होता, स्वाध्याय न करने पर तो कहना ही क्या है! तथा (ख) यह हेतु या यह कारण होता है कि कभी किसी को बहुत समय तक स्वाध्याय न करने पर भी मन्त्रों का ज्ञान हो जाता है, स्वाध्याय करने पर तो बात ही क्या है!''

१३. ''आश्चर्य है, भो गौतम! ... आप गौतम आज से जीवनपर्यन्त मुझको अपना शरणागत उपासक समझें॥'' ●

४. कारणपालीसूत्र :: भगवान् तथागत की पञ्चविध प्रशंसा

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय कारणपाली नामक कोई ब्राह्मण लिच्छवियों के यहाँ कार्य करता था। तब

२. ''हन्द, कुतो नु भवं पिङ्गियानी आगच्छति दिवा दिवस्सा'' ति?

''इतोहं, भो, आगच्छामि समणस्स गोतमस्स सन्तिका'' ति।

''तं किं मञ्ञति भवं, पिङ्गियानी, समणस्स गोतमस्स पञ्ञावेय्यत्तियं? पण्डितो मञ्ञे'' ति?

''को चाहं, भो, को च समणस्स गोतमस्स पञ्ञावेय्यत्तियं जानिस्सामि! सो पि नूनस्स तादिसो व, यो समणस्स गोतमस्स पञ्ञावेय्यत्तियं जानेय्या'' ति!

''उळाराय खलु भवं, पिङ्गियानी, समणं गोतमं पसंसाय पसंसती'' ति।

[B.207] ''को चाहं, भो, को च समणं गोतमं पसंसिस्सामि! पसत्थप्पसत्थो व सो भवं गोतमो सेट्ठो देवमनुस्सानं'' ति।

''किं पन भवं, पिङ्गियानी, अत्थवसं सम्पस्समानो समणे गोतमे एवं अभिप्पसन्नो'' ति?

''सेय्यथापि, भो, पुरिसो अग्गरसपरितित्तो न अञ्ञेसं हीनानं रसानं पिहेति; एवमेव खो, भो, यतो यतो तस्स भोतो गोतमस्स धम्मं सुणाति—यदि सुत्तसो, यदि गेय्यसो, यदि वेय्याकरणसो, यदि अब्भुतधम्मसो—ततो ततो न अञ्ञेसं पुथुसमणब्राह्मणप्पवादानं पिहेति।

[N.478] ''सेय्यथापि, भो, पुरिसो जिघच्छादुब्बल्यपरेतो मधुपिण्डिकं अधिगच्छेय्य। सो

कभी इस कारणपाली ब्राह्मण ने पिङ्गियानी ब्राह्मण को दूर से आते देखा। देखकर उसने पिङ्गियानी ब्राह्मण से यह पूछा—

२. ''अरे भाई! इस मध्याह्न में कहाँ से आ रहे हो?''

''जी! मैं श्रमण गौतम के पास से आ रहा हूँ।''

''तो क्या पिङ्गियानि! आप उन श्रमण गौतम की विद्वत्ता को जानते हो? क्या वह पण्डित है?''

''श्रीमन्! मैं तुच्छ पुरुष उन श्रमण गौतम की विद्वत्ता को क्या समझूँगा! जो उनकी विद्वत्ता को जानेगा वह तो उन जैसा (विद्वान्) ही होगा।''

''अरे पिङ्गियानि! आज तो तुम श्रमण गौतम की बहुत ऊँची प्रशंसा कर रहे हो?''

''अजी! कहाँ मैं, कहाँ उन श्रमण गौतम की प्रशंसा! वे श्रमण गौतम तो देवताओं एवं मानवों में प्रशस्तों द्वारा पहले ही प्रशस्त हैं!''

''पिङ्गियानि! किस कारण से तुम उन श्रमण गौतम में इतनी श्रद्धा प्रकट कर रहे हो?''

''श्रीमन्! जैसे कोई उत्तम रस का स्वाद चखने के बाद अपेक्षाकृत उससे हीन रसों की उपेक्षा करने लगता है; उसी प्रकार जो उन श्रमण गौतम का धर्मोपदेश सुन लेता है, फिर भले ही वह सूत्रों पर हो या गेय पर, या व्याकरण पर, या अद्भुत धर्म पर; तब उसको अन्य सम्प्रदायों के अनुयायी श्रमण ब्राह्मणों का उपदेश प्रिय (अच्छा) नहीं लगता। (१)

''जैसे कोई भूख से दुर्बल पुरुष कहीं से मधुमिश्रित लड्डू पा जाय। वह उसको जैसे भी

यतो यतो सायेथ, लभतेव सादुरसं असेचनकं; एवमेव खो, भो, यतो यतो तस्स भोतो गोतमस्स धम्मं सुणाति—यदि सुत्तसो, यदि गेय्यसो, यदि वेय्याकरणसो, यदि अब्भुतधम्मसो—ततो ततो लभतेव अत्तमनतं, लभति चेतसो पसादं।

''सेय्यथापि, भो, पुरिसो चन्दनघटिकं अधिगच्छेय्य—हरिचन्दनस्स वा लोहितचन्दनस्स वा। सो यतो यतो घायेथ—यदि मूलतो, यदि मज्झतो, यदि [R.238] अग्गतो—अधिगच्छतेव सुरभिगन्धं असेचनकं; एवमेव खो, भो, यतो यतो तस्स भोतो गोतमस्स धम्मं सुणाति—यदि सुत्तसो, यदि गेय्यसो, यदि वेय्याकरणसो, यदि अब्भुतधम्मसो—ततो ततो अधिगच्छति पामोज्जं अधिगच्छति सोमनस्सं।

''सेय्यथापि, भो, पुरिसो आबाधिको दुक्खितो बाळ्हगिलानो। तस्स कुसलो भिसक्को ठानसो आबाधं नीहरेय्य; एवमेव खो, भो, यतो यतो तस्स भोतो गोतमस्स धम्मं सुणाति—यदि सुत्तसो, यदि गेय्यसो, यदि वेय्याकरणसो, यदि अब्भुतधम्मसो—ततो ततो सोकपरिदेवदुक्खदोमनस्सुपायासा अब्भत्थं गच्छन्ति।

''सेय्यथापि, भो, पोक्खरणी अच्छोदका सातोदका सीतोदका सेतका [B.208] सुपतित्था रमणीया। अथ पुरिसो आगच्छेय्य घम्माभितत्तो घम्मपरेतो किलन्तो तसितो पिपासितो। सो तं पोक्खरणिं ओगाहेत्वा न्हात्वा च पिवित्वा च सब्बदरथकिलमथपरिळाहं पटिप्पस्सम्भेय्य। एवमेव खो, भो, यतो यतो तस्स भोतो गोतमस्स धम्मं सुणाति—यदि सुत्तसो, यदि गेय्यसो, यदि वेय्याकरणसो, यदि अब्भुतधम्मसो—ततो ततो सब्बदरथ-किलमथपरिळाहा पटिप्पस्सम्भन्ती'' ति।

खायगा, जिधर से भी चखेगा, उसको वह अतिशय मधुर ही लगेगा; वैसे ही जो उन श्रमण गौतम का धर्मोपदेश एक बार सुन लेता है ...पूर्ववत्... तब उसको उन पर अधिक से अधिक सन्तोष एवं श्रद्धा होने लगती है। (२)

''जैसे कोई पुरुष चन्दन का गुटका (चन्दन की लकड़ी का टुकड़ा) पा जाय, भले ही वह लाल चन्दन का हो या श्वेत चन्दन का। उसकी वह जिधर से भी गन्ध ले—भले ही मूल से या मध्य से या अग्र भाग से, वह सब ओर उसमें अतिशय सन्तोषप्रद सुरभि गन्ध ही पायगा; वैसे ही जो पुरुष उन श्रमण गौतम का धर्मोपदेश ...पूर्ववत्...। (३)

''जैसे कोई पुरुष किसी भयङ्कर रोग से आक्रान्त हो, कोई कुशल वैद्य आकर उसके रोग की परीक्षा कर उसका रोग नष्ट करे; इसी प्रकार, कोई जैसे जैसे श्रमण गौतम का धर्मोपदेश सुनता है ...पूर्ववत्... वैसे वैसे उसके सांसारिक शोक परिदेव आदि नष्ट होते जाते हैं। (४)

''जैसे कोई स्वच्छ एवं शीत तथा श्वेत जल वाली, पक्के घाटों वाली सुन्दर पुष्करिणी हो वहाँ कोई गर्मी (घाम) से तपा हुआ तथा प्यास से दु:खी होकर उस पुष्करिणी में प्रविष्ट होकर, स्नान कर अपने शरीर की थकावट एवं प्यास मिटाता है; इसी प्रकार, जो भी इन श्रमण गौतम का धर्मोपदेश सुनता है ...पूर्ववत्... वह अपनी सांसारिक श्रान्ति (थकावट), तृष्णा, पिपासा शान्त कर लेता है। (५)

३. ''एवं वुत्ते कारणपाली ब्राह्मणो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा दक्खिणं जाणुमण्डलं पथवियं निहन्त्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा तिक्खत्तुं उदानं उदानेसि—

[N.479] ''नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स॥

४. ''अभिक्कन्तं, भो पिङ्गियानि, अभिक्कन्तं, भो पिङ्गियानि! सेय्यथापि, भो [R.239] पिङ्गियानि, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्य पटिच्छन्नं वा विवरेय्य, मूळ्हस्स वा मग्गं आचिक्खेय्य अन्धकारे वा तेलपज्जोतं धारेय्य—चक्खुमन्तो रूपानि दक्खन्ती ति; एवमेवं भोता पिङ्गियानिना अनेकपरियायेन धम्मो पकासितो। एसाहं, भो पिङ्गियानि, तं भवन्तं गोतमं सरणं गच्छामि धम्मं च भिक्खुसङ्घं च। उपासकं मं भवं पिङ्गियानी धारेतु, अज्जतग्गे पाणुपेतं सरणं गतं'' ति॥ ●

५. पिङ्गियानीसुत्तं : १. एकं समयं भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं। तेन खो पन समयेन पञ्चमत्तानि लिच्छविसतानि भगवन्तं पयिरुपासन्ति। अप्पेकच्चे लिच्छवी नीला होन्ति नीलवण्णा नीलवत्था नीलालङ्कारा, अप्पेकच्चे लिच्छवी पीता होन्ति पीतवण्णा पीतवत्था पीतालङ्कारा, अप्पेकच्चे लिच्छवी लोहितका होन्ति [B.209] लोहितकवण्णा लोहितकवत्था लोहितकालङ्कारा, अप्पेकच्चे लिच्छवी ओदाता होन्ति ओदातवण्णा ओदातवत्था ओदातालङ्कारा। त्यास्सुदं भगवा अतिरोचति वण्णेन चेव यससा च।

---

३. (पिङ्गियानी ब्राह्मण द्वारा) ऐसा कहे जाने पर, कारणपाली ब्राह्मण ने आसन से उठकर, उत्तरासङ्ग को एक कन्धे पर, अपना दक्षिण जानु भूमि पर टिका कर, जिधर भगवान् थे, उदर दोनों हाथ जोड़कर तीन बार यह हर्षोद्गार प्रकट किया—

''उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है।
उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है।
उन भगवान् अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को प्रणाम है॥

४. ''बहुत अच्छा कहा, भो पिङ्गियानी, बहुत अच्छा कहा। ...पूर्ववत्... आज से भगवान् मुझको शरणागत उपासक समझें॥'' ●

५. पिङ्गियानीसूत्र : : लोक में पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव दुर्लभ

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) वैशाली के महावन की कूटागारशाला में साधनाहेतु विराजमान थे। उस समय पाँच सौ लिच्छवि भगवान् की परिचर्या में उपस्थित थे। उनमें से कुछ नीले, नीलवर्ण वाले, नीलवस्त्रों वाले तथा नीले आभूषणों वाले थे; कुछ पीले, पीतवर्ण वाले, पीतवस्त्रों वाले नीले आभूषणों वाले थे, कुछ लाल, लाल वर्ण वाले, लाल वस्त्रों वाले तथा लाल आभूषणों वाले थे; कुछ श्वेत, श्वेत वर्ण वाले, श्वेत वस्त्र वाले तथा श्वेत आभूषणों वाले थे। फिर भी, उन सब में वर्ण एवं यश से भगवान् की शोभा तथा छवि विशेष ही दिखायी दे रही थी।

२. अथ खो पिङ्गियानी ब्राह्मणो उट्ठायासना एकंसं उत्तरासङ्गं करित्वा येन भगवा तेनञ्जलिं पणामेत्वा भगवन्तं एतदवोच—"पटिभाति मं, भगवा, पटिभाति मं, सुगता" ति।

"पटिभातु तं पिङ्गियानी" ति भगवा अवोच। अथ खो पिङ्गियानी ब्राह्मणो भगवतो सम्मुखा सारुप्पाया गाथाय अभित्थवि—

"पदुमं यथा कोकनदं सुगन्धं, पातो सिया फुल्लमवीतगन्धं।
अङ्गीरसं पस्स विरोचमानं, तपन्तमादिच्चमिवन्तलिक्खे" ति॥

३. अथ खो ते लिच्छवी पञ्चहि उत्तरासङ्गसतेहि पिङ्गियानिं ब्राह्मणं अच्छादेसुं। [N.480] अथ खो पिङ्गियानी ब्राह्मणो तेहि पञ्चहि उत्तरासङ्गसतेहि भगवन्तं अच्छादेसि। [R.240]

४. अथ खो भगवा ते लिच्छवी एतदवोच—"पञ्चन्नं, लिच्छवी, रतनानं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। कतमेसं पञ्चन्नं? तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं। तथागतप्पवेदितस्स धम्मविनयस्स देसेता पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं। तथागतप्पवेदितस्स धम्मविनयस्स देसितस्स विञ्ञाता पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं। तथागतप्पवेदितस्स धम्मविनयस्स देसितस्स विञ्ञाता धम्मानुधम्मप्पटिपन्नो पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं। कतञ्ञू कतवेदी पुग्गलो दुल्लभो लोकस्मिं। इमेसं खो, लिच्छवी, पञ्चन्नं रतनानं पातुभावो दुल्लभो लोकस्मिं" ति॥ ●

६. महासुपिनसुत्तं : १. "तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव

---

२. तब पिङ्गियानी ब्राह्मण ने आसन से उठकर, अपना उत्तरासङ्ग एक कन्धे पर कर, जहाँ भगवान् विराजमान थे उधर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए भगवान् से यह निवेदन किया—

"भगवन्! मुझको एक बात समझ में आ रही है। सुगत! मुझको एक बात ध्यान में आ रही है।"

भगवान् ने कहा—"क्या समझ में आ रही है, उसे कहो।" तब उस पिङ्गियानी ब्राह्मण ने भगवान् के सम्मान में यह स्तुति-गाथा सुनायी—

"जैसे सुगन्ध युक्त लाल कमल का पुष्प प्रातःकाल अपनी पूर्ण गन्ध के साथ विकसित होता है, उसी प्रकार दिव्यकान्तिमय इन भगवान् अङ्गीरस (तथागत बुद्ध) के दर्शन करो, मानो मध्य आकाश में सूर्य प्रकाशमान हो॥"

३. यह स्तुतिगान सुनकर वहाँ उपस्थित लिच्छवियों ने पिङ्गियानी ब्राह्मण को पाँच सौ उत्तरासङ्ग ओढ़ाये। तब पिङ्गियानी ब्राह्मण ने वे सभी उत्तरासङ्ग भगवान् को समर्पित कर दिये।

४. तब भगवान् ने उन लिच्छवियों को यह उपदेश किया—"लिच्छवियो! इस लोक में पाँच रत्नों का उत्पाद दुर्लभ है। किन पाँच का?

(१) तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध का उत्पाद दुर्लभ है।

(२) तथागतोपदिष्ट धर्मविनय का व्याख्याता दुर्लभ है।

(३) तथागतोपदिष्ट धर्मविनय के उपदेश का समझने वाला दुर्लभ है।

सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो पञ्च महासुपिना पातुरहेसुं। कतमे पञ्च? [B.210] तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो अयं महापथवी महासयनं अहोसि, हिमवा पब्बतराजा बिब्बोहनं अहोसि, पुरत्थिमे समुद्दे वामो हत्थो ओहितो अहोसि, पच्छिमे समुद्दे दक्खिणो हत्थो ओहितो अहोसि, दक्खिणे समुद्दे उभो पादा ओहिता अहेसुं। तथागतस्स भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो अयं पठमो महासुपिनो पातुरहोसि।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो तिरिया नाम तिणजाति नाभिया उग्गन्त्वा नभं [R.241] आहच्च ठिता अहोसि। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो अयं दुतियो महासुपिनो पातुरहोसि।

[N.481] ३. ''पुन च परं, भिक्खवे, तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो सेता किमी कण्हसीसा पादेहि उस्सक्कित्वा अग्गनखतो याव जाणुमण्डला पटिच्छादेसुं। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मा-सम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो अयं ततियो महासुपिनो पातुरहोसि।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा

---

(४) तथागतोपदिष्ट धर्मविनय का ज्ञाता होने पर भी उस पर धर्मानुसार आचरण करनेवाला दुर्लभ है।

(५) कृतज्ञ, एवं कृत उपकार को स्मरण रखने वाला भी लोक में दुर्लभ होता है।

लिच्छवियो! इन पाँच रत्नों का प्रादुर्भाव लोक में दुर्लभ होता है॥'' ●

६. महास्वप्नसूत्र : : तथागत के पाँच महास्वप्न

१. ''भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को सम्बोधि-प्राप्ति से पूर्व जब ये अनभिसम्बुद्ध अर्थात् बोधिसत्त्वावस्था में ही थे, पाँच महास्वप्न दिखायी दिये थे। कौन से पाँच? तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को, सम्बोधि से पूर्व अवस्था में, जो स्वप्न दिखायी दिया था उसमें यह महापृथ्वी उनका महाशयन (पलङ्ग) बनी हुई थी, पर्वतराज हिमालय उनके तकिये का कार्य कर रहे थे, पूर्व समुद्र में वाम हस्त तथा पश्चिम समुद्र में उनका दक्षिण हस्त छिपा हुआ था और दक्षिण समुद्र में उनके दोनों पैर छिपे हुए थे। भिक्षुओ! तथागत ...पूर्ववत्... सम्बोधि-प्राप्ति से पूर्व यह **प्रथम महास्वप्न** दिखायी दिया था। (१)

२. ''पुनः, भिक्षुओ! जब तथागत ... बोधिसत्त्वावस्था में ही थे, उनकी नाभि से निकल कर तिर्यक् नामक एक तृणसमूह आकाश तक पहुँचकर खड़ा था। भिक्षुओ! तथागत ...पूर्ववत्... सम्बोधिप्राप्ति से पूर्व यह **द्वितीय महास्वप्न** दिखायी दिया था। (२)

३. ''पुनः, भिक्षुओ! जब तथागत ... बोधिसत्त्वावस्था में ही थे, उनके पैरों की ओर से

अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो चत्तारो सकुणा नानावण्णा चतूहि दिसाहि आगन्त्वा पादमूले निपतित्वा सब्बसेता सम्पज्जिंसु। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो अयं चतुत्थो महासुपिनो पातुरहोसि।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धो बोधिसत्तो व समानो महतो मीळ्हपब्बतस्स उपरूपरि चङ्कमति अलिप्पमानो मीळ्हेन। तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो अयं पञ्चमो महासुपिनो पातुरहोसि।

६. ''यम्पि, भिक्खवे, तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव [B.211] सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो अयं महापथवी महासयनं अहोसि, हिमवा पब्बतराजा बिब्बोहनं अहोसि, पुरत्थिमे समुद्दे वामो हत्थो ओहितो अहोसि, पच्छिमे समुद्दे दक्खिणो हत्थो ओहितो अहोसि, दक्खिणे समुद्दे उभो पादा ओहिता अहेसुं; तथागतेन, भिक्खवे, अरहता सम्मासम्बुद्धेन अनुत्तरा सम्मासम्बोधि अभिसम्बुद्धा। तस्सा अभिसम्बोधाय अयं पठमो महासुपिनो पातुरहोसि।

७. ''यम्पि, भिक्खवे, तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव [R.242] सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो तिरिया नाम तिणजाति नाभिया उग्गन्त्वा नभं आहच्च ठिता अहोसि; तथागतेन, भिक्खवे, अरहता सम्मासम्बुद्धेन अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो अभिसम्बुज्झित्वा याव देवमनुस्सेहि सुप्पकासितो। तस्सा अभिसम्बोधाय अयं दुतियो महासुपिनो पातुरहोसि।

काले मुख वाले श्वेत क्रिमि नख के अग्रभाग से जानुमण्डल (दोनों घुटने) तक ढके हुए थे। भिक्षुओ! तथागत ...पूर्ववत्... सम्बोधि प्राप्ति से पूर्व यह **तृतीय महास्वप्न** दिखायी दिया था। (३)

४. ''पुनः, भिक्षुओ! जब तथागत ... बोधिसत्त्वावस्था में ही थे, नाना वर्णों वाले चार पक्षी, चार दिशाओं से आकर उनके चरणों के पास बैठते ही सर्वथा श्वेतवर्ण हो गये। भिक्षुओ! तथागत को ...पूर्ववत्... सम्बोधिप्राप्ति से पूर्व यह **चतुर्थ महास्वप्न** दिखायी दिया। (४)

५. ''पुनः, भिक्षुओ! जब तथागत ... बोधिसत्त्व ही थे, पुरुषमल (गूथ=टट्टी) के पर्वत पर चंक्रमण करते हुए उस पुरुषमल से अलिप्त (अस्पृष्ट) ही दिखायी देते थे। भिक्षुओ! तथागत को ...पूर्ववत्... सम्बोधिप्राप्ति से पूर्व यह **पञ्चम महास्वप्न** दिखायी दिया।

६. ''भिक्षुओ! तथागत के ...पूर्ववत्... (उक्त प्रथम महास्वप्न के फलस्वरूप उनने) अद्वितीय सम्यक्सम्बोधि प्राप्त की। उस सम्बोधि की प्राप्तिहेतु यह प्रथम महास्वप्न दिखायी दिया था।

७. ''भिक्षुओ! तथागत के ...पूर्ववत्... (द्वितीय महास्वप्न के फलस्वरूप उनने) आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का ज्ञान प्राप्त किया था, तथा उसका देवताओं और मनुष्यों को उपदेश किया था। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिये उनको यह द्वितीय महास्वप्न दिखायी दिया था।

[N.482] ८. ''यम्पि, भिक्खवे, तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो सेता किमी कण्हसीसा पादेहि उस्सक्कित्वा याव जाणुमण्डला पटिच्छादेसुं; बहू, भिक्खवे, गिही ओदातवसना तथागतं पाणुपेता सरणं गता। तस्स अभिसम्बोधाय अयं ततियो महासुपिनो पातुरहोसि।

९. ''यम्पि, भिक्खवे, तथागतस्स अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो चत्तारो सकुणा नानावण्णा चतूहि दिसाहि आगन्त्वा पादमूले निपतित्वा सब्बसेता सम्पज्जिंसु; चत्तारोमे, भिक्खवे, वण्णा खत्तिया ब्राह्मणा वेस्सा सुद्दा ते तथागतप्पवेदिते धम्मविनये अगारस्मा अनगारियं पब्बजित्वा अनुत्तरं विमुत्तिं सच्छिकरोन्ति। तस्स अभिसम्बोधाय अयं चतुत्थो महासुपिनो पातुरहोसि।

१०. ''यम्पि, भिक्खवे, तथागतो अरहं सम्मासम्बुद्धो पुब्बेव सम्बोधा अनभि-[B.212] सम्बुद्धो बोधिसत्तो व समानो महतो मीळ्हपब्बतस्स उपरूपरि चङ्कमति अलिप्पमानो मीळ्हेन; लाभी, भिक्खवे, तथागतो चीवरपिण्डपातसेनासनगिलानप्पच्चय-भेसज्जपरिक्खारानं, तं तथागतो अगथितो अमुच्छितो अनज्झोपन्नो आदीनवदस्सावी निस्सरणपञ्ञो परिभुञ्जति। तस्स अभिसम्बोधाय अयं पञ्चमो महासुपिनो पातुरहोसि।

११. ''तथागतस्स, भिक्खवे, अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स पुब्बेव सम्बोधा अनभिसम्बुद्धस्स बोधिसत्तस्सेव सतो इमे पञ्च महासुपिना पातुरहेसुं'' ति॥ ●

[R.243] **७. वस्ससुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, वस्सस्स अन्तराया, यं नेमित्ता न जानन्ति, यत्थ नेमित्तानं चक्खु न कमति। कतमे पञ्च? उपरि, भिक्खवे, आकासे

---

८. ''भिक्षुओ! तथागत के ...पूर्ववत्... (उक्त तृतीय महास्वप्न के फलस्वरूप उनने) श्वेत वस्त्रधारी उपासकों को जीवनपर्यन्त अपना शरणागत उपासक बनाया। इस शुभ कर्म की पूर्ति के लिये उनको तृतीय महास्वप्न दिखायी दिया था।

९. भिक्षुओ! तथागत के ...पूर्ववत्... (उक्त चतुर्थ महास्वप्न के फलस्वरूप) क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य एवं शूद्र—इन चारों वर्णों के मनुष्य घर से बेघर हो तथागत के धर्मविनय में प्रव्रजित होकर अद्वितीय विमुक्ति का साक्षात्कार करते हैं। इसकी पूर्ति के लिये उनको यह चतुर्थ महास्वप्न दिखायी दिया था।

१०. ''भिक्षुओ! तथागत के ...पूर्ववत्... (उक्त पञ्चम महास्वप्न के फलस्वरूप उनने) चीवर, पिण्डपात, शयनासन, तथा रोग शान्ति के लिये औषध आदि का अतिशय लाभ प्राप्त किया तथा उनका सावधानी से जीवनपर्यन्त उपभोग किया। इसकी पूर्ति के लिये उनको यह पञ्चम महास्वप्न दिखायी दिया था।

११. ''भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध को, सम्बोधि से पूर्व ही, जब वे बोधिसत्त्व थे, ये पाँच महास्वप्न दिखायी दिये थे॥'' ●

७. वर्षासूत्र : : वर्षा के पाँच विघ्न

१. भिक्षुओ! वर्षा के ये पाँच अन्तराय (विघ्न) होते हैं, जिनको ज्यौतिषी नहीं जान पाते।

तेजोधातु पकुप्पति। तेन उप्पन्ना मेघा पटिविगच्छन्ति। अयं, भिक्खवे, पठमो वस्सस्स अन्तरायो, यं नेमित्ता न जानन्ति, यत्थ नेमित्तानं चक्खु न कमति।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, उपरि आकासे वायोधातु पकुप्पति। तेन [N.483] उप्पन्ना मेघा पटिविगच्छन्ति। अयं, भिक्खवे, दुतियो वस्सस्स अन्तरायो, यं नेमित्ता न जानन्ति, यत्थ नेमित्तानं चक्खु न कमति।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, राहु असुरिन्दो पाणिना उदकं सम्पटिच्छित्वा महासमुद्दे छड्डेति। अयं, भिक्खवे, ततियो वस्सस्स अन्तरायो, यं नेमित्ता न जानन्ति, यत्थ नेमित्तानं चक्खु न कमति।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, वस्सवलाहका देवा पमत्ता होन्ति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो वस्सस्स अन्तरायो, यं नेमित्ता न जानन्ति, यत्थ नेमित्तानं चक्खु न कमति।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, मनुस्सा अधम्मिका होन्ति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो वस्सस्स अन्तरायो, यं नेमित्ता न जानन्ति, यत्थ नेमित्तानं चक्खु न कमति।

''इमे खो, भिक्खवे, पञ्च वस्सस्स अन्तराया, यं नेमित्ता न जानन्ति, यत्थ नेमित्तानं चक्खु न कमती'' ति॥ ●

८. वाचासुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागता वाचा [B.213] सुभासिता होति, नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञूनं। कतमेहि पञ्चहि?

उनकी दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँचती। कौन से पाँच? भिक्षुओ! जब ऊपर आकाश में तेजोधातु प्रकुपित होती है, तब उसके कारण, पहले से उत्पन्न मेघ भी पुन: लौट जाते हैं। भिक्षुओ! वर्षा का यह प्रथम अन्तराय है, जिसको ज्यौतिषी नहीं जान पाते। जहाँ उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती। (१)

२. ''भिक्षुओ! जब ऊपर आकाश में वायुधातु प्रकुपित होती है, तब उसके कारण, पहले से उत्पन्न मेघ भी लौटने लगते हैं। भिक्षुओ! वर्षा का यह द्वितीय अन्तराय है, जिसको ...पूर्ववत्... दृष्टि नहीं पहुँचती। (२)

३. ''पुन: भिक्षुओ! राहु असुरेन्द्र अपने हाथों से जल रोककर समुद्र में गिरा देता है। भिक्षुओ! वर्षा का यह तृतीय अन्तराय है, जिसको ...पूर्ववत्...। (३)

४. ''पुन:, भिक्षुओ! कभी कभी वर्षा बरसाने वाले मेघ भी बहक जाते हैं। भिक्षुओ! वर्षा में यह चतुर्थ अन्तराय है, जिसको ...पूर्ववत्...। (४)

५. ''पुन: भिक्षुओ! जनता भी धर्मविरुद्ध आचरण करने लगती है। भिक्षुओ! वर्षा में यह पञ्चम अन्तराय होता है जिसको ज्यौतिषी पण्डित नहीं जानते। उनकी दृष्टि इस बात पर नहीं जाती। (५)

''भिक्षुओ! वर्षा न होने में ये पाँच अन्तराय होते हैं, जिनको ज्यौतिषी नहीं जानते। उनकी दृष्टि इन पर नहीं जाती॥'' ●

८. वाचासूत्र : : सुभाषित वाणी में पाँच कारण

१. ''भिक्षुओ! पाँच कारणों से युक्त वाणी सुभाषित होती है, कठोर नहीं; विद्वान् भी उसकी

कालेन च भासिता होति, सच्चा च भासिता होति, सण्हा च भासिता होति, अत्थसंहिता [R.244] च भासिता होति, मेत्तचित्तेन च भासिता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागता वाचा सुभासिता होति, नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विञ्ञूनं'' ति॥ ●

९. कुलसुत्तं : १. ''यं, भिक्खवे, सीलवन्तो पब्बजिता कुलं उपसङ्कमन्ति, तत्थ मनुस्सा पञ्चहि ठानेहि बहुं पुञ्ञं पसवन्ति। कतमेहि पञ्चहि? यस्मिं, भिक्खवे, समये सीलवन्ते पब्बजिते कुलं उपसङ्कमन्ते मनुस्सा दिस्वा चित्तानि पसादेन्ति, सग्गसंवत्तनिकं, भिक्खवे, तं कुलं तस्मिं समये पटिपदं पटिपन्नं होति।

[N.484] २. ''यस्मिं, भिक्खवे, समये सीलवन्ते पब्बजिते कुलं उपसङ्कमन्ते मनुस्सा पच्चुट्ठेन्ति, अभिवादेन्ति, आसनं देन्ति, उच्चाकुलीनसंवत्तनिकं, भिक्खवे, तं कुलं तस्मिं समये पटिपदं पटिपन्नं होति।

३. ''यस्मिं, भिक्खवे, समये सीलवन्ते पब्बजिते कुलं उपसङ्कमन्ते मनुस्सा मच्छेरमलं पटिविनेन्ति, महेसक्खसंवत्तनिकं, भिक्खवे, तं कुलं तस्मिं समये पटिपदं पटिपन्नं होति।

४. ''यस्मिं, भिक्खवे, समये सीलवन्ते पब्बजिते कुलं उपसङ्कमन्ते मनुस्सा यथासत्ति यथाबलं संविभजन्ति, महाभोगसंवत्तनिकं, भिक्खवे, तं कुलं तस्मिं समये पटिपदं पटिपन्नं होति।

५. ''यस्मिं, भिक्खवे, समये सीलवन्ते पब्बजिते कुलं उपसङ्कमन्ते मनुस्सा

प्रशंसा ही करते हैं, निन्दा नहीं। किन पाँच से? (१) जो वाणी समय देखकर बोली जाय, (२) सत्य बोली जाय, (३) मधुरता से बोली जाय, (४) सार्थक ही बोली जाय, (५) तथा मैत्रीभाव से बोली जाय। भिक्षुओ! इन पाँच कारणों से युक्त वाणी ...पूर्ववत्... निन्दा नहीं॥'' ●

९. कुलसूत्र : : कुल की उन्नति में पाँच कारण

१. ''भिक्षुओ! शीलवान् प्रव्रजित जिस कुल में जिस समय जाते हैं, वहाँ के मनुष्य पाँच अङ्गों से पुण्य प्राप्त करते हैं। कौन से पाँच? भिक्षुओ! जिस समय भिक्षुओ! शीलवान् प्रव्रजित द्वारा किसी कुल में जाने पर वहाँ के मनुष्य अपने चित्त में उसके प्रति स्वर्गसुख देने वाली श्रद्धा उत्पन्न करते हैं, भिक्षुओ! उस समय उस कुल को मार्गारूढ़ समझो। (१)

२. ''जिस समय भिक्षुओ! शीलवान् प्रव्रजित द्वारा किसी कुल में जाने पर वहाँ के मनुष्य उसके प्रति प्रत्युत्थान, अभिवादन तथा उसको सम्मानपूर्वक आसन देते हैं, जिसका फल उच्चकुल में उत्पाद होता है, वह कुल, भिक्षुओ! मार्गारूढ होने लगता है। (२)

३. ''जिस समय भिक्षुओ! कोई शीलवान् प्रव्रजित किसी कुल में पदार्पण करते हैं तब यदि वहाँ के मनुष्य अपना अभिमान त्याग कर उनकी सेवा में, जो कि उनको महाप्रतापवान् बनाती है, लग जाते हैं, वह कुल, भिक्षुओ! मार्गारूढ होने लगता है। (३)

४. जिस समय, भिक्षुओ! किसी शीलवान् प्रव्रजित के किसी कुल में आने पर वहाँ के

परिपुच्छन्ति परिपञ्हन्ति धम्मं सुणन्ति, महापञ्ञसंवत्तनिकं, भिक्खवे, तं कुलं तस्मिं समये पटिपदं पटिपन्नं होति। यं, भिक्खवे, सीलवन्तो पब्बजिता कुलं उपसङ्कमन्ति, [R.245] तत्थ मनुस्सा इमेहि पञ्चहि ठानेहि बहुं पुञ्ञं पसवन्ती'' ति॥ ●

१०. निस्सारणीयसुत्तं : १. ''पञ्चिमा, भिक्खवे, निस्सारणीया [B.214] धातुयो। कतमा पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खुनो कामं मनसिकरोतो कामेसु चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति। नेक्खम्मं खो पनस्स मनसिकरोतो नेक्खम्मे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं सुविसंयुत्तं कामेहि; ये च कामपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघात-परिळाहा, मुत्तो सो तेहि, न सो तं वेदनं वेदियति। इदमक्खातं कामानं निस्सरणं।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो ब्यापादं 'मनसिकरोतो ब्यापादे चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति। अब्यापादं खो पनस्स मनसिकरोतो अब्यापादे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं सुविसंयुत्तं ब्यापादेन; ये च ब्यापादपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा [N.485] विघातपरिळाहा, मुत्तो सो तेहि, न सो तं वेदनं वेदियति। इदमक्खातं ब्यापादस्स निस्सरणं।

मनुष्य अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने भोज्य में से कुछ भाग देते हैं, जो कि उनको भविष्य में महाभोगों का फल देने वाला होगा, वह कुल, भिक्षुओ! मार्गारूढ होने लगता है। (४)

५. जिस समय, भिक्षुओ! किसी शीलवान् प्रव्रजित के किसी कुल में पहुँचने पर वहाँ के मनुष्य उससे धर्मविषयक परिपृच्छा तथा जिज्ञासा करते हैं, उससे धर्मोपदेश सुनते हैं, जो कि उनको समय आने पर महाप्राज्ञ बना देगा, वह कुल मार्गारूढ होने लगता है। (५)

''भिक्षुओ! जिस समय कोई शीलवान् प्रव्रजित जिस कुल में जाते हैं वहाँ के मनुष्य इन पाँच विधियों से अतिशय पुण्य प्राप्त करने लगते हैं॥'' ●

१०. निःसारणीयसूत्र : : काम आदि पाँच निःसारणीय धातु

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच निःसारणीय (त्यागने योग्य) धातु कहलाती है। कौन सी पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! किसी भिक्षु द्वारा कोई कामना मन में करने पर कामभोगों में उसका चित्त न उछल कूद मचाता है, न प्रसन्न होता है, न ठहरता है, न मुक्त होता है; परन्तु उसके द्वारा नैष्काम्य की भावना किये जाने पर उसमें उसका चित्त हर्ष मानता है, प्रसन्न होता है, ठहरता है तथा मुक्त होता है। उसका चित्त सुगत, सुभावित, सूत्थित, सुविमुक्त एवं कामभोगों से पूर्णतः पृथक् हो जाता है। तथा कामभोगों के कारण होने वाले ईर्ष्या, द्वेष एवं परिताप आदि से भी मुक्त रहता है। वह उनको अनुभव नहीं करता। यह कामों का निःसरण कहलाता है। (१)

२. ''पुनः, भिक्षुओ! किसी भिक्षु का 'व्यापाद' (द्वेष) में मन किये जाने पर भी उसमें उसका चित्त हर्ष से उछल कूद नहीं मचाता, न प्रसन्न होता है, न वहाँ ठहरता है, न उससे पूर्णतः मुक्त ही होता है। मन में 'अव्यापाद' की भावना करने पर उसका चित्त हर्ष से उछलता कूदता है ...पूर्ववत्...। (२)

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो विहेसं मनसिकरोतो विहेसाय चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति। अविहेसं खो पनस्स मनसिकरोतो अविहेसाय चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं विहेसाय; ये च विहेसापच्चया उप्पज्जन्ति, आसवा विघातपरिळाहा, मुत्तो सो तेहि, न सो तं वेदनं वेदियति। इदमक्खातं विहेसाय निस्सरणं।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो रूपं मनसिकरोतो रूपे चित्तं न पक्खन्दति [R.246] नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति। अरूपं खो पनस्स मनसि करोतो अरूपे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं सुविसंयुत्तं रूपेहि; ये च रूपपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघातपरिळाहा, मुत्तो सो तेहि, न सो तं वेदनं वेदियति। इदमक्खातं रूपानं निस्सरणं।

[B.215] ५. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खुनो सक्कायं मनसिकरोतो सक्काये चित्तं न पक्खन्दति नप्पसीदति न सन्तिट्ठति न विमुच्चति। सक्कायनिरोधं खो पनस्स मनसिकरोतो सक्कायनिरोधे चित्तं पक्खन्दति पसीदति सन्तिट्ठति विमुच्चति। तस्स तं चित्तं सुगतं सुभावितं सुवुट्ठितं सुविमुत्तं सुविसंयुत्तं सक्कायेन; ये च सक्कायपच्चया उप्पज्जन्ति आसवा विघातपरिळाहा, मुत्तो सो तेहि, न सो तं वेदनं वेदियति। इदमक्खातं सक्कायस्स निस्सरणं।

६. ''तस्स कामनन्दी पि नानुसेति, ब्यापादनन्दी पि नानुसेति, विहेसानन्दी पि नानुसेति, रूपनन्दी पि नानुसेति, सक्कायनन्दी पि नानुसेति कामनन्दिया पि अननुसया, ब्यापादनन्दिया पि अननुसया, विहेसानन्दिया पि अननुसया, रूपनन्दिया पि अननुसया,

---

३. '' पुनः भिक्षुओ! किसी भिक्षु का 'उद्विग्नता' (हैरानी) को मन में करते हुए भी उसमें उसका चित्त हृष्ट नहीं होता, न प्रसन्न होता है, न वहाँ ठहरता है, न उससे पूर्णतः मुक्त ही होता है। मन में 'अनुद्विग्नता' (स्थिरता) की भावना करने पर उसका चित्त हर्ष से प्रफुल्ल हो जाता है ...पूर्ववत्...। (३)

४. ''पुनः भिक्षुओ! किसी भिक्षु का 'रूप' को मन में करते हुए भी उसमें उसका चित्त हृष्ट नहीं होता, न प्रसन्न होता है,न वहाँ ठहरता है, न उससे पूर्णतः मुक्त होता है। मन में 'अरूप' की भावना करने पर उसका चित्त हर्ष से प्रफुल्ल हो जाता है ...पूर्ववत्...। (४)

५. ''पुनः भिक्षुओ! किसी भिक्षु का 'सत्काय' को मन में करते हुए भी उसमें उसका चित्त हृष्ट या प्रसन्न नहीं होता...। मन में सत्कायनिरोध की भावना करने पर उसका चित्त हृष्ट एवं प्रसन्न हो जाता है ...पूर्ववत्...। यह सत्काय का निस्सरण कहलाता है। (५)

६. ''ऐसे भिक्षु की कामतृष्णा में भी, द्वेषतृष्णा में भी, उद्विग्नतातृष्णा में भी, रूपतृष्णा में भी, सत्कायतृष्णा में भी प्रवृत्ति नहीं होती; क्योंकि ऐसे भिक्षु की सभी तृष्णाएँ मर चुकी होती हैं, विनष्ट हो चुकी होती हैं। भिक्षुओ! ऐसा भिक्षु प्रवृत्तिरहित कहलाता है। उसने अपनी तृष्णा को, अपने

सक्कायनन्दिया पि अननुसया। अयं वुच्चति, भिक्खवे, भिक्खु निरनुसयो, अच्छेच्छि [N.486] तण्हं, विवत्तयि संयोजनं, सम्मा मानाभिसमया अन्तमकासि दुक्खस्स। इमा खो, भिक्खवे, पञ्च निस्सारणीया धातुयो'' ति॥ ●

ब्राह्मणवग्गो वीसतिमो॥

तस्सुद्दानं

सोणो दोणो सङ्गारवो, कारणपाली च पिङ्गियानी। [R.247]
सुपिना च वस्सा वाचा, कुलं निस्सारणीयेन चा ति॥ ●

चतुत्थो पण्णासको समत्तो॥

२१. किमिलवग्गो

पञ्चमो पण्णासको

१. किमिलसुत्तं : १. एकं समयं भगवा किमिलायं विहरति वेळुवने। [B.216] अथ खो आयस्मा किमिलो येन भगवा तेनुपसङ्कमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नो खो आयस्मा किमिलो भगवन्तं एतदवोच—

संयोजनों को पूर्णतः विनष्ट कर लिया है। उसने अपने अभिमान का भी अन्त (नाश) कर लिया है। अतः इस स्थिति में उसका दुःखक्षय होना अवश्यम्भावी है। भिक्षुओ! ये पाँच निःसारणीय धातु हैं॥'' ●

ब्राह्मणवर्ग बीसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. सोण (श्वन्) सूत्र, २. द्रोणसूत्र, ३.सङ्गारवसूत्र, ४. कारणपालीसूत्र, ५. पिङ्गियानीसूत्र, ६. महास्वप्नसूत्र, ७. वर्षासूत्र, ८. वाचासूत्र, ९. कु लसूत्र, एवं १०. निस्सारणीय सूत्र॥

चतुर्थ पञ्चाशत्क समाप्त॥

२१. किमिलवर्ग

पञ्चम पञ्चाशत्क

१. किमिलसूत्र : : सद्धर्म की स्थायिता में पाँच कारण

१. एक समय भगवान् (बुद्ध) किमिला के वेणुवन में साधना हेतु विराजमान थे। उस समय आयुष्मान् किमिल भगवान् के सम्मुख आये, आकर उनको प्रणाम कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर, आयुष्मान् किमिल ने भगवान् से यह जिज्ञासा प्रकट की—

२. "को नु खो, भन्ते, हेतु को पच्चयो, येन तथागते परिनिब्बुते सद्धम्मो न चिरट्ठितिको होती" ति?

"इध, किमिल, तथागते परिनिब्बुते भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो सत्थरि अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा, धम्मे अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा, सङ्घे अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा, सिक्खाय अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा, अञ्ञमञ्ञं अगारवा विहरन्ति अप्पतिस्सा। अयं खो, किमिल, हेतु अयं पच्चयो, येन तथागते परिनिब्बुते सद्धम्मो न चिरट्ठितिको होती" ति।

३. "को पन, भन्ते, हेतु को पच्चयो, ये तथागते परिनिब्बुते सद्धम्मो चिरट्ठितिको होती" ति?

"इध, किमिल, तथागते परिनिब्बुते भिक्खू भिक्खुनियो उपासका उपासिकायो सत्थरि सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्सा, धम्मे सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्सा, सङ्घे सगारवा [N.487] विहरन्ति, सिक्खाय सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्सा, अञ्ञमञ्ञं सगारवा विहरन्ति सप्पतिस्सा। अयं खो, किमिल, हेतु अयं पच्चयो, येन तथागते परिनिब्बुते सद्धम्मो चिरट्ठितिको होती" ति॥ ●

२. धम्मस्सवनसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा धम्मस्सवने। कतमे [R.248] पञ्च? अस्सुतं सुणाति, सुतं परियोदापेति, कङ्खं वितरति, दिट्ठिं उजुं करोति, चित्तमस्स पसीदति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा धम्मस्सवने" ति॥ ●

३. अस्साजानीयसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो

---

२. "भन्ते! कौन हेतु या कौन प्रत्यय है कि तथागत के परिनिर्वाण प्राप्त करने पर सद्धर्म चिरस्थायी नहीं हो पाता?"

"क्योंकि, किमिल! तथागत के परिनिर्वृत होने पर भिक्षु भिक्षुणयाँ, उपासक उपासिकाएँ शास्ता के प्रति, धर्म के प्रति, सङ्घ के प्रति, धर्मशिक्षा के प्रति, यहाँ तक कि परस्पर भी गौरवपूर्ण सम्मानजनक व्यवहार नहीं करते, उनके प्रति विद्रोह कर देते हैं। किमिल! यही कारण एवं यही प्रत्यय है कि तथागत के परिनिवृत होने पर सद्धर्म चिरस्थायी नहीं रह पाता।

३. "पुनः,भन्ते! कौन हेतु या कौन प्रत्यय है कि तथागत के परिनिवृत होने पर सद्धर्म चिरस्थायी रह सके?"

"यहाँ किमिल! शास्ता के परिनिर्वृत होने पर भी भिक्षु भिक्षुणी, उपासक उपासिकाएँ शास्ता के प्रति, धर्म के प्रति, सङ्घ के प्रति, धर्म शिक्षा के प्रति, यहाँ तक कि परस्पर भी गौरवपूर्ण व्यवहार करते है, उनके प्रति विद्रोह नहीं करते। किमिल! यही हेतु तथा प्रत्यय है कि शास्ता के परिनिर्वृत होने पर भी सद्धर्म बहुत काल तक स्थिर रह सकता है॥" ●

२. धर्मश्रवणसूत्र : : धर्मश्रवण के पाँच लाभ

१. "भिक्षुओ! धर्मश्रवण के ये पाँच प्रत्यक्ष लाभ होते हैं। कौन से पाँच? (१) जो नहीं सुना गया उसे सुन पाता है, (२) जो सुना गया हो उसको शुद्ध कर लेता है, (३) सन्देह नष्ट हो

अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं त्वेव सङ्खं गच्छति। कतमेहि [B.217] पञ्चहि? अज्जवेन, जवेन, मद्दवेन, खन्तिया, सोरच्चेन—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि अङ्गेहि समन्नागतो रञ्ञो भद्रो अस्साजानीयो राजारहो होति राजभोग्गो, रञ्ञो अङ्गं त्वेव सङ्खं गच्छति।

२. "एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्स। कतमेहि पञ्चहि? अज्जवेन, जवेन, मद्दवेन, खन्तिया, सोरच्चेन—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु आहुनेय्यो होति पाहुनेय्यो दक्खिणेय्यो अञ्जलिकरणीयो अनुत्तरं पुञ्ञक्खेत्तं लोकस्सा" ति॥ ●

४. बलसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, बलानि। कतमानि पञ्च? सद्धाबलं हिरिबलं, ओत्तप्पबलं, विरियबलं, पञ्ञाबलं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च बलानी" ति॥

५. चेतोखिलसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, चेतोखिला। कतमे [N.488] पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु सत्थरि कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न [R.249] सम्पसीदति। यो सो, भिक्खवे, भिक्खु सत्थरि कङ्खति विचिकिच्छति नाधिमुच्चति न

जाता है, (४) धार्मिक दृष्टि (विचार) सरल हो जाती हैं, (५) एवं श्रोता का चित्त धर्म के प्रति प्रसन्न (श्रद्धालु) रहता है॥ ●

३. अश्वाजानेयसूत्र : : उच्च जाति वाले अश्व के पाँच गुण

१. "भिक्षुओ! पाँच गुणों से युक्त राजा का कोई श्रेष्ठ जाति का अश्व राजयोग्य, राजभोग्य एवं राजा का अङ्ग कहलाता है। किन पाँच गुणों से? (१) सरलता, (२) वेग (गति), (३) मृदुता, (४) क्षान्ति (सहनशीता) एवं (५) विनम्रता। भिक्षुओ! इन पाँच गुणों से युक्त ...पूर्ववत्... अश्व राजा का अङ्ग कहलाता है।

२. इसी प्रकार, भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु गृहस्थों में बुलाने योग्य, आतिथ्ययोग्य, दानयोग्य, प्रणामयोग्य तथा संसार के लिये अद्वितीय पुण्यभूमि है। किन पाँच से? (१) सरलता, (२) वेग (गति), (३) मृदुता, (४) क्षान्ति (सहनशीलता), एवं (५) विनम्रता। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु ...पूर्ववत्... अद्वितीय पुण्यभूमि कहलाता है॥" ●

४. बलसूत्र : : भिक्षु के पाँच बल

१. "भिक्षुओ! ये पाँच बल (साधनोपयोगी) होते हैं। कौन से पाँच? (१) श्रद्धाबल, (२) ह्रीबल, (३) अवत्राप्य (पापभीरुता) बल, (४) वीर्यबल, एवं (५) प्रज्ञाबल। भिक्षुओ! ये पाँच बल होते हैं॥ ●

५. चेतःकीलसूत्र : : पाँच चित्त की कठोरताएँ

१. "भिक्षुओ! ये पाँच चित्त की कठोरताएँ (खिल=कील) कहलाती हैं। कौन सी पाँच? (१) यहाँ, भिक्षुओ! कोई भिक्षु शास्ता के विषय में न कोई आकांक्षा (जानने की इच्छा) करता है, न उनके विषय में कोई सन्देह करता है, न उनकी ओर झुकता है, न उनमें श्रद्धा करता है और न

सम्पसीदति, तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय। यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पठमो चेतोखिलो।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, भिक्खु धम्मे कङ्खति ...पे०... सङ्घे कङ्खति ...पे०... सिक्खाय कङ्खति ...पे०... सब्रह्मचारीसु कुपितो होति अनत्तमनो आहतचितो खिलजातो। [B.218] यो सो, भिक्खवे, भिक्खु सब्रह्मचारीसु कुपितो होति अनत्तमनो आहतचित्तो खिलजातो, तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय। यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पञ्चमो चेतोखिलो। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च चेतोखिला'' ति॥ ●

६. विनिबन्धसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, चेतसो विनिबन्धा। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, भिक्खु कामेसु अवीतरागो होति अविगतच्छन्दो अविगतपेमो अविगतपिपासो अविगतपरिळाहो अविगततण्हो। यो सो, भिक्खवे, भिक्खु कामेसु अवीतरागो होति अविगतच्छन्दो अविगतपेमो अविगतपिपासो अविगतपरिळाहो अविगततण्हो, तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय। यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पठमो चेतसो विनिबन्धो।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, काये अवीतरागो होति ...पे०... रूपे अवीतरागो होति ...पे०... यावदत्थं उदरावदेहकं भुञ्जित्वा सेय्यसुखं पस्ससुखं मिद्धसुखं अनुयुत्तो विहरति [R.250] ...पे०... अञ्ञतरं देवनिकायं पणिधाय ब्रह्मचरियं चरति—'इमिनाहं सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन वा देवो वा भविस्सामि देवञ्ञतरो वा' ति। यो सो, [N.489] भिक्खवे, भिक्खु अञ्ञतरं देवनिकायं पणिधाय ब्रह्मचरियं चरति—'इमिनाहं

उसका चित्त साधनाहेतु कोई प्रयास, साधना, सातत्य या दोषों के प्रहाणहेतु प्रयत्न करता है। जिसका चित्त साधनाहेतु कोई प्रयास ...पूर्ववत्... यह प्रथम 'चेतोखिल' कहलाता है।

२. (२) यहाँ भिक्षुओ! कोई भिक्षु धर्म के विषय में ...पूर्ववत्...। (३) ...सङ्घ के विषय में ...पूर्ववत्...। (४) ... शिक्षा के विषय में ...पूर्ववत्...। (५) ... साथी भिक्षुओं के विषय में ...पूर्ववत्...। यह पाँचवाँ 'चेतोखिल' है। भिक्षुओ! ये पाँच 'चेतोखिल' कहलाते हैं॥'' ●

६. विनिबन्धसूत्र : : पाँच चित्त के विनिबन्ध (आसक्ति)

१. ''भिक्षुओ! चित्त की पाँच आसक्तियाँ (विनिबन्ध) हैं। कौन से पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! भिक्षु **कामभोगों में** रागसहित, छन्दसहित, प्रेमसहित, पिपासासहित, परिदाहसहित तथा तृष्णासहित होता है। भिक्षुओ! उस भिक्षु के रागसहित ...पूर्ववत्... तृष्णासहित होने के कारण, इसका चित्त साधना में प्रयत्न, भावना, सातत्य एवं प्रधान के लिये नहीं झुकता है। जिसका चित्त साधना में इन सबके लिये नहीं झुकता है—यह उसका प्रथम विनिबन्ध है। (१)

२. ''पुनः भिक्षुओ! **काया में** रागसहित ...पूर्ववत्... तृष्णासहित होता है। वह भरपेट भोजन शय्यासुख, पार्श्वसुख, एवं आलस्य से युक्त होकर साधना करता है ...पूर्ववत्... किसी देवनिकाय का सङ्कल्प कर यों धर्मसाधना करता है—'मैं इस शील, व्रत, तप या धर्मसाधना के

सीलेन वा वतेन वा तपेन वा ब्रह्मचरियेन वा देवो वा भविस्सामि देवञ्ञतरो वा' ति, तस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय। यस्स चित्तं न नमति आतप्पाय अनुयोगाय सातच्चाय पधानाय, अयं पञ्चमो चेतसो विनिबन्धो। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च चेतसो विनिबन्धा'' ति॥ ●

७. यागुसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा यागुया। कतमे पञ्च? खुद्दं पटिहनति, पिपासं पटिविनेति, वातं अनुलोमेति, वत्थिं सोधेति, आमावसेसं पाचेति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा यागुया'' ति॥ [B.219] ●

८. दन्तकट्ठसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा दन्तकट्ठस्स अखादने। कतमे पञ्च? अचक्खुस्सं, मुखं दुग्गन्धं होति, रसहरणियो न विसुज्झन्ति, पित्तं सेम्हं भत्तं परियोनन्धति, भत्तमस्स नच्छादेति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा दन्तकट्ठस्स अखादने।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा दन्तकट्ठस्स खादने। कतमे पञ्च? चक्खुस्सं, मुखं दुग्गन्धं होति, रसहरणियो न विसुज्झन्ति, पित्तं सेम्हं भत्तं परियोनन्धति, भत्तमस्स छादेति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा दन्तकट्ठस्स खादने'' ति॥ ●

९. गीतस्सरसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा आयतकेन गीतस्सरेन

फलस्वरूप देवता बनूँगा या देवयोनियों में से कोई एक।' यों, भिक्षुओ! वह भिक्षु किसी देवनिकाय में उत्पत्ति का सङ्कल्प कर साधना करता है ...पूर्ववत्...। उसका चित्त वास्तविक धर्मसाधना में प्रयत्न, भावना, सातत्य एवं प्रधान के लिये नहीं झुकता है। जिसका चित्त इस धर्मसाधना में इन सबके लिये नहीं झुकता—यह चित्त का पाँचवाँ विनिबन्ध है॥'' ●

: :

यागु के पाँच गुण

७. यागुसूत्र

१. ''भिक्षुओ! यागु के (यवागु=विशेष प्रकार की दाल या पतली खिचड़ी, पेय पदार्थ) के पाँच गुण होते हैं। (१) क्षुद्र (छोटे) रोगों को नष्ट करती है, (२) प्यास मिटाती है, (३) पेट की वायु को अनुलोम करती है, (४) वस्ति (आन्त्रनाडिका) का शोधन करती है, आमावशेष (अजीर्ण) को मिटाती है। भिक्षुओ! यवागू के ये पाँच विशेष गुण हैं॥'' ●

: :

दतुअन न करने के पाँच दोष

८. दन्तकाष्ठसूत्र

१. ''भिक्षुओ! दतुअन न करने के पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) नेत्रज्योति कम होने लगती है, (२) मुख से दुर्गन्ध आने लगती है, (३) रसवाहिनी नाड़ियाँ स्वच्छ नहीं रहतीं, (४) शरीरस्थ पित्त, कफ एवं खाया हुआ अन्न व्यवस्थित नहीं रहता, (५) तथा खाया हुआ अन्न विलम्ब से पचता है। भिक्षुओ! दतुअन न करने के ये पाँच दोष हैं।

२. ''भिक्षुओ! (प्रतिदिन) दतुअन करने के ये पाँच गुण हैं। कौन से पाँच? (१) नेत्रज्योति बढ़ती है, (२) मुख में दुर्गन्ध नहीं होती, (३) रसवाहिनी नाड़ियाँ शुद्ध रहती हैं, (४) पित्त, श्लेष्मा एवं भुक्त भोजन व्यवस्थित रहते हैं, (५) खाया हुआ अन्न समय से पच जाता है। भिक्षुओ! (प्रतिदिन) दतुअन करने के ये पाँच गुण हैं॥'' ●

[R.251] धम्मं भणन्तस्स। कतमे पञ्च? अत्तना पि तस्मिं सरे सारज्जति, परे पि तस्मिं सरे सारज्जन्ति, गहपतिका पि उज्झायन्ति—'यथेव मयं गायाम, एवमेव खो समणा सक्यपुत्तिया गायन्ती' ति, सरकुत्तिं पि निकामयमानस्स समाधिस्स भङ्गो होति, पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा आयतकेन गीतस्सरेन धम्मं भणन्तस्सा'' ति॥ ●

[N.490] **१०. मुट्ठस्सतिसुत्तं** : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा मुट्ठस्सति असम्पजानस्स निद्दं ओक्कमयतो। कतमे पञ्च? दुक्खं सुपति, दुक्खं पटिबुज्झति, पापकं सुपिनं पस्सति, देवता न रक्खति, असुचि मुच्चति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा मुट्ठस्सतिस्स असम्पजानस्स निद्दं ओक्कमयतो।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा उपट्ठितस्सतिस्स सम्पजानस्स निद्दं ओक्कमयतो। कतमे पञ्च? सुखं सुपति, सुखं पटिबुज्झति, न पापकं सुपिनं पस्सति, [B.220] देवता रक्खन्ति, असुचि न मुच्चति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा उपट्ठितस्सतिस्स सम्पजानस्स निद्दं ओक्कमयतो'' ति॥ ●

किमिलवग्गो एकवीसतिमो॥

---

९. गीतस्वरसूत्र : : उच्च गीत स्वर से धर्मवाचन के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! ऊँचे, गायन के स्वर में धर्मवाचन के पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) उस गाये जाने वाले स्वर में स्वयं की आसक्ति हो जाती है; (२) दूसरों की भी उस गाये जाने वाले स्वर में आसक्ति होने लगती हैं, (३) सुनने वाले गृहस्थ भी सोचने लगते हैं—'जैसे हम लोग गाते हैं, वैसे ही (गृहस्थों के समान ही) ये शाक्यपुत्रीय श्रमण भी गाने लगे'। (४) स्वर के आरोह-अवरोह व्यवस्थित करने में समाधिभङ्ग हो जाता है, (५) पीछे आनेवाली जनता भी उन भिक्षुओं का अनुकरण करती हुई स्वरबद्ध, लयबद्ध, धर्मगायन करने लगती है। भिक्षुओ! उच्च, स्वरबद्ध एवं लयबद्ध धर्मगायन करने में ये पाँच दोष होते हैं॥ ●

१०. मृष्टस्मृतिसूत्र : : बहुत भूलनेवाले के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! विस्मरणशील (भुलक्कड़) पुरुष को निद्रा लेते समय ये पाँच दोष (कठिनाइयाँ) होते हैं। कौन से पाँच दोष? (१) कठिनाई से निद्रा आती है, (२) कठिनाई से जागता है, (३) सोते समय पापमय स्वप्न देखता है, (४) देवता भी उसकी रक्षा नहीं करते; (५) सोते समय उसको प्रायः मूत्रोत्सर्ग या वीर्यपात होता रहता है। (क)

२. उपस्थित स्मृति वाले को निद्रा लेते समय ये पाँच गुण होते हैं। कौन से पाँच? (१) उसको सुख से नींद आती है, (२) सुख से नींद खुलती है, (३) सोते समय पापमय स्वप्न नहीं देखता, (४) देवता भी उसकी रक्षा करते हैं, (५) सोते समय उसको मूत्रोत्सर्ग या वीर्यपात नहीं होता।

भिक्षुओ! ये पाँच गुण उपस्थितस्मृति पुरुष के निद्रावस्था के गिनाये गये हैं॥'' ●

किमिलवर्ग इक्कीसवाँ सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

किमिलो धम्मस्सवनं, आजानीयो बलं खिलं।
विनिबन्धं यागु कट्ठं, गीतं मुट्ठस्सतिना चा ति॥ ●

२२. अक्कोसकवग्गो

१. अक्कोसकसुत्तं : १. ''यो सो, भिक्खवे, भिक्खु अक्कोसकपरिभासको [R.252] अरियूपवादी सब्रह्मचारीनं, तस्स पञ्च आदीनवा पाटिकङ्खा। कतमे पञ्च? पाराजिको वा होति छिन्नपरिबन्धो, अञ्ञतरं वा सङ्किलिट्ठं आपत्तिं आपज्जति, बाळ्हं वा रोगातङ्कं फुसति, सम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। यो सो, भिक्खवे, भिक्खु अक्कोसकपरिभासको अरियूपवादी सब्रह्मचारीनं, तस्स इमे पञ्च आदीनवा पाटिकङ्खा'' ति॥ ●

२. भण्डनकारकसुत्तं : १. ''यो सो, भिक्खवे, भिक्खु भण्डन- [N.491] कारको कलहकारको विवादकारको भस्सकारको सङ्घे अधिकरणकारको, तस्स पञ्च

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. किमिलसूत्र, २. धर्मश्रवणसूत्र, ३. अश्वाजानेयसूत्र, ४. बलसूत्र, ५. चेतःखिलसूत्र, ६. विनिबन्धसूत्र, ७. यागुसूत्र, ८. दन्तकाष्ठसूत्र, ९. गीतस्वरसूत्र, १०. भृष्टस्मृतिसूत्र॥ ●

२२. आक्रोशकवर्ग

१. आक्रोशकसूत्र : : सङ्घनिन्दक भिक्षु के पाँच अपराध

१. ''भिक्षुओ! जो कोई भिक्षु दूसरों का अपमान या निन्दा करता है या साथी भिक्षुओं पर साधनासम्बन्धी आरोप लगाता है, उससे पाँच अपराधों की आशा की जानी चाहिये। कौन से पाँच? (१) उसको पाराजिक दोष लगता है, जिससे उसका सङ्घ से सम्बन्ध टूट-फूट जाता है, (२) या इसी तरह की किसी अन्य आपत्ति से वह आवृत हो जाता है, (३) भयङ्कर रोग से ग्रस्त हो जाता है, (४) संज्ञारहित (बेहोश) होकर मरणभाव प्राप्त करता है, (५) तथा मरणानन्तर नरक में जा गिरता है। भिक्षुओ! ऐसे आक्रोशक, परिभाषक एवं दूसरों पर असत्य आरोपी के लिये इन पाँच अपराधों की आशा की जाती है॥'' ●

२. भण्डनकारकसूत्र : : कलहकारक भिक्षु के पाँच अपराध

१. ''जो कोई भिक्षु दूसरों से कलह करता है, विवाद करता है, व्यर्थ संवाद (बकवाद) करता है, सङ्घ में आरोप लगाता है, उससे पाँच परिणामों की आशा की जानी चाहिये। कौन से

आदीनवा पाटिकङ्खा। कतमे पञ्च? अनधिगतं नाधिगच्छति, अधिगता परिहायति, पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति, सम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। यो सो, भिक्खवे, भिक्खु अक्कोसकपरिभासको अरियूपवादी सब्रह्मचारीनं, तस्स इमे पञ्च आदीनवा पाटिकङ्खा'' ति॥ ●

[B.221] **३. सीलसुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। कतमे पञ्च? इध, भिक्खवे, दुस्सीलो सीलविपन्नो पमादाधिकरणं महतिं भोगजानिं निगच्छति। अयं, भिक्खवे, पठमो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

२. ''पुन च परं, भिक्खवे, दुस्सीलस्स सीलविपन्नस्स पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति। अयं, भिक्खवे, दुतियो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

[R.253] ३. ''पुन च परं, भिक्खवे, दुस्सीलो सीलविपन्नो यञ्ञदेव परिसं उपसङ्कमति—यदि खत्तियपरिसं, यदि ब्राह्मणपरिसं, यदि गहपतिपरिसं, यदि समणपरिसं—अविसारदो उपसङ्कमति मङ्कुभूतो। अयं, भिक्खवे, ततियो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

४. ''पुन च परं, भिक्खवे, दुस्सीलो सीलविपन्नो सम्मूळ्हो कालं करोति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

५. ''पुन च परं, भिक्खवे, दुस्सीलो सीलविपन्नो कायस्स भेदा परं मरणा अपायं

पाँच? (१) वह अप्राप्त को प्राप्त नहीं कर पाता। (२) या जो कुछ प्राप्त हुआ है वह भी नष्ट हो जाता है, (३) लोक में उसका अपयश फैलने लगता है, (४) असंज्ञी (बेहोश) होकर मरणभाव प्राप्त करता है, तथा (५) देहपात के बाद, मरणानन्तर दुर्गतिमय नरकयोनि में जा गिरता है। भिक्षुओ! ऐसे उपर्युक्त अपराधी भिक्षु के लिये इन पाँच आपराधिक दण्डों की आशा की जानी चाहिये॥'' ●

३. शीलसूत्र : : **दुःशील की पाँच शीलविपत्ति**

१. ''भिक्षुओ! दुःशील (आचारविहीन) की शीलविपत्ति के कारण पाँच दुष्परिणामों की आशा की जानी चाहिये। कौन पाँच? (१) शीलरहित दुःशील, अपने प्रमाद के कारण, अपनी विशाल सम्पत्ति को नष्ट कर बैठता है। भिक्षुओ! उस दुःशील की शीलविपत्ति का यह **प्रथम दुष्परिणाम** है। (१)

२. ''भिक्षुओ! पुनः उस शीलविपन्न दुःशील का लोक में अपयश फैलने लगता है। यह उसकी शीलविपत्ति का **दूसरा दुष्परिणाम** है।

३. ''पुनः, भिक्षुओ! वह शीलविपन्न दुःशील जिस किसी परिषद् में जाता है—फिर भले ही वह क्षत्रिय परिषद् हो या ब्राह्मणपरिषद् या वैश्यपरिषद् या शूद्रपरिषद्—सभी में मूर्ख के समान शिर झुकाये हुए जाता है। भिक्षुओ! उस शीलविपन्न की शीलविपत्ति का यह **तृतीय दुष्परिणाम** है।

४. ''पुनः, भिक्षुओ! वह दुःशील संज्ञारहित अवस्था में ही मरता है। भिक्षुओ! उस शीलविपन्न की शीलविपत्ति का यह **चतुर्थ दुष्परिणाम** होता है।

५. ''पुनः, भिक्षुओ! वह दुःशील शीलविपन्न इस देहपात के बाद, मरणानन्तर दुर्गतिमय

दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो आदीनवो दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा दुस्सीलस्स सीलविपत्तिया।

६. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाय। कतमे [N.492] पञ्च? इध, भिक्खवे, सीलवा सीलसम्पन्नो अप्पमादाधिकरणं महन्तं भोगक्खन्धं अधिगच्छति। अयं, भिक्खवे, पठमो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय।

७. ''पुन च परं, भिक्खवे, सीलवतो सीलसम्पन्नस्स कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति। अयं, भिक्खवे, दुतियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय।

८. ''पुन च परं, भिक्खवे, सीलवा सीलसम्पन्नो यञ्ञदेव परिसं उपसङ्कमति—यदि खत्तियपरिसं, यदि ब्राह्मणपरिसं, यदि गहपतिपरिसं, यदि समणपरिसं—विसारदो उपसङ्कमति अमङ्कुभूतो। अयं भिक्खवे, ततियो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय।

९. ''पुन च परं, भिक्खवे, सीलवा सीलसम्पन्नो असम्मूळ्हो कालं [B.222] करोति। अयं, भिक्खवे, चतुत्थो आनिसंसो सीलवतो सीलसम्पदाय।

१०. ''पुन च परं, भिक्खवे, सीलवा सीलसम्पन्नो कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो आनिसंसो सीलवतो [R.254] सीलसम्पदाय। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा सीलवतो सीलसम्पदाया'' ति॥ ●

नरक लोक में अपार कष्ट भोगने के लिये जा गिरता है। भिक्षुओ! यह **पाँचवा दुष्परिणाम** है जो उस शीलविपन्न को भोगने के लिये सन्नद्ध रहना चाहिये।

''भिक्षुओ! ये पाँच दुष्परिणाम दुश्शील को अपनी शीलविपत्ति के कारण भोगने पड़ते हैं

६. ''(इसके विपरीत) ''भिक्षुओ! शीलवान् की शीलसम्पत्ति के पाँच सुपरिणाम होते हैं कौन से पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कोई शीलसम्पन्न शीलवान् अपनी शीलसम्पत्ति के कारण बुद्धिमत्तापूर्वक सावधानी से विशाल भोगराशि का उपभोग करता है। भिक्षुओ! शीलसम्पत्ति का यह **प्रथम सुपरिणाम** है।

७. ''भिक्षुओ! शीलवान् की शीलसम्पत्ति का लोक में कल्याणमय कीर्तिशब्द सुनायी देने लगता है। यह, भिक्षुओ! उसकी शीलसम्पत्ति का **दूसरा सुपरिणाम** है।

८. ''भिक्षुओ! शीलवान् शीलसम्पन्न क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र की जिस किसी सभा में जाता है, सर्वत्र ही वह विद्वान् के समान शिर ऊँचा कर निर्भयतापूर्वक जाता है। भिक्षुओ! उसकी शीलसम्पत्ति का यह **तृतीय सुपरिणाम** दिखायी देता है।

९. ''पुनः, भिक्षुओ! वह शीलवान् शीलसम्पन्न पूर्ण चेतना के साथ मृत्यु को प्राप्त करता है। यह उसकी शीलसम्पत्ति का, भिक्षुओ! **चतुर्थ सुपरिणाम** है।

१०. ''पुनः, भिक्षुओ! वह शीलवान् पुरुष, देहपात के बाद मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में जाता है। भिक्षुओ! यह उसकी शीलसम्पत्ति का **पाँचवाँ सुपरिणाम** होता है। भिक्षुओ! उस शीलसम्पन्न की शीलसम्पत्ति के ये पाँच सुपरिणाम होते हैं॥'' ●

४. बहुभाणिसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा बहुभाणिस्मिं पुग्गले। कतमे पञ्च? मुसा भणति, पिसुणं भणति, फरुसं भणति, सम्फप्पलापं भणति, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा बहुभाणिस्मिं पुग्गले।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा मन्तभाणिस्मिं पुग्गले। कतमे पञ्च? न मुसा भणति, न पिसुणं भणति, न फरुसं भणति, न सम्फप्पलापं भणति, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा मन्तभाणिस्मिं पुग्गले'' ति॥

●

[N.493] **५. पठमअक्खन्तिसुत्तं** : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा अक्खन्तिया। कतमे पञ्च? बहुनो जनस्स अप्पियो होति अमनापो, वेरबहुलो च होति, वज्जबहुलो च, सम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा अक्खन्तिया।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा खन्तिया। कतमे पञ्च? बहुनो जनस्स पियो होति मनापो, न वेरबहुलो होति, न वज्जबहुलो, असम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा खन्तिया'' ति॥

●

६. दुतियअक्खन्तिसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा अक्खन्तिया। कतमे

---

४. बहुभाणिसूत्र : : बकवादी पुरुष के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! बहुत बोलने वाले पुद्गल में पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह असत्य बोलता है, (२) चुगली करता है, (३) कठोर बोलता है, (४) व्यर्थ प्रलाप (बकवाद) करता है, (५) तथा मरणानन्तर दुर्गतिमय नरक में जा गिरता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! बहुत बोलने वाले पुद्गल में ये पाँच दोष होते हैं।

२. ''भिक्षुओ! सोच-विचार कर बोलनेवाले, मितभाषी पुद्गल में पाँच गुण होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह असत्य नहीं बोलता, (२) चुगली नहीं करता, (३) कठोर नहीं बोलता, (४) व्यर्थ बकवाद नहीं करता, एवं (५) मरणानन्तर, सुगतिमय स्वर्गलोक में ही जाता है। भिक्षुओ! सोच-विचार कर बोलने वाले मितभाषी पुद्गल में ये पाँच गुण होते हैं॥''

●

५. प्रथम अक्षान्तिसूत्र : : असहनशीलता के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! असहनशीलता में ये पाँच दोष हैं। कौन से पाँच? (१) वह बहुत जनों का अप्रिय हो जाता है, (२) बहुत जनों से उसका वैर हो जाता है, (३) उसमें अनेक दुर्गुण आ जाते हैं, (४) वह चेतना (संज्ञा=होश) के विना मृत्यु प्राप्त करता है, (५) देहपात के बाद, मरणानन्तर नरक में जा गिरता है। भिक्षुओ! असहनशीलता के ये पाँच दोष हैं।

२. ''भिक्षुओ! सहनशीलता में ये पाँच गुण हैं। कौन से पाँच? (१) वह बहुत जनों के लिये प्रिय एवं आकर्षक हो जाता है, (२) उसका किसी से वैर (शत्रुता) नहीं होता; (३) उसमें

पञ्च? बहुनो जनस्स अप्पियो होति अमनापो, लुद्दो च होति, विप्पटिसारी च, [R.255] सम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं [B.223] उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा अक्खन्तिया।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा खन्तिया। कतमे पञ्च? बहुनो जनस्स पियो होति मनापो, अलुद्दो च होति, अविप्पटिसारी च, असम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा खन्तिया'' ति॥ ●

७. पठमअपासादिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा अपासादिके। कतमे पञ्च? अत्ता पि अत्तानं उपवदति, अनुविच्च विञ्ञू गरहन्ति, पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति, सम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा अपासादिके।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा पासादिके। कतमे पञ्च? अत्ता पि [N.494] अत्तानं न उपवदति, अनुविच्च विञ्ञू पसंसन्ति, कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति,

---

कोई दुर्गुण नहीं आ पाता, (४) वह चेतना के साथ मृत्यु प्राप्त करता है, (५) तथा मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में उत्पन्न होता है। भिक्षुओ! सहनशीलता के ये पाँच गुण हैं॥'' ●

६. द्वितीय अक्षान्तिसूत्र : : असहनशीलता के पाँच अन्य दोष

१. ''भिक्षुओ! असहनशीलता में ये पाँच अन्य दोष हैं। कौन से पाँच? (१) वह बहुत जनों के लिये अप्रिय एवं अनाकर्षक हो जाता है, (२) वह निर्दय होता है, (३) वह अपने किये न किये पर पछताता रहता है, (४) वह चेतनारहित (बेहोश) होकर मरण भाव प्राप्त करता है, (५) तथा देहपात के बाद, मरणानन्तर दुर्गतिमय नरक में जा गिरता है। भिक्षुओ! इस प्रकार असहनशीलता के ये अन्य **पाँच दोष** हैं।

२. ''तथा, भिक्षुओ! सहनशीलता के ये पाँच अन्य गुण हैं। कौन से पाँच? (१) यह बहुत पुरुषों का प्रिय एवं आकर्षण केन्द्र होता है, (२) अनेक पुरुषों से इसका कोई वैर (शत्रुता) नहीं होता, (३) वह निर्दय नहीं होता, (४) वह अपने कृत या अकृत पर पश्चात्ताप नहीं करता, एवं (५) वह मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्गलोक में ही जाता है।

''भिक्षुओ! सहनशीलता के ये **पाँच अन्य गुण** हैं॥'' ●

७. प्रथम अप्रासादिकसूत्र : : पाँच अप्रियकर दोष

१. ''भिक्षुओ! अप्रियकर पुद्गल में ये पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) स्वयं ही स्वयं पर दोषारोपण करने लगता है, (२) परीक्षण कर विद्वान् भी उसकी निन्दा करने लगते हैं, (३) लोक में उसका अपयश फैलने लगता है, (४) वह संज्ञारहित होकर मरणभाव प्राप्त करता है, (५) तथा वह मरणानन्तर, दुर्गतिमय नरक योनि में जा गिरता है। भिक्षुओ! अप्रियकर पुद्गल में ये पाँच दोष होते हैं।

२. भिक्षुओ! प्रियङ्कर पुद्गल में ये पाँच गुण होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह स्वयं पर दोष

असम्मूळ्हो कालं करोति, कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा पासादिके'' ति॥ ●

८. दुतियअपासादिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा अपासादिके। [R.256] कतमे पञ्च? अप्पसन्ना नप्पसीदन्ति, पसन्नानं च एकच्चानं अञ्ञथत्तं होति, सत्थुसासनं अकतं होति, पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति, चित्तमस्स नप्पसीदति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा अपासादिके।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा पासादिके। कतमे पञ्च? अप्पसन्ना पसीदन्ति, पसन्नानं च भिय्योभावो होति, सत्थुसासनं कतं होति, पच्छिमा जनता दिट्ठानुगतिं आपज्जति, चित्तमस्स पसीदति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा पासादिके'' ति॥●

[B.224] **९. अग्गिसुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा अग्गिस्मिं। कतमे पञ्च? अचक्खुस्सो, दुब्बण्णकरणो, दुब्बलकरणो, सङ्गणिकापवड्ढनो, तिरच्छान-कथापवत्तनिको होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा अग्गिस्मिं'' ति॥ ●

१०. मधुरासुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा मधुरायं। कतमे पञ्च?

नहीं लगाता, (२) समीक्षण करने के बाद विद्वान् भी उसकी निन्दा नहीं करते, (३) लोक में शनैः शनैः उसका सुयश फैलने लगता है, (४) वह चेतनासहित ही मृत्यु प्राप्त करता है, (५) एवं मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग प्राप्त करता है। भिक्षुओ! प्रियङ्कर पुद्गल में ये पाँच गुण होते हैं। ●

८. द्वितीय अप्रासादिकसूत्र : : पाँच अन्य अप्रासादिक दोष

१. ''भिक्षुओ! अप्रियकर पुद्गल में पाँच होते हैं। कौन से पाँच? (१) अप्रसन्न उस पर प्रसन्न नहीं होते, (२) अपितु जो प्रसन्न हैं वे भी, किसी कारण से उससे क्रुद्ध हो जाते हैं, (३) शास्ता का अनुशासन भी वह पूर्ण नहीं कर पाता, (४) पीछे आने वाली जनता भी उसका अनुसरण करने लगती है, (५) उसका चित्त भी सदा प्रसन्न नहीं रहता। इस प्रकार, भिक्षुओ! अप्रियकर पुद्गल में ये पाँच दोष होते हैं।

२. ''परन्तु भिक्षुओ! प्रियङ्कर पुद्गल में ये पाँच गुण होते हैं। कौन से पाँच? (१) अप्रसन्न उससे प्रसन्न रहते हैं, (२) तथा उसके प्रति प्रसन्नों में प्रसन्नता का आधिक्य होने लगता है, (३) वह शास्ता का शासन पूर्ण किये रहता है, (४) पीछे आने वाली जनता भी उसका अनुसरण करती है, (५) तथा इसका चित्त प्रतिक्षण प्रसन्न रहता है। भिक्षुओ! प्रियङ्कर पुद्गल में ये पाँच गुण होते हैं॥''●

९. अग्निसूत्र : : अग्नि के पाँच दोष

१. भिक्षुओ! अग्नि में ये पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) नेत्रज्योति को मन्द कर देती है, (२) शरीर का वर्ण विकृत कर देती है, (३) शरीर को दुर्बल कर देती है, (४) जनसमूह को अपने पास बढ़ा लेती है, तथा (५) व्यर्थ की बातचीत को बढ़ावा देती है। भिक्षुओ! अग्नि में ये पाँच दोष माने गये हैं॥'' ●

१०. मधुरासूत्र : : मथुरा में पाँच दोष

१. भिक्षुओ! मथुरा में ये पाँच दोष माने गये हैं। कौन से पाँच? (१) उसकी भूमि ऊँची

विसमा, बहुरजा, चण्डसुनखा, वाळयक्खा, दुल्लभपिण्डा—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा मधुरायं'' ति॥ ●

अक्कोसकवग्गो बावीसतिमो॥

तस्सुद्दानं

अक्कोसभण्डनसीलं, बहुभाणी द्वे अखन्तियो। [N.495,R.257]
अपासादिका द्वे वुत्ता, अग्गिस्मि मधुरेन चा ति॥ ●

२३. दीघचारिकवग्गो

१. पठमदीघचारिकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा दीघचारिकं अनवत्थचारिकं अनुयुत्तस्स विहरतो। कतमे पञ्च? अस्सुतं न सुणाति, सुतं न परियोदापेति, सुतेनेकच्चेन अविसारदो होति, गाळ्हं रोगातङ्कं फुसति, न च मित्तवा होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा दीघचारिकं अनवत्थचारिकं अनुयुत्तस्स विहरतो।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा समवत्थचारे। कतमे पञ्च? अस्सुतं सुणाति,

---

नीची है, (२) वहाँ धूल बहुत उड़ती है, (३) वहाँ के कुत्ते बहुत क्रोधी है, (४) वहाँ भूतप्रेत बहुत हैं, तथा (५) भिक्षा बहुत कठिनता से मिलती है। भिक्षुओ! मथुरा में ये पाँच दोष हैं॥'' ●

आक्रोशकवर्ग बाईसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आक्रोशकसूत्र, २. भण्डनकारकसूत्र, ३. शीलसूत्र, ४. बहुभाषिसूत्र, ५. प्रथम अक्षान्तिसूत्र, ६. द्वितीय अक्षान्तिसूत्र, ७. प्रथम अप्रासादिकसूत्र, ८. द्वितीय अप्रासादिकसूत्र, ९. अग्निसूत्र, एवं १०. मधुरासूत्र॥ ●

२३. दीर्घचारिकवर्ग

१. प्रथम दीर्घचारिकसूत्र : : अव्यवस्थित लम्बी चारिका के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! लम्बी परन्तु अव्यवस्थित चारिका करने वाले में पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह अश्रुत धर्म को नहीं सुनता है (२) श्रुत को स्पष्टता से धारण नहीं कर पाता, (३) श्रुत के एक अंश से अपरिचित रहता है, (४) भयङ्कर (गम्भीर) रोग से ग्रस्त हो जाता है, एवं (५) उसका कोई मित्र नहीं बन पाता। भिक्षुओ! लम्बी परन्तु अव्यवस्थित चारिका में ये पाँच दोष होते हैं।

२. (परन्तु) ''भिक्षुओ! व्यवस्थित चारिका करने वाले में ये पाँच गुण होते हैं। कौन से

सुतं परियोदापेति, सुतेनेकच्चेन विसारदो होति, न गाळ्हं रोगातङ्कं फुसति, मित्तवा च होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा समवत्थचारे'' ति॥ ●

[B.225] **२. दुतियदीघचारिकसुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा दीघचारिकं अनवत्थचारिकं अनुयुत्तस्स विहरतो। कतमे पञ्च? अनधिगतं नाधिगच्छति, अधिगता परिहायति, अधिगतेनेकच्चेन अविसारदो होति, गाळ्हं रोगातङ्कं फुसति, न च मित्तवा होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा दीघचारिकं अनवत्थचारिकं अनुयुत्तस्स विहरतो।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा समवत्थचारे। कतमे पञ्च? अनधिगतं अधिगच्छति, अधिगता न परिहायति, अधिगतेनेकच्चेन विसारदो होति, न गाळ्हं रोगातङ्कं फुसति, मित्तवा च होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा समवत्थचारे'' ति॥ ●

[N.496,R.258] **३. अतिनिवाससुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा अतिनिवासे। कतमे पञ्च? बहुभण्डो होति बहुभण्डसन्निचयो, बहुभेसज्जो होति बहुभेसज्जसन्निचयो, बहुकिच्चो होति बहुकरणीयो ब्यत्तो किङ्करणीयेसु, संसट्ठो विहरति गहट्ठपब्बजितेहि अननुलोमिकेन गिहिसंसग्गेन, तम्हा च आवासा पक्कमन्तो सापेक्खो पक्कमति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा अतिनिवासे।

पाँच? (१) अश्रुत धर्म को सुन पाता है, (२) श्रुत धर्म को स्पष्टतया धारण कर लेता है, (३) श्रुत के एक अंश में भी दक्ष होता है, (४) कोई गम्भीर रोग नहीं होता, तथा (५) उसके अधिक से अधिक मित्र होते हैं। भिक्षुओ! व्यवस्थित चारिका के ये पाँच गुण होते हैं॥'' ●

२. द्वितीय दीर्घचारिकसूत्र : : अव्यवस्थित लम्बी चारिका के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! लम्बी परन्तु अव्यवस्थित चारिका करने वाले में ये पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह अप्राप्त को प्राप्त नहीं कर पाता, (२) प्राप्त भी उस से छूट जाते हैं, (३) प्राप्त के एक भाग में अपरिचित ही रहता है, (४) भयङ्कर रोग से ग्रस्त हो जाता है, (५) तथा उसको कोई मित्र नहीं बनाना चाहता। भिक्षुओ! लम्बी परन्तु अव्यवस्थित चारिका करने वाले में ये पाँच दोष होते हैं।

२. (परन्तु) ''भिक्षुओ! व्यवस्थित चारिका करने वाले में ये पाँच गुण होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह अप्राप्त को प्राप्त कर लेता है, प्राप्त अंश उससे छूटते नहीं हैं, (३) प्राप्त के प्रत्येक भाग से परिचित रहता है, (४) उसको भयङ्कर रोग नहीं पकड़ना, तथा (५) उसके सभी मित्र बनना चाहते हैं। भिक्षुओ! व्यवस्थित चारिका करने वाले में ये पाँच गुण होते हैं॥'' ●

३. अतिनिवाससूत्र : : अधिक समय तक वास में पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! एक स्थान पर बहुत समय तक वास करने में ये पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह वहाँ बहुत सा संग्रह कर लेता है, (२) बहुत सी औषध एवं पथ्य वस्तुएँ एकत्र कर लेता है, (३) बहुत से सांसारिक कृत्यों में फँस जाता है; (४) क्योंकि उसका अनेक गृहस्थों एवं प्रव्रजितों से सम्पर्क हो जाता है, (५) अत: उस आवास को छोड़ते समय उस आवास से बहुत

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा समवत्थवासे। कतमे पञ्च? न बहुभण्डो होति न बहुभण्डसन्निचयो, न बहुभेसज्जो होति न बहुभेसज्जसन्निचयो, न बहुकिच्चो होति न बहुकरणीयो न ब्यत्तो किङ्करणीयेसु असंसट्ठो विहरति गहट्ठपब्बजितेहि अननुलोमिकेन गिहिसंसग्गेन, तम्हा च आवासा पक्कमन्तो अनपेक्खो पक्कमति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा समवत्थवासे'' ति॥ ●

४. मच्छरीसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा अतिनिवासे। कतमे पञ्च? आवासमच्छरी होति, कुलमच्छरी होति, लाभमच्छरी होति, वण्णमच्छरी होति, धम्ममच्छरी होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा अतिनिवासे।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा समवत्थवासे। कतमे पञ्च? न [B.226] आवासमच्छरी होति, न कुलमच्छरी होति, न लाभमच्छरी होति, न वण्णमच्छरी होति, न धम्ममच्छरी होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा समवत्थवासे'' ति॥ ●

५. पठमकुलूपकसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा कुलूपके। कतमे पञ्च? अनामन्तचारे आपज्जति, रहो निसज्जाय आपज्जति, पटिच्छन्ने आसने [R.259]

सी आशाएँ मन में रख लेता है। भिक्षुओ! अधिक समय तक एक आवास में रहने वाले के ये पाँच दोष होते हैं।

२. भिक्षुओ! समय समय पर आवास-परिवर्तन से ये पाँच गुण उपलब्ध होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह वहाँ बहुत संग्रह नहीं कर पाता, (२) बहुत औषध तथा पथ्य का भी संग्रह नहीं कर पाता, (३) अनेक सांसारिक कृत्यों में भी वह नहीं फँसता, (४) क्योंकि उसका गृहस्थों एवं प्रव्रजितों से अधिक सम्पर्क नहीं हो पाता, (५) अत: वह उस आवास को जब चाहे तब छोड़ देता है। भिक्षुओ! समय समय पर आवास-परिवर्तन के ये पाँच गुण हैं॥'' ●

४. मत्सरीसूत्र : : अधिक समय तक वास न करने के पाँच गुण

१. ''भिक्षुओ! अधिक समय तक एक स्थान पर वास करने में पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) उसे आवास का अभिमान होने लगता है, (२) कुल का अभिमान होने लगता है, (३) वहाँ से प्राप्त लाभ का अभिमान होने लगता है, (४) अपने रूप का अभिमान होने लगता है, तथा (५) धर्म का अभिमान होने लगता है। भिक्षुओ! अधिक समय तक एक स्थान पर वास करने में पाँच दोष होते हैं।

२. ''भिक्षुओ! अधिक समय तक एक स्थान पर वास न करने में पाँच गुण होते हैं। कौन से पाँच? (१) उसको आवास का अभिमान नहीं होता, (२) कुल का अभिमान नहीं होता, (३) प्राप्त लाभ का अभिमान नहीं होता, (४) अपने रूप का अभिमान नहीं होता, तथा (५) अपने धर्म का अभिमान नहीं होता। भिक्षुओ! अधिक समय तक एक आवास में रहने से ये पाँच गुण होते हैं॥'' ●

५. प्रथम कुलोपगसूत्र : : गृहस्थों के घरों में जाने के पाँच दोष

१. भिक्षुओ! गृहस्थों के घरों में अधिक जाने के ये पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच?

आपज्जति, मातुगामस्स उत्तरि छप्पञ्चवाचाहि धम्मं देसेन्तो आपज्जति, कामसङ्कप्प-[N.497] बहुलो विहरति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा कुलूपके'' ति॥ ●

६. **दुतियकुलूपकसुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा कुलूपकस्स भिक्खुनो अतिवेलं कुलेसु संसट्ठस्स विहरतो। कतमे पञ्च? मातुगामस्स अभिण्हदस्सनं, दस्सने सति संसग्गो, संसग्गे सति विस्सासो, विस्सासे सति ओतारो, ओतिण्णचित्तस्सेतं पाटिकङ्खं—'अनभिरतो वा ब्रह्मचरियं चरिस्सति, अञ्ञतरं वा सङ्किलिट्ठं आपत्तिं आपज्जिस्सति, सिक्खं वा पच्चक्खाय हीनायावत्तिस्सति'। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा कुलूपकस्स भिक्खुनो अतिवेलं कुलेसु संसट्ठस्स विहरतो'' ति॥ ●

७. **भोगसुत्तं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा भोगेसु। कतमे पञ्च? अग्गिसाधारणा भोगा, उदकसाधारणा भोगा, राजसाधारणा भोगा, चोरसाधारणा भोगा, अप्पियेहि दायादेहि साधारणा भोगा। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा भोगेसु।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, अनिसंसा भोगेसु। कतमे पञ्च? भोगे निस्साय अत्तानं सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति, मातापितरो सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति,

---

(१) बिना बुलाये जाने का दोष लगता है, (२) (स्त्रियों के साथ) एकान्त में बैठने का, (३) छिपे हुए (आवृत) आसन पर बैठने का दोष लगता है, (४) स्त्रियों को पाँच छह वाक्यों से अधिक उपदेश का दोष लगता है, (५) स्त्रियों में कामराग से आसक्त होने का दोष लगता है। ये, भिक्षुओ! पाँच दोष गृहस्थों के घरों में अधिक जाने से लगते हैं॥'' ●

६. द्वितीय कुलोपगसूत्र : : गृहस्थों के घरों में जाने के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! बहुत समय तक और बार बार गृहस्थों के घरों में जानेवाले भिक्षुओ को ये पाँच दोष भी लगते हैं। कौन से पाँच? (१) स्त्रियों से प्रतिदिन आँख लड़ाना, (२) इस कार्य के अतिशय रूप से होने पर कामसंसर्ग (मिलना जुलना) का दोष, (३) कामसंसर्ग होने पर परस्पर अतिशय विश्वास का दोष, (४) अतिशय विश्वास से उसके साथ मैथुन के सङ्केत का दोष लगता है, (५) इस सङ्केत के दो ही परिणाम सामने आते हैं—(क) वह उस (सङ्केत) में अरुचि दिखाने से धर्मसाधना में टिका रहता है, (ख) या फिर सङ्केत में रुचि दिखाता हुआ उसके साथ संवास कर, धर्मशिक्षा का त्याग कर, पुनः गृहस्थ धर्म में लौट जाता है। भिक्षुओ! बहुत समय तक और बार बार गृहस्थों के घरों में जाने वाले भिक्षु को ये पाँच दोष लगते हैं॥'' ●

७. भोगसूत्र : : कामभोगों में पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! कामभोगों में ये पाँच दोष माने जाते हैं। कौन से पाँच? (१) साधारणतः वे अग्नि से भस्म हो सकते हैं, (२) जल की बाढ़ में बह सकते हैं, (३) प्रायः राजा लोगों द्वारा छीने जा सकते हैं, (४) चौरों द्वारा चुराये जा सकते हैं, (५) या सम्बन्धिजनों द्वारा उन पर बलात् नियन्त्रण किया जा सकता है। भिक्षुओ! कामभोगों में साधारणतः ये पाँच दोष हैं।

२. भिक्षुओ! कामभोगों में ये पाँच गुण भी हैं। कौन से पाँच? (१) पुरुष इन कामभोगों के सहारे से स्वयं को सर्वथा सुखी रखता है, प्रसन्न रखता है, (२) माता पिता को सर्वथा सुखी रखता

पुत्तदारदासकम्मकरपोरिसे सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति, मित्तामच्चे [B.227] सुखेति पीणेति सम्मा सुखं परिहरति, समणब्राह्मणेसु उद्धग्गिकं दक्खिणं पतिट्ठापेति सोवग्गिकं सुखविपाकं सग्गसंवत्तनिकं। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा भोगेसू'' ति॥ ●

८. उस्सूरभत्तसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा उस्सूरभत्तो कुले। कतमे पञ्च? ये ते अतिथी पाहुना, ते न कालेन पटिपूजेन्ति; या ता बलिपटिग्गाहिका [R.260] देवता, ता न कालेन पटिपूजेन्ति; ये ते समणब्राह्मणा एकभत्तिका रत्तूपरता विरता विकालभोजना, ते न कालेन पटिपूजेन्ति; दासकम्मकरपोरिसा विमुखा कम्मं [N.498] करोन्ति; तावतकंयेव असमयेन भुत्तं अनोजवन्तं होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा उस्सूरभत्तो कुले।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा समयभत्ते कुले। कतमे पञ्च? ये ते अतिथी पाहुना, ते कालेन पटिपूजेन्ति; या ता बलिपटिग्गाहिका देवता, ता कालेन पटिपूजेन्ति; ये ते समणब्राह्मणा एकभत्तिका रत्तूपरता विरता विकालभोजना, ते कालेन पटिपूजेन्ति; दासकम्मकरपोरिसा अविमुखा कम्मं करोन्ति; तावतकंयेव समयेन भुत्तं ओजवन्तं होति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा समयभत्ते कुले'' ति॥ ●

है, ...। (३) अपने पुत्र, स्त्री, दास एवं कर्मचारियों को सुखी रखता है..., (४) मित्र एवं अमात्यों को सुखी रखता है..., (५) श्रमण ब्राह्मणों को व्रत या उपोसथ के दिन दान करता है जिससे मरणानन्तर स्वर्ग प्राप्ति की आशा रहती है। भिक्षुओ! कामभोगों में ये पाँच गुण हैं॥''●

८. उत्सूरभक्तसूत्र : : सूर्योदय के साथ भोजन करने वाले में पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! सूर्योदय के तत्काल बाद भोजन करने वाले कुलों में ये पाँच दोष उत्पन्न हो जाते हैं। कौन से पाँच? (१) अतिथि एवं प्राघुणिकों की यथासमय पूजा नहीं हो पाती, (२) बलि देने योग्य देवताओं को यथासमय बलि नहीं दी जा सकती, (३) दिन में एक बार ही भोजन करने वाले, रात्रिकाल एवं विकाल में भोजन न करने वाले श्रमणों ब्राह्मणों की यथासमय पूजा नहीं हो पाती, (४) उनके दास एवं कर्मकर भी भली भाँति मन लगाकर घर का कार्य नहीं कर पाते, (५) उस समय किया हुआ भोजन बलप्रद नहीं होता। भिक्षुओ! सूर्योदय के तत्काल बाद भोजन करने वाले कुलों में ये पाँच दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

२. ''भिक्षुओ! समय पर भोजन करने वाले कुलों में ये पाँच गुण उत्पन्न हो जाते हैं। कौन से पाँच? (१) अतिथि एवं प्राघुणिकों की यथासमय पूजा होती है, (२) बलि देने योग्य देवताओं को यथासमय बलि दी जा सकती है, (३) दिन में एक ही बार भोजन करने वाले तथा रात्रि एवं विकाल (असमय) में भोजन न करने वाले श्रमणों ब्राह्मणों की यथासमय पूजा हो पाती है, (४) उनके दास एवं कर्मकर भी मन लगाकर दिनभर काम करते हैं, (५) समय से किया हुआ भोजन ही ओजस्वी होता है। भिक्षुओ! समय पर भोजन करने वाले कुलों में ये पाँच गुण उद्भूत होते हैं॥'' ●

९. पठमकण्हसप्पसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा कण्हसप्पे। कतमे पञ्च? असुचि, दुग्गन्धो, सभीरु, सप्पटिभयो, मित्तदुब्भी—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा कण्हसप्पे। एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चिमे आदीनवा मातुगामे। कतमे पञ्च? असुचि, दुग्गन्धो, सभीरु, सप्पटिभयो, मित्तदुब्भी—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा मातुगामे'' ति॥ ●

१०. दुतियकण्हसप्पसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा कण्हसप्पे। [R.261] कतमे पञ्च? कोधनो, उपनाही, घोरविसो, दुजिव्हो, मित्तदुब्भी—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा कण्हसप्पे।

[B.228] २. ''एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चिमे आदीनवा मातुगामे। कतमे पञ्च? कोधनो, उपनाही, घोरविसो, दुजिव्हो, मित्तदुब्भी। तत्रिदं, भिक्खवे, मातुगामस्स घोरविसता—येभुय्येन, भिक्खवे, मातुगामो तिब्बरागो। तत्रिदं, भिक्खवे, मातुगामस्स दुजिव्हता—येभुय्येन, भिक्खवे, मातुगामो पिसुणवाचो। तत्रिदं, भिक्खवे, मातुगामस्स मित्तदुब्भिता—येभुय्येन, भिक्खवे, मातुगामो अतिचारिनी। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा मातुगामे'' ति॥ ●

दीघचारिकवग्गो तेवीसतिमो॥

---

९. प्रथम कृष्णसर्पसूत्र : : कृष्णसर्प के पाँच दोष

१. भिक्षुओ! काले सर्प में ये पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह अपवित्र होता है, (२) दुर्गन्धयुक्त होता है, (३) कायर (डरपोक) होता है, (४) देखने वाले के लिये भयप्रद (सप्रतिभय) होता है, तथा (५) मित्र के साथ विश्वासघात (धोखा) करता (मित्तदुब्भी) है। भिक्षुओ! इसी प्रकार स्त्रियों में पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह अपवित्र होती है, (२) दुर्गन्धमय होती है, (३) कायर होती है, (४) देखने वाले के लिये भयप्रद होती है, (५) मित्र के साथ विश्वासघात करती है। भिक्षुओ! स्त्रियों में ये पाँच दोष होते हैं॥'' ●

१०. द्वितीय कृष्णसर्पसूत्र : : कृष्णसर्प के अन्य पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! काले सर्प में पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? वह क्रोधी होता है। (२) शत्रुता रखता है। (३) इसका विष भयङ्कर होता है। (४) इसकी दो जिह्वा होती हैं। तथा (५) विश्वासघाती होता है। भिक्षुओ! कृष्णसर्प में ये पाँच दोष होते हैं।

२. इसी प्रकार, भिक्षुओ! स्त्रियों में भी ये पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? (१) वह भी क्रोधी होती है, (२) शत्रुभाव रखती है, (३) ये भयङ्कर विषधर होती हैं, (४) ये भी दो जिह्वा (वाणी) वाली होती हैं, (५) विश्वासघात करने में दक्ष होती हैं। भिक्षुओ! स्त्रियों में 'भयङ्कर विष' यही है कि वे तीव्र आसक्ति वाली होती हैं। उनकी 'द्विजिह्वता' यही है कि वे 'चुगलखोर' होती हैं। तथा उनका 'विश्वासघात' यही है कि वे प्राय: अतिचारी (आज्ञा का उल्लङ्घन करने वाली) होती हैं॥'' ●

दीर्घचारिकवर्ग तेईसवाँ सम्पन्न॥

तस्सुद्दानं

द्वे दीघचारिका वुत्ता, अतिनिवासमच्छरी। [N.499]
द्वे च कुलूपका भोगा, भत्तं सप्पापरे दुवे ति॥ ●

२४. आवासिकवग्गो

१. आवासिकसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु अभावनीयो होति। कतमेहि पञ्चहि? न आकप्पसम्पन्नो होति न वत्तसम्पन्नो; न बहुस्सुतो होति न सुतधरो; न पटिसल्लेखिता होति न पटिसल्लानारामो; न कल्याणवाचो होति न कल्याणवाक्करणो; दुप्पञ्ञो होति जळो एळमूगो। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु अभावनीयो होति।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु भावनीयो होति। कतमेहि पञ्चहि? आकप्पसम्पन्नो होति वत्तसम्पन्नो; बहुस्सुतो होति सुतधरो; [R.262]
पटिसल्लेखिता होति पटिसल्लानारामो; कल्याणवाचो होति कल्याणवाक्करणो; [B.229]

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम दीर्घचारिकसूत्र, २. द्वितीय दीर्घचारिकसूत्र, ३. अतिनिवाससूत्र, ४. मत्सरीसूत्र, ५. प्रथम कुलोपगसूत्र, ६. द्वितीय कुलोपगसूत्र, ७. भोगसूत्र, ८. उत्सूरभक्तसूत्र, ९. प्रथम कृष्णसर्पसूत्र, १०. द्वितीय कृष्णसर्पसूत्र॥ ●

२४. आवासिकवर्ग

१. आवासिकसूत्र : : आवासिक भिक्षु के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त आवासिक (आवासव्यवस्थापक) भिक्षु सम्माननीय नहीं होता। किन पाँच धर्मों से? (१) जिसका ईर्यापथ (चालढाल) भिक्षुजनोचित नहीं होता, न जिसका कर्तव्य ही भिक्षुजनोचित होता है, (२) न जो बहुश्रुत होता है, न श्रुतधर ही, (३) न जो दूसरों को तप, साधनाहेतु प्रेरित कर पाता है, न स्वयं एकान्त साधना करता है, (४) न जो मङ्गलमय वाणी बोलता है, न मङ्गलमय कृत्य ही करता है, (५) जो भेड़ की तरह गूँगा तथा दुष्प्रज्ञ होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु जनता में माननीय नहीं होता।

२. (परन्तु) ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु जनता का माननीय होता है। किन पाँच धर्मों से? (१) जिसके चाल-चलन तथा कर्तव्यकर्म भिक्षुजनोचित होते हैं; (२) जो बहुश्रुत एवं श्रुतधर होता है; (३) दूसरों को तप:साधना के लिये कहता है, तथा स्वयं भी एकान्त साधना करता है; (४) जो कल्याणवाक् भी होता है, तथा मङ्गलमय कृत्य भी करता है;

पञ्ञवा होति अजळो अनेळमूगो। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु भावनीयो होती'' ति॥

२. पियसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो होति मनापो च गरु च भावनीयो च। कतमेहि पञ्चहि? सीलवा होति, पातिमोक्खसंवरसंवुतो विहरति आचारगोचरसम्पन्नो अणुमत्तेसु वज्जेसु भयदस्सावी, समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु; बहुस्सुतो होति सुतधरो सुतसन्निचयो, ये ते धम्मा आदिकल्याणा मज्झेकल्याणा परियोसानकल्याणा सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुण्णं [N.500] परिसुद्धं ब्रह्मचरियं अभिवदन्ति, तथारूपास्स धम्मा बहुस्सुता होन्ति धाता वचसा परिचिता मनसानुपेक्खिता दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; कल्याणवाचो होति कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया; चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिर-लाभी; आसवानं खया अनासवं चेतोविमुत्तिं पञ्ञाविमुत्तिं दिट्ठेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्छिकत्वा उपसम्पज्ज विहरति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु सब्रह्मचारीनं पियो च होति मनापो च गरु च भावनीयो चा'' ति॥

३. सोभनसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु [R.263] आवासं सोभेति। कतमेहि पञ्चहि? सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु; बहुस्सुतो होति ...पे०... दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; कल्याणवाचो होति कल्याणवाक्करणो पोरिया वाचाय समन्नागतो विस्सट्ठाय अनेलगलाय अत्थस्स विञ्ञापनिया; पटिबलो होति उपसङ्कमन्ते धम्मिया कथाय सन्दस्सेतुं समादपेतुं समुत्तेजेतुं

---

(५) जो प्रज्ञावान् होता है, भेड़ की तरह जड़ या मूक नहीं होता। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु जनता का पूजनीय एवं माननीय होता है॥

२. प्रियसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु की जनप्रियता

१. भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु साथी भिक्षुओं का प्रिय, अनुकूल, गुरु एवं पूजनीय होता है। कौन पाँच धर्मों से? वह (१) शीलवान् होता है ...पूर्ववत्...; (२) बहुश्रुत, श्रुतधर एवं श्रुत का संग्रह करने वाला होता है...; (३) कल्याणवाक् होता है...; (४) चार ध्यानों का अतिशय लाभी होता है...; (५) आश्रवों के क्षय से अनाश्रवा चेतोविमुक्ति, प्रज्ञाविमुक्ति को... प्राप्त कर साधना करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु साथियों का प्रिय... पूजनीय होता है॥''

३. शोभनसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु से आवास की शोभा वृद्धि

१. भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु आवास की शोभावृद्धि करता है। किन पाँच धर्मों से? (१) वह शीलवान् होता है..., (२) बहुश्रुत, श्रुतधर होता है...; (३) वह कल्याणवाक् एवं कल्याणवाक्करण होता है...; (४) आवास में आये भिक्षुओं तथा उपासकों को धार्मिक कथा सुनाकर समुत्तेजित एवं सम्प्रहृष्ट करने में समर्थ होता है; (५) आभिचैतसिक चारों

सम्पहंसेतुं; चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु आवासं सोभेती'' ति॥ ●

४. बहूपकारसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो [B.230] आवासिको भिक्खु आवासस्स बहूपकारो होति। कतमेहि पञ्चहि? सीलवा होति ...पे०... समादाय सिक्खति सिक्खापदेसु; बहुस्सुतो होति ...पे०... दिट्ठिया सुप्पटिविद्धा; खण्डफुल्लं पटिसङ्खरोति; महा खो पन भिक्खुसङ्घो अभिक्कन्तो नानावेरज्जका भिक्खू गिहीनं उपसङ्कमित्वा आरोचेति—'महा खो, आवुसो, भिक्खुसङ्घो अभिक्कन्तो नानावेरज्जका भिक्खू, करोथ पुञ्ञानि कातुं' ति; चतुन्नं झानानं आभिचेतसिकानं दिट्ठधम्मसुखविहारानं निकामलाभी होति अकिच्छलाभी अकसिरलाभी। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु आवासस्स बहूपकारो [N.501] होती'' ति॥ ●

५. अनुकम्पसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु गिहीनं अनुकम्पति। कतमेहि पञ्चहि? अधिसीले समादपेति; धम्मदस्सने निवेसेति; गिलानके उपसङ्कमित्वा सतिं उप्पादेति—'अरहग्गतं आयस्मन्तो सतिं उपट्ठापेथा' ति; महा खो पन भिक्खु सङ्घो अभिक्कन्तो नानावेरज्जका भिक्खू [R.264] गिहीनं उपसङ्कमित्वा आरोचेति—'महा खो, आवुसो, भिक्खुसङ्घो अभिक्कन्तो

ध्यानों का अतिशय लाभी ... होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु उस आवाए की शोभावृद्धि करता है॥'' ●

४. बहूपकारसूत्र : : आवासिक भिक्षु आवास का उपकारक

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु आवास का बहुत उपकारक होता है। किन पाँच धर्मों से? (१) वह शीलवान् होता है...; (२) बहुश्रुत होता है...; (३) वह खण्डहरों का जीर्णोद्धार करता है; (४) 'महान् भिक्षुसङ्घ आया हुआ है, इसमें अनेक राज्यों के भिक्षु सम्मिलित हैं'—यह कहता हुआ वह उन भिक्षुओं को गृहस्थों के सम्मुख ले जाकर गृहस्थों को प्रोत्साहित करता है—'आप लोग पुण्य करें, यह पुण्य का अवसर है'; (५) आभिचैतसिक चारों ध्यानों का अतिशय लाभी होता है। इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु आवास का अतिशय उपकारक होता है॥'' ●

५. अनुकम्पसूत्र : : गृहस्थों पर अनुकम्पक आवासिक भिक्षु

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त आवासिक गृहस्थों पर अनुकम्पा करता है। किन पाँच धर्मों से? (१) उनको शील में प्रतिष्ठित करता है। (२) धर्मदर्शन में लगाता है। (३) रोगियों के पास जाकर उनको स्मरण दिलाता है—'आयुष्मानो! अर्हत् में अपना ध्यान लगाओ'। (४) जब कोई विशाल भिक्षुसङ्घ आ जाय, जिसमें अनेक प्रदेशों के भिक्षु सम्मिलित हों, तब उन भिक्षुओं को गृहस्थों के सम्मुख ले जाकर गृहस्थों को प्रोत्साहित करें—'अनेक प्रदेशों के भिक्षुओं का विशाल

नानावेरज्जका भिक्खू, करोथ पुञ्ञानि, समयो पुञ्ञानि कातुं' ति; यं खो पनस्स भोजनं देन्ति लूखं वा पणीतं वा तं अत्तना परिभुञ्जति, सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु गिहीनं अनुकम्पती'' ति॥ ●

६. पठमअवण्णारहसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति; अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति; अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने पसादं उपदंसेति; [B.231] अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति; सद्धादेय्यं विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति; अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति; अनुविच्च परियोगाहेत्वा अप्पसादनीये ठाने अप्पसादं उपदंसेति; अनुविच्च परियोगाहेत्वा पसादनीये ठाने पसादं [N.502] उपदंसेति; सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

[R.265] **७. दुतियअवण्णारहसुत्तं** : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? अननुविच्च

सङ्घ आया हुआ है, आप लोग पुण्य करें, यह पुण्य करने का अवसर है'। (५) उस समय उन गृहस्थों से जो रूखा सूखा मिलता है उसे स्वयं खा लेता है, श्रद्धा से दिये हुए भोजन को वह फेंकता नहीं है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु गृहस्थों पर अनुकम्पक होता है''॥ ●

६. प्रथम अवर्णार्हसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त निन्दनीय आवासिक

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु जैसे आया था वैसे ही पुनः नरक में जा गिरेगा। किन पाँच धर्मों से? विना सोचे समझे अनिन्दनीय की निन्दा करता है; (२) तथा विना सोचे समझे, निन्दनीय की प्रशंसा करता है; (३) विना सोचे समझे अश्रद्धेय में श्रद्धा रखता है; (४) तथा विना सोचे समझे श्रद्धेय में श्रद्धा नहीं रखता; (५) श्रद्धा से प्रदत्त रूखे सूखे भोजन को फेंक देता है। ऐसा आवासिक भिक्षु जैसे आया था वैसे ही नरक में जा गिरता है।

२. ''तथा, भिक्षुओ! इन पाँच (शुभ) धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु जैसे आया था वैसे ही पुनः स्वर्ग में जायगा। किन पाँच धर्मों से? (१) सोच समझकर, निन्दनीय की निन्दा करता है; (२) सोच समझ कर, प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है; (३) सोच समझकर, अश्रद्धेय में अश्रद्धा प्रकट करता है; (४) सोच समझकर श्रद्धेय में श्रद्धा प्रकट करता है; (५) श्रद्धा से प्रदत्त भोजन को फेंकता नहीं है (खा लेता है)। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु जैसे आया था वैसे ही पुनः स्वर्ग में जायगा॥''

●

अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति; अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति; आवासमच्छरी होति आवासपलिगेधी; कुलमच्छरी होति कुलपलिगेधी; सद्धादेय्यं विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति; अनुविच्च परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति; न आवासमच्छरी होति न आवासपलिगेधी; न कुलमच्छरी होति न कुलपलिगेधी; सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥

८. **ततियअवण्णारहसुत्तं** : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? [B.232] अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स वण्णं भासति; अननुविच्च अपरियोगाहेत्वा वण्णारहस्स अवण्णं भासति; आवासमच्छरी होति; कुलमच्छरी होति; लाभमच्छरी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं

---

७. द्वितीय अवर्णार्हसूत्र : : पाँच धर्मों से निन्दनीय / प्रशंसनीय

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्...; (२) सोचे समझे विना, प्रशंसनीय की निन्दा करता है; (३) आवास का अभिमान करता है, गर्व करता है; (४) कुल का अभिमान करता है, कुल का गर्व करता है; (५) श्रद्धा से दिये हुए को फेंक देता है।

"भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... नरक में जा गिरता है।

२. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... (२) सोच समझ कर प्रशंसनीय की प्रशंसा करता है; (३) न आवास का अभिमान करता है न गर्व; (४) न कुल का अभिमान करता है न गर्व; (५) श्रद्धा से दिये हुए को फेंकता नहीं है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... पुन: स्वर्ग में ही जायगा॥"

८. तृतीय अवर्णार्हसूत्र : : पाँच धर्मों से निन्दनीय / प्रशंसनीय

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... (२) विना सोचे समझे, प्रशंसनीय की निन्दा करता है; (३) आवास का अभिमान करता है; (४) कुल का अभिमान करता है; (५) लाभप्राप्ति का अभिमान करता है। इन पाँच धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... नरक में जा गिरता है।

२. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... (२) सोच समझ कर, प्रशंसनीय की ही

भासति; अनुविच्च परियोगाहेत्वा अवण्णारहस्स अवण्णं भासति; अनुविच्च [N.503,R.266] परियोगाहेत्वा वण्णारहस्स वण्णं भासति; न आवासमच्छरी होति; न कुलमच्छरी होति; न लाभमच्छरी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

९. पठममच्छरियसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? आवासमच्छरी होति; कुलमच्छरी होति; लाभमच्छरी होति; वण्णमच्छरी होति; सद्धादेय्यं विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? न आवासमच्छरी होति; न कुलमच्छरी होति; न लाभमच्छरी होति; न वण्णमच्छरी होति; सद्धादेय्यं न विनिपातेति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

१०. दुतियमच्छरियसुत्तं : १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? आवासमच्छरी होति; कुलमच्छरी होति; लाभमच्छरी होति; वण्णमच्छरी होति; धम्ममच्छरी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

[B.233] २. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं

प्रशंसा करता है; (३) न आवास का अभिमान करता है; (४) न कुल का अभिमान करता है; (५) न लाभप्राप्ति का अभिमान करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु सीधा सुगतिमय स्वर्ग में ही जाता है॥'' ●

९. प्रथम मात्सर्यसूत्र **: : पाँच धर्मों से निन्दनीय / प्रशंसनीय भिक्षु**

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु ...पूर्ववत्... नरक में गिरता है।

२. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... (१) उसको अपने आवास का, (२) कुल का, (३) लाभप्राप्ति का, (४) रूप सौन्दर्य का अभिमान नहीं होता, तता (५) श्रद्धा से प्रदत्त रूखे सूखे अन्न को भी फेंकता नहीं है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु, मरणानन्तर, सीधा सुगतिमय स्वर्गलोक में ही जाता है॥'' ●

१०. द्वितीय मात्सर्यसूत्र **: : पाँच धर्मों से निन्दनीय / प्रशंसनीय भिक्षु**

१. ''भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... (४) अपने रूप का अभिमान करता है, (५) धर्म का अभिमान करता है। इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु ...नरक में ही जाता है।

२. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त ...पूर्ववत्... उसको (१) आवास, (२) कुल,

निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? न आवासमच्छरी होति; न कुलमच्छरी [R.267] होति; न लाभमच्छरी होति; न वण्णमच्छरी होति; न धम्ममच्छरी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आवासिको भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥

आवासिकवग्गो चतुवीसतिमो॥

तस्सुद्दानं

आवासिको पियो च सोभनो, बहूपकारो अनुकम्पको च। [N.504]
द्वे च कुलूपका भोगा, भत्तं सप्पापरे दुवे ति॥

२५. दुच्चरितवग्गो

१. पठमदुच्चरितसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा दुच्चरिते। कतमे पञ्च? अत्ता पि अत्तानं उपवदति; अनुविच्च विञ्ञू गरहन्ति; पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति; सम्मूळ्हो कालं करोति; कायस्स भेदा परं मरणा अपायं दुग्गतिं विनिपातं निरयं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा दुच्चरिते।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा सुचरिते। कतमे पञ्च? अत्ता पि अत्तानं न

---

(३) लाभप्राप्ति का, (४) रूप का, तथा (५) धर्म का अभिमान नहीं होता। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आवासिक भिक्षु देहपात के बाद स्वर्ग में ही पहुँचता है॥''

आवासिकवर्ग चौबीसवाँ पूर्ण॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. आवासिकसूत्र, २. प्रियसूत्र, ३. शोभनसूत्र, ४. बहूपकारसूत्र, ५. अनुकम्पसूत्र, ६. प्रथम अवर्णार्हसूत्र, ७. द्वितीय अवर्णार्हसूत्र, ८. तृतीय अवर्णार्हसूत्र, ९. प्रथम मात्सर्यसूत्र, १०. द्वितीय मात्सर्यसूत्र॥

२५. दुश्चरितवर्ग

१. प्रथम दुश्चरितसूत्र : : दुश्चरित के पाँच दोष

१. ''भिक्षुओ! दुश्चरित के ये पाँच दोष हैं। कौन से पाँच? (१) स्वयं ही स्वयं पर दोषारोप करने लगता है, (२) उसे जानकर विज्ञजन भी उसकी निन्दा करने लगते हैं, (३) लोक में उसका अपयश होने लगता है, (४) संज्ञाहीन होकर मृत्यु प्राप्त करता है, (५) तथा देहपात के बाद, मरणानन्तर दुर्गतिमय नरकलोक का गामी होता है। भिक्षुओ! दुश्चरित के ये पाँच दोष हैं।

२. ''भिक्षुओ! सुचरित के ये पाँच गुण हैं। कौन से पाँच? (१) वह स्वयं अपने पर

उपवदति; अनुविच्च विञ्ञू पसंसन्ति; कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति; असम्मूळ्हो कालं करोति; कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा सुचरिते'' ति॥ ●

२. पठमकायदुच्चरितसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा कायदुच्चरिते ...पे०...। पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा कायसुचरिते ...पे०...॥ ●

[B.234] **३. पठमवचीदुच्चरितसुत्तं** : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा वचीदुच्चरिते ...पे०...। पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा वचीसुचरिते ...पे०...॥ ●

[N.505] **४. पठममनोदुच्चरितसुत्तं** : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा मनोदुच्चरिते ...पे०...।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा मनोसुचरिते। कतमे पञ्च? अत्ता पि अत्तानं [R.268] न उपवदति; अनुविच्च विञ्ञू पसंसन्ति; कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति; असम्मूळ्हो कालं करोति; कायस्स भेदा परं मरणा सुगतिं सग्गं लोकं उपपज्जति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा मनोसुचरिते'' ति॥ ●

५. दुतियदुच्चरितसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा दुच्चरिते। कतमे पञ्च? अत्ता पि अत्तानं उपवदति; अनुविच्च विञ्ञू गरहन्ति; पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति; सद्धम्मा वुट्ठाति; असद्धम्मे पतिट्ठाति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा दुच्चरिते।

दोषारोपण नहीं करता, (२) उसका परीक्षण कर विद्वान् भी उसकी प्रशंसा करते हैं। (३) लोक में उसका यश फैलने लगता है। (४) संस्कारयुक्त रहते हुए ही उसकी मृत्यु होती है, तथा (५) मरणानन्तर उसकी स्वर्ग में ही गति होती है। भिक्षुओ! सुचरित के ये पाँच गुण हैं॥'' ●

२. प्रथम कायदुश्चरितसूत्र : : कायदुश्चरित / कायसुचरित

१. ''भिक्षुओ! कायदुश्चरित के ये पाँच दोष हैं। ...पूर्ववत्...।

२. भिक्षुओ! कायसुचरित के ये पाँच गुण हैं। ...पूर्ववत्...॥ ●

३. प्रथम वाग्दुश्चरितसूत्र : : वाग्दुश्चरित / वाक्सुचरित

१. ''भिक्षुओ! वाणी से दुश्चरित के ये पाँच दोष हैं। ...पूर्ववत्...।

२. भिक्षुओ! वाणी से सुचरित के ये पाँच गुण हैं। ...पूर्ववत्...॥ ●

४. प्रथम मनोदुश्चरितसूत्र : : मनोदुश्चरित / मनःसुचरित

१. ''भिक्षुओ! मनोदुश्चरित के ये पाँच आदीनव हैं। ...पूर्ववत्...।

२. ''भिक्षुओ! मनःसुचरित के ये पाँच गुण हैं। कौन से पाँच? (१) स्वयं भी स्वयं पर कोई आरोप नहीं लगाता, (२) उसके गुणों की समीक्षा कर विद्वान् भी प्रशंसा करते हैं; (३) लोक में उसका यश फैलने लगता है, (४) वह संज्ञायुक्त रहता हुआ मरणभाव को प्राप्त करता है; (५) देहपात के बाद, मरणानन्तर सुगतिमय स्वर्ग प्राप्त करता है। इस प्रकार, भिक्षुओ! मनःसुचरित के ये पाँच गुण हैं॥'' ●

२. "पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा सुचरिते। कतमे पञ्च? अत्ता पि अत्तानं न उपवदति; अनुविच्च विञ्ञू पसंसन्ति; कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति; असद्धम्मा वुट्ठाति; सद्धम्मे पतिट्ठाति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा सुचरिते" ति॥ ●

६. दुतियकायदुच्चरितसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा कायदुच्चरिते ...पे०...। पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा कायसुचरिते ...पे०...॥ ●

७. दुतियवचीदुच्चरितसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा वचीदुच्चरिते ...पे०...। पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा वचीसुचरिते ...पे०...॥ ●

८. दुतियमनोदुच्चरितसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा मनो-[B.235] दुच्चरिते ...पे०...।

२. "पञ्चिमे, भिक्खवे, आनिसंसा मनोसुचरिते। कतमे पञ्च? अत्ता पि अत्तानं न उपवदति; अनुविच्च विञ्ञू पसंसन्ति; कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति; [N.506] असद्धम्मा वुट्ठाति; सद्धम्मे पतिट्ठाति। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आनिसंसा मनोसुचरिते" ति॥ ●

९. सिवथिकसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा सिवथिकाय। कतमे पञ्च? असुचि, दुग्गन्धा, सप्पटिभया, वाळानं अमनुस्सानं आवासो, बहुनो जनस्स आरोदना—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा सिवथिकाय।

२. "एवमेव खो, भिक्खवे, पञ्चिमे आदीनवा सिवथिकूपमे पुग्गले। कतमे

दुश्चरित / सुचरित

: :

५. द्वितीय दुश्चरितसूत्र

१. "भिक्षुओ! दुश्चरित के ये पाँच दोष हैं ...पूर्ववत्... (४) सद्धर्म के पालन में चित्त उचट जाता है, (५) असद्धर्म के पालन में चित्त लगता है। भिक्षुओ! दुश्चरित में ये पाँच दोष होते हैं।

२. "भिक्षुओ! सुचरित के ये पाँच गुण होते हैं। ...पूर्ववत्... (४) असद्धर्म से चित्त उचट जाता है, (५) सद्धर्म के पालन में चित्त लग जाता है। भिक्षुओ! ये पाँच गुण सुचरित के होते हैं॥"

काय दुश्चरित / सुचरित

: :

६. द्वितीय कायदुश्चरितसूत्र

१. "भिक्षुओ! कायदुश्चरित के ये भी पाँच दोष हैं। ...पूर्ववत्...।

२. "भिक्षुओ! कायसुचरित के ये भी पाँच गुण हैं। ...पूर्ववत्...। ●

वाग्दुश्चरित / सुचरित

: :

७. द्वितीय वाग्दुश्चरितसूत्र

१. "भिक्षुओ! वाग्दुश्चरित के ये पाँच दोष हैं। ...पूर्ववत्...।

२. "भिक्षुओ! वाक्सुचरित के ये पाँच गुण हैं। ...पूर्ववत्...। ●

मनोदुश्चरित / सुचरित

: :

८. द्वितीय मनोदुश्चरितसूत्र

१. "भिक्षुओ! मनोदुश्चरित के ये पाँच दोष है? ...पूर्ववत्...।

२. "भिक्षुओ! मनःसुचरित के ये पाँच गुण हैं। कौन से पाँच? (१) वह स्वयं पर दोषारोप नहीं करता; (२) विद्वान् भी उसको परख कर उसकी प्रशंसा करते हैं; (३) लोक में उसका यश

[R.269] पञ्च? इध, भिक्खवे, एकच्चो पुग्गलो असुचिना कायकम्मेन समन्नागतो होति; असुचिना वचीकम्मेन समन्नागतो होति; असुचिना मनोकम्मेन समन्नागतो होति। इदमस्स असुचिताय वदामि। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, सिवथिका असुचि; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

३. ''तस्स असुचिना कायकम्मेन समन्नागतस्स, असुचिना वचीकम्मेन समन्नागतस्स, असुचिना मनोकम्मेन समन्नागतस्स पापको कित्तिसद्दो अब्भुग्गच्छति। इदमस्स दुग्गन्धताय वदामि। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, सिवथिका दुग्गन्धा; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

४. ''तमेनं असुचिना कायकम्मेन समन्नागतं, असुचिना वचीकम्मेन समन्नागतं, असुचिना मनोकम्मेन समन्नागतं पेसला सब्रह्मचारी आरका परिवज्जन्ति। इदमस्स सप्पटिभयस्मिं वदामि। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, सिवथिका सप्पटिभया; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

५. ''सो असुचिना कायकम्मेन समन्नागतो, असुचिना वचीकम्मेन समन्नागतो, असुचिना मनोकम्मेन समन्नागतो सभागेहि पुग्गलेहि सद्धिं संवसति। इदमस्स वाळा-

---

फैलने लगता है, (५) असद्धर्म से अरुचि (उपेक्षा) रखता है; (५) तथा सद्धर्म में प्रतिष्ठित होता है। भिक्षुओ! मन:सुचरित के ये पाँच गुण होते हैं॥''

९. सिवथिकासूत्र : : श्मशान के दोष

१. ''भिक्षुओ! सिवथिका (श्मशान) में ये पाँच दोष हैं। कौन पाँच? (१) वह अपवित्र होता है; (२) दुर्गन्धियुक्त होता है; (३) भयजनक होता है; (४) प्रेतों तथा भूतों का आवास होता है; (५) बहुत से मनुष्य वहाँ रोते हुए मिलते हैं। भिक्षुओ! श्मशान के ये पाँच दोष होते हैं।

२. ''इसी प्रकार श्मशानसदृश पुद्गल में भी ये दोष होते हैं। कौन से पाँच? यहाँ, भिक्षुओ! कोई पुद्गल अपवित्र कायकर्म से, अपवित्र वाक्कर्म से, अपवित्र मन:कर्म से युक्त होता है। यह इसकी **अपवित्रता** कहलाती है। जैसे, भिक्षुओ! वह श्मशान अपवित्र होता है, वैसे ही मैं इस पुद्गल को अपवित्र मानता हूँ।

३. ''ऐसे उस अपवित्र कायकर्म, वाक्कर्म एवं मन:कर्म से युक्त पुद्गल का लोक में अपयश फैलने लगता है। यह इसकी **दुर्गन्धता** कहलाती है। जैसे, भिक्षुओ! वह श्मशान दुर्गन्धिमय होता है, ऐसे ही यह पुद्गल भी दुर्गन्धिमय होता है।

४. ''ऐसे उस अपवित्र कायकर्म से वाक्कर्म से तथा मन:कर्म से युक्त पुद्गल को दूर से देखते ही, उसके बुद्धिमान् साथी, उससे दूर हो जाते हैं। यह उसकी **भयानकता** कहलाती हैं। जैसे, भिक्षुओ! वह श्मशान भयजनक होता है, वैसे ही यह पुद्गल भी दूसरों के लिये भयजनक ही होता है।

५. ''ऐसा वह अपवित्र कायकर्म से, वाक्कर्म से तथा मन:कर्म से युक्त पुद्गल अपने समान पुद्गलों के साथ ही रहने लगता है। उसका यह ऐसे पुरुषों के साथ रहना ही **भूत प्रेतों का आवास**

वासस्मिं वदामि। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, सिवथिका वाळानं अमनुस्सानं [B.236] आवासो; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गलं वदामि।

[N.506] ६. "तमेनं असुचिना कायकम्मेन समन्नागतं, असुचिना वचीकम्मेन समन्नागतं, असुचिना मनोकम्मेन समन्नागतं पेसला सब्रह्मचारी दिस्वा खीयधम्मं आपज्जन्ति—'अहो वत नो दुक्खं ये मयं एवरूपेहि पुग्गलेहि सद्धिं संवसामा' ति! इदमस्स आरोदनाय वदामि। सेय्यथापि सा, भिक्खवे, सिवथिका बहुनो जनस्स आरोदना; तथूपमाहं, भिक्खवे, इमं पुग्गले वदामि। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा सिवथिकूपमे पुग्गले" ति॥ ●

१०. **पुग्गलप्पसादसुत्तं** : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, आदीनवा [R.270] पुग्गलप्पसादे। कतमे पञ्च? यस्मिं, भिक्खवे, पुग्गले पुग्गलो अभिप्पसन्नो होति, सो तथारूपं आपत्तिं आपन्नो होति यथारूपाय आपत्तिया सङ्घो उक्खिपति। तस्स एवं होति—'यो खो म्यायं पुग्गलो पियो मनापो सो सङ्घेन उक्खित्तो' ति। भिक्खूसु अप्पसादबहुलो होति। भिक्खूसु अप्पसादबहुलो समानो अञ्ञे भिक्खू न भजति। अञ्ञे भिक्खू अभजन्तो सद्धम्मं न सुणाति। सद्धम्मं असुणन्तो सद्धम्मा परिहायति। अयं, भिक्खवे, पठमो आदीनवो पुग्गलप्पसादे।

२. "पुन च परं, भिक्खवे, यस्मिं पुग्गले पुग्गलो अभिप्पसन्नो होति, सो तथारूपं आपत्तिं आपन्नो होति यथारूपाय आपत्तिया सङ्घो अन्ते निसीदापेति। तस्स एवं होति—

कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! वह श्मशान 'भूतों का आवास' होता है, वैसे ही यह पुरुष भी भूत-प्रेतावास कहलाता है।

६. ऐसे उस अपवित्र कायकर्म से, वाक्कर्म से, मनःकर्म से युक्त भिक्षु को देखकर उसके सदाचारसम्पन्न साथी भिक्षु यों उद्विग्न होने लगते हैं—'अरे यह कितने कष्ट की बात है कि हमें ऐसे भिक्षुओं के साथ रहना पड़ रहा है।' यह उसके प्रति **बहुत जनों का रोदन** कहलाता है। जैसे, भिक्षुओ! वह श्मशान बहुत जनों का रोदन-स्थान है वैसा ही मैं इस भिक्षु (पुद्गल) को मानता हूँ।

"भिक्षुओ! उस श्मशान-सदृश पुद्गल में ये पाँच दोष होते हैं॥" ●

१०. पुद्गलप्रसादसूत्र : : पुद्गल की प्रसन्नता के पाँच दोष

१. "भिक्षुओ! पुद्गल की प्रसन्नता में ये पाँच दोष होते हैं। कौन से पाँच? भिक्षुओ! कभी कभी कोई पुद्गल (भिक्षु) किसी दूसरे पुद्गल की ऐसी आपत्तिजनक बात पर प्रसन्न होता है, जिससे उसको सङ्घ से बाहर निकाल दिया गया है। तब उसको यह विचार होता है—'इस मेरे प्रिय भिक्षु को सङ्घ ने बाहर निकाल दिया है'। अतः वह सङ्घ के भिक्षुओं से अप्रसन्न (रुष्ट) हो जाता है, तथा उन भिक्षुओं से बोलचाल बन्द कर देता है। उनके द्वारा उपदिष्ट सद्धर्म का भी श्रवण नहीं करता, अन्ततः वह इस सद्धर्म के न सुनने के कारण इस (सद्धर्म) को छोड़ बैठता है। यह हुआ पुद्गल की ऐसी प्रसन्नता में पहला दोष। (१)

२. "पुनः, भिक्षुओ! कभी कोई पुद्गल किसी पुद्गल की ऐसी आपत्ति पर प्रसन्न होता है, जिस आपत्ति के कारण सङ्घ उसको दण्डस्वरूप पङ्क्ति के अन्त में बैठा देता है। इस अन्त में बैठाने

'यो खो म्यायं पुग्गलो पियो मनापो सो सङ्घेन अन्ते निसीदापितो' ति। भिक्खूसु अप्पसादबहुलो होति। भिक्खूसु अप्पसादबहुलो समानो अञ्ञे भिक्खू न भजति। अञ्ञे भिक्खू अभजन्तो सद्धम्मं न सुणाति। सद्धम्मं असुणन्तो सद्धम्मा परिहायति। अयं, भिक्खवे, दुतियो आदीनवो पुग्गलप्पसादे।

३. ''पुन च परं, भिक्खवे, यस्मिं पुग्गले पुग्गलो अभिप्पसन्नो होति, सो दिसापक्कन्तो होति ...पे०... सो विब्भन्तो होति ...पे०... सो कालङ्कतो होति। तस्स [B.237] एवं होति—'यो खो म्यायं पुग्गलो पियो मनापो सो कालङ्कतो' ति। अञ्ञे भिक्खू न भजति। अञ्ञे भिक्खू अभजन्तो सद्धम्मं न सुणाति। सद्धम्मं असुणन्तो सद्धम्मा [N.508] परिहायति। अयं, भिक्खवे, पञ्चमो आदीनवो पुग्गलप्पसादे। इमे खो, भिक्खवे, पञ्च आदीनवा पुग्गलप्पसादे'' ति॥

दुच्चरितवग्गो पञ्चवीसतिमो॥ ●

तस्सुद्दानं

[R.271] दुच्चरितं कायदुच्चरितं, वचीदुच्चरितं मनोदुच्चरितं।
चतूहि परं द्वे सिवथिका, पुग्गलप्पसादेन चा ति॥

पञ्चमो पण्णासको समत्तो॥ ●

के दण्ड से उस (प्रसादक) भिक्षु को विचार होता है—'सङ्घ ने मेरे प्रिय भिक्षु को इस आपत्ति के दण्डस्वरूप पंक्ति के अन्त में बैठाकर अनुचित किया है', अत: वह सभी भिक्षुओं से अप्रसन्नता प्रकट करता है तथा उनके साथ बैठना उठना छोड़ देता है। उनका किया हुआ धर्मप्रवचन न सुनने से वह सद्धर्म से परिहीण हो जाता है। भिक्षुओ! पुद्गल की प्रसन्नता में यह द्वितीय दोष है। (२)

३. ''पुन:, भिक्षुओ! कभी कोई पुद्गल किसी पुद्गल पर प्रसन्न था, परन्तु वह पुद्गल सङ्घ छोड़कर कहीं चला गया था ...पूर्ववत्...। (३)

''पुन:, भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... वह पुद्गल विभ्रान्त (भिक्षुजीवनपरित्यक्त) हो गया ...पूर्ववत्...। (४)

''पुन: भिक्षुओ! ...पूर्ववत्... वह पुद्गल मर गया। तब उस प्रेमी पुद्गल को यह विचार हुआ—'जो पुद्गल मेरा प्रिय तथा मेरे अनुकूल था, वह मर गया; अब दूसरे भिक्षुओं का साथ करने से क्या लाभ!' और वह दूसरे भिक्षुओं से भी बोल चाल बन्द कर देता है। उनसे सद्धर्म का श्रवण भी नहीं करता। यह सद्धर्म-श्रवण न करने के कारण सद्धर्म से च्युत हो जाता है। भिक्षुओ! पुद्गल प्रेम में यह पञ्चम दोष है॥''

●

दुश्चरितवर्ग पच्चीसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. प्रथम दुश्चरितसूत्र, २. प्रथम कायदुश्चरितसूत्र, ३. प्रथम वाग्दुश्चरितसूत्र, ४. प्रथम मनोदुश्चरितसूत्र, ५. द्वितीय दुश्चरितसूत्र, ६. द्वितीय कायदुश्चरितसूत्र, ७. द्वितीय वाग्दुश्चरितसूत्र, ८. द्वितीय मनोदुश्चरितसूत्र, ९. सिवथिकासूत्र, एवं १०. पुद्गलप्रसादसूत्र॥ ●

२६. उपसम्पदावग्गो

१. उपसम्पादेतब्बसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतेन [B.238] भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु असेखेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति; असेखेन समाधिक्खन्धेन समन्नागतो होति; असेखेन विमुत्तिक्खन्धेन समन्नागतो होति; असेखेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतेन भिक्खुना उपसम्पादेतब्बं" ति॥●

२. निस्सयसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतेन भिक्खुना निस्सयो दातब्बो। कतमेहिं पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु असेखेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति ...पे०... असेखेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति। इमेहि ...पे०... निस्सयो दातब्बो" ति॥ ●

३. सामणेरसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतेन भिक्खुना सामणेरो उपट्ठापेतब्बो। कतमेहि पञ्चहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु असेखेन सीलक्खन्धेन समन्नागतो होति; असेखेन समाधिक्खन्धेन ... असेखेन पञ्ञाक्खन्धेन ... असेखेन विमुत्तिक्खन्धेन... असेखेन विमुत्तिञाणदस्सनक्खन्धेन समन्नागतो होति। इमेहि [N.509] खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतेन भिक्खुना सामणेरो उपट्ठापेतब्बो" ति॥●

४. पञ्चमच्छरियसुत्तं : १. "पञ्चिमानि, भिक्खवे, मच्छरियानि। कतमानि

---

२६. उपसम्पदावर्ग

१. उपसम्पादयितव्यसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु द्वारा दीक्षा

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु द्वारा उपसम्पदा दी जानी चाहिये। किन पाँच धर्मों से? (१) भिक्षुओ! जो भिक्षु अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से युक्त हो; (२) अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से...; (३) अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से...; (४) अशैक्ष्य विमुक्तिस्कन्ध से...; (५) अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञान-दर्शनस्कन्ध से युक्त हो। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु के द्वारा ही उपसम्पदा दी जानी चाहिये॥" ●

२. निःश्रयसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु द्वारा निःश्रयदान

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु द्वारा ही किसी को निःश्रय (संरक्षण) देना चाहिये। किन पाँच से? (१) भिक्षुओ! जो भिक्षु अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से... पूर्ववत्...; (५) अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त हो। ...निश्रय देना चाहिये॥" ●

३. श्रामणेरसूत्र : : श्रामणेर रखना

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु द्वारा ही किसी श्रामणेर को अपनी सेवा में रखना चाहिये। किन पाँच धर्मों से? (१) यहाँ, भिक्षुओ! जो भिक्षु (१) अशैक्ष्य शीलस्कन्ध से..., (२) अशैक्ष्य समाधिस्कन्ध से..., (३) अशैक्ष्य प्रज्ञास्कन्ध से..., (४) अशैक्ष्य विमुक्तिस्कन्ध से..., (५) अशैक्ष्य विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्ध से युक्त हो। इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु द्वारा ही किसी श्रामणेर को अपनी सेवा में रखना चाहिये॥" ●

[R.272] पञ्च? आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं, धम्ममच्छरियं—इमानि खो, भिक्खवे, पञ्च मच्छरियानि। इमेसं खो, भिक्खवे, पञ्चन्नं मच्छरियानं एतं पटिकुट्ठं, यदिदं धम्ममच्छरियं'' ति॥

[B.239] **५. मच्छरियप्पहानसुत्तं :** १. ''पञ्चन्नं, भिक्खवे, मच्छरियानं पहानाय समुच्छेदाय ब्रह्मचरियं वुस्सति। कतमेसं पञ्चन्नं? आवासमच्छरियस्स पहानाय समुच्छेदाय ब्रह्मचरियं वुस्सति; कुलमच्छरियस्स... लाभमच्छरियस्स... वण्ण-मच्छरियस्स... धम्ममच्छरियस्स पहानाय समुच्छेदाय ब्रह्मचरियं वुस्सति। इमेसं खो, भिक्खवे, पञ्चन्नं मच्छरियानं पहानाय समुच्छेदाय ब्रह्मचरियं वुस्सती'' ति॥

६. पठमज्झानसुत्तं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मे अप्पहाय अभब्बो पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरितुं। कतमे पञ्च? आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभच्छरियं, वण्णमच्छरियं, धम्ममच्छरियं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मे अप्पहाय अभब्बो पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरितुं।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मे पहाय भब्बो पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरितुं। कतमे पञ्च? आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं, धम्ममच्छरियं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मे पहाय भब्बो पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरितुं'' ति॥

[N.510] **७-१३. दुतियझानसुत्तादिसत्तकं :** १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मे अप्पहाय

---

४. पञ्चमात्सर्यसूत्र :: पाँच मात्सर्य (ईर्ष्या, अभिमान)

१. ''भिक्षुओ! ये पाँच मात्सर्य होते हैं। कौन से पाँच? (१) आवास का मात्सर्य, (२) कुल का मात्सर्य, (३) चीवरादि के लाभ का मात्सर्य; (४) अपने रूप का मात्सर्य, एवं (५) धर्म का मात्सर्य। भिक्षुओ! ये पाँच मात्सर्य कहलाते हैं। भिक्षुओ! इन पाँच मात्सर्यों में भी धर्म का मात्सर्य सर्वापेक्षया घृणित, हीन एवं सदोष है॥''

५. मात्सर्य प्रहाणसूत्र :: पाँच मात्सर्यों का धर्मसाधना से प्रहाण

१. ''भिक्षुओ! पाँच मात्सर्यों के प्रहाण एवं नाश के लिये धर्मसाधना की जाती है। किन पाँच मात्सर्यों के? (१) आवासमात्सर्य के...; (२) कुलमात्सर्य के...; (३) लाभमात्सर्य के...; (४) वर्णमात्सर्य के...; (५) धर्ममात्सर्य के प्रहाण एवं उच्छेद तथा नाश के लिये धर्मसाधना की जाती है। भिक्षुओ! इन पाँच मात्सर्यों के प्रहाण, उच्छेद तथा नाश के लिये धर्मसाधना की जाती है॥''

६. प्रथमध्यानसूत्र :: पाँच धर्मों के त्याग विना प्रथम ध्यान-साधना असम्भव

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच (पाप) धर्मों को छोड़े विना प्रथम ध्यान की साधना असम्भव है। कौन से पाँच धर्म? (१) आवासमात्सर्य, (२) कुलमात्सर्य, (३) लाभमात्सर्य, (४) वर्णमात्सर्य, एवं (५) धर्ममात्सर्य। भिक्षुओ! इन पाँच ...पूर्ववत्... साधना असम्भव है॥

२. ''(परन्तु) भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों के त्यागने पर ही प्रथम ध्यान की साधना सम्भव हो

अभब्बो दुतियं झानं ...पे०... अभब्बो ततियं झानं... अभब्बो चतुत्थं झानं... अभब्बो सोतापत्तिफलं... अभब्बो सकदागामिफलं... अभब्बो अनागामिफलं... अभब्बो अरहत्तं सच्छिकातुं। कतमे पञ्च? आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, [R.273] वण्णमच्छरियं, धम्ममच्छरियं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मे अप्पहाय अभब्बो अरहत्तं सच्छिकातुं।

२. "पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मे पहाय दुतियं झानं ...पे०... भब्बो ततियं झानं... भब्बो चतुत्थं झानं.... भब्बो सोतापत्तिफलं... भब्बो सकदागामिफलं... भब्बो अनागामिफलं... भब्बो अरहत्तं सच्छिकातुं। कतमे पञ्च? आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं, धम्ममच्छरियं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मे पहाय भब्बो अरहत्तं सच्छिकातुं" ति॥ ●

१४. अपरपठमज्झानसुत्तं : १. "पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मे अप्पहाय [B.240] अभब्बो पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरितुं। कतमे पञ्च? आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं, अकतञ्ञुतं अकतवेदितं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मे अप्पहाय अभब्बो पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरितुं।

२. "पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मे पहाय भब्बो पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरितुं। कतमे पञ्च? आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं, अकतञ्ञुतं अकतवेदितं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मे पहाय भब्बो पठमं झानं उपसम्पज्ज विहरितुं" ति॥ ●

पाती है। कौन से पाँच? ...पूर्ववत्... धर्ममात्सर्य। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों के त्यागने पर ही प्रथम ध्यान की साधना सम्भव है॥" ●

७-१३. द्वितीयध्यानसूत्रादिसप्तकसूत्र : : पाँच धर्मों के त्याग विना द्वितीय ध्यानादि की साधना असम्भव

१. "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों को छोड़े विना द्वितीय ध्यान ... तृतीय ध्यान... चतुर्थ ध्यान... स्रोत आपत्ति फल... सकृदागामिफल... अनागामिफल... अर्हत्त्व का साक्षात्कार असम्भव है। कौन से पाँच? (१) आवासमात्सर्य, (२) कुलमात्सर्य, (३) लाभमात्सर्य, (४) वर्णमात्सर्य, एवं (५) धर्ममात्सर्य। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों को छोड़े विना... साक्षात्कार असम्भव है।

२. "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों को छोड़ने पर द्वितीय ध्यान ...पूर्ववत्... साक्षात्कार सम्भव है। कौन से पाँच? ...पूर्ववत्... साक्षात्कार सम्भव है॥" ●

१४. अपर प्रथमध्यानसूत्र : : प्रथम ध्यान की साधना असम्भव

१. "भिक्षुओ! ये पाँच धर्म छोड़े विना प्रथम ध्यान की भावना करना असम्भव है। कौन से पाँच? (१) आवासमात्सर्य, (२) कुलमात्सर्य, (३) लाभमात्सर्य, (४) वर्णमात्सर्य, (५) एवं अकृतज्ञता, अकृतवेदिता—भिक्षुओ! ये पाँच धर्म छोड़े विना प्रथम ध्यान की भावना असम्भव है।

१५-२१. अपरदुतियज्झानसुत्तादिसत्तकं : १. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मे अप्पहाय अभब्बो दुतियं झानं ...पे०... ततियं झानं... चतुत्थं झानं... सोतापत्तिफलं... [N.511] सकदागामिफलं... अनागामिफलं... अरहत्तं सच्छिकातुं। कतमे पञ्च? आवास-मच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं, अकतञ्ञुतं अकतंवेदितं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मे अप्पहाय अभब्बो अरहत्तं सच्छिकातुं।

२. ''पञ्चिमे, भिक्खवे, धम्मे पहाय भब्बो दुतियं झानं... ततियं झानं... चतुत्थं झानं... सोतापत्तिफलं... सकदागामिफलं... अनागामिफलं... अरहत्तं सच्छिकातुं। कतमे पञ्च? आवासमच्छरियं, कुलमच्छरियं, लाभमच्छरियं, वण्णमच्छरियं, अकतञ्ञुतं अकतवेदितं—इमे खो, भिक्खवे, पञ्च धम्मे पहाय भब्बो अरहत्तं सच्छिकातुं'' ति॥ ●

उपसम्पदावग्गो छबीसतिमो॥

---

२. ''भिक्षुओ! ये पाँच धर्म छोड़ने पर प्रथम ध्यान की भावना सम्भव है। कौन से पाँच? आवासमात्सर्य ...पूर्ववत्... अकृतज्ञता, अकृतवेदिता।... प्रथम ध्यान की भावना सम्भव है॥'' ●

१५-२१. अपरद्वितीयध्यानसूत्रादिसप्तक : : द्वितीय ध्यानादि की भावना असम्भव

१. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों को छोड़े विना द्वितीय ध्यान... तृतीय ध्यान... चतुर्थ ध्यान... स्रोतआपत्तिफल... सकृदागामिफल... अनागामिफल... अर्हत्त्व का साक्षात्कार असम्भव है। कौन से पाँच? ...पूर्ववत्... अकृतज्ञता, अकृतवेदिता—इन पाँच धर्मों को छोड़े विना... अर्हत्त्व का साक्षात्कार असम्भव है।

२. ''भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों को छोड़ने पर ही द्वितीय ध्यान ...पूर्ववत्... अर्हत्त्व का साक्षात्कार सम्भव है। कौन से पाँच? आवासमात्सर्य... अकृतज्ञता, अकृतवेदिता—इन पाँच धर्मों को छोड़ने पर ही... अर्हत्त्व का साक्षात्कार सम्भव है॥'' ●

उपसम्पदावर्ग छब्बीसवाँ सम्पन्न॥

इस वर्ग (में व्याख्यात सूत्रों) की सूची

१. उपसम्पादयितव्यसूत्र, २. निःश्रयसूत्र, ३. श्रामणेरसूत्र, ४. पञ्चमात्सर्यसूत्र, ५. मात्सर्यप्रहाणसूत्र, ६. प्रथमध्यानसूत्र, ७-१३. द्वितीयध्यानसूत्रादि सप्तक, १४. अपर प्रथम-ध्यानसूत्र, १५-२१. अपर द्वितीयध्यानसूत्रादि सप्तक॥ ●

२७. सम्मुतिपेय्यालं

१. भत्तुद्देसकसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको न सम्मन्नितब्बो। कतमेहि पञ्चहि? छन्दागतिं गच्छति, दोसागतिं गच्छति, मोहागतिं [R.274] गच्छति, भयागतिं गच्छति, उद्दिट्ठानुद्दिट्ठं न जानाति—इमेहि खो, भिक्खवे, [B.241] पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको न सम्मन्नितब्बो।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको सम्मन्नितब्बो। कतमेहि पञ्चहि? न छन्दागतिं गच्छति, न दोसागतिं गच्छति, न मोहागतिं गच्छति, न भयागतिं गच्छति, उद्दिट्ठानुद्दिट्ठं जानाति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको सम्मन्नितब्बो ति।

३. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको सम्मतो न पेसेतब्बो ...पे०... सम्मतो पेसेतब्बो... बालो वेदितब्बो... पण्डितो वेदितब्बो... खतं उपहतं अत्तानं परिहरति... अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति... यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये... यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? न छन्दागतिं गच्छति, न दोसागतिं [N.512] गच्छति, न मोहागतिं गच्छति, न भयागतिं गच्छति, उद्दिट्ठानुद्दिट्ठं जानाति—इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भत्तुद्देसको यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे" ति॥ ●

२-१५. सेनासनपञ्ञापकसुत्तादि : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्ना-

---

२७. सम्मतिपेय्याल (सम्मतिविस्तार)

१. भक्तोद्देशकसूत्र : : पाँच धर्मों से युक्त भोजनव्यवस्थापक सम्मत नहीं

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल को भोजनव्यवस्थापक या भोजनवितरक नहीं चुनना चाहिये। किन पाँच धर्मों से? (१) जो पक्षपाती हो, (२) जो द्वेषी हो, (३) जो मोही (निर्णय करने में असमर्थ) हो, (४) डरपोक हो, एवं (५) जो उद्दिष्ट एवं अनुद्दिष्ट को न जानता हो। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल भोजनव्यवस्थापक स्वीकृत नहीं करना चाहिये।

२. "भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त को ही भोजनव्यवस्थापक स्वीकृत करना चाहिये। किन पाँच धर्मों से? पक्षपाती न हो, द्वेषी न हो, मोही न हो, भयभीत न हो, तथा जो उद्दिष्ट एवं अनुद्दिष्ट को जानता हो। इन धर्मों से युक्त को ही, भिक्षुओ! भोजनव्यवस्थापक चुनना चाहिये॥

३. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त को भोजनव्यवस्थापक बनाकर, सर्वसम्मत होने पर भी, नहीं भेजना चाहिये। ...पूर्ववत्...। ...सर्वसम्मत भेजना चाहिये...। उसकी मूर्खता पर... बुद्धिमत्ता पर विचार कर लेना चाहिये... जो अपने को हारा थका समझता हो... वह जैसे आया था वैसे ही नरक में पुनः जा गिरता है ... वह सीधा स्वर्ग में जाता है। किन पाँच धर्मों से? (१) जो पक्षपाती न हो, (२) द्वेषी न हो, (३) मोही न हो, (४) भयभीत न हो, तथा (५) उद्दिष्ट एवं अनुद्दिष्ट का भेद जानता हो। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल मरणानन्तर सीधा स्वर्ग में जाता है॥" ●

गतो सेनासनपञ्ञापको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... पञ्ञत्तापञ्ञत्तं न जानाति ...पे०... सेनासनपञ्ञापको सम्मन्नितब्बो ...पे०... पञ्ञत्तापञ्ञत्तं जानाति ...पे०... ॥

२. सेनासनगाहापको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... गहितागहितं न जानाति ...पे०... सेनासनगाहापको सम्मन्नितब्बो ...पे०... गहितागहितं जानाति ...पे०... ॥

३. भण्डागारिको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... गुत्तागुत्तं न जानाति... भण्डागारिको सम्मन्नितब्बो ...पे०... गुत्तागुत्तं जानाति ...पे०... ॥

४. चीवरपटिग्गाहको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... गहितागहितं न जानाति... [R.275] चीवरपटिग्गाहको सम्मन्नितब्बो ...पे०... गहितागहितं जानाति ...पे०... ॥

[B.242] ५. चीवरभाजको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... भाजिताभाजितं न जानाति... चीवरभाजको सम्मन्नितब्बो ...पे०... भाजिताभाजितं जानाति ...पे०... ॥

६. यागुभाजको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... यागुभाजको सम्मन्नितब्बो ...पे०... ॥

७. फलभाजको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... फलभाजको सम्मन्नितब्बो ...पे०... ॥

८. खज्जकभाजको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... भाजिताभाजितं न जानाति... खज्जकभाजको सम्मन्नितब्बो ...पे०... भाजिताभाजितं जानाति ...पे०... ॥

२-१४. शयनासनप्रज्ञापकसूत्रादि : : शयनासनप्रज्ञापक आदि का निर्वाचन

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त पुद्गल को **शयनासनप्रज्ञापक** नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... प्रज्ञप्त एवं अप्रज्ञप्त को न जानता हो। शयनासनप्रज्ञापक चुनना चाहिये ... प्रज्ञप्त एवं अप्रज्ञप्त शयनासन को जानता हो।

२. **शयनासनग्राहापक** को नहीं चुनना चाहिये... गृहीत या अगृहीत को न जानता हो ...पूर्ववत्...। शयनासनग्राहापक को चुनना चाहिये... गृहीत अगृहीत को जानता हो ...पूर्ववत्...।

३. ...**भण्डारी** को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... गुप्त या अगुप्त को जो न जानता हो...। भण्डारी को चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... गुप्त या अगुप्त को जो जानता हो।...।

४. ...**चीवरप्रतिग्राहक** को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... गृहीत या अगृहीत को जो न जानता हो...। चीवरप्रतिग्राहक को चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... गृहीत या अगृहीत को जानता हो।...।

५. ...**चीवरविभाजक** को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... विभाजित या अविभाजित (वस्तु) को नहीं जानता हो...। चीवरविभाजक को चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... विभाजित या अविभाजित को जानता हो। ...

६. ...**यवागुविभाजक** को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्...। यवागुविभाजक को चुनना चाहिये ...पूर्ववत्...।

७. ...**फलविभाजक** को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्...। फलविभाजक को चुनना चाहिये... पूर्ववत्...।

८. ...**खाजा (मिठाई) विभाजक** को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... विभाजित,

९. अप्पमत्तकविस्सज्जको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... विस्सज्जिता- [N.513] विस्सज्जितं न जानाति... अप्पमत्तकविस्सज्जको सम्मन्नितब्बो ...पे०... विस्सज्जिता-विस्सज्जितं जानाति ...॥

१०. सातियग्गाहापको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... गहितागहितं न जानाति... सातियग्गाहापको सम्मन्नितब्बो ...पे०... गहितागहितं जानाति ...॥

११. पत्तग्गाहापको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... गहितागहितं न जानाति... पत्तग्गाहापको सम्मन्नितब्बो ...पे०... गहितागहितं जानाति ...॥

१२. आरामिकपेसको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... आरामिकपेसको सम्मन्नितब्बो ...पे०...।

१३. सामणेरपेसको न सम्मन्नितब्बो ...पे०... सामणेरपेसको सम्मन्नितब्बो ...पे०...।

१४. सम्मतो न पेसेतब्बो ...पे०... सम्मतो पेसेतब्बो ...पे०...।

१५. सामणेरपेसको बालो वेदितब्बो ...पे०... पण्डितो वेदितब्बो... खतं उपहतं अत्तानं परिहरति... अक्खतं अनुपहतं अत्तानं परिहरति... यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये... यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? न छन्दागतिं गच्छति, न दोसागतिं

अविभाजित को नहीं जानता। खाजाविभाजक को चुनना चाहिये।... पूर्ववत्... विभाजित अविभाजित को जानता है।...

९. ...**अल्पमात्रविसर्जक** (वितरक) को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... वितरित, अवितरित को नहीं जानता...। अल्पमात्रविसर्जक को चुनना चाहिये... पूर्ववत्... वितरित अवितरित को जानता हो...।

१०. ...**शाटीग्राहापक** (शाटी ग्रहण करानेवाले) को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... गृहीत, अगृहीत को नहीं जानता।... शाटीग्राहापक को चुनना चाहिये... पूर्ववत्... गृहीत, अगृहीत को जानता हो...।

११. **पात्रग्राहापक** को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... गृहीत, अगृहीत को नहीं जानता... पात्रग्राहापक को चुनना चाहिये ...पूर्ववत्... गृहीत, अगृहीत को जानता हो...।

१२. **आरामिकप्रेषक** (विहार के सेवकों के नियोजन करने वाले) को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्...। आरामिक प्रेषक को चुनना चाहिये ...पूर्ववत्...।

१३. ...**श्रामणेर प्रेषक** को नहीं चुनना चाहिये ...पूर्ववत्...। श्रामणेर प्रेषक को चुनना चाहिये ...पूर्ववत्...।

१४. सर्वसम्मत होने पर भी नहीं भेजना चाहिये ...पूर्ववत्... सर्वसम्मत होने पर भेजना चाहिये ...पूर्ववत्...।

१५. श्रामणेर प्रेषक की मूर्खता समझनी चाहिये... पाण्डित्य समझना चाहिये... जो स्वयं को क्षत या उपहत माने... जो स्वयं को अक्षत अनुपहत माने... वह जैसे आया था वैसे ही नरक में गिर

गच्छति, न मोहागतिं गच्छति, न भयागतिं गच्छति, पेसितापेसितं जानाति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो सामणेरपेसको यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥

सम्मुतिपेय्यालं निट्ठितं॥ ●

२८. सिक्खापदपेय्यालं

[B.243] **१. भिक्खुसुत्तं :** १. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, [N.514,R.276] अब्रह्मचारी होति, मुसावादी होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये।

२. ''पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाता पटिविरतो होति, अदिन्नादाना पटिविरतो होति, अब्रह्मचरिया पटिविरतो होति, मुसावादा पटिविरतो होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरतो होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो भिक्खु यथाभतं निक्खित्तो एवं सग्गे'' ति॥ ●

जाता है...। ...वह सीधा स्वर्ग में पहुँचता है। किन पाँच धर्मों से? (१) जो पक्षपात नहीं करता; (२) दूसरों से द्वेष नहीं करता; (३) दूसरों में मोह नहीं करता; (४) जो निर्भीक रहता है; (५) जो प्रेषित अप्रेषित को जानता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त श्रामणेर प्रेषक सीधा स्वर्ग में ही जाता है॥'' ●

सम्मतिपेय्याल सम्पन्न॥

२८. शिक्षापदविस्तार

१. भिक्षुसूत्र : : नरकगामी एवं स्वर्गगामी भिक्षु

१. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु जैसे आया था वैसे ही पुनः नरक में जा गिरेगा। किन पाँच धर्मों से? (१) प्राणातिपाती (हिंसक) होता है; (२) अदत्त का आदान (ग्रहण) करने वाला (चौर) होता है; (३) कामभोगों में मिथ्याचार (व्यभिचार) करने वाला (अब्रह्मचारी) होता है; (४) मृषावादी (असत्यभाषी) होता है; तथा (५) सुरा, मैरेय आदि मद्यों का पान करता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु जैसे आया था वैसे ही पुनः नरक में जा गिरेगा।

२. ''भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु पुनः सीधा स्वर्ग में ही पहुँचता है। कौन से पाँच धर्मों से? (१) प्राणातिपाती नहीं होता; (२) अदत्तादायी (चौर) नहीं होता; (३) व्यभिचारी नहीं होता; (४) असत्यभाषी नहीं होता, (५) मद्यप नहीं होता। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त भिक्षु सीधा स्वर्ग में ही पहुँचता है॥'' ●

२-७. भिक्खुनीसुत्तादि : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता भिक्खुनी ...पे०... सिक्खमाना... सामणेरो... सामणेरी... उपासको... उपासिका यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपातिनी होति, अदिन्नादायिनी होति, कामेसुमिच्छा-चारिनी होति, मुसावादिनी होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायिनी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता उपासिका यथाभतं निक्खित्ता एवं निरये।

२. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागता उपासिका यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाता पटिविरता होति, अदिन्नादाना पटिविरता होति, कामेसुमिच्छाचारा पटिविरता होति, मुसावादा पटिविरता होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठाना पटिविरता होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागता उपासिका यथाभतं निक्खित्ता एवं सग्गे" ति॥ ●

८. आजीवकसुत्तं : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो [B.244] आजीवको यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति, अब्रह्मचारी होति, मुसावादी होति, सुरामेरयमज्जपमादट्ठायी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो आजीवको यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये" ति॥ ●

९-१७. निगण्ठसुत्तादि : १. "पञ्चहि, भिक्खवे, धम्मेहि समन्नागतो [N.515] निगण्ठो... मुण्डसावको... जटिलको... परिब्बाजको... मागण्डिको... तेदण्डिको...

२-७. भिक्षुणीसूत्रादि : :भिक्षुणी आदि छह नरकगामी / स्वर्गगामी

१. "पाँच धर्मों से युक्त भिक्षुणी ...पूर्ववत्... शिक्ष्यमाणा ... श्रामणेर ... श्रामणेरी ... उपासक ... उपासिका जैसे आयी थी वैसे ही नरक में चली जाती है। किन पाँच धर्मों से? प्राणातिपातिनी ...पूर्ववत्... मद्यपायिनी होती है। इन पाँच धर्मों से युक्त उपासिका जैसे आयी थी वैसे ही नरक में जा गिरती है।

२. "पाँच धर्मों से युक्त उपासिका सीधे स्वर्ग में ही पहुँचती है। कौन पाँच धर्म? (१) प्राणातिपात से रहित; (२) चौरी से रहित; (३) व्यभिचार से रहित; (४) असत्य भाषण से रहित तथा (५) मद्यपान से दूर रहती है। इन पाँच धर्मों से युक्त उपासिका सीधे स्वर्ग में जाती है॥" ●

८. आजीवकसूत्र : : नरकगामी आजीवक

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त आजीवक (नग्न तपस्वी) जैसे आया था वैसे ही पुनः नरक में जायगा। किन पाँच धर्मों से? जो (१) प्राणातिपाती, (२) अदत्तादायी, (३) व्यभिचारी, (४) असत्यभाषी, एवं (५) मद्यपायी होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त आजीवक पुनः नरक में ही पहुँच जाता है॥" ●

९-१७. निर्ग्रन्थसूत्रादि : : नरकगामी निर्ग्रन्थ आदि

१. "भिक्षुओ! पाँच धर्मों से युक्त निर्ग्रन्थ ... मुण्डश्रावक ... जटिलक ... मागन्दिक ...

[R.277] आरुद्धको... गोतमको... देवधम्मिको यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये। कतमेहि पञ्चहि? पाणातिपाती होति, अदिन्नादायी होति ...पे०... सुरामेरय-मज्जपमादट्ठायी होति। इमेहि खो, भिक्खवे, पञ्चहि धम्मेहि समन्नागतो देवधम्मिको यथाभतं निक्खित्तो एवं निरये'' ति॥ ●

सिक्खापदपेय्यालं निट्ठितं।

२९. रागपेय्यालं

१. ''रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय पञ्च धम्मा भावेतब्बा। कतमे पञ्च? असुभसञ्ञा, मरणसञ्ञा, आदीनवसञ्ञा, आहारे पटिकूलसञ्ञा, सब्बलोके अनभिरतसञ्ञा—रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे पञ्च धम्मा भावेतब्बा'' ति॥

२. ''रागस्स भिक्खवे, अभिञ्ञाय पञ्च धम्मा भावेतब्बा। कतमे पञ्च? अनिच्चसञ्ञा, अनत्तसञ्ञा, मरणसञ्ञा, आहारे पटिकूलसञ्ञा, सब्बलोके अनभिरत-सञ्ञा—रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे पञ्च धम्मा भावेतब्बा'' ति॥

[B.245] ३. ''रागस्स भिक्खवे, अभिञ्ञाय पञ्च धम्मा भावेतब्बा। कतमे पञ्च?

त्रैदण्डिक ... आरुद्धक ... गौतमक ... देवधार्मिक जैसे आया वैसे ही नरक में जाकर गिरेगा। किन पाँच धर्मों से? (१) प्राणातिपाती होता है, (२) अदत्तादायी होता है, (३) व्यभिचारी (अब्रह्मचारी) होता है, (४) असत्यभाषी होता है, (५) एवं मद्यपायी होता है। भिक्षुओ! इन पाँच धर्मों से युक्त देवधार्मिक पापी श्रमण, जैसे आया वैसे ही नरक में पुनः जा गिरता है॥'' ●

शिक्षापदविस्तार सम्पन्न॥

२९. रागविस्तार

१. ''भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान (वास्तविकता जानने) के लिये पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन पाँच धर्म? (१) अशुभसंज्ञा, (२) मरणसंज्ञा, (३) आदीनवसंज्ञा, (४) आहार में प्रतिकूलसंज्ञा, एवं (५) सर्वलोक में अनभिरति (अरुचि) संज्ञा—भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान के लिये इन पाँच धर्मों की भावना (साधना) करनी चाहिये॥'' ●

२. ''भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान के लिये पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन से पाँच? (१) अनित्यसंज्ञा, (२) अनात्मसंज्ञा, (३) मरणसंज्ञा, (४) आहार में प्रतिकूलसंज्ञा, (५) एवं सर्वलोक में अनभिरतिसंज्ञा—भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान के लिये इन पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये॥'' ●

३. ''भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान के लिये पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन से

अनिच्चसञ्ञा, अनिच्चे दुक्खसञ्ञा, दुक्खे अनत्तसञ्ञा, पहानसञ्ञा, विराग- [B.245]
सञ्ञा—रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे पञ्च धम्मा भावेतब्बा'' ति॥

४. ''रागस्स भिक्खवे, अभिञ्ञाय पञ्च धम्मा भावेतब्बा। कतमे पञ्च? सद्धिन्द्रियं, विरियिन्द्रियं, सतिन्द्रियं, समाधिन्द्रियं, पञ्ञिन्द्रियं—रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे पञ्च धम्मा भावेतब्बा'' ति॥

५. ''रागस्स भिक्खवे, अभिञ्ञाय पञ्च धम्मा भावेतब्बा। कतमे [R.278]
पञ्च? सद्धाबलं, विरियंबलं, सतिबलं, समाधिबलं, पञ्ञाबलं—रागस्स, भिक्खवे, अभिञ्ञाय इमे पञ्च भावेतब्बा'' ति॥

६-८५०. ''रागस्स, भिक्खवे, परिञ्ञाय... परिक्खयाय... पहानाय... [N.516]
खयाय... वयाय... विरागाय... निरोधाय... चागाय... पटिनिस्सग्गाय पञ्च धम्मा भावेतब्बा। दोसस्स ... मोहस्स... कोधस्स... उपनाहस्स... मक्खस्स... पलासस्स... इस्साय... मच्छरियस्स... मायाय... साठेय्यस्स... थम्भस्स... सारम्भस्स... मानस्स... अतिमानस्स... मदस्स... पमादस्स अभिञ्ञाय... परिञ्ञाय... परिक्खयाय... पहानाय .... खयाय... वयाय... विरागाय... निरोधाय... चागाय... पटिनिस्सग्गाय पञ्च धम्मा भावेतब्बा। कतमे पञ्च? सद्धाबलं, विरियबलं, सतिबलं, समाधिबलं, पञ्ञाबलं—पमादस्स, भिक्खवे, पटिनिस्सग्गाय इमे पञ्च धम्मा भावेतब्बा'' ति॥ ●

पञ्चकनिपातो निट्ठितो॥

पाँच? (१) अनित्यसंज्ञा, (२) अनित्य में दुःखसंज्ञा, (३) दुःख में अनात्मसंज्ञा, (४) प्रहाणसंज्ञा, (५) विरागसंज्ञा—भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान के लिये इन पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये॥'' ●

४. ''भिक्षुओ! राग के विशिष्ट ज्ञान के लिये पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन से पाँच? (१) श्रद्धेन्द्रिय, (२) वीर्येन्द्रिय, (३) स्मृतीन्द्रिय, (४) समाधीन्द्रिय, एवं (५) प्रज्ञेन्द्रिय—भिक्षुओ! राग के अभिज्ञान के लिये इन पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये॥'' ●

५. ''भिक्षुओ! राग के अभिज्ञान के लिये पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये। कौन से पाँच धर्म? (१) श्रद्धाबल, (२) वीर्यबल, (३) स्मृतिबल, (४) समाधिबल एवं (५) प्रज्ञाबल—भिक्षुओ! राग के अभिज्ञान के लिये इन पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये॥'' ●

६-८५०. ''भिक्षुओ! राग की परिज्ञा (त्याग) के लिये ... राग के परिक्षय के लिये ... प्रहाण के लिये ... क्षय के लिये ... व्यय के लिये ... विराग के लिये ... निरोध के लिये ... त्याग के लिये ... प्रतिनिसर्ग (परित्याग) के लिये पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये।

''द्वेष के... मोह के... क्रोध के... उपनाह (वैर) के... म्रक्ष (दूसरों के प्रति हीनभावना) के... प्रदाह (ईर्ष्यायुक्त जलन) के... ईर्ष्या के... मात्सर्य के... माया के... शाठ्य के... स्तम्भ के... सारम्भ (उत्तेजना) के... मान के... अतिमान के... मद के... प्रमाद के अभिज्ञान के लिये... व्यय के लिये... विराग के लिये... निरोध के लिये... त्याग के लिये... प्रतिनिसर्ग के लिये पाँच धर्मों की

तस्सुद्दानं

अभिञ्ञाय परिञ्ञाय परिक्खयाय, पहानाय खयाय वयेन च।
विरागनिरोधा चागं च, पटिनिस्सग्गो इमे दसा ति॥

पञ्चकनिपातो निट्ठितो॥

तत्रिदं वग्गुद्दानं

[B.246] सेखबलं बलं चेव, पञ्चङ्गिकं च सुमनं।
मुण्डनीवरणं च सञ्ञं च, योधाजीवं च अट्ठमं॥
थेरं ककुधफासुं च, अन्धकविन्द-द्वादसं।
गिलानराजतिकण्डं, सद्धम्माघातुपासकं॥
अरञ्ञब्राह्मणं चेव, किमिलक्कोसकं तथा।
दीघचारावासिकं च, दुच्चरितूपसम्पदं ति॥



भावना करनी चाहिये। कौन से पाँच? (१) श्रद्धाबल, (२) वीर्यबल, (३) स्मृतिबल, (४) समाधिबल, एवं प्रज्ञाबल—भिक्षुओ! प्रमाद के प्रतिनिसर्गके इन पाँच धर्मों की भावना करनी चाहिये॥''



रागविस्तार सम्पन्न॥

इस विस्तार में व्याख्यात सूत्रों की सूची

१. अभिज्ञा, २. परिज्ञा, ३. परिक्षय, ४. प्रहाण, ५. क्षय, ६. व्यय, ७. विराग, ८. निरोध, ९. त्याग एवं १०. प्रतिनिसर्ग॥



इस (पञ्चक निपात के) वर्गों की सूची

१. शैक्ष्यबलवर्ग, २. बलवर्ग, ३. पञ्चाङ्गिकवर्ग, ४. सुमनवर्ग, ५. मुण्डराजवर्ग, ६. नीवरणवर्ग, ७. संज्ञावर्ग, ८. योद्धृजीविवर्ग, ९. स्थविरवर्ग, १०. क्रकुधवर्ग, ११. फासु-विहारवर्ग, १२. अन्धकबिन्दवर्ग, १३. ग्लानवर्ग, १४. राजवर्ग, १५. त्रिकण्टकीवर्ग, १६. सद्धर्म-वर्ग, १७. आघातवर्ग, १८. उपासकवर्ग, १९. अरण्यवर्ग, २०. ब्राह्मणवर्ग, २१. किमिलवर्ग, २२. आक्रोशवर्ग, २३. दीर्घचारिकवर्ग, २४. आवासिकवर्ग, २५. दुश्चरितवर्ग, २६. उपसम्पदावर्ग, २७. सम्मतिविस्तार, २८. शिक्षापदविस्तार, २९. रागविस्तार॥

पञ्चकनिपात सम्पन्न॥







बौद्धभारतीग्रन्थमाला में प्रकाशित

पालि-साहित्य के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

बौद्धभारती

पो. बाक्स नं. 1049, वाराणसी-221 001

E-mail : bauddhabhrti@satyam.net.in